४१.३
र १८आ.पु.४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

हैदरअली	मैसूर का शासक, अंग्रेजों का कट्टर विरोधी
टीपू	हैदरअली का पुत्र, अंग्रेजों का विरोधी
सर आयर कूट	अंग्रेज प्रसिद्ध सेनापति
नाना फड़नवीस	मरहठों का महान् कूटनीतिज्ञ
वैलेजली	भारत का प्रसिद्ध गवर्नर-जनरल, पूर्ण साम्राज्यवादी
महादजी सिंधिया	मरहठों का सरदार
दौलतराव सिंधिया	मरहठों का सरदार
जसवन्तराव होल्कर	मरहठों का सरदार
रणजीतसिंह	पंजाब का शासक
लार्ड एमहर्स्ट	गवर्नर-जनरल
लार्ड विलियम बैंटिक	गवर्नर-जनरल—सुधारक
लार्ड ऑकलैण्ड	गवर्नर-जनरल
लार्ड एलिनबरा	गवर्नर-जनरल
लार्ड हार्डिंज	गवर्नर-जनरल
लार्ड डलहौजी	गवर्नर-जनरल, साम्राज्यवादी शासक
लार्ड केनिंग	गवर्नर-जनरल
दोस्त मुहम्मद	अफगानिस्तान का अमीर
शाहशुजा	अफगानिस्तान का अमीर
मंगल पाण्डे	क्रान्ति का अग्रदूत
नाना साहेब	बाजीराव पेशवा का दत्तक पुत्र, महान् क्रान्ति का नेता
तांत्या टोपे	क्रान्ति का नेता
रानी लक्ष्मीबाई	झाँसी की रानी
लार्ड मैकॉले	प्रथम विधि सदस्य (गवर्नर जनरल कौंसिल)
लार्ड लारेंस	गवर्नर-जनरल, महान् अकर्मण्यता की नीति का संस्थापक
लार्ड लिटन	गवर्नर-जनरल, उग्र नीति का पालक, महान् साम्राज्यवादी
लार्ड कर्जन	गवर्नर-जनरल, साम्राज्यवादी, उच्च कोटि का शासक
अमीर अब्दुर्रहमान खाँ	अफगानिस्तान का अमीर
अमीर अमानुल्ला खाँ	अफगानिस्तान का अमीर, अंग्रेजों द्वारा अपदस्थ
ए० हो० ह्यूम	निवृत्त नागरिक, कांग्रेस के संस्थापक
लोकमान्य तिलक	राष्ट्रवादी नेता, उग्र विचारों का समर्थक
लाला लाजपतराय	राष्ट्रवादी नेता, उग्र विचारों के समर्थक
गोपालकृष्ण गोखले	राष्ट्रवादी नेता, नरम विचारों के समर्थक
महात्मा गांधी	भारत के राष्ट्रपिता, देश के महान् सुधारक
जवाहरलाल नेहरू	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री
डा० राजेन्द्र प्रसाद	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रथम राष्ट्रपति
सरदार पेटल	राष्ट्रवादी नेता, भारत के लौह पुरुष

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

सुभाषचन्द्र बोस	राष्ट्रवादी नेता, आई० एन० ए० के निर्माता
सी० आर० दास	राष्ट्रवादी नेता, स्वराज्य दल के संस्थापक
मोतीलाल नेहरू	राष्ट्रवादी नेता, स्वराज्य दल के संस्थापक
मुहम्मद अली जिन्ना	मुस्लिम लीग के नेता तथा पाकिस्तान के निर्माता
रवीन्द्रनाथ ठाकुर	गीतांजली के रचयिता, महान् साहित्यकार
सी० राजगोपालाचार्य	राष्ट्रवादी नेता, भारत के प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल स्वतन्त्र पार्टी के संस्थापक
डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन	प्रमुख दार्शनिक, भारत के द्वितीय राष्ट्रपति
डा० जाकिर हुसैन	राष्ट्रवादी नेता, भारत के तृतीय राष्ट्रपति
गुलजारीलाल नन्दा	राष्ट्रवादी नेता, अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री
लालबहादुर शास्त्री	राष्ट्रवादी नेता, भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री
श्रीमति इन्दिरा गांधी	भारत की तृतीय प्रधानमन्त्री
मुरारजी देसाई	पुरानी कांग्रेस के नेता
विनोबा भावे	भूदान आन्दोलन
डा० वी० वी० गिरि	राष्ट्रवादी नेता, भारत के चतुर्थ राष्ट्रपति
श्री जगजीवन राम	नई कांग्रेस के अध्यक्ष, रक्षा मन्त्री
श्री निजलिगंप्पा	पुरानी कांग्रेस के अध्यक्ष
श्री वाई० बी० चव्हाण	वित्त मन्त्री

आधुनिक भारत की मुख्य स्मरणीय तिथियाँ

(१७०७ ई० से अब तक)

बाबर का जन्म	१४८३ ई०
वास्को-डि-गामा का कालीकट आना	१४९८ "
बाबर की काबुल-विजय	१५०४ "
अलमिडा का गवर्नर होना	१५०५ "
एलबुकर्क की गोआ-विजय	१५१० "
समरकन्द विजय	१५१० "
पानीपत का प्रथम युद्ध	१५२६ "
खनवा का युद्ध	१५२७ "
घाघरा का युद्ध	१५२९ "
बाबर की मृत्यु	१५३० "
हुमायूँ का राज्यसिंहासन पर आसीन होना	१५३० "
हुमायूँ का महमूद लोधी को परास्त करना	१५३१ "
चौसा का युद्ध	१५३९ "
कन्नौज का युद्ध	१५४० "
शेरशाह का राज्य सिंहासन पर आसीन हो-	१५४० "
अकबर का जन्म	१५४२ "
शेरशाह की मृत्यु	१५४५ "
हुमायूँ का सिकन्दर सूर को परास्त करना	१५५५ "
हुमायूँ की मृत्यु	१५५६ "
पानीपत का द्वितीय युद्ध	१५५६ "
बैराम खाँ का वध	१५६१ "
मालवा-विजय	१५६४ "
चित्तौड़-आक्रमण	१५६७ "
गुजरात-विजय	१५७२ "
बंगाल-विजय	१५७५ "
सिन्ध-विजय	१५९१ "
बिलोचिस्तान और कन्दहार की विजय	१५९४ "
राणा प्रताप की मृत्यु	१५९७ "
अंग्रेजी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का जन्म	१६०० "
असीरगढ़ विजय	१६०१ "

डच ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का जन्म	१६०१ ई०
अबुलफजल का बध	१६०२ ,,
अकबर की मृत्यु	१६०५ ,,
जहाँगीर का राज्यसिंहासन पर आसीन होना	१६०५ ,,
खुसरो का विद्रोह	१६०६ ,,
हाकिंस का मुगल दरबार में आना	१६०८ ,,
जहाँगीर का नूरजहाँ से विवाह	१६११ ,,
मेवाड़ की पराजय	१६१४ ,,
सर टॉमस रो का भारत में आना	१६१५ ,,
सर टॉमस रो का जहाँगीर के दरबार में आना	१६१५ ,,
खुर्रम (शाहजहाँ) का विद्रोह	१६२३ ,,
कन्दहार पर फारस का अधिकार	१६२३ ,,
जहाँगीर की मृत्यु	१६२६ ,,
शिवाजी का जन्म	१६२७ ,,
खुर्रम (शाहजहाँ) का राज्यसिंहासन पर आसीन होना	१६२७ ,,
खानेजहाँ लोधी का विद्रोह	१६३१ ,,
मुमताजमहल की मृत्यु	१६३१ ,,
अहमदनगर का साम्राज्य में विलय	१६३३ ,,
तोरना-विजय	१६४६ ,,
जिन्जी-विजय	१६५६ ,,
धरमत का युद्ध	१६५८ ,,
सामूगढ़ का युद्ध	१६५८ ,,
औरंगजेब का राज्यसिंहासन पर आसीन होना	१६५८ ,,
मीरजुमला की आसाम-विजय	१६६१ ,,
शिवाजी का सूरत पर आक्रमण	१६६४ ,,
फ्रांसीसी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की स्थापना	१६६४ ,,
शिवाजी का मुगल दरबार में जाना	१६६६ ,,
शाहजहाँ की मृत्यु	१६६६ ,,
सतनामियों का विद्रोह	१६७२ ,,
शिवाजी का राज्यभिषेक	१६७४ ,,
गुरु तेगबहादुर का विद्रोह	१६७५ ,,
शिवाजी की मृत्यु	१६८० ,,
बीजापुर का मुगल-साम्राज्य में मिलाया जाना	१६८६ ,,
गोलकुण्डा का मुगल-साम्राज्य में मिलाया जाना	१६८७ ,,
मुगलों की रायगढ़ विजय	१६८९ ,,

कम्पनी और मुगलों की सन्धि	१६९० ई०
राजाराम की मृत्यु	१७०० "
औरंगजेब की मृत्यु	१७०७ "
गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु	१७०८ "
हैदरअली का जन्म	१७२२ "
बाजीराव (प्रथम) का मालवा-अभियान	१७२४ "
नादिरशाह का भारत आक्रमण	१७३९ "
अलीवर्दी खाँ का बंगाल का गवर्नर होना	१७४१ "
डूप्ले का पाण्डेचेरी का शासक होना	१७४२ "
एलाशपल की सन्धि	१७४८ "
मुहम्मदशाह की मृत्यु	१७४८ "
डूप्ले का वापिस जाना	१७५४ "
अलीवर्दी खाँ की मृत्यु	१७५६ "
सिराजउद्दौला का बंगाल का गवर्नर होना	१७५६ "
प्लासी का युद्ध	१७५७ "
मीरजाफर का बंगाल का गवर्नर होना	१७५७ "
लैली का भारत आगमन	१६५८ "
क्लाइव का इङ्गलैण्ड लौटना	१७६० "
मीरकासिम का बंगाल का गवर्नर होना	१७६० "
वांडेवाश का युद्ध	१७६० "
पानीपत का तृतीय युद्ध	१७६१ "
पेरिस की सन्धि	१७६३ "
हैदरअली की बेदनूर-विजय	१७६३ "
बक्सर का युद्ध	१७६४ "
मीरजाफर की मृत्यु	१७६५ "
क्लाइव का दूसरी बार गवर्नर होना	१७६७ "
मद्रास पर हैदरअली का आक्रमण	१७६९ "
मरहठों का मैसूर पर आक्रमण	१७७१ "
वारेन हेंस्टिग्ज का बंगाल का गवर्नर होना	१७७२ "
बनारस की सन्धि	१७७३ "
रेग्यूलेटिंग एक्ट	१७७३ "
रुहेला-युद्ध	१७७३-७४ "
क्लाइव की मृत्यु	१७७४ "
पिट का इण्डिया एक्ट	१७७४ "
रणजीतसिंह का जन्म	१७८० "
मरहठों की पहली लड़ाई	१७७५—८२ "

सालबाई की सन्धि	१७८२ ई०
हैदरअली की मृत्यु	१७८२ "
बेदनूर पर टीपू का अधिकार	१७८३ "
बंगलौर की सन्धि	१७८४ "
मैसूर की दूसरी लड़ाई	१७८०–८४ "
वारेन हेस्टिंग्ज का वापस जाना	१७८५ "
खुर्दा का युद्ध	१७८५ "
मैसूर की तीसरी लड़ाई	१७९०—९२ "
बंगाल का स्थायी प्रबन्ध	१७९३ "
मैसूर का चौथा युद्ध	१७९९ "
नाना फड़नवीस की मृत्यु	१८०० "
कर्नाटक का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८०१ "
बेसिन की सन्धि	१८०२ "
देवगाँव और सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि	१८०५ "
लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु	१८०५ "
वैलोर का गदर	१८०६ "
अमृतसर की सन्धि	१८०९ "
गोरखों का प्रथम युद्ध	१८१४—१६ "
सिगौली की सन्धि	१८१६ "
पिंडारी युद्ध	१८१६—१८ "
ब्रह्मा का प्रथम युद्ध	१८२४—२६ "
भरतपुर का घेरा	१८२६ "
मैसूर के शासन-प्रबन्ध को हाथ में लेना	१८३१ "
रणजीतसिंह के साथ अंग्रेजों की सन्धि	१८३१ "
अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना	१८३५ "
समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता	१८३५ "
अंग्रेजों का कन्दहार और गजनी पर अधिकार	१८३९ "
रणजीतसिंह की मृत्यु	१८३९ "
काबुल से अंग्रेजी सेना की वापसी	१८४२ "
सिक्खों की पहली लड़ाई	१८४५—४६ "
सिक्खों की दूसरी लड़ाई	१८४८—४९ "
पंजाब का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८४९ "
सतारा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८४९ "
ब्रह्मा का दूसरा युद्ध	१८५२ "
नाना साहेब की पेंशन का बन्द होना	१८५३ "
सर चार्ल्स वुड की रिपोर्ट	१८५४ "

अवध का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८५६ ई०
प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम	१८५७ "
शेरअली का अमीर होना	१८६८ "
द्वितीय अफगान-युद्ध	१८७८ "
अब्दुर्रहमान का काबुल का अमीर होना	१८८१ "
कांग्रेस का जन्म	१८८५ "
उत्तरी ब्रह्मा का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना	१८८६ "
पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का निर्माण	१९०१ "
आगा खाँ का डेप्यूटेशन मुस्लिम लीग की स्थापना	१९०६ "
भारत सरकार अधिनियम	१९०९ "
रोलट बिल	१९१९ "
अफगान-युद्ध	१९२०—२१ "
स्वराज्य पार्टी की स्थापना	१९२३ "
नादिरखाँ का अमीर होना	१९२९ "
असहयोग आन्दोलन	१९३० "
साइमन कमिशन रिपोर्ट	१९३० "
भारत सरकार अधिनियम	१९३५ "
प्रान्तों में स्वायत-शासन	१९३७ "
वैविल सम्मेलन	१९४५ "
शिमला कान्फ्रेन्स	१९४५ "
लार्ड माउण्टबेटेन का गवर्नर-जनरल होना	१९४७ "
स्वाधीनता एक्ट	१९४७ "
महात्मा गांधी की मृत्यु	१९४८ "
हैदराबाद की पुलिस कार्यवाही	१९४८ "
लन्दन कान्फ्रेन्स	१९४९ "
डा० राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु	१९६२ "
जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु	१९६४ "
लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमन्त्री होना	१९६४ "
भारत-पाक युद्ध	१९६५ "
ताशकन्द समझौता	१९६६ "
लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु	१९६६ "
श्रीमति इन्द्रा गांधी का प्रधानमन्त्री होना	१९६६ "
श्रीमति इन्द्रा गांधी का पुनः प्रधानमंत्री होना	१९६७ "
श्री मोरारजी देसाई का उप-प्रधानमंत्री होना	१९६७ "
डा० जाकिर हुसैन का राष्ट्रपति होना	१९६७ "
डा० वी० वी० गिरि का राष्ट्रपति होना	१९६९ "

Indu gupta
12.9.93

IInd Paper

प्रथम खण्ड

(१५२६ से १७०७ तक)

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

१

जहीरउद्दीन बाबर (१५२६–१५३०)

मुगलों का संक्षिप्त परिचय

मुगल जाति तुर्क तथा मंगोल जातियों के सम्मिश्रण का परिणाम है। मंगोल पर्याप्त समय तक मध्य एशिया में शासन करते रहे और उनके पतन के उपरान्त तुर्कों के अधिकार में शासन-सत्ता आयी। इन दोनों जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध से मुगल जाति का उदय हुआ। बाबर का पिता तैमूर का वंशज था और उसकी माता चंगेज खाँ की वंशज थी। अतः **उसकी धमनियों में मध्य एशिया के प्रमुख व्यक्तियों के रक्त का सम्मिश्रण था।**[1] इतिहास में बाबर **चगताई तुर्क** के नाम से भी विख्यात है। इससे भी सिद्ध होता है कि यह जाति तुर्क और मंगोल जाति का सम्मिश्रण थी, क्योंकि चगताई चगेज खां के पुत्र का नाम था और उससे ही उनकी वंशावली का प्रारम्भ होता है।

16

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय भारत की राजनीतिक दशा उसी समान छिन्न-भिन्न तथा शोचनीय थी जिस प्रकार वह बाहरवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में थी, जब भारत पर गौर वंश के सुल्तान मुहम्मद गोरी ने आक्रमण किया था। इस समय भी भारत विभिन्न राज्यों में विभक्त था और उनमें पारस्परिक संघर्षों की बहुलता थी। यद्यपि लोधी वंश के शासकों ने उत्तरी भारत में एकछत्र शासन की स्थापना करने के लिए घोर प्रयत्न किया, किन्तु उनको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई और उनका राज्य दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों तक ही सीमित रहा।[2] उस समय भारत में निम्न प्रमुख राज्य थे—

(१) **दिल्ली का राज्य**—इस समय दिल्ली राज्य का स्वामी इब्राहीम लोधी था, जो १५१७ ई० में अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ था। उसका राज्य बहुत संकुचित था। उसमें दिल्ली, आगरा, दोआब तथा

---

[1] "He brought the energy of the Mughals, the courage and capacity of the Turks to the subjection of the listless Hindus and himself a soldier of fortune and no architect of empire, yet he laid the first stone of the splenidid fabric which his grandson Jalaluddin Mohammad Akbar completed"
—Lane-Poole.

[2] "A race of conquerors became a squabbling crowd, jostling with each other for the luxuries of thrones, but wanting the power to hold a sceptre...... The Empire of Delhi had disappeared. The greater provinces had their separate Kings, the smaller districts and even single cities and forts belonged to chiefs and clans who owed no higher lords. The King's writ was no more supreme, it was the day of little princes"
—Lane-Poole.

जौनपुर के कुछ प्रदेश ही सम्मिलित थे। वह एक अयोग्य शासक था। उसने अपनी मूर्खता तथा हठधर्मी के कारण अफगान अमीरों को अपना शत्रु बना लिया जो उसके स्थान पर स्वयं राज्य करने की बलवती इच्छा रखते थे। **यद्यपि उनके विद्रोह का दमन कर दिया गया, किन्तु अमीरों का पूर्ण रूप से पतन नहीं हो सका और उनमें से कुछ ने तो अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित** किया। इस प्रकार दिल्ली पर चारों ओर से अशान्ति तथा विद्रोह के बादल मंडरा रहे थे। **ईस्किन** (Erskine) के शब्दों में, "दिल्ली का लोधी राज्य कुछ थोड़ी-सी स्वतन्त्र रियासतों तथा प्रान्तों द्वारा निर्मित था, जिनका शासन-प्रबन्ध वंश परम्परागत सरदारों, जमींदारों तथा दिल्ली द्वारा भेजे गए प्रतिनिधियों के अधीन था। वहाँ की जनता सूबेदार को जो वहाँ का एकमात्र शासक था तथा जिसके हाथ में उन लोगों को सुखी रखना तथा दुःखी करना था, दिल्ली के शासकों से अधिक मानती थी, जो उनसे दूर था। व्यक्ति का शासन था और नियमों का कोई महत्व न था।"[1]

(२) **बंगाल**—बगाल में फीरोज तुगलक के समय ही स्वाधीनता घोषित कर दी गई थी। सिकन्दर लोधी ने बंगाल-विजय के लिए उस पर आक्रमण किया था। इसका कारण यह था कि बंगाल के शासक ने जौनपुर के हुसैन खाँ शर्की को जो सिकन्दर लोधी का शत्रु था, अपने राज्य में शरण दी थी। सिकन्दर और बंगाल के शासक में युद्ध हुआ, किन्तु निर्णायक युद्ध न होने के कारण से बाद में सन्धि हो गई और यह निश्चय हुआ कि सीमा पूर्वी बिहार तक रहेगी। **बाबर का समकालीन, बंगाल का शासक नुसरतशाह था जिसने बाबर से सन्धि कर ली थी।** वह एक योग्य शासक था और उसके समय में बंगाल राज्य में विशेष प्रगति हुई।

(३) **मालवा**—मेवाड़ की उन्नति के कारण मालवा मध्य-भारत का प्रमुख राज्य नहीं रह गया था। **बाबर का समकालीन मालवा का शासक महमूद द्वितीय था।** उसके शासन-काल में मेदनीराय का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और उसने उच्च पदों पर राजपूतों को नियुक्त किया, जिसके कारण मुसलमानों में असन्तोष उत्पन्न हो गया और उन्होंने गुजरात के शासक की सहायता से मेदनीराय के प्रभाव का अन्त किया, किन्तु उसने मेवाड़ के राणा सांगा की सहायता से अपना प्रभुत्व फिर जमाया। उसने महमूद द्वितीय को बन्दी किया, किन्तु बाद में उसने उदारतावश उसको मुक्त कर दिया। इससे भी मालवा की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा और वहाँ पारस्परिक कलह तथा संघर्ष होते रहे।

(४) गुजरात—सन् १४०१ ई० में मुजफ्फरशाह ने अपने आपको गुजरात का

---

[1] "The Lodi monarchy was a congeries of nearly independent principalities, jagirs and provinces, each ruled by a hereditary chief or by a zamindar or delegate from Delhi, and the inhabitants looked more to their immediate governors who had absolute power, in whose hands lay their happiness or misery than to a distant and little known sovereign, consequently, it was the day of litle princes." —Lane-Poole.

स्वतन्त्र शासक घोषित किया। **बाबर के आक्रमण के समय गुजरात पर मुजफ्फरशाह द्वितीय शासन कर रहा था।** उसकी मृत्यु के उपरान्त गुजरात राज्य की मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु जब उसके पुत्र बहादुरशाह ने अपनी शक्ति को संगठित किया और जब मेवाड़ का खनवा के युद्ध में पराजित होने से पतन होना आरम्भ हो गया तो गुजरात की गणना शक्तिशाली राज्यों में की जाने लगी।

(५) **मेवाड़**—मेवाड़ की गणना राजस्थान के प्रमुख राज्यों में की जाती थी। **जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय मेवाड़ पर प्रसिद्ध राणा सांगा शासन कर रहा था।** समस्त राजपूत उसके छत्र के नीचे थे। उसने मालवा और गुजरात के शासकों तथा इब्राहीम लोधी को कई युद्धों में परास्त किया था। उसका सैनिक-संगठन बहुत उच्च था। बाबर को उससे खनवा का युद्ध सन् १५२७ ई० में करना पड़ा जिसमें बाबर विजयी हुआ।

(६) **पंजाब**—पंजाब यद्यपि दिल्ली राज्य का भाग था, किन्तु केवल नाममात्र के लिए ही, क्योंकि वहाँ के सूबेदार दौलत खाँ लोधी और दिल्ली के शासक इब्राहीम लोधी में अनबन थी और वह दिल्ली पर अधिकार करने का स्वप्न देखा करता था। वह पंजाब में स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करता था। इब्राहीम अपनी अन्य कठिनाइयों में इतना अधिक ग्रस्त था कि वह पंजाब की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। दौलत खाँ को जब यह सूचना मिली कि इब्राहीम अपनी कठिनाइयों का समाधान कर उसकी ओर ध्यान देगा तो वह बड़ा भयभीत हुआ **और उसने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया।**

(७) **उड़ीसा**—यह एक हिन्दू राज्य था, किन्तु उत्तरी भारत की राजनीति से उसका कोई विशेष सम्पर्क नहीं था।

(८) **खानदेश**—खानदेश की स्थापना मलिक फारूकी ने की। इस राज्य का गुजरात से सदा संघर्ष रहा; क्योंकि गुजरात के शासक इस पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे। सन् १५०८ ई० में दाऊद की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ जिनमें से एक की सहायता गुजरात ने तथा दूसरे की सहायता अहमदनगर राज्यों ने की। इस युद्ध में गुजरात वाला पक्ष विजयी हुआ, उसका उम्मीदवार खानदेश के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। **दिल्ली से दूर होने के कारण दिल्ली की राजनीति में खानदेश का कोई प्रभाव नहीं था।**

(९) **बहमनी राज्य**—दक्षिण में बहमनी राज्य ने विशेष उन्नति की। कुछ समय पश्चात् यह राज्य पाँच भागों—(क) बरार, (ख) अहमदनगर, (ग) बीजापुर (घ) गोलकुण्डा तथा (ङ) बीदर—में विभक्त हो गया। ये भी दिल्ली की राजनीति से अलग ही रहे और उनका कार्य-क्षेत्र दक्षिण तथा मध्य-भारत तक ही सीमित था।

(१०) **विजयनगर राज्य**—यह दक्षिण का प्रमुख हिन्दू राज्य था। **बाबर का समकालीन शासक कृष्णदेव राय था जो विजयनगर के सम्राटों में सबसे योग्य तथा प्रभावशाली था।** इसके समय में विजयनगर राज्य ने विशेष उन्नति की।

उत्तरी भारत से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था और बहमनी वंश से इसका संघर्ष सदा चलता रहता था ।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन

बाबर का प्रारम्भिक जीवन
- (१) जन्म तथा शिक्षा ।
- (२) फरगना की रक्षा ।
- (३) समरकन्द-विजय ।
- (४) काबुल-की ओर ।
- (५) काबुल-विजय ।
- (६) समरकन्द की पुनः विजय ।
- (७) समरकन्द का हाथ से निकलना ।
- (८) बाबर का भारत-प्रवेश ।

(१) बाबर का जन्म तथा शिक्षा—बाबर का जन्म १४ फरवरी सन् १४८३ ई० को फरगन के शासक उमरशेख मिर्जा के घर हुआ था । उसकी माता चंगेज खाँ की वंशज थी, जबकि उसका पिता तैमूर का वंशज था । इस प्रकार वह मध्य एशिया के दो महान् विजेताओं तथा योद्धाओं का वंशज था और इसलिए कहा जाता है कि उसकी धमनियों में इन दो वंशों के रक्त का प्रवाह था । उसका परिवार चगताई तुर्कों के अन्तर्गत था । बाबर का पिता उमरशेख मिर्जा बड़ा महत्वाकांक्षी था । वह आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था, जिसके कारण उसका उनके साथ सदा मनमुटाव रहता था । **सन् १४९४ में समरकन्द और बुखारा के शासक अहमद मिर्जा और महमूद खाँ ने मिलकर फरगना को हस्तगत करने के अभिप्राय से आक्रमण किया ।** इसी समय जब वह कबूतरों की उड़ान का आनन्द भोग रहा था तो यकायक मकान की छत से गिर जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई और समस्त भार उसके अल्पवयस्क पुत्र बाबर के सिर पर आ गया, जिसकी इस समय **अवस्था केवल तेरह वर्ष** की ही थी । उमरशेख मिर्जा ने अपने पुत्र बाबर की शिक्षा की उचित व्यवस्था की थी । उसने बाल्यकाल में ही तुर्की तथा फारसी भाषा का अच्छा अध्ययन तथा अनुभव प्राप्त कर लिया था । उसको उच्च कोटि की सैनिक शिक्षा प्रदान की गई और शासन-व्यवस्था तथा कूटनीति का पर्याप्त ज्ञान उसको अपने पिता के समय में ही प्राप्त हो गया था ।

(२) फरगना की रक्षा—राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही बाबर ने शीघ्र ही फरगना की रक्षा करने की व्यवस्था की, जिस पर उसके पिता के समय में अहमद मिर्जा और महमूद मिर्जा खाँ ने आक्रमण कर दिया था । उसने अहमद मिर्जा से सन्धि का प्रस्ताव किया, किन्तु वह सन्धि करने को तैयार नहीं हुआ, तो भी कुछ विशेष कारणों से बाध्य होकर उसने (अहमद मिर्जा ने) फरगना-अभियान से वापिस जाने में ही अपना हित समझा । **बाबर ने डट कर महमूद का सामना किया और उसको वापिस जाने के लिए बाध्य किया ।** इस प्रकार वह फरगना की रक्षा करने में सफल हुआ । **वह शीघ्र ही अपने चरित्र तथा गुणों के कारण अपनी प्रजा तथा सेना में बड़ा लोकप्रिय हो गया ।**

(३) समरकन्द विजय—अपने पिता के समान बाबर बड़ा भी महत्वाकांक्षी था । वह फरगना के छोटे-से राज्य से सन्तुष्ट नहीं हुआ । **वह समरकन्द पर अधिकार**

करना चाहता था जो किसी समय मध्य एशिया के प्रसिद्ध विजेता तैमूर की राजधानी थी और उस समय वह मध्य एशिया का एक बड़ा उन्नत तथा समृद्धिशाली नगर था। उसके भाग्य से उसको समरकन्द पर अधिकार करने का अवसर भी शीघ्र ही प्राप्त हो गया। सन् १४९४ ई० में समरकन्द के शासक अहमद मिर्जा का देहान्त यकायक हो गया और उत्तराधिकार के प्रश्न पर उसके पुत्रों में गृह-युद्ध की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। इस परिस्थिति का लाभ उठाने के अभिप्राय से उसने १४९६ ई० में समरकन्द पर आक्रमण किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अगले वर्ष अर्थात् १४९७ ई० में उसने पुनः समरकन्द पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। इस प्रकार वह अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा की पूर्ति करने में सफल हुआ, किन्तु उसकी यह विजय अस्थायी सिद्ध हुई। अकस्मात् वह बीमार पड़ गया और उसके पैतृक राज्य फ़रगना में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। उसके पहुँचने के पूर्व ही विद्रोहियों ने फरगना पर अधिकार कर लिया था। फरगना से निराश होकर जब उसने समरकंद की ओर मुँह मोड़ा तो उसको ज्ञात हुआ कि वह भी उसके हाथ से निकल गया।

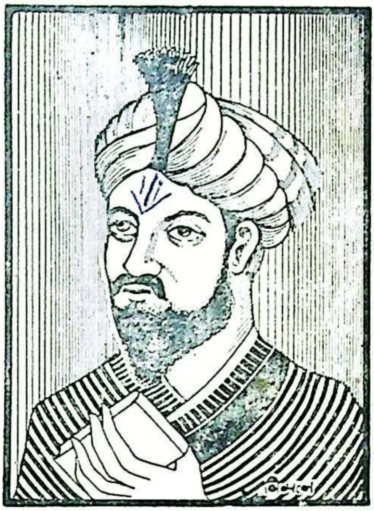
जहीरउद्दीन बाबर

(४) काबुल की ओर—समरकन्द और फरगना के हाथ से निकल जाने पर बाबर निराशित हो गया और उसके साथियों ने उसका साथ छोड़ दिया जैसा प्रायः होता है। सन्१४९८ ई० में विशेष प्रयत्न द्वारा उसने फरगना पर अधिकार किया, किन्तु १५०० ई० में फरगना उसके हाथ से फिर निकल गया और वह गृहहीन हो गया। इन विकट परिस्थियों से बाबर हतोत्साहित नहीं हुआ, अपितु इस बार उसने बड़े उत्साह तथा अदम्य साहस से समरकन्द पर आक्रमण किया जो इस समय उजबेग सरदार शैबानी ख़ाँ के अधीन था। उसने शैबानी ख़ाँ को परास्त कर समरकन्द पर अधिकार किया, किन्तु शैबानी ख़ाँ अपनी पराजय को नहीं भूला और बाबर से बदला लेने की चिन्ता में संलग्न हो गया। १५०२ ई० में वह शैबानी ख़ाँ द्वारा परास्त हुआ और उसको तीसरी बार पुनः जगह-जगह भटकने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस काल में उसको विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु वह निराश नहीं हुआ। समरकन्द की विजय को असाध्य समझकर उसने काबुल की ओर अपना ध्यान लगाया।

(५) काबुल विजय—काबुल पर अधिकार करने के उद्देश्य से बाबर ने सेना एकत्रित करनी आरम्भ की और सैनिक तैयारियाँ करने के उपरान्त उसने काबुल पर आक्रमण किया। बाबर विजयी हुआ और सन् १५०४ ई० में वह वहाँ के राज्य-

सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। सन् १५०७ ई० में उसने बादशाह की उपाधि से अपने आपको सुशोभित किया और अपनी सत्ता दृढ़ करने के कार्य में संलग्न हुआ।

(६) **समरकन्द की पुनः विजय**—काबुल में अपनी सत्ता को दृढ़ करने के उपरान्त बाबर ने समरकन्द को विजय करने की योजना निर्मित की। शैबानी खाँ के जीवित रहते हुए उसकी इस इच्छा का पूर्ण होना असम्भव था। बाबर के सौभाग्य से १५१० ई० में शैबानी खाँ फारस के शाह द्वारा परास्त हुआ और युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुआ। **उसने शीघ्र ही समरकन्द पर फारस के शाह की सहायता से आक्रमण किया और बाबर के अधिकार में बुखारा से खुरासान तक के प्रदेश आ गए।** विजय के परिणामस्वरूप उसके राज्य का विस्तार बढ़ गया, किन्तु यह अधिक काल तक स्थायी नहीं रहा।

(७) **समरकन्द का हाथ से निकलना**—उजबेगों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर उसे नव-विजित प्रदेश अर्थात् समरकन्द त्यागने के लिए बाध्य किया। अब बाबर के पास काबुल और बदख्शाँ ही शेष थे।

(८) **बाबर का भारत-प्रवेश**—मध्य एशिया की राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर बाबर इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि मध्य एशिया में उसको सफलता प्राप्त होनी असम्भव है, किन्तु बाबर जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति काबुल और बदख्शाँ के राज्यों से भी सन्तुष्ट होने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः उसने शीघ्र ही अपना ध्यान भारत-विजय की ओर आकर्षित किया और भारत-विजय के लिए विशेष तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दीं तथा उसके लिए उसने निश्चित योजना का **निर्माण किया। उसने भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से चार प्रारम्भिक आक्रमण किए।** बाबर तैमूर का वंशज होने के नाते पंजाब पर अपना पैतृक अधिकार समझता था उसने अपनी **आत्म-कथा (तुजके बाबरी)** में लिखा है कि "काबुल राज्य को हस्तगत करने के उपरान्त उसके हृदय तथा मस्तिष्क में भारत विजय की भावना बलवती हुई, परन्तु वह आन्तरिक कठिनाइयों के कारण उसको पूर्ण नहीं कर सका।"

(क) **बाबर का प्रथम आक्रमण**—१५१९ ई० में उसने भारत पर प्रथम आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसने उत्तरीपश्चिम सीमाप्रान्त में रहने वाली यूसुफजाई जातियों को परास्त किया जो बड़ी बलवान, शक्तिशाली तथा लड़ाकू जातियाँ थीं। इसके बाद उसने बंजोर की ओर प्रस्थान किया और बाद में झेलम नदी के समीप भेरा नामक स्थान की ओर प्रस्थान किया। भेरा उसके अधिकार में बिना किसी विरोध के आ गया। वहाँ से वह काबुल वापिस गया, किन्तु उसके वापिस चले जाने के बाद इस प्रदेश पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया और समस्त प्रदेश पूर्ववत् स्वतन्त्र हो गए।

(ख) **बाबर का दूसरा आक्रमण**—बाबर का दूसरा आक्रमण सन् १५१९ ई० के अन्त में हुआ, किन्तु मध्य एशिया की भीषण तथा अनिश्चित परिस्थिति के कारण उसको शीघ्र ही काबुल वापिस जाना पड़ा।

(ग) बाबर का तीसरा आक्रमण—१५२० ई० में बाबर ने भारत पर तीसरा आक्रमण किया। बैजोर, भेरा आदि की विजय करता हुआ वह स्यालकोट (पंजाब) पहुँचा। इस पर भी बाबर का अधिकार हो गया। इसके बाद उसने सैयदपुर की विजय की। कन्दहार के उपद्रव की सूचना प्राप्त होने पर वह शीघ्र काबुल वापिस चला गया।

(घ) बाबर का चौथा आक्रमण—१५२४ ई० में उसने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। इस समय उसको लोधी-वंश के दो विरोधी सरदारों—(i) **दौलत खाँ लोधी** तथा (ii) **आलम खाँ लोधी** ने भारत-आक्रमण के लिए निमन्त्रित किया था। बाबर ने इस अवसर का लाभ उठाने के अभिप्राय से शीघ्र ही पंजाब पर आक्रमण किया। बाबर का बिना किसी विरोध के लाहौर पर अधिकार हो गया। फिर उसने दीपालपुर की ओर प्रस्थान किया और उसको भी अपने अधीन किया। **दीपालपुर को अधिकृत करने में दौलत खाँ ने बाबर की सहायता इस आशा से की थी कि बाबर उसको पंजाब का प्रान्त दे देगा, किन्तु बाबर ने उसको जालन्धर और सुल्तानपुर के जिले ही दिए और शेष पंजाब पर अपना अधिकार रक्खा।** इससे दौलत खाँ को बड़ी निराशा हुई और उसने बाबर के साथ छल करने का षड्यन्त्र रचा, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाबर भारत में अपनी सेना का कुछ भाग छोड़कर काबुल वापिस चला गया।

बाबर की भारत-विजय यात्रा—अगले वर्ष सन् १५२५ ई० में बाबर विशेष तैयारी करने के उपरान्त भारत विजय के लिए चल पड़ा। उसके साथ १२,००० अश्वारोही तथा ७०० तोपें थीं। उसने दौलत खाँ का दर्प चूर्ण किया और आलम खाँ ने बाबर की शक्ति से भयभीत होकर आत्म-समर्पण किया। इस प्रकार सम्पूर्ण पंजाब पर उसका अधिकार स्थापित हो गया। पंजाब से निश्चित होकर उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। जब दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोधी को बाबर के मन्तव्य का ज्ञान हुआ तो वह भी अपनी सेना लेकर पंजाब की ओर बाबर का सामना करने के लिए चल पड़ा। बाबर के अनुसार इब्राहीम की सेना में एक लाख (१,०००००) व्यक्ति थे, किन्तु यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। उसकी युद्ध सेना ४० हजार से अधिक नहीं थी, जबकि बाबर की सेना में २० हजार व्यक्ति होंगे; क्योंकि कुछ सेना उसको पंजाब से अवश्य प्राप्त हुई होगी। यह मानना भ्रम होगा कि उसने केवल १२,००० सैनिकों से युद्ध कर इब्राहीम को पराजित किया। १२ अप्रैल सन् १५२६ ई० को दोनों सेनाएँ पानीपत के रण-क्षेत्र में एक दूसरे के सामने आकर डट गईं। बाबर ने इब्राहीम लोधी के विषय में लिखा है कि "वह अनुभव-शून्य नवयुवक था। उसकी सम्पूर्ण गतियाँ असावधानी से पूर्ण थीं। वह बिना किसी क्रम के कूँच कर देता था। बिना योजना के रुक जाता था या पीछे हट जाता था, बिना दूरदर्शिता के युद्ध करना आरम्भ कर देता था।"

पानीपत का युद्ध (१५२६ ई०) (२६८४)

२० अप्रैल की रात्रि को बाबर ने अपने चार-पाँच हजार सैनिकों को अफ़गान

सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। सन् १५०७ ई० में उसने बादशाह की उपाधि से अपने आपको सुशोभित किया और अपनी सत्ता दृढ़ करने के कार्य में संलग्न हुआ।

(६) **समरकन्द की पुनः विजय**—काबुल में अपनी सत्ता को दृढ़ करने के उपरान्त बाबर ने समरकन्द को विजय करने की योजना निर्मित की। शैबानी खाँ के जीवित रहते हुए उसकी इस इच्छा का पूर्ण होना असम्भव था। बाबर के सौभाग्य से १५१० ई० में शैबानी खाँ फारस के शाह द्वारा परास्त हुआ और युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुआ। **उसने शीघ्र ही समरकन्द पर फारस के शाह की सहायता से आक्रमण किया और बाबर के अधिकार में बुखारा से खुरासान तक के प्रदेश आ गए।** विजय के परिणामस्वरूप उसके राज्य का विस्तार बढ़ गया, किन्तु यह अधिक काल तक स्थायी नहीं रहा।

(७) **समरकन्द का हाथ से निकलना**—उजबेगों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर उसे नव-विजित प्रदेश अर्थात् समरकन्द त्यागने के लिए बाध्य किया। अब बाबर के पास काबुल और बदख्शाँ ही शेष थे।

(८) **बाबर का भारत-प्रवेश**—मध्य एशिया की राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर बाबर इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि मध्य एशिया में उसको सफलता प्राप्त होनी असम्भव है, किन्तु बाबर जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति काबुल और बदख्शाँ के राज्यों से भी सन्तुष्ट होने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः उसने शीघ्र ही अपना ध्यान भारत-विजय की ओर आकर्षित किया और भारत-विजय के लिए विशेष तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दीं तथा उसके लिए उसने निश्चित योजना का **निर्माण किया। उसने भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से चार प्रारम्भिक आक्रमण किए।** बाबर तैमूर का वंशज होने के नाते पंजाब पर अपना पैतृक अधिकार समझता था उसने अपनी **आत्म-कथा** (तुजके बाबरी) में लिखा है कि "काबुल राज्य को हस्तगत करने के उपरान्त उसके हृदय तथा मस्तिष्क में भारत विजय की भावना बलवती हुई, परन्तु वह आन्तरिक कठिनाइयों के कारण उसको पूर्ण नहीं कर सका।"

(क) बाबर का प्रथम आक्रमण—१५१९ ई० में उसने भारत पर प्रथम आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसने उत्तरीपश्चिम सीमाप्रान्त में रहने वाली यूसुफजाई जातियों को परास्त किया जो बड़ी बलवान, शक्तिशाली तथा लड़ाकू जातियाँ थीं। इसके बाद उसने बंजोर की ओर प्रस्थान किया और बाद में झेलम नदी के समीप भेरा नामक स्थान की ओर प्रस्थान किया। भेरा उसके अधिकार में बिना किसी विरोध के आ गया। वहाँ से वह काबुल वापिस गया, किन्तु उसके वापिस चले जाने के बाद इस प्रदेश पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया और समस्त प्रदेश पूर्ववत् स्वतन्त्र हो गए।

(ख) बाबर का दूसरा आक्रमण—बाबर का दूसरा आक्रमण सन् १५१९ ई० के अन्त में हुआ, किन्तु मध्य एशिया की भीषण तथा अनिश्चित परिस्थिति के कारण उसको शीघ्र ही काबुल वापिस जाना पड़ा।

(ग) बाबर का तीसरा आक्रमण—१५२० ई० में बाबर ने भारत पर तीसरा आक्रमण किया। बैजोर, भेरा आदि की विजय करता हुआ वह स्यालकोट (पंजाब) पहुँचा। इस पर भी बाबर का अधिकार हो गया। इसके बाद उसने सैयदपुर की विजय की। कन्दहार के उपद्रव की सूचना प्राप्त होने पर वह शीघ्र काबुल वापिस चला गया।

(घ) बाबर का चौथा आक्रमण—१५२४ ई० में उसने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। इस समय उसको लोधी-वंश के दो विरोधी सरदारों—(i) **दौलत खाँ लोधी तथा** (ii) **आलम खाँ लोधी** ने भारत-आक्रमण के लिए निमन्त्रित किया था। बाबर ने इस अवसर का लाभ उठाने के अभिप्राय से शीघ्र ही पंजाब पर आक्रमण किया। बाबर का बिना किसी विरोध के लाहौर पर अधिकार हो गया। फिर उसने दीपालपुर की ओर प्रस्थान किया और उसको भी अपने अधीन किया। **दीपालपुर को अधिकृत करने में दौलत खाँ ने बाबर की सहायता इस आशा से की थी कि बाबर उसको पंजाब का प्रान्त दे देगा, किन्तु बाबर ने उसको जालन्धर और सुल्तानपुर के जिले ही दिए और शेष पंजाब पर अपना अधिकार रक्खा।** इससे दौलत खाँ को बड़ी निराशा हुई और उसने बाबर के साथ छल करने का षड़यन्त्र रचा, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाबर भारत में अपनी सेना का कुछ भाग छोड़कर काबुल वापिस चला गया।

बाबर की भारत-विजय यात्रा—अगले वर्ष सन् १५२५ ई० में बाबर विशेष तैयारी करने के उपरान्त भारत विजय के लिए चल पड़ा। उसके साथ १२,००० अश्वारोही तथा ७०० तोपें थीं। उसने दौलत खाँ का दर्प चूर्ण किया और आलम खाँ ने बाबर की शक्ति से भयभीत होकर आत्म-समर्पण किया। इस प्रकार सम्पूर्ण पंजाब पर उसका अधिकार स्थापित हो गया। पंजाब से निश्चित होकर उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। जब दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोधी को बाबर के मन्तव्य का ज्ञान हुआ तो वह भी अपनी सेना लेकर पंजाब की ओर बाबर का सामना करने के लिए चल पड़ा। बाबर के अनुसार इब्राहीम की सेना में एक लाख (१,०००००) व्यक्ति थे, किन्तु यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। उसकी युद्ध सेना ४० हजार से अधिक नहीं थी, जबकि बाबर की सेना में २० हजार व्यक्ति होंगे; क्योंकि कुछ सेना उसको पंजाब से अवश्य प्राप्त हुई होगी। यह मानना भ्रम होगा कि उसने केवल १२,००० सैनिकों से युद्ध कर इब्राहीम को पराजित किया। १२ अप्रैल सन् १५२६ ई० को दोनों सेनाएँ पानीपत के रण-क्षेत्र में एक दूसरे के सामने आकर डट गईं। बाबर ने इब्राहीम लोधी के विषय में लिखा है कि "वह अनुभव-शून्य नवयुवक था। उसकी सम्पूर्ण गतियाँ असावधानी से पूर्ण थीं। वह बिना किसी क्रम के कूँच कर देता था। बिना योजना के रुक जाता था या पीछे हट जाता था, बिना दूरदर्शिता के युद्ध करना आरम्भ कर देता था।"

पानीपत का युद्ध (१५२६ ई०)

(२६८४)

२० अप्रैल की रात्रि को बाबर ने अपने चार-पाँच हजार सैनिकों को अफ़गान

८
२

शिविर पर आक्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। उन्होंने उसके आदेशानुसार शीघ्र ही आक्रमण किया। उधर अफ़गान भी सचेत थे और उन्होंने मुगलों को पीछे खदेड़ दिया। २१ अप्रैल को दोनों सेनाओं में प्रातःकाल से ही युद्ध आरम्भ हो गया। युद्ध बड़ा भीषण हुआ। **बाबर ने बड़ी योग्यता से अपनी सेना को व्यूह में खड़ा किया। अफ़गान सेना तोपों की मार न सह सकी और उसके पैर उखड़ गए।** इस अवसर पर बाबर ने दक्षिण तथा बाँई दिशाओं की सेनाओं को 'तुलुगमा' धावे मारने का आदेश दिया। उधर इब्राहीम ने मुगलों की बाँई ओर की सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि अफ़गान सेना चारों ओर से घिर गई। इस प्रकार शीघ्र ही घमसान युद्ध आरम्भ हो गया और दोनों सेनाओं के सभी दस्ते युद्ध में भाग लेने लगे। इसी समय बाबर ने अपने तोपचियों को अफ़गान सेना पर गोलों की वर्षा करने का आदेश दिया। इब्राहीम ने इन सब विपत्तियों का बड़े उत्साह तथा वीरता से सामना किया, किन्तु अन्त में वह रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ और अफ़गान सेना केवल आधे दिन के युद्ध में बुरी तरह परास्त हुई।[1]

युद्ध के परिणाम

(i) **निर्णायक युद्ध।**
(ii) **लोधियों की सत्ता का अन्त।**
(iii) **एक नवीन राजवंश की स्थापना।**
(iv) **अफ़गानों में नया उत्साह।**
(v) **लौकिक राज्य की स्थापना।**

युद्ध के परिणाम - यह युद्ध बड़ा महत्वपूर्ण था। इसके मुख्य परिणाम इस प्रकार थे – (i) **निर्णायक युद्ध**—यह युद्ध पूर्ण निर्णायक सिद्ध हुआ। लोधियों की पूर्णतया पराजय हुई और उनके कम से कम २० हजार सैनिकों की युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु हुई। (ii) **लोधियों की सत्ता का अन्त**—भारत में लोधियों की सत्ता का सर्वदा के लिए अन्त हो गया।[2] (iii) **एक नवीन राजवंश की स्थापना**—भारत में एक नए राजवंश की स्थापना हुई, जिसने लगभग २०० वर्षों तक भारत पर शासन किया और जिनके शासन-काल में भारत की पंचमुखी उन्नति हुई तथा भारत में राष्ट्रीयता की भावना का उदय हुआ। (iv) **अफ़गानों में नया उत्साह—अफ़गानों की इस पराजय ने उनकी आँखें खोल दीं** और उनमें नए रक्त, साहस तथा उल्लास का संचार हुआ। इसी के कारण शेरशाह अफ़गान जाति को मुगलों के विरुद्ध संगठित करने में सफल हुआ। (v) **लौकिक राज्य की स्थापना**—मुगलों ने भारत में लौकिक राज्य की स्थापना की। मुगलों में धर्मान्धिता का सर्वथा अभाव था। उन्होंने राजनीति को धर्म से पृथक कर दिया।

---

[1] "By the grace and mercy of Almighty God this difficult affair was made easy to me and that mighty army in the space of half a day, was laid in the dust."
—**Tuzak-i-Babari.**

[2] "To the Afghans of Delhi, the battle of Punjab was their canaible (rabble), it was ruin of their dominion and the end of their power."
—**Lane-Poole.**

इस विजय के परिणामस्वरूप बाबर के हाथ में सम्पूर्ण जाव आ गया और उसने शीघ्र ही दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार किया। **रशब्रुक विलियम्स** (Rushbrook williams) के अनुसार, "इस युद्ध में विजयी होने पर बाबर के दुर्दिनों का अन्त हो गया उसको अब अपने प्राणों तथा सिंहासन की सुरक्षा के लिए चिन्ताग्रस्त होने की आवश्यकता नहीं रही। उसको तो अब अपनी असीम शक्ति तथा प्रतिभा का प्रयोग अपने राज्यविस्तार के लिए करना पड़ा।

बाबर की सफलता के कारण

(१८८५)

यह नितान्त सत्य है कि बाबार को पानीपत के युद्ध में बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई जिसके बहुत-से कारण थे जिनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **इब्राहीम का अमीरों के साथ दुर्व्यवहार**—इब्राहीम लोधी का व्यवहार अमीरों तथा सैनिकों के साथ अच्छा नहीं था जिसके कारण वे उसके शत्रु हो गए और उसके शासन का अन्त करने के कुचक्र रचने लगे। इतना ही नहीं, वरन् उन्होंने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण भी दिया। इब्राहीम को अकेले ही बाबर की सेना का सामना करना पड़ा। जनता भी उससे प्रसन्न नहीं थी। इब्राहीम को उसका भी सहयोग प्राप्त नहीं हुआ।

(२) **इब्राहीम की नव-प्रशिक्षत (नौसिखी) सेना**—इब्राहीम की सेना मुगलों की सेना की अपेक्षा बहुत कम सुसज्जित तथा सुसंगठित थी। अफ़गान सेना में अधिकांश नौसिखिए सैनिक थे जो बाबर के अनुभवी सैनिकों का सामना नहीं कर सकते थे। इसके अतिरिक्त अफ़गान सेना में न धार्मिक और न राष्ट्रीय उत्साह था जबकि मुगलों में उत्साह था और वे अपने नेता बाबर के व्यवहार तथा चरित्रबल से बड़े प्रभावित थे।

बाबर की सफलता के कारण

(१) **इब्राहीम का अमीरों से दुर्व्यवहार।**
(२) **इब्राहीम की नव-प्रशिक्षित (नौसिखी) सेना।**
(३) **इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता।**
(४) **बाबर के पास तोपखाने का होना।**
(५) **भारत में एकता का अभाव।**

(३) **इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता**—बाबर तथा इब्राहीम लोधी के सैनिक गुणों में आकाश-पाताल का अन्तर था। बाबर को युद्ध तथा सैनिक कार्यों का इब्राहीम की अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव था। इब्राहीम अपनी सेना की उचित व्यूह में रचना करने के वैज्ञानिक ढङ्ग से बिल्कुल परिचित नहीं था। बाबर ने उसकी सेना को व्यूह-रचना में फंसा लिया।

(४) **बाबर के पास तोपखाने का होना**—बाबर के पास तोपखाना था जब कि इब्राहीम के पास इसका सर्वथा अभाव था। बाबर के पास बन्दूकें भी थीं। इनकी मार अफ़गान सेना सहन न कर सकी और वह शीघ्र ही तितर-बितर हो गई। इब्राहीम की युद्ध-प्रणाली पूर्णतया प्राचीन थी जिसमें पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गए थे। अन्त में बाबर ने 'तुलुगमा' रणनीति का प्रयोग किया और उसके कारण उसको शीघ्र ही सफलता प्राप्त हुई।

४
२

(५) **भारत में एकता का अभाव**—भारत में एकता का सर्वथा अभाव था। समस्त भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। समस्त राज्यों के अपने निजी हित तथा स्वार्थ थे। उन्होंने सम्मिलित रूप से कार्य नहीं किया।

बाबर तथा राजपूत

पानीपत के रणक्षेत्र में विजयी होने के उपरान्त बाबर ने अपनी सेना का एक भाग आगरे तथा दूसरा भाग दिल्ली पर अधिकार करने के लिए भेजा। दोनों भागों को अपने उद्देश्य तथा कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इसके उपरान्त बाबर ने दिल्ली में प्रवेश किया। यहाँ से वह आगरा गया और इब्राहीम लोधी के महल में निवास करने लगा। यद्यपि भारत के कुछ भागों पर उसका अधिकार स्थापित हो गया था, किन्तु अभी उसको राजपूतों की सैनिक शक्ति का सामना करना शेष था जिसका दृढ़ संगठन राणा सांगा ने बड़ी योग्यता तथा तत्परता से किया था।[1] पुस्तक के प्रथम भाग में उसकी विजयों आदि का सविस्तार वर्णन किया जा चुका है। यहाँ तो केवल इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि **उसकी शक्ति बहुत अधिक थी और राजपूताने के अधिकांश राजा उसको अपना स्वामी स्वीकार करते थे।** उसकी सत्ता का अन्त किए बिना बाबर की पानीपत-विजय का कोई महत्व नहीं था। इधर राणा सांगा की यह धारणा थी कि बाबर दिल्ली और आगरे की लूट-मार कर स्वदेश वापिस चला जाएगा और फिर उसको स्वयं दिल्ली पर अधिकार करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त होगा, किन्तु जब राणा सांगा ने यह अनुभव किया कि वह भारत में स्थायी रूप से राज्य की स्थापना करना चाहता है, तो दोनों के मध्य एक निर्णायक युद्ध होना अवश्यम्भावी हो गया।

युद्ध की तैयारियाँ—बाबर और राणा सांगा ने एक दूसरे पर विश्वासघात का आरोप लगाया। इसी समय राणा सांगा ने बियाना के शासक नियाम खाँ पर आक्रमण किया। नियाम खाँ ने राणा सांगा की सुसज्जित सेना का सामना करने में अपने को असमर्थ पाया। उसने बाबर से सहायता की प्रार्थना की। बाबर ने उसकी सहायता के लिए एक सेना भेजी, जिसने बियाना पर नियाम खाँ का अधिकार सुरक्षित रक्खा। राणा सांगा इसे सहन न कर सका। उसने शीघ्र ही बियाना पर आक्रमण किया और उसको अपने अधिकार में कर लिया। मुगलों ने राजपूतों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की। इस समय संयोग से हसन खाँ मेवाती राणा सांगा से मिल गया था जिसके पुत्र को बाबर ने पानीपत के युद्ध में बन्दी कर लिया था। बाद में उसको अपनी ओर मिलाने के अभिप्राय से बाबर ने उसके पुत्र को मुक्त कर दिया था, किन्तु इसका हसन खाँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। **परिस्थिति से बाध्य होकर बाबर भी**

---

[1] "But he (Babar) had now to meet warriors of a high type than any he had encountered. The Rajputs, energetic, chivalrous, fond of battle and bloodshed, animated by a strong national spirit were ready to meet face to face, the boldest veterans of the camp, and were at all times prepared to lay down their life for their honour.

—Lane-Poole.

अपनी सेना लेकर राणा सांगा तथा हसन खाँ मेवाती की सम्मिलित सेनाओं का सामना करने के लिए चल पड़ा। उसने सीकरी में पड़ाव डाला। राणा ने भी उसी ओर प्रस्थान किया और युद्ध की तैयारी में संलग्न हो गया। राजपूतों की एक सेना ने मुगलों पर आक्रमण किया जिसमें उसको सफलता प्राप्त हुई। इसी समय काबुल से एक ज्योतिषी आया जिसकी भविष्यवाणी ने मुगल सेना को हतोत्साहित कर दिया, किन्तु बाबर पर उनका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने अपने सैनिकों में धार्मिक तथा अर्थ-लाभ का उत्साह भरने का प्रयत्न किया। उसने स्वयं मद्यपान करने की शपथ ली और मद्यपान करने के बहुमूल्य पात्रों को तुड़वाकर दीन-दुखियों में वितरण करवाया। उसने अपनी सेना को एकत्रित कर एक बड़ा ओजस्वी भाषण दिया जिसका सैनिकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। भाषण यद्यपि संक्षिप्त था, किन्तु वास्तव में था मार्मिक। वह इस प्रकार है —

"अमीरों तथा सैनिकों! जो व्यक्ति इस संसार में आता है उसका अन्त निश्चय ही होगा। हम सबकी मृत्यु होगी और केवल एक खुदा ही शेष रहेगा। जो व्यक्ति जीवन का आनन्द लेते हैं उनको मृत्यु से भयभीत नहीं होना चाहिए। जो इस सराय रूपी संसार में आया है उसको इस दुःख रूपी संसार में एक न एक दिन अवश्य प्रस्थान करना होगा। इसलिए गौरव के साथ मृत्यु का आलिंगन करना अपमान के साथ जीवित रहने से कहीं हितकर है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी मृत्यु सम्मान के साथ हो। मुझे गौरव प्राप्त हो। शरीर तो नश्वर है। खुदा का शुक्र है कि यदि इस युद्ध में हम लोग मृत्यु को प्राप्त होंगे तो हम शहीद कहलायेंगे और यदि जीवित रहेंगे तो इस संसार का उपभोग करेंगे। आइए, हम सब कुरान शरीफ की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करें कि उस समय तक युद्ध करते रहेंगे जिस समय तक हमारे शरीर में प्राण हैं।"

इस भाषण का मुगल सेना पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और उसमें नवीन साहस का तथा उत्साह का संचार हुआ। फिर तो बाबर ने बड़े उत्साह के साथ युद्ध की तैयारियां करनी आरम्भ कीं। उसके साथ-साथ उसने कुछ भारतीय राजाओं को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह अपनी इस कार्य-सिद्धि में सफल नहीं हो सका। इस युद्ध में राणा सांगा की ओर से मुसलमानों ने भी युद्ध किया। इसी कारण इसको राष्ट्रीय युद्ध भी कहा जाता है।

16

खनवा का युद्ध (१५२७)—बाबर और राणा सांगा के मध्य युद्ध खनवा नामक स्थान पर हुआ है। बाबर ने पानीपत के समान अपनी सेना की व्यूह रचना की और समस्त सेना को तीन भागों में विभाजित किया। उसने अपनी सेना के आगे जंजीरों से जकड़ी हुई गाड़ियों तथा तिपाइयों की आड़ में तोप तथा बन्दूक चलाने वाले रक्खे। १७ मार्च १५२७ ई० को यह निर्णायक युद्ध बड़ी भीषणता से आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में राजपूतों को विजय प्राप्त हुई और वे मुगलों को पीछे हटाने में सफल हुए, किन्तु इसी समय सहायता आ पहुँचने से मुगलों का साहस बढ़ गया और उन्होंने राजपूतों को पीछे धकेल दिया। मुगलों ने राजपूतों के बाँऐ पक्ष पर आक्रमण किया।

४
२

राजपूत इस आक्रमण को सहन न कर सके। **'तुलुगमा'** ने पीछे से राजपूतों पर प्रहार किया। राजपूत तोप की मार सहन न कर सके और अन्त में बाबर की पूर्ण विजय हुई जो अपनी विजय से पूर्णतः निराश हो चुका था।

खनवा के युद्ध का परिणाम—यह युद्ध बड़ा भीषण था और किसी भी दल की विजय निश्चित नहीं थी। **डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, 'शायद ही कोई दूसरा ऐसा घमासान युद्ध हुआ हो, जिसका निर्णय अन्त समय तक तुला में अटका रहा।'[1] **यह युद्ध भी पानीपत के समान निर्णायक हुआ।**[2] राणा सांगा और उसके अफ़गान साथियों की पराजय हुई। राणा सांगा को अपनी जान की सुरक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। **इस पराजय से राजपूतों की सैन्य-शक्ति तथा प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा** और पर्याप्त समय के लिए उनकी सैनिक शक्ति क्षीण हो गई, किन्तु उनकी शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं हो सका।[3] बाबर यद्यपि विजयी हुआ, किन्तु उसको राजपूतों की वीरता तथा साहस के कारण राजपूताने को अपने अधिकार में करने का साहस नहीं हुआ। उसने १५२८ ई० में केवल चन्देरी दुर्ग की विजय की, और उसी से उसको सन्तोष करना पड़ा। वहाँ के राजपूतों ने भी मुगल सेना का बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह साथ के सामना किया।

राजपूतों की पराजय के कारण—राजपूतों में यद्यपि साहस और पौरुष का अभाव नहीं था, तथा उन्होंने युद्ध में बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह का परिचय दिया, किन्तु वे युद्ध में मुगलों की सेना से पूर्णरूपेण परास्त हुए। उनकी पराज्य के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(१) बाबर का सैनिक संगठन—बाबर की राजपूतों पर विजय होने का सबसे प्रमुख कारण बाबर का सैनिक संगठन था। (i) यद्यपि बाबर की सेना बहुत सुसंगठित तथा सुसज्जित थी। (ii) बाबर ने तोपों तथा बन्दूकों का प्रयोग किया जिनका राजपूतों के पास अभाव था। (iii) इसके अतिरिक्त राजपूत बन्दूक तथा तोपों की मार सहन न कर सके। (iv) बाबर ने 'तुलुगमा' नीति का प्रयोग किया जिसने राजपूतों की सेना को चारों ओर से घेर लिया। (v) यद्यपि बाबर की सेना राजपूतों तथा अफगानों की सम्मिलित सेना की अपेक्षा बहुत छोटी थी, और राजपूतों की सेना विभिन्न सरदारों तथा सामन्तों की सम्मिलित सेना थी, फिर भी उसमें सगठन तथा एकता का सर्वथा अभाव था। (vi) मुगल सेना की गति बड़ी तेज थी, जबकि राजपूतों की सेना में यह अभाव था। (vii) राजपूतों की सेना विशाल होने के कारण थोड़ी-सी अव्यवस्था के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही तितर-बितर हो जाती थी।

(२) बाबर का व्यक्तित्व तथा सैन्य संचालन का अभाव—बाबर का

---

[1] "Hardly was any other battle so stubbornly contested with its issue hanging in the balance till almost its very end."
—**Dr. Shrivastava.**

[2] "Kanwaha is one of the most decivsive battle in the history of India."
—**Rushbrook Williams.**

[3] "The menace of Rajput supremacy which had loomed large before the eyes of the Mohammadans in India for the last ten years, was removed once for all."

व्यक्तित्व बहुत उच्च कोटि का था। उसका अपनी सेना से सीधा सम्पर्क था। उसकी सेना का उस पर पूर्ण विश्वास था, वह उसके लिए सदा सब कुछ करने को उद्यत रहती थी। राजपूत सेना में इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्पर्क का सर्वत्र अभाव था। बाबर को सैन्य-संचालन का बड़ा अनुभव था। यद्यपि राणा सांगा भी बहुत-से युद्धों में भाग ले चुका था, किन्तु उसका अनुभव बाबर से कम था।

(३) **सेना में धार्मिक उत्साह**—मुगलों में धार्मिक उत्साह पर्याप्त था और उस उत्साह की वृद्धि करने में बाबर के ओजस्वी भाषण ने बड़ा योग प्रदान किया था। राजपूतों में इस प्रकार के उत्साह का बिल्कुल अभाव था और वे युद्धों से तंग आ गए थे, क्योंकि उनको राणा सांगाके नेतृत्व में विभिन्न युद्धों में भाग लेना पड़ा था, जिनसे उनको विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ था।

राजपूतों की पराजय के कारण

(१) बाबर का सैनिक संगठन।
(२) बाबर का व्यक्तित्व तथा सैन्य-संचालन का अनुभव।
(३) मुगल सेना में धार्मिक उत्साह।
(४) बाबर को अवकाश प्राप्ति।
(५) सलादी का विश्वासघात।

(४) **बाबर को अवकाश प्राप्ति**—बाबर को अपनी सैनिक तैयारियों तथा व्यूह रचना के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो गया था जिसका उसने पूर्णरूपेण सदुपयोग किया। उसने बहुत दृढ़ मोर्चाबन्दी की थी जिसका टूटना असम्भव था। यदि युद्ध कुछ समय पूर्व आरम्भ हो गया होता और बाबर को व्यूह-रचना का अवकाश प्राप्त नहीं होता तो सम्भव ही नहीं, पूर्ण आशा थी कि युद्ध में उसकी पराजय होती और राजपूत विजयी होते और भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

(५) **सलादी का विश्वासघात**—राजपूतों के अनुसार राणा सांगा की पराजय का कारण सलादी का विश्वासघात था जिसने महत्वपूर्ण अवसर पर राणा सांगा का साथ त्याग कर बाबर की ओर से युद्ध किया।

बाबर और अफ़गान

घाघरा का युद्ध (१५२९ ई०)—पानीपत के युद्ध ने अफ़गानों की सत्ता का दिल्ली, पंजाब आदि प्रदेशों से अन्त कर दिया था, किन्तु इन्होंने भारत के पूर्वी प्रदेशों में शक्ति को संगठित करना प्रारम्भ किया। वे बाबर की सत्ता का अन्त करने के अन्तिम प्रयास में संलग्न हुए। महमूद लोधी ने बिहार को अपने अधिकार में किया और वह दोआब के मुगल प्रदेशों को अपने अधिकार में करने के लिए प्रयत्न करने लगा। उसने कन्नौज पर अधिकार कर मुगल सेना को वहाँ से भागने के लिए बाध्य किया। बाबर उसे सहन नहीं कर सका और उसने तुरन्त अपनी सेना को लेकर २ फरवरी १५२८ को उस ओर प्रस्थान किया। उसने युद्ध में अफ़गानों को परास्त किया। वर्षा ऋतु के आरम्भ होने पर वह वापिस लौट आया। कुछ समय उपरान्त उसको समाचार मिला कि अफ़गानों ने अपनी शक्ति को पुनः संगठित कर लिया है। अब की बार उसने उनका पूर्णरूपेण दमन करने

का निश्चय किया और वह विशाल सेना लेकर चल पड़ा। उन्होंने (अफ़गानों ने) चुनार का घेरा डाला, किन्तु बाबर के आगमन का समाचार ज्ञात होने पर वे बंगाल की ओर भाग गए। बाबर उनका पीछा करता हुआ बंगाल की ओर बढ़ा और उसने घाघरा के युद्ध में ६ मई १५२९ ई० को बंगाल के शासक नसरत शाह को बुरी तरह परास्त किया। इस पराजय के कारण अफ़गानों की शेष आशा भी समाप्त हो गई और उनकी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। नसरत शाह ने बाबर के साथ एक सन्धि की जिसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे की राजसत्ता स्वीकार की और विद्रोहियों को शरण न देना स्वीकार किया। इस सन्धि के सम्पन्न होने पर बाबर वापिस लौट आया।

बाबर की विजय के कारण

(१) इब्राहीम लोधी का दुर्व्यवहार।
(२) इब्राहीम की नौसखी सेना।
(३) इब्राहीम की अनुभवहीनता।
(४) बाबर के पास तोपखाने का होना।
(५) युद्ध-प्रणाली में अन्तर।
(६) बाबर द्वारा तुलुगमा नीति का प्रयोग।
(७) बाबर का व्यक्तित्व।
(८) अफ़गानों में उत्साह की कमी।
(९) भारतीयों में उत्साह का अभाव।
(१०) बाबर को अवकाश प्राप्ति।

बाबर की विजय के कारण—बाबर को भारत-विजय के लिए तीन युद्ध करने पड़े। प्रथम युद्ध उसके और इब्राहीम लोधी के बीच पानीपत के रणक्षेत्र में १५२६ ई० में हुआ, द्वितीय युद्ध उसके और राणा सांगा के बीच खनवा नामक स्थान पर १५२७ ई० में हुआ, तृतीय युद्ध उसके और अफगानों के बीच घाघरा नामक स्थान पर सन् १५२९ ई० में हुआ। इन तीनों युद्धों में उसको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उसके कारण निम्नलिखित थे—

(१) इब्राहीम लोधी का दुर्व्यवहार—इब्राहीम लोधी ने अपने सरदारों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया जिसके कारण वे उसके विरोधी हो गए और उसके शासन का अन्त करने के लिए षड़यन्त्र रचने लगे। जब वे उसमें सफल नहीं हुए तो उन्होंने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया।

(२) इब्राहीम की नौसिखी सेना—इब्राहीम को यद्यपि युद्धों का पर्याप्त अनुभव था, किन्तु वह एक योग्य तथा कुशल सेनापति नहीं था। उसको बाबर के समान युद्ध का ज्ञान नहीं था। उसकी सेना दृढ़ तथा सुसंगठित नहीं थी; जबकि इसके विपरीत बाबर की सेना पर्याप्त दृढ़ तथा सुसंगठित थी और उसको युद्धों का बहुत अधिक अनुभव प्राप्त था। इब्राहीम की सेना नौसिखी थी और उसमें धार्मिक व राष्ट्रीय उत्साह का लेशमात्र भी अंश नहीं था, जब कि बाबर की सेना में ये दोनों भावनाएँ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थीं।

(३) इब्राहीम की सैनिक अनुभवहीनता—बाबर तथा इब्राहीम लोधी के सैनिक गुणों में आकाश-पाताल का अन्तर था। बाबर को युद्ध तथा सैनिक कार्यों का इब्राहीम की अपेक्षा बहुत अधिक अनुभव था। इब्राहीम अपनी सेना का संगठन

युद्ध-क्षेत्र में उचित रूप से नहीं कर सका। इसके विपरीत बाबर ने व्यूह की रचना कर इब्राहीम की सेना को उसके अन्दर फंसा लिया।

(४) बाबर के पास तोपखाना का होना—बाबर के पास तोपखाना था और भारतीयों के पास इसका सर्वथा अभाव था। बाबर के पास बन्दूकें थीं जिनका दूर से प्रयोग किया जा सकता था। इनकी मार भारतीय सैनिक सहन नहीं कर सके और उनकी सेना शीघ्र ही तितर-बितर हो गई।

(५) युद्ध-प्रणाली में अन्तर—भारतीयों की युद्ध-प्रणाली पूर्णतया प्राचीन थी। यह बहुत अधिक दोषपूर्ण थी। भारतीय हाथियों पर अधिक विश्वास करते थे किन्तु वे तोपखाने और बन्दूकों की मार व आवाज से भयभीत होकर अपनी ही सेना का विध्वंस करने लगते थे। राजपूत आमने-सामने के युद्ध को अच्छा समझते थे और उसकी ही उनको जानकारी थी।

(६) बाबर द्वारा तुलुगमा नीति का प्रयोग—बाबर ने युद्ध में तुलुगमा नीति का प्रयोग किया। उसकी विजय का यह एक बहुत बड़ा कारण था।

(७) बाबर का व्यक्तित्व—बाबर का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह अपने सैनिकों तथा पदाधिकारियों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था। वे उसके लिए अपने प्राणों तक को भी बलिदान करने से नहीं हिचकते थे। बाबर स्वयं बड़ा साहसी तथा वीर था। उसको युद्ध से प्रेम हो गया था और भयंकर परिस्थिति के उत्पन्न होने पर भी वह कभी नहीं घबराता था, वरन् वह उसका वीरता तथा अदम्य उत्साह से सामना करने को उद्यत रहता था।

(८) अफगानों में उत्साह की कमी—अफगानों में उत्साह की कमी पानीपत की पराजय के कारण बहुत अधिक हो गई थी। इसी कारण बाबर घाघरा के युद्ध में सरलतापूर्ण विजय प्राप्त करने में सफल हो सका।

(९) भारतीयों में एकता का अभाव—भारत की राजनीतिक स्थिति के कारण भारतीयों को एक दूसरे पर विश्वास नहीं था। सलादी ने राणा सांगा के साथ विश्वासघात किया।

(१०) बाबर को अवकाश प्राप्ति—बाबर को अपनी तैयारियों तथा व्यूह-रचना के लिए खनवा के युद्ध से पूर्व पर्याप्त समय प्राप्त हुआ जिसका उसने सदुपयोग किया। यदि युद्ध कुछ समय पूर्व आरम्भ हो गया होता तो बाबर को सफलता प्राप्त होनी कठिन थी।

बाबर की मृत्यु—अकथनीय परिश्रम करने के कारण बाबर का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होने लगा। बाबर के प्रधानमन्त्री ने उसके पुत्र हुमायूँ के स्थान पर बाबर के बहनोई मुहम्मद मेंहदी ख्वाजा को राज्यसिंहासन पर आसीन करने का षड्यन्त्र रचा। इस समय हुमायूँ बदख्शाँ में था। जब हुमायूँ को यह समाचार प्राप्त हुआ तो वह शीघ्र ही आगरे की ओर चल पड़ा। उसके आते ही षड्यन्त्रकारियों का हृदय टूट गया और इसके साथ-साथ उनके षड्यन्त्र का भी अन्त हो गया। इधर से निश्चित होकर हुमायूँ अपनी जागीर सम्भल की देख-रेख के लिए चला

गया। इसी समय १५३० ई० के ग्रीष्मकाल में हुमायूँ बहुत बीमार पड़ा। जब कुछ उपचार करने के उपरान्त भी उसके स्वास्थ्य में कोई उन्नति नहीं हुई और उसकी बीमारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई इसी समय बाबर को एक ज्योतिषी ने बतलाया कि हुमायूँ केवल उस समय ठीक हो सकता है जब बाबर अपनी कोई अमूल्य वस्तु दान करे। बाबर ने विचार किया कि उसके पास सबसे मूल्यवान वस्तु उसका अपना जीवन है। अतः उसने निश्चय किया कि हुमायूँ की रक्षा के लिए वह अपने प्राणों का बलिदान करेगा। ऐसा संकल्प कर उसने हुमायूँ के पलंग के तीन चक्कर लगाए और ईश्वर से प्रार्थना की कि हुमायूँ शीघ्र स्वस्थ हो जाए। ऐसा कहा जाता है कि उसी समय से हुमायूँ अच्छा होने लगा और बाबर ने रोग-शैय्या पकड़ ली। २३ दिसम्बर १५३० ई० को वह वीर सेनानी तथा मुगल साम्राज्य का संस्थापक मृत्यु का ग्रास बन गया।[1]

बाबर का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन—सभी इतिहासकारों ने बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। वास्तव में उसकी प्रशंसा में सत्य का बहुत बड़ा स्थान है।

राशब्रुक विलियन (Rushbrook Williams) के अनुसार, 'बाबर दृढ़ तथा उच्च निर्णय करने वाला महत्वाकांक्षी', विजय प्राप्त करने की कला का ज्ञाता शासन की कला से परिचित, जनता का शुभचिन्तक, सिपाहियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाला तथा न्यायप्रिय शासक था।'[2]

विसेन्ट स्मिथ (V. Smith) के अनुसार 'बाबर अपने काल के एशिया के बादशाहों में सबसे अधिक दैदीप्यमान था और किसी भी काल अथवा देश के सम्राटों में वह उच्च स्थान पर आसीन होने के योग्य है।'[3]

हैवेल (Havell) के अनुसार, 'बाबर अपने मनोरथ, व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण इस्लाम के इतिहास में सबसे अधिक चित्ताकर्षक बन गया।[4]

(१) बाबर व्यक्ति के रूप में—बाबर का व्यक्तिगत जीवन आदर्श था।

---

[1] "He passed away in his beautiful garden at Agra on the 26 of December 1530, a man of only forty eight, a king for thirty years, crowned with hardships, tumult and strenous enerey but he lies at peace in his grave in the garden he built at kabul, the sweetest spot, which he had chosen for himself."

[2] "A lofty judgment, noble ambition, the art of victory, the art of government, the art of conferring prosperity upon his people, the talent of ruling mildy the people of God, ability to win the hearts of his soldiers and love of justice."

—Rushbrook williams.

[3] "Babar was the most brileiant Asiatic Prince of his age worthy of a high place among the soverigns of any age or country. – V. Smith.

[4] "He (Babar's) engaging personality, artisic temperament and romantic career made him one of the most attractive figures in the history of Islam.

—Havell.

(i) **योग्य पुत्र और योग्य पिता**—वह एक योग्य पुत्र और एक योग्य पिता था। उसने हमेशा अपने पिता की आज्ञाओं का पालन किया और उसके प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाया। उसका अपने पुत्रों के साथ विशेष सद्व्यवहार था। वह उनको बहुत प्रेम करता था। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि उसने अपने पुत्र हुमायूँ के जीवन की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया तथा मरते समय उसने हुमायूँ को अपने छोटे भाइयों से दया तथा प्रेम का व्यवहार करने का आदेश दिया। (ii) **सम्बन्धियों से सद्व्यवहार**—उसके अपने अन्य सम्बन्धियों से भी अच्छे सम्बन्ध थे। अपने बड़ों के प्रति उसमें आदर तथा श्रद्धा के भाव थे। (iii) **पत्नियों के प्रति अनुरक्त**—वह अपनी पत्नियों के प्रति भी पूर्णरूप से अनुरक्त था। (iv) **मित्रों का मित्र**—वह अपने मित्रों का मित्र था और सदा उनकी सहायता भी करने को तत्पर रहता था। (v) **नैतिकता का होना**—उसमें नैतिकता भी विद्यमान था जो तत्कालीन तथा उसके देश के निवासियों में कम विद्यमान थी। (vi) **मद्यपान का दास न होना**—वह मद्यपान करता था, किन्तु वह उसका दास नहीं था। (vii) **साहसी कार्यों के प्रति प्रेम**—उसको साहसी कार्यों से अनुरक्ति थी। वह भयानक परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता था, वरन् उनका सामना करने में उनको आनन्द आता था। (viii) **शारीरिक बल की बहुलता**—उसमें शारीरिक बल बहुत था जिसके कारण उसके मित्रों ने उसको बाबर (शेर) की उपाधि से सुशोभित किया। उसने भारत की अधिकांश नदियाँ तैरकर पार कीं। वह अपनी बगल में दो व्यक्तियों को दबाकर दुर्ग की चाहरदीवारी की छत पर बड़ी सुगमता से भाग सकता था।

(२) **बाबर विद्वान के रूप में**—बाबर बड़ा विद्वान था। उसको साहित्य के साथ-साथ ललित कलाओं से भी अनुराग था। **वह प्राकृतिक सौंदर्य का विशेष प्रेमी था तथा वह व्यक्ति और जीवन के बहुरंगी रूपों का दर्शन सूक्ष्म दृष्टि से करता था। वह स्वयं साहित्यकारों का बड़ा आदर करता था और उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखता था।** वह स्वयं उच्च कोटि का कवि था। उसकी रचना '**बाबरनामा**' तथा '**दीवान**' का स्थान साहित्य में बहुत ऊँचा है। उसका तुर्की तथा फारसी दोनों ही भाषाओं पर प्रभुत्व था। वह संगीत का भी प्रेमी था।* **डा० आशीर्वादीलाल** के शब्दों में, 'वैसे तो बाबर में एक विद्वान् की सभी विशेषताएँ विद्यमान थीं, फिर भी उसे **एक सैनिक विद्वान्** कहना ठीक होगा। वह सैनिक पहले था, विद्वान् बाद में। उसकी विद्वत्ता तथा संस्कृति ने उसके अविश्रान्त सैनिक कार्य-कलापों में कोई बाधा नहीं डाली और न इसके द्वारा उसके अन्दर उन अतिशय कोमल भावनाओं का ही उदय हुआ, जो प्रायः विद्वत्ता के साथ सम्बन्धित रहती हैं।'

(३) **बाबर के धार्मिक विचार**—बाबर पक्का सुन्नी मुसलमान था, किन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। **उसकी धार्मिक नीति बड़ी उदार थी**

---

* "Babar himself will break off in the middle of a tragic story to quote a verse and he found leisure in the thick of his difficulties and danger to compose an ode on his misfortunes. His battles as well as his origies were humanized by breath of poetry." —**Lane-Poole.**

और उसने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कठोर एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया। उसने अन्य धर्मों के अनुयायियों के साथ राजनीतिक मित्रता की। उसने फारस के शाह इस्माइल सफवी से सन्धि की और उसने शियाओं के साथ सद्व्यवहार किया। उसका ईश्वर की सहायता में विश्वास था और वह अपनी विजय के उपरान्त उसका लाख-लाख धन्यवाद किया करता था। भारत में उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर राणा सांगा के विरुद्ध युद्ध को जिहाद (धार्मिक युद्ध) के नाम से सम्बोधित किया और अपने सैनिकों के हृदय में धार्मिक भावना को प्रोत्साहित किया। उसने भारत के प्रसिद्ध पवित्र स्थान अयोध्या में एक मस्जिद का निर्माण हिन्दुओं की धार्मिक भावना पर कुठाराघात करने के अभिप्राय से करवाया। हिन्दुओं पर चुंगी लगी रही जबकि मुसलमान उससे पूर्णतया मुक्त थे। **इतना सब कुछ होते हुए भी यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों की अपेक्षा उसकी नीति हिन्दुओं के साथ विशेष उदार थी।**

(४) बाबर सैनिक तथा सेनापति के रूप में—सैनिक तथा सेनापति के रूप में बाबर का स्थान पर्याप्त उच्च है। **बाल्यकाल में ही उसका जीवन युद्धों में व्यतीत हुआ। उसका अधिकांश जीवन एक सैनिक का ही जीवन था।** वह 'एक प्रशंसनीय घुड़सवार, कमाल का निशानेबाज, योग्य तथा कुशल तलवार-चालक और उच्च कोटि का शिकारी था।' उसमें असीम शारीरिक बल था। **वह एक कुशल सेनापति तथा मानव-जाति का नेता था।** उसका अपने सैनिकों से बड़ा अच्छा व्यवहार था जिसके कारण वे उसके लिए अपने जीवन की बाजी तक लगाने को प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। वह हर समय उनके दुःख-सुख में साथी रहता था। इसके साथ-साथ उसका सैनिक अनुशासन बड़ा कठोर था। युद्ध के समय वह उनसे खूब काम लेता था और अनुशासन भंग करने वालों के साथ वह कठोर व्यवहार करता था और उनको कठोर दण्ड दिया करता था। **उसने मध्य एशिया की प्रचलित युद्ध-कला का भारत में प्रयोग किया जिससे उसको बड़ी सफलता प्राप्त हुई।** उसका सैन्य-संचालन तथा संगठन बहुत उच्च कोटि का था। इसी कारण वह बड़ी-बड़ी तथा विशाल सेनाओं को परास्त करने में सफल हुआ। **रशब्रुक विलियम्म के शब्दों में, "युद्ध-क्षेत्रों की पराजय, साहसपूर्ण घुमक्कड़ी और विभिन्न वीर जातियों से सम्बन्ध-सम्पर्क स्थापित करने के अनुभवों पर ही बाबर एक उच्च कोटि का सेनापति बन चुका था।"**

(५) बाबर शासक के रूप में—बाबर शासक के रूप में भी सफल रहा। उसने भारत में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना की। उसने आवागमन के मार्गों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जिससे चोर-डाकू यात्रियों को न लूट सकें। उसने सरकारी कर्मचारियों पर भी नियन्त्रण रखा जिससे वे जनता को कष्ट न पहुँचा सकें। उसने प्रजा के सुख तथा सुविधा का ध्यान रक्खा।

(६) बाबर कूटनीतिज्ञ के रूप में—बाबर एक सफल कूटनीतिज्ञ था। बाल्यकाल से ही उसने अपने इस अद्वितीय गुण का परिचय दिया। जब फरगना पर काले बादल मंडरा रहे थे तो उसने अपने चाचा अहमद मिर्जा को जो सम्वाद भेजा

जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है वह पूर्णतया सिद्ध करता है कि बाबर में वह गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। उसने इब्राहीम लोधी के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके अमीरों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा उनको आपस में भिड़ाया। इस सम्बन्ध में **डैनीसन रोस** का कथन है, कि "जिस रीति से उसने सुल्तान इब्राहीम के विद्रोही सामन्तों को आपस में एक दूसरे से भिड़ाया, वह किसी मैकियावैली के अनुरुप ही थी।"

(७) **बाबर शासन-प्रबन्धक के रूप में**—बाबर में शासन-प्रबन्धक की प्रतिभा उच्च कोटि की नहीं थी। उसमें शेरशाह तथा अकबर के समान रचनात्मक बुद्धि का सर्वथा अभाव था। उसने समस्त पुरानी संस्थाओं को यथावत् रखा और उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन तथा नवीनता उत्पन्न नहीं की। उसके शासन-काल में शासन-सम्बन्धी सुधार नहीं हुए। उसने लोधियों के समय की शासन-व्यवस्था को ही अपनाया। **उसका समस्त साम्राज्य सामन्तों तथा जागीरदारों में विभक्त था, उनको अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे।** उसने किसानों की उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसको अर्थ-सम्बन्धी ज्ञान लेश-मात्र भी नहीं था। उसने साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को उन्नत करने का तनिक भी प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत उसने साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को डावांडोल कर दिया। उसका राजकोष रिक्त था और जो कुछ उसको लोधियों से प्राप्त हुआ था वह सब उसने समाप्त कर दिया। उसको शीघ्र ही अनुभव हुआ कि धन के अभाव में शासन-व्यवस्था का चलाना असम्भव है। अत: उसने कर लगाए, किन्तु इनके द्वारा भी अधिक समस्या का समाधान नहीं हो पाया। हुमायूँ को इन सबका दुःखद परिणाम भोगना पड़ा। इसी आधार पर **रशब्रुक विलियम्स** का यह कथन है कि **"बाबर ने अपने पुत्र के लिए एक ऐसा राज्य छोड़ा जो केवल युद्धकालीन परिस्थितियों में ही सुसंगठित रह सकता था, शान्ति-काल के लिए वह पूर्णतया निर्बल तथा निकम्मा था।"**

बाबर का मूल्यांकन—बाबर के चरित्र के अध्ययन तथा उससे सम्बन्धित बातों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबर का स्थान इतिहास में बहुत उच्च था। बाबर के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचारों से यह सिद्ध होता है। उसके सम्बन्ध में प्रमुख इतिहासकारों के मत निम्नलिखित हैं—

विन्सेंट स्मिट के अनुसार, "बाबर अपने काल के एशिया के सम्राटों में सबसे अधिक दैदीप्यमान था और वह किसी भी काल अथवा देश के सम्राटों में उच्च स्थान प्रदान करने योग्य है।"

हैवेल के अनुसार, "बाबर अपने मनोरथ, व्यक्तित्व, कलात्म स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण इस्लाम में सबसे अधिक चित्ताकर्षक था।"

इलियट के अनुसार, "यदि बाबर की शिक्षा यूरोप में हुई होती तो वह अच्छे स्वभाव का वीर, दयालु, बुद्धिमान तथा स्पष्टवादी होने के कारण हेनरी चतुर्थ का स्थान प्राप्त करता।"

वास्तव में वह उन समस्त गुणों से परिपूर्ण था जो एक सम्राट में होने

आवश्यक थे। वह एक कुशल विजेता, योग्य सेनानी, उच्च कोटि का कवि तथा साहित्यकार था। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। उसका स्वभाव बड़ा अच्छा था। इस प्रकार उसमें एक सम्राट तथा सैनिक की प्रतिभा विद्यमान थी, **किन्तु इस सम्बन्ध में इतना अवश्य याद रखना चाहिए कि यदि उसका पुत्र हुमायूँ पुनः भारत का राज्य विजित करने में सफल नहीं होता और उसका पौत्र अकबर एक महान् साम्राज्य की स्थापना न कर पाता तो उसका नाम भारतीय इतिहास में उसी प्रकार न्यून पद प्राप्त करता जो उसको मध्य एशिया में प्राप्त हुआ।**

16 **बाबर द्वारा अपनी आत्म-कथा में भारत का वर्णन**—जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि बाबर ने अपनी आत्म-कथा (तुज्ज-के-बाबरी) तुर्की भाषा में लिखी और उसकी गणना उच्च कोटि के साहित्य में की जाती है। उसने अपनी पुस्तक में भारत का वर्णन किया है जिसको निम्न पक्तियों में उद्धत किया जाता है—

"हिन्दुस्तान ऐसा देश है जिसमें थोड़े ही सौन्दर्य हैं। वहाँ के लोग देखने में सुन्दर नहीं होते। इनमें सामाजिक व्यवहार तथा एक दूसरे के यहाँ आना-जाना नहीं होता। इनमें प्रतिभा तथा योग्यता नहीं होती। इनमें सद्व्यवहार नहीं होता। हस्तकला तथा अन्य कार्यों में कोई स्वरूप तथा सुडौलपन नहीं होता। उनमें न कोई ढंग होता है और न कोई गुण होता है। यहाँ के बाजारों में न पका भोजन, न यहाँ अच्छे घोड़े, न अच्छे कुत्ते, न अंगूर, न तरबूज, न उत्तम फल, न बर्फ, न ठण्डा पानी, न अच्छी रोटी, न उष्ण स्नानागार, न कालेज, न बत्ती, न मशाल और न मोमबत्ती पायी जाती हैं। बड़ी-बड़ी नदियों तथा पहाड़ी झरनों में पानी को छोड़कर जो कन्दराओं अथवा खोहों में बहता है, उनके उपवनों में तथा घरों के पास प्रवाहित जल दिखलाई नहीं देता। घर न हवादार होते हैं और न सुन्दर। किसान तथा निम्न वर्ग के लोग इधर-उधर नंगे जाते हैं। यह लोग सौजन्यता के लिए एक प्रकार का वस्त्र पहनते हैं जो लंगोटा कहलाता है और ढूँडी से दो बालिश्त नीचे होता है। इस लंगोटे में एक और कपड़ा लगा रहता है जो जांघों के बीच से जाता है और पीछे बांध दिया जाता है। औरतें भी लांघ बाँधती हैं जिसका आधा भाग कमर के चारों ओर बंधा रहता है और दूसरा भाग सिर पर रहता है। हिन्दुस्तान की चित्ताकर्षक चीजे यह हैं कि यह एक विशाल देश है और सोने तथा चाँदी का ढेर लगा रहता है। इसकी हवा वर्षा ऋतु में बहुत अच्छी होती है। कभी-कभी एक दिन में १९ या १५ अथवा २० बार वर्षा हो जाती है। कभी-कभी ऐसी मुसलाधार वर्षा होने लगती है कि जहां पर पानी नहीं था वहाँ पर नदी बहने लगती हैं। जब पानी बरसता है तो हवा बड़ी बढ़िया लगती है और इससे बढ़कर स्वास्थ्यवर्धक तथा मनोरम कोई दूसरी हवा नहीं हो सकती। दोष केवल इतना ही है कि हवा अत्यन्त मुलायम तथा नम हो जाती है। उन देशों (ट्रान्सओक्सियाना) का धनुष भारत में वर्षा के आ जाने के उपरान्त खींचा नहीं जा सकता। वह बिल्कुल नष्ट हो जाता है। न केवल धनुष वरन् अस्त्र, पुस्तक, कपड़े, बर्तन सभी वस्तुओं पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। न केवल वर्षा ऋतु में वरन् शीत तथा ग्रीष्म ऋतु में भी हवा मनोरम होती है।

परन्तु उन दिनों उत्तर-पश्चिम से निरन्तर हवा चलती है जो धूल तथा मिट्टी से भरी रहती है । लोग इसे आंधी कहते हैं । गर्मी के दिनों में गर्मी उतनी असह्य तथा उतने अधिक दिनों तक नहीं पड़ती जैसा कि बलख व कन्दहार में । हिन्दुस्तान की दूसरी अच्छी चीज यह है कि यहाँ पर हर प्रकार के असंख्य तथा अनन्य श्रमजीवी मिलते हैं । हर एक कार्य के लिए एक जाति होती है, जिसका यह परम्परागत पेशा होता है ।"

बाबर ने जो भारतीयों की निन्दा की उसमें कोई सार नहीं है । प्राकृतिक वर्णन उसने बड़ा अनुपयुक्त किया । इसका कारण यह है कि वह बहुत कम समय भारत में रहा, और वह सभ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्तियों के सम्पर्क में बहुत कम आया । इस सम्बन्ध में लेनपूल का कथन है कि 'यदि बाबर और अधिक समय भारत में निवास करता और यहाँ के लोगों का अधिक निरीक्षण करता तो वह इस प्रकार की निन्दनीय आलोचना न करता ।'

क्या बाबर मुगल-साम्राज्य का निर्माता था—यह प्रश्न बड़ा विवादग्रस्त है कि बाबर मुगल साम्राज्य का निर्माता था । बाबर ने पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में इब्राहीम लोधी को तथा खनवा के युद्ध-क्षेत्र में राणा सांगा को परास्त कर भारत में एक नये राजवंश की स्थापना की । उसने घाघरा के युद्ध में अफगानों को भी परास्त किया जिससे अफगानों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा । यद्यपि उसने उत्तरी भारत के पर्याप्त भाग पर अधिकार किया, किन्तु उसका यह अधिकार केवल सैनिक था । वह साम्राज्य की वास्तविक स्थापना करने में सफल नहीं हो सका, क्योंकि वह उसको सुदृढ़ शासन का रूप प्रदान करने में असफल रहा । उसका अधिकांश समय विजयों में व्यतीत हुआ और उसने शासन-प्रबन्ध को उन्नत करने तथा प्रजा के हृदय पर अधिकार करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया । उसका मुख्य उदेद्श्य नव-विजित राज्य की सुरक्षा ही था और उसमें ही उसका जीवन व्यतीत हुआ । बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ को जो राज्य प्रदान किया वह निर्मूल तथा निराधार था जिसके कारण हुमायूँ को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और अन्त में हुमायूँ को भारत से पलायन करना पड़ा । भारत पर अफगानों का आधिपत्य स्थापित हो गया । वास्तव में बाबर एक कुशल सेनापति तथा योग्य सैनिक था, किन्तु उसमें कुशल शासक के गुणों का पूर्णतया अभाव था । इसलिए वह नव-विजित राज्य को दृढ़ता प्रदान नहीं कर सका । इसी आधार पर कहा जाता है **कि वह मुगल साम्राज्य का निर्माता नहीं था और उसकी भारत-विजय का महत्व केवल सैनिक दृष्टि से ही था ।**

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) भारत में बाबर की कृतियों का वर्णन कीजिए ।

(२) आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं कि 'बाबर मुगल साम्राज्य का निर्माता था ।' अपने विचारों की व्याख्या सविस्तार कीजिए ।

(३) 'बाबर ने अपनी आत्म-कथा 'तुज्ज-के-बाबरी' में भारत की तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक दशाओं का विवरण दिया है।' सविस्तार बताइए।

(४) राणा सांगा पर एक टिप्पणी लिखो।

(५) बाबर के चरित्र तथा व्यक्तित्व का वर्णन कीजिए और भारत में उसकी असफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

(६) बाबर के आक्रमणों से पूर्व भारत की राजनीतिक व्यवस्था का परिचय दीजिये।

(७) भारत में बाबर को मुगल-साम्राज्य स्थापित करने में क्यों सफलता प्राप्त हुई ?

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख करो।

(२) 'बाबर राज्य को दृढ़ बनाने में असफल रहा। वह केवल एक सेनापति तथा सैनिक था।' क्या यह कथन बाबर के चरित्र तथा उसकी सफलता का उचित चित्रण करता है ?

(३) 'मध्यकालीन इतिहास में बाबर सबसे अधिक दिलचस्प व्यक्ति था; राजकुमार, सैनिक, विद्वान् के रूप में वह मध्य युग के व्यक्तियों में सबसे उन्नत था।' विवेचन करो।

२-

हुमायूँ (१५३०–१५४० व १५५५)

हुमायूँ का प्रारम्भिक जीवन—हुमायूँ बाबर का ज्येष्ठ पुत्र था जिसका जन्म १५०८ ई० को काबुल में हुआ था। उसकी माता का नाम माहम बेगम था जो शिया, धर्म की अनुयायी थी। **बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और उसको शीघ्र ही तुर्की, अरबी तथा फारसी भाषा का पर्यात ज्ञान प्राप्त हो गया।** इसके अतिरिक्त उसने गणित, दर्शन तथा ज्योतिष शास्त्रों का भी अध्ययन किया। बाबर ने उसको सैनिक शिक्षा भी प्रदान की। युद्ध की व्यवहारिक शिक्षा उसने अपने पिता के विभिन्न युद्धों में प्राप्त की। वह उन समस्त युद्धों में सम्मिलित रहा जो बाबर ने भारतवर्ष में किए। उसने इन युद्धों में अपनी सैनिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। पानीपत के युद्ध में हुमायूँ ने मुगल सेना के दक्षिण-पक्ष का संचालन किया। इसके उपरान्त उसने आगरा विजय किया। उसने ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य को बुरी तरह परास्त किया तथा पूर्व में अफगानों का दमन किया। **बाबर ने उसके कार्यों से प्रसन्न होकर उसको कोहनूर हीरा, बहुत-सा धन तथा सम्भल की जागीर भेंट-स्वरूप प्रदान की।** जब बाबर का युद्ध राणा सांगा से हुआ तो बाबर ने उसको बुलवाकर दक्षिण-पक्ष के अतिरिक्त भाग का संचालन सौंपा। इसी समय बदख्शाँ में विद्रोह का अन्त करने के लिए बाबर ने उसको वहाँ भेजा, किन्तु वहाँ कुछ विशिष्ट कारणों से उसको पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी समय बाबर का स्वास्थ्य गिरने लगा और उसके प्रधान-मंत्री खलीफा ने हुमायूँ को राज्यसिंहासन से हटाने के अभिप्राय से षड्यन्त्र रचा। इसका समाचार पाकर वह तुरन्त आगरे आया और उसके आगरे आने से षड्यन्त्र विफल हो गया। वह अपनी सम्भल की जागीर की उचित व्यवस्था करने के लिए वहाँ गया, जहाँ वह बहुत बीमार हो गया किन्तु बाद में वह स्वस्थ हो गया इसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है कि किस प्रकार बाबर ने अपना जीवन बलिदान कर अपने पुत्र के जीवन की रक्षा की।

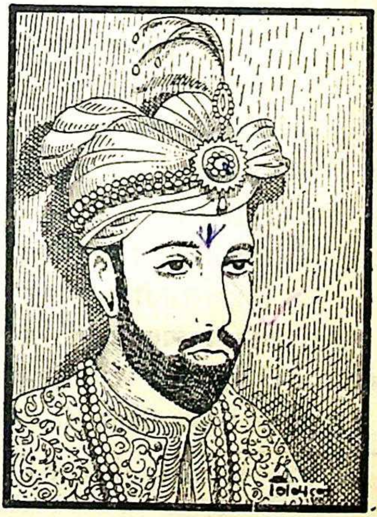

हुमायूँ

२

हुमायूँ का राज्यसिंहासन पर आसीन होना—बाबर ने अपने प्रिय तथा ज्येष्ट पुत्र को अपने जीवन-काल ही में अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। २३ दिसम्बर १५३० ई० को बाबर की मृत्यु हुई और हुमायूँ ३० दिसम्बर १५३० ई० को राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। बाबर की मृत्यु होने पर हुमायूँ को राज्य-सिंहासन से हटाने का पुनः षड्यन्त्र रचा गया, किन्तु षड्यन्त्र के कार्यान्वित होने से पूर्व ही उसका अन्त कर दिया गया और हुमायूँ बिना किसी विरोध के राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ।

~16

हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ (८३, ८६) ५)

यद्यपि हुमायूँ निर्विरोध राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ, किन्तु उसके सामने विशेष कठिनाइयाँ उपस्थित थीं जिनका सामना उसको करना पड़ा। वास्तव में जिस राज्यसिंहासन पर हुमायूँ आसीन हुआ वह फूलों की शैय्या न होकर काँटों की शैय्या थी।[1] उसकी कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं—

(१) साम्राज्य में सुदृढ़ता का अभाव—हुमायूँ एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बना जिसमें मध्य एशिया के कुछ प्रदेश तथा उत्तरी भारत के मध्य तथा पश्चिमी प्रदेश सम्मिलित थे। बाबर को अपने विशाल नव-विजित साम्राज्य की सुदृढ़ व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, जिसके कारण साम्राज्य में अराजकता के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे।[2] साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक अमीर तथा सरदार अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की ताक में थे और वे उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

(२) सुसंगठित शासन-व्यवस्था का अभाव—बाबर ने भारत की शासन-व्यवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी प्रयास नहीं किया। उसने मूलरूप में उसी शासन-व्यवस्था को स्वीकार किया जो भारत में लोधियों के समय में प्रचलित थी। **बाबर ने लोधियों के समान जागीर-प्रथा को अपनाया जो विशेषतः दोषपूर्ण थी।** इसके अतिरिक्त बाबर ने इस बात का प्रयत्न भी नहीं किया कि भारतवासियों को अपनी ओर आकर्षित कर इनके सहयोग को प्राप्त करे और एक सुदृढ़ तथा सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न करे।

(३) रिक्त राजकोष—बाबर ने भारत-विजय द्वारा जो धन प्राप्त किया था उसका उसने अपव्यय किया, जिसके परिणामस्वरूप राजकोष प्रायः रिक्त-सा हो गया। ऐसी परिस्थिति में शासन-व्यवस्था का उचित रूप से संचालन करना तथा दृढ़ व सुसज्जित सैनिक संगठन की स्थापना करना नितान्त असम्भव था। हुमायूँ ने

---

1. "The throne to which Humayun succeeded was not a bed of roses."

2. "Babar had bequethed to Humayun a congeries of territories uncemented by any bond of union or of common interest except that which had been embodied in his life. In a word where he died the Mughal dynasty like the muhammadan dynsaties which had preceded it, had sent down no roots into the soil of Hindustan."

—Malleson.

अपनी आर्थिक समस्या का निराकरण करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, वरन् उसने भी धन का अपव्यय किया जिसका दुःखद परिणाम उसको भोगना पड़ा।

(४) **अफगानों के विद्रोह**—यद्यपि अफगान पराजित हो चुके थे, किन्तु वह पुनः अपनी सत्ता की स्थापना के लिए चिन्तित थे। **सौभाग्य से उनको शेरखाँ जैसा योग्य तथा प्रतिभाशाली सेनानायक तथा नेता प्राप्त हुआ; जिसने अफगानों की समस्त बिखरी हुई शक्ति को एकत्रित तथा संगठित किया** और मुगलों के विरुद्ध कई वर्ष तक भीषण संघर्ष किए और अन्त में वह मुगलों को भारत से निकालने में सफल हुआ।

हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

(१) साम्राज्य में सुदृढ़ता का अभाव।
(२) सुसंठित शासन-व्यवस्था का अभाव।
(३) रिक्त राजकोष।
(४) अफगानों के विद्रोह।
(५) गुजरात के सुलतान की शक्ति में वृद्धि।
(६) राजपूतों का शक्ति संगठित करना।
(७) सम्बन्धियों का विश्वासघात।
(८) बन्धुओं का असहयोग।
(९) हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलताएँ।

(५) **गुजरात के सुलतान की शक्ति में वृद्धि**—गुजरात पर मेवाड़ के राणा सांगा का बड़ा नियन्त्रण था। उसके कारण वह उत्तर की ओर न बढ़ पाया। इस समय गुजरात पर बहादुरशाह बादशाह का अधिपत्य था जो बड़ा साहसी तथा महत्वाकांक्षी था। **राणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त उसने अपनी शक्ति को दृढ़ किया और उत्तर की राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया।** हुमायूँ के लिए यह एक नई समस्या उत्पन्न हो गई।

(६) **राजपूतों का शक्ति संगठित करना**—यद्यपि राणा सांगा की खनवा के युद्ध में (१५२७) पराजय होने तथा उसकी मृत्यु के कारण राजपूतों की शक्ति को बड़ा भारी आघात पहुँचा, किन्तु वे शान्त नहीं हुए और उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित करना आरम्भ कर दिया था।

(७) **सम्बन्धियों का विश्वासघात**—हुमायूँ को सबसे बड़ी हानि अपने कुटुम्बियों से हुई। ये लोग अपने को मिर्जा के नाम से सम्बोधित करते थे। ये तैमूर वंशी होने के कारण बाबर से रक्त का सम्बन्ध स्थापित करते थे। इनमें सबसे प्रमुख (i) **मुहम्मद जमाल मिर्जा था।** वह हिरात के सुलतान हुसैन बैकरा का पोता और हुमायूँ की सौतेली बहन मासूमा सुल्ताना बेगम का पति था। वह बड़ा योग्य तथा अनुभवी सैनिक था। उसने बाबर के युद्धों में अपनी सैनिक योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था। वह बड़ा चंचल तथा उपद्रवी था। इन्हीं में हुमायूँ का दूसरा प्रमुख विरोधी (ii) **मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था।** वह भी तैमूर का वंशज था और खुरासान के सुल्तान की कन्या का पुत्र था। वह भी भारत के राज्यसिंहासन पर अपना दावा समझता था और उसको प्राप्त करने का इच्छुक था। वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा

था। इनमें तीसरा (ii) **मीर मुहम्मद मेंहदी ख्वाजा** था जो बाबर का बहनोई था। उसने हुमायूँ को पदच्युत करने के अभिप्राय से बाबर के प्रधानमन्त्री खलीफा से गठबन्धन कर एक षड्यन्त्र रचा था जिसमें उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन तीनों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रान्तीय सूबेदार तथा जागीरदार भी थे जो बड़े महत्वाकांक्षी थे और नए बादशाह से प्रतिद्वन्दता रखने के बड़े इच्छुक थे।

(८) बन्धुओं का असहयोग—हुमायूँ को न केवल अपने सम्बन्धियों तथा महान् सेनानायकों का ही असहयोग प्राप्त हुआ, वरन् उसके भाइयों ने भी उसके साथ विश्वासघात किया और स्वयं राज्य पर अधिकार करने के प्रयत्न किए। बाबर **ने अपनी मृत्यु के अवसर पर हुमायूँ को अपने भाइयों से सद्व्यवहार करने का आदेश दिया था जिसका अक्षरशः पालन हुमायूँ ने किया।** बाबर की मृत्यु पर उसने अपने भाइयों में समस्त राज्य का विभाजन किया। **कामरान** को काबुल तथा कन्धार के प्रदेश प्रदान किए। इतने पर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ और भारतीय राज्य को सदा लालायित दृष्टि से देखता रहा। उसने दूसरे भाई **अस्करी** को सम्भल तथा तीसरे भाई **हिंदाल** को अलवर के प्रदेश दिए। इन दोनों ने हुमायूँ के सामने उस प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न नहीं की जिस प्रकार की कामराज ने की, किन्तु फिर भी प्रसिद्ध इतिहासकार **लेनपूल** के शब्दों में, "सदैव दुर्बल तथा कपटी अस्करी तथा हिंदाल केवल इस दृष्टिकोण से आपत्तिजनक थे कि महत्वाकांक्षी व्यक्ति उनको अपना अस्त्र बनाकर हुमायूँ के विरुद्ध प्रयोग कर सकते थे। इन भाइयों ने हुमायूँ की कठिनाइयों तथा समस्याओं का निराकरण करने के स्थान पर उसके सामने भीषण समस्याएँ उत्पन्न कर दीं। इनमें कोई भी योग्य तथा प्रतिभाशाली न था और न इनमें चरित्रबल ही था। हुमायूँ ने उनके साथ सद्व्यवहार किया, किन्तु उन्होंने हुमायूँ की कठिनाइयों में विशेष योग प्रदान किया।"

90 **(९) हुमायूँ के चरित्र की दुर्बलताएँ**—हुमायूँ स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु था। उसके चरित्र में विभिन्न दोष विद्यमान थे जिनके कारण वह अपनी कठिनाइयों तथा आपत्तियों पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ रहा। नव-स्थापित मुगल राज्य को इस समय एक महान् व्यक्ति की सेवाओं की आवश्यकता थी जिसमें सैनिक योग्यता, कूटनीतिक पटुता, दृढ़ प्रतिज्ञता, कठोरता आदि गुण विद्यमान होते।[1] ऐसा ही व्यक्ति इस समय सफल हो सकता था। हुमायूँ यद्यपि शिक्षित तथा साहित्यज्ञ था, किन्तु उसमें उक्त गुणों का सर्वथा अभाव था। (i) वह परिस्थिति का भली प्रकार अध्ययन नहीं करता था और न उसके लाभ उठाने की क्षमता तथा योग्यता ही रखता था। (ii) उसके जीवन में उचित परिस्थितियाँ आयीं जिनका वह अपने चरित्र की दुर्बलताओं के कारण लाभ नहीं उठा सका और उसने उसको जाने दिया। (iii) वह नशे का दास था। (vi) वह भोग-विलास तथा रंग-रेलियों में अपना

---

[1] "It was a situation that called for boundless energy and soldierly genius."

—Lane-Poole.

अधिकांश समय नष्ट कर देता था।[1] (v) वह पूर्ण रूप से एक शत्रु को परास्त न कर दूसरे की ओर चल देता था जिसके कारण वह किसी भी शत्रु का दमन करने में सफल नहीं हुआ और इस नीति से शत्रुओं को अपनी सेना सुसंगठित करने तथा अपनी स्थिति सुधारने का समय मिल जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसको १५ वर्ष तक निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा जिसमें उसको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

उनकी कठिनाइयों के सम्बन्ध में **ओमप्रकाश मालवीय** का कथन है कि 'बाबर की असामयिक मृत्यु ने मुगल साम्राज्य को एक भयावह और डांवाडोल परिस्थिति में डाल दिया था। बाबर की सफलता एक सैन्य-विजय मात्र थी। उसका प्रत्यक्ष शासन केवल पंजाब तथा वर्तमान उत्तर प्रदेश के ही भूखण्डों पर था। इन प्रदेशों में भी शक्तिशाली अफगान सरदार स्वतन्त्र होने का अवसर ढूंढ़ रहे थे। राजपूत सरदार भी अभी पूर्णरूप से दबाए नहीं जा सके थे। उधर गुजरात का शक्तिशाली शासक बहादुरशाह भी मुगलों का विरोधी हो गया था। इन बाह्य कठिनाइयों के अतिरिक्त हुमायूँ के सामने आन्तरिक कठिनाइयाँ तथा समस्याएँ भी थीं। उसके तीनों भाई कामरान, अस्करी और हिंदाल बड़े महत्वाकांक्षी थे और हुमायूँ का बादशाह होना उनको स्वीकार नहीं था। अपनी सेना पर हुमायूँ पूरी तरह भरोसा नहीं रख सकता था क्योंकि उसकी सेना में चगताई, उजबेग, मुगल, फारसी, अफगान और भारतीय आदि विभिन्न जातियों के सैनिक थे और वे सभी अलग-अलग भाषा बोलते थे। इनका नेतृत्व भी इनके अपने-अपने कबीलों के सरदार करते थे। विभिन्न दलों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण सेना में एकता की भावना उत्पन्न नहीं हो पाई थी। समय-समय पर कबीलों के सरदार सेना में अकारण ही उत्तेजना पैदा कर दिया करते थे, जिससे राज्य को किसी भी समय खतरा पहुँच सकता था। दरबार में भी महत्त्वाकांक्षी सरदारों का अभाव नहीं था जो हुमायूँ का विरोध करने की सोचते थे।"

हुमायूँ की प्रारम्भिक विजयें

जिस समय हुमायूँ राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ वह चारों ओर से आपत्तियों से घिरा हुआ था और साम्राज्य के चारों ओर काले बादल मण्डरा रहे थे, किन्तु उसने बड़े धैर्य तथा साहस से इन आपत्तियों का अन्त करने का प्रयास किया जिससे वह नव-स्थापित मुगल-राज्य को भारत में सुदृढ़ तथा स्थायी रूप प्रदान करने में सफल हो सके। उसके प्रयासों का वर्णन निम्नलिखित है—

(१) **कालिंजर पर आक्रमण**—राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसका ध्यान कालिंजर की ओर आकर्षित हुआ। उसकी धारणा थी कि कालिंजर का राजा मुगलों के विरुद्ध अफगानों का समर्थक है। कालिंजर का दुर्ग बुन्देलखण्ड

---

[1] "By nature he was more inclined to ease than ambition. He could fight odds and show still in devising methods of a difficult sort. But when a battle was won, he would sit down to consume the captured treasure."

Elphinstion.

की एक पहाड़ी पर स्थित है। हुमायूँ ने बाबर के समय में भी कालिंजर पर आक्रमण किया था, किन्तु वह उस कार्य को बीच में छोड़ कर आगरे चला आया था। इस बार भी उसने पूर्व के समान कालिंजर के दुर्ग को घेर लिया। युद्ध में **राजपूतों की पराजय हुई, परन्तु हुमायूँ ने कालिंजर नरेश से बहुत अधिक धन प्राप्त कर उसे वहां का शासक रहने दिया।** उसने मुग़लों की अधीनता स्वीकार की, परन्तु कालिंजर मुग़ल साम्राज्य में विलीन नहीं किया गया।

हुमायूँ की प्रारम्भिक विजयें

(१) कालिंजर पर आक्रमण।
(२) अफगानों पर विजय।
(३) मुहम्मद जमाँ तथा सुल्तान मिर्जा के विद्रोहों का दमन।

(२) अफगानों पर विजय—कालिंजर के उपरान्त हुमायूँ ने अफगानों की शक्ति का अन्त करने का प्रयास किया जो पूर्व में सिकन्दर लोधी के नेतृत्व में अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे। अफगानों ने जौनपुर तथा उसके समीपस्थ प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया था। हुमायूँ शीघ्र ही उसके विद्रोह का दमन करने के लिए चल पड़ा। **दोनों सेनाओं में अगस्त १५३२ ई० में दौहरिया नामक स्थान पर युद्ध हुआ।** युद्ध में अफगानों की बुरी तरह पराजय हुई और वे बिहार की ओर भाग गए। इसके उपरान्त हुमायूँ ने चुनार के दुर्ग पर आक्रमण किया। इस समय चुनार पर शेरखाँ का अधिकार था। उसने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार की। हुमायूँ अपनी इन विजयों से बड़ा प्रसन्न हुआ और आगरे आकर उसने अपने अमीरों तथा सरदारों को एक भोज दिया और उनको बहुत-से पारितोषिक भी दिए। उसने धन का अपव्यय किया। राजकोष पहले ही रिक्त था, इस ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यहाँ उसने एक बड़ी भारी भूल यह की कि उसने शेरखाँ के साथ कठोर व्यवहार के स्थान पर उदारता का व्यवहार किया। यदि इस अवसर पर वह शेरखाँ का दमन कर देता तो वह आगे चलकर उसके लिए भीषण तथा गहन समस्या न बन जाता।

(३) मुहम्मद जमाँ तथा सुल्तान मिर्जा के विद्रोह का दमन—मुहम्मद जमाँ ने विद्रोह किया, किन्तु विद्रोह का दमन कर दिया गया और उसको बियाना के दुर्ग में बन्दी बनाया गया, किन्तु वह वहाँ से भागने में सफल हुआ और उसने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के दरबार में शरण ली। इसके बाद एक अन्य विद्रोह हुआ जिसका नेता मुहम्मद सुल्तान मिर्जा था। विद्रोह का शीघ्र ही अन्त कर दिया गया। मुहम्मद सुल्तान मिर्जा अपने दो पुत्रों के साथ बन्दी बनाकर बियाना भेजा गया जहाँ उसको अन्धा कर दिया गया।

हुमायूँ तथा बहादुरशाह

बहादुरशाह गुजरात का स्वामी था। उसने अपनी शक्ति का उचित संगठन कर पड़ोसी राज्यों की राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। उसने मालवा पर अधिकार किया। उसके दरबार में दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने वाले समस्त विद्रोहियों को शरण प्रदान की जाती थी। इस समय मुख्य विद्रोही जो

उसके दरबार में थे उनमें इब्राहीम लोधी का चाचा आलम खाँ तथा मुहम्मद जमाँ मिर्जा तथा मेंहदी ख्वाजा प्रसिद्ध थे। बहादुरशाह उनकी सहायता से दिल्ली के साम्राज्य को हस्तगत करना चाहता था। **उसने १५३२ ई० में रायसिन के दुर्ग पर अधिकार किया तथा १५३३ ई० में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण किया।** इसी समय हुमायूँ ने उससे उन विद्रोहियों को मांगा जिन्होंने दरबार में शरण प्राप्त की हुई थी, किन्तु बहादुरशाह ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। हुमायूँ को जब उसके विचारों का ज्ञान हुआ तो वह उससे सावधान हो गया और उसके दमन की तैयारी करने में संलग्न हो गया।

जब बहादुरशाह ने दूसरी बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया और वह उसका घेरा डाले पड़ा था तो हुमायूँ उसका दमन करने के लिए चल पड़ा। इसी समय उसे विक्रमादित्य की माता कर्णावती का सहायतार्थ नियन्त्रण प्राप्त हुआ। **वह चितौड़ की ओर गया, किन्तु वह सारंगपुर में रुक गया और वहाँ दो महीने तक अमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करता रहा।** इसी बीच **बहादुरशाह ने चित्तौड़ को विजय कर लिया।** यह हुमायूँ की बड़ी भारी भूल थी। यदि वह इस समय राजपूतों की सहायता करता तो उसको उनकी सेवाएँ भविष्य में प्राप्त हो जातीं, किन्तु उसने इस स्वर्ण अवसर को हाथ से जाने दिया। वह बहादुरशाह को उनकी सहायता से दमन करने में सफल हो सकता था। चित्तौड़ से बहादुरशाह को बहुत धन प्राप्त हुआ, जिससे उनकी शक्ति पहले में बहुत अधिक बढ़ गई। अब उसने हुमायूँ से युद्ध करने का निश्चय किया। हुमायूँ भी इसी उद्देश्य से **मन्दौर** की ओर बढ़ा, बहादुरशाह ने रक्षात्मक स्थिति को अपनाया। हुमायूँ ने उसके रसद आने के मार्गों पर अधिकार कर लिया। रसद के अभाव में सैनिकों को बहुत कष्ट का सामना करना पड़ा। ऐसी **परिस्थिति में बहादुरशाह अपने पाँच स्वामीभक्त तथा हितैषी सेवकों के साथ १५ अप्रैल १५३६ ई० की रात्रि को अपना शिविर त्यागकर माँडू की ओर पलायन कर गया।**

चम्पानेर तथा माँडू की विजय—जब बहादुरशाह की सेना को उसके भागने की सूचना प्राप्त हुई तो उसमें भी भगदड़ मच गई। मुगलों ने भागती हुई सेना का बड़े वेग से पीछा किया। उन्होंने शीघ्र ही **माँडू का दुर्ग** घेर लिया जहाँ बहादुरशाह ने शरण ली थी। मुगल सेना के आगमन का समाचार पाकर वह वहाँ से भी अपने कुछ साथियों के साथ गुजरात की ओर भाग गया। हुमायूँ ने उसका वहाँ भी पीछा किया, खम्भात तक हुमायूँ उसका पीछा करता रहा। अन्त में बहादुरशाह ने पुर्तगाली द्वीप ड्यू में जाकर शरण ली। हुमायूँ वहाँ से चम्पानेर की ओर आया और उसने उसके दुर्ग पर अधिकार किया। हुमायूँ की यह बड़ी भूल थी। उसको चम्पानेर की ओर प्रस्थान करने से पूर्व बहादुरशाह का पूर्णरूपेण दमन करना चाहिए था। **चम्पानेर तथा माँडू की विजयें बड़ी महत्वपूर्ण थीं, किन्तु हुमायूँ ने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने के स्थान पर आमोद-प्रमोद में अपना अमूल्य समय नष्ट कर दिया,** जिसका फल उसको भोगना पड़ा। हुमायूँ ने अपने भाई अस्करी को गुजरात, पाटन मिर्जा यादगार नसीर को, भड़ौंच मिर्जा हिन्दू बेग को, चम्पानेर तार्दी बेग को और

बड़ौदा कासिम हुसैन को प्रदान किए। यह व्यवस्था बड़ी दोषपूर्ण थी। उसको इन प्रदेशों पर अपना अधिकार रखना चाहिए था।

बहादुरशाह का गुजरात पर अधिकार करना—वहाँ से निवृत्त होकर हुमायूँ ड्यू की ओर बढ़ा, किन्तु वह इस कार्य के करने में असफल हुआ; क्योंकि इसी समय मालवा से विद्रोह के समाचार आए। वह माँडू वापिस आ गया और आमोद-प्रमोद में अपना समय व्यतीत करने लगा। इस बीच गुजरात की परिस्थिति ने भीषण रूप धारण किया। **बहादुरशाह पुर्तगालियों की सहायता से गुजरात पर अधिकार करने में सफल हुआ और अस्करी उसका सामना नहीं कर सका।** वह चम्पानेर भागा और वहाँ से आगरे की ओर गया। बहादुरशाह ने चम्पानेर के दुर्ग को अपने अधिकार में किया और तार्दी बेग को दुर्ग छोड़ने पर बाध्य किया। इस प्रकार मुगलों के हाथ से गुजरात निकल गया। मालवा पर भी गुजरात का प्रभाव पड़ा और वहाँ भी मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्जवलित हुई। इधर से निराश होकर हुमायुँ ने आगरे की ओर प्रस्थान किया; क्योंकि साम्राज्य के अन्य भागों से विद्रोह के समाचार उसको निरन्तर प्राप्त हो रहे थे। अपने भाइयों तथा सेवकों द्वारा विश्वासघात का परिणाम हुमायुँ को भोगना पड़ा; क्योंकि उनके कारण ही इसी प्रकार भारत के दो धनी प्रदेश उसके हाथ में आकर निकल गए।

हुमायूँ और शेरखाँ

शेरखाँ की विजयें—गत पृष्ठों में यह बतलाया जा चुका है कि शेरखाँ ने हुमायूँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उसका हृदय स्वच्छ नहीं था। वह अपनी शक्ति के विकास के लिए कुछ समय चाहता था और यह उसको हुमायूँ की अकर्मण्यता तथा अमोद-प्रमोद लिप्सा के कारण पर्याप्त मात्रा में मिल गया। **शेरखाँ ने दक्षिणी बिहार पर अपना आधिपत्य कर लिया था तथा उसने बंगाल के शासक को भी दो बार युद्ध में परास्त कर दिया था।** गुजरात से वापिस आने पर हुमायूँ ने वास्तविकता का अध्ययन नहीं किया और एक वर्ष आगरे में आमोद-प्रमोद में लीन रहा।

हुमायूँ का चुनार पर अधिकार—२७ जुलाई १५३७ को हुमायूँ शेरखाँ के दमन के लिए चुनारगढ़ की ओर अपनी सेना लेकर चला। मुग़लों ने चुनारगढ़ के दुर्ग को घेर लिया। इस समय इस दुर्ग का रक्षक शेरखाँ का पुत्र कुतुब खाँ था। पर्याप्त कठिनाइयों का सामना कर चुनारगढ़ पर मुगलों का अधिकार हुआ। इधर शेरखाँ ने गौड़ तथा रोहताश के दुर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। चुनार विजय कर हुमायूँ बनारस आ गया और शेरखाँ से सन्धि की वार्ता प्रारम्भ की। **शेरखाँ हुमायूँ** को बिहार प्रान्त देने के लिए इस शर्त पर तैयार हुआ कि बंगाल पर उसका अधिकार स्वीकृत कर लिया जाए। **शेरखाँ ने यह वचन दिया कि वह १० लाख रुपये प्रति वर्ष कर के रूप में देता रहेगा।**

हुमायूँ का बंगाल की ओर प्रथान—हुमायूँ ने इसे स्वीकार किया, किन्तु इसी

नए रोहताश दुर्ग पर अधिकार किया और वह लाहौर की ओर चल दिया। लाहौर पर निर्विरोध हुमायूँ का अधिकार स्थापित हो गया। वहाँ से उसने पंजाब के कुछ प्रदेशों को अपने अधिकार में किया। अन्त में अफगानों और मुगलों में मच्छीवारा नामक स्थान पर भीषण युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ विजयी हुआ। इस विजय के परिणाम-स्वरूप हुमायूँ का अधिकांश पंजाब पर अधिकार हो गया। सिकन्दरशाह को जब इस पराजय का समाचार ज्ञात हुआ तो उसको बड़ा क्रोध आया और स्वयं एक सेना सहित सरहिन्द की ओर मुगलों का सामना करने के लिए चल पड़ा। अफगानों और मुगलों में सरहिन्द के निकट एक भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुगल-सेना विजयी हुई और सिकन्दर को अपने प्राणों की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। २० जुलाई सन् १५५५ ई० को हुमायूँ ने दिल्ली पर अधिकार किया। उसने अपने पुत्र अकबर को बैरम खाँ के साथ पंजाब में अफगान सरदारों का दमन करने के लिए भेजा। इस प्रकार हुमायूँ ने पुनः दिल्ली साम्राज्य को अपने अधीन किया। पन्द्रह वर्ष के उपरान्त वह पुनः दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

हुमायूँ की मृत्यु—हुमायूँ अपनी नव-विजयों का सुख अधिक काल तक नहीं भोग सका। उसकी भारत विजय हो भी न पाई थी कि एक संध्या को जब हुमायूँ अपने पुस्तकालय की छत पर बैठा हुआ विद्याध्ययन में तल्लीन था तो उसने मुल्ला की अजान की आवाज सुनी। तत्काल ही वह चल पड़ा और वह जब जीने की सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया और गिर पड़ा। वह तुरन्त ही महल में लेजाया गया और उपचार आरम्भ हो गया, किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। २६ जनवरी १५५६ ई० को उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि **"हुमायूँ जीवन भर लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाते-लड़खड़ाते हो उसकी मृत्यु हुई।"** *

हुमायूँ का चरित्र और उसका मूल्यांकन

हुमायूँ के कार्यों तथा जीवन की समीक्षा के उपरान्त उसके चरित्र एवम् उसके कार्यों का मूल्यांकन करना अत्यन्त आवश्यक है। उसके चरित्र का निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विश्लेषण किया जा सकता है—

(१) **हुमायूँ व्यक्ति के रूप में**—हुमायूँ व्यक्ति के रूप में आदर्श था। इस विषय पर विद्वान् एक मत हैं, और सभी उसको आदर्श व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। (i) **आज्ञाकारी पुत्र**—वह अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र था। उसने जीवन भर अपने पिता की आज्ञाओं का पालन किया। उसने इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि पिता की आज्ञापालन के कारण ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यहाँ तक कि उसको अपना राज्य भी इसी बात के कारण त्यागना पड़ा। वह अपनी माता के प्रति श्रद्धा रखता था। (ii) **सम्बन्धियों से सद्व्यवहार**—उसका अपने समस्त सम्बन्धियों से बड़ा सच्चा तथा प्रशंसनीय व्यव-

---

* **"He tottered in and tottered out of life."** —**Lane-Poole.**

हार था। (iii) **पत्नियों में अनुरक्ति**—उसके कई पत्नियाँ थीं, किन्तु उनके प्रति वह अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करता था। (iv) **योग्य पिता**—वह एक योग्य पिता भी था, उसका अपनी सन्तानों के प्रति प्रेम तथा अनुराग था। (v) **सम्बन्धियों को क्षमा प्रदान**—उसने अपने सम्बन्धियों के विद्रोह करने पर भी उनके साथ कठोर व्यवहार नहीं किया, वरन् उसने उनको क्षमा प्रदान की। उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया। (vi) **उदार व्यक्ति**—वह बड़ा उदार था। वह अपने सेवकों के साथ भी सद्व्यवहार करता था, परन्तु वह आमोद-प्रमोद तथा नशे का दास था।

(२) **हुमायूँ विद्वान के रूप में**—(i) हुमायूँ स्वयं शिक्षित था और वह विद्वानों का आदर करता था। (ii) उसको तुर्की तथा फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था; वह सत्संग का बड़ा प्रेमी था। (iii) वह धर्म-सम्बन्धी तथा साहित्यिक चर्चा में विशेष आनन्द अनुभव करता था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों की सहायता करने में अपना परम सौभाग्य समझता था। (iv) हुमायूँ को गणित, दर्शन, ज्योतिष आदि के अध्ययन में विशेष रुचि थी। यहाँ इतना अवश्य जान लेना चाहिए कि विद्वत्ता में वह बाबर के समान नहीं था। वह कभी-कभी भाषा तथा शुद्ध शब्दों के प्रयोग में भूल कर जाया करता था, किन्तु वह एक सुसंस्कृत व्यक्ति था।

(३) **हुमायूँ सच्चे मुसलमान के रूप में**—हुमायूँ निष्ठावान पक्का मुसलमान था। उसका इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों में दृढ़ विश्वास था, किन्तु वह धार्मिक मदांध नहीं था, उसका शियाओं से अच्छा व्यवहार था। उसने उनके साथ अनुदार नीति का व्यवहार नहीं किया। उसकी पत्नि हमीदा बानू बेगम तथा उसका विशेष कृपापात्र सरदार अमीर बेरम खाँ दोनों शिया थे, **किन्तु जहाँ तक उसकी धार्मिक नीति का सम्बन्ध हिन्दुओं से था वह अपने समय के विचारों से ऊपर नहीं उठ पाया।** उसने हिन्दूओं के मन्दिरों को नष्ट किया और उनके साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया। वह मुसलमानों का बड़ा पक्षपाती था। इस नीति के कारण ही उसको हिन्दूओं से सहायता प्राप्त नहीं हुई और न उसके लिए उनमें श्रद्धा की भावना ही जागृत हुई।

(४) **हुमायूँ सैनिक के रूप में**—(i) हुमायूँ में शारीरिक बल बहुत था। वह बड़े शानदार डीलडोल का था। वह बड़ा वीर और साहसी था। (ii) उसको युद्ध से भय नहीं था। वह भीषण आपत्तियों के समय में भी अपने साहस तथा धैर्य का परित्याग नहीं करता था। (iii) वह कष्टों से विचलित नहीं होता था और उनको सरलतापूर्वक सहन कर लेता था। (iv) उसे युद्ध-कला का ज्ञान तथा अनुभव था, किन्तु वह अपने पिता के समान एक योग्य सेनापति तथा सैन्य-संचालक नहीं था। (v) उसमें नेता के गुण भी विद्यमान नहीं थे। वह अपनी सेना को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाया। इसी कारण उसके अमीरों तथा सरदारों ने उनके विरुद्ध विद्रोह किए। जो सेना बाबर के नेतृत्व में सफल हुई उसको हुमायूँ के नेतृत्व में असफलता का कटु अनुभव करना पडा (iv) अपने विपक्षियों की आपत्तियों का लाभ उठाना नहीं जानता था। इसके विपरीत उसने उनको अपनी शक्ति संगठित करने के प्रयास के लिए अवसर प्रदान किया जो उसकी एक विशेष भूल थी।

(५) हुमायूँ शासक के रूप में—(i) हुमायूँ की गणना योग्य तथा कुशल शासकों में नहीं की जाती। वास्तव में हुमायूँ में अपने पिता बाबर के समान रचनात्मक कार्यों के करने की क्षमता तथा प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। (ii) उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, वरन् राज्य-सिंहासन की प्राप्ति के उपरान्त वह साम्राज्य-विस्तार के कार्यों में संलग्न हो गया। (iii) उसने जनता की नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को उन्नत करने की ओर ध्यान नहीं दिया। (iv) उसने दूसरी बार भी शेरशाह द्वारा स्थापित सुदृढ़ शासन-व्यवस्था को जमाने की चेष्टा नहीं की। कुछ लोगों का यह कथन है कि वह समय के अभाव में ऐसा नहीं कर सका, किन्तु यह सत्य से बहुत दूर है। वास्तव में, उसमें इन कार्यों के करने की योग्यता ही नहीं थी।

अतएव हुमायूँ में सेनापति तथा कुशल शासन-प्रबन्धक के गुणों का सर्वथा अभाव था जो मध्यकालीन युग के सम्राटों की एक प्रमुख विशेषता थी। इसके अभाव में कोई भी शासक सफल नहीं हो सकता था और यदि हुमायूँ अपने जीवन-काल में सफलता प्राप्त नहीं कर सका तो इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए कहा जाता है कि हुमायूँ अभाग्यवान व्यक्ति था, यद्यपि हुमायूँ शब्द का शाब्दिक अर्थ 'भाग्यशाली' है।* वह शासक की दृष्टि से पूर्णतया असफल रहा। अधिकतर इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि हुमायूँ योग्य व कुशल शासक नहीं था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) अफगान और मुगलों में १५३० और १५४० के बीच भारतवर्ष का राज्य प्राप्त करने के लिए जो संघर्ष हुआ उसका वर्णन कीजिए और हुमायूँ की असफलता के कारण भी बतलाइए।

(२) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की हार के कारण बतलाइए।

(३) हुमायूँ को गद्दी पर बैठने के बाद किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन कठिनाइयों के लिए बाबर कहाँ तक उत्तरदायी था?

(४) हुमायूँ को अपने पिता की मृत्यु के बाद किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? क्या यह सत्य है कि उसकी बहुत-सी कठिनाइयों के कारण उसके भाई थे?

(५) हुमायूँ के विरुद्ध शेरशाह की सफलता के कारण बतलाइए।

राजस्थान—

(१) "ऐसा कहा जाता है कि हुमायूँ ने अपनी विजयों का पूर्ण प्रयोग नहीं किया।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

(२) क्या हुमायूँ असफल रहा? हुमायूँ के शासन-काल की घटनाओं का उल्लेख करते हुए अपने कथन को स्पष्ट कीजिए।

(३) 'हुमायूँ को अपने पिता से अनेक कठिनाइयाँ देन के रूप में प्राप्त हुई थीं जिनको अपनी भूलों से उसने और भी बढ़ा लिया।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

---

* "Humayun means fortunate but no unfortunate king ever ascended the throne of Delhi."

३

शेरशाह तथा उसके उत्तराधिकारी

गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि सन् १५४० ई० में शेरखाँ ने हुमायूँ को कन्नौज के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया जिसके परिणामस्वरूप हुमायूँ आगरा तथा दिल्ली का परित्याग करने पर बाध्य हुआ। शेरशाह दिल्ली तथा आगरे की ओर बढ़ा और उसने तुरन्त उन दोनों महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। दिल्ली का सुल्तान बनने के उपरान्त उसके कार्यों की व्याख्या करने के पूर्व यह अति आवश्यक प्रतीत होता है कि उसके प्रारम्भिक जीवन पर भी प्रकाश डाला जाए।

शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन

(१) **बाल्यकाल**—प्रारम्भ में शेरशाह की स्थिति बड़ी साधारण थी और वह अपनी योग्यता के आधार पर ही एक दिन दिल्ली साम्राज्य का स्वामी बनने में सफल हुआ। **उसका बचपन का नाम फरीद था। वह इब्राहीम सूर का पोता था जो पेशावर के समीप के पहाड़ी प्रदेश रोह का निवासी था।** उसका व्यवसाय घोड़ों का क्रय-विक्रय करना था। कुछ समय पश्चात् नौकरी की खोज में उसने भारत की ओर प्रस्थान किया। उसने पंजाब में रहना उचित समझा। **यहाँ इब्राहीम के पुत्र हसन खाँ की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम फरीद रक्खा गया।** उसका जन्म सन् १४७२ ई० में हुआ। कानूनगो के अनुसार उसका जन्म-वर्ष सन् १४८६ बतलाया गया है। हसन ने जमाल खाँ के यहाँ नौकरी की। जब वह जौनपुर गया तो हसन भी अपने परिवार को लेकर उसके साथ वहाँ चला गया। जमाल ने उसको सहसराम की जागीर प्रदान की। फरीद ने बाल्यकाल सहसराम में व्यतीत किया।

शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन

(१) बाल्याकाल।
(२) शिक्षा।
(३) सहसराम की जागीर का प्रबन्ध।
(४) गृह छोड़ना तथा फिर वापिस आना।
(५) बिहार का उप-गवर्नर।
(६) पद से निवृत्ति।
(७) पद का पुनःप्राप्त करना।
(८) उप-गवर्नर के पद पर पुनः नियुक्ति।
(९) बंगाल पर आक्रमण।
(१०) चुनार पर अधिकार।
(११) शेरखाँ का हुमायूँ से संघर्ष।
(१२) शेरखाँ का राज्यसिंहासन पर आसीन होना।

(२) **शिक्षा**—हसन की कई पत्नियाँ थीं। वह अपनी सबसे छोटी पत्नी से विशेष प्रेम करता था जिसके कारण बाल्यकाल में फरीद को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। अपने पिता तथा अपनी विमाता के व्यवहार से तंग आकर उसने अपने पिता के गृह का परित्याग कर दिया। **वह जौनपुर गया जो उस समय सभ्यता तथा संस्कृति का केन्द्र समझा जाता था। वहाँ उसने अकथनीय परिश्रम द्वारा अरबी और फारसी साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।** उसने शीघ्र ही फारसी के प्रमुख ग्रंथों **'गुलिस्ताँ', 'बोस्ताँ',** तथा **'सिकन्दरनामा'** का अध्ययन किया। उसने अध्ययन में विशेष योग्यता तथा प्रतिभा का परिचय दिया, जिसके कारण अफगानों का सुसंस्कृत समाज स्वतः उसकी ओर आकृष्ट हो गया। जमाल खाँ भी उससे बड़ा प्रभावित हुआ और उसने पिता-पुत्र में समझौता करा दिया, जिसके फलस्वरूप हसन उसको सहसराम लिवा लाया और अपनी जागीर का प्रबन्ध उसके हाथ में सौंप दिया।

(३) **सहसराम की जागीर का प्रबन्ध**—फरीद ने अपनी पैतृक जागीर के प्रबन्ध में योग्यता का परिचय दिया। **उसने समस्त अधिकारियों को कड़े नियन्त्रण में रक्खा और उनके कार्यों की स्वयं देख-भाल करना आरम्भ किया।** उसने अपनी समस्त जागीर में सुख और शान्ति की स्थापना की। उसने लगान-सम्बन्धी एक विशेष व्यवस्था की स्थापना की, जिससे किसानों को बड़ा सन्तोष हुआ और उनकी आर्थिक-व्यवस्था उन्नत हुई। सन् १५१८ ई० तक वह समस्त कार्यों को करता रहा।

(४) **गृह का छोड़ना तथा फिर वापिस आना**—फरीद की विमाता उसकी योग्यता तथा कार्य-कुशलता के कारण उससे और भी अधिक डाह तथा ईर्ष्या करने लगी। उसने फरीद के विरुद्ध अपने पति के कान भरे जिसके कारण पिता और पुत्र में फिर मन-मुटाव हो गया और **फरीद को पुनः घर छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा।** वह दिल्ली गया और उसने सुल्तान इब्राहीम से सहसराम की जागीर माँगी, किन्तु सुल्तान ने उसकी प्रार्थना की ओर तनिक भी ध्यान न दिया। इसी समय **हसन की मृत्यु हो गई और सुल्तान से सहसराम की जागीर फरीद को प्राप्त हो गई और वह अपनी जागीर की व्यवस्था करने सहसराम आ गया।**

(५) **बिहार का उप-गवर्नर**—यहाँ आकर उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी भाई सुलेमान के कुचक्रों का सामना किया। उसने दक्षिण बिहार के शासक बहार खाँ लोहानी के यहाँ नौकरी की। उसने सेवा बड़ी लगन तथा तत्परता से की, जिससे वह उससे बहुत प्रसन्न हो गया। उसने उसको 'शेरखाँ' की उपाधि से सुशोभित किया, जब उसने एक दिन बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के एक शेर का वध किया। **कुछ समय उपरान्त उसको अपने छोटे पुत्र जमाल खाँ का शिक्षक नियुक्त किया और बाद में उसकी नियुक्ति बिहार के उप-गवर्नर के पद पर हो गई।**

(६) **पद से निवृत्ति**—दक्षिण बिहार के अन्य अफगान सरदार शेरखाँ की उन्नति को देखकर उससे ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। **उन्होंने बहार खाँ के कान भरे कि वह उसके विरुद्ध महमूद लोधी का समर्थक**

है। बहार खाँ पर इस षड्यन्त्र का प्रभाव पड़ा और उसने मुहम्मद खाँ को शेरखाँ तथा उसके भाई सुलेमान के झगड़े का निर्णय करने के लिए मध्यस्थ नियुक्त किया। शेरखाँ ने इसका विरोध किया। **उसने इस पर शेरखाँ को सैनिक शक्ति द्वारा वहाँ से निकाल दिया और सुलेमान के अधिकार में समस्त जागीर आ गई।**

(७) पद का पुनः प्राप्त करना—इस प्रकार अफगान अमीरों के कुचक्र तथा षड्यन्त्र के कारण शेरखाँ पुनः गृह-विहीन हो गया। उसने अपनी जागीर पर अधिकार करने के लिए जौनपुर के मुगल-गवर्नर की सहायता प्राप्त की। इससे उसके मान तथा प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। किन्तु कुछ समय उपरान्त उसने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की और अफगानों में उसके मान की स्थापना हो गई। शेरखाँ बाबर से बड़ा प्रभावित हुआ था और उसने मुगलों के सैनिक संगठन का अध्ययन तथा उनकी युद्ध-प्रणाली की जानकारी प्राप्त करने के लिए आगरे की ओर जाने का निश्चय किया। **सन् १५२७ ई० में वह आगरा गया। वह बाबर को प्रभावित करने में सफल हुआ और उसने उसको अपने सेवकों में स्थान दिया।** मुगलों की सैनिक-व्यवस्था तथा संचालन का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शेरखाँ ने बाबर को विहार पर आक्रमण के समय विशेष सहायता प्रदान की जिसके फलस्वरूप उसको उसकी जागीर सहसराम पुनः प्राप्त हुई। कुछ समय वहाँ रहकर उसने अफगानों को संगठित करने का निश्चय किया और वह दक्षिणी बंगाल के सुल्तान मुहम्मद के पास गया जिसने **उसको जलाल खाँ का शिक्षक नियुक्त किया।** सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त उसकी विधवा पत्नी ने शेरखाँ को अपना वकील नियुक्त किया। अब उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने सैनिक-संगठन की ओर भी ध्यान दिया। उन समस्त दोषों का अन्त किया जो उस समय अफगानों में विद्यमान थे। उसने अपने समर्थकों के एक दल का भी निर्माण किया, किन्तु उसने अपने स्वामी की सेवा करने में हाथ नहीं खींचा। **सन् १५२९ ई० में इब्राहीम लोधी का छोटा भाई महमूद बिहार आया। उसके नेतृत्व में अफगान सरदारों ने सम्मिलित होकर एक सेना का संगठन मुगलों का विरोध करने के अभिप्राय से किया।** प्रारम्भ में शेरखाँ इससे अलग रहा, किन्तु बाद में वह इसमें सम्मिलित हो गया। आरम्भ में अफगानियों को सफलता प्राप्त हुई, किन्तु जब उसको बनारस विजय के उपरान्त मुगल-सेना के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ तो वे भयभीत हो गए। अफगान सरदारों ने बाबर की अधीनता स्वीकार करली। बाबर ने जलाल खाँ को बिहार इस शर्त पर वापिस किया कि वह वार्षिक कर चुकाता रहेगा। शेरखाँ को भी उसकी जागीर वापिस मिल गई।

(८) उप-गवर्नर के पद पर पुनः नियुक्ति—शेरखाँ फिर विहार का उप-गवर्नर नियुक्त हुआ। शेरखाँ ने विहार की आर्थिक दशा को उन्नत करने का घोर प्रयत्न किया जो बाबर तथा महमूद के युद्ध के कारण बड़ी शौचनीय हो गई थी। जलाल खाँ की माँ की मृत्यु होने पर शासन की समस्त सत्ता शेरखाँ के अधिकार में

आ गई। **उसने सेना का पुनर्संगठन किया और अपने विश्वास-पात्रों को उच्च पदों पर आसीन किया।** इससे उसकी प्रतिष्ठा तथा मान में बड़ी वृद्धि हुई। अतः इस समय शेरखाँ ने जलाल खाँ के संरक्षक के रूप में स्वेच्छाकारी शासन कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया।

(९) **बंगाल पर आक्रमण**—सन् १५२९ ई० में बंगाल के शासक नुसरशाह ने अपनी शक्ति तथा साम्राज्य का विस्तार करने के अभिप्राय से दक्षिणी बिहार को अपने अधिकार में करने के लिए आक्रमण किया। वह शेरखाँ की बढ़ती हुई शक्ति को सहन नहीं कर सका। **शेरखाँ नुसरतशाह की महत्वाकांक्षाओं को भली प्रकार समझता था।** वह युद्ध के लिए तैयार था। उसने नुसरतशाह की **सेनाओं को दो बार युद्ध में परास्त किया।** जलाल खाँ दक्षिणी बिहार से चला गया और शेरखाँ के हाथ में अब समस्त राजनीतिक सत्ता आ गई। वह दक्षिणी बिहार पर राजा के समान शासन करने लगा, किन्तु उसने अपने आपको किसी राजसी उपाधि से सुशोभित नहीं किया।

(१०) **चुनार पर अधिकार**—इसी समय सन् १५३० ई० में शेरखाँ को चुनार पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। चुनार के शासक तथा उसके पुत्र में झगड़ा हो गया जिसमें पुत्र ने अपने पिता ताजखाँ का वध कर दिया। शेरखाँ ने ताजखाँ की विधवा पत्नि लाद मलिका से विवाह किया और चुनार को अपने अधीन किया। **चुनार के उसके अधिकार में आ जाने के कारण शेरखाँ की सैनिक तथा आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ हो गई, क्योंकि यह दुर्ग बड़ा दृढ़ माना जाता था और वहाँ से उसको बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ।** इन प्रारम्भिक विजयों के कारण शेरखाँ की महत्वाकांक्षाओं में बहुत वृद्धि हुई और वह स्वतन्त्र शासक बनने की कल्पना करने लगा।

(११) **शेरखाँ का हुमायूँ से संघर्ष**—नुसरतशाह की मृत्यु के उपरान्त बंगाल का शासक उसका पुत्र महमूद हुआ। वह बिहार को अपने राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने कुतुब खाँ को बिहार भेजा। शेरखाँ ने उसे परास्त किया। अफगान सरदारों को इससे शान्ति प्राप्त नहीं हुई और उन्होंने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ समय के पश्चात् उसने पुनः बंगाल की सेना को परास्त किया। इस युद्ध के कारण शेरखाँ को बहुत लाभ हुआ। १५३५ ई० में उसने पुनः बंगाल पर आक्रमण किया और उसको विशेष धन प्राप्त हुआ। १५३७ ई० में उसने एक बार फिर बंगाल को अपने अधिकार में किया। चुनार पर शेरखाँ का अधिकार हो जाने से हुमायूँ को विशेष चिन्ता हुई। इसके बाद शेरखाँ ने रोहताश के दुर्ग पर अधिकार किया। शेरखाँ से युद्ध करने से लिए हुमायूँ बिहार की ओर आया, किन्तु दोनों में एक सन्धि हो गई। शेरखाँ का चुनार पर पूर्ववत् अधिकार बना रहा। कुछ समय पश्चात् हुमायूँ शेरखाँ की शक्ति का दमन करने के लिए फिर पूर्व की ओर आया। इस समय शेरखाँ बंगाल में था। हुमायूँ भी बंगाल गया और वहाँ उसने अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

शेरखाँ तुरन्त बंगाल छोड़कर बिहार चला आया और उसने मुगल-साम्राज्य के प्रदेशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। हुमायूँ को इस समाचार का ज्ञान प्राप्त होते ही वह बिहार की ओर आया। **दोनों सेनाओं में चौसा नामक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें हुमायूँ बुरी तरह परास्त हुआ और उसको अपनी रक्षा के लिए गंगा में कूदना पड़ा।** हुमायूँ तुरन्त आगरे पहुँचा और एक सेना लेकर शेरखाँ का सामना करने के लिए चल पड़ा। **कन्नौज के स्थान पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूँ को पुनः परास्त होना पड़ा। शेरखाँ की सेना ने हुमायूँ का पीछा किया और आगरे पर अपना अधिकार स्थापित किया।** इस प्रकार शेरखाँ दिल्ली और आगरे पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुआ।

(१२) **शेरखाँ का राज्य-सिंहासन पर आसीन होना**—शेरखाँ दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार करने के उपरान्त 'शेरशाह' के नाम से राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने शीघ्र ही ऐसी योजना का निर्माण किया जिससे कि हुमायूँ भारत में न रह सके।

शेरशाह की विजयें

हुमायूँ के पलायन करने के उपरान्त शेरशाह ने पश्चिमोत्तर सीमा की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया जिसकी दशा इस समय बड़ी अव्यवस्थित थी। उसकी प्रमुख विजयें निम्नांकित हैं—

(१) **खोखरों पर विजय**— शीघ्र ही शेरशाह का ध्यान खोखरों के प्रदेश की विजय की ओर आकर्षित हुआ। यह प्रदेश झेलम और सिन्ध नदी के मध्य में है। दिल्ली के शासकों के लिए इस स्थान का महत्व बहुत अधिक था। **उसने इस प्रदेश पर आक्रमण किया और उनको बुरी तरह परास्त किया, किन्तु वह उनको पूर्णतया अपने अधिकार में करने में सफल नहीं हो सका।** शेरशाह ने इस प्रदेश में एक दुर्ग का निर्माण कराया और इसका नाम बिहार के विशाल दुर्ग के नाम पर रोहताश रक्खा और वहाँ ५,००० सैनिकों को योग्य सेनापतियों के नेतृत्व में दुर्ग की रक्षा के लिए नियुक्त किया। इस प्रकार की सुव्यवस्था स्थापित कर वह दिल्ली वापिस चला आया।

शेरशाह की विजयें

(१) खोखरों पर विजय।
(२) बंगाल-विजय।
(३) मालवा-विजय।
(४) रणथम्भौर-विजय।
(५) रायसिन-विजय।
(६) मुल्तान तथा सिन्ध विजय।
(७) राजपूताना-विजय—
  (क) मारवाड़, और
  (ख) मेवाड़।
(८) कालिंजर-विजय।

(२) **बंगाल-विजय**—इसी समय शेरशाह को सूचना मिली कि खिज्रखाँ स्वतन्त्र होने का विचार कर रहा है। शेरशाह तुरन्त उसकी शक्ति का दमन करने के लिए बंगाल की ओर गया। **उसने खिज्रखाँ को बन्दी बनाया और** और बंगाल में नए ढंग से शासन-प्रबन्ध की स्थापना की जिससे भावी उपद्रवों से

शक्ति तथा अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित के लिए करते थे। **वह अपनी प्रजा के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था और उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता था।** वह शासन की न्यूनतम बातों को भी ध्यान से देखता था। वह कर्मचारियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था और जब वे उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करते थे तो वह उनको कठोर दण्ड दिया करता था। इससे वे सदा सचेत रहते थे और अनुचित कार्य करने से बहुत डरते थे। उनको प्रत्येक समय शासक का भय बना रहता था। **शेरशाह के काल में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण पद नहीं था। वास्तव में शेरशाह स्वयं अपना मन्त्री था और वह स्वयं अपनी योग्यता तथा निर्णय के आधार पर समस्त शासन का संचालन किया करता था।** समस्त शासन विभिन्न विभागों में विभक्त था जिनका **वह स्वयं सर्वेसर्वा था।** वह प्रधान सेनापति तथा न्यायाधीश था, अतः शासन की समस्त सत्ता उसके हाथों में निहित थी।

(1985) (३) **साम्राज्य-विभाजन**—शेरशाह ने शासन की सुविधा एवं उचित शासन-व्यवस्था के लिए अपने समस्त विशाल साम्राज्य को ४७ भागों में विभक्त कर दिया था। प्रत्येक विभाग का शासन एक अफगान सरदान के हाथ में था, जिसको अमीन या फौजदार कहते थे। वह शेरशाह के प्रति उत्तरदायी था और उसको उसकी आज्ञाएँ माननीय थीं। उसका प्रमुख कर्त्तव्य अपने प्रान्त में शान्ति तथा सुरक्षा की व्यवस्था करना था। उसकी सहायता के लिए और भी बहुत-से कर्मचारी होते थे। प्रत्येक प्रान्त कई सरकारों में विभक्त था। प्रत्येक सरकार में दो पदाधिकारी रहते थे, जिनको शिकदार-ए-शिकदारान (मुख्य शिकदार) तथा मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान (मुख्य मुन्सिफ) कहते थे। प्रथम का मुख्य कार्य शान्ति की स्थापना करना था, जबकि द्वितीय का मुख्य कार्य न्याय-सम्बन्धी था। इनके अतिरिक्त प्रत्येक परगने में एक अमीन, एक खजाञ्ची और हिसाब रखने के लिए एक हिन्दी और एक फारसी का क्लर्क होता था। पटवारी, चौधरी और मुकद्दम भी होते थे जो राज्य के कर्मचारियों की सहायता किया करते थे। शिकदार का पद सैनिक था। उसका मुख्य कार्य शाही आज्ञाओं के अनुसार आचरण करना तथा अमीन को आवश्यकता के समय सैनिक सहायता प्रदान करना था। अमीन का मुख्य कार्य लगान तय करना तथा उसका वसूल करना था। वह केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी था। उसके नीचे अन्य कई कर्मचारी कार्य करते थे। वह दीवानी तथा माल-सम्बन्धी मुकदमों का फैसला भी करता था। इन पदाधिकारियों को समय-समय पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेज दिया जाता था। शेरशाह इस बात का **विशेष ध्यान रखता था कि एक कर्मचारी कई वर्षों तक एक स्थान पर कार्य न करे।** इसका कारण यह था कि किसी एक विशेष पदाधिकारी का प्रभाव एक स्थान पर अधिक न हो जाए जिससे उसके हृदय में जनता का सहयोग प्राप्त कर विद्रोह की भावना का उदय न हो जाए। प्रत्येक परगना गाँवों में विभक्त था जहाँ पटवारी, मुकद्दम तथा चौधरी होते थे। मुखिया का पद विशेष महत्वपूर्ण था। उसका मुख्य कर्त्तव्य अपने क्षेत्रों में अपराधों का अन्त करना था। शेरशाह की यह आज्ञा थी कि **यदि किसी के क्षेत्र**

में चोरी अथवा डाका पड़ता था तो उस क्षेत्र के मुखिया को चोर अथवा डाकू का पता लगाना अनिवार्य था। यदि उसका वह पता नहीं मालूम कर सकता था तो उसको क्षति-पूर्ति करनी पड़ती थी। इससे ये लोग बड़े सचेत रहते थे और चोरियों तथा अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई थी।

(1983, 1986) **(४) भूमि-व्यवस्था**—शासन-सम्बन्धी सुधारों के इतिहास में शेरशाह की भूमि-व्यवस्था का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उसकी शासन व्यवस्था भविष्य के लिए एक आदर्श थी, जिसका अनुकरण प्रर्याप्त मात्रा में भविष्य में किया गया। आवश्यकता एवं समय के अनुसार उसमें परिवर्तन अवश्य किया, किन्तु सिद्धान्त वही माना गया (i) शेरशाह ने समस्त **कृषि योग्य भूमि की नाप करवाई और सिकंदरी गज का प्रयोग किया गया।** नाप के लिए उसने रस्सी का प्रयोग किया। समस्त **भूमि को बीघों में विभक्त** किया गया। एक बीघे का क्षेत्रफल ३६० वर्ग गज निश्चित किया गया। (ii) लगान उपज के अनुमान पर निश्चित किया जाता था। किसान राज्य को **लगान के रूप में उपज का १/२ या १/४ भाग देते थे।** राज्य की ओर से उनको यह सुविधा प्राप्त थी कि वे लगान अनाज अथवा धन के रूप में दे सकते थे, किन्तु राज्य अनाज की अपेक्षा धन के रूप में लगान लेना अधिक पसन्द करता था। (iii) अमीन, मुकद्दम, शिकदार, कानूनगो तथा पटवारी लगान वसूल करते थे। शेरशाह का कर्मचारियों को यह आदेश था कि **लगान निश्चित करते समय नम्रता दिखलाई जाए किन्तु लगान वसूल करते समय कठोरता का व्यवहार किया जाए** जिससे कि बकाया अगले वर्ष के लिए शेष न रहे। (iv) उसने **किसानों के अधिकार कबूलियत (पट्टे) द्वारा सुरक्षित किए।** कबूलियत राज्य और किसानों के बीच एक समझौता था। किसान को यह अधिकार प्राप्त था कि वह स्वयं राजकोष में लगान जमा कर सके। इस प्रकार शेरशाह ने यह प्रयत्न किया कि किसान तथा राज्य का सीधा सम्पर्क स्थापित हो जाए और बीच के व्यक्तियों का महत्व कम हो गया। (v) **फसल खराब होने पर किसान लगान मुक्त कर दिए जाते थे।** केवल इतना ही नहीं वरन् उनको राजकोष से आर्थिक सहायता तकावी के रूप में भी दी जाती थी। उसका किसानों के साथ अच्छा व्यवहार था। (vi) उसका सैनिकों को आदेश था कि **वे फसल को खराब न कर** और यदि किसी अनिवार्य कारणवश फसल को सैनिकों द्वारा हानि हो जाती थी तो किसानों की क्षतिपूर्ति राज्य की ओर से की जाती थी। जब कभी शेरशा अपने शत्रु के प्रदेश में प्रवेश करता था तो भी वह इस बात का ध्यान रखता था कि किसानों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचने पाए। उसके इन सुधारों से किसानों क बहुत बड़ा लाभ हुआ। वे स्वतन्त्रतापूर्वक कृषि का कार्य करने लगे और सरकार आय में बड़ी वृद्धि हुई। इन सुधारों द्वारा भारत की आर्थिक अवस्था उन्नत हुई।

(५) न्याय-व्यवस्था—शेरशाह ने न्याय-व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया उसकी धारणा थी कि जिस समय तक न्याय-व्यवस्था उन्नत नहीं होगी उस समय त साम्राज्य का स्थायी होना असम्भव होगा। वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उस

न्याय-व्यवस्था विशेष कठोर न थी, वरन् उसने कठोर **न्याय-व्यवस्था में उदारता का** संचार किया। वह सत्यता की खोज करने का पूर्ण प्रयत्न करता था। अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड दिया जाता था। **उसका छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, हिन्दु-मुसलमान सबके लिए समान दण्ड-विधान था।** इसमें वह किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता था। **वह प्रधान न्यायधीश था और बड़े-बड़े मुकदमों की अपील स्वयं सुनता था।** फौजदारी के मुकदमों का निर्णय शिकदार-ए-शिकदारान तथा मालगुजारी के मुकदमों का निर्णय मुन्सिफान-ए-मुन्सिफान किया करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ और भी न्यायालय थे। शेरशाह का आदेश था कि **मुकद्दमों को अपने क्षेत्र के अपराधियों का पता लगाना होगा और यदि वे ऐसा करने में असमर्थ रहें तो उनको दण्ड दिया जाए।** इस व्यवस्था के कारण अपराधों की संख्या बहुत कम हो गई और जनता सुख और शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करने लगी।

(६) **सैनिक-व्यवस्था**—शेरशाह ने सैनिक-शक्ति के आधार पर ही दिल्ली साम्राज्य पर अधिकार किया। वह जानता था कि नव-स्थापित साम्राज्य की सुरक्षा उसके सैनिक संगठन पर ही अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। साम्राज्य-विस्तार के लिए भी उचित सैनिक व्यवस्था का होना परम आवश्यक है। उक्त बातों को ध्यान में रखकर उसने सैनिक-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। (i) शेरशाह ने अलाउद्दीन खिलजी के समान **एक सुसंगठित सेना की व्यवस्था की** और उसकी सैनिक-व्यवस्था को आधार मानकर ही कार्य किया। (ii) उसने सैनिकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जिसके कारण सैनिकों में उसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई और वे उसकी सेवा करने के लिए प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। (iii) उसने **जागीर प्रथा का अन्त किया** और समस्त सम्राज्य के लिए एक सेना का निर्माण किया जो केवल उसके अधीन थी और उसके प्रति ही उत्तरदायी थी। (iv) वह सैनिक व्यवस्था में इतनी अधिक दिलचस्पी लेता था कि **स्वयं प्रत्येक सैनिक को भर्ती करता था** और उसकी योग्यता तथा कार्य-कुशलता के अनुसार उसका वेतन निश्चित करता था। (v) **वह वेतन सैनिकों को धन के रूप में देता था।** (vi) उसने इस सम्बन्ध में **प्रान्तीय सूबेदारों के अधिकारों को सीमित** कर दिया, जिससे उनकी शक्ति को बड़ा धक्का पहुँचा और राज्य में विद्रोह की आशंका बहुत कम हो गई। उसने हिन्दुओं को भी सैनिक सेवा करने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार के राष्ट्रीयकरण की ओर उसने बहुत महत्वपूर्ण कदम उठाया। (vii) साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर **छावनियों की स्थापना की**, जहाँ सेना रक्खी जाती थी। प्रत्येक छावनी में एक फौजदार था जो उसके अधीन था और उसके प्रति ही उत्तरदायी था। उसने पुराने दुर्गों की मरम्मत करवाई और नए दुर्गों का निर्माण करवाया। (viii) उसकी सेना में १,५०,००० घुड़सवार, २५,००० पैदल थे जो अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित थे। उसकी सेना में हाथी तथा उच्च-कोटि का तोपखाना भी था। (ix) सेना के लिए अनुशासन का पालन करना अनिवार्य था। अनुशासन भंग करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। (x) उसने घोड़ों

पर दाग लगाने तथा सैनिकों व घोड़ों का हुलिया लिखने की परिपाटी अपनायी जिससे कोई बेईमानी न कर सकें। वह स्वयं सेना का निरीक्षण किया करता था और हुलिया मिलाया करता था। उसका अपने सैनिकों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार था। वह हर समय उसके दुःख दूर करने का प्रयत्न करता था। इस उच्चकोटि की सैनिक-व्यवस्था के आधार पर ही वह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ।

(७) **पुलिस तथा गुप्तचर विभाग**—शेरशाह ने आन्तरिक शान्ति तथा सुरक्षा के लिए पुलिस तथा गुप्तचर विभाग की सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। अपराधों को रोकना तथा अपराधियों का पता लगाने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्थानीय अधिकारियों के ऊपर था। यदि वे उनका पता लगाने में असमर्थ होते थे तो उनको क्षति-पूर्ति करनी पड़ती थी अथवा उनको दण्ड दिया जाता था। इससे अधिकारी वर्ग बहुत सचेत रहता था और जनता की जान-माल की सुरक्षा की व्यवस्था स्वतः हो गई। उसने साम्राज्य की बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए **गुप्तचर विभाग** की स्थापना की। मध्ययुग में इस विभाग का महत्व बहुत अधिक था, क्योंकि उस समय शासक की सत्ता के अन्त करने के अभिप्राय के षड़यन्त्र हुआ करते थे। इसके अभाव में राज्य का स्थायी रखना असम्भव था। ये लोग भेष बदल कर सदा भ्रमण करते थे और शासक को समस्त बातों से अवगत करते थे। इनके भय के कारण अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन बड़ी सतर्कता तथा निष्ठा से करते थे। इनके कारण आने-जाने के मार्ग सुरक्षित हो गये जिससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(८) **गमनागमन के साधन** -शेरशाह ने सार्वजनिक कार्यों की ओर भी विशेष ध्यान दिया। इस समय सड़कें बहुत कम थीं जिसके कारण यात्रियों तथा सैनिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने में विशेष कठिनाई का अनुभव करना पड़ता था और समय का भी दुरुपयोग होता था। भारत में शेरशाह प्रथम शासक था जिससे बड़े पैमाने पर सड़कों के निर्माण की ओर ध्यान दिया। इसके द्वारा साम्राज्य के प्रमुख नगर एक दूसरे से जुड़ गए और आने-जाने में विशेष सरलता अनुभव होने लगी। उसने निम्न चार प्रमुख सड़कों का निर्माण कराया—

(क) ग्रांड ट्रंक सड़क—कलकत्ते से पेशावर तक,
(ख) आगरे से बुहानपुर तक,
(ग) आगरे से जोधपुर तक और फिर चित्तौड़ तक और,
(घ) लाहौर से मुल्तान तक,

इन सड़कों को अन्य प्रकार से भी मिलाया गया और मिलाने के लिये कुछ अन्य छोटी-छोटी सड़कों का भी निर्माण हुआ। उसने सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए जिससे कि यात्रियों को चलने में सुविधा रहे। प्रत्येक सड़क पर दो-दो मील की दूरी पर सराएँ बनवायीं। इनमें हिन्दुओं और मुसलमानों के ठहरने का अलग-अलग प्रबन्ध था। यात्रियों को उनके पद के अनुसार सराय में सामान मिलता था। प्रत्येक

सराय में एक कुआँ और एक मस्जिद होती थी। सरायों के आस-पास गाँवों का निर्माण किया गया। सराय डाक चौकियों का काम भी करती थीं। प्रत्येक सराय में दो घुड़सवार रहते थे जो आस-पास के समाचार केन्द्र को भेजते थे।

(९) **डाक विभाग**—शेरशाह ने डाक विभाग को भी उन्नत किया। उसने व्यवस्था की कि डाक कम समय में एक स्थान से दूसरे तक आ जा सके। डाक घोड़ों तथा पैदल हरकारों द्वारा भेजी जाती थी। सरायों से डाक-चौकियों का काम लिया जाता था।

(१०) **भवन-निर्माण**—शेरशाह को भवन-निर्माण कराने का बड़ा चाव था। **उसने दिल्ली के समीप एक नगर बनवाया तथा पंजाब में रोहताश नामक एक नगर का निर्माण कराया। उसने सहसराम में अपना भव्य मकबरा बनवाया** उसका यह मकबरा भारत में स्थापत्य कला का उत्कृष्ठ नमूना समझा जाता है। बाहर से इसकी शैली मुस्लिम है, किन्तु अन्दर से हिन्दू है। उसने एक जामा मस्जिद तथा कई दुर्गों का निर्माण कराया। उसने कन्नौज के पास शेरपुर नामक एक नगर की भी स्थापना की।

(११) **सार्वजनिक कार्य**—शेरशाह ने सर्वसाधारण के हित के लिए बहुत **से औषधालय, दानशालाएँ तथा सरायों का निर्माण करवाया। उसके भोजनालय में सहस्रों व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। वह बड़ा दानी था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों और धार्मिक व्यक्तियों को बहुत दान देता था। वह स्वयं बड़ा विद्वान था और विद्वानों की हर सम्भव रूप से सहायता करने को तैयार रहता था। उसने शिक्षा को उन्नत करने की ओर ध्यान भी दिया। उसने अनेक पाठशालाएँ खुलवायी।** वह अच्छे तथा योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दिया करता था। उसने उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए **मदरसे खुलवाए।** गरीब लोगों के लिए उसने लंगरों की व्यवस्था की जहाँ उनको **निःशुल्क भोजन** मिलता था। शेरशाह ने मुद्रा को भी सुधारा।

इस प्रकार शेरशाह ने अपनी शासन-व्यवस्था में अनेक सुधार किए। ऐसा कोई भी विभाग नहीं था जिसमें उसने उचित व्यवस्था की ओर ध्यान न दिया हो। वास्तव में उसने समस्त शासन-सम्बन्धी क्षेत्रों में सुधार किए और उनके द्वारा ही उसकी योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण आभास प्राप्त होता है। उसके शासन-काल में समस्त साम्राज्य में सुख और शान्ति का राज्य था। दुर्भाग्य से वह केवल पाँच वर्ष तक ही भारत की सेवा कर सका जिससे उसकी शासन-व्यवस्था को अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। यदि वह कुछ समय तक और जीवित रहा होता तो वह भारत में ऐसी व्यवस्था की स्थापना करने में सफल हो जाता जिसकी नकल भविष्य में पूर्णतया की जाती, किन्तु इस अल्पकाल में जो कुछ भी वह कर पाया वह अद्वितीय था और उसकी योग्यता का पूर्ण प्रतीक है।

शेरशाह का चरित्र तथा उसका मूल्यांकन

उत्तरी भारत के मुसलमान शासकों में शेरशाह ही प्रथम मुसलमान सुल्तान था जिसका राजदरबार से कोई सम्बन्ध न था और वह राजकीय पद प्राप्त करने

में सफल हुआ। उसको शासन-व्यवस्था की दीक्षा अपनी पितृ जागीर के प्रबन्ध द्वारा प्राप्त हुई और अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर वह दिल्ली का सुल्तान बना और उसकी गणना भारत के प्रमुख शासकों में की जाती है। जिस समय वह राज्यसिंहान पर आसीन हुआ उस समय उसकी अवस्था ६८ वर्ष की थी, किन्तु इतनी अवस्था होने पर भी उसने बड़े उत्साह तथा लगन के साथ कार्य किया। वह **एक सफल सेनापति, दुरदर्शी शासक तथा एक महान् राष्ट्रनिर्माता था।** वह एक उच्चकोटि का संगठन-कर्त्ता था। इसी गुण के आधार पर वह अफगानों की बिखरी हुई शक्ति को संगठित करने में सफल हुआ।

(i) **शेरशाह व्यक्ति के रूप में** - शेरशाह में व्यक्तिगत आकर्षण न था। उसको जीवन भर कठिनाइयों तथा आपत्तियों का सामना करना पड़ा जिसके कारण उसका बाह्य रूप बड़ा शुष्क था। उसके पिता का उससे अच्छा व्यवहार नहीं था और विमाता के कारण उसको कई बार अपने गृह को त्यागना पड़ा। इस कारण वह एक **आज्ञाकारी पुत्र नहीं बन सका, किन्तु माँ बेटे में** हार्दिक प्रेम था; क्योंकि दोनों को ही अपने अभिभावक के दुःखों का समान रूप से सामना करना पड़ा। उसका अपने पुत्रों से भी बाबर के समान कोई विशेष प्रेम नहीं था। **उसमें दाम्पत्य प्रेम का भी अभाव था। शेरशाह सुशिक्षित था।** उसको अरबी तथा फारसी का अच्छा ज्ञान था, किन्तु उसकी गणना विद्वानों में नहीं की जा सकती है। **वह विद्वानों का आदर करता था** और समय-समय पर उनका सत्संग भी किया कर था। उसके समय में कोई विशेष रचना नहीं हुई और न ही किसी कवि अथवा साहित्यकार को राज-दरबार में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। वास्तव में उसके पास इतना समय ही नहीं था कि वह इन सब बातों की ओर ध्यान देता। उसका तो अधिकांश समय शासन-सम्बन्धी कार्य में व्यतीत हो जाता था। वह **बड़ा परिश्रमी था।** वह दिन भर में १६ घण्टे राज्य-कार्य में व्यतीत करता था। वह अपने समस्त कर्मचारियों के कार्य का स्वयं निरीक्षण किया करता था और उनको अलग-अलग आदेश दिया करता था। वह बहुत-सा धन निर्धनों में वितरण कर दिया करता था। वह बड़ा **कर्त्तव्यपरायण था,** और उसका पालन करने की विशेष कोशिश किया करता था। उसमें धार्मिक सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में थी और उसका व्यवहार हिन्दू तथा मुसलमान जनता के साथ समान था। वह अपने लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास करता था और उसके लिए सब कुछ करने को उद्यत रहता था। उसकी प्राप्ति में वह उचित अथवा अनुचित का ध्यान नहीं करता था।

(ii) **शेरशाह सैनिक के रूप में**—शेरशाह का स्थान **सैनिक के रूप में महान् था।** यद्यपि वह व्यवसाय से एक सैनिक नहीं था, किन्तु शिक्षा तथा आवश्यकता ने उसको एक सैनिक बना दिया। वह एक **उच्च कोटि का सैनिक था। वह बड़ा वीर तथा साहसी था। वह भयानक परिस्थितियों का सामना** बड़ी वीरता तथा उत्साह से करता था। वह एक **योग्य सेनापति** था। उसकी प्रत्येक सैनिक कार्यवाही में उसकी श्रेष्ठ प्रतिभा तथा चातुर्य का पूरा परिचय मिलता है। वह सर्वप्रथम

अपनी रक्षा की व्यवस्था की ओर ध्यान देता था। वह शत्रु पर सामने से आक्रमण नहीं करता था वरन् अचानक आक्रमण किया करता था। उसकी सैनिक कार्यवाहियाँ बड़ी द्रुत-गति से होती थीं जिनके कारण शत्रु अपनी सेना को सुसंगठित नहीं कर पाता था और वह शीघ्र ही तितर-बितर हो जाती थी। वह शत्रु की आपत्तियों का लाभ उठाना जानता था। वह विजय प्राप्त करने के लिए **नैतिकता व अनैतिकता की** ओर ध्यान नहीं देता था। वह अच्छे तथा बुरे समस्त साधनों का प्रयोग करने को उद्यत रहता था उसका सैनिकों **के साथ सद्व्यवहार था।** वह उनके साथ सदा सुख तथा दुःख भोगने को तैयार रहता था और उनके समान समस्त काम करने को तैयार हो जाता था।

(iii) शेरशाह विजेता के रूप में—उसका स्थान विजेता के रूप में भी महान् था। **वह बड़ा दूरदर्शी विजेता था।** वह प्रदेशों की केवल विजय ही नहीं करता था, वरन् विजित होने पर वह उन प्रदेशों की **सुव्यवस्था की ओर** भी ध्यान देता था। उसका विजित प्रदेश की जनता के साथ और विशेषकर कृषकों के साथ अच्छा व्यवहार रहता था। वह **व्यर्थ में रक्तपात करने का पक्षपाती नहीं था।** उसने अपने बाहुबल से तथा सैनिक प्रतिभा के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की, और उस पर सुव्यवस्थित शासन किया। यह सत्य है कि उसकी मृत्यु होते ही साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया, किन्तु उसका उत्तरादायित्व उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों पर है जिन्होंने उसके उच्च आदर्शों का परित्याग कर दिया।

(iv) शेरशाह शासक के रूप में—शेरशाह ने शासक के रूप में विशेष सफलता प्राप्त की। उसमें **रचनात्मक प्रतिभा अधिक थी।** उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत किया और भारत में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जो पर्याप्त समय से भारत में विद्यमान नहीं थी। उसने प्रत्येक दिशा मे सुधार किए। उसके शासन-प्रबन्ध की समस्त इतिहासकारों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उसने सदा प्रजा के हित का ध्यान रक्खा। **उसके भूमि-सम्बन्धी सुधारों के द्वारा किसानों को बहुत लाभ हुआ जिससे भारत की आर्थिक अवस्था उन्नत हुई।** उसने **आवागमन के मार्गों की सुरक्षा** के लिए पुलिस तथा गुप्तचर विभाग को संगठित किया जिससे व्यापार तथा वाणिज्य को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने **अपराधों का उत्तरदायित्व स्थानीय कर्मचारियों पर सौंपा** जिसके कारण वे अपने कर्त्तव्यपालन में सदा सचेत रहते थे। वह किसानों के ऊपर किसी प्रकार का अन्याय सहन नहीं कर सकता था। फसल के खराब होने पर उनको **तकावी** दी जाती थी और लगन से मुक्ति मिलती थी। कोई उनकी फसल खराब नहीं कर सकता था। यदि सैनिकों द्वारा ऐसा हो जाता था तो किसानों की क्षति-पूर्ति की जाती थी। उसने **राजनीति में धर्म को कोई स्थान** नहीं दिया, यद्यपि वह स्वयं कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम के कानूनों का बड़ा पाबन्द था। अतः उसके **शासन का स्वरूप लौकिक था।** यद्यपि वह **स्वेच्छाचारी और निरंकुश** शासक था, किन्तु वह सदा अपने अधिकारों का प्रयोग जनता के हित

का ध्यान रखकर कियाँ करता था। उसका भूमि-प्रबन्ध, उसकी कर-नीति उसका न्याय-विधान और उसकी सेना का संगठन सभी उनकी अपूर्व प्रतिभा के द्योतक हैं, और उसकी उच्च-कोटि की क्रियात्पक बुद्धि के परिचायक हैं। इस प्रकार यह कहना सत्य होगा कि वह एक दूरदर्शी के साथ-साथ एक सफल शासक भी था।

(v) **शेरशाह राष्ट्र-निर्माण के रूप में**—शेरशाह ही मुसलमान सुल्तानों में प्रथम शासक था जिसने **भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने का प्रयत्न किया**। उसका हिन्दुओं तथा मुसलमानों से समान व्यवहार था। उसने हिन्दुओं को भी उन्नति करने के अवसर मुसलमानों को समान प्रदान किए। अतः उसने दोनों में भेद-भाव का अन्त करने की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया। दुर्भाग्य से वह केवल पाँच वर्ष तक ही शासन कर पाया और उसकी नीति पूर्णतया कार्यान्वित नहीं हो पाई।

शेरशाह का मूल्यांकन—उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शेरशाह अपनी शासन-व्यवस्था तथा चरित्र-बल के आधार पर इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उसकी तुलना किसी भी मध्यकालीन शासक से की जा सकती है। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ प्रमुख इतिहासकारों के मत निम्न पंक्तियों में अंकित किए जाते हैं—

कीन के अनुसार—"उसका (शेरशाह) सम्पूर्ण संक्षिप्त शासन एकता के सिद्धान्त पर आधारित था। वह दूरदर्शी व्यक्ति उन सभी व्यवस्थाओं का जन्मदाता था जो मध्यकालीन भारतीय शासकों द्वारा अपनी प्रजा के हित के लिए की गई थीं। किसी भी अन्य सरकार ने यहाँ तक कि ब्रिटिश सरकार ने भी उतनी बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं की जितनी इस पठान ने की है।"[1]

एर्सकाईन के अनुसार—"वह (शेरशाह) अपनी प्रतिभा के बल से राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ और जिस उच्च पद पर वह आसीन हुआ उसने अपने आपको उसके योग्य सिद्ध किया। बुद्धिमत्ता तथा अनुभव में, शासन तथा राजस्व के प्रबन्ध में तथा सामरिक कौशल में वह भारत के सम्राटों में सबसे अधिक महान् है। उसमें जितना व्यवस्थापक तथा जनता के संरक्षण का भाव था उतना अकबर के पूर्व किसी अन्य राजकुमार में नहीं था।"[2]

ऐलिफन्सटन का मत—"शेरशाह बड़ी ही बुद्धिमत्ता तथा योग्यया का शासक

---

1. "His brief career was devoted to the establishment of the unity which he had long ago perceived to be the great need of his country. Though a devoted Muslim he never opposed his Hindu subject. No Government, not even the British has shown so much wisdon as this Pathan." —Keene.

2. "He rose to the throne by his own talents and showed himself worthy of the high elevation which he attained. In intelligence, in sound sense and exneperience, in his civil and financial arrangement and in military skill, he is acknowledged to have been by far the most eminent of his nation who ever ruled in India. Shershah had more of the spirit of the legislator and guardian of his people than any prince before Akbar." —Erskine.

प्रतीत होता है। उसकी आकांक्षाएँ उसके सिद्धान्तों के लिए अत्यन्त प्रबल थीं। परन्तु उसकी प्रजा के लिए की गई योजनाएँ जितनी क्रियात्मक रूप में तर्कपूर्ण थीं उतनी ही अपने उद्देश्यों में उदार थीं।"[3]

हेग के अनुसार—"वास्तव में शेरशाह उन महात्तम शासकों में से एक था जो दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुए। ऐबक से लेकर औरंगजेब तक किसी अन्य को न तो शासन के ब्यौरे का इतना ज्ञान था और न इतनी योग्यता तथा कुशलता के साथ किसी ने सार्वजनिक कार्यों पर इतना नियन्त्रण रखा, जितना उसने।"[4]

कानूनगो के अनुसार—"शेरशाह के राज्यारोहण से उदार इस्लाम का वह युग आरम्भ हुआ जो औरगजेब के काल की प्रक्रिया के आरम्भ होने से पहले तक चलता रहा। भारतीय राष्ट्र का प्रथम निर्माता बनने के लिए वह अकबर की प्रतिद्वन्द्विता कर सकता है। शेरशाह के शासन की व्यवस्था उसके वंश के साथ समाप्त नहीं हुई, वरन् थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ सम्पूर्ण मुगल-काल में चलती रही। वह आधुनिक काल की शासन-व्यवस्था की आधारशिला है।'[5]

प्रोफेसर एस० आर० शर्मा के अनुसार—यदि हम उसकी तुलना सामन्तों के प्रति व्यवहार में हेनरी अष्टम से, सैनिक सगठन तथा प्रशासन की ओर अधिक ध्यान देने में प्रशिया के महान्तम आन्तरिक शासक फ्रेडरिक विलियम प्रथम से, व्यवहारिक दृष्टिकोण तथा सिद्धान्तों में कौटिल्य तथा मैक्यावली से, और उदार विचारों तथा प्रजा के सभी वर्गों के हित चिन्तक में अशोक से करें तो उसमें अतिशयोक्ति न होगी।"

शेरशाह की सफलता के कारण

शेरशाह एक जागीरदार का पुत्र था और विमाता के कारण उनको कई बार अपने घर का परित्याग करने पर बाध्य होना पड़ा और अन्त में वह हुमायूँ को भारत परित्याग कराने में सफल हुआ। उसकी वह सफलता वास्तव में बड़ी महान् थी। यह सफलता उसको किसी आकस्मिक घटना के कारण प्राप्त नहीं हुई बल्कि उसके कुछ विशेष कारण थे जिनका उल्लेख अग्र पंक्तियों किया जाएगा—

---

[3] "Sher Shah appears to have been a prince of consumate prudence and ability. His ambition was always too strong for his principle...but towards his subjects. His measures were as benevolent in their intentions as wise in their conduct. Notwithstading his short reign and constant activity in the field, he brought his territories into the highest order and he introduced many improvements in his civil government." —**Elphinston.**

[4] "He was however, the greatest Muslim ruler of India and entirely free from and active in the correction of the faults usually associated with his race. By the time he attained the supreme authority, he was ultimately aquainted with all the details of civil Government as no other Indian rulers before or since had been." —**Haig.**

[5] "The work of his administrative genius did not perish with his dynasty, but rested throughout the Moghul period. It forms the sub-structure of our present administrative system." —**Qanungo.**

शेरशाह की सफलता के कारण

(१) सैनिक योग्यता।
(२) कूटनीतिज्ञ।
(३) लक्ष्य की प्रधानता।
(४) संगठन-शक्ति।
(५) दृढ़ संकल्प।
(६) अनुशासन-प्रेमी।
(७) कर्त्तव्य-परायणता।
(८) मितव्ययिता।

(१) **सैनिक योग्यता**—शेरशाह उच्च-कोटि का सैनिक तथा कुशल सेनापति था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक सैनिक में होने अनिवार्य थे। वह बड़ा वीर तथा अदम्य उत्साही था। वह भीषण परिस्थितियों से तनिक भी विचलित नहीं होता था वरन् उनका सामना करने को तत्पर रहता था।

(२) **उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ**—शेरशाह बड़ा कूटनीतिज्ञ था। अपनी कूटनीति के द्वारा ही बंगाल को पराजित कर सका और हुमायूँ को भारत से निकालकर ही उसने चैन ली। वह समय का सदुपयोग करना जानता था। उसने केवल उस समय हुमायूँ से युद्ध किया जब उसने अनुभव कर लिया कि इस समय उसकी विजय अवश्य होगी, अन्यथा वह युद्ध को टालता रहता और समय आने पर हुमायूँ से सन्धि कर लेता था। उसने हुमायूँ के शत्रुओं को अपनी ओर मिलाया और गुजरात के शासक बहादुरशाह से गठबन्धन किया।

(३) **लक्ष्य की प्रधानता**—शेरशाह का लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास था। वह उसकी प्राप्ति के लिए सब कुछ करने को उद्यत रहता था। वह प्रत्येक साधन का प्रयोग करने से नहीं हिचकता था, चाहे वह नैतिक दृष्टि से ठीक हो या न हो।

(४) **संगठन-शक्ति**—शेरशाह में संगठन-शक्ति बहुत प्रबल थी। वह जानता था कि अफगानों को संगठित किए बिना वह मुगलों को भारत से बाहर निकालने में सफल नहीं हो सकता। उसने अफगानों को एकता के सूत्र में बाँधकर मुगलों की शक्ति का विरोध किया। अफगानों को एक नेता की आवश्यकता थी जिसकी शेरशाह ने पूर्ति की, और शेरशाह को समर्थकों की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति अफगानों ने की।

(५) **दृढ़ संकल्प**—शेरशाह दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था। वह जिस बात का निश्चय कर लेता था उसकी प्राप्ति के लिए वह प्रत्येक सम्भव उपाय की शरण लेता था।

(६) **अनुशासन-प्रेमी**—शेरशाह अनुशासन प्रेमी था। यद्यपि वह सैनिकों तथा अपने अन्य कर्मचारियों के साथ सहृदयता का व्यवहार करता था, किन्तु वह उस समय उनको कठोर दण्ड देने से नहीं हिचकिचाता था, जब उन्होंने अनुशासन भंग करने की चेष्टा की अथवा उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं किया।

(७) **कर्त्तव्य-परायणता**—शेरशाह में कर्त्तव्य-परायणता का गुण विशेष मात्रा में था। वह अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार समझता था और उनकी पूर्ति के लिए वह अनवरत अध्यवसाय करता था।

(८) **मितव्ययिता**—शेरहशाह जानता था कि सेना को एकत्रित तथा संगठित करने के लिए धन की बहुत आवश्यकता है। उसके अभाव में सैनिक संगठन शिथिल पड़ जाएगा। इस कारण वह बहुत सोच-समझ कर धन का व्यय करता था।

बाबर और शेरशाह की तुलना

समानता—बाबर और शेरशाह दोनों ही महान् व्यक्ति थे और उनका भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, दोनों में पर्याप्त समानताएँ तथा विभिन्नताएं विद्यमान थीं। (i) **दोनों ने अपने बाहुबल द्वारा भारत में नए साम्राज्य की स्थापना की और एक नए राजवंश के हाथ में शासन की सत्ता आयी।** बाबर ने मुगल वंश की और शेरशाह के सूर वंश की स्थापना की। (ii) **दोनों ही महान् सैनिक तथा योग्य सेनापति थे और दोनों को बाल्यकाल में विशेष आपत्तियों का सामना करना पड़ा,** जिनका समाधान दोनों ने बड़े धैर्य तथा साहस से किया। (iii) **दोनों को कई बार अपने घर का परित्याग करना।** (iv) दोनों ही **लक्ष्य प्राप्ति करना अपना** परम कर्त्तव्य समझते थे और उसकी पूर्ति के लिए किसी भी प्रकार के साधन का प्रयोग करने में नहीं हिचकते थे। (v) **उनको नैतिकता तथा अनैतिकता का विशेष ध्यान नहीं रहता था। दोनों पक्के मुसलमान थे** और उनकी ईश्वर में अटूट भक्ति थी। (iv) दोनों को साहित्य तथा कला से अनुराग था और दोनों ही विद्वानों को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। दोनों उच्च कोटि के विद्वान थे।

विभिन्नताएँ—उक्त समानता के होते हुए दोनों में पर्याप्त विभिन्नताएँ थीं। (i) बाबर राजवंश का था और उसमें दो महान् विजेताओं के रक्त का सम्मिश्रण था जबकि शेरशाह एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। (ii) बाबर के पिता ने अपने पुत्र को सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न किया और उसको उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान की, जबकि शेरशाह के पिता ने उसकी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था नहीं की; उसने स्वयं अपने परिश्रम द्वारा शिक्षा-लाभ किया। शेरशाह की उसके पिता से सदा अनबन रही और अपनी विमाता के दुर्व्यवहार के कारण वह अपना घर-बार छोड़ने पर बाध्य हुआ। (iii) बाबर के साधन शेरशाह के साधनों की तुलना में बहुत अधिक थे। (iv) शेरशाह न केवल एक विजेता ही था, वरन् वह एक उच्च कोटि का शासक भी था; जबकि बाबर केवल विजेता ही था। शेरशाह ने विजित प्रदेशों की उचित व्यवस्था की जबकि बाबर ने इस ओर तनिक भी प्रयास नहीं किया। (v) शेरशाह का दृष्टिकोण बाबर की अपेक्षा बड़ा व्यापक था। उसका हिन्दुओं तथा मुसलमानों के साथ समान व्यवहार था और उसने हिन्दुओं को उन्नति करने का अवसर प्रदान किया, जबकि बाबर ने हिन्दुओं के विरुद्ध अपनी सेना में धार्मिक उत्साह का संचार किया और उनको जिहाद के लिए प्रोत्साहित किया। (vi) बाबर ने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया जबकि इस दशा में शेरशाह ने महत्व-पूर्ण कदम उठाया और देश में सुख और शान्ति की स्थापना की। शेरशाह का चरित्र बाबर के चरित्र से उज्जवल था। (vii) बाबर अनेक व्यवसनों का दास था जब कि शेरशाह में कोई व्यसन नहीं था। (viii) बाबर में वात्सल्य प्रेम शेरशाह

की अपेक्षा अधिक था। बाबर अपनी पत्नियों तथा अपने पुत्रों से विशेष प्रेम रखता था जबकि शेरशाह में इसका सर्वथा अभाव था। (ix) बाबर उच्चकोटि का लेखक था जबकि शेरशाह में यह गुण नहीं था। इतने पर भी दोनों महान् विभूतियाँ थीं और भारतीय इतिहास में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है।

शेरशाह और हुमायूँ की तुलना

शेरशाह और हुमायूँ एक दूसरे के समकालीन थे और दोनों में प्रतिद्विन्द्विता थी। दोनों एक दूसरे के शत्रु थे और दोनों का पर्याप्त समय तक भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें शेरशाह को सफलता प्राप्त हुई और हुमायूँ को भारत छोड़ना पड़ा। इन दोनों में समानता केवल इतनी थी कि दोनों वीर तथा बड़े साहसी थे और दोनों को साहित्य तथा कला से अनुराग था। इसके अतिरिक्त उनमें असमानताएँ बहुत अधिक थीं—(i) हुमायूँ को उत्तराधिकार में एक साम्राज्य प्राप्त हुआ था जबकि शेरशाह को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ था। हुमायूँ भारत के विजेता तथा दिल्ली सम्राट का ज्येष्ठ पुत्र था, जबकि शेरशाह एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। (ii) बाबर हुमायूँ को विशेष प्रेम करता था जबकि शेरशाह पिता के प्रेम तथा कृपा से पूर्णतया वंचित था। (iii) शेरशाह ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जबकि हुमायूँ ने अपने पिता द्वारा स्थापित साम्राज्य को गवां दिया। (iv) शेरशाह में उच्च कोटि की शासन-सम्बन्धी प्रतिभा थी और उसने शासन-व्यवथा को संगठित कर देश में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया, जबकि हुमायूँ ने दस वर्ष के शासन-काल में इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। (y) शेरशाह उच्च कोटि का सेनानायक था और उसमें संगठन-शक्ति बहुत अधिक थी; हुमायूँ में इन गुणों का सर्वथा अभाव था। (iv) शेरशाह का चरित्र बहुत उज्जवल था। वह दुर्व्यसनों का दास नहीं था, जबकि हुमायूँ आराम-तलब तथा नशे का दास था। (vii) शेरशाह अपने लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास रखता था और

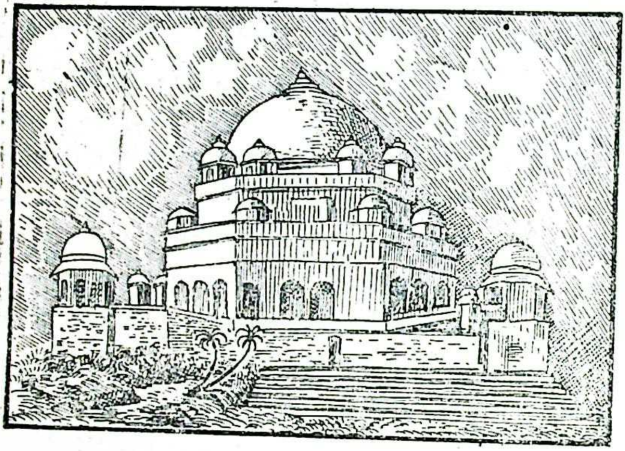

शेरशाह का मकबरा

उसकी पूर्ति में सदा उद्यत रहता था। हुमायूं ने अपना समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया। (viii) शेरशाह कूटनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी था। हुमायूं में इन गुणों का अभाव था। (ix) शेरशाह की विजय स्थायी थी जबकि हुमायूं क्षणभंगुर विजयों मे ही बड़ा प्रसन्न होता था। (x) शेरशाह शत्रु की दुर्बलताओं का लाभ उठाना जानता था और वह सुअवसर को हाथ से नहीं जाने देता था जबकि हुमायूं ने सुअवसरों को सदा खोया और उसका कोई लाभ नहीं उठाया। (xi) शेरशाह हुमायूं की अपेक्षा बहुत चालाक था। उसने हुमायूं को सदा धोखा दिया और उसको सदा मूर्ख बनाया। शेरशाह हुमायूं की अपेक्षा एक योग्य सैन्य-संचालक था। हैवल के शब्दों में—

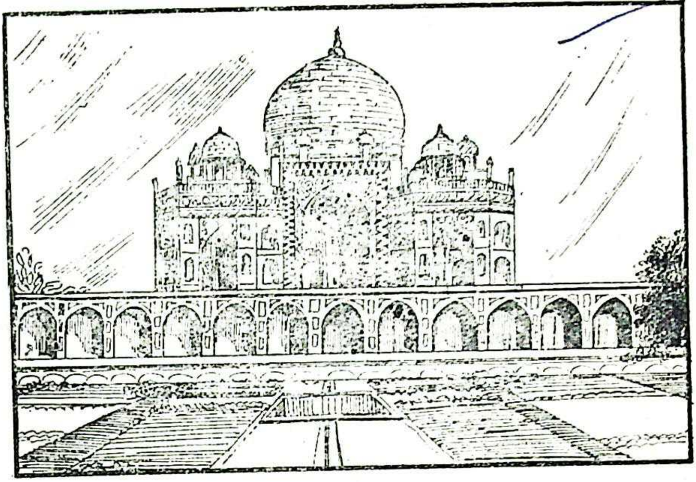

हुमायूँ का मक़बरा

"The constrast between Sher Shah and Humayun could not be better illustrated than in the two great monuments which perpetuate their memory. Humayun's masoleum at Delhi portrays in its polished elegance the facile charmeur and rather superficial dilettante of the Persian school, whose best title to fame is that he was the father of Akbar." Sher Shah's at Sahesram, the stern, strong man, egotist and empirebuilder, who trampled all his enemies under foot and ruled Hindustan with a rod of iron."

—*(E. B. Havell : Aryan Rule in India. Pp. 448-449)*

शेरशाह के उत्तराधिकारी

२२ मई १५४५ ई० को केवल पाँच वर्ष भारत पर शासन कर शेरशाह की असामयिक मृत्यु कालिंजर में हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने उसके छोटे पुत्र **जलाल खाँ** को राज्यसिंहासन पर आसीन किया, यद्यपि शेरशाह अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गया था। जलालखाँ इस्लाम-शाह की उपाधि धारण कर राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसका राज्याभिषेक कालिंजर में २७ मई १५४५ ई० को सम्पन्न हुआ।

इस्लामशाह—वह एक सुशिक्षित व्यक्ति था और फारसी का अच्छा कवि था। वह एक योग्य सैनिक तथा कुशल सेनापति था। राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पूर्व ही उसने अपनी सैनिक प्रतिभा का कई अवसरों पर पूर्ण परिचय दिया। उसने कालिंजर के राजा का वध करवाया और सेना का सहयोग प्राप्त करने के अभिप्राय से उसने सैनिकों को एक मास का वेतन पारितोषिक के रूप में दिया। इस्लामशाह अपने ज्येष्ठ भ्राता आदिल खाँ से सदा शंकित रहता था। उसने शीघ्र ही उसके विरुद्ध एक षड़यन्त्र रचा। षड़यन्त्र को पूर्ण करने के अभिप्राय से उसने उसको आगरे बुलाया। उसको षड़यन्त्र का कुछ आभास हो गया था और वह आगरे जाना अपने लिए हितकर नहीं समझता था, परन्तु कुछ अमीरों के आश्वासन पर वह आगरे आया। यहाँ उसके वध करने का षड़यन्त्र रचा गया, किन्तु यह असफल रहा। अब अमीरों ने दोनों भाइयों में समझौता कराया। आदिल खाँ को वियाना का सूबेदार नियुक्त किया गया। आदिल खाँ तथा कुछ अफगान अमीर सुल्तान के इस व्यवहार से असन्तुष्ट हुए। उन्होंने विद्रोह किया जिसका तुरन्त दमन कर दिया गया। आदिल खाँ भाग कर पन्ना चला गया। फिर उसका कोई समाचार नहीं मिला। इस्लामशाह ने शीघ्र ही अन्य अमीरों का दमन किया और उनको कठोर दण्ड दिया गया। **शासन को दृढ़ करना**—विद्रोहियों का दमन कर उसने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का प्रबन्ध किया। उसने उन अमीरों का वध किया जिन पर उसको जरा भी सन्देह था। इससे अमीरों में असन्तोष बढ़ गया और उन्होंने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह किया। **इस विद्रोह का नेतृत्व नियाजी लोगों ने किया।** इस विद्रोह का भी शाही सेना दमन करने में सफल हुई। इसके अतिरिक्त साम्राज्य के अन्य लोगों में भी विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, किन्तु उन सबका दमन कठोरता से किया गया। इस समय तक हुमायूं ने काबुल पर अधिकार कर लिया था। वह साम्राज्य की गिरती हुई दशा का लाभ उठाना चाहता था। वह एक सेना लेकर भारत की ओर बढ़ा और सिन्ध नदी पार करने में सफल हुआ। **जब इस्लामशाह को हुमायूँ के आक्रमण का समाचार ज्ञात हुआ तो वह एक सेना लेकर उसका सामना करने के लिए चल पड़ा, यद्यपि वह इस समय स्वयं बहुत बीमार था। उसकी तत्परता को देखकर हुमायूं बिना युद्ध किए ही वापिस चला गया।** इस्लामशाह ग्वालियर चला गया जहाँ विक्षुब्ध अमीरों ने उसकी हत्या करने का षड़यन्त्र रचा जो भेद खुल जाने के कारण असफल रहा। इसके बाद बीमारी से नवम्बर सन् १५५४ ई० में उसका देहान्त हो गया।

फीरोजशाह—इस्लामशाह की मृत्यु के उपरान्त अमीरों ने उसके बारह वर्षीय पुत्र फीरोज को राज्यसिंहासन पर आसीन किया, **किन्तु तीन दिन के उपरान्त ही उसके मामा मुबारिक ने उसका वध कर दिया और स्वयं आदिलशाह की उपाधि धारण कर राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।**

आदिलशाह—वह एक बिल्कुल निकम्मा तथा अयोग्य शासक था। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। उसको निम्न श्रेणी के

लोगों में रहना अधिक रुचिकर प्रतीत होता था। उसके विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। (i) **प्रथम विद्रोह ताजखाँ ने किया।** विद्रोह का दमन कर दिया गया किन्तु ताजखाँ बिहार की ओर भाग गया। (ii) **दूसरा विद्रोह इब्राहीमखाँ ने किया।** उसने शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार किया। आदिलशाह ने दिल्ली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार दिल्ली और आगरे के समीप के प्रदेशों पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया। (iii) **इसी समय अहमद खां सूर ने अपने आपको पंजाब का स्वतन्त्र शासक घोषित किया।** (iv) **बंगाल में महमूद खाँ ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित किया।** अतः इस समय समस्त अफगान राज्य चार भागों में विभक्त हो गया जिसके कारण शासन बड़ा शिथिल हो गया और एकता का अन्त हुआ। (v) **कुछ समय उपरान्त लाहौर के शासक सिकन्दरशाह ने दिल्ली को अपने अधिकार में किया। इब्राहीम इटावे की ओर भाग गया।**

सूर वंश के शासकों की वंशावली

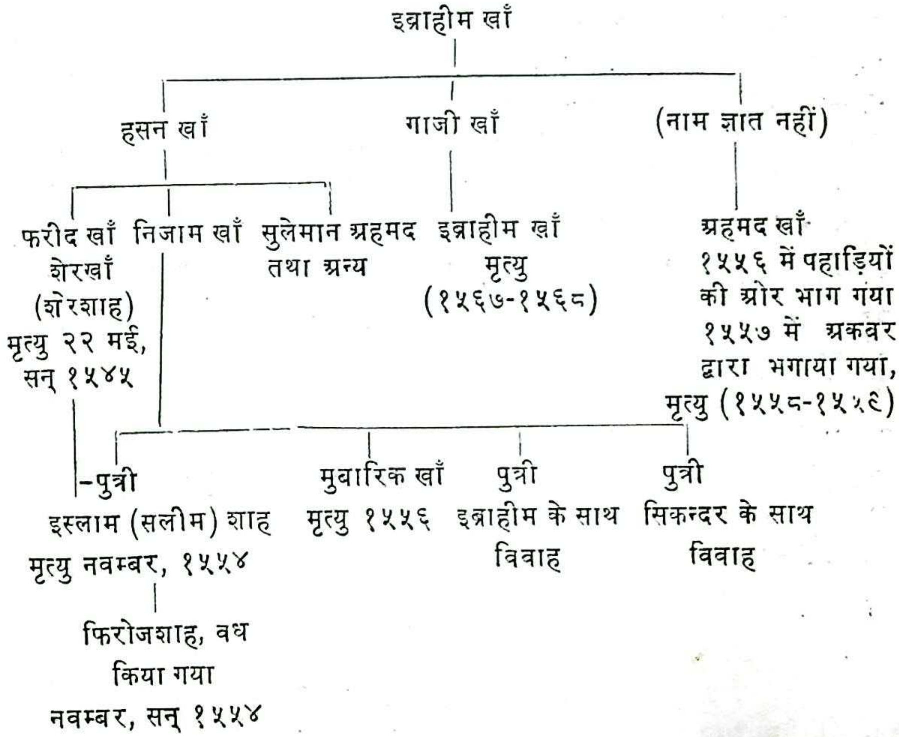
इब्राहीम खाँ
हसन खाँ
गाजी खाँ
(नाम ज्ञात नहीं)
फरीद खाँ शेरखाँ (शेरशाह) मृत्यु २२ मई, सन् १५४५
निजाम खाँ
सुलेमान अहमद तथा अन्य
इब्राहीम खाँ मृत्यु (१५६७-१५६८)
अहमद खाँ १५५६ में पहाड़ियों की ओर भाग गया १५५७ में अकबर द्वारा भगाया गया, मृत्यु (१५५८-१५५९)
-पुत्री
इस्लाम (सलीम) शाह मृत्यु नवम्बर, १५५४
फिरोजशाह, वध किया गया नवम्बर, सन् १५५४
मुबारिक खाँ मृत्यु १५५६
पुत्री इब्राहीम के साथ विवाह
पुत्री सिकन्दर के साथ विवाह

हुमायूँ का दिल्ली पर अधिकार—इसी समय नवम्बर सन् १५५५ ई० में हुमायूँ ने पुनः अपने भाग्य की परीक्षा के अभिप्राय से काबुल से भारत के राज्य पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। उसने सिन्ध नदी पार की और शीघ्र ही लाहौर को अपने अधिकार में किया। हुमायूँ के अधिकार में अफगानों के विरोध के बिना ही

समस्त पंजाब आ गया। जब मुगलों ने दिल्ली की ओर बढ़ना आरम्भ किया तो सिकन्दरशाह ने उसका सामना करने का निश्चय किया। दोनों सेनाओं में **मच्छीवाड़ा** नामक स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूँ पूर्ण विजयी हुआ। मुगलों ने शीघ्र ही दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार किया। इस पर भी अफगानों के पारस्परिक संघर्ष का अन्त नहीं हुआ। इब्राहीम और आदिलशाह में संघर्ष चलता रहा जिसमें आदिलशाह सफल हुआ। उसका बिहार तथा बंगाल पर अधिकार हो गया।

सूर साम्राज्य के पतन के कारण

सूर साम्राज्य की स्थापना शेरशाह जैसे योग्य तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति ने हुमायूँ को परास्त कर सन् १५४० ई० में की। **सन् १५५५ ई० में हुमायूँ पुनः दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार करने में सफल हुआ। वास्तव में यह बात विशेष विचारणीय है कि १५ वर्षों के अन्दर ही इस विशाल तथा सुदृढ़ शासन का किस प्रकार अन्त हो गया।** इसका कोई एक कारण नहीं था, वरन् बहुत-से कारण थे जिन्होंने साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया। इसके पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(१) शेरशाह की असामयिक मृत्यु—शेरशाह १५४० ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ और केवल ५ वर्ष के उपरान्त ही सन् १५४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इन पाँच वर्षों में उसने समस्त उत्तरी भारत की विजय की और समस्त साम्राज्य में सुदृढ़ शासन की व्यवस्था की; किन्तु वह अपने समस्त शत्रुओं को पूर्णतया दमन नहीं कर सका और न उसके शासन की जड़ अधिक दृढ़ हो पाई। थोड़ी-सी आँधी के उठते ही शासन की जड़ें हिल गयीं और हुमायूँ पुनः भारत पर अधिकार करने में सफल हुआ। यदि शेरशाह कुछ समय तक और जीवित रहता तो यह सम्भव था कि वह साम्राज्य की जड़ों को सुदृढ़ करने में सफल होता। शेरशाह इस काल में साम्राज्य को दृढ़ तथा सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है।

(२) उत्तराधिकार के नियमों का अभाव—मुसलमानों में उत्तराधिकार के नियमों का अभाव था। शेरशाह अपने ज्येष्ठ पुत्र आदिल खाँ को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गया था, किन्तु अमीरों ने उसके छोटे भाई जलाल खाँ को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। इससे अमीरों में असन्तोष उत्पन्न हुआ और उन्होंने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। यद्यपि विद्रोहियों का कठोरता से दमन किया गया, किन्तु इस पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वता के कारण अफगानों की सैनिक शक्ति को बहुत आघात पहुँचा जिसने उनके साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया।

(३) शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी—शेरशाह के समान इस वंश में कोई भी योग्य शासक नहीं हुआ। इस्लामशाह में यद्यपि पर्याप्त योग्यता थी, किन्तु उसका अधिकांश समय अफगान अमीरों तथा उनके विद्रोह को दमन करने में व्यतीत हुआ। उसने अमीरों की शक्ति का दमन करने का घोर प्रयत्न किया, जिससे अमीरों में असन्तोष उत्पन्न होने लगा और उनकी राजभक्ति शिथिल हो गई। उसके वध करने के षड्यन्त्र रचे गए, यद्यपि षड्यन्त्रकारियों को सफलता नहीं मिली। उसकी

मृत्यु के बाद उसके बारह वर्षीय पुत्र फीरोज को राज्यसिंहान पर आसीन किया गया, किन्तु उसके मामा ने ही उसका वध कर दिया और स्वयं राज्यसिंहान पर आसीन हुआ। वह बिल्कुल निकम्मा और चरित्रहीन था। उसके समय में साम्राज्य में अराजकता फैल गई।

(४) सामाज्य का विभाजन—आदिलशाह के शासन-काल में अमीरों की महत्वकांक्षा बहुत बढ़ गई और उनमें पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का उदय हुआ। इस कारण समस्त सूर-साम्राज्य चार भागों में विभक्त हो गया। अन्त में सिकन्दर ने दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार किया। जब हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया उस समय अफगान सरदार पारस्परिक युद्ध में व्यस्त थे और उन्होंने हुमायूँ की ओर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरुप हुमायूँ ने बिना किसी विशेष विरोध के समस्त पंजाब को अपने अधिकार में कर लिया और वह दिल्ली की ओर बढ़ा, जिस पर उसका सरलता से अधिकार स्थापित हो गया।

(५) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार—शेरशाह ने अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से अमीरों को तथा सैनिकों को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखा। उसका उनके साथ सद्व्यवहार था जिसके कारण वे उसके लिए अपनी जान की बाजी तक लगानें से नहीं हिचकते थे। उनके साथ उसका सीधा सम्पर्क था और वह उनका विश्वासपात्र था। उसकी मृत्यु के उपरान्त अन्य अफगान शासकों ने अमीरों के साथ दुर्व्यवहार करना आरम्भ किया जिससे उनकी राजभवित कम होने लगी। वे इतने असुन्तुष्ट हो गए कि वे साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने लगे जिसने नव-स्थापित साम्राज्य को पतन की ओर अग्रसर किया।

(६) राजकोष का रिक्त होना—शेरशाह बड़ा मितव्ययी था। वह धन का उचित प्रयोग करता था। बाद के शासकों ने धन का अपव्यय किया जिससे राजकोष रिक्त होने लगा। बिना धन के साम्राज्य की उचित व्यवस्था असम्भव थीं।

सूर वंश के पतन के कारण

(१) शेरशाह की असामयिक मृत्यु।
(२) उत्तराधिकारी के नियम का अभाव।
(३) शेरशाह के अयोग्य उतराधिकारी।
(४) साम्राज्य का विभाजन।
(५) अमीरों के साथ दुर्व्यवहार।
(६) राजकोष का रिक्त होना।
(७) हेमू का अफगानों के साथ दुर्व्यवहार।
(८) हुमायूँ को फारस के शाह की सहायता।

(७) हेमू का अफगानों के साथ दुर्व्यवहार—हेमू आदिलशाह का मन्त्री, प्रधान सेनापति तथा उसका विशेष कृपापात्र था। वह नीच कुल का था और उसका अफगान सरदारों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। अफगानों में उसके व्यवहार के कारण असन्तोष उत्पन्न हो गया और वे उसके पतन के किए प्रयत्न करने लगे।

(८) **हुमायूं को फारस के शाह की सहायता**—हुमायूं फारस के शाह की सहायता प्राप्त कर काबुल का राज्य प्राप्त करने में सफल हुआ और वहाँ से वह भारत की राजनीति का अध्ययन कर सका। जब उसको वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो उसने भारत पर आक्रमण किया और पुनः मुगल-साम्राज्य की भारत में स्थापना करने में सफल हुआ जिससे सूर-वंश का अन्त हुआ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) शेरशाह के शासन का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उसने क्या सुधार-योजनाएँ चलाई? वर्णन करो।

(२) शेरशाह सूरी को अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुए? सविस्तार बतलाइए।

(३) शेरशाह के उत्तराधिकारी सूरी साम्राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल हुए?

(४) शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध के गुण और दोष बताइए।

(५) "शेरशाह भारत के मुस्लिम शासकों में से एक है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(६) शेरशाह की गणना हिन्दुस्तान के महान् शासकों में क्यों की जाती है? कारण लिखिए।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) शेरशाह ने अनजाने में अकबर की महत्ता की नींव की स्थापना की। विवेचना करो।

(२) 'शेरशाह कई बातों में अकबर का अग्रगामी था, किन्तु भारतीय राष्ट्र के निर्माण में नहीं।' विवेचन कीजिए।

४

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और उनका निराकरण

अकबर का राज्यसिंहासन प्राप्त करना—गत अध्याय में इस विषय पर प्रकाश डाला जा चुका है कि हुमायूँ का सन् १५५५ ई० में दिल्ली और आगरे के समीपस्थ प्रदेशों पर अधिकार स्थापित हो चुका था, किन्तु वह इस सुख को अधिक काल तक नहीं भोग सका। एक दिन जब वह अपने पुस्तकालय में बैठा हुआ विद्याध्ययन में तल्लीन था तो अजान की आवाज सुन कर वह शीघ्रता से चल पड़ा। जब वह सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसका पैर फिसल गया और उसको गहरी चोट लगी। कुछ समय पश्चात् इस भाग्यहीन सम्राट का देहान्त हो गया।[1] इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार लेनपूल का कथन है कि "वह जीवन भर लुढ़कता रहा।"[2] इस समय उसका पुत्र अकबर उसके पास नहीं था। वह अपने संरक्षक तथा शिक्षक बेरम खाँ के साथ पंजाब का विद्रोह दमन करने के लिए गया हुआ था। जब हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पंजाब पहुँचा तो गुरदासपुर जिले में स्थित कलानौर के एक बाग में अकबर का राज्याभिषेक बड़ी सज-धज तथा समारोह से १४ फरवरी सन् १५५६ ई० में सम्पन्न हुआ।[3] इस समय अकबर की अवस्था केवल १३ वर्ष की थी।

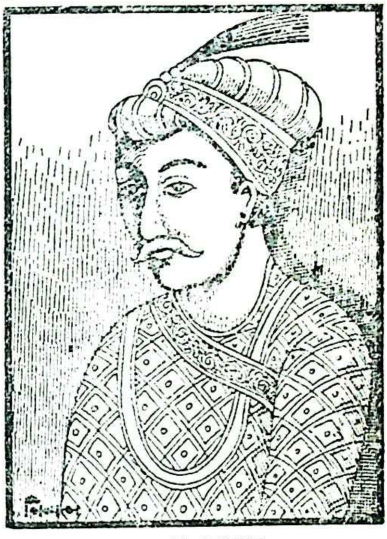

अकबर महान्

अकबर का प्रारम्भिक जीवन—अकबर का पूरा नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर था। उसका जन्म १५ अक्टूबर सन् १५४२ ई० को अमरकोट नामक स्थान पर हुमायूँ की नव-विवाहित पत्नी

---

[1] "Humyun means fortunate but no unfortunate king has ever asended the throne of Delhi."

[2] "He tottered in and tottered out of life." —Lane Poole.

[3] "When he went through the ceremony at Kalanor he could not be said to possess any kingdom. The small army under the command of Bairam Khan merely had a precarious hold by force on certain districts of the Punjab and that army itself was not to be trusted implicitly. Before Akbar could become Badsdah in reality as well as in name he had to prove himself better than the rival claiments to the throne and at least to win back his father's lost dominisons. It merely registered the claim of Humayun's son to the throne. —Dr. V. A. Smith.

हमीदा बानू बेगम के गर्भ से हुआ था। इस समय हुमायूँ शरणार्थी का जीवन व्यतीत कर रहा था और उसकी आर्थिक दशा शोचनीय थी। जब हुमायूँ को पुत्र होने का समाचार मिला तो उसने एक कस्तूरी के टुकड़े करके अपने साथियों में बाँटी और उसने यह आशा प्रकट की कि जिस प्रकार इस कस्तूरी की सुगन्ध कमरे में फैली हुई है उसी प्रकार इस पुत्र का यश विश्व में फैले। हुमायूँ को भारत में सफलता प्राप्त नहीं हुई और उसने फारस की ओर प्रस्थान करने का निश्चिय किया। उसने एक वर्षीय पुत्र अकबर को अपने भ्राता असकरी के पास कन्दहार में छोड़कर फारस की ओर प्रस्थान किया। फारस के शाह की सहायता से हुमायूं कन्दहार विजय करने में सफल हुआ और १५ नवम्बर १५४५ ई० में वह काबुल को भी अपने अधिकार में कर सका। अकबर इस समय काबुल में ही था जो कन्दहार से यहाँ ले आया गया था। यहाँ माता-पिता को अपना प्रिय पुत्र प्राप्त हुआ। इस समय अकबर की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी और ऐसा कहा जाता है कि उसने तुरन्त अपनी माँ को पहचान लिया और उसकी गोद में चला गया।

हुमायूं की उक्त विजयें स्थायी न हो सकीं। अपने भाइयों के कारण उसको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। काबुल कई बार उसके हाथ में आया, किन्तु निकल गया। एक बार जब हुमायूं कन्दहार पर आक्रमण कर रहा था तो कामरान ने बालक अकबर को किले की दीवार पर बैठा दिया, किन्तु इस भाग्यवान बालक का बाल भी बांका न हो सका। अकबर जब केवल पाँच वर्ष का ही था तो हुमायूं ने उसको शिक्षित करने की व्यवस्था की, किन्तु अकबर का मन पढ़ने-लिखने में तनिक भी न लगता था। **उसको तो खेल-कूद तथा शिकार से विशेष प्रेम था।** उसके शिक्षकों के उसको शिक्षित करने के समस्त प्रयास असफल रहे और वह वर्णमाला का ज्ञान तक भी प्राप्त न कर सका, किन्तु वह घुड़सवारी, तलवार चलाने आदि शौर्यपूर्ण कलाओं में शीघ्र ही दक्ष हो गया। सन् १५५१ ई० में हुमायूँ ने अस्करी की मृत्यु के उपरान्त अकबर को गजनी **का सूबेदार नियुक्त किया**। इस समय उसकी अवस्था केवल ९ वर्ष की थी। जिस समय हुमायूं भारत-विजय के लिए चला उस समय अकबर उसके साथ था और उसने **सरहिन्द के युद्ध में महत्वपूर्ण भाग लिया**। हुमायूँ ने उसको **युवराज** घोषित किया और उसको **लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया**। इसी समय बैरम खाँ अकबर का संरक्षक नियुक्त किया गया था।* हुमायूं की मृत्यु होने पर अकबर का राज्याभिषेक कलानौर के बाग में हुआ और वह बादशाह घोषित कर दिया गया, किन्तु केवल घोषणामात्र से अकबर की स्थिति दृढ़ नहीं हो सकी। इससे केवल हुमायूं के पुत्र अकबर का उत्तराधिकार ही प्रदर्शित हुआ। वास्तविक शासक का स्थान प्राप्त करने के लिए अकबर को अपने विरोधियों की अपेक्षा स्वयं को अधिक सुदृढ़ तथा योग्य सिद्ध करना पड़ा तथा अपने पिता की खोई हुई सत्ता को पुनः स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील होना पड़ा।

---

* "It merely registered the claim of Humayun's son to succeed to the throne of Hindustan." —Dr. V. A, Smith.

१५५६ में भारत की राजनीतिक स्थिति

जिस समय अकबर का राज्याभिषेक १५५६ ई० के फरवरी मास में कलानौर में हुआ उस समय वह पंजाब के केवल कुछ प्रदेश का नाम-मात्र का शासक था। बैरम खाँ के अधीन सेना का पंजाब के कुछ ही जिलों पर अधिकार था और वह सेना भी पूर्णतया विश्वासनीय नहीं थी। अकबर को वास्तविक शासन सत्ता प्राप्त करने के लिए राज्यसिंहासन के प्रतिद्वन्द्वियों से युद्ध करना पड़ा तथा अन्त में उसको यह सिद्ध करना पड़ा कि वह उनकी अपेक्षा अधिक योग्य और शक्तिशाली है और वह अपने पिता के खोए हुए साम्राज्य को पुनः हस्तगत करे। *

उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति यह थी—(i) **काबुल**—काबुल पर अकबर के सौतेले भाई **मुहम्मद हकीम** का आधिपत्य था जो देहली और पंजाब पर अपना अधिकार करने की ओर प्रयत्नशील था। (ii) **पंजाब**—पंजाब में शेरशाह का **उत्तराधिकारी सिकन्दर सूर** अपनी सत्ता स्थापित करने में प्रयत्नशील था। (iii) **मुहम्मद आदिलशाह और इब्राहीम सूर** भी सूर साम्राज्य की पुनः स्थापना का स्वप्न देख रहे थे। वे अकबर की सत्ता दिल्ली पर निर्विवाद स्थापित नहीं होने देना चाहते थे। हुमायूँ की मृत्यु के तुरन्त उपरान्त ही मुहम्मदशाह के सेनापति तथा मन्त्री हेमू ने दिल्ली के पूर्वी प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था, और वह शीघ्र ही दिल्ली की ओर प्रस्थान करने वाला था। उसने पूर्ण तैयारी कर दिल्ली और आगरे के प्रदेशों से मुगल सत्ता का अन्त कर 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण कर दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित किया। अतः सूर वंश के प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा अकबर का सबसे बड़ा शत्रु हेमू बन गया। (iv) **बंगाल**—इसके अतिरिक्त बंगाल पर अफगानों का अधिकार था और वह देहली साम्राज्य से पूर्णतया अलग था। (v) **राजपूतों का उत्कर्ष**—**राजपूतों ने खनवा की पराजय के पश्चात्** अपनी शक्ति को दृढ़ किया। शेरशाह की मृत्यु के उपरान्त

१५५६ में भारत की राजनीतिक स्थिति

(१) काबुल।
(२) पंजाब।
(३) मुहम्मद आदिलशाह और इब्राहीम सूर का विरोध।
(४) बंगाल।
(५) राजपूतों का उत्कर्ष।
(६) मालवा और गुजरात।
(७) मध्य भारत तथा गौंडवाना।
(८) दक्षिण भारत के मुसलमान, तथा हिन्दुओं का विजयनगर राज्य।

---

* When he went through the ceremony at Kalanor, he cold not be said to possess any Kingdom. The small army under command of Bairam Khan merely had a percarious hold by force on cartain district of the punjab, and that army itself was not to be trusted implicitly. Before Akbar could become padshah in reality as well as name he had to prove himself better than the rival claiments to the throne, and at least to win back his father's lost dominions."

—Dr. V. A. Smith.

उन्होंने अपनी शक्ति का पुनः संगठन किया। (vi) **मालवा और गुजरात**—मालवा और गुजरात भी पूर्णतया स्वतन्त्र थे। (vii) **मध्य भारत तथा गोंडवाना**—मध्य भारत तथा गोंडवाना का भी दिल्ली से कोई सम्बन्ध न था। (viii) **दक्षिणी भारत**-दिल्ली और भारत के मुसलमानी राज्यों का संघर्ष हिन्दू साम्राज्य विजयनगर से हो रहा था। इस प्रकार अकबर के राज्याभिषेक के समय भारत की राजनीतिक दशा अधोगति को प्राप्त हो चुकी थी और कुशल सेनापति तथा योग्य राजनीतिज्ञ के लिए भारत पर अधिकार स्थापित करने का स्वर्ण अवसर था।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जैसा उक्त वर्णन से स्पष्ट है अकबर के राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसको चारों ओर से कठिनाइयों ने घेर लिया। उसके सामने विभिन्न समस्याएँ थीं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) **साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी**—अकबर का राज्याभिषेक १४ फरवरी सन् १५५६ ई० को सम्पन्न हो गया था, किन्तु उसके हाथ में कोई साम्राज्य नहीं था। इससे लाभ केवल इतना अवश्य हुआ कि वह भी साम्राज्य का दावेदार बन गया।* हुमायूँ अफगानों की शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं कर पाया था। यद्यपि सिकन्दर सूर सरहिन्द नामक स्थान पर पराजित हो गया था, किन्तु वह शेरशाह द्वारा स्थापित राज्य की पुनः स्थापना करने की आशा में प्रयत्नशील था। पूर्व में अफगान अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे। उनका नेता **आदिलशाह** था जिसको अपने सुयोग्य मन्त्री हेमू पर अपार विश्वास था जो एक विशाल सेना के साथ दिल्ली और आगरे को अपने अधीन करने में सफल हुआ था। उसने अपने आपको 'विक्रमादित्य' की उपाधि से सुशोभित किया।

अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

(१) साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी।
(२) मुगलों से विरोधात्मक भावना।
(३) राजपूतों का व्यवहार।
(४) भीषण आर्थिक संकट।
(५) संरक्षक की समस्या।
(६) भारतीयों का मुगलों को विदेशी समझना।
(७) साधनों का अभाव।

(२) **मुगलों में विरोधात्मक भावना**—मुगल भी सम्मिलित रूप से अकबर के समर्थक नहीं थे। **उनके सरदारों में भी विभाजन था।** इन सरदारों में सबसे प्रमुख विरोधी **अब्दुल माली** था जो हुमायूँ का विशेष कृपापात्र सैनिक तथा सरदार था।

(३) **राजपूतों का व्यवहार**—राजपूत जाति अपने आपको संगठित कर रही थी और वह खनवा के युद्ध की पराजय का बदला मुगलों से लेने के लिए कटिबद्ध थी। **मारवाड़ का राजा मालदेव** राजपूत जाति का **प्राचीन गौरव पुनः स्थापित करना**

---

* "It merely registered the claim of Humayun's son to succeed to the throne of Hindustan."
—**Dr. Smith.**

चाहता था और वह दिल्ली के साम्राज्य की अस्त-व्यस्त दशा को देखकर उस पर अधिकार स्थापित करने के लिए बड़ा लालायित था। यदि वह हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पाकर तुरन्त दिल्ली पर आक्रमण कर देता तो उसकी विजय अवश्यम्भावी थी और मुगलों के पैर फिर भारत में जमने का प्रश्न ही नहीं उठता था, किन्तु कुछ विशेष कारणवश वह ऐसा करने में असमर्थ रहा।

(४) **भीषण आर्थिक संकट**—अकबर के सम्मुख भीषण आर्थिक संकट था। **हुमायूं का राज्यकोष रिक्त था और उसने उसकी पूर्ति करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया।** धन के अभाव में सेना का एकत्रित तथा संगठित करना बड़ा दुस्साध्य कार्य था।

(५) **संरक्षक की समस्या**—हुमायूँ अपने अन्तिम दिनों में बैरम खाँ को अकबर का संरक्षक नियुक्त कर गया था, किन्तु उसकी मृत्यु पर अन्य सरदार इस महत्वपूर्ण पद को प्राप्त करने के लिए लालायित हो गए। इस प्रकार **सरदारों में दलबन्दी स्पष्ट रूप में हो गई।** इसके अतिरिक्त बैरम खाँ का व्यवहार अन्य सरदारों से अच्छा नहीं था। उनको वह घृणा और ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था। इससे अकबर को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(६) **भारतीयों का मुगलों को विदेशी समझना**—भारतीय जनता मुगलों को अभी तक विदेशी समझती थी जिसके कारण वे उनके ईर्ष्या और घृणा के पात्र थे। **मुगलों को उनसे किसी प्रकार का समर्थन तथा सहयोग प्राप्त नहीं हो सका।** बाबर तथा हुमायूँ को भारत में बहुत-से युद्धों में तल्लीन होने के कारण भारतीय जनता से सीधा सम्पर्क स्थापित करने का अवसर तक प्राप्त नहीं हुआ था।

(७) **साधनों का अभाव**—अकबर के पास साधनों का भी अभाव था। काबुल तथा कन्दहार पर उसका अधिकार नहीं था। उसके अधिकार में पंजाब प्रान्त के केवल कुछ जिले ही थे जहाँ से भी उसको विशेष सैनिक सहायता प्राप्त करना सम्भव नहीं था। उसके पास सुसज्जित तथा सुसंगठित सेना का भी अभाव था। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी सेना थी उसके विश्वसनीय होने का भी कोई प्रमाण न था, क्योंकि मुगल सरदारों में बड़ी भारी प्रतिस्पर्धा थी।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि **जिस समय अकबर राज्यसिंहासन पर बैठा उसके चारों ओर विपत्तियों का पहाड़ था जिस पर अधिकार करना एक तेरह वर्षीय बालक के लिए असम्भव था। किन्तु अकबर का भाग्य बड़ा बलिष्ठ था कि उसको बैरम खाँ जैसा सेनापति तथा स्वामीभक्त संरक्षण मिल गया जिसने मुगल साम्राज्य की स्थापना की और ऐसी विषम परिस्थितियों में अपने स्वामी के पुत्र की सहायता की।** उसकी सहायता के अभाव में मुगल साम्राज्य की स्थापना नितान्त असम्भव थी। अतः मुगल साम्राज्य की स्थापना का श्रेय बैरम खाँ को प्राप्त हुआ है।

अकबर और अफगान

सर्वप्रथम अकबर का ध्यान अफगानों की ओर आकर्षित हुआ। इसी समय उसने (i) **सर्वप्रथम मुगल सरदार अब्दुल माली का दमन किया और** उसको बन्दी

गृह में डाल दिया। (ii) इससे निवृत्त होने पर बैरम खाँ **सिकन्दर सूर** का दमन करने के लिए सेना का संगठन कर रहा था, किन्तु इसी समय उसको सूचना मिली कि **आदिलशाह के मन्त्री हेमू ने दिल्ली और आगरा को अपने अधिकार में कर लिया है।** इस समय दिल्ली पर मुगलों की ओर से **तार्दी बेग** नियुक्त था। वह युद्ध में परास्त हुआ और पंजाब की ओर भागा। सरहिन्द में वह मुगल सेना से मिला। बैरमखाँ दिल्ली और आगरे का मुगलों के हाथ से निकलना सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और **उसने बिना कुछ सोचे समझे तार्दी बेग को मौत के घाट** उतार दिया। मुसलमान इतिहासकारों ने बैरमखाँ के इस कृत्य की बड़ी निन्दा की। उनके अनुसार बैरमखाँ का कृत्य व्यक्तिगत वैमनस्य का आधार था। अतः वह अनुचित और बुरा था, किन्तु जैसा **डाक्टर आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव** का कथन है कि सेना में से निराशा तथा नाउम्मीदी की भावना निकाल कर उसमें पुनः विश्वास और साहस-संचार के लिए यह कार्य आवश्यक था।* वास्तव में इसका परिणाम हितकर हुआ और मुगल सेना ने बड़े उत्साह तथा साहस से हेमू का सामना करने के लिए प्रस्थान किया।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—यद्यपि हेमू का अधिकार दिल्ली और आगरे के समीपस्थ प्रदेशों पर स्थापित हो चुका था, किन्तु अभी उसको मुगलों की सेना का सामना करना था जिसने दिल्ली की ओर बड़े उत्साह तथा साहस से प्रस्थान करना आरम्भ कर दिया था। हेमू ने मुगलों की सेना का सामना करने के लिये पूर्ण तैयारी की और वह भी अपनी विशाल सेना लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा। दोनों सेनाएँ पानीपत के रणक्षेत्र में आ गईं, जहाँ बाबर तथा इब्राहीम लोधी की सेनाओं में १५२६ ई० में भीषण संग्राम हुआ था। हेमू की विशाल सेना देखकर मुगल सेना भयभीत हो गई। हेमू ने अपना तोपखाना मुगलों के प्रस्थान को रोकने के अभिप्राय आगे भेज दिया था, किन्तु उस पर मुगलों ने अधिकार कर लिया। हेमू इससे निराश नहीं हुआ। **उसने ५ नवम्बर सन् १५५६ ई० को मुगल सेना पर बड़ा भीषण आक्रमण किया और उनके पूर्व तथा दक्षिण पक्षों का बड़ी-निर्दयता से संहार किया।** जब हेमू मुगल सेना के मध्य भाग पर आक्रमण करने वाला था तो यकायक उसकी आँख में एक तीर लगा वह मूर्छित होकर अपने हाथी के हौदे में गिर पड़ा। उसकी सेना ने समझा कि हेमू की मृत्यु हो गई और उसमें भगदड़ मच गई और विजय मुगलों की हुई। इस प्रकार तीर लगने की घटना ने हेमू की विजय को पराजय में परिणित कर दिया। हेमू बन्दी बनाया गया और अकबर के सामने उपस्थित किया गया। बैरमखाँ ने अकबर से हेमू का वध करने को कहा। किन्तु बैरम खाँ के कथन को उसने मानने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर बैरम खाँ ने अपनी तलवार के वार से हेमू की गर्दन उड़ा दी। इस प्रकार इस वीर सेनापति का अन्त हुआ। मुसलमान इतिहासकारों तक ने उसकी वीरता तथा साहस की प्रशंसा की। बदायूँनी के अनुसार, **'हेमू ने एक ही आक्रमण में अकबर की सम्पूर्ण सेना को तितर-बितर कर**

---

* "The act was necessary to restore confidence in the army and to stamp out sedition."

– **Dr. A. L. Srivastava.**

दिया।'[1] **सैयद मुहम्मद लतीफ** के अनुसार, "उसने (हेमू ने) पानीपत के मैदान में भी अपनी वीरता का अद्भुत परिचय दिया है।'[2] **स्मिथ** के शब्दों में, 'हेमू एक योग्य सेनापति तथा मनुष्यों का नेता था।'[3]

पानीपत के द्वितीय युद्ध का परिणाम—पानीपत का द्वितीय युद्ध प्रथम युद्ध के समान निर्णायक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के मुख्य परिणाम इस प्रकार हुए—

(i) **हेमू की पूर्ण पराजय**—हेमू की सेना पूर्णतया पराजित हुई। (ii) **अफगान साम्राज्य की स्थापना पर तुषारापात**—अफगानों की साम्राज्य स्थापना की आशा पर तुषारापात हुआ। अफगान शक्ति का सदा के लिए अन्त हो गया। (iii) **भारत में मुगल साम्राज्य की पुनः स्थापना**—भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना पुनः हुई। (iv) **मुगलों को पर्याप्त युद्ध-सामग्री तथा धन का प्राप्त होना**—मुगलों को पर्याप्त युद्ध-सामग्री तथा धन प्राप्त हुआ। (v) **दिल्ली और आगरे पर अधिकार**—शीघ्र ही मुगलों ने दिल्ली तथा आगरे के प्रदेशों को अपने अधिकार में किया और भारत-विजय की योजना का कार्य आरम्भ कर दिया। (vi) **अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी का अन्त**—हेमू की पराजय तथा उसके वध द्वारा अकबर के सबसे बड़े प्रतिद्वन्दी का अन्त हो गया।

बैरम खाँ का उत्थान तथा पतन

बैरम खाँ का प्रारम्भिक जीवन—बैरम खाँ के पिता का नाम सैफअली बेग था। उसका जन्म बदख्शाँ में हुआ था। वह शिया धर्म का अनुयायी था। जब उसकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी उस समय ही वह बाबर की सेना में भर्ती हुआ और सेना के उस भाग में काम करता था जिसका अध्यक्ष हुमायूँ था। **बैरम खाँ ने भारत में मुगल-साम्राज्य की स्थापना के हेतु बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा श्लाघनीय कार्य किया।** अपने जीवन के प्रारम्भिक चरणों में उसने बाबर की, जीवन के मध्य में हुमायूँ की और जीवन के अन्तिम चरण में अकबर की महान् सेवाएँ कीं। वह सदा हुमायूँ के प्रति पूर्ण भक्त रहा और समस्त आपत्तियों के समय उसके साथ रहा। **चौसा तथा कन्नौज के युद्ध में उसने अपने साहस तथा वीरता का परिचय दिया।** कन्नौज के युद्ध में वह बन्दी बना लिया गया। शेरशाह ने उसको अपनी ओर मिलाने की भरसक चेष्टा की और उसको विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दिए, किन्तु वह स्वामीभक्त सेवक अपनी बात से नहीं डिगा। परिणामस्वरूप वह बन्दीगृह में डाल दिया गया, किन्तु अवकाश पाकर वह बन्दीगृह से भागने में सफल हुआ और भीषण यातनाएँ सहन करता हुआ हुमायूँ की सेवा में पुनः उपस्थित हुआ। वह प्रत्येक **समय हुमायूँ की समस्त आपत्तियों में उसके साथ रहा और अन्त में वह हुमायूँ को दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन करने में सफल हुआ।** हुमायूँ को बैरम खाँ द्वारा फारस के शिया शाह की सहायता प्राप्त करने में बड़ी मदद मिली। उसने उन समस्त युद्धों में भाग लिया जो

---

[1] "Hemu upset the whole army of Akbar at one charge." —**Badauni.**

[2] "He was conspicuous by his bravery even at Panipat." —**Syed Mohammad Latif.**

[3] "Hemu was an able general and ruler of man." —**Dr. V. A. Smith.**

हुमायूँ ने अपने प्रवास काल में किए। हुमायूँ उसको अपना सबसे विश्वसनीय सेवक समझता था। उसके अदम्य उत्साह तथा साहस और गुणों तथा सेवाओं से प्रभावित होकर हुमायूँ ने उसको 'खानखाना' की उपाधि से सुशोभित किया और अपने प्रिय पुत्र अकबर का संरक्षक नियुक्त किया। उसने अकबर के साथ बैरम खाँ को सूरवंश के समर्थकों तथा पठानों के विद्रोह का दमन करने के लिए एक सेना सहित पंजाब भेजा। वह अपना कार्य पूर्णतया सम्पन्न भी न कर पाया था कि हुमायूँ की मृत्यु का दुःखद समाचार उसको प्राप्त हुआ। कुछ समय तक उसने इस समाचार को गुप्त रखा और अकबर का राज्याभिषेक सम्पन्न कर दिया, जिसका वर्णन गत पंक्तियों में किया जा चुका है।

दिल्ली की ओर प्रस्थान—इसके उपरान्त बैरमखाँ ने भारत के साम्राज्य पर पुनः मुगल-सत्ता की स्थापना करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। इसी समय कुछ अमीरों ने यह परामर्श दिया कि दिल्ली की ओर प्रस्थान के स्थान पर काबुल की ओर प्रस्थान करना अधिक उपयुक्त होगा। बैरम खाँ अमीरों तथा सरदारों के इस मत से सहमत नहीं हुआ और उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की तैयारी आरम्भ की। यदि इस समय उसका मत स्वीकार नहीं किया जाता तो मुगल-साम्राज्य भारत से सदा के लिए विलीन हो जाता।

पानीपत का द्वितीय युद्ध—पानीपत के द्वितीय युद्ध में बैरमखाँ ने अपनी वीरता तथा सैनिक प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन किया और यह कहना अतिरंजन न होगा कि इस युद्ध की विजय का समस्त श्रेय बैरम खाँ को था। इस प्रकार बैरम खाँ ने मुगलों की राजसत्ता भारत में स्थापित करने के लिए दो बार प्रयास किया और दोनों ही बार वह विजयी हुआ। इस विजय के उपरान्त मुगलों का शीघ्र ही दिल्ली और आगरे पर अधिकार हो गया।

साम्राज्य का विस्तार—इतना कार्य करने से ही बैरम खाँ को सन्तोष नहीं हुआ और उसने साम्राज्य-विस्तार योजना का निर्माण किया। दिल्ली पर अधिकार करने के पश्चात् मुगल सेना ने मेवात पर आक्रमण किया। हेमू का पिता बन्दी बना लिया गया। उससे मुसलमान धर्म अंगीकार करने को कहा गया, किन्तु जब उसने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया तो उसका वध कर दिया गया। मेवात से मुगलों को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त सन् १५५७ ई० में सिकन्दर शाह सूर का दमन किया गया और उसने आत्म-समर्पण किया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु सन् १५५६ ई० में हो गई थी।

सन् १५५८–६० तक के काल में अकबर के साम्राज्य में **ग्वालियर** तथा **जौनपुर** के प्रदेश सम्मिलित कर लिए गए। सन् १५५६ ई० में राजपूतों के सुदृढ़ दुर्ग रणथम्भोर पर मुगलों ने आक्रमण किया, **किन्तु वे उसको अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने में सफल नहीं हो सके।** इसके पश्चात् मुगल-सेना ने **मालवा** पर आक्रमण किया, **किन्तु सफलता प्राप्त करने के पूर्व ही मुगल-सेना वापिस चली आयी,** क्योंकि बैरमखाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र आरम्भ हो गया था।

बैरमखाँ ने अपनी योग्यता के आधार पर न केवल मुगल-साम्राज्य ही स्थापित किया, वरन् उसको दृढ़ता भी प्रदान की जिसके कारण वह पर्याप्त समय तक स्थायी रूप धारण करने में सफल हुआ। उसमें अनेक गुणों के साथ-साथ कुछ अवगुण भी थे जिन्होंने उसके पतन में बड़ा सहयोग प्रदान किया। अकबर बैरम खाँ के व्यवहार से असन्तुष्ट हो गया। वह आखेट का बहाना कर बियाना गया और वहाँ से दिल्ली चला आया जहाँ शासन की समस्त बागडोर उसने अपने हाथ में ले ली और बैरम खाँ को एक पत्र द्वारा समस्त समाचार से अवगत किया। इस पत्र में उसने बैरम खाँ को मक्का जाने के लिए कहा, जहाँ बहुत दिनों से उसके जाने की इच्छा थी। जब बैरम खाँ तथा उसके समर्थकों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उनको बड़ा दुःख हुआ। बैरमखाँ के कुछ समर्थकों ने उसको अकबर पर अधिकार करने तथा विद्रोह करने का परामर्श दिया। परन्तु बैरम खाँ को उनकी यह सलाह उपयुक्त न जंची। वह अपने स्वामी-भक्त जीवन को इस प्रकार का निन्दनीय कार्य कर कलुषित नहीं करना चाहता था। बैरम खाँ ने अकबर के आदेशानुसार मक्का जाने का निश्चिय किया और उसने मक्का के लिए प्रस्थान कर दिया। बैरम खाँ के विरोधियों को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने अकबर के मन में बैरम खाँ के विरुद्ध भावना प्रज्ज्वलित की। अकबर ने बैरम खाँ की चाल-ढाल का निरीक्षण करने के उद्देश्य से **पीर मुहम्मद** को नियुक्त किया। उसके पास पर्याप्त सेना भी थी। जब बैरम खाँ को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसको बड़ा क्रोध आया और आवेश में आकर उसने पंजाब में विद्रोह किया। मुगल सेना ने बैरम खाँ को परास्त किया और बन्दी बनाकर सम्राट के सामने उपस्थित किया। बैरम खाँ अपने कृत्य से बड़ा दुःखी हुआ। उसने सम्राट से क्षमा याचना की। उसकी राज्य-भक्ति तथा पूर्व सेवाओं का विचार कर अकबर ने उसको क्षमा प्रदान की। बैरम खाँ ने मक्का की ओर प्रस्थान किया, किन्तु मक्का पहुँचने से पहले ही एक पठान ने पाटन नामक स्थान पर उसका वध कर दिया। इस प्रकार इस स्वामी-भक्त सेवक का दुःखद अन्त हुआ।

बैरम खाँ के पतन के कारण

बैरम खाँ के पतन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **बैरमखाँ का अलोकप्रिय होना**— यद्यपि बैरम खाँ योग्य सेनापति तथा स्वामि-भक्त सेवक था, किन्तु वह अन्य मुगल सरदारों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। उसमें घमण्ड उत्पन्न हो गया था और उसका अमीरों के साथ सद्-व्यवहार नहीं था जो उसको ईर्ष्या तथा घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसके विरुद्ध अमीरों का एक दल स्वतः बनने लगा था।

(२) **कठोर और क्रोधी स्वभाव**— वह बड़ा कठोर तथा क्रोधी स्वभाव का था। वह बहुत कठोर दण्ड देता था और इस बात को भूल जाता था कि वह किसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करता है। वह आवेश में आकर किसी का भी अपमान करने को उद्यत हो जाता था।

(३) **बैरम खाँ का शिया होना**—बैरम खाँ का धर्म भी उसके पतन का

विशेष कारण था। वह शिया धर्म का अनुयायी था जबकि अधिकांश मुगल अमीर तथा सरदार सुन्नी धर्म के अनुयायी थे। इस कारण भी वह अधिकांश अमीरों को अपनी ओर आकर्षित करने तथा अपने दल में सम्मिलित करने में असफल रहा।

(४) **अकबर का राज-काज में दिलचस्पी लेना**—इस समय अकबर की आयु अट्ठारह वर्ष के लगभग हो गई थी। उसने राज-काज में दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी थी और वह शासन-सत्ता पर अपना पूर्ण अधिकार स्थापित करना चाहता था।

(५) **अकबर के सेवकों तथा परिवार के व्यक्तियों से बैरम खाँ का दुर्व्यवहार**—बैरम खाँ का अकबर के सेवकों तथा उसके परिवार के व्यक्तियों से भी बड़ा दुर्व्यवहार करता था। स्वयं अकबर को अपने निजी व्यय के लिए रुपया कम मिलता था जिसके कारण वह प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए बाध्य हो जाता था।

(६) **अकबर पर हरम का प्रभाव**—अकबर को बैरम खाँ के विरुद्ध करने में हरम का विशेष हाथ था। इस दल को अकबर की धाय **माहम अनंगा** का नेतृत्व प्राप्त था। उसने हर सम्भव रूप से अकबर के हृदय में ऐसी भावना जागृत की कि बैरम खाँ दिन-प्रतिदिन अपनी शक्ति का विकास कर रहा है और उसमें राजभक्ति दिन-दिन क्षीण होने लगी है।

बैरम खाँ के पतन के कारण

- **(१) बैरम खाँ का अलोकप्रिय होना।**
- **(२) कठोर और क्रोधी स्वभाव।**
- **(३) बैरम खाँ का शिया होना।**
- **(४) अकबर का राज-काज में दिलचस्पी लेना।**
- **(५) अकबर के सेवकों तथा परिवार के व्यक्तियों से बैरम खाँ का दुर्व्यवहार।**
- **(६) अकबर पर हरम का प्रभाव।**
- **(७) तत्कालीन घटनाएँ।**

(७) **तत्कालीन घटनाएँ**—कुछ ऐसी तत्कालीन घटनाएँ घटीं जिन्होंने बैरमखाँ के पतन को शीघ्र ही समीप ला दिया। बैरम खाँ ने शेख गदामी नाम के एक शिया को सदरे-सदूर के पद पर नियुक्त किया। इससे सुन्नी सरदारों में क्षोभ उत्पन्न हुआ। इसी समय अकबर जब हाथियों का युद्ध देख रहा था तो एक हाथी ने बैरम खाँ के खेमे के रस्सों को तोड़ डाला। बैरम खाँ को बड़ा क्रोध आया और उसने हाथी के महावत को दण्ड दिया। यद्यपि अकबर ने उसे यह समझाने की चेष्टा की कि इसमें महावत का विचार उसका अपमान करने का तनिक भी नहीं था। इसी प्रकार की घटनाओं द्वारा अकबर और बैरम खाँ के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया और वह समस्त सत्ता को अपने अधीन करने के लिए विवश हो गया।

अकबर पर हरम का प्रभाव—उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि बैरम खाँ के पतन में हरम का प्रभाव बहुत अधिक था। इस दल की नेता अकबर की धाय **माहम अनंगा** थी, जिसने अपने तथा परिवार के सदस्यों के स्वार्थ से वशी-

भूत होकर अकबर के हृदय में बैरम खाँ के विरुद्ध भावनाएँ जागृत कीं। बैरम खाँ के पतन के उपरान्त भी कुछ समय तक अकबर पर इस स्त्री का विशेष प्रभाव रहा।* कुछ ही समय उपरान्त अकबर को इन सबका प्रभाव असहनीय हो गया और वह इसके प्रभाव का अन्त करने के कार्य में संलग्न हो गया। वह चिरकाल तक स्वयं को रमणियों के प्रभाव में नहीं रख सकता था। इसने मुनीम खाँ के स्थान पर शम्सुद्दीन अतका को अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। माहम अनंगा तथा उसके समर्थकों को अकबर का यह कार्य बहुत बुरा लगा। माहम अनंगा के पुत्र आधम खाँ ने प्रधानमन्त्री शम्सुद्दीन का वध कर दिया। अकबर को उसका आचरण बहुत बुरा लगा। उसने उसको दुर्ग की मुण्डेर से नीचे फिकवा दिया, जिससे तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो गई। माहम अनंगा को अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु पर बड़ा दुःख हुआ और उसकी मृत्यु के ठीक चालीसवें दिन उसका भी देहान्त हो गया। इस प्रकार अकबर ने हरम के प्रभाव का अन्त किया और वह स्वतन्त्र शासक के रूप में शासक करने लगा।

महत्वपूर्ण प्रश्न

(१) बैरम खाँ के उत्थान और पतन का वर्णन करो।

(२) अकबर ने हरम के प्रभाव का अन्त किस प्रकार किया ?

---

* "Akber shook off the tutelage of Bairam Khan only to bring himself under the monstrous regime to unscrupulous women. He had yet another effort to make before he found himself and rose to the height of his essentially noble nature."
—**Dr. V. A. Smith.**

५

मुगलों का साम्राज्य-विस्तार

(क) अकबर

बैरम खाँ की संरक्षिता के समय में मुगल-साम्राज्य का विस्तार होना आरम्भ हुआ। उसके समय में मुगल-साम्राज्य के अन्तर्गत, पंजाब, दिल्ली, आगरा तथा उसके समीपस्थ प्रदेश जौनपुर व ग्वालियर थे। बैरम खाँ के समय में रणथम्भौर तथा मालवा को भी हस्तगत करने का प्रयास किया गया, किन्तु इस दिशा में मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। बैरम खाँ के पतन के उपरान्त सन् १५६० से १५६२ ई० तक अकबर पर हरम का प्रभाव रहा और इस काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार करने की चेष्टा कार्यान्वित नहीं हुई। इस लघु काल में भी उसने उत्तरी भारत को विजय करने तथा भारत का वास्तविक सम्राट बनने की महत्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण किया। **उसकी साम्राज्यवादी नीति के बीज इसी काल में बोए गए।** अबुल **फजल के अनुसार,** 'अकबर की विजय-नीति का उदेद्श्य स्थानीय शासकों के निरंकुश शासन के पीड़ित प्रजा को दुःख और शान्ति तथा सुरक्षा प्रदान करना था, किन्तु अकबर की प्रारम्भिक विजयों पर विचार करने से इस बात की असत्यता स्पष्ट प्रगट हो जाती है। इस काल में उसकी विजय-लालसा के पीछे साम्राज्य की स्थापना तथा विजित देशों की सम्पत्ति तथा सत्ता प्राप्त करने की उत्कृष्ट अभिलाषा थी। इसी भावना के अन्तर्गत उसने अपने राज्य के समीपस्थ देशों को अपनी साम्राज्यवादी नीति का शिकार बनाया। **उद्देश्य तो उस समय बदला जब अधिकांश उत्तरी भारतवर्ष पर उसका अधिकार स्थापित हो गया।** इस प्रकार वह भारत को एक राष्ट्रीय सूत्र में संगठित करने के लिए उद्यत हुआ और उसने प्रजा के हित की ओर ध्यान दिया।'

(1985)

अकबर की विजयें

अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसने शीघ्र ही पास-पड़ोस के राज्यों को अपनी इस भावना का शिकार बनाना आरम्भ किया। उसकी मुख्य विजयें निम्नलिखित हैं—

(१) **मालवा विजय**—सर्वप्रथम अकबर की साम्राज्यवादी भावना का शिकार मालवा राज्य हुआ। इसी समय मालवा पर बाजबहादुर का अधिकार था। वह बड़ा विलासी था और उसको संगीत-कला के प्रति विशेष अभिरुचि थी। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास में व्यतीत करता था। उसके काल में शासन-व्यवस्था बड़ी शिथिल पड़ गयी थी, क्योंकि वह इस ओर से पूर्णतया उदासीन था। **सन् १५६१ ई० में माहम अनंगा के पुत्र आधम खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना ने मालवा पर आक्रमण किया।** बाजबहादुर परास्त हुआ और उसकी प्रेयसी रूपवती बन्दी बना ली गई।

किन्तु उसने अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए विषपान किया। आधम खाँ ने लूट की समस्त वस्तुओं को अपने अधिकार में किया और केवल थोड़े से हाथी तथा सम्पत्ति दिल्ली भेजी। अकबर को आधम खाँ के इस आचरण पर बड़ा क्रोध आया और उसको दण्ड देने के लिए वह स्वयं मालवा गया। अचानक अकबर बादशाह के आगमन पर आधम खाँ बड़ा भयभीत हुआ। माहम अनंगा के हस्तक्षेप के कारण आधम को दण्ड तो नहीं दिया गया, किन्तु उसको वापिस भेज दिया गया। अकबर **ने मालवा-विजय का भार पीर मुहम्मद को सौंप दिया।** उसने शीघ्र ही बहुत-से नगरों पर अधिकार किया, किन्तु कुछ समय उपरान्त उनको बाजबहादुर द्वारा मालवा से निकाल दिया गया। इस पर **अकबर ने अबदुल्ला खाँ उजबेग को** मालवा भेजा। मालवा की सेनाएँ उसका सामना न कर सकीं और मालवा पर मुगलों का पूर्णतया अधिकार हो गया।

अकबर की विजय

(१) मालवा विजय।
(२) जौनपुर के विद्रोह का दमन तथा चुनार पर अधिकार।
(३) जयपुर का अधीनता स्वीकार करना।
(४) मेरठा की विजय।
(५) गौंडवाना की विजय।
(६) चित्तौड़ की विजय।
(७) रणथम्भौर-विजय।
(८) कालिंजर-विजय।
(९) मारवाड़ का अधीनता स्वीकार करना।
(१०) गुजरात-विजय।
(११) विहार और बङ्गाल की विजय।
(१२) पुनः मेवाड़।
(१३) काबुल पर अधिकार।
(१४) काश्मीर विजय।
(१५) सिन्ध-विजय।
(१६) उड़ीसा-विजय।
(१७) बिलोचिस्तान-विजय।
(१८) कन्दहार-विजय।

(२) जौनपुर के विद्रोह का दमन व चुनार पर अधिकार—जिस समय मुगल सेनाएँ आधम खाँ के नेतृत्व में मालवा विजय करने में व्यस्त थी उसी समय **जौनपुर में** मुहम्मद आदिल शाह सूर के नेतृत्व में अफगानों ने अकबर के विरुद्ध **एक भंयकर विद्रोह किया।** वहाँ के शासक खान जमाँ ने विद्रोहियों का दमन करने **में बड़ी वीरता तथा अदम्य साहस** का परिचय दिया जिसके परिणामस्वरूप उसको **विजय प्राप्त हुई।** कुछ समय के उपरान्त उसमें भी **विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुई** और उसने विद्रोहियों द्वारा प्राप्त समस्त सम्पत्ति हस्तगत की। अकबर उसके कार्य को सहन नहीं कर सका और १७ जुलाई सन् १५६१ ई० को जौनपुर की ओर खान जमाँ को दण्ड देने के लिए चल पड़ा। इससे खान जमाँ तथा उसके समर्थकों में भय उत्पन्न हुआ और उन्होंने अकंबर की अधीनता स्वीकार की। **बादशाह ने उनको क्षमा प्रदान की और उसको उसके पद पर रहने दिया।** इस समय एक सेना बिहार-स्थित **प्रसिद्ध दुर्ग चुनार गढ़** पर अधिकार करने के लिए भेजी गई, जिसने अगस्त सन् १५६१ ई० में उस दुर्ग को अपने अधिकार में किया।

(३) **जयपुर का अधीनता स्वीकार करना**—१४ जनवरी १५६२ ई० में प्रथम बार अकबर धार्मिक यात्रा के उद्देश्य से अजमेर गया। **मार्ग में सांगानेर में आमेर (जयपुर) के राजा भारमल ने उससे भेंट की और उसने उसकी अधीनता स्वीकार की। उसने अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ सम्पन्न किया।** इस विवाह द्वारा दोनों में मैत्रिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त इस विवाह द्वारा अकबर की नीति पर विशेष प्रभाव पड़ा।

(४) **मेरठा की विजय**—शीघ्र ही मारवाड़ में स्थित दुर्ग मेरठा पर सन् १५६२ ई० **में मुगल सेना ने शरफुद्दीन के नेतृत्व में आक्रमण किया।** इस दुर्ग पर जयमाल का अधिकार था जिसने उसकी रक्षा करने में बड़ी तत्परता दिखलाई, किन्तु अन्त में दुर्ग पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया।

(५) **गौंडवाना की विजय**—अकबर का ध्यान गौंडवाना की विजय की ओर आकर्षित हुआ, **जिस पर रानी दुर्गावती अपने पुत्र वीर नारायण की संरक्षिका के रूप में शासन कर रही थी।** रानी बड़ी वीर और योग्य शासक थी। उसके सम्बन्ध में यह प्रचलित था कि उसने जनता के हृदय पर विजय प्राप्त करली थी और वह प्रत्येक समय जनहित सम्बन्धी कार्यों में तल्लीन रहती थी। जब कभी वह यह सुन लेती थी कि उसके राज्य में एक चीता दृष्टिगोचर हुआ है तो बिना उस चीते का वध किए अन्न-जल ग्रहण नहीं करती थी। **अकबर ने बिना कारण के ही गौंडवाना राज्य पर आक्रमण किया। यह अकबर की साम्राज्यवादी नीति का प्रतीक था। जैसा अकबर ने स्वयं कहा कि 'एक सम्राट को सदा विजय का इच्छुक रहना चाहिए अन्यथा उसके पड़ौसी उसके विरुद्ध खड़े हो सकते हैं।'*** आसफ खाँ के नेतृत्व में मुगलों की विशाल सेना ने गौंडवाना को अपने अधीन करने का प्रयत्न किया। रानी दुर्गावती ने बड़ी वीरता तथा साहस से दो दिन तक मुगलों की सेना का सामना किया, किन्तु सेना की अधिकता के कारण उसको पराजित होना पड़ा। रानी ने आत्महत्या की और गौंडवाना अकबर की साम्राज्य-लोलुपता का शिकार बना। रानी का पुत्र भी वीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया। आसफ खाँ के हाथ लूट का बहुत-सा माल आया।

(६) **चित्तौड़ विजय**—गौंडवाना की विजय से निश्चिंत होकर अकबर ने मेवाड़-राज्य को मुगल साम्राज्य में विलीन करने की योजना का निर्माण किया। यद्यपि इस राज्य की शक्ति राणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) की पराजय तथा मृत्यु के कारण बहुत कम हो गई थी, किन्तु वह राज्य फिर भी राजपूतों के राज्यों में अपनी प्रधानता रखता था। राणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त उसका अल्पवयस्क पुत्र राणा उदयसिंह मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ था। उसने अकबर के विरुद्ध मालवा के राजा बाजबहादुर को शरण दी थी। **अकबर इस परिणाम पर पहुँचा कि भारत की उत्तरी विजय उस समय तक स्थायी नहीं हो सकती जब तक कि मेवाड़ विजय का कार्य सम्पन्न न कर लिया जाए।**

---

* "A monarch should be ever intent on conquest, otherwise his neighbours rise in arms against him."
—**Akbar.**

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अकबर ने चित्तौड़ पर सन् १५६७ ई० में आक्रमण किया और उसका घेरा डाल दिया। मुगलों के आगमन का समाचार पाकर उदयसिंह भयभीत हो गया और जंगलों मे जाकर छिप गया। **जयमाल और उसका भाई फत्ता लगभग ८,००० वीर राजपूतों के साथ दुर्ग की रक्षा में जुट गए।** राजपूतों ने मुगल सेना का अदम्य उत्साह तथा साहस से सामना किया, यद्यपि उनको विजय की आशा बहुत कम थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनके पास मुगलों की सुसज्जित सेना का सामना करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे। अकबर ने दुर्ग के घेरे को शिथिल नहीं किया, क्योंकि वह चित्तौड़ के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित करने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। जब उसने यह अनुभव किया कि राजपूत किसी भी दशा में नत मस्तक होने को तैयार नहीं हैं और उसकी सेना का दिन-प्रतिदिन विध्वंस हो रहा है तो उसने दुर्ग की दीवारों को उड़ाने का निश्चय किया और इसी उद्देश्य से उसने सुरंगें लगाईं जिसके कारण दुर्ग की दीवारें टूट गईं, किन्तु राजपूतों ने शीघ्र ही उनकी मरम्मत की व्यवस्था की और आक्रमणकारियों को पीछे की ओर धकेल दिया गया। **संयोगवश एक रात्रि को जब जयमल दुर्ग की दीवारों की मरम्मत** का आदेश दे रहा था तो बन्दूक की गोली **लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।** उसकी मृत्यु से राजपूतों का उत्साह कम हो गया और राजपूत स्त्रियों ने जौहर कर अपने आपको अग्नि के समर्पित कर दिया। अब राजपूतों ने मुगलों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। राजपूतों ने मुगल सेना पर आक्रमण किया, किन्तु मुगल सेना ने उनको पराजित किया। सैकड़ों राजपूत अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौड़ पर अकबर का अधिकार स्थापित हो गया। **राजपूतों की वीरता से अकबर इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने जयमल और फत्ता की प्रस्तर-मूर्तियों को दुर्ग के फाटक पर लगाने का आदेश दिया।** आसफ़ खाँ मेवाड़ का गर्वनर नियुक्त किया था, किन्तु अधिकांश मेवाड़ पर राणा का आधिपत्य था।

(७) **रणथम्भोर विजय**—चित्तौड़ पर अधिकार करने के उपरान्त अकबर के हृदय में राणा के एक अन्य दृढ़ दुर्ग रणथम्भोर को अपने अधिकार में करने की भावना बलवती हुई। **इस दुर्ग पर बूँदी के हाड़ा राजपूत राजा सुर्जन का आधिपत्य था,** किन्तु दुर्ग की विशेष ऊँचाई के कारण दुर्ग का घेरा सफल नहीं हो सका। इसके उपरान्त अकबर ने सुरगें बिछवाईं और अग्नि-वर्षा करनी आरम्भ की, जिसके कारण दुर्ग की दीवारें टूटने लगीं। जब राजा सुर्जन ने यह अनुभव किया कि वह युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता तो उसने सन्धि करने का निश्चय किया। सन्धि करने के पश्चात् अकबर आगरे लौट आया।

(८) **कालिंजर विजय**—उक्त दोनों विजयों के कारण अकबर के मान-प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए और समीप के राजा उसकी शक्ति से भयभीत हो गए। अकबर ने कालिंजर पर विजय की योजना बनाई। यह दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। **इस समय इस दुर्ग पर रींवा के राजा रामचन्द्र का अधिकार था। सन् १५६९ ई०**

में मजनू खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना ने इस दुर्ग को विजय करने के उद्देश्य से प्रस्थान किया। राजा रामचन्द्र चित्तौड़ और रणथम्भौर के आत्मसमर्पण के विषय में सुन चुका था। उसने थोड़ा-सा सामना करने के उपरान्त अकबर से सन्धि की। कालिंजर के दुर्ग पर अकबर का अधिकार स्वीकार हो गया और राजा को इलाहाबाद के समीप एक जागीर भेंट-स्वरूप प्रदान की गई।

(९) **मारवाड़ का आधिपत्य स्वीकार करना**—जब अकबर की विजयों का उल्लेख अन्य राजपूतों ने सुना तो वे भी अकबर की शक्ति से भयभीत हो गए और वे अपने आपको अरक्षित समझने लगे। **नवम्बर १५७० ई० में अकबर नागौर गया, जहाँ बीकानेर तथा जोधपुर के राजपूत शासकों ने स्वयं ही अकबर की अधीनता स्वीकार की।** इस समय बीकानेर का शासक कल्याणमल और जोधपुर का शासक प्रसिद्ध राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन था। **शीघ्र ही जैसलमेर के राजा हरराय ने भी बीकानेर तथा जोधपुर के शासकों का अनुकरण किया।** अकबर ने बीकानेर तथा जैसलमेर की राजकुमारियों से विवाह किया। इस प्रकार मेवाड़ के प्रसिद्ध राजपूत राज्य के अतिरिक्त समस्त राजपूत राज्यों पर अकबर का आधिपत्य सरलता से स्थापित हो गया और उत्तरी भारत का अधिकांश भाग उसके साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

(१०) **गुजरात-विजय**—उक्त विजयों के सम्पन्न हो जाने के उपरान्त अकबर इस स्थिति में पहुँचा कि वह अपने साम्राज्य का विस्तार समुद्र की ओर दोनों दिशाओं में कर सके। उसका प्रथम अभियान पश्चिम की ओर हुआ। पाठकों को विदित होगा कि गुजरात पर कुछ समय तक हुमायूँ का अधिपत्य रह चुका था। अतः यह कहना उचित ही होगा कि यह प्रदेश मुगलों का एक खोया हुआ प्रदेश था। गुजरात धन-धान्य से पूर्ण था। इस समय वहाँ बड़ी अराजकता फैली हुई थी। वह भारत के बाह्य व्यापार का केन्द्र भी था। **इस समय गुजरात पर मुजफ्फर खाँ तृतीय शासन कर रहा था।** वह एक लम्पट शासक था और शासन को उन्नत करने के प्रति उसका तनिक भी ध्यान नहीं था, जिसके कारण अमीरों और सरदारों में शक्ति की प्राप्ति के लिए भीषण संघर्ष निरन्तर चलता रहता था। एक दल के सरदार एतमाद खाँ ने अकबर को गुजरात-विजय के लिए आमन्त्रित किया। अकबर इस स्वर्ण अवसर को हाथ से खोने के लिए तैयार नहीं था और उसने तुरन्त ही खाने कलाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना इस अभियान के लिए भेज दी। मुगल सेना ने सरलतापूर्वक नवम्बर १५७२ ई० में अहमदनगर पर अधिकार किया। मुजफ्फर खाँ बन्दी बना लिया गया और अन्य अमीरों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने खम्भात की ओर प्ररस्थान किया जहाँ पुर्तगाली व्यापारियों ने उनका बड़ा भव्य स्वागत किया। **इसके बाद वह मिर्जाओं को दण्ड देने के लिए सूरत गया।** मुगल-सेना ने शीघ्र ही सूरत पर अधिकार कर लिया। अकबर गुजरात-विजय सम्पन्न कर वापिस आगरे चला गया, किन्तु इसी बीच गुजरात में मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्जवलित हुई। जब अकबर इस समाचार से अवगत हुआ तो वह शीघ्र ही विद्रोहियों को दण्ड देने के अभिप्राय से गुजरात पहुँचा। ऐसा कहा जाता है कि उसने ६०० मील की

लम्बी यात्रा ११ दिनों में पूर्ण की। अकबर की आकस्मिक उपस्थिति से विद्रोहियों का हृदय टूट गया। अकबर ने बड़ी तत्परता दिखलाई और उसने शीघ्र ही विद्रोहियों पर आक्रमण किया और बहुत-से विद्रोही हताहत हुए और गुजरात पर मुगल सत्ता स्थापित हो गई। इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ (Vincent Smith) ने द्वितीय गुजरात अभियान को इतिहास के अन्तर्गत द्रुतगामी आक्रमण के नाम से सम्बोधित किया,* जो वास्तव में बिलकुल सत्य है। गुजरात के शासन को व्यवस्थित करने की ओर अकबर ने ध्यान दिया। उसने आसफ खाँ को गुजरात का शासन सौंपा और टोडरमल को भूमि की नाप-तोल कर लगान निश्चित करने का कार्य दिया।

गुजरात की विजय का महत्व—गुजरात-विजय का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि (i) इस विजय के द्वारा अकबर के हाथ में **एक सम्पन्न तथा समृद्धिशाली प्रदेश** आ गया जिससे राजकीय आय में बड़ा विस्तार हुआ। (ii) **टोडरमल** को लगान-सम्बन्धी नियमों को प्रयोगात्मक रूप देने का अवसर प्राप्त हुआ। (iii) अकबर का **सम्बन्ध पुर्तगाली व्यापारियों में** स्थापित हो गया, तथा (iv) लौटते समय अकबर की **भेंट शेख मुबारक से हुई तथा शेख ने अकबर को यह आदेश दिया कि साम्राज्य का शासकीय प्रधान बनने के साथ ही साथ वह आध्यात्मिक प्रधान भी बने।**

(११) **बिहार और बंगाल की विजय**—गुजरात-विजय के उपरान्त अकबर का ध्यान बिहार और बंगाल की ओर साम्राज्य की प्राकृतिक सीमाओं के प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ, जो वास्तव में पूर्ण स्वाभाविक था। हुमायूँ के शासन-काल में बिहार और बंगाल पर मुगलों का नाम-मात्र का अधिकार था, परन्तु उसके उपरान्त बिहार और बंगाल अफगानों की शक्ति के केन्द्र थे। अकबर ने यद्यपि अफगानों की शक्ति का अन्त कर डाला था, किन्तु इस ओर के अफगान पूर्णतया पराजित नहीं हो पाए थे। **सन् १५६८ ई० में सुलेमान करारानी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र दाउद ने सन् १५७२ ई० में अपने आपको मुगल-सत्ता से मुक्त कर स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था।** अकबर उसके इस व्यवहार से असन्तुष्ट था, किन्तु जब दाऊद ने जमानिया के दुर्ग का घेरा डाला तो अकबर उसके इस कृत्य को सहन नहीं कर सका। इस समय अकबर गुजरात में था। उसने जौनपुर के मुगल शासक मुनीम खाँ को दाऊद को दण्ड देने का आदेश दिया, किन्तु उसको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके पश्चात् टोडरमल द्वारा बिहार पर मुगलों का अधिकार हो गया और सन् १५७०–८० के बीच बंगाल पर उनका अधिकार स्थापित हुआ।

(१२) **पुनः मेवाड़**—उक्त विजयों के उपरान्त अकबर का ध्यान समस्त मेवाड़ की विजय की ओर आकर्षित हुआ। **उक्त पंक्तियों में** यह बताया जा चुका है कि अकबर का अधिकार मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर स्थापित हो चुका था। अकबर के मेवाड़-विजय के प्रयत्न के पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राणा

---

* Smith described Akbar's second Gujarat expedition "as the quickest campaign on record."

उदयसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका योग्य तथा देश-भक्त पुत्र राणा प्रताप मेवाड़ का राणा हुआ। **३ मार्च १५७२ ई० को राणा प्रताप का राज्याभिषेक हुआ।** उसने मुगल सत्ता का मेवाड़-भूमि से अन्त करने का निश्चिय किया। "अपने सीमित साधनों में घबराए बिना तथा अपने आदमियों के असन्तोष की—यहाँ तक कि अपने सगे भाई शक्तिसिंह की परवाह किए बिना उसने उस आदमी का सामना करने का निश्चिय किया जो धरती के पर्दे पर सर्वाधिक सम्पन्न और समृद्धिशाली शासक गिना जाता था।"[1] "उन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जो स्तुत्य आदर्श रखा वह वास्तव में उन्हें श्लाघनी पद प्रदान करता है। उसमें स्वाभिमान, देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी और इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने मुगल-पति अकबर से आजीवन युद्ध किया तथा अनेक कठिनाइयों का सामना किया तथापि उन्होंने मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता को वेचना स्वीकार नहीं किया।" राणा प्रताप ने राजपूतों की सेना संगठित की और अधिकांश प्रदेश पर उनका अधिकार स्थापित हो गया। **डाक्टर विसेंट स्मिथ** (Dr. V. Smith) का कथन है कि "प्रताप का देश-प्रेम ही अकबर की दृष्टि में अपराध था।"[2] अतः उसने समस्त मेवाड़ को अपने अधिकार में कर प्रताप की स्वतन्त्रता को सदा के लिए अन्त करने का दृढ़ संकल्प किया।

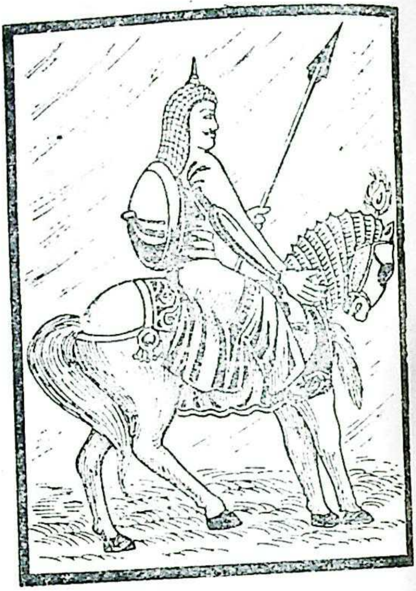

राणा प्रताप

हल्दी घाटी के युद्ध का तत्कालीन कारण— राणा प्रताप को अपने अधीन करने के लिए अकबर ने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु अकबर के समस्त प्रस्तावों की ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसी समय एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना घटी जिसने अकबर के दृढ़ निश्चय को और भी दृढ़ किया। जब १५७६ ई० में राजा **मानसिंह गुजरात से वापिस आ रहे थे तो वे राणा प्रताप से मिले।** राणा ने मानसिंह **का बड़ा आदर सत्कार किया, किन्तु उन्होंने उनके साथ भोजन नहीं किया।** मानसिंह ने आग्रह किया तो उन्होंने कहला भेजा कि उनके सर में दर्द है और अमरसिंह को मानसिंह के साथ भोजन करने का आदेश दिया। मानसिंह ने इनको अपना अपमान समझा और विना भोजन किए ही उठ गए और क्रोध में कहा में शीघ्र ही सिर दर्द

---

[1] Uhdaunted by his slender resources, defection in his rank, and the hostility of his own brother, Shakti Singh he resolved to fight the aggression of one who was immeasurably the richest monarch on the face of the earth."

--Dr. A. L Srivastava.

[2] Rana pratap's patriotism was his offence.

—Dr. Smith.

की दवा ले आऊँगा।" इधर किसी ने कह दिया कि "अपने फूफा अकबर को भी अपने साथ ले आना।" जब यह समाचार मानसिंह ने अकबर को सुनाया तो अकबर को बड़ा क्रोध आया और उसने शीघ्र ही राणा प्रताप पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

हल्दी घाटी का युद्ध—राजा मानसिंह तथा आसफ खाँ की अध्यक्षता में मुगल-सेना मेवाड़-विजय के लिए चल पड़ी। इधर राणा ने भी युद्ध की तैयारी की। मुगल-सेना हल्दी घाटी में एकत्रित हुई। इधर राणा भी अपने वीर राजपूतों को लेकर हल्दी घाटी के मैदान में पहुँच गए। राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुगल सेना का सामना किया। इसी समय राजपूतों की सेना में यह समाचार फैल गया कि स्वयं अकबर भी अपनी सेना लेकर आ रहा है। इस समाचार से राजपूतों का उत्साह कम हो गया, अतः राजपूतों की पराजय हुई। अपने अमीरों तथा सरदारों का मत स्वीकार कर राणा को मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

इस विजय के परिणामस्वरूप भी समस्त मेवाड़ पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित नहीं हो पाया। "यह विचार गलत है कि अकबर ने अपने महान् प्रतिद्वन्द्वी राणा के प्रबल पराक्रम के प्रति श्रद्धाभाव के कारण ही शेष जीवन के लिए उसके साथ छेड़-छाड़ बन्द कर दी थी। बल्कि सच तो यह है कि उसने (अकबर ने) राणा को अपने वश में करने के लिए अपने प्रयत्नों में ढिलाई नहीं की।"* अकबर को अपने प्रयत्नों में सफलता प्राप्त नहीं हुई। राणा प्रताप ने पुनः अपनी शक्ति को संगठित किया और एक के बाद एक दुर्ग पर अधिकार करना आरम्भ किया। राणा प्रताप की मृत्यु के समय (१५ जनवरी १५९७) अधिकांश मेवाड़ पर केवल कुछ दुर्गों के अतिरिक्त उसका अधिकार था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अमरसिंह मेवाड़ का राणा हुआ। उसने भी अपने वंश की परम्परा को निभाया और अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की, यद्यपि अकबर ने कई बार अपनी सेनाएँ अमरसिंह की शक्ति का दमन करने के लिए भेजीं।

(१३) काबुल पर अधिकार—भारतीय इतिहास में काबुल का महत्व बहुत अधिक है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि **भारत पर उसी शासक का साम्राज्य स्थायी रूप ग्रहण कर सकता है जिसके अधिकार में काबुल का प्रदेश हो।** इसका कारण यह है कि वहाँ के सैनिकों की भर्ती सरलतापूर्वक की जा सकती है। वह एक बहुत अच्छा रंगरूटों की भर्ती का केन्द्र (Recruiting centre) है। इसके अतिरिक्त काबुल का शासक भारत-साम्राज्य की ओर सदा ललचाई हुई दृष्टि से देखता है। अकबर ने भी काबुल-प्रदेश की महत्ता को समझा। हुमायूँ को इस दिशा में पर्याप्त कठिनाइयों का समान करना पड़ा था। अकबर के शासन-काल में उसका सौतेला भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम काबुल पर शासन कर रहा था। उसने कुछ समय उपरान्त स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया।

---

* "It is erroneously supposed that Akber, moved by sentiments of chivalrous regard for his great adversary, left him unmolested for the rest of his life. The truth, however, is that Akber did not relax his attempt to reduce the Rana."
—**Dr. A. L. Srivastava.**

वह नाम-मात्र के लिए ही अकबर की सत्ता को स्वीकार करता था। अकबर के असन्तुष्ट सरदारों के प्रभाव में आकर उसके हृदय से दिल्ली पर अधिकार करने की इच्छा बलवती हुई। इसी उद्देश्य से उसने १५८० ई० में पंजाब पर आक्रमण किया। अकबर ने शीघ्र ही उसका सामना करने के लिए प्रस्थान किया। मिर्जा हकीम अकबर की शक्ति से भयभीत होकर काबुल वापिस चला गया। अकबर ने उसका पीछा काबुल तक किया। मिर्जा हकीम ने क्षमा-याचना की। अकबर ने उसको क्षमा कर दिया और उसको पुनः काबुल का शासक बना दिया। मिर्जा हकीम की मृत्यु १५८५ ई० में हुई और काबुल मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया।

(१४) **काश्मीर विजय**—अभी तक कोई मुसलमान सुल्तान काश्मीर को अपने अधिकार में करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सका था। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण इस प्रदेश की विजय पर्याप्त कठिन थी। अकबर इन कठिनाइयों से तनिक भी विचलित नहीं हुआ, वरन् उसकी साम्राज्यवादी नीति ने उसको काश्मीर विजय के लिए प्रेरित किया। **सन् १५८६ ई० में अकबर ने राजा भगवानदास तथा कासिम खाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना काश्मीर पर अधिकार करने के लिए भेजी।** इस समय काश्मीर पर यूसफ खाँ का अधिकार था। मुगल सेना को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु युसफ खाँ मुगलों का सामना नहीं कर सका और उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। कुछ समय उपरान्त उसके पुत्र याकूब खाँ ने विद्रोह किया, किन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और काश्मीर मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। राजा मानसिंह को वहाँ का शासक नियुक्त किया गया।

(१५) **सिन्ध-विजय**—इस समय सिन्ध प्रान्त के अतिरिक्त समस्त उत्तरी भारतवर्ष पर अकबर का अधिकार स्थापित हो चुका था। उसका ध्यान शीघ्र ही सिन्ध की ओर आकर्षित हुआ। उत्तरी सिन्ध पर मुगलों का आधिपत्य पहले ही स्थापित हो चुका था। **अकबर ने दक्षिणी सिन्ध को अपने राज्य का हिस्सा बनाने के उद्देश्य से १५९० ई० में बैरमखाँ के पुत्र अब्दुल रहीम खानखाना के नेतत्व में एक विशाल सेना भेजी।** इस समय दक्षिणी सिन्ध पर मिर्जा जानी का अधिकार था। उसने मुगल सेना का डटकर सामना किया, किन्तु वह पराजित हुआ। अकबर ने उसके साथ सद्व्यवहार किया और उसको सिन्ध का सूबेदार बनाया तथा उसको ३,००० का मनसबदार नियुक्त किया गया।

(१६) **उड़ीसा-विजय**— अकबर ने बंगाल व बिहार के अफगान शासक दाऊद को परास्त कर इन दोनों प्रान्तों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। इस समय अफगान अपनी शक्ति का संगठन उड़ीसा में कर रहे थे। अकबर इसको सहन नहीं कर सका। इस समय उड़ीसा पर कतलू खाँ नूहानी शासन कर रहा था। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र निसार खाँ राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। **सन् १५९० ई० में बंगाल के सूबेदार राजा मानसिंह ने अकबर के आदेशानुसार उड़ीसा पर आक्रमण किया।** निसार खाँ ने तुरन्त सन्धि कर ली। अकबर ने उसको वहाँ का

सूबेदार नियुक्त किया। शीघ्र ही उसमें स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना का उदय हुआ और उसने विद्रोह किया। **राजा मानसिंह ने पुनः उड़ीसा पर १५९२ ई० में आक्रमण किया और उसने विद्रोहियों का दमन किया।** तत्पश्चात् उड़ीसा के प्रदेश को बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया।

(१७) **बिलोचिस्तान विजय**—सन् १५९५ ई० में अकबर ने मीर मासूम की अध्यक्षता में बिलोचिस्तान विजय के उद्देश्य से एक सेना भेजी। इस समय इस प्रदेश पर अफगानों का अधिकार था। अफगानों ने मुगल सेना का बड़े उत्साह तथा साहस से सामना किया, किन्तु वे परास्त हुए और इस प्रदेश पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हुआ।

(१८) **कन्दहार विजय**—भारत के इतिहास में कन्दहार का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि यह मध्य एशिया का मुख्य व्यापारिक केन्द्र होने के साथ-साथ राजनीतिक सीमा की सुरक्षा के लिए भी अपना विशेष महत्व रखता है। कन्दहार पर कभी फारस के शाह का अधिकार तथा कभी काबुल के शासक का अधिकार रहता था। वास्तव में दोनों शासक ही उसको अपने अधिकार में करना चाहते थे। भारत के शाह ने हुमायूँ को काबुल-विजय करने के समय इस शर्त पर सहायता प्रदान की थी कि वह काबुल-विजय के उपरान्त कन्दहार शाह को वापिस कर देगा, किन्तु हुमायूँ ने अपने प्रण तथा वचन का उल्लंघन किया। हुमायूँ की मृत्यु होने पर फारस के शाह ने उस पर अपना अधिकार स्थापित किया। अकबर भी कन्दहर का महत्व समझता था और उसने कन्दहार विजय के लिए ही बिलोचिस्तान तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश में स्थित सामरिक प्रवृति की जातियों का दमन किया। इनमें रोशनिया तथा युसूफजाई जातियाँ विशेष महत्वपूर्ण थीं। बड़ी कठिनता से अकबर उसका दमन करने में सफल हुआ। युसूफजाई जाति का दमन करते हुए राजा बीरबल की युद्ध में मृत्यु हुई। इसके साथ बड़ी कठोरता तथा निर्दयता का व्यवहार किया गया। इधर से निश्चित होने पर अकबर ने कन्दहार विजय की योजना का निर्माण किया। उसको आक्रमण करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ, क्योंकि इस समय फारस का **शाह अब्बास** तुर्कों तथा उजबेगों के आक्रमणों के कारण बड़ा परेशान था। फारस की सेना कन्दहर की रक्षा न कर सकी और उस पर मुगलों का आधित्य स्थापित हो गया। इन विजयों के द्वारा अकबर अपनी उत्तरी पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने तथा उसको सुदृढ़ बनाने में सफल हुआ। उसने **वैज्ञानिक सीमा** (scientific frontiers) प्राप्त की जिसको प्राप्त करने के उद्देश्य में अंग्रेजों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी उनको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

दक्षिण-विजय

जैसा उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत सम्राट् था। उसकी विजय-लालसा उत्तरी भारतवर्ष को पदाक्रान्त कर पूर्ण न हो पाई थी। वह दक्षिणी भारतवर्ष को भी-

अपने साम्राज्य में विलीन करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने दक्षिणी भारत पर अधिकार करने की योजना का निर्माण किया। इससे पूर्व कि उसकी विजय-योजना पर प्रकाश डाला जाए यह उचित होगा कि दक्षिणी भारत की राजनीतिक दशा का दिग्दर्शन कराया जाए।

दक्षिणी भारत की राजनीतिक दशा—दिल्ली सल्तनत के शासन-काल में बहमनी राज्य पाँच भागों में विभक्त हो गया था और इनका संघर्ष विजयनगर राज्य से बराबर चलता रहता था। अहमदनगर राज्य का बरार राज्य पर और बीजापुर राज्य का बीदर राज्य पर अधिकार स्थापित हो चुका था। इस प्रकार अब केवल तीन राज्य—अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा शेष रह गए थे। **खानदेश का एक नया राज्य स्थापित हो चुका था।** विजयनगर तालीकोट के युद्ध में बुरी तरह परास्त हो चुका था। मुसलमानी राज्यों में पारस्परिक संघर्ष एवं कलह अपनी चरम सीमा को प्राप्त कर गया था। अकबर ने इस दयनीय दशा का लाभ उठाने का स्वर्ण अवसर देखा। जब वह उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में सफल हो गया तो उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति का ताण्डव नृत्य दक्षिणी भारत में किया।

सन् १५९१ ई० में अकबर ने दक्षिण के चारों राज्यों के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वे उसकी अधीनता स्वीकार करलें। खानदेश के अतिरिक्त अन्य समस्त राज्यों की ओर से उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। इस पर सम्राट् को बड़ा क्रोध आया और उसने दक्षिण-विजय का निश्चय किया।

अहमदनगर—सर्वप्रथम अकबर का क्रोध अहमदनगर राज्य पर पड़ा, क्योंकि वह भौगोलिक दृष्टि से इन सब राज्यों की अपेक्षा उत्तर में पड़ता था। इस समय अहमदनगर राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। सन् १५९५ ई० में वहाँ के शासक बुरहान निजामशाह द्वितीय की मृत्यु हुई और उसके स्थान पर उसका पुत्र इब्राहीम राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ, किन्तु उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। इस पर अमीरों तथा सरदारों के मध्य गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। जब अकबर ने अहमदनगर की ऐसी शोचनीय दशा देखी तो उसने शीघ्र ही अहमदनगर पर आक्रमण किया। मुगलों का एक दल से समझौता हो गया, किन्तु दूसरे दल ने मुगलों की सत्ता का सामना करने का निश्चय किया। **इस दल का नेतृत्व चाँदबीबी ने किया।** मुगलों ने तुरन्त ही अहमदनगर के दुर्ग का घेरा डाला। चाँदबीबी ने मुगलों का सामना बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह से किया। उसने बड़ी वीरता से युद्ध का संचालन किया और मुगलों पर इतना भयंकर आक्रमण किया कि उनको विवश होकर पीछे हटना पड़ा। **चाँदबीबी की वीरता तथा साहस को देखकर मुगल दंग रह गए और उनको विजय की आशा न रही, किन्तु चाँदबीबी अहमदनगर राज्य की दुर्बलताओं के साथ-साथ मुगल शक्ति से भी भली-भाँति परिचित थी।** उसने मुगलों से सन्धि करने में ही अपने देश का हित समझा। दोनों में सन्धि हो गई जिसके परिणामस्वरूप बरार का प्रदेश मुगलों को दे दिया गया और अहमदनगर की स्वतन्त्रता पूर्ववत् बनी रही। कुछ सरदारों ने इस सन्धि का घोर विरोध किया जिससे चाँदबीबी के हृदय को बड़ी

ठेस पहुँची। उसने अपने आपको राजनीति से पृथक् कर लिया। अमीरों ने एक विशाल सेना का संगठन कर बरार को मुगलों से स्वतन्त्र करने के लिए आक्रमण किया। आरम्भ में अहमदनगर की सेना ने आक्रमण किया और उसे बड़ी सफलता प्राप्त हुई, किन्तु उसके सेनापति की मृत्यु होने के कारण सेना का अनुशासन शिथिल पड़ गया और उनमें भगदड़ मच गई, किन्तु मुगलों में भी इतनी शक्ति शेष न थी कि वे अहमदनगर की सेना का पीछा करते। इसी समय अकबर स्वयं दक्षिण में आया और अहमदनगर की सेना को परास्त कर उसने उनके राज्य पर अधिकार किया। चांदबीबी की या तो मृत्यु हो गई अथवा उसने विषपान कर अपनी जीवन-लीला को समाप्त कर डाला। अहमदनगर का नवयुवक शासक बन्दी बनाकर ग्वालियर भेज दिया गया।

असीरगढ़-विजय—असीरगढ़ का दुर्ग खानदेश में स्थित था। **दक्षिणी भारत के मार्ग में पड़ने के कारण वह दक्षिण का फाटक कहलाता था।** बिना असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार किए दक्षिणी भारत को विजय करना असम्भव था। जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि प्रारम्भ में खानदेश के शासक रजाअली खाँ ने अकबर का प्रस्ताव स्वीकार कर उसकी अधीनता स्वीकार करली थी, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र मीरन बहादुर खाँ ने स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया और अपने आपको मुगलों से स्वतन्त्र घोषित किया। उसका विश्वास था कि मुगल असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सकेंगे। वह दुर्ग अभेद्य समझा जाता था। इस समय अकबर को पूर्ण अवकाश था और उसने अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार करने के लिए किया। **सन् १६०० ई० में मुगलों का अधिकार खानदेश की राजधानी बुरहानपुर पर बिना किसी विशेष विरोध के हो गया।** मुगलों ने असीरगढ़ के दुर्ग का तुरन्त घेरा डाल दिया, किन्तु छः महिने तक उसको सफलता के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुए। यह अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट् के मान तथा प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। जब अकबर इस निर्णय पर पहुँचा कि शक्ति तथा सैन्य बल के आधार पर दुर्ग पर अधिकार करना असम्भव है तो उसने कूटनीति की शरण ली। उसने मीरन बहादुर को धोखे से बन्दी किया, किन्तु फिर भी उसका दुर्ग पर अधिकार नहीं हो सका। उसने फिर द्वार-रक्षकों को घूंस के रूप में बहुत-सा धन दिया जिसके कारण उन्होंने दुर्ग के द्वार खोल दिए। मुगल सेना ने तुरन्त दुर्ग में प्रवेश किया और उनका शीघ्र ही दुर्ग पर अधिकार हो गया। यद्यपि अकबर अपने मनोरथ में सफल हुआ, किन्तु उसने इस राज्य को अपने अधीन करने में बड़े ही निन्दनीय साधनों का प्रयोग किया। **उसका यह कार्य उसके उज्ज्वल नाम पर बड़ा भारी कलंक है।** कूटनीतिक दृष्टि से अकबर के इस कार्य का अनुमोदन किया जा सकता है, किन्तु नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य घृणास्पद अवश्य था। **डाक्टर विन्सेंट स्मिथ** ने उसकी इस नीति का अनुमोदन तथा समर्थन निम्न आधारों पर किया—

(१) इस समय अकबर की सैनिक प्रतिष्ठा दाव पर थी।

(२) अपनी वृद्धावस्था तथा अपने पुत्र सलीम की विद्रोहपूर्ण भावना तथा व्यवहार के कारण अकबर इस घेरे को अनिश्चित काल तक नहीं चलाना चाहता था, तथा

(३) अकबर की यह धारणा थी कि मीरन बहादुर खाँ के बन्दी किए जाने के उपरान्त दुर्ग पर उसका शीघ्र ही अधिकार स्थापित हो जाएगा, किन्तु जब ऐसा नहीं हो पाया तो उसने यह नीति अपनाई।

इस प्रकार मुगलों के अधिकार में अहमदनगर और खानदेश के प्रदेश आ गए। बीजापुर का शासक इब्राहीम आदिलशाह भयभीत हो गया और उसने अकबर को प्रसन्न करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार दानियाल से करने का वचन दिया। दक्षिण के समस्त प्रदेश एक प्रान्त में सम्मिलित किए गए और राजकुमार दानियाल इस प्रान्त का सुबेदार नियुक्त किया गया। यह व्यवस्था स्थापित कर अकबर सन् १६०२ ई० में आगरे आया।

अकबर के साम्राज्य का विस्तार—उक्त विजयों के सम्पन्न करने में अकबर का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ। उसने विजय-कार्य सन् १५५८ ई० से आरम्भ किया। सन् १५७६ ई० तक उसके अधिकार में समस्त उत्तरी भारतवर्ष आ गया।

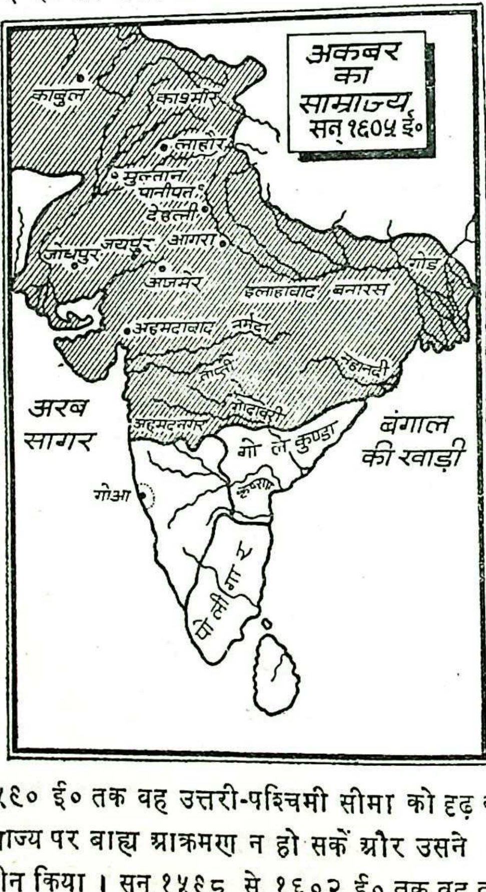
अकबर का साम्राज्य सन् १६०५ ई०
काबुल
काश्मीर
लाहौर
मुल्तान
पानीपत
देहली
जोधपुर
जयपुर
आगरा
अजमेर
इलाहाबाद
बनारस
गौड़
अहमदाबाद
नर्मदा
ताप्ती
महानदी
गोदावरी
अहमदनगर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
गोलकुण्डा
गोआ
कृष्णा
पोलीगार

सन् १५८० से १५९० ई० तक वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ करने में संलग्न रहा, जिससे मुगल-साम्राज्य पर बाह्य आक्रमण न हो सकें और उसने काबुल तथा कन्दहार को अपने अधीन किया। सन् १५९८ से १६०२ ई० तक वह दक्षिण की राजनीति

में उलझा रहा और वहाँ पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस प्रकार अकबर का साम्राज्य काबुल से बंगाल तक तथा काश्मीर से बीजापुर तथा गोलकुण्डा की सीमा तक विस्तृत था। उसका समस्त साम्राज्य निम्न अठारह प्रान्तों में विभक्त था—

(१) काबुल, (२) लाहौर, (३) मुलतान, (४) दिल्ली, (५) आगरा, (६) अवध, (७) इलाहबाद, (८) अजमेर, (९) गुजरात, (१०) मालवा, (११) बिहार, (१२) बंगाल, (१३) खानदेश, (१४) बरार, (१५) अहमदनगर, (१६) उड़ीसा, (१७) काश्मीर और (१८) सिन्ध। कुछ विद्वानों के अनुसार उसका राज्य १५ प्रान्तों में विभक्त था।

अकबर की विजय के कारण

अकबर ने शीघ्र ही समस्त उत्तरी भारतवर्ष तथा दक्षिण के कुछ राज्यों पर मुगल-पताका फहरायी। उसकी विजय के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) सैनिक योग्यता—अकबर उच्चकोटि का सैनिक तथा योग्य सेनापति था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य सैनिक तथा योग्य सेनापति के लिए वांछनीय थे। वह बड़ा सहासी तथा अदम्य उत्साही था। वह युद्ध की भीषण परिस्थितियों से कभी विचलित नहीं होता था। वह उनका सदा धैर्यपूर्वक सामना करने को उद्यत रहता था।

(२) दृढ़ संकल्प वाला—अकबर बड़ा दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था। वह जिस बात का निश्चय कर लेता था उसकी प्राप्ति के लिए जी-जान से प्रयत्नशील हो जाता था।

(३) अनुशासन-प्रेमी—अकबर को अनुशासन से बड़ा प्रेम था। उसका यद्यपि अपने सैनिकों तथा कर्मचारियों से सहृदयता का व्यवहार था, किन्तु अनुशासन भंग करने वाले व्यक्तियों को वह बड़ा कठोर दण्ड देता था। इससे सेना उसके पूर्ण नियन्त्रण में रहती थी और उसके आदेशों के अनुसार कार्य करने को सदा उद्यत रहती थी।

अकबर की विजय के कारण

(१) सैनिक योग्यता।
(२) दृढ़ संकल्प वाला।
(३) अनुशासन-प्रेमी।
(४) कर्त्तव्य-परायणता।
(५) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ।
(६) लक्ष्य की प्रधानता।
(७) मितव्ययिता।
(८) सैनिक शक्ति।
(९) राजपूतों की सहायता प्राप्त होना।
(१०) हिन्दु जनता के प्रति नीति।
(११) तोपों का प्रयोग।
(१२) उचित युद्ध-प्रणाली।

(४) कर्त्तव्यपरायणता—अकबर में कर्त्तव्यपरायणता का गुण विशेष मात्रा में विद्यमान था। वह अपने कर्त्तव्य का पालन उचित रूप से करता था और उसके सम्बन्ध में कभी भी उदासीन नहीं रहता था।

(५) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ—अकबर उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ था। अपनी कूटनीति के कारण वह असीरगढ़ जैसे अभेद्य दुर्ग पर अधिकार करने में सफल हुआ जिसको वह लगभग १ वर्ष का घेरा डालकर भी सफल नहीं हुआ।

(६) **लक्ष्य की प्रधानता**—अकबर लक्ष्य की प्रधानता में विश्वास करता था। वह उसकी प्राप्ति के लिए समस्त साधनों का उपयोग करने को तत्पर रहता था। उसका विश्वास साधन के औचित्य में नहीं था।

(७) **मितव्ययिता**—अकबर मितव्ययी था। वह जानता था कि धन के अभाव में शासन में शिथिलता उत्पन्न हो जाती है और ऐसा होने पर साम्राज्य पर अन्त हो जाता है। वह बहुत सोच-विचार का धन का व्यय करता था।

(८) **सैनिक शक्ति**—अकबर की सैनिक शक्ति बहुत अधिक थी। प्रत्येक विजय के उपरान्त उसमें वृद्धि होती गई। उसको भाग्य से योग्य सैनिकों तथा सेनापतियों का निरन्तर सहयोग प्राप्त होता रहा। उन्होंने मुगलों के साम्राज्य-विस्तार में लगन के साथ सहायता की।

(९) **राजपूतों की सहायता प्राप्त होना**—अकबर जानता था कि राजपूतों की सहायता के अभाव में भारत में दृढ़ व सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना सम्भव नहीं। उसने उनके साथ सद्व्यवहार किया। उनकी कन्याओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। राजपूत जाति से उसको योग्य, कुशल सैनिक तथा सेनापति प्राप्त हुए।

(१०) **हिन्दु जनता के प्रति नीति**—उसने हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार किया। उनको ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन किया। हिन्दू उसको प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

(११) **तोपों का प्रयोग**—अकबर ने भारत के विभिन्न राज्यों की विजय के लिए बन्दूकों और तोपों का प्रयोग किया। भारतीय इनके प्रयोगों से अनभिज्ञ थे। इनके द्वारा अकबर को समस्त युद्धों में सफलता प्राप्त हुई।

(१२) **उचित युद्ध-प्रणाली**—अकबर ने उचित युद्ध-प्रणाली को अपनाया। उसको युद्ध-कला का पूर्ण ज्ञान था जितना किसी भी भारतीय शासक को नहीं था।

अकबर के अन्तिम दिवस और उसकी मृत्यु

यह दुर्भाग्य है कि अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट तथा इतने विस्तृत साम्राज्य के संस्थापक के अन्तिम दिन कष्टमय व्यतीत हुए। इसका कारण उसके एकमात्र प्रिय पुत्र राजकुमार सलीम का दुर्व्यवहार था जो साम्राज्य-प्राप्ति के लिए विकल हो उठा था। जब असीरगढ़ के दुर्ग का घेरा अकबर डाले हुआ था तो सलीम ने इलाहाबाद में अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित किया। अकबर आगरा आया और पिता-पुत्र में मेल हो गया, किन्तु यह मेल स्थायी न रह सका। दो वर्ष के बाद उसमें फिर विद्रोह की भावना बलवती हुई और उसने ओरछा के वीरसिंह बुन्देला द्वारा अबुल फजल का वध करवाया जो दक्षिण से वापिस आ रहा था। अकबर को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसको बड़ा दुःख हुआ और वह इस दुःख में कई दिनों तक विलाप करता रहा। अबुलफजल अकबर का बड़ा प्रिय दरबारी था। इस समय उसने कहा "कि यदि सलीम सम्राट ही बनना चाहता था तो वह अबुल फजल, के स्थान पर मेरी हत्या कर डालता।" सम्राट ने अपने विद्रोही पुत्र के इस अपराध को भी

क्षमा किया और पुनः दोनों में मेल हो गया। अकबर ने उसको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, किन्तु सलीम तो सम्राट बनना चाहता था। उसको इससे सन्तोष नहीं हुआ और इलाहाबाद पहुँचते ही उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। सम्राट को बड़ा दुःख हुआ। किन्तु वह अपने पुत्र के प्रति कोई कार्यवाई नहीं करना चाहता था।

इसी समय अकबर रोगग्रस्त हो गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके अन्तिम दिन समीप हैं। राजकुमार सलीम अपनी भूल पर पछताया और उसने सम्राट से क्षमा-याचना की। इसी समय राजकुमार सलीम के विरोधियों ने उसको पदच्युत कराने का एक षड्यन्त्र रचा। इस षड्यन्त्र के प्रमुख नेता राजा मानसिंह तथा अजीज कोका थे। ये सलीम के पुत्र राजकुमार खुसरो को राज्यसिंहासन पर आसीन करना चाहते थे। खुसरो राजा मानसिंह का भानजा था और अजीज कोका का दामाद था। सलीम के आगरे आने पर यह षड्यन्त्र विफल हो गया। इन समस्त कुचक्रों के कारण सम्राट का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा। **अन्त में १७ अक्टूबर १६०५ ई० को इस महान् सम्राट की मृत्यु हुई और उसका शव आगरे के पास सिकन्दरे में स्थित मकबरे में दफना दिया गया।** इस भवन का निर्माण स्वयं अकबर ने कराया था।

अकबर का व्यक्तित्व तथा चरित्र

अकबर की गणना न केवल भारत के इतिहास में वरन् विश्व के इतिहास में महान् शासकों में की जाती है। हम विद्वानों की इस धारणा से सहमत हैं कि **भारत पर शासन करने वाले मुसलमान शासकों में वह सर्वोच्च था, यद्यपि वह इस्लाम धर्म का अनुयायी था, किन्तु मुसलमान शासकों में वह ही एक ऐसा सम्राट् था जो अपनी प्रजा को समान दृष्टि से देखता था और उनके साथ उसका व्यवहार उच्च-कोटि का था।** उसने अपनी नीति द्वारा भारतीय जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया और वह अपने उद्देश्य में सफल हुआ, क्योंकि उसके साम्राज्य को दृढ़ करने में तथा उसको विशाल रूप प्रदान करने में जितना हाथ मुसलमानों का था उससे किसी भी दशा में हिन्दुओं का कम और विशेषतया राजपूतों का हाथ नहीं था। उसके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

(१) **शारीरिक गठन**—अकबर का शारीरिक गठन बहुत चित्ताकर्षक था। उसकी आकृति बड़ी सुन्दर थी। उसके अंग-प्रत्यंग से राजत्व टपकता था। उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था और उसको देखते ही प्रत्येक व्यक्ति उसको सम्राट समझ लेता था। **जहाँगीर के शब्दों में,** 'अकबर का सौंदर्य उसके चेहरे की अपेक्षा उसकी शारीरिक गठन में था। उसका शारीरिक गठन बड़ा सुदृढ़ था। उसकी आकृति में सांसारिक बातें कम तथा दैवी आभा अधिक विद्यमान थी।'* **फादर मॉंसिरेट के अनुसार,** ''चेहरे और शारीरिक गठन से वह राजकीय गौरव के ही योग्य

---

* ''His beauty was of form than of face and he was powerfully built. His whole air and appearance had little of the worldly being but showed rathre divine majesty.'' —Memoirs of Jahangir.

था। हँसते समय आकृति विकृत हो जाती थी, किन्तु गम्भीर मुद्रा में उसमें सुन्दर स्वभाव तथा बड़प्पन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। क्रोध की मुद्रा में उसकी आकृति अनुपम रूप धारण करती थी।"* अकबर का ललाट ऊँचा, उसकी भुजाएँ लम्बी, उसका कद मंझला तथा उसके नेत्र दीप्तिमान थे। उसका रंग गेहुँआ था और उसकी भौंहें काली थीं। उसका सीना चौड़ा और नाक सीधी और उसके नथुने फूले हुए थे। उसकी नाक की बाईं ओर आधे मटर के बराबर एक मस्सा था जिसने उसकी सुन्दरता को और भी चित्ताकर्षक बना दिया था। इस मस्से के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा है कि यह भाग्यशाली होने का चिन्ह है। वह न बहुत मोटा और न बहुत पतला था। उसकी टांगें कुछ भीतर की ओर झुकी हुई थीं जिससे उसको घोड़े की सवारी में बड़ी सहायता मिलती थी। वह बाँए पैर को रगड़ कर चलता था; किन्तु वह लंगड़ा नहीं था। उसके हाथ तथा भुजाएँ लम्बी थीं। उसकी आवाज बुलन्द तथा प्रभावशाली थी।

अकबर का व्यक्तित्व तथा चरित्र

(१) शारीरिक गठन।
(२) शारीरिक शक्ति।
(३) वेश-भूषा।
(४) अकबर का स्वभाव।
(५) दिनचर्या।
(६) अभिरुचि।
(७) मानसिक शक्ति।
(८) धार्मिक उदारता।
(९) महान् सेनानायक।
(१०) उच्च शासन-प्रबन्धक।
(११) विलासी।

(२) शारीरिक शक्ति—अकबर बड़ा शक्तिशाली तथा बलिष्ट था। वह बिना विश्राम किए घण्टों परिश्रम कर सकता था। वह युद्ध करने में नहीं थकता था। ऐसा कहा जाता है कि एक बार वह एक दिन और एक रात्रि में अजमेर से आगरा घोड़े पर आया, यह दूरी लगभग २५० मील है। वह अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर मस्त हाथियों तथा घोड़ों को वशीभूत कर लेता था। उसका शरीर निरोग तथा स्वस्थ्य था।

(३) वेषभूषा—उसको सुन्दर रेशमी वस्त्र तथा आभूषण पहनने का चाव था। वह लम्बा रेशमी अंगरखा पहनता था जिस पर सोने का काम था। वह सर पर पगड़ी धारण करता था जो अमूल्य रत्नों से सुसज्जित होती थी। वह सदा अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहता था। उसकी कमर में सदा तलवार लटकती रहती रहती थी। उसके साथ सदैव सशस्त्र अंग-रक्षक रहते थे।

(४) अकबर का स्वभाव—अकबर का स्वभाव बहुत अच्छा था। उसका व्यवहार अमीरों तथा सरदारों से नम्र था। वह हास्य-विनोद का प्रेमी था और

---

* "He was in face and stature fit for the dignity of king. When he laughs he is distorted but when he is tranquil, screne, he has a noble mein and dignity. In his wrath, he is majestic."

—Father Monserrate.

उसमें दिल खोलकर भाग लेता था। साधारण जनता के प्रति भी उसके विचार सराहनीय थे। उसमें अहंकार तथा दम्भ का नाम भी नहीं था। वह बड़ा दयालु और कोमल स्वभाव का था। जब उसको क्रोध उत्पन्न होता था तो वह कठिन से कठिन दण्ड तक देने में नहीं हिचकता था, किन्तु इस प्रकार के अवसर बहुत कम आते थे। उसका क्रोध भी शीघ्र शान्त हो जाता था।* वह अपने सम्बन्धियों तथा शुभचिन्तकों से प्रेम करता था और उनके अपराध को क्षमा कर देता था। उसने कई बार राजकुमार सलीम और मिर्जा हकीम को क्षमा प्रदान की। उसने सम्बन्धियों को उच्च पदों पर आसीन किया। उसको बीरबल तथा अबुलफजल की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ।

(५) **दिनचर्या**—अकबर का जीवन बड़ा नियमित तथा संयमी था। वह व्यर्थ में अपना समय नहीं गंवाता था। वह अपना अधिकांश समय राज-कार्य की देख-भाल में व्यतीत करता था और जो समय शेष रहता था उस समय वह शास्त्रार्थ, साहित्य-चर्चा आदि में तल्लीन रहता था। वह दिन में एक बार भोजन करता था, उसके खाने का समय निश्चित नहीं था। जब कार्य से उसको अवकाश प्राप्त होता था उसी समय वह भोजन कर लेता था। युवावस्था में वह मांस तथा मदिरा का विशेष प्रयोग करता था, किन्तु बाद में उसने इनका प्रयोग बड़ा सीमित कर दिया।

(६) **अभिरुचि**—अकबर को आखेट का बड़ा चाव था। वह जंगली तथा भयंकर पशुओं के शिकार खेलता था और उसमें उसको बड़ा आनन्द आता था। वह पशुओं से तनिक भी भयभीत नहीं होता था। उसको मस्त हाथियों का युद्ध देखने का बड़ा चाव था। अकबर एक उच्च-कोटि का घुड़सवार तथा निशाना लगाने वाला था। ऐसा कहा जाता है कि उसका निशाना अचूक था।

(७) **मानसिक शक्ति**—अकबर में उच्च-कोटि की मानसिक शक्ति थी। यद्यपि वह विशेष शिक्षित नहीं था, किन्तु उसका मानसिक विकास पर्याप्त था जिसके आधार पर वह विद्वान कहा जा सकता है। उसको इतिहास, दर्शन-शास्त्र तथा धर्म-शास्त्र के सुनने तथा उन पर वाद-विवाद करने का बड़ा शौक था। अकबर की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। वह सुनकर ही इतना ज्ञान प्राप्त कर लेता था जितना अन्य पढ़कर भी ज्ञान प्राप्त करने में अपने आपको असमर्थ पाते थे। कुछ लोगों की यह धारणा है कि उसकी स्मरण शक्ति दैवी थी। वह गम्भीर से गम्भीर प्रश्न सरलता-पूर्वक समझ लेता था। उसके सुझाव उच्च-कोटि के होते थे जो योग्य तथा अनुभवी राज्य कर्मचारियों तक को अचम्भे में डाल देते थे। इस शक्ति के आधार पर वह महान् शासक बनने में सफल हुआ। उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार **फरिश्ता** लिखता है कि, "यद्यपि अकबर उच्च-कोटि का विद्यार्थी नहीं था किन्तु वह कभी-कभी कविताओं की रचना भी किया करता था। उसका इतिहास-सम्बन्धी ज्ञान अपूर्व था।

---

* 'The prince rarely loses his temper, but he should fall into a passion, it is impossible to say how great his anger may be, the good thing about it is that he presently regains his calmness and that his anger is short-lived, quickly passing from him, for in truth, he is naturally humane, gentle and kind."

वह मुसलमान इतिहासकारों तथा धर्मशास्त्रियों के ग्रन्थों से भली प्रकार परिचित था, उसका सम्पर्क एशिया के सामान्य साहित्य और विशेषतया सूफी विद्वानों के लेखों से विशेष रूप से था।"*

(८) **धार्मिक उदारता**—अकबर की सबसे उच्च विशेषता यह थी कि उस धार्मिक कट्टरता का सर्वथा अभाव था। वह इस्लाम धर्म का अनुयायी था, कि वह सब धर्मों तथा उनके अनुयायियों को आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। इस प्रकार उसका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वह नियमित रूप से नमाज पढ़ता था और सदा अपना ध्यान सत्य की खोज में लगाता था। उसको धार्मिक वाद विवादों के सुनने का बड़ा चाव था। उसने दीन-इलाही धर्म के अन्तर्गत समस्त धर्मों की उच्च तथा महान् बातों का समावेश किया है। उसने मन्दिरों का विध्वंस नहीं कराया। उसके शासन-काल में प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसको कट्टरता से बड़ी घृणा थी।

(९) **महान् सेनानायक**—अकबर उच्चकोटि का सेनानायक था। वह युद्ध की भीषणता, भयंकरता तथा रक्तपात से तनिक भी विचलित नहीं होता था, वास्त में उसको युद्ध से प्रेम था। अकबर को सैन्य-संगठन तथा उसके संचालन का पूर्ण ज्ञान था।

(१०) **उच्च शासन-प्रबन्धक**—अकबर एक उच्च-कोटि का शासक था। उसकी शासन-निपुणता तथा नीतिमत्ता अद्वितीय थी। उसने प्रचलित शासन में बहुत कुछ सुधार किए और उनको ऐसा रूप प्रदान किया कि वह उसकी निजी विशेषता बन गई। उसने इस्लाम धर्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का परित्याग किया और उनको राष्ट्रीय रूप दिया।

(११) **विलासी**—अकबर में समस्त गुणों के होते हुए भी उसमें कुछ दो विद्यमान थे। अकबर का व्यक्तित्व उतना पूर्ण एवं मर्यादित नहीं था जितना कि उसके मित्र तथा दरबारी अबुल फजल ने चित्रित किया। वह बड़ा विलासी था, कि वह निपट व्यभिचारी, व्यसनी नहीं था। यद्यपि शासन के प्रारम्भिक काल में उसमें विलासिता की मात्रा पर्याप्त थी, परन्तु इस क्षेत्र में वह तात्कालिक स्तर से ऊप नहीं उठ सका। ऐसा कहा जाता है कि उसके अन्तःपुर में ५०० स्त्रियाँ थीं, इसमें कुछ अतिश्योक्ति प्रतीत होती है।

अकबर का इतिहास में स्थान

अकबर का न केवल भारतीय इतिहास में ही उच्च स्थान है वरन्, विश्व के इतिहास में उसका उच्च स्थान है। उसकी गणना उसके गुणों तथा कार्यों के कारण विश्व के प्रमुख तथा महान् सम्राटों में की जाती है। इतिहासकारों ने उसकी भूमि

---

* "Although Akbar was by no means an accomplished scholar, he some time wrote poetry and was well read in history. He was intimately acquainted with the work of Muslim historians and theologians, as well as with a considerable amount of general Asiatic literature, especially with the writings of Sufis."
—Farishta

भूरि प्रशंसा की। पाठकों की सुविधा के लिए निम्न पंक्तियों में कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों के विचार प्रकट किए जाते हैं—

(१) **कर्नल मेलेसन के अनुसार**—"अकबर का महान् विचार एक सम्राट् के अन्तर्गत समस्त देश की एकता स्थापित करना था। उसका विधान एक शासक तथा एक साम्राज्य-निर्माता के लिए सर्वश्रेष्ठ था। उसके वे ही नियम थे जिनके आधार पर पाश्चात्य शासक आज भी शासन कर रहे हैं। अकबर की ख्याति उसके अमर कार्यों पर आधारित है। अकबर द्वारा स्थापित साम्राज्य की नींव इतनी गहरी थी कि उसका पुत्र बहुत कुछ अपने पिता के समान न होते हुए भी राज्य को विधिवत् सम्भालने में समर्थ रहा। जब हम अकबर के कार्यकलापों पर, उसके युग पर तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के हेतु प्रयुक्त किए गए साधनों पर ध्यान देते हैं तो हमें यह विश्वास हो जाता है कि अकबर उन महान् व्यक्तियों में से था जिन्हें सर्व-शक्तिमान परमात्मा राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्र को शान्ति तथा सहिष्णुता के मार्ग पर ले जाने के लिए भेजता है जिस पर मानवता का कल्याण निहित है।"[1]

(२) **लॉरेंस बिनियन के अनुसार**—"अकबर का सबसे महान् कार्य एक शासक के रूप में विभिन्न राज्यों, जातियों तथा धर्मों का एकीकरण था। इस लक्ष्य की प्राप्ति एक निश्चित संगठन द्वारा सम्पन्न हुई। किसी भी वस्तु का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने की अकबर में अद्भुत प्रतिभा थी। विदेशी होते हुए भी उसने विजित भारत के साथ पूर्ण आत्मीयता स्थापित की और उसकी अधिकांश पद्धति प्रायः स्थायीपन धारण कर सकी। अकबर और उसके मन्त्रियों द्वारा प्रयुक्त नियम और व्यवहारिक कार्य बहुत सीमा तक अंग्रेजी शासन-प्रणाली में अपनाए गए। सबसे बढ़कर बात यह थी कि अकबर में मानवता थी।"[2]

---

[1] "Akbar's great idea was the union of all India under one head. His code was the grandest of codes for a ruler, for the founder of an empire. They were the principles by accepting which his western successors maintain it at the present day. His reputation is built upon deeds which lived after him. The foundation dug by Akbar were so deep that his son, although so unlike him, was able to maintain the Empire which the principles of his father had welded together. When we reflect what he did, the age in which he did it, the methods he introduced to accomplish it, we are bound to recognise in Akbar one of those illustrius men whom Providence sends in the time of nation's trouble, reconduct it into those paths of peace and toleration which alone can assure the happiness of the millions."
—**Col. Melleson.**

[2] His great achievement as a ruler was to weld the collection of different states, different races, different, religions into a whole. It was accomplished by elaborate organisation. Akbar had an extraordinary genius for details, although a foreigner, he indentified himself with the India he had conquered. And much of his system was to be permanent. The principlies and practice worked out by Akbar and his ministers were largely adopted into the English system of Government. He was above all things humane."
—**Lawrence Binyon.**

(३) **प्रो० के० टी० शाह के अनुसार**—"अकबर बादशाह मुगल बादशा में सबसे महान् और यदि शक्तिशाली मौर्य शासकों के काल से नहीं तो कदाचि १००० वर्ष तक के भारतीय शासकों में सबसे महान् था। अकबर की महानता कारण यह था कि वह पूर्णतया भारतीय हो गया था। उसकी प्रतिभा ने हिन्दू औ मुसलमान दो जातियों को एक विशाल साम्राज्य की समान सेवा तथा समान ना रिकता के बन्धनों द्वारा एक राष्ट्र के रूप में परिणित करने के कार्य की सम्भाव का अनुभव किया और उसने उत्साह से यह कार्य सम्पादित किया। अकबर मनु का जन्मजात स्वामी था। दूसरे युग में नियमों अथवा दूसरे आदर्शों के दृष्टि-बिन्दु उसकी आलोचना करना अनुचित होगा। एक तीव्रतम आलोचना की न्यायोचि सीमाओं के अन्तर्गत उसके जीवन, दृष्टिकोण तथा कार्यों में बहुत कुछ ऐसी बाते जिनसे वह स्वभावतया हमारी प्रशंसा का पात्र बन जाता है।"[1]

(४) **एडवर्ड्स तथा गैरेट के अनुसार**—"अकबर ने विभिन्न कार्य-क्षेत्रों अपनी योग्यता एवं प्रतिभा का परिचय दिया। वह एक सैनिक, एक महान् सेनाप योग्य शासन-प्रबन्धक, उदार शासक तथा उचित निर्णायक था। वह मनुष्यों जन्मजात नेता था और इतिहास के शक्तिशाली सम्राटों में गिने जाने की क्षम रखता था। पचास वर्ष के शासनकाल में अकबर एक ऐसे राज्य का निर्माण करने सफल हुआ जो अपने समय का सर्वशक्तिशाली साम्राज्य था तथा उसने एक ऐसे की स्थापना की जिसकी शक्ति तथा आधिपत्य का लोहा लगभग एक शताब्दी समस्त प्रतिद्वन्द्वियों को स्वीकार करना पड़ा। अकबर के शासनकाल ने ही मुगलों एक सैनिक आक्रमणकारियों की स्थिति से उठाकर एक स्थायी वंश-परम्परा परिवर्तित कर दिया।"[2]

---

1. "Akbar was the greatest of the Mughals and perhaps the greatest all Indian rulers of a 1000 years, if not ever since the days of the migh Mauryas. Akbar was so great because he was so thoroughly Indianised. H genius perceived the possibilities and his courage undertook the task of weldi the two communities into a Common Nation by universal bond of comm service and equal citizenship of a magnificient empire. Akbar was a bo master of men and bred and autocrat in an age of despotism. It would unjust to criticise by the cannon of another age or from the standpoint other ideals. Within the legitimate limits of a most searching criticism, the is not very much indeed—in his life and outlook and achievement which mu demand our unstinted, unqualified admiration and little that could just meri

—Prof. K. T. Sh

2. "Akbar has proved his worth in different fields of action. He was so dieir, a great general, a wise administator, a benevolent ruler, a sound jud of character. He was a born leader of men and can rightly claim to be one the mightiest sovereigns known to history. During a reign of 50 years, he bu up a powerful empire which could view with the strongest and established dynasty whose hold over India was not contested by any rival for about century. His reign witnessed the final transformation of the Mughals from m military invader into the permanent Indian dynasty." —Edwards and Garr

(५) ई० बी० हैवल के अनुसार—"अकबर के वैयक्तिक चरित्र पर समस्त धार्मिक सुधारकों के समान निस्सार तथा तर्कहीन प्रमाणों के आधार पर अनुचित दोषारोपण किया गया है। उसके उद्देश्यों को संदेहपूर्ण समझा गया तथा उसके कार्यों का रूप विकृत कर दिया गया। अकबर न तो एक परम्परागत तपस्वी था और न साधु ही, परन्तु पृथ्वी के महान् शासकों में बहुत कम शासक अकबर के समान अधिक न्यायोचित कार्यों को कर सके हैं तथा मानवता को समर्पित कर अपने धार्मिक जीवन के आदर्शों को निरन्तर ऊँचा रख सके हैं। पाश्चात्य दृष्टिकोण से अकबर का उद्देश्य धार्मिक होने की अपेक्षा राजनीतिक प्रतीत होता है, परन्तु सर्वोच्च धार्मिक सिद्धान्तों को राज्य की नीति का शान्ति-स्रोत बनाने के अपने प्रयत्नों द्वारा अकबर ने भारतीय इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया एवं इस्लाम की राजनीतिक नैतिकता को पहले की अपेक्षा पर्याप्त उन्नत-स्तर पर लाकर रख दिया।"[1]

उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अकबर में वे समस्त गुण विद्यमान थे जो उसकी गणना विश्व के महान् सम्राटों में कराने में सहायक हैं। वह अपने समकालीन अन्य देशों के शासकों से बहुत उच्च-कोटि का था, चाहे किसी भी दृष्टि से उसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया जाए। इस आधार पर **डाक्टर विन्सेन्ट स्मिथ** का कथन नितान्त सत्य है कि "वह मनुष्यों का जन्मजात शासक था जिसकी गणना इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होनी नितान्त न्यायसंगत है।"[2]

(ख) जहाँगीर

अकबर की मृत्यु के उपरान्त २४ नवम्बर १६०५ ई० में राजकुमार सलीम ३६ वर्ष की अवस्था में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। यद्यपि उसमें वे समस्त गुण विद्यमान नहीं थे जो उसके पिता में थे, किन्तु उसका **प्रारम्भिक काल उसकी योग्यता का परिचय देता है।** इस काल में उसने अपने पिता की नीति अपनायी और जनता के साथ उचित व्यवहार किया। उसने उन व्यक्तियों को क्षमा-प्रदान की जिन्होंने अकबर के शासन-काल में उसको पदच्युत करके उसके पुत्र राजकुमार खुसरो को राज्यसिंहासन पर आसीन करने का षड्यन्त्र रचा था।[3] उसने अपनी न्यायप्रियता प्रदर्शित करने

---

[1] "Akbar has shared the fate of all great reformers in having his personal character unjustly assailed, his motives impugned, and his actions distorted upon evidence which hardly bears judicial examination. He was neither an ascetic, nor against of the conventional type, but few of the great rulers of earth can show a better record for details of righteousness or more honourably and consistently maintained their ideals or religious life devoted to the service of humanity. In the western sense his mission was political rather than religious but in his attempts to make the highest religious principles the motive power of state policy, he won an imperishable name in Indian hisory and lifted the political ethics of Islam into a plane higher than they have reached before."

—**E. B. Havell.**

[2] "He was a born king of men, with a rightful claim to rank as one of the greatest soveerigns known to history." — **Smith.**

[3] 'Salim formally ascended the throne on October 24,1605 with title of

के अभिप्राय से अपने महल के बाहर एक सोने की जंजीर लटवाई और उसमें घण्टा लगवाया। जब किसी की शिकायत होती तो वह जंजीर खींचता था और बादशाह स्वयं उसकी फरियाद सुनता था।[1] उसने बारह अध्यादेश जारी किए जो इस प्रकार हैं—

(१) उसने अनेक प्रकार के कर बन्द कर दिए, कुछ दण्ड स्थगित कर दिए तथा कुछ मादक द्रव्यों का बनाना तथा उनकी बिक्री को अवैध घोषित किया।[2]

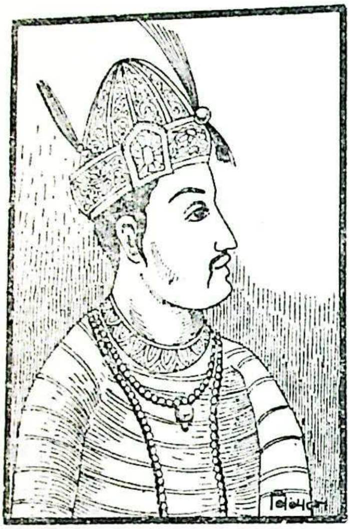

जहाँगीर

(२) उसने समस्त राज्य को चोरों तथा डाकुओं से सुरक्षित कर उसकी उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।

(३) लोगों को मृत सम्बन्धी की सम्पति उत्तराधिकारी के रूप में प्रदान की जाने की आज्ञा प्रदान की।

(४) उसने सुरा व अन्य मादक द्रव्यों की बिक्री को नियन्त्रित किया।

(५) लोगों के घरों पर अधिकार करना तथा अपराधी की नाक कटवाने के नियम को बन्द करवाया।

(६) किसी की सम्पत्ति पर बलात् अधिकार नहीं किया जा सकता।

(७) चिकित्सालयों का निर्माण करवाना तथा उसमें रोगियों की चिकित्सा के लिए चिकित्सकों की नियुक्ति की व्यवस्था करना।

(८) वर्ष के कुछ दिनों पर पशुवध का निषेध।

(९) रविवार के दिन को विशेष आदर की दृष्टि से देखना।

(१०) मनसबदारों तथा जागीरदारों को स्थायित्वता प्रदान करना।

Jahangir, which according to the rules of Abjad incidently has the same value as Allah-O-Akbar. A grand coronation was held, and the event was celebrated with the release of a large number of prisoners, issue of new coins with new names and a declaration of general amnesty to all those who had ventured to oppose his succession."

—Dr. R. P. Tripathi.

[1] "He followed his father in his policy towards the Hindus and was equally tolerant towards Christans. He even bestirred himself to redress the grievances of the people...Witness his spacious institutes and a chain and bell attatched to his room of the palace, so that all who could appeal to him, could ring him up without running the gauntle of the officials." —Lane Poole.

[2] "Tne Emperor commanded the abolitions of Tarugoa and Mir Bahari prohibited the manufacture and sale of wine, abolished the pratice of cutting of noses or ears of criminals."

—Dr. R. P. Tripathi.

(११) साम्राज्य की सम्पूर्ण आइमा भूमि की उचित व्यवस्था करना। आइमा भूमि धार्मिक कार्यों के लिए दी गई थी।

(१२) किले तथा अन्य कारागारों से राज्याभिषेक के उपलक्ष में बन्दियों का मुक्त किया जाना।

९१, ९० जहाँगीर की विजयें

८ यद्यपि जहाँगीर एक विशाल तथा दृढ़ साम्राज्य का स्वामी बना, किन्तु वह इतने राज्य से सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह भी अपने पिता के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था और उसने भी मुगल-साम्राज्य के विस्तार में सहयोग प्रदान किया, **किन्तु उसका अधिकांश काल राजकुमार खुसरों, राजकुमार खुर्रम तथा महावत खाँ के विद्रोहों के दमन में व्यतीत हुआ।**

(१) **मेवाड़ की विजय**—यद्यपि अकबर के अधिकार में चित्तौड़ का दुर्ग आ गया था, किन्तु **अधिकांश मेवाड़ पर राणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह** का आधिपत्य **था।** अकबर अपने अन्तिम दिनों में मेवाड़-विजय की ओर विशेष ध्यान न दे पाया। यद्यपि एक-आध बार इस प्रदेश पर आक्रमण अवश्य किया गया था। अमरसिंह ने भी मुगलों का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया और वह मुगलों को सदा परेशान करता रहता था। जहाँगीर ने मेवाड़-विजय करने का निश्चय किया और **सन् १६०६ ई० में उसने अपने पुत्र परवेज के नेतृत्व में २०,००० अश्वारोहियों की एक विशाल सेना इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजी।** दवीर नामक स्थान पर राजपूतों ने अदम्य उत्साह तथा साहस से मुगल सेना का सामना किया और उनके छक्के छुड़ा दिए। इसी समय राजकुमार खुसरों के विद्रोह के कारण आक्रमण में शिथिलता आ गई और सन् १६०८ ई० में महावत खाँ के नेतृत्व में मेवाड़-विजय के लिए एक विशाल सेना पुनः भेजी गई। इस सेना ने राजपूतों को परास्त किया, परन्तु वह समस्त मेवाड़ पर अधिकार करने में सफल न हो सके। जहाँगीर ने महावत खाँ के स्थान पर अब्दुल्ला खाँ को भेजा। कुछ समय बाद वह वापिस बुला लिया गया और राजकुमार खुर्रम और अजीज कोका को जो राजकुमार खुसरो का ससुर था भेजा, किन्तु इन दोनों में नहीं बनी और अजीज कोका को वापिस बुला लिया गया। अब मेवाड़-विजय का समस्त भार राजकुमार खुर्रम पर आ पड़ा। राजकुमार खुर्रम ने बड़ी योग्यता का परिचय दिया। उसने राजपूतों की सेना को चारों ओर से घेर लिया जिससे राजपूत बड़े संकट में पड़ गए। इसी समय अकाल तथा महामारी का प्रकोप हुआ। विवश होकर राजपूतों को सन्धि की वार्ता चलानी पड़ी। **जहाँगीर ने उनके साथ उदारता** का व्यवहार किया। **अमरसिंह का पुत्र कर्णसिंह पाँच हजार का मनसबदार नियुक्त हुआ। राणा को मुगल दरबार में उपस्थित होने तथा अपनी बेटी-बहन को शाही महल में भेजने के लिए** बाध्य नहीं

जहाँगीर की विजयें

(१) मेवाड़-विजय।
(२) अहमदनगर-विजय।
(३) कांगड़ा-विजय।

किया गया । राणा को चित्तौड़ का दुर्ग वापिस दे दिया गया, किन्तु उसको उसकी मरम्मत आदि करवाने का अधिकार नहीं दिया गया । इस प्रकार जहाँगीर उस कार्य को करने में सफल हुआ जिस कार्य को अकबर नहीं कर सका था । इस विजय के परिणामस्वरूप मुगलों का गौरव तथा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई । अब राजपूतों में कोई भी ऐसा नहीं रहा जो मुगल शक्ति का सामना करने की सामर्थ्य रखता हो ।

६७४ **(२) अहमदनगर की विजय**—उक्त पंक्तियों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर के अधिकार में समस्त खानदेश व अहमदनगर का कुछ भाग आ गया था । जहाँगीर ने अहमदनगर के शेष भाग को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने के लिए एक योजना का निर्माण किया । उसने दक्षिण के सम्बन्ध में अकबर की नीति को अपनाया और उसके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए संलग्न हो गया । इस समय अहमदनगर का शासन-भार **मलिक अम्बर** के हाथ में था जिसने अकथनीय परिश्रम द्वारा अहमदनगर की शक्ति को संगठित किया और उन प्रदेशों को अपने अधिकर में किया जिन पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था । **उसकी शक्ति का दमन करने के लिए उससे मुगल प्रदेश वापिस करवाने के हेतु जहाँगीर ने सन् १६०८ ई० में बैरम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी, किन्तु इस सेना को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई । मलिक अम्बर** ने मुगलों का बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया जिसके कारण मुगल पीछे हटने के लिए बाध्य हुए । जहाँगीर इस पराजय से हतोत्साही नहीं हुआ । उसने शीघ्र ही अपने पुत्र परवेज को दक्षिण जाकर मुगल-सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लेने का आदेश दिया । **सन् १६१० ई० में उसने अदम्य उत्साह से मलिक अम्बर की सेना को परास्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई । इसके बाद सन् १६१२ ई० में जहाँगीर ने राजकुमार खुर्रम को सैन्य-संचालन के लिए सेनापति बनाकर दक्षिण भेजा ।** राजकुमार खुर्रम ने अपनी योग्यता तथा कूटनीतिज्ञता का उज्ज्वल प्रमाण दिया । उसने बीजापुर के सुल्तान से सन्धि की जिसके कारण वह मलिक अम्बर से अलग हो गया । यह समाचार सुनकर मलिक अम्बर हतोत्साही हो गया और उसने यह अनुभव किया कि वह अकेला अहमदनगर की सेना के द्वारा मुगलों की दृढ़ तथा सुसज्जित सेना का सामना करने में असमर्थ होगा । अतः उसने परिस्थिति से विवश होकर मुगलों के साथ सन्धि की, जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश अहमदनगर मुगलों के अधिकार में आ गया । इस विजय द्वारा राजकुमार खुर्रम के मान और प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई । जहाँगीर ने उसका विशेष सम्मान किया और उसको **'शहांजहाँ'** की उपाधि से सुशोभित किया ।

मुगल अधिक काल तक इस विजय का सुख नहीं भोग सके । **शीघ्र ही सन् १६२० ई० में मलिक अम्बर ने सन्धि की शर्तों का उल्लंघन किया और खोए हुए प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया ।** इस समाचार के प्राप्त होते ही जहाँगीर ने राजकुमार खुर्रम को दक्षिण भेजा । मलिक अम्बर पुनः सन्धि करने के लिए बाध्य हुआ । इस प्रकार इस बार मुगलों को और भी अधिक प्रदेश प्राप्त हुए । **मलिक**

अम्बर की मृत्यु (१६२६) के उपरान्त अहमदनगर का पतन होना आरम्भ हो गया।

(३) कांगड़ा-विजय—कांगड़ा विजय जहाँगीर के शासन-काल की महत्वपूर्ण घटना है। कांगड़ा का प्रसिद्ध दुर्ग पंजाब प्रान्त में एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इस प्रदेश पर राजपूतों का अधिकार था। अकबर ने भी इस पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। **जहाँगीर ने इस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिए लाहौर के गवर्नर मुर्तजा खाँ को आदेश दिया।** उसने एक विशाल सेना द्वारा इस प्रदेश पर आक्रमण किया, किन्तु राजपूतों ने अपने उत्साह तथा अदम्य साहस से मुगलों को परास्त कर दिया। मुर्तजा खाँ की मृत्यु होने पर जहाँगीर ने राजकुमार खुर्रम को कांगड़ा-विजय के लिए जाने का आदेश दिया। उसने बड़ी दृढ़ता तथा तत्परता से दुर्ग का घेरा डाला और दुर्ग में रसद जाने के समस्त मार्गों पर अधिकार कर लिया। राजपूतों ने फिर भी लगभग एक वर्ष तक मुगलों का सामना किया, किन्तु ऐसा कितने समय तक करना सम्भव था? अन्त में निराश होकर उन्होंने मुगलों की अधीनता स्वीकार की।

कन्दहार का मुगलों के हाथ से निकलना—कन्दहार के व्यापारिक तथा सामाजिक महत्व को समझकर ही अकबर ने इस प्रदेश को अपने अधिकार में किया था। उसके जीवन-काल में इस पर मुगलों का आधिपत्य बना रहा, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त सन् १६०६ ई० में फारस के शाह ने कन्दहार पर अधिकार करने का असफल प्रयत्न किया। **इसके बाद कुछ समय तक जहाँगीर को भुलावे में डालने के लिए उसने मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया और कई बार अपने राजदूत मुगल दरबार में अमूल्य भेंटों के साथ भेजे, किन्तु वह सदा कन्दहार पर अपना अधिकार रखना चाहता था।** जब उसको मुगल साम्राज्य की आन्तरिक कलहों का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने १६२१ ई० में कन्दहार विजय के लिए एक विशाल सेना भेजी। मुगल सेना इस आक्रमण के लिए तैयार नहीं थी और **शीघ्र ही कन्दहार पर फारस का अधिकार स्थापित हो गया।** जब जहाँगीर को यह समाचार प्राप्त हुआ उस समय वह काश्मीर में था। उसने राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) को कन्दहार विजय करने का आदेश दिया। उसने जहाँगीर की आज्ञा का उल्लंघन किया और राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। जहाँगीर इधर उलझ गया और कन्दहार विजय के लिए कोई सेना न भेज सका। फारस के **शाह अब्बास** ने एक पत्र द्वारा जहाँगीर को सूचित किया कि कन्दहार पर उसका अधिकार करना न्यायसंगत है। अतः राजकुमार परवेज को विजय के लिए भेजा गया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। वह निराश वापिस लौट आया। इस प्रकार मुगलों का कन्दहार पर से अधिकार समाप्त हो गया।

जहाँगीर की मृत्यु—जहाँगीर के अन्तिम दिनों में उसका स्वास्थ्य बहुत खराब रहने लगा था और शासन का समस्त कार्य उसकी प्रिय तथा सुन्दर बेगम **नूरजहाँ** के हाथ में आ गया था, जिसके कारण शाहजहाँ और महावत खाँ ने विद्रोह किए। इनका प्रभाव भी जहाँगीर के स्वास्थ्य पर बुरा पड़ा। **सन् १६२७ ई० में जब जहाँगीर काश्मीर से लाहौर की ओर आ रहा था तो उसका देहान्त हो गया।** उस समय

राजकुमार खुर्रम दक्षिण में था। अपने पिता की मृत्यु का समाचार ज्ञात होते ही वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। इस बीच राजकुमार खुर्रम के ससुर आसफ खाँ ने खुर्रम के लिए राज्यसिंहासन सुरक्षित रखने के लिए राजकुमार खुसरो के अल्पवयस्क पुत्र दावरबख्श को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। राजकुमार शहरयार ने लाहौर में अपने आपको बादशाह घोषित किया। आसफ खाँ ने लाहौर पर आक्रमण कर उसको परास्त कर दिया और उसकी आखें निकलवा लीं। इसी बीच राजकुमार खुर्रम आगरे पहुँच गया और उसने दावरबख्श का वध कर आगरे के सिंहासन पर अधिकार किया। उसका राज्याभिषेक ६ फरवरी सन् १६२८ ई० को सम्पन्न हुआ।

जहाँगीर का चरित्र

Q3 A1A2

कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि **जहाँगीर विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था।** उनमें अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के तत्व विद्यमान थे। कभी वह क्रूर और कभी अत्यन्त न्यायप्रिय तथा उदार बन जाता था। यह सत्य है कि क्रोध के आवेश में आकर वह बड़े से बड़े क्रूर कृत्य करने में भी नहीं हिचकता था। जहाँगीर अपने **मित्रों व सम्बन्धियों से प्रेम-भाव** रखता था। जहाँगीर ने अपने मित्रों को उच्च पदों पर आसीन किया। यद्यपि उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु जब उसको अपनी मूर्खता का आभास हुआ तो उसको बड़ा पश्चाताप हुआ। "राज्य-सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् उसने अपने दोषों का संशोधन किया। वह अपने पिता की पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता रहा और विचार एवं वर्णन में उसके प्रति अति आदर का भाव प्रकट करता था। सिकन्दरे में निर्मित अकबर के स्मारक की वह पैदल यात्रा करता और समाधि-रज को शिरोधार्य करके अपने को प्रतिष्ठित करता।* वह अपनी **पत्नियों से प्रेम** करता था और उनको आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। नूरजहाँ का तो उसके ऊपर बहुत ही अधिक प्रभाव था। उसकी सलाह के बिना वह कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं करता था।

वह उच्च कोटि का विद्वान था। उसको फारसी तथा तुर्की भाषा का अच्छा ज्ञान था। उसको अन्य कलाओं में भी विशेष अभिरुचि थी। **वह प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा उपासक था। उसको चित्र-कला तथा स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था। वह विद्वानों का उपासक था और कला विशेषज्ञों का आश्रयदाता था।**

जहाँगीर के चरित्र का सबसे बड़ा दोष यह था कि **वह बड़ा विलासी था और उसको मद्यपान का व्यसन था।** इन दोनों के कारण वह शासन-सम्बन्धी कार्यों से उदासीन हो गया और शासन-भार अन्य व्यक्तियों के कन्धों पर आ गया जो अपने स्वार्थहित में रत रहे। जब तक वह इन व्यसनों का शिकार न बन पाया उस समय तक उसका शासन उच्च-कोटि का था।

---

* "Made amends after he was in possession of the throne. He cherished the loving memory of Akbar, and in thought, and expression held him in great reverence. He would walk to his mausoleum at Sikandra and rub his forehead at threshold."

—**Dr. A. L Srivastava.**

वह एक योग्य सैनिक और कुशल सेनानायक था। अपने राजकुमार तथा सम्राटकाल में उसने कई महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। उसका लक्ष्य अचूक था। जहाँगीर के **धार्मिक विचार अपने पिता** के समान थे। उसने हिन्दू तथा मुसलमानों के साथ समान व्यवहार किया।

(ग) शाहजहाँ

अपने पिता जहाँगीर की मृत्यु के उपरान्त राजकुमार खुर्रम शाहजहाँ के नाम से **आगरे के राज्यसिंहासन पर ६ फरवरी सन् १६२८ ई० को बड़े ठाट-बाट से आसीन हुआ।** शाहजहाँ के राज्य-सिंहासन पर आसीन होने से **नूरजहाँ बेगम** राजनीति से बिल्कुल पृथक् हो गई और लाहौर में निवास करने लगी। शाहजहाँ ने नूरजहाँ के साथ सद्-व्यवहार किया और उसकी दो लाख रुपये वार्षिक पेन्शन नियत की। सन् १६४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

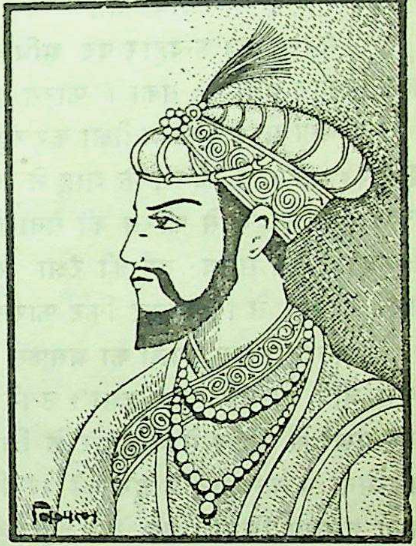

शाहजहाँ

शाहजहाँ की उत्तरी-पश्चिमी भारत की विजयें

91,92

शाहजहाँ भी अपने पिता तथा दादा के समान बड़ा महत्वाकांक्षी था। शासन के प्रारम्भिक काल में उसको कुछ विजयें करना आवश्यक प्रतीत हुआ, क्योंकि जहाँगीर के अन्तिम दिनों के शासन में शिथिलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। पारस्परिक गृह-कलह के कारण कुछ व्यक्तियों में विद्रोह की भावना जाग्रत होने लगी थी। इन सबका दमन कर शाहजहाँ का ध्यान बड़ी विजयें करने की ओर आकर्षित हुआ।

कन्दहार विजय के प्रयास—उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि जहाँगीर के अन्तिम समय में कन्दहार पर फारस के शाह का अधिकार स्थापित हो गया था। शाहजहाँ के मन में कन्दहार विजय की लालसा थी, किन्तु अपने शासन के प्रारम्भिक काल में वह विद्रोह का दमन करने तथा दक्षिण की गुत्थी सुलझाने में विशेष व्यस्त रहा। जब उसको उधर से अवकाश प्राप्त हुआ तो उसने अपना ध्यान कन्दहार विजय की ओर आकर्षित किया। **उसने काबुल के सूबेदार सईद खाँ को कन्दहार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने की आज्ञा दी।** इस समय कन्दहार पर **अली मर्दान खाँ** फारस के शाह के प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। जब उसको मुगलों के आक्रमण का आभास प्राप्त हुआ तो उसने शाह से सैनिक सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। किसी कारण-वश शाह को उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने कन्दहार के लिए एक सेना भेजी, किन्तु उसको यह आदेश दिया कि वह अली मर्दान खाँ को बन्दी कर फारस भेज दे। अली मर्दान खाँ को शाह के

इस व्यवहार से बड़ा दु:ख हुआ और उसने काबुल के सूबेदार को सूचित किया कि वह कन्दहार का दुर्ग मुगलों को देने के लिए उद्यत है। शाहजहाँ को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने शीघ्र ही सन् १६३८ में कन्दहार पर आक्रमण किया। आसानी से कन्दहार पर मुगलों का अधिपत्य स्थापित हो गया। अली मर्दान खाँ मुगलों की सेना में भर्ती हो गया। शाहजहाँ ने प्रथम तो उसको काश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया और बाद में पंजाब का।

फारस का कन्दहार पर अधिकार—मुगलों का कन्दहार पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रह सका। फारस का शाह कन्दहार को अपने अधिकार में करने के लिए स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह इस ओर सतत् प्रयत्नशील रहा। सन् १६४८ ई० में फारस के शाह ने कन्दहार पर आक्रमण किया। मुगलों ने बड़ी वीरता तथा साहस से फारस की सेनाओं का सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए। शाहजहाँ ने इस समय दुर्ग की रक्षा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कन्दहार मुगलों के हाथ से निकलकर फिर फारस के शाह के हाथ में आ गया।

कन्दहार पर मुगलों का असफल आक्रमण—शाहजहाँ को कन्दहार के हाथ से निकल जाने का बड़ा दु:ख हुआ। उसने सन् १६४९ ई० में अपने पुत्र **औरंगजेब और सादुल्लाखाँ के नेतृत्व में कन्दहार के लिए सेना भेजी**। वह स्वयं काबुल पहुँच गया। मुगल-सेना ने कन्दहार के दुर्ग को घेर लिया, किन्तु ईरानी सेना ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया। वह घेरा ३½ महीने तक पड़ा रहा और मुगल सेना को तनिक भी विजय प्राप्त नहीं हुई। शीतकाल के आगमन पर मुगल-सेना ने घेरा उठा लिया और इस प्रकार मुगलों का यह आक्रमण पूर्णतया असफल रहा। कन्दहार फारस के शाह के अधिकार में रहा।

कन्दहार पर दूसरा असफल आक्रमण—उक्त पराजय के कारण औरंगजेब की प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। शाहजहाँ भी चिन्तित हुआ। तीन वर्ष तक तैयारियाँ करने के उपरान्त शाहजहाँ ने फिर एक सेना अपने पुत्र औरंगजेब तथा सादुल्ला खाँ की अध्यक्षता में कन्दहार विजय के लिए भेजी। इस सेना ने १६५२ ई० में पुन: कन्दहार को घेर लिया। शाहजहाँ स्वयं युद्ध की गति-विधि का निरीक्षण करने काबुल गया, इस बार फारस की सेना ने मुगलों की सेना ने दाँत खट्टे कर दिए और उसको निराश होकर लौटना पड़ा। इस पराजय के कारण औरंगजेब के मान को बड़ा आघात पहुँचा और वह अपने पिता की दृष्टि में गिर गया। उसको दण्डस्वरूप दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया।

कन्दहार पर तीसरा असफल आक्रमण—मुगलों की लगातार पराजय से शाहजहाँ को बड़ा दु:ख हुआ। उसने पुन: आक्रमण करने की योजना बनाई। इस बार सेना की अध्यक्षता **राजकुमार दारा तथा उसके पुत्र सुलेमान शिकोह के हाथ में सौंपी गई**। शाहजहाँ को इस बार विजय की पूर्ण आशा थी, किन्तु उसकी आशा धूल में मिल गई। दारा ने चार बार कन्दहार पर आक्रमण किया, किन्तु फारस वालों ने चारों बार उसको पीछे हटने के लिए बाध्य कर दिया। इस बार कन्दहार का घेरा

सात माह तक पड़ा रहा, किन्तु फारस वाले अपनी आन पर डटे रहे और वे टस से मस नहीं हुए। सात माह के असफल प्रयत्नों के पश्चात् मुगल-सेनाहताश तथा निराश होकर वापिस चली आयी।

परिणाम—इस प्रकार शाहजहाँ कन्दहार-विजय करने के प्रयत्न में पूर्णतया असफल रहा। मुगलों की सेना की निर्बलता का पता चल गया और उसके सैनिक महत्व को बड़ा आघात पहुँचा। इन युद्धों में १२ करोड़ रुपये के लगभग व्यय हुआ और उसके हाथ में एक इंच भूमि भी नहीं आयी। मुगल-सेना को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। उधर शाह के मान में बड़ी वृद्धि हुई और आगामी वर्षों में उसके हृदय में भारत-आक्रमण के विचार लहरें लेते रहे जिसके कारण मुगल सदा चिन्तित रहे।

दक्षिण की विजय

84,90

शाहजहाँ भी अपने पिता तथा दादा के समान साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। वह भी उनके समान दक्षिणी भारत को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। अतः उसने भी उनकी नीति का ही अनुकरण किया। उसने उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का निश्चिय किया और दक्षिण राज्यों के साथ दृढ़ नीति को अपनाया। अपने पिता के समय उसको दक्षिण का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो चुका था। उसके ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अहमदनगर का बहुत-सा भाग मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित किया गया था। साम्राज्य-पद पर आसीन होते ही उसने दक्षिण के राज्यों के प्रति उग्र नीति को अपनाया।

(१) **अहमदनगर**—सर्वप्रथम उसने अहमदनगर की ओर ध्यान दिया; क्योंकि वह मुगल-साम्राज्य की सीमा से बिलकुल लगा हुआ था। इस समय अहमदनगर राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। योग्य और अनुभवी मन्त्री मलिक अम्बर का देहावसान हो चुका था। अहमदनगर के सुलतान मुर्तजा द्वितीय ने **मलिक अम्बर** के पुत्र **फतेहखाँ** को अपना मन्त्री नियुक्त किया, किन्तु कुछ समय उपरान्त ही उस पर से उसका विश्वास हट गया और वह उसको सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगा। सुलतान ने उसको बन्दीगृह में डाल दिया। कुछ दिनों उपरान्त वह जेल से मुक्त हो गया। उसने सुलतान के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और उसको बन्दी कर लिया। उसने आसफखाँ के कहने पर सुल्तान को विष दे दिया और सुलतान के दसवर्षीय पुत्र को राज्यसिंहासन पर आसीन किया और फतेहखाँ स्वयं संरक्षक के रूप में राज्य करने लगा। इस समय शाहजहाँ खानेजहाँ लोधी के विद्रोह के सम्बन्ध में दक्षिण में था। उसने अहमदनगर की इस परिस्थिति का लाभ उठाने का निश्चय किया और महावत खाँ के नेतृत्व में एक सेना अहमदनगर पर आक्रमण करने के हेतु भेजी। बिना किसी विशेष विरोध के मुगलों का अहमदनगर पर अधिकार हो गया। फतेहखाँ ने मुगलों के साथ भी विश्वासघात किया। उसने स्वयं दौलताबाद के दुर्ग पर अधिकार किया। महावत खाँ ने दुर्ग का घेरा डाला और फतेहखाँ को धन का लालच देकर दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया। निजाम ग्वालियर भेज दिया गया और फतेहखाँ को

मुगलों ने दौलताबाद का सूबेदार नियुक्त किया । इस प्रकार मुगलों के अधिकार में समस्त अहमदनगर आ गया ।

(२) गोलकुण्डा—अहमदनगर से निश्चिन्त होने के उपरान्त शाहजहाँ का ध्यान बीजापुर और गोलकुण्डा की ओर आकर्षित हुआ । शाहजहाँ ने इन दोनों राज्यों के शासकों के पास मुगलों की अधीनता स्वीकार करने के लिए पत्र-व्यवहार किया । गोलकुण्डा के शासकों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर देना स्वीकार किया । शाहजहाँ ने उनकी इन शर्तों को मान लिया और उसको स्वतन्त्र रूप से गोलकुण्डा पर शासन करने दिया । जब औरंगजेब द्वितीय बार सन् १६६५ में दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने गोलकुण्डा राज्य के विरुद्ध दृढ़ नीति का अनुकरण किया । उसकी स्वतन्त्रता उसको सदा खटकती थी । उसने उसकी स्वतन्त्रता का अन्त करने का निश्चय किया । उसको शीघ्र ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अवसर मिल गया । गोलकुण्डा के सुलतान ने जो वार्षिक कर देने का वचन दिया था वह उसने नहीं दिया था । औरंगजेब ने शाहजहाँ की आज्ञा प्राप्त कर गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया । गोलकुण्डा का सुलतान भयभीत हो गया और उसने बहुमूल्य उपहार देकर औरंगजेब से सन्धि का प्रस्ताव किया, किन्तु औरंगजेब ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । वह तो गोलकुण्डा की स्वतन्त्रता का अपहरण करने का निश्चिय कर चुका था । जब युद्ध चल रहा था तो औरंगजेब को शाहजहाँ का युद्ध बन्द करने का आदेश प्राप्त हुआ । औरंगजेब ने बाध्य होकर युद्ध बन्द करने की घोषणा की । गोलकुण्डा के सुल्तान ने मुगलों को बहुत अधिक धन भेंट-स्वरूप प्रदान किया ।

(३) बीजापुर—जब शाहजहाँ की ओर से अधीनता स्वीकार करने का पत्र बीजापुर के सुल्तान को प्राप्त हुआ तो उसने उस पत्र की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया । शाहजहाँ ने इसमें अपना अपमान समझा और उसने बीजापुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया । सन् १६३३ ई० में मुगल सेना बीजापुर पर आक्रमण के लिए चल पड़ी । उसने शीघ्र ही तीन ओर से बीजापुर को घेर लिया । बीजापुर की सेना ने बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया, किन्तु दिन-प्रतिदिन उसकी शक्ति का ह्रास होता गया । अन्त में विवश होकर बीजापुर का सुल्तान सन्धि करने को उद्यत हो गया । इस प्रकार उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की और वार्षिक कर देने का वचन दिया । कुछ समय उपरान्त बीजापुर के योग्य तथा अनुभवी सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु हो गई । जिस समय औरंगजेब दूसरी बार दक्षिण का सूबेदार बना उस समय बीजापुर पर आदिलशाह द्वितीय शासन कर रहा था जिसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी । उसको शासन का तनिक भी ज्ञान नहीं था । औरंगजेब ने इस परिस्थिति का लाभ उठाने का स्वर्ण अवसर समझकर बीजापुर के आन्तरिक कार्यों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया । इसके बाद उसने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया । बीजापुर की सेना ने मुगलों का सामना करने की शक्ति नहीं थी। बीदर तथा कल्याणी पर मुगलों का अधिकार सरलता से स्थापित हो गया । इसी

समय शाहजहाँ के हस्तक्षेप करने के कारण औरंगजेब को युद्ध बन्द करना पड़ा। मुगलों में और बीजापुर के सुलतान में सन्धि हुई जिसके अनुसार मुगलों को बीदर, कल्याणी तथा परेन्दा के दुर्ग प्राप्त हुए और बीजापुर के सुलतान ने डेढ़ करोड़ रुपया युद्ध-क्षति के रूप में मुगलों को दिया। औरंगजेब ने बिना किसी कारण के बीजापुर पर आक्रमण किया। वह उसकी साम्राज्यवादी नीति का परिचय देता है। नैतिक दृष्टि से उसका यह कार्य निन्दनीय था।

83661

मध्य एशिया में साम्राज्य-विस्तार का प्रयास—शाहजहाँ अपने पूर्वजों के समान मध्य एशिया को अपने अधिकार में करना चाहता था और विशेषतया ट्रांसऔक्सीयाना के प्रदेश को जो ऑक्सस नदी और हिन्दुकुश पर्वत के मध्य में था। इस प्रकार वह तैमूर और बाबर के पद-चिन्हों का अनुकरण करने के लिए प्रयत्नशील हुआ, जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग इस प्रदेश को हस्तगत करने के लिए किया था। अकबर और जहाँगीर इस ओर विशेष कुछ भी नहीं कर सके थे। सन् १६४५ में उसने बलख और बदख्शाँ में राजनीतिक सन्देश भेजे, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। सन् १६४६ ई० में बलख में गृहयुद्ध की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई जिसका पूर्ण लाभ उठाने का उसने प्रयत्न किया। उसने इस स्वर्ण अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। शहाजहाँ ने सर्वप्रथम आमेर के राजा जयसिंह के नेतृत्व में मुगल सेनाएँ भेजी, किन्तु इस सेना को सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसके उपरान्त राजकुमार मुराद और अलीमर्दान खाँ वहाँ भेजे गए। बलख का बादशाह भाग गया और मुगलों को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई, किन्तु मुराद वहाँ रहना नहीं चाहता था और शीघ्र ही भारत वापिस आ गया। तब औरंगजेब को वहाँ भेजा गया जिसने विभिन्न कठिनाइयों को सहन कर बलख में प्रवेश किया। इसी समय अब्दुल अजीज ने मुगलों की सेना को घेर लिया, मुगलों के बहुत से सैनिक मारे गए और मुगलों को बाध्य होकर उसको बहुत-सा धन देना पड़ा। शाहजहाँ का मध्य एशिया का अभियान पूर्णतया असफल रहा। **डा० सरकार** के मतानुसार 'बलख का युद्ध एक बड़ी आपत्ति के साथ समाप्त हुआ। भारतीय राजकोष से ४ करोड़ रुपया व्यय हुआ जबकि विजय के उपरान्त उससे केवल २२½ लाख रुपया प्राप्त हुआ। भूमि का कोई अंश उसको प्राप्त नहीं हुआ और न वहाँ के राजकीय परिवार में कोई परिवर्तन हो सका। पाँच हजार से अधिक सैनिक युद्ध में मारे गए और बहुत-सा धन बलख के बादशाह नजर मुहम्मद और उसके पुत्रों को इसलिए दिया गया कि वह औरंगजेब को वापिस आने का मार्ग दें। इस प्रकार इस आक्रमणकारी साम्राज्यवाद द्वारा उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर जो युद्ध हुए उन्होंने भारत को बहुत अधिक धन व्यय करने के लिए सर्वदा बाध्य किया।"*

---

* "The Balkh campaign ended disastrously. The Indian treasury spent 4 crores of rupees and realised from the conquered country only 45/2 lakhs. Not an inch of territory was annexed, nor dynesty changed......More than 5000 perished in war and gold and much money was given to Nazar Mohammad and his sons and grandson as price of letting Aurangzeb retreat. Such is the

(1983)

शाहजहाँ का चरित्र 86

शाहजहाँ की गणना भारत के उच्च कोटि के शासकों में की जाती है। कुछ विद्वानों ने उसके चरित्र की कटु-आलोचना की है और कुछ ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। अतः यह कहना उचित ही होगा कि उसका **चरित्र बड़ा रहस्यमय था।** कुछ क्षेत्रों में उसने अपने पिता या पितामह के ही अनुसार आचरण किया, किन्तु कुछ क्षेत्रों में उसने प्रतिक्रियावादी नीति को अपनाकर अपने पुत्र औरंगजेब के समान आचरण किया। उसका चरित्र निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

शाहजहाँ का चरित्र

(१) बड़ा उद्यमी तथा परिश्रम-शील।
(२) महत्वाकांक्षी।
(३) परिवार प्रेमी।
(४) कला-प्रेमी।
(५) उच्चकोटि का सैनिक।
(६) न्यायप्रिय शासक।
(७) साहित्य-प्रेमी।
(८) धार्मिक असहिष्णुता।
(९) आचरण।

(१) **बड़ा उद्यमी तथा परिश्रमशील**—शाहजहाँ बड़ा उद्यमी तथा परिश्रमशील था। उसमें अदम्य उत्साह तथा साहस था और वह घोर आपत्तियों से तनिक भी विचलित नहीं होता था।

(२) **महत्वाकांक्षी**—वह बड़ा महत्वाकांक्षी सम्राट था। प्रारम्भ से ही उसकी आँख दिल्ली के तख्त पर थीं और वह राजकुमार की अवस्था में ही उसके ऊपर अधिकार करना चाहता था। इसी कारण उसने अपने ज्येष्ठ भाई राजकुमार खुशरो का वध किया। वह साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसने दक्षिणी भारत व उत्तरी-पश्चिमी सीमा के सम्बन्ध में पूर्ण साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण किया। दक्षिण में वह पर्याप्त सफलता प्राप्त करने में सफल हुआ, किन्तु उसकी उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति असफल रही।

(३) **परिवार प्रेमी**—शाहजहाँ को अपने परिवार से विशेष प्रेम था। वह अपनी पत्नी **मुमताज बेगम** को अगाध प्रेम करता था। वह अपनी पुत्री **जहाँनआरा** को भी बहुत प्रेम करता था। यद्यपि वह अपने समस्त पुत्रों को प्यार करता था, किन्तु उसकी विशेष कृपा अपने ज्येष्ठ पुत्र **दारा शिकोह** पर थी। परिस्थिति के वशीभूत होकर उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और अपने भाइयों तथा भतीजों का रक्त बहाया, किन्तु वह रक्त पीपासु नहीं था। साम्राज्य प्राप्ति के उपरान्त उसने ऐसे जघन्य कृत्य नहीं किए, वरन् अपने शत्रुओं के साथ दया और सहानुभूति का व्यवहार किया।

(४) **कला-प्रेमी**—शाहजहाँ को कला से बड़ा प्रेम था। उसने उच्च कोटि की समस्त कलाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया। उसको संगीत-कला, चित्र-कला, स्थापत्य कला आदि से विशेष प्रेम था। इन समस्त क्षेत्रों में उसके काल में बड़ी प्रगति हुई और इसका समस्त श्रेय उसको ही प्राप्त है।

---

terrible price that aggressive imperialism makes India for pay wars across the North-West Frontier."

—J. N. Sarkar.

(५) **उच्च कोटि का सैनिक**—शाहजहाँ उच्च कोटि का सैनिक तथा सेनापति था, यद्यपि इसमें अकबर और बाबर के समान सामरिक योग्यता तथा प्रतिभा का अभाव था। वह बड़ा वीर, साहसी तथा उच्च कोटि का योद्धा था और युद्ध की भीषणता से कभी भी विचलित नहीं होता था।

(६) **न्याय-प्रिय शासक**—शाहजहाँ न्याय-प्रिय शासक था। उसका अपनी प्रजा के साथ सद्व्यवहार था। वह प्रजा को अपने पुत्र के समान मानता था। वह न्याय को कभी हाथ से नहीं जाने देता था।

(७) **साहित्य-प्रेमी**—शाहजहाँ साहित्य-प्रेमी था। उसने उच्च-कोटि के साहित्यकारों को अपने दरबार में आश्रय प्रदान किया। उसने फारसी, हिन्दी, संस्कृत को बड़ा प्रोत्साहन दिया।

(८) **धार्मिक सहिष्णुता**—शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी-मुसलमान था। उसने अपने पितामह के समान धार्मिक क्षेत्र में उदार नीति का प्रयोग नहीं किया। उसका अन्य धर्म के अनुयायियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था, किन्तु उसके सम्बन्ध में यह अवश्य कहना होगा कि वह अपने पुत्र औरंगजेब के समान धर्मान्ध नहीं था और वह राजनीति को अपने धार्मिक विचारों द्वारा प्रभावित नहीं होने देता था।

(९) **आचरण**—कुछ विद्वानों ने उसके आचरण की कटु-आलोचना की है। उनके अनुसार वह अत्यन्त कामातुर, कामान्ध तथा पाशविक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसका बहुत-सी स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध था। **मनुसी** के अनुसार वह अपनी कामातुर इच्छाओं की पूर्ति के लिए स्त्रियों की खोज में रहता था। इन अभियोगों का कोई विश्वस्त प्रमाण प्राप्त नहीं है, अतः इनको मिथ्या कहा जा सकता है। उसका अपनी पत्नी में इतना अगाध प्रेम था कि इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि उसका अन्य स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध हो सकता है।

(घ) औरंगजेब

सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ बहुत बीमार हो गया। जब राजकुमारों को यह सूचना मिली तो उन्होंने राज्यसिंहासन पर अधिकार करने के अभिप्राय से युद्ध की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब सफल हुआ और उसने अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियों का अन्त कर दिया। २६ मई १६५९ ई० में उसका राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट के साथ सम्पन्न हुआ।*

औरंगजेब की विजय

औरंगजेब ने भी साम्राज्य विस्तार की उसी नीति का अनुकरण किया जो उसके पूर्वजों ने की थी। यदि कन्दहार और मध्य एशिया की हानि को अलग कर

---

*"There remained no further obstacle in the path of Aurangzeb. He had already assumed to the insignia of royalty. He had indeed been hastily proclaimedEmperor in the garden of Salin an outside Delhi, in the last days of July 1638, without asserting the prerogatives of sovereignty, the coinage and public prayer for the King. But on the 26th of May 1659, he had formally ascended the throne in a state."

– Lane Poole.

दिया जाए जो शाहजहाँ के काल में हुई थी, साम्राज्य के अन्य भाग सुरक्षित थे और उस पर मुगलों का पूर्ण प्रभुत्व था।

आसाम-विजय—१६५८ ई० में कूँच-बिहार के अहोम राजा ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण कर कामरूप की राजधानी गोहाटी के अधीन किया। उस समय मुगल उत्तराधिकार के युद्ध में व्यस्त होने के कारण, उस ओर ध्यान नहीं दे सके, किन्तु जब सन् १६६० ई० में मीर जुमला बंगाल का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सन् १६६१ ई० में उसने एक विशाल सेना एकत्रित कर कूँच-बिहार पर आक्रमण कर कूँच-बिहार और आसाम को अपने अधिकार में किया। उसने अहोम राजा की राजधानी गढ़गाँव को भी विजय किया। मुगलों को अपार धन प्राप्त हुआ, किन्तु वर्षा तथा महामारी के कारण मुगलों को बहुत अधिक क्षति उठानी पड़ी। इधर अहोम ने उसका लाभ उठाकर मुगल सेना पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। मीर जुमला हतोत्साही नहीं हुआ। वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर उसने अहोम को बुरी तरह परास्त किया। राजा को बाध्य होकर मुगलों से सन्धि करनी पड़ी। **सर जे० एन०** सरकार के शब्दों में, "सैनिक दृष्टि से मीर जुमला का आक्रमण सफल रहा।"* राजा ने मुगलों को क्षति के रूप में बहुत-सा धन दिया और उनको कुछ जिले भी प्राप्त हुए, किन्तु विजय बड़ी कठिनाइयों के पश्चात् प्राप्त हुई। बहुत-से मुगल सैनिक मारे गए। **ढाका वापिस लौटते समय मीर जुमला सन् १६६३ ई० में मर गया।** वह औरंगजेब का सबसे महत्वपूर्ण सेनापति था। उसकी विजय भी अधिक स्थायी न रह सकी। कुछ ही समय उपरान्त अहोम के राजा ने कामरूप पर अधिकार किया। मुगल सेना का उससे निरन्तर युद्ध होता रहा, किन्तु मुगलों को कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। मीर जुमला की मृत्यु के उपरान्त बंगाल का सूबेदार आसफ खाँ नियुक्त हुआ। उसने पुर्तगालियों को परास्त कर बंगाल की खाड़ी में स्थित सोनदीप पर अधिकार किया। सन् १६६६ ई० में अराकन के राजा को परास्त कर मुगलों ने चटगाँव पर अधिकार किया और वहाँ एक मुगल फौजदार की नियुक्ति की गई।

औरंगजेब और राजपूत

औरंगजेब में धार्मिक नीति के कारण हिन्दुओं में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई और उन्होंने मुगलों की सत्ता के विरुद्ध सर उठाया। सर्वप्रथम **मथुरा के समीप निवास करने वाले जाटों ने गोकुल नामक जमींदार के नेतृत्व में विद्रोह किया।** मुगल सेना ने विद्रोह का दमन किया और विदेशियों को कठोर दण्ड दिए, किन्तु इससे जाटों का पूर्णतया दमन न हो पाया। वह समय-समय पर विद्रोह करते रहे। इसी समय **बुन्देलों ने छत्रसाल के नेतृत्व में विद्रोह किया।** प्रारम्भ में उसको पर्याप्त सफलता मिली और वह एक राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ। **मार्च १६७२ ई० में नारनौल**

---

* "Judged as a military exploit Mir Jumal's invasion of Assam was a success."

—J. N. Sarkar.

के सतनामियों ने विद्रोह किया जिनका दमन मुगल-सेना ने बड़ी कठोरता तथा निर्दयता से किया। औरंगजेब इन विद्रोहों का दमन करने में सफल हुआ।

उसकी नई नीति के कारण राजपूतों में असन्तोष की भावना उदय होने लगी। कुछ समय उपरान्त यह भावना विद्रोह के रूप में परिणित हो गई जिसके घातक परिणाम मुगलों को भोगने पड़े। राजपूतों ने मुगल-साम्राज्य की स्थापना करने में बड़ी सहायता पहुँचाई थी। औरंगजेब उनके महत्व को भूल गया और उसने उस नीति का परित्याग करना आरम्भ कर दिया जिसका शिलान्यास अकबर महान् ने किया था और जिसका पर्याप्त अनुकरण जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में होता रहा। **सन् १६६७ ई० में आमेर का राजा जयसिंह जिसको औरंगजेब अपनी नई नीति के विरोध का नेता समझता था, दक्षिण में मृत्यु को प्राप्त हुआ।**

इसके उपरान्त उसका ध्यान **मारवाड़ राज्य** की ओर आकर्षित हुआ। उसको वहाँ के राजा जसवन्तसिंह पर विश्वास नहीं था और उसको सदा यह भय बना रहता था कि कहीं वह उसकी नई धार्मिक नीति के विरुद्ध राजपूतों के विरोधी दल का नेतृत्व न करने लगे। इसके अतिरिक्त व्यवसायिक दृष्टि से भी मारवाड़ का बहुत महत्व था; क्योंकि मारवाड़, अहमदनगर तथा खम्भात के बन्दरगाह तक जाने वाली सड़क पर स्थित था। औरंगजेब को मारवाड़ पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, क्योंकि **सन् १६७८ में उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के विद्रोह का दमन करते हुए जसवन्तसिंह की मृत्यु** जामरूद नामक स्थान **पर हो गई।** औरंगजेब ने इसका लाभ उठाया और उसने मुगल-सेना को मारवाड़ पर अधिकार करने का आदेश दिया। राजपूत अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहे और शीघ्र ही मारवाड़ पर मुगलों का अधिकार हो गया। उसने वहाँ मुगल फौजदारों को नियुक्त कर दिया। मुगलों ने जसवन्तसिंह के एक सम्बन्धी को मारवाड़ का शासक घोषित कर दिया, जिसने राज्यसिंहासन प्राप्त करने के उपलक्ष में ३६ लाख रुपया मुगलों को भेंट किया। वह केवल एक नाममात्र का शासक था। शासन की समस्त सत्ता मुगल पदाधिकारियों के हाथ में थी।

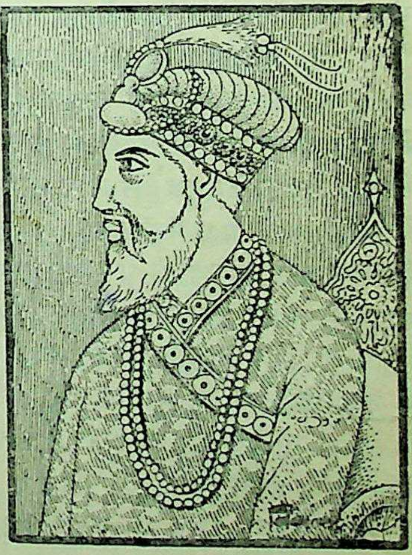

औरंगजेब

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होने लगा कि सम्राट की नीति मारवाड़ में सफल हो गई, किन्तु मारवाड़ का पूर्णतया दमन नहीं हो सका और राजपूत अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति का अवसर खोजने लगे। जब मृतक राजा जसवन्तसिंह की रानियाँ वापिस आ रही थीं तो लाहौर में रानियों के दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें से एक का तुरन्त देहान्त हो गया और एक जीवित रहा जिसका नाम अजीतसिंह रखा गया। राजपूतों ने औरंगजेब

से अजीतसिंह को जोधपुर का राजा स्वीकार करने की प्रार्थना की, किन्तु उसने उनकी प्रार्थना पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसने रानियों तथा अजीतसिंह को बन्दी करने का षड्यन्त्र रचा। राजपूतों ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। इस समय दुर्गावास राठौर ने अपने अदम्य उत्साह तथा साहस के बल पर रानियों को राजकुमार सहित जोधपुर भिजवा दिया और मुगलों से युद्ध करना आरम्भ किया। उसकी राजभक्ति ने उसका नाम भारत के इतिहास में अमर कर दिया। **'उसको न मुगलों का स्वर्ण जीत सका और न उनका सैनिक बल ही उसको विजय कर सका। राजपूतों में केवल वही एक व्यक्ति था जिसमें राजपूत सैनिक का साहस तथा वीरता और एक मुगल राजमन्त्री की योग्यता और कूट-नीतिज्ञता का सम्मिश्रण था।"** औरंगजेब ने मारवाड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और राजकुमार मुअज्जम, आजम तथा अकबर के नेतृत्व में तीन सेनाएँ जोधपुर को तीन ओर से घेरने तथा आक्रमण करने के लिए भेजीं। औरंगजेब स्वयं युद्ध का संचालन करने के अभिप्राय से अजमेर पहुँच गया। राजपूतों ने मुगल-सेनाओं का बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए और जोधपुर पर मुगलों का अधिकार हो गया।

औरंगजेब अधिक समय तक इस विजय का सुख नहीं भोग सका। अजीतसिंह की माता चित्तौड़ के प्रसिद्ध सिसोदिया वंश की थी। इस आपत्तिकाल में उसने मेवाड़ के राणा राजसिंह से सहायता की प्रार्थना की। राणा तुरन्त सहायता देने के लिए उद्यत हो गया, जिसके परिणामस्वरूप दोनों ने मुगलों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया, यद्यपि युद्ध बड़ा भीषण हुआ, किन्तु राजपूत परास्त हुए। मेवाड़ ने बाध्य होकर मुगलों से सन्धि कर ली। मारवाड़ से युद्ध चलता रहा। राजकुमार अकबर द्वितीय को युद्ध का भार सौंप औरंगजेब राजधानी वापिस चला गया। अकबर को मारवाड़ के युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं हुई, जिसके कारण औरंगजेब की दृष्टि से वह गिर गया और दोनों में मनमुटाव रहने लगा। राजपूतों ने इस अवसर का लाभ उठाकर अकबर को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। वे अपने इस कार्य में सफल हुए और उन्होंने अकबर को वचन दिया कि वे अपनी शक्ति द्वारा उसको दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन करेंगे। अतः अकबर ने अपने आपको सन् १६८१ ई० में सम्राट घोषित कर दिया। यदि इस समय अकबर ने योग्यता तथा कूटनीति से कार्य किया होता तो उसको अपने उद्देश्य में अवश्य सफलता प्राप्त होती, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। जब औरंगजेब इस समाचार से अवगत हुआ तो उसने बड़ी ही कूटनीति से काम लिया। उसने अकबर और राजपूतों में फूट डलवाने के उद्देश्य से एक षड्यन्त्र रचा। उसने अकबर को एक पत्र में बधाई भेजी कि उसने राजपूतों को खूब मूर्ख बनाकर अपने अधिकार में किया और अब मुगलों की विजय अवश्यम्भावी है। उसने इस पत्र को राजपूतों के डेरों के पास डलवा दिया। इस पत्र को पाकर राजपूतों

---

* Mughal gold could not seduce. Mughal arms could not daunt that constant heart. Almost all alone among the Rathores he displayed the rare combination of the dash and reckless valour of a Rajput soldier with the tact, diplomacy and organising power of Mughal minister of state."

—Quotad from Advanced History of India : Page 502.

का अकबर पर से विश्वास उठ गया। दुर्गादास ने अकबर को शम्भा जी के पास भिजवा दिया, जहाँ से वह फारस चला गया, जहाँ १७०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

कुछ समय तक मुगलों और मारवाड़ के राजपूतों में संघर्ष चलता रहा, किन्तु जब औरंगजेब दक्षिण के युद्धों में बुरी तरह ग्रस्त हो गया तो वह उनके विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी पुत्र बहादुरशाह ने सन् १७०६ ई० में अजीतसिंह को मारवाड़ का राणा स्वीकार किया जिससे मुगलों और राठौरों के युद्ध का अन्त हुआ।

(1685)

औरंगजेब और दक्षिण

औरंगजेब समस्त दक्षिण को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था। इस समय मरहठों के अतिरिक्त बीजापुर और गोलकुण्डा के स्वतन्त्र राज्य दक्षिण मे थे। उसने उत्तरी भारत की समस्याओं से निवृत्त होकर सर्वप्रथम बीजापुर, फिर गोलकुण्डा और बाद में मराठों के विरुद्ध कार्यवाही की।

बीजापुर—औरंगजेब की हार्दिक इच्छा थी कि बीजापुर राज्य को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करता। दक्षिण की सूबेदारी के समय भी उसने उनको मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने का अथक प्रयत्न किया था, किन्तु शाहजहाँ के हस्तक्षेप करने के कारण वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहा और विवश होकर उसने उससे सन्धि की। सुलतान होने पर उसने बीजापुर के प्रति कठोर नीति का अनुकरण किया। उसने राजकुमार आजम के नेतृत्व में बीजापुर के विरुद्ध मुगल सेना भेजी। मुगलों ने शोलापुर पर अधिकार किया, किन्तु जब मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो बीजापुर वालों ने मुगलों का सामना बड़ी वीरता तथा साहस से किया जिसके कारण मुगलों को वापिस लौटना पड़ा। **इसके पश्चात औरंगजेब ने राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में एक मुगल सेना १६८४ ई० में भेजी**, किन्तु उसको भी कोई सफलता नहीं मिली। औरंगजेब के क्रोध का कोई पारावार नहीं रहा। **उसने सन् १६८५ ई० में बड़े वेग से बीजापुर पर आक्रमण किया।** बीजापुर के सुलतान ने गोलकुण्डा के सुलतान तथा मरहठों से सहायता प्राप्त कर अपनी शक्ति को दृढ़ किया, किन्तु वे मुगलों का सामना नहीं कर सके, जिनका नेतृत्व स्वयं औरंगजेब कर रहा था। बीजापुरिए आत्मसर्म्पण करने पर बाध्य हुए। बीजापुर का सुल्तान सिकन्दर बन्दी बना लिया गया। उसको एक लाख रुपये की पेंशन देकर दौलतबाद के दुर्ग में बन्दी कर दिया गया और बीजापुर को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

गोलकुण्डा—बीजापुर से निश्चिन्त होने पर औरंगजेब ने गोलकुण्डा को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित करने की ओर अपना कदम उठाया। इस समय गोलकुण्डा पर अबुलहसन शासन कर रहा था जो बड़ा अयोग्य तथा लम्पट था। मुगल-सेना राजकुमार मुअज्जम के नेतृत्व में गोलकुण्डा-विजय के लिए चल पड़ी। प्रारम्भ में मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु कुछ ही समय उपरान्त सन् १६८५ ई० में उनका हैदराबाद पर अधिकार हो गया। अबुलहसन जिसमें योग्यता तथा सैनिक गुणों का

सर्वथा अभाव था इस पराजय के कारण सन्धि करने पर विवश हुआ। उसने मुगलों को युद्ध-क्षति के रूप में बहुत-सा धन देने का वचन दिया, किन्तु औरंगजेब को इससे सन्तोष नहीं हुआ। वह तो गोलकुण्डा राज्य का नामोनिशान ही मिटाने पर तुला हुआ था। अतः बीजापुर से निश्चिन्त होते ही सन् १६८७ ई० में वह स्वयं मुगल सेना कर नेतृत्व का गोलकुण्डा की ओर अग्रसर हुआ। मुगलों ने दुर्ग का घेरा डाला। यह घेरा आठ माह तक चलता रहा और मुगल दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सके।

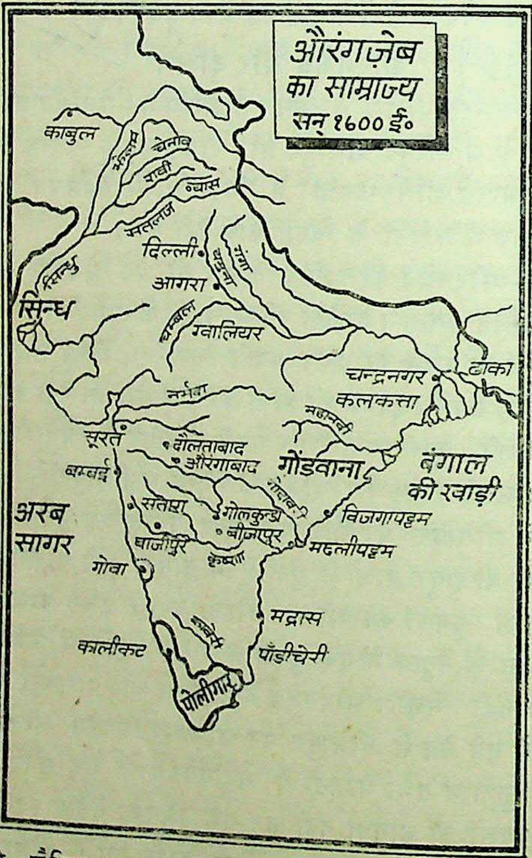
औरंगज़ेब का साम्राज्य सन् १८०० ई०
काबुल
झेलम
चेनाब
रावी
व्यास
सतलज
सिन्धु
सिन्ध
दिल्ली
आगरा
यमुना
गंगा
चम्बल
ग्वालियर
नर्मदा
चन्द्रनगर
कलकत्ता
ढाका
महानदी
सूरत
दौलताबाद
औरंगाबाद
गोंडवाना
बंगाल की खाड़ी
बम्बई
गोदावरी
सतारा
गोलकुण्डा
बीजापुर
विजगापट्टम
अरब सागर
बाजीपुर
कृष्णा
मछलीपट्टम
गोवा
मद्रास
कावेरी
कालीकट
पाँडीचेरी
पोलीगार

अब औरंगजेब ने सैनिक रण-चातुर्य की अपेक्षा कूटनीति का प्रयोग करना अधिक हितकर समझा। मुगलों ने अब्दुल्ला खाँ नामक पदाधिकारी को रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया जिसने मुगलों के लिए दुर्ग के फाटक खोल दिए। मुगल तुरन्त दुर्ग में प्रवेश कर गए और गोलकुण्डा राज्य पर अपना अधिकार हो गया और वह मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। इस प्रकार औरंगजेब ने दोनों शिया राज्यों को मुगल-साम्राज्य में विलीन कर मुगल-साम्राज्य का विस्तार सुदूर दक्षिण तक किया।

---

* "Meanwhile the king had heard the shouts and groans, and knew that the hour has come. He went into the haram and tried to comefort the women and then asking their pardon for his faults, he bade them farewell and taking his seat in the audience chamber waited calmly for his unbidden guests. He would not suffer his dinner hour to be postponed for such a trifle as the

औरंगजेब और मरहठे—बीजापुर के पतन के दो वर्ष के उपरान्त शम्भू बन्दी बना लिया गया और उसका बड़ी नृशसता से वध कर दिया गया। मुगलों के अधिकार में रायगढ़ आ गया। उसका भाई राजाराम भाग कर जिन्जी के दुर्ग में चला गया। शम्भू जी का समस्त परिवार बन्दी बना लिया गया। शम्भू जी के पुत्र साहू को ७,००० का मनसबदार घोषित किया गया और उसका लालन-पालन मुगल-राजकुमारों के समान मुगल-दरबार में किया जाने लगा। इसके दो वर्ष उपरान्त तंजौर और त्रिचनापल्ली से भी कर वसूल किया गया।

इस प्रकार सन् १६९१ ई० तक औरंगजेब श्रेष्ठता की पराकाष्ठा को पहुँच गया, क्योंकि उसका भारत पर अधिकार हो गया। वास्तव में यही से मुगल-साम्राज्य का पतन आरम्भ होता है।*

औरंगजेब के अन्तिम दिवस और उसकी मृत्यु—औरंगजेब के अन्तिम दिवस शान्त तथा सुखमय व्यतीत नहीं हुए। साम्राज्य में चारों ओर अराजकता और अव्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही थी। उसके पुत्र राज्य प्राप्त करने के लिए विद्रोह कर रहे थे। उसने उनको समझाया और उनको साम्राज्य-विभाजन का आदेश दिया, किन्तु किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसको मुगल-साम्राज्य डगमगाता हुआ दिखाई दे रहा था। शासन-व्यवस्था शिथिल हो रही थी। अपने पतन तथा अन्तिम दिवसों के आगमन का अनुभव करते हुए उसने अपने पुत्र आजम को लिखा कि, "मैं अकेला आया और अकेला जा रहा हूँ। मैंने देश के हित के लिए कोई कार्य नहीं किया और न जनता के लिए ही, और भविष्य में भी इसकी कोई आशा

Mughal trimph. When the officer of Aurangzeb appeared, he saluted them as being a king, received them courteously, and spoke to them in choice Persian. He then called for his horse and rode with them to Prince Azam who presented him to Aurangzeb. The Great Mughal treated him with grave courtesy, as king to king, for the gallantry of his defence of Golkunda at once for many sins of his licentious past. Then he was sent as a prisoner to Daultabad. where his brother of Bijapur was already a captive and both their dynasties disppeared from history. Aurangzeb appropriated some seven million sterling from the royal property of Golkunda."

—**Lane Poole.**

* "All seemed to have been gained by Aurangzeb now; but in reality all was lost. It was the beginning of his end. The saddest and most hopeless chapter of his life now opened. The Mughal Empire had become too large to be used by one man or from one centre......His enemies rose on all sides, he could defeat but could not crush them forever.........Lawlessness reigned in many places of Northern and Central India. The old Emperor in the far off Deccan lost all control over his officers in Hindustan and the administration grew slack and corrupt, chiefs and zamindars defied the local authorities and asserted themselves, filling the country with tumult......The endless wars in the Deccan exhausted his treasury, the Government turned bankrupt, the soldiers starving from arrears of pay, mutinied......Napoleon I used to say, "It was the Spanish ulcer which ruined me." The Deccan ulcer ruined Aurangzeb also."

—J. N. Sarkar : Studies in Mughal India—pp. 50—50.

नहीं है।"[1] उसने अपने दूसरे पुत्र को लिखा कि, "मैं अपने पापों का बोझ उठाए हुए हूँ और मुझे अपने दुष्कर्मों पर खेद है। जो कुछ भी मेरा होना है, होगा। मैं दूसरी दुनिया को जा रहा हूँ।"[2] इस प्रकार उसका हृदय तथा शरीर बहुत दुःखी था। इसी शोचनीय अवस्था में ३ मार्च सन् १७०७ ई० को उसका देहान्त हो गया।

औरंगजेब का चरित्र

औरंगजेब के चरित्र और उसकी नीति की कुछ विद्वानों ने बहुत अधिक कटु-आलोचना की है, जितनी वास्तव में नहीं करनी चाहिए थी। वही एक मुगल राजकुमार न था जिसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और जिसने अपने सम्बन्धियों का वध कर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। इससे पूर्व राजकुमार सलीम, राजकुमार खुसरो एवं राजकुमार खुर्रम ने भी ऐसा किया था। उसने तो वंश-परम्परा को निभाया। उसको उत्तराधिकार के युद्ध के लिए भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तो अवश्यम्भावी था, क्योंकि कोई भी राजकुमार सिंहासन को छोड़ना नहीं चाहता था, वरन् उस पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। दारा ने राज्यसिंहासन पर अधिकार सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया और तीनों अन्य राजकुमारों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। औरंगजेब अपने चातुर्य तथा कूटनीति में सफल हुआ, जब कि अन्य राजकुमारों की योजनाएं पूर्णतः असफल रहीं। उसका शाहजहाँ के साथ किया गया व्यवहार निन्दनीय अवश्य था, किन्तु कम से कम उसके सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि उसने अपने पिता का वध नहीं किया जिनके उदाहरण भारतीय तथा अन्य देशों के इतिहास में मिलते हैं। औरंगजेब के चरित्र में कुछ विशेष गुण तथा दुर्बलताएँ विद्यमान थीं। अपने गुणों के कारण ही वह मुगल-साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ और उसकी गणना महान् शासकों में की जाती है। उसमें कुछ दुर्बलताएँ भी थीं जो मुगल-साम्राज्य को पतन की ओर ले गईं और अयोग्य शासकों के हाथ में शासन-सत्ता के आने से वह दिन-प्रतिदिन पतन की ओर अग्रसर होता गया।

औरंगजेब के गुण

(१) वीर सैनिक तथा उच्च कोटि का सेनापति।
(२) आदर्शवादी सम्राट।
(३) पवित्र तथा सादे जीवन का प्रेमी।
(४) कर्मठ तथा कर्त्तव्य-निष्ठ शासक।
(५) उच्च कोटि का विद्वान्।
(६) कूटनीति का ज्ञाता।
(७) न्यायप्रिय शासक।
(८) व्यवहार कुशल।
(९) शारीरिक बल।
(१०) धर्मपरायण।
(११) दृढ़ प्रतिज्ञ।

---

1. "Aurangzb worte to his son Azam, "I came alone and am going alone. I have not done well to the country and its people, and of the future there is no hope."

2. To another son he wrote, "I carry away the burden of my sins and am concerned on account of my misdeeds. Come what may, I am launching my boat."

औरंगजेब के गुण—औरंगजेब के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं—

(१) **वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति**—औरंगजेब अपने समय का एक वीर सैनिक तथा उच्च कोटि का सेनापति था। उसमें सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने पिता के शासन-काल में ही उसने इस प्रतिभा का पूर्ण परिचय दक्षिण के युद्धों में दिया तथा उत्तराधिकार के युद्ध में उसकी सफलता का प्रमुख कारण यही था। उसमें अदम्य उत्साह, अटल धैर्य तथा अनुपम साहस था। वह भय से नहीं डरता था। भयंकर तथा भीषण युद्धों में भी वह कभी विचलित नहीं हुआ।*

(२) **आदर्शवादी सम्राट**—वह एक आदर्शवादी सम्राट था। उसका जनता के साथ सद्व्यवहार था। उसके सिद्धान्त बड़े उच्च थे। वह अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिए सब कुछ करने को उद्यत हो जाता था। प्रारम्भ में उसने अपने राजस्व सिद्धान्तों के विषय में पर्याप्त योग्यता का परिचय दिया।

(३) **पवित्र तथा सादे जीवन का प्रेमी**—औरंगजेब को पवित्र और सादे जीवन से बड़ा प्रेम था। उसका व्यक्तिगत चरित्र उच्चकोटि का था। उसका खान-पान तथा वेष-भूषा बड़ी सादी थी। उसमें उन व्यसनों का सर्वथा अभाव था जो उस समय के उच्चकोटि के लोगों में विद्यमान थे। उसके हरम में स्त्रियों की भरमार नहीं थी। वह भोग-विलास से घृणा करता था तथा चरित्र-भ्रष्ट लोगों को आदर की दृष्टि से नहीं देखता था। वह राजकोष को जनता की धरोहर मानता था और धन के व्यर्थ व्यय में उसका तनिक भी विश्वास नहीं था।

(४) **कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ शासक**—वह बड़ा कर्मठ तथा कर्त्तव्य-निष्ठ शासक था। वह राजकाज बड़ी लगन से करता था और सदा उसी में व्यस्त रहता था। वह अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार समझता था और उसकी पूर्ति के लिए सदैव तैयार रहता था। शासन-सम्बधी कार्यों में वह पूर्ण दिलचस्पी लेता था।

(५) **उच्चकोटि का विद्वान्**—वह उच्चकोटि का विद्वान् था। उसको अध्ययन से विशेष प्रेम था। अवकाश के समय वह इस्लामी धर्म-शास्त्रों की पुस्तकों का अध्ययन किया करता था। उसको फारसी का अच्छा ज्ञान था। उसका लेख बड़ा सुन्दर था। वह तुर्की तथा हिन्दी का भी ज्ञान रखता था और उसको वह अच्छी तरह बोल सकता था। वह शकिस्त तथा खुशखत अच्छी तरह लिखने का अभ्यस्त था। उसके संरक्षण में 'फतवा-ए-आलमगीरी' नामक ग्रन्थ की रचना हुई जो इस्लामी विधि का एक उच्चकोटि का ग्रन्थ माना जाता है, किन्तु यह खेद का

---

* "As a military general he had established fame in youth and never was he more cool and self-possessed than in the heart of battle when he was surrounded by the enemies from all sides. During the Balkh campaign he astonished friends and foes alike by his presence of mind when he dismounted his horse on the battle-field against the advice of his friends and comrades to say the Zuhra prayers."

—**Dr. Ishwari Prasad.**

विषय है कि इतना उच्चकोटि का विद्वान् होते हुए भी उसने कला तथा साहित्य को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न नहीं किया।

(६) **कूटनीति का ज्ञाता**—औरंगजेब कूटनीति का पण्डित था। वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समस्त प्रकार की कूटनीति का प्रयोग करता था। शत्रुओं को प्रलोभन देकर वह अपनी ओर मिला लेता था तथा शत्रुओं में फूट डाल देता था। राजपूतों में उसने इसी बल के आधार पर फूट डालकर अपने विस्तृत राज्य की रक्षा की, क्योंकि वह उनकी सम्मिलित शक्ति का सामना नहीं कर सकता था।

(७) **न्यायप्रिय शासक**—वह उच्चकोटि का न्यायप्रिय शासक था। उसके इस गुण की विदेशी लेखकों ने भी बड़ी प्रशंसा की है। न्याय करते समय वह किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं करता था। उसकी दृष्टि में अमीर तथा निर्धन सब समान थे। वह निर्णय न्यायपूर्ण करता था, किन्तु आवेश तथा क्रोध के वशीभूत होकर वह कभी-कभी कठोर दण्ड दे डालता था।

(८) **व्यवहार-कुशल**—औरंगजेब बड़ा व्यवहार-कुशल शासक था। इसी गुण के कारण अमीरों का एक दल उसका सदा समर्थन करता था और उसको हर सम्भव रूप से सहायता प्रदान करता था। उसको अपने व्यवहार तथा कर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण था जिसके कारण उसके विरोधियों की संख्या कम थी।

(९) **शारीरिक बल**—उच्च चरित्रवान होने के कारण औरंगजेब में अपार शारीरिक बल था। वृद्धावस्था तक भी उसकी समस्त इन्द्रियाँ पूर्णतया सुचारु रूप से कार्य करती रहीं। वह कुछ कम अवश्य सुनने लगा था। जीवन के अन्तिम दिनों में भी उसने सैन्य-संचालन का कार्य दक्षिण में किया।

(१०) **धर्मपरायण**—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसका अपने धर्म पर अटूट विश्वास था और उसके समस्त आचरण धर्म के अनुकूल होते थे। वह पाँच समय नमाज पढ़ता था और रमजान का व्रत पूरे महिने रखता था। उसने राजनीति को धर्म का अंग बना दिया, जिसके कारण ही साम्राज्य का पतन हुआ। मुसलमान उसको **जिन्दा पीर** (Living Saint) **आलमगीर** के नाम से सम्बोधित करते थे। उसकी धर्मपरायणता में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। बलख के अभियान में जब भीषण युद्ध चल रहा था तो उसने घोड़े से उतर कर नमाज पढ़ी। इस समय वह खून से लथ-पथ था, किन्तु उसने इसका तनिक भी ध्यान नहीं किया।

(११) **दृढ़ प्रतिज्ञ**—औरंगजेब दृढ़ प्रतिज्ञ था और अपनी प्रतिज्ञा को वह सदैव पूर्ण करने का प्रयत्न करता था। वह हर सम्भव उपाय की शरण उसकी पूर्ति के लिए ले सकता था।

औरंगजेब की दुर्बलताएँ—यह नितान्त सत्य है कि औरंगजेब में यद्यपि पर्याप्त गुण थे, किन्तु वह एक सफल शासक नहीं बन सका। इसका उत्तरदायित्व उसकी दुर्बलताओं पर है। वास्तव में एक सफल शासक बनने के लिए कुटनीति तथा

परिश्रम व अन्य गुण ही आवश्यक नहीं हैं, वरन् और अन्य बातों का होना भी आवश्यक है। औरंगजेब की मुख्य दुर्बलताएँ निम्न थीं—

(१) **हृदय-हीनता**—औरंगजेब हृदय-हीन व्यक्ति था। उसके हृदय में उन उच्च गुणों का सर्वथा अभाव था जो लोगों को स्वत: अपनी ओर आकर्षित करने के लिए सहायक सिद्ध होते हैं। वह कठोर कर्त्तव्य को ही अपना सब कुछ समझे हुए था। उसमें दया, सहानुभूति तथा प्रेम का सर्वथा अभाव था।

(२) **पारिवारिक प्रेम का अभाव**—औरंगजेब को अपने परिवार से विशेष प्रेम नहीं था। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सब कुछ करने को उद्यत हो जाता था। उसने अपने पिता को बन्दी किया। अपने भाइयों तथा भतीजों का वध किया। उसको अपनी सन्तान से भी विशेष प्रेम न था। उनको भी अपने अपराधों के कारण बन्दीगृह की यातनाएँ पर्याप्त समय तक भोगनी पड़ीं।

औरंगजेब की दुर्बलताएँ

(१) हृदयहीनता।
(२) पारिवारिक प्रेम का अभाव।
(३) सन्देहात्मक भावना।
(४) धार्मिक अन्धविश्वास।
(५) विशेष महत्वाकांक्षी।

(३) **सन्देहात्मक भावना**—औरंगजेब सबको सन्देह की दृष्टि से देखता था। उसका कोई विश्वासपात्र नहीं था। इसी कारण शासन का समस्त भार उसने अपने ही हाथों में रखा और जब तक वह जीवित रहा उसने अपनी शक्ति का विभाजन नहीं किया। इसके बड़े दुष्परिणाम हुए।[1]

(४) **धार्मिक अन्धविश्वास**—औरंगजेब अपने धार्मिक विश्वासों के कारण अन्य धर्मों तथा अनेक अनुयायियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसने अपनी नई नीति के कारण हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई, जिसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुओं ने मुगलों की सत्ता का विरोध करना आरम्भ किया। राजपूत, जिन्होंने अपना खून बहाकर मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था, उसके विरोधी बन गये और उससे लोहा लेने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त साम्राज्य में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई जिसने मुगल-साम्राज्य का अन्त किया।[2]

(५) **विशेष महत्वकांक्षी**—औरंगजेब विशेष महत्वाकांक्षी शासक था। उसको उस राज्य से सन्तोष नहीं हुआ जो उसको उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ था।

---

[1] "He had good reasons to know the danger of a son's rebellion, out his general habit of distrust was fatal to his popularity. Good Muslims have often extolled his virtues, but the mass of his courtiers and officers lived in dread of arousing his suspicion and while they feared, resented his distrustful scheming. Aurangzeb was universally respected, but he was never loved." —Lane-Poole.

[2] "Aurengzeb's life had been a vast failure indeed, but he had failed grandly. His glory is that he could not force his soul, that he dared not desert the calories of his faith. The great putitan of India was of such stuff wins the martyer's crowd." —Lane-Poole.

उसने अपने जीवन के अन्तिम २५ वर्ष दक्षिण के राज्यों को निर्मूल करने में व्यतीत किए जिनका उचित शासन-प्रबन्ध करना मध्यकालीन शासकों के लिए असम्भव था। यदि वह उतने ही राज्य से सन्तोष करता जितना उसको उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ था और उसकी ही शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान देता तो मुगल साम्राज्य का इतना शीघ्र पतन न हुआ होता। उसकी दक्षिण की विजय भी अधिक स्थायी न रह सकी। उसकी मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही मरहठों की शक्ति का विस्तार हुआ और समस्त दक्षिण उनकी उंगलियों पर नाचने लगा और बाद में मुगल-सम्राट भी उनके हाथ की कठपुतली बन गए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) अकबर के शासन-काल में मुगल-साम्राज्य के क्रमिक विस्तार का वृतान्त लिखिए।

(२) अकबर ने मेवाड़ राज्य पर क्यों चढ़ाई की थी ? अकबर के समय में मेवाड़ और मुगलों के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(३) औरंगजेब की दक्षिण-विजय का हाल लिखिए।

(४) छत्रसाल बुन्देला के विषय में तुम क्या जानते हो ?

राजस्थान—

(१) अकबर द्वारा भारत में एकता के आधार पर निर्मित एक राष्ट्र स्थापित करने के प्रयत्नों का उल्लेख कीजिए। यह प्रयास क्यों असफल रहा ?

(२) जहाँगीर के शासन का वर्णन करो और यह बतलाओ की वह विरोधी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण था।

६

मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति

उत्तरी-पश्चिमी सीमा का महत्व—भारत के इतिहास में उत्तरी-पश्चिमी सीमा का महत्व बहुत अधिक रहा है, क्योंकि इधर से ही भारत में विभिन्न जातियों ने प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त भारत में कोई अन्य सुगम मार्ग नहीं था। यहाँ पहाड़ियाँ अधिक ऊँची नहीं हैं और उनके बीच में दर्रों को पार कर भारत या अफगानिस्तान की जातियाँ सरलतापूर्वक सिन्ध और गंगा के मैदान में प्रवेश कर भारत के शान्तिमय तथा सुखमय जीवन को अव्यवस्थित करती रहीं। **भारत के प्रसिद्ध तथा शक्तिशाली सम्राटों का ध्यान सदा इस ओर आकर्षित होता रहा और उन्होंने इसको दृढ़ बनाने का** घोर प्रयत्न किया, **किन्तु जब-जब भारत की सत्ता दुर्बल तथा लम्पट व्यक्तियों के हाथ में रही वे इस ओर से उदासीन हो जाते थे और मध्य एशिया के महत्वाकांक्षी सम्राटों को अपने साम्राज्य का विस्तार करने का भारत में स्वर्ण अवसर प्राप्त हो जाता था।** इस प्रदेश में निवास करने वाली जातियाँ स्वतन्त्रता-प्रिय थीं और उन्होंने कभी भी किसी राज्य की पूर्ण अधीनता स्वीकार नहीं की। जब आक्रमणकारी राजा की सेनाएँ इन प्रदेशों से वापिस हो जाती थीं तो वे अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर कर देते थे। पुस्तक के प्रथम भाग में स्पष्ट किया जा चुका है कि दिल्ली के सुल्तानों ने इसकी सुरक्षा के लिए घोर प्रयत्न किया, किन्तु उनको मंगोलों के आक्रमण सहन करने पड़े, जिनके कारण दिल्ली के सुल्तान सदा बड़े चिन्तित रहते थे। मुगलों के समय में तो इसका महत्व और भी अधिक हो गया, क्योंकि उनके हाथ में काबुल का समस्त प्रदेश था। इनके समय में कन्दहार का महत्व बहुत बढ़ गया था, क्योंकि यह एक बड़ा भारी व्यापारिक केन्द्र था और मध्य एशिया का समस्त व्यापार इसी मार्ग से होता था, क्योंकि इस काल में समुद्र पर पुर्तगालियों का अधिकार स्थापित हो गया था। कन्दहार पहाड़ियों तथा मरुस्थल के मध्य एक खुला हुआ और अच्छी तरह सींचा हुआ प्रदेश था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में १४ हजार माल से लदे हुए ऊँट भारत और फारस में आया करते थे।

प्रारम्भिक मुगलों की नीति--१३वीं शताब्दी में कन्दहार के प्रश्न पर मुगलों और फारस के शासकों में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। दोनों ही कन्दहार के महत्व को समझकर उसको अपने अधिकार में करना चाहते थे। **सन् १५२२ ई० में बाबर ने कन्दहार को अपने अधिकार में किया।** उसकी धारणा थी कि कन्दहार पर अधिकार करके वह काबुल के राज्य को सुरक्षित करने में सफल हो सकता है। उसकी मृत्यु के उपरान्त उस पर उसके पुत्र कामरान का अधिकार हो गया। हुमायूँ ने काबुल पर अधिकार करने के लिये फारस के शाह से मित्रता इस शर्त पर की कि यह कन्दहार उसको वापिस देगा, **किन्तु उसने काबुल विजय करने के उपरान्त कन्दहार को अपने**

हाथ में रक्खा। इसके पश्चात् हुमायूँ का दिल्ली पर अधिकार हो गया और उसकी मृत्यु के बाद अकबर शासक बना। अकबर अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयों में इतना व्यस्त था कि वह कन्दहार की ओर ध्यान न दे सका। उस पर हकीम मिर्जा का अधिकार था। **फारस के शाह ने कन्दहार पर आक्रमण करने का यह स्वर्ण अवसर समझकर १५५८ ई० में उस पर आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया।**

अकबर की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

अपने प्रारम्भिक जीवन में अकबर भारत की गहन समस्याओं में इतना उलझा रहा कि उसने अपनी उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ करने की ओर ध्यान नहीं दिया। इस समय काबुल पर उसके भाई मिर्जा हकीम का अधिकार था जो दिल्ली-साम्राज्य को अपने अधीन करना चाहता था। इसके अतिरिक्त काबुल पर उजबेजों का जोर पड़ रहा था जिसको हकीम सहन नहीं कर सका। उसके भारत आने तथा उसके दूसरे अभियानों का वर्णन पिछले पाठ में किया जा चुका है। **सन् १५८५ ई० में हकीम की मृत्यु पर काबुल का समस्त प्रदेश अकबर के हाथ में आ गया।** अब से उसने उत्तरी-पश्चिमी सीमा को दृढ़ बनाने तथा स्वतन्त्र जातियों की विद्रोहात्मक भावना को कुचलने का दृढ़ निश्चय किया। वास्तव में मुगलों में अकबर ही प्रथम था जिसने इस ओर विशेष ध्यान दिया और इस दिशा में कठोर तथा दृढ़ नीति का अवलम्बन किया।

स्वतन्त्र जातियों पर अधिकार—अकबर ने तुरन्त इन जातियों पर अपना अधिकार करने के लिए आक्रमण किया। उसने उजबेगों तथा **रोशनियाइयों** को बुरी तरह परास्त किया। इसके बाद **यूसुफजाइयों** का दमन करने के लिए **राजा बीरबल और जैन खाँ** के नेतृत्व में मुगल सेना ने इन पहाड़ी प्रदेशों में प्रस्थान किया, किन्तु सेनापतियों के पारस्परिक विरोध के कारण मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अफगानों ने उनको बुरी तरह परेशान किया। अबकर के राजा बीरबल सहित बहुत से व्यक्ति खेत रहे। इसके उपरान्त अकबर ने **राजा टोडरमल और राजकुमार मुराद** के नेतृत्व में एक विशाल और सुसज्जित सेना भेजी, जिसने इन जातियों के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया और उनके बहुत-से सैनिक बन्दी कर लिए गए। इस प्रकार कठोर नीति का अनुकरण कर अकबर इन जातियों का दमन करने में सफल हुआ।

कन्दहार पर अधिकार—अब अकबर ने कन्दहार को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया। इस समय कन्दहार पर उजबेगों के आक्रमण हो रहे थे, जिसका सामना कन्दहार का हाकिम हुसैन मुज्जफ्फर नहीं कर सका। **उसने सन् १५९५ ई० में कन्दहार को अकबर के हाथ में सौंप दिया।** इस प्रकार कन्दहार पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया। **डा० सरकार और दत्त** के शब्दों में, "अकबर की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति के कारण साम्राज्य की वृद्धि हुई, महत्वपूर्ण सीमा पर उस की स्थिति दृढ़ हुई और उसके मान में बड़ी वृद्धि हुई।"* इसके उपरान्त अकबर

---

* "Akber' policy in the North-West brought territorial gains to the empire secured its position in that important frontier and added to its prestige."

—Sarkar and Dutta : Page, 120

काश्मीर, बिलोचिस्तान तथा सिन्ध को अपने साम्राज्य का भाग बनाया। गत पृष्ठों में इन विजयों का वर्णन किया जा चुका है।

जहाँगीर की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

फारस का शाह मुगलों का कन्दहार पर अधिकार सहन नहीं कर सका। अकबर के शासन-काल में उसको कन्दहार पर अधिकार करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका, परन्तु वह उस पर अधिकार करने की ताक में सदा ही रहा। **जब सन् १६०६ ई० में राजकुमार खुसरो ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया तो फारस के शाह ने कन्दहार पर आक्रमण किया, किन्तु उसको मुगल किलेदार शाहबेग खाँ के कारण इस आक्रमण में सफलता प्राप्त नहीं हुई और फारस की सेना को निराश होकर वापिस जाने पर बाध्य होना पड़ा।** इधर जहाँगीर ने कन्दहार की ओर एक सेना भेजी दी थी। अब फारस के शाह अब्बास ने कूटनीति की शरण ली और उसने जहाँगीर से मित्रता करने का अभिनय करना आरम्भ किया, जिससे वह कन्दहार की सुरक्षा से उदासीन हो जाए। उसने जहाँगीर को बहुत-सी भेंट दीं और उस पर अपना विश्वास दृढ़ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुगल कन्दहार की सुरक्षा से उदासीन हो गए। **समय पाकर सन् १६२२ ई० में शाह ने कन्दहार पर आक्रमण किया।** इस समय जहाँगीर और नूरजहाँ काश्मीर में थे और उनको वहीं यह समाचार ज्ञात हुआ। उसने राजकुमार खुर्रम को एक विशाल सेना लेकर कन्दहार जाने का आदेश दिया, किन्तु राजकुमार, जो नूरजहाँ के व्यवहार से क्षुब्ध हो गया था और विद्रोह करने का विचार कर रहा था, ने कन्दहार जाने में आनाकानी की, क्योंकि उसको डर था कि नूरजहाँ उसकी अनुपस्थिति में उसको उत्तराधिकार से वंचित न कर दे। वह विद्रोही बन गया। इसके उपरान्त राजकुमार शहरयार को मुगल सेना का सेनापति बनाकर कन्दहार विजय के लिए भेजा गया, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। **शाह अब्बास ने जहाँगीर को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि कन्दहार पर उसका अधिकार रहना न्यायोचित है और कन्दहार के कारण उनके पारस्परिक सम्बन्धों में किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं होना चाहिए।** जहाँगीर को यह पत्र पाकर बड़ा दुःख हुआ। उसने शाह पर धोखा देने का आरोप लगाया, किन्तु भारत की आन्तरिक स्थिति के कारण जो शाहजहाँ के विद्रोह से उत्पन्न हुई थी, वह कन्दहार को अपने अधिकार में करने की ओर ध्यान नहीं दे सका। उसका ध्यान शाहजहाँ के विद्रोह की ओर आकर्षित हो गया और वह कन्दहार से उदासीन हो गया।

शाहजहाँ की उत्तर-पश्चिमी नीति ८४५

उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) के विद्रोह के कारण जहाँगीर कन्दहार की रक्षा करने में असफल रहा जिसके परिणाम-स्वरूप कन्दहार पर फारस के शाह का अधिकार स्थापित हो गया। शाहजहाँ ने राज्य-सिंहासन प्राप्त कर साम्राज्य की उत्तरी-पश्चिमी सीमा दृढ़ करने की ओर विशेष ध्यान दिया। इस समय फारस ने शाह की ओर से अलीमर्दान कन्दहार का सूबेदार था।

प्रारम्भ में शाहजहाँ ने अलीमर्दान को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु जब उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई तो उसने कन्दहार पर अधिकार करने का निश्चय किया। इसी समय अलीमर्दान ने शाह से सैनिक सहायता की याचना की। शाह को उस पर सन्देह हो गया और उसने अलीमर्दान को बन्दी बनाने के लिए सेना भेजी। **अलीमर्दान को जब इसकी सूचना प्राप्त हुई तो उसने मुगलों से बात-चीत शुरू की जिसके फलस्वरूप १६३८ ई० में मुगलों का कन्दहार पर अधिकार हो गया।** इस सफलता से शहाजहाँ का उत्साह बहुत बढ़ गया। उसके हृदय में समरकन्द को हस्तगत करने की इच्छा बलवती हुई। अतः उसने बलख और बदख्शाँ को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया और सौभाग्य से उसको वहाँ की राजनीति में हस्तक्षेप करने का स्वर्ण अवसर भी प्राप्त हो गया। इस समय वहाँ गृह-युद्ध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। **सन् १६४६ में मुगलों का बलख और बदख्शाँ पर अधिकार हो गया।** बीमार होने के कारण राजकुमार मुराद इन प्रदेशों के शासन को स्थायी रूप देने के पूर्व ही वहाँ से चल पड़ा। सम्राट उसके इस व्यवहार से बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने शीघ्र ही अपने मन्त्री सादुल्ला खाँ को उस ओर भेजा और एक सेना औरंगजेब तथा शुजा के नेतृत्व में वहाँ भेजी और स्वयं काबुल में निवास किया। मुगल सेना ने समस्त कठिनाइयों को सहन कर इन प्रदेशों में युद्ध किया, किन्तु बाध्य होकर उसको नजर मोहम्मद से सन्धि करनी पड़ी और मुगल सेना वापिस आ गई। इस सम्बन्ध में **सर यदुनाथ सरकार** का कथन है कि "इस प्रकार बलख में शाहजहाँ के मूर्खतापूर्ण युद्ध की समाप्ति हुई जिसमें भारतीय कोष से २ वर्ष के अन्तर्गत ४ करोड़ रुपये व्यय हुए और वहाँ से केवल २२॥ लाख रुपये लगान के रूप में वसूल हुए। एक इंच राज्य पर अधिकार न हुआ, न कोई राजवंश में परिवर्तन ही हुआ और न बलख के राजसिंहासन पर शत्रु के स्थान पर मित्र को ही आसीन किया गया। बलख के दुर्गों में ५ लाख का अनाज तथा अन्य दुर्गों में पर्याप्त अनाज बुखारा-वासियों के लिए छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त ५० हजार रुपये नकद नजर मुहमम्द के पोतों और २२,५०० रुपये राजदूतों को दिए गए। युद्ध में ५०० सैनिक मारे गए और उससे दस गुने (सेना के साथ जाने वालों को सम्मिलित कर) पहाड़ में शीत और बर्फ के कारण खेत रहे। पश्चिमी सीमा पर युद्धों की आक्रमणकारी साम्राज्यवादी नीति के कारण भारत को भयंकर मूल्य देना पड़ा।"*

---

* "Thus ended Shahjahan's famous war in Balkh in which the Indian treasury spent four krores of rupees in two years and realized from the conquered country a revenue of 45/2 lakhs only. Not an inch of territory was annexed, no dynasty changed and no enemy replaced by an ally on the throne of Balakh. The grain stored in the Balakh fort worth five lakhs and the provisions in other forts as well, were all abandoned to the Balakhanians, besides Rs. 50,000 in cash presented to Nazar Muhammad's grandsons and Rs. 22,500 to envoys. Five hundred soldiers fell in battle and ten times that number (including camp followers) were slain by cold and snow on the mountains. Such is the terrible price that aggressive imperialism makes India pay for wars across the north-western frontier."

—J. N. Sarkar. P. 99.

मुगलों की बलख तथा बुखारा की असफलता ने फारस के शाह को बड़ा प्रोत्साहित किया। शाह अब्बास द्वितीय, जो १६४२ ई० में फारस के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ था, ने अगस्त १६४८ को कन्दहार पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ की। उसने हिरात में अपनी सेना एकत्रित की और १६ दिसम्बर को कन्दहार को घेर लिया। **११ फरवरी १६४६ ई० को कन्दहार पर फारस का अधिकार हो गया।** शाहजहाँ जब इस समाचार से अवगत हुआ तो उसने तुरन्त ही औरंगजेब और सादुल्ला खाँ को कन्दहार पर आक्रमण करने का आदेश दिया। शाहजहाँ स्वयं काबुल पहुँच गया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। फारसवासियों ने अदम्य उत्साह तथा साहस से मुगलों का सामना किया। अन्त में, बाध्य होकर मुगलों ने घेरा उठा लिया। इसके पश्चात् १६५२ ई० में फिर कन्दहार को मुगलों ने घेर लिया, किन्तु इस बार भी उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। फिर सन् १६५३ ई० में **दारा शिकोह** ने कन्दहार का घेरा डाला, किन्तु इस बार भी मुगल असफल रहे। इस प्रकार मुगलों के हाथ से कन्दहार भी चला गया।

औरंगजेब की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति

८५

शाहजहाँ के शासन-काल में औरंगजेब ने इसी दिशा में बड़ा कार्य किया, किन्तु उसको सफलता नहीं हुई और उसके समस्त प्रयत्न असफल रहे। सम्राट बनने के उपरान्त उसने इस ओर विशेष दृढ़ नीति का अनुकरण किया। औरंगजेब की मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति शाहजहाँ की भाँति आक्रमणकारी नहीं थीं। उसने मध्य एशिया की शक्तियों के साथ सन्धि और मेल की स्थापना की। उसके ऐसा करने का उद्देश्य कदाचित् विदेशों में सम्मान प्राप्त करना था। उसने उन विदेशों में अपने राजदूत भेजे और उन देशों के राजदूतों को अपने यहाँ स्थान दिया। उसने उनके साथ पत्र-व्यवहार की भी स्थापना की। उसने मक्का, फारस, बलख, बुखारा, काशगर के शासकों तथा बसरा के तुर्की गवर्नर और अबिसिनियाँ के शासक के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए। इस सम्बन्ध में **सर यदुनाथ सरकार** का कथन है कि "प्रारम्भ में उसकी नीति विदेशी शासकों के नेत्रों में अपने राजदूतों तथा उनको मूल्यवान उपहारों द्वारा चकाचौंध उत्पन्न कर देने की थी तथा वाह्य मुस्लिम जगत् को उसके उस व्यवहार को भुलाने के लिए प्रेरित करने की थी जो उसने अपने पिता तथा भाइयों के प्रति किया था अथवा कम से कम उस सफल तथा कर्मठ व्यक्ति के प्रति भद्रता प्रदर्शित कराने की थी जो कि भारत के अवर्णनीय धन का स्वामी था और विशेषतः जबकि वह उस धन राशि को व्यय करने लिए पूर्ण स्वतन्त्र था।"*

उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों में निवास करने वाली जातियों पर मुगलों का अधिकार पूर्णतया स्थापित नहीं हो सका। मुगलों ने हर सम्भव उपाय तथा साधनों से उनको

---

* "His Policy at the beginning was to dazzle the eyes of foreign princes by the lavish gifts and of presents to them and their envoys, and induced the other Muslim world to forget his treatment of his father and brothers or at least to show courtesy to the successful man of action and master of India's untold wealth specially when he was free with his money." —J. N. Sarkar

अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। **सन् १६६७ ई० में यूसुफजाई जाति के नेतृत्व में कुछ जातियों का संगठन हुआ।** उन्होंने अपनी जाति के नेता **भगर** के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया। मुगलों की एक सेना ने **कामिल खां** के नेतृत्व में यूसुफजाइयों के विद्रोह का दमन किया। **सन् १६६७ ई० में अफरीदी जाति ने अकमल खाँ के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया।** अकमल खाँ ने अपने आपको राजा घोषित किया और समस्त जातियों का संगठन करना आरम्भ किया। उसने खैबर दर्रे पर अधिकार किया। उसका दमन करने के अभिप्राय से अमीन खाँ को भेजा गया जिसको उन्होंने बुरी तरह परास्त किया। उसको भागकर पेशावर में शरण लेनी पड़ी। इसी समय **खुशहाल खाँ खटक** ने विद्रोह का झण्डा उठाया। प्रारम्भ में वह मुगलों की ओर था किन्तु किसी कारणवश वह उनका शत्रु बन गया। अब अकमल खाँ तथा खुशहाल खाँ ने सम्मिलित होकर मुगलों को तंग करना आरम्भ कर दिया। औरंगजेब ने विभिन्न समयों पर महावत खाँ, सुजात खाँ तथा राजा जसवन्तसिंह को उनके दमन के लिए भेजा, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में बाध्य होकर औरंगजेब स्वयं सीमाप्रान्त गया और उसने हर सम्भव उपाय से उनका दमन करने का प्रयास किया। अन्त में उसको सफलता प्राप्त हुई और सन् १६७२ ई० में वह राजधानी वापिस आया। सीमा-प्रान्त के प्रदेशों की रक्षा का भार राजकुमार मुअज्जम पर छोड़ा गया और अमीन खाँ को काबुल का सूबेदार नियुक्त किया गया।

अधिकांश जातियों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु खुशहाल खाँ ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। अन्त में अपने पुत्र के ही विश्वासघात के कारण वह बन्दी बनाया गया।

परिणाम—मुगलों को उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों में जो सफलता प्राप्त हुई उसका परिणाम राज्य के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ, वरन् वह राज्य के लिए घातक ही सिद्ध हुआ। (i) **राजकोष से बहुत अधिक धन व्यय किया गया और उसके राजनीतिक प्रभाव उससे भी अधिक हानिकारक सिद्ध हुए।** (ii) **अफगानों का सहयोग मुगलों को राजपूतों के विरुद्ध प्राप्त नहीं हो सका।** (iii) **मुगल शिवाजी के विरुद्ध कठोर तथा दृढ़ नीति का पालन करने में असमर्थ रहे, जिसके कारण शिवाजी की शक्ति का दिन-प्रतिदिन विकास होता रहा।** (iv) **अफगान और अफरीदियों ने औरंगजेब को दो क्षेत्रों में युद्ध के लिए विवश कर अप्रत्यक्ष रूप से शिवाजी की सहायता की जो दक्षिण में पर्याप्त समय तक शक्तिशाली बना रहा।**

महत्वपूर्ण प्रश्न

(१) मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तथा मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति का वर्णन करो, उसका क्या परिणाम हुआ ?

(२) मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की स्वतन्त्र जातियों के प्रति नीति का विश्लेषण करो।

ज्यों को

७

मुगलों की राजपूत-सम्बन्धी नीति

प्रारम्भिक सम्बन्ध—इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् **डा० वेणीप्रसाद** राजपूतों के सम्बन्ध में कहते हैं कि "विश्व की कोई भी जाति मध्य-कालीन भारत के राजपूतों से अधिक गौरवमय इतिहास, अधिक वीरतापूर्ण कृत्य, मान-मर्यादा तथा आत्म-सम्मान की उच्चतर भावना रखने का गर्व करने में असमर्थ है। राजपूतों की परम्परा पर दृष्टिपात करने से उनकी वीरता, त्याग तथा दूसरों के प्रति सम्मान की भावना के कारण मस्तक स्वयं श्रद्धा के कारण झुक जाता है।"* मध्यकालीन युग के भारतीय इतिहास में इस जाति ने बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और उसने दिल्ली के शासकों की साम्राज्यवादी तथा लोलुपता-सम्बन्धी नीति का अदम्य उत्साह तथा साहस से सामना कर अपने आपको सदा के लिए अमर कर दिया। **दिल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की राज-पताका के अन्तर्गत राजपूतों की शक्ति का बड़ा विस्तार हुआ और वहाँ का राजा राणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) मध्य भारत की नीति में सफल होकर दिल्ली राज्य पर अपनी आँख लगाए हुए था।** उस समय उसकी शक्ति का विस्तार बहुत हो चुका था और वह मुसलमानी राज्य का भारत से अन्त करने के लिए उपयुक्त अवसर की खोज में था। बाबर के दिल्ली पर अधिकार करने से वह अपने इस कार्य में सफल नहीं हुआ। **किन्तु जब तक बाबर राजपूतों को खनवा के युद्ध में** (सन् १५२७) **परास्त करने में सफल नहीं हुआ उस समय तक वह भारत के अपने साम्राज्य को सुनिश्चित नहीं समझता था।** अतः दोनों में भीषण संघर्ष होना अनिवार्य हो गया। इस युद्ध में पराजित होने के कारण राजपूतों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु उनकी शक्ति का पूर्णतया दमन किया जाना असम्भव था। हुमायूँ अपने साम्राज्य की पूर्वी तथा गुजरात की समस्याओं में इतना अधिक तल्लीन था कि वह राजपूतों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। **जब गुजरात के शासक बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर भीषण आक्रमण किया तो रानी कर्णवती ने हुमायूँ से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु वह समय पर राजपूतों की सहायता नहीं कर सका।** सहायता देर से आयी जब चित्तौड़ का दुर्ग बहादुरशाह के हाथों विध्वंस हो चुका था। यदि इस समय हुमायूँ द्वारा समय पर सहायता प्राप्त हो गई होती तो हुमायूँ और राजपूतों के सम्बन्ध बहुत अच्छे व घनिष्ट हो जाते

---

* "No community that ever existed can boast of a more romantic history, of more heroic exploits of a prouder sense of honour and respect than the Rajputs of medieval India. At one sight through Rajputs tradition, the mind staggers at the heights of valour, devotion and altruism to which humanity can soar."

—**Dr. Beni Prasad.**

और फिर राजपूत हुमायूँ के लिए सब कुछ करने को उद्यत रहते और सम्भवत: हुमायूँ को भारत से पलायन करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। शेरशाह भी अपने सैनिक बल के आधार पर राजपूतों का दमन नहीं कर सका। उसको छल-प्रपंच की ही शरण लेनी पड़ी। राजपूतों ने उसका भी बड़ी वीरता तथा साहस से सामना किया।

(1989, 1996)

अकबर की राजपूत-सम्बन्धी नीति

अकबर एक दुरदर्शी शासक था। उसने प्रारम्भ में ही समझ लिया था कि भारत में उस समय तक मुगल-साम्राज्य दृढ़ता तथा स्थायीपन प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वह हिन्दुओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं करता है। हिन्दुओं में से भी विशेषत: राजपूत जाति का सहयोग प्राप्त करना अनिवार्य था, क्योंकि यह जाति अपनी सामरिक शक्ति एवं बल के आधार पर मुगलों से लोहा लेने को सदा तत्पर रहती थी। अत: अकबर ने अपने मन में धारणा की कि राजपूतों को अपनी ओर मिलाया जाए और हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार किया जाय, जिससे वे राज्य के विरुद्ध होने वाले विद्रोह में उसका साथ दें और विद्रोहियों से किसी प्रकार की सहानुभूति न रक्खें।* इसके निम्न कारण थे—

कारण

(१) पश्चिम में सैनिकों का मिलना असम्भव। उसकी पूर्ति के लिए राजपूतों का प्रयोग।
(२) अकबर का स्वभाव।
(३) राजपूतों के गुण।
(४) विदेशी अमीरों का भय।
(५) उजबेग तथा अफगानों के दमन में राजपूतों का प्रयोग।
(६) राजस्थान का भौगोलिक महत्व।

(१) पश्चिम से सैनिकों का मिलाना असम्भव, उनकी पूर्ति के लिए राजपूतों का प्रयोग—दिल्ली के सुल्तानों की सेना में अधिकांश सैनिकों की भर्ती उत्तर-पश्चिम के सीमान्त प्रदेशों तथा अफगानिस्तान से की जाती थी, क्योंकि यहाँ के निवासी स्वभाव से सामरिक थे। उसको इस ओर से सहायता की कोई आशा नहीं रही। अत: उसके अभाव की पूर्ति करने के लिए एक ऐसी जाति की सहायता की आवश्यकता थी जिसमें सामरिक गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हों और यह गुण राजपूतों में पर्याप्त मात्रा में थे।

(२) अकबर का स्वभाव—अकबर का स्वभाव बड़ा उदार तथा सहनशील था। उसमें धार्मिक अन्ध-विश्वास तथा धर्मान्धता का सर्वथा अभाव था। उसने अपने व्यापक दृष्टिकोण के कारण राजपूतों के साथ उदारता का व्यवहार किया। वह उनके

---

* "There could be no Indian Empire without the Rajputs, social or political synthesis without their intelligent and active co-operation. The new body politic must consist of the Hindus and Muslims and must contibute to the welfare of both. The Emprieror's lofty mind rose above the petty prejudices of his age, and after much anxious thought he decided to associate the Rajputs with himself on honourable terms in his ambitious enterprises."

हृदय पर विजय प्राप्त करना चाहता था न कि केवल युद्ध द्वारा उनसे राज्यों को हस्तगत करना चाहता था ।

(३) **राजपूतों के गुण**—राजपूतों में अनेक गुण विद्यमान थे जिनसे अकबर न केवल परिचित ही था, वरन् पर्याप्त मात्रा में प्रभावित भी था । राजपूत अपने वचन के पक्के होते थे । विश्वासघात तो उनमें लेश-मात्र भी न था । वे वीर थे और युद्ध में उनको आनन्द प्राप्त होता था। ऐसी वीर जाति की सहायता प्राप्त कर साम्राज्य का विस्तार किया जा सकता है तथा उसको दृढ़ बनाया जा सकता है । उनको अपनी ओर करने से हिन्दुओं का समर्थन भी प्राप्त हो जायगा ।

(४) **विदेशी अमीरों का भय**—इन दिनों दरबार में विदेशी अमीरों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था । सम्राट को सदा इनका भय बना रहता था। उनके प्रभाव को कम करने के अभिप्राय से उसने एक शक्तिशाली देशीय दल की स्थापना करने का विचार किया जो राजपूतों द्वारा ही सम्भव था । इसी कारण उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया और एक ऐसे दल का निर्माण किया जिसकी उसमें अपार भक्ति तथा निष्ठा थी ।

(५) **उजबेगों तथा अफगानों के दमन में राजपूतों का प्रयोग**—उजबेगों तथा अफगानों का दमन करना साम्राज्य के हित के लिए अनिवार्य था । इनका सामना करना सरल कार्य नहीं था । राजपूत ही ऐसे वीर थे जो दूरस्थ प्रदेशों में कठिनाइयों का सामना करते हुए इनको परास्त करने में सफल हो सकते थे । अतः वह राजपूतों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ ।

(६) **राजस्थान का भौगोलिक महत्व**—राजस्थान का भौगोलिक महत्व बहुत था । दिल्ली और आगरा राजस्थान के समीप हैं और उनसे प्रत्येक समय इन पर आक्रमण करने की सम्भावना हो सकती है । इसलिए या तो राजपूतों की शक्ति का उन्मूलन कर दिया जाए अथवा उनको अपनी ओर मिला लिया जाए । इसके अतिरिक्त राजस्थान को यदि उसी परिस्थिति में छोड़ दिया जाए तो भारत के अन्य भागों की विजय सम्भव नहीं थी । अकबर सम्भवतः जीवन भर राजस्थान में ही उलझा रहता, यदि वह उनकी ओर मैत्री का हाथ न बढ़ाता ।

उपाय—इन्हीं कारणों से प्रभावित होकर अकबर ने उनके साथ आदरपूर्ण व्यवहार किया और उनको उच्च पदों पर आसीन कर, उनसे वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना कर उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया । अकबर के सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर राजपूतों ने अपने रक्त से मुगल-साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया और वे उसके साम्राज्य के स्तम्भ बन गए । जब औरंगजेब ने अकबर की नीति का परित्याग कर धर्मान्धता की नीति का अनुकरण कर राजपूतों की राजनीति में व्यर्थ का हस्तक्षेप किया तो उसका परिणाम मुगल-साम्राज्य के प्रति हितकर सिद्ध न हुआ और साम्राज्य अधोगति को प्राप्त होने लगा और शीघ्र ही उसका अन्त हो गया ।

अकबर ने निम्न उपायों का अनुकरण राजपूतों के प्रति किया—

(१) **वैवाहिक सम्बन्ध**—राजनीति में वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना का

महत्व बहुत अधिक क्योंकि है, इनकी स्थापना के फलस्वरूप दो राजवंशों में निकटतम सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है, किन्तु राजपूतों की कन्याएँ प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं था, क्योंकि उनमें जातीय गौरव तथा प्रतिष्ठा की मात्रा बहुत अधिक थी। अकबर जैसे दूरदर्शी तथा कूटनीतिज्ञ का ही कार्य था कि राजपूत राजाओं ने अपनी कन्याओं का विवाह मुगलों से किया।

उपाय

(१) **वैवाहिक सम्बन्ध।**
(२) **उच्च पदों पर राजपूतों को आसीन करना।**
(३) **आक्रमणात्मक नीति।**
(४) **अनाक्रमणात्मक नीति, किन्तु प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार।**

(i) **आमेर से सम्बन्ध**—सन् १५६२ में अकबर ने अजमेर की यात्रा की। मार्ग में आमेर के कछवाह राजा बिहारीमल ने उससे भेंट की। अकबर ने उसके साथ बड़ा शिष्टतापूर्ण व्यवहार किया जिससे राजा बिहारीमल बहुत प्रसन्न तथा प्रभावित हुए। उसने आत्मसमर्पण किया और दोनों की मित्रता वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा और भी दृढ़ हो गई। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर से सांभर नामक स्थान पर किया। इसी पुत्री ने जहाँगीर को जन्म दिया। राजा बिहारीमल को ५,००० का मनसब प्रदान किया गया। उसके पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह को भी सेना में स्थान मिला। इसका परिणाम यह हुआ कि आमेर के कछवाह राजपूतों ने साम्राज्य की बड़ी प्रशंसनीय सेवा की। **डाक्टर बेणी प्रसाद** के अनुसार "यह वैवाहिक-सन्धि भारतीय राजनीति में एक नवीन युग का प्रतीक है। इसके द्वारा देश को प्रसिद्ध सम्राटों की वंश परम्परा प्रदान हुई। इसने चार पीढियों तक मुगल सम्राटों को प्रमुख सेनापतियों तथा कूटनीतिज्ञों की सेवायें प्रदान कीं।"

(ii) **जोधपुर और जेसलमेर से सम्बन्ध**—इस विवाह के अतिरिक्त अकबर ने जोधपुर और जैसलमेर की राजकुमारियों से विवाह किया। बाद में उसने अपने पुत्र राजकुमार सलीस का विवाह राजा बिहारीमल की पोती और राजा भगवानदास की पुत्री से सम्पन्न किया जिसका पुत्र राजकुमार खुसरो था।

(२) **उच्च पदों पर राजपूतों को आसीन करना**—अब तक के मुसलमान शासकों ने राजपूतों को ही क्या और हिन्दुओं को भी उच्च पदों पर आसीन नहीं किया था। अकबर ही प्रथम सम्राट था जिसने इस बात का अनुभव किया कि हिन्दुओं को उच्च पदों पर आसीन किया जाना साम्राज्य के लिए हितकर होगा। उसने आमेर के राजा तथा उसके पुत्रों को सम्माननीय पद प्रदान किए। इसके अतिरिक्त राजा टोडरमल तथा राजा बीरबल भी उच्च पदों पर नियुक्त किए गए, जिन्होंने अपने कौशल से साम्राज्य की बड़ी सेवा की। टोडरमल का नाम उसके भूमि-सम्बन्धी सुधार के कारण अमर है। राजा बीरबल एक कुशल सेनापति था। साधारणतः अकबर की नीति राजपूतों के साथ उदार रही। उसने हाड़ा जाति के सुर्जन को गढ़ कण्टक का दुर्गपति बनाया। अकबर ने अन्य राजपूत राजाओं से सन्धि की जिन्होंने

उसकी अधीनता स्वीकार की और उसकी साम्राज्यवादी नीति में सहयोग प्रदान किया।

(३) **आक्रमणात्मक नीति**—अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसने उन राजपूत राजाओं के साथ आक्रमणात्मक नीति का प्रयोग किया जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। चित्तौड़ के राजाओं ने उसकी अधीनता को नहीं अपनाया। उसने उनके विरुद्ध युद्ध किया। राणा उदयसिंह के समय में उसने चित्तौड़ पर अधिकार किया। राणा प्रताप से उसका संघर्ष उसके जीवन भर चलता रहा, किन्तु उन्होंने कभी भी उसकी अधीनता को अङ्गीकार नहीं किया और जीवन भर उससे संघर्ष करते रहे।

(४) **अनाक्रमणात्मक नीति, किन्तु प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार**—अकबर की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर कुछ राजाओं ने तो अपने आप ही उससे सन्धि कर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। चित्तौड़ की पराजय के उपरान्त रणथम्भौर तथा कालिंजर स्वयं उसके हाथों में आ गए। बीकानेर, जैसलमेर तथा जोधपुर के राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार राजस्थान का अधिकांश प्रदेश उसके अधिकार में आ गया और वहाँ उसके प्रभाव-क्षेत्र का पर्याप्त विस्तार हुआ। उसके पूर्व किसी अन्य मुसलमान शासक का प्रभाव राजस्थान तथा राजपूतों पर स्थापित नहीं हो पाया था।

अकबर की राजपूत नीति पर एक विहंगम दृष्टि—अकबर की राजपूत नीति का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उसकी राजपूत नीति उसकी अविचारणीय भावना का परिणाम नहीं था और न वह नीति राजपूतों की वीरता, साहस आदि गुणों द्वारा स्थापित की गई, **वरन् वह अकबर की एक निश्चित नीति का परिणाम था जिसके कारण वह राजपूतों को अपना मित्र बनाना चाहता था जिससे कि वह उनकी सेवाओं को मुगल-साम्राज्य को दृढ़ करने में उपयोग कर सके।** इसी कारण उसने किसी भी प्राचीन राजपूत राज्य को नष्ट नहीं किया, वरन् उसने जयपुर और बीकानेर राज्यों को शक्तिशाली बनाया जिससे राजपूताने में सन्तुलन की स्थापना हो जाए। उसको अपनी राजपूत नीति में पूर्णतया सफलता प्राप्त हुई। **उसने राजपूतों व मुसलमानों के साथ समान व्यवहार किया जिसके कारण उसको उनका सहयोग प्राप्त हुआ और प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय तथा उन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए।** राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में बड़ी प्रगति हुई।[1] जब तक मुगल शासकों ने अकबर द्वारा प्रतिपादित नीति का अनुकरण किया उस समय तक मुगल-साम्राज्य दिन दूनी तथा रात चौगुनी उन्नति करता रहा, किन्तु जब इस नीति का परित्याग कर दिया गया तो उसका पतन होना आरम्भ हो गया।[2] अकबर का

---

[1] "The Mughal-Rajput co-operation, which continued in subsequent reigns affected not only government and the administration and army but also art, culture and ways of living."

[2] "It symbolised the dawn of a new era in Indian politics, it gave the country a line of remarkable sovereigns, it secured to four generations of

राजपूतों के समीप आने के कारण उसका दृष्टिकोण व्यापक हुआ और उस समय धार्मिक समन्वय स्थापित करने के लिए उसने घोर प्रयत्न किया और इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि वह एक राष्ट्रीय शासक था और उसकी हार्दिक इच्छा भारत को एक राष्ट्र में परिणत करने की थी। कुछ विद्वानों ने उसकी इस नीति को कूटनीतिज्ञता, स्वार्थपरता, अनैतिकता और कुछ अंशों में शक्ति का दुरुपयोग कहा है, किन्तु यह केवल उन्हीं व्यक्तियों की धारणा कही जा सकती है जिनमें साम्प्रदायिकता की भावना का बाहुल्य है। वास्तव में अकबर ने राजपूतों के गुणों का मान किया और उनकी धार्मिक भावना को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचाई। उसने उनको उच्च पदों पर आसीन किया और उनके साथ सदा सद्व्यवहार किया।

91/80

जहाँगीर की राजपूत-नीति

जहाँगीर ने अपने योग्य तथा कर्मठ पिता अकबर की नीति को अपनाया। इसका उन राजपूतों के साथ सद्व्यवहार था जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उन राजपूतों के साथ जिन्होंने अपनी स्वतन्त्रता को प्रिय समझा और मुगलों की अधीनता में रहना उचित नहीं समझा उसने उनके प्रति अकबर के समान आक्रमणात्मक नीति का अनुकरण किया। इसी कारण उसने राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही सन् १६०६ ई० में मेवाड़ पर एक विशाल तथा सुसज्जित सेना द्वारा आक्रमण किया। इस बार मुगलों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६०८ ई० में राणा के विरुद्ध दूसरा आक्रमण किया गया। पर्याप्त समय तक मुगलों ने राजपूतों को परास्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु अन्त में सन् १६१५ ई० में राजकुमार खुर्रम के नेतृत्व में मुगल सफल हुए और राणा और मुगलों में सन्धि हुई। डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में यह सन्धि मेवाड़ और दिल्ली के बीच बड़ी महत्वपूर्ण है। सिसोदिया वंश के किसी भी सम्राट ने अभी तक मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इस सन्धि से एक बहुत बड़े तथा लम्बे युद्ध की समाप्ति हुई जो दोनों के बीच चल रहा था। सन्धि की शर्तें विशेष नम्र थीं जिसके कारण पर्याप्त समय तक दोनों राज्यों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।"*

शाहजहाँ की राजपूत नीति

अकबर और जहाँगीर के शासन-काल में धर्म को राजनीति से सदा अलग रखा गया, किन्तु शाहजहाँ के समय में धर्म राजनीति का अंग बनने लगा था, किन्तु इसके कारण उसने राजपूतों के साथ किसी नई नीति का प्रयोग नहीं किया। इस

Mughal Emperors of some of the services of the greatest captains and diplomats that medieval India produced."

— Dr. Beni Prasad.

* 'The treaty is a landmark in the history of the relations between Mewar and Delhi. No ruler of the Sisodia dynasty even before openly professed allegiance to any Mughal Emperor. The treaty of 1615 for the first time brought about the end of a long drawn struggle between the two states—deserved credit for dictating extremely lenient terms—which proved useful to both parties."

—Dr. A. L. Srivastava, pp. 261—262

समय तक राजपूत पूर्णतया मुगलों के अधीन हो चुके थे। उनके शासन-काल में राजपूतों का वह महत्व नहीं रह गया था जो उसके पूर्वजों के शासन-काल में था। वे अन्य अमीरों की अपेक्षा हेय समझे जाते थे। एक बार सन् १६५४ ई० में मेवाड़ के राणा ने चितौड़ के दुर्ग की मरम्मत करवाना आरम्भ किया। इसका समाचार जब शाहजहाँ को प्राप्त हुआ तो उसने सादुल्ला खाँ के नेतृत्व में एक सेना भेजी, तुरन्त ही राणा ने क्षमा याचना की। दरबार में अन्य अमीरों का महत्व बढ़ने लगा था, किन्तु शासन के अन्तिम दिनों में राजपूतों के प्रभाव का विस्तार राजकुमार दारा के कारण होना आरम्भ हो गया था। उस समय भी जोधपुर के राणा जसवन्तसिंह तथा जयपुर के राणा जयसिंह का पर्याप्त मान तथा प्रभाव था।

८८, ८५ औरंगजेब की राजपूत नीति (1983, 85)

उत्तराधिकारी के युद्ध में राजपूतों ने राजकुमार दारा का साथ दिया था और औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध किया था। औरंगजेब की स्थिति जब तक सुदृढ़ न हो सकी उसने राजा जयसिंह तथा जसवन्तसिंह के साथ अच्छा व्यवहार किया और उनको उच्च पदों पर आसीन रखा, किन्तु वह हृदय से उनको घृणा की दृष्टि से देखता था और किसी प्रकार उनकी उन्नति सहन नहीं कर सकता था। उसने धर्मान्ध नीति का अनुकरण कर अकबर और जहाँगीर की उदार तथा सहिष्णुता की नीति का परित्याग किया। उसकी इस नीति के कारण हिन्दुओं में असन्तोष की भावना जगृत हो गई। उसने राजा जयसिंह को जो उसकी इस नीति का कट्टर विरोधी था, दक्षिण में विष दिलवा कर मरवा डाला। उसकी मृत्यु से उसका एक बहुत बड़ा विरोधी इस संसार से चला गया। ऐसा भी अनुमान किया जाता है कि औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को भी विष दिलवाकर उसका वध करवाया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसने जोधपुर पर अधिकार किया और उसकी रानियों तथा पुत्र को बन्दी करने का प्रयास किया, जिसमें उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसकी इस नीति के परिणामस्वरूप जोधपुर के राजपूतों में विद्रोह की भावना प्रज्वलित हो गई और उन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा वीर राठौर सरदार दुर्गादास के नेतृत्व में की। इस युद्ध में मेवाड़ ने जोधपुर का साथ दिया और मुगलों के विरुद्ध युद्र की घोषणा कर दी, जिसका विस्तृत वर्णन गत अध्याय में किया गया है। इस प्रकार औरंगजेब की राजपूत नीति असफल रही और उसकी धर्मान्धता के कारण अकबर के राजपूतों के मिलाने के समस्त प्रयत्नों पर पानी फिर गया तथा राष्ट्रीय भावना को बहुत अधिक ठेस पहुँची। वह समन्वय जो दोनों जातियों में उत्पन्न होना आरम्भ हुआ था, समाप्त होना आरम्भ हो गया। राजपूत मुगलों के शत्रु बन गए। उनके विरुद्ध युद्ध में मुगलों को अपार धन व्यय करना पड़ा। पर्याप्त समय तक औरंगजेब राजस्थान के दमन करने लगा में रहा जिसके कारण साम्राज्य के अन्य भागों में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई। दक्षिण में शिवाजी को अपनी शक्ति का विस्तार तथा संगठन करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। वास्तव में औरंगजेब की इस नीति के कारण मुगल-साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) अकबर की राजपूत नीति पर प्रकाश डालिए तथा परिणामों की विवेचना कीजिए।

(२) राजपूत रियासतों के प्रति अकबर बादशाह की नीति की आलोचात्मक व्याख्या कीजिए।

(३) औरंगजेब की राजपूतों के प्रति क्या नीति थी ?

(४) अकबर ने हिन्दू-मुसलमानों में मेल कराने के लिए क्या प्रयत्न किया और वह कहाँ तक सफल रहा ?

(५) अकबर की राजपूतों के प्रति क्या नीति थी ? उसके और राजपूतों के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख कीजिए ?

(६) औरंगजेब और राजपूतों के सम्बन्ध का उल्लेख कीजिए। उनके बीच संघर्ष के कारणों का वर्णन करो।

(७) मुगल शासकों तथा राजपूतों के परस्पर सम्बन्धों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

राजस्थान—

(१) अकबर की राजपूत नीति का औरंगजेब की राजपूत नीति से तुलना करो।

८

सिक्

हुई जब दिल्
जिनका जन्म
उनके नाम प
से पैंतीस मी
की जिसमें
स्थान नहीं थ
के उपरान्त
द्वारा गुरु ना
हुई। उन्हों
उपदेशों का
निर्वाचित हु
के जाटों ने
हाथ विशेष
निर्वाचित हु
से बड़ी घनि
उन्होंने एक
उसके मध्य
उनके समय
बन गया।
के गुरु निव
गुरुओं के
का संग्रह
नाम से प्र
धार्मिक पु
आदर औ
इनके सम
उन्नति की
व्यक्तित्व

८

मुगल और सिक्ख

सिक्ख जाति का प्रारम्भिक इतिहास—सिक्ख जाति की उत्पत्ति उस समय हुई जब दिल्ली सल्तनत का पतन हो रहा था। इस धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक थे, जिनका जन्म सन् १४६९ ई० में तलबन्डी नामक स्थान में हुआ था। इस समय यह उनके नाम पर ननकाना के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान पाकिस्तान में स्थित लाहौर से पैंतीस मील दक्षिण-पश्चिम जिले में स्थित है। **उन्होंने एक ऐसे धर्म की स्थापना की जिसमें जाति-पाँति, धार्मिक आडम्बरों तथा बहुदेववाद आदि के लिए कोई स्थान नहीं था।** उनके शिष्यों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती गई। गुरु नानक की मृत्यु के उपरान्त **गुरु अंगद** सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। उन्होंने अकथनीय परिश्रम द्वारा गुरु नानक के सिद्धान्तों का प्रचार किया, जिसमें उनको विशेष सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने गुरुमुख-लिपी का प्रवचन किया और उसी लिपी में गुरु नानक के उपदेशों का संकलन किया। उनकी मृत्यु के उपरान्त गुरु **अमरदास** सिक्खों के गुरु **निर्वाचित हुए**। इनके समय में उनके शिष्यों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई और पंजाब के जाटों ने अपने आपको इस धर्म में दीक्षित किया। इस धर्म के उत्थान में उनका हाथ विशेष महत्वपूर्ण रहा। गुरु अमरदास के उपरान्त उनके दामाद सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। उनकी मुगल-सम्राट अकबर से बड़ी घनिष्ठता थी। अमृतसर के समीप **उन्होंने एक विशाल तालाब बनवाया और उसके मध्य स्वर्ण मन्दिर का निर्माण कराया** उनके समय में अमृतसर सिक्खों का केन्द्र बन गया। इसके उपरान्त **'गुरु अर्जुन'** सिक्खों के गुरु निर्वाचित हुए। इनके समय में पूर्व गुरुओं के उपदेशों तथा भक्तों की वाणियों का संग्रह किया गया, जो **'ग्रन्थ साहब'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सिक्खों की पवित्र धार्मिक पुस्तक है, जिसको समस्त सिक्ख आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इनके समय में सिक्ख सम्प्रदाय ने विशेष उन्नति की और उनके अनुयायों की संख्या में विशेष वृद्धि होनी आरम्भ हुई। उनके व्यक्तित्व तथा चरित्र का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। **सन् १६०६ ई० में राजकुमार**

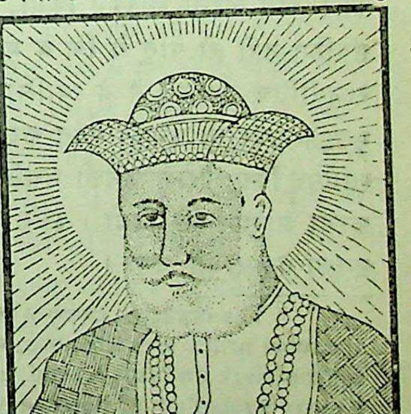

गुरु नानक

खुसरो ने अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया, जिसमें वह परास्त हु उसने गुरु अर्जुन ग पास शरण ली। वे राजकुमार की दीनावस्था से प्रभावित और उन्होंने राजकुमार की सेना को लंगर का भोजन दिया। गुरु के लंगर भोजन प्राप्ति का प्राणि-मात्र को अधिकार है, किन्तु गुरु के शत्रुओं ने जहाँगीर शिकायत की कि गुरु अर्जुन ने विद्रोही राजकुमार को शरण दी है और विद्रोह में उसको प्रोत्साहन प्रदान किया है। उनके शत्रुओं का कुचक्र चल गया। जहाँ ने उन पर ढाई लाख रुपया जुर्माना किया। जब उन्होंने जुर्माने की रकम अदा की तो उनको बन्दी बना लिया गया और उनका वध कर डाला।* जहाँगीर का अन्याय था। उसने बिना विचार किए ही इतना अधिक दण्ड गुरु अर्जुन को दि वास्तव में गुरु अर्जुन का कोई हाथ खुसरो के विद्रोह में नहीं था। वास्तव जहाँगीर खुसरो के विद्रोह का समाचार सुनकर इतना व्याकुल हो गया कि उ ज्ञान-शक्ति का लोप हो गया। उसने उन समस्त व्यक्तियों को दण्ड दिया जि राजकुमार की किसी भी प्रकार से सहायता की थी।

गुरु हरिगोविन्द—जहाँगीर का गुरु अर्जुन का वध कराना सिक्खों इतिहास में एक विशेष घटना बन गई। **इसी समय से सिक्खों का मुगलों से** **आरम्भ हो जाता है और सिक्ख एक सैनिक जाति के रूप में परिणित हो** जाते गुरु अर्जुन के पश्चात् उनके पुत्र गुरु हरिगोविन्द सिक्खों के गुरु हुए। उन्होंने मु का विरोध करना आरम्भ किया, किन्तु अभी तक सिक्ख इतने शक्तिशाली संगठित नहीं हो पाए थे कि वे मुगलों का सामना करने में सफलता प्राप्त करते। राजनीतिक कारणों से वे ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी बना कर रखे गए। जहाँगीर मृत्यु के उपरान्त उनको मुक्त कर दिया गया और उन्होंने शाहजहाँ से मैत्री-स स्थापित किए, किन्तु उनकी उससे भी अनबन हो गई और उन्होंने मुगलों का वि करना आरम्भ कर दिया। इससे उनको कुछ सफलता प्राप्त हुई। सन् १६५४ ई उनका देहान्त हो गया।

---

* The occasion came when during flisight through the Punjab, Khu the rebel prince met the guru, who is alleged to have congratulated him, saffron mark on his fcrehead, gave him his blessings and some financial he Khusro's rebelling had arosed violent irascibility in Jahangir and made temper brutal. Arjun's plain explanation that he had no other motive showing kindness an- gentleness to the grandson of his late Emperor, in forlorn and miserable condition, did not carry any weight with Jahangir, imposed a fine of two lakhs and a half on the guru. The guru refused on ground that he had no money of his own, for all his money was for the p the friendless and the stranger. At this the Emperor ordered that the guru imprisoned, his residence and children handed over to Farid Pubbrie, property confiscated, and he himself be put to death. —Dr. R. P. Tripa

गुरु हरिराय तथा हरिकिशन—गुरु हरिगोविन्द की मृत्यु पर हरिराय सिक्खों के गुरु बने। वे शान्ति प्रिय व्यक्ति थे, जिसके कारण उनसे दिल्ली के सम्राटों का कोई विशेष संघर्ष नहीं हुआ। उनके पश्चात् हरिकिशन सिक्खों के गुरु के पद पर आसीन हुए। वे अधिक समय तक सिक्खों का नेतृत्व नहीं कर सके, क्योंकि चेचक के निकलने के कारण उनका गुरु की गद्दी प्राप्त करने के तीन वर्ष उपरान्त देहान्त हो गया।

गुरु तेगबहादुर— गुरु हरिकिशन की मृत्यु के उपरान्त गद्दी के लिए पारस्परिक संघर्ष हुआ, क्योंकि उन्होंने किसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। अन्त में सिक्खों ने तेगबहादुर को अपना गुरु मान लिया। **उन्होंने सिक्ख जाति का सुदृढ़ संगठन करना आरम्भ किया और सच्चे बादशाह की उपाधि से अपने आपको सुशोभित किया।** औरंगजेब भला कब इस प्रकार के व्यवहार को सहन कर सकता था। उसने तुरन्त ही गुरु तेगबहादुर को बन्दी करने का आदेश जारी किया, जिसके परिणामस्वरुप वे बन्दी बना लिए गए और उसने उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। **इस पर औरंगजेब ने सन् १६७५ ई० में उनका वध करवाया। औरंगजेब के इस कार्य से सिक्खों को हार्दिक कष्ट तथा दुःख हुआ और वे मुगलों के विरोधी बन गए।**

गुरु गोविन्दसिंह—गुरु तेगबहादुर ने अपने पुत्र गोविन्दसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। इस समय उनकी अवस्था ९-१० वर्ष की थी। **उन्होंने गुरु की गद्दी स्वीकार करते समय निश्चय किया कि वे मुगलों से अपने पिता के वध का बदला अवश्य लेंगे।** उन्होंने सिक्ख जाति को सैनिक स्वरूप प्रदान किया और प्रत्येक सैनिक के लिए कुछ आदेशों का निर्माण किया जिनका पालन करना प्रत्येक सिक्ख के लिए अनिवार्य था। वे आदेश निम्न प्रकार के थे—

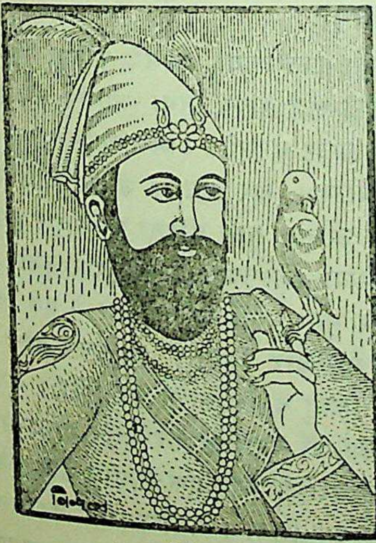

गुरु गोविन्दसिंह

(१) केश, कंघा, कच्छा, कृपाण और कड़ा प्रत्येक सिक्ख को धारण करना होगा।

(२) गुरु का आदेश मानना और उसके लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए उद्यत रहना।

(३) समस्त सिक्ख जाति में समानता का व्यवहार तथा पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध आदि का होना।

(४) सैनिक-शिक्षा का अनिवार्य रूप से प्राप्त करना।

(५) तम्बाकू का सेवन न करना।
(६) केवल झटके का मांस खाना।
(७) नाम के अन्त में, 'सिंह' का प्रयोग करना।

इस प्रकार इन नियमों तथा आदेशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी जाति की रक्षा मुगलों की धर्मान्ध नीति से करने लिए समस्त सिक्ख जाति को सैनिक जाति में परिणित करने का प्रयत्न किया। वास्तव में उस समय इसकी आवश्यकता थी, अन्यथा समस्त पंजाब में हिन्दुत्व के स्थान पर इस्लाम धर्म की पताका फैल जाती। मुगलों की सैनिक-शक्ति का सामना करने के लिए ऐसा करना नितान्त आवश्यक था। उनको बाध्य होकर ऐसा करना पड़ा, अन्यथा सिक्खों का नाम-निशान ही समाप्त हो जाता। इसके उपरान्त उन्होंने मुगलों को तंग करना आरम्भ किया। उनका कई बार मुगलों से संघर्ष हुआ। एक बार मुगलों के हाथ में उनकी स्त्री तथा दो बच्चे आ गए जिनके साथ मुगलों ने बड़ा निर्मम व्यवहार किया। ऐसा कहा जाता है कि जब उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार करने से इंकार कर दिया तो उनको जिन्दा ही दीवार में चिनवा दिया गया। बाद में मुगलों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार किया, किन्तु सन् १७०८ ई० में जब वे दक्षिण गए तो किस पठान ने उनकी हत्या कर दी।

बन्दा वैरागी

गुरु गोविन्दसिंह ने गुरु की परम्परा का अन्त किया, जिसके कारण सिक्खों में अराजकता उत्पन्न हो गई और उन्होंने छोटे-छोटे राज्य तथा जागीरें पंजाब में स्थापित करनी आरम्भ कर दीं। इसी समय बन्दा वैरागी नामक व्यक्ति स्थल पर आया और उनसे सिक्खों का नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया। **उसका कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था और उसके आने से सिक्खों में उत्साह तथा वीरता का संचार हुआ।** सिक्खों ने तुरन्त ही सरहिन्द पर आक्रमण किया और वहाँ के फौजदार वजीर खां का वध कर उनको पेड़ पर लटका दिया और मुसलमानों का नृशंसता से वध किया गया। उसने आस-पास के सभी प्रदेशों पर अधिकार किया। वह उत्तर प्रदेश को भी अपने अधिकार में करना चाहता था, किन्तु वह ऐसा न कर सका। मुगल-सम्राट बहादुरशाह जब अपने भाई कामबख्श को पराजित कर उत्तर भारत आया तो सन् १७१० ई० में उसने सिक्खों का दमन करने के लिए एक विशाल सेना पंजाब भेजी। मुगलों ने समस्त पंजाब पर अधिकार कर लिया। पर्याप्त समय तक बन्दा-वैरागी ने उनका सामना किया, किन्तु अन्त में सन् १७१५ ई० में वह आत्म-समर्पण करने पर बाध्य हुआ। मुगलों ने उसके तथा उसके साथियों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया। **सन् १७१६ ई० में उसका वध कर दिया गया।**

बन्दा वैरागी की मृत्यु के कारण सिक्खों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा

किन्तु सिक्खों ने पुनः अपना संगठन करना आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् कपूरसिंह ने सिक्खों का नेतृत्व किया, किन्तु उसको कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। विदेशी आक्रमणों के कारण मुगलों की शक्ति का ह्रास होना आरम्भ हुआ और सिक्खों को अपनी शक्ति को उन्नत करने का अवसर प्राप्त हुआ। अहमदशाह अब्दाली द्वारा सिक्खों को बड़ी हानि उठानी पड़ी, किन्तु उसके भारत से पलायन करने के उपरान्त सिक्खों ने पुनः पंजाब पर आक्रमण किया। उनके सरदारों ने छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण किया और वे 'मिसलों' में विभाजित हो गए जिनका संगठन आगे चलकर राणा रणजीतसिंह ने किया।

सिक्खों के गुरुओं की अवली

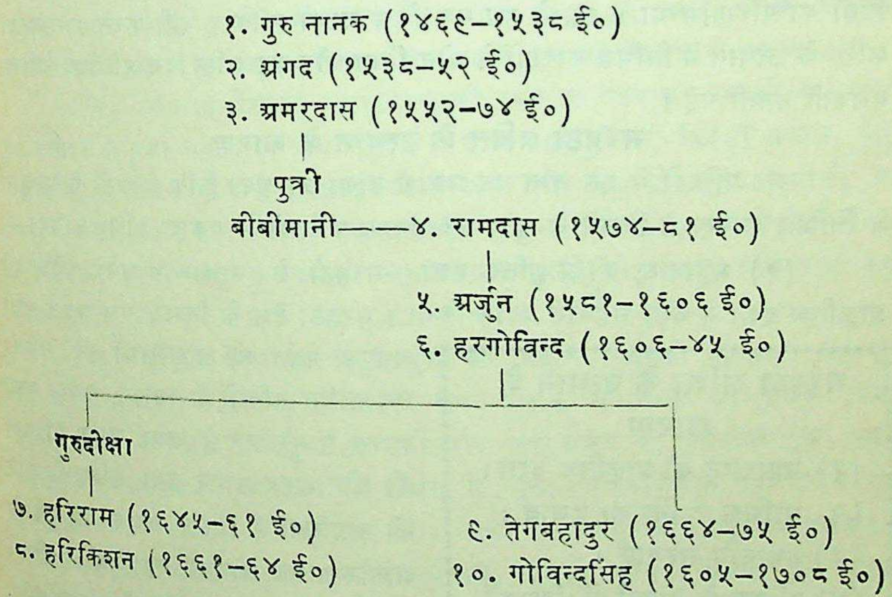
१. गुरु नानक (१४६९–१५३८ ई०)
२. अंगद (१५३८–५२ ई०)
३. अमरदास (१५५२–७४ ई०)
पुत्री
बीबीमानी
४. रामदास (१५७४–८१ ई०)
५. अर्जुन (१५८१–१६०६ ई०)
६. हरगोविन्द (१६०६–४५ ई०)
गुरुदीक्षा
७. हरिराम (१६४५–६१ ई०)
८. हरिकिशन (१६६१–६४ ई०)
९. तेगबहादुर (१६६४–७५ ई०)
१०. गोविन्दसिंह (१६७५–१७०८ ई०)

महत्वपूर्ण प्रश्न

(१) गुरु गोविन्दसिंह पर एक टिप्पणी लिखो।

(२) गुरु गोविन्दसिंह ने किस प्रकार सिक्खों के धार्मिक समुदाय को सैनिक समुदाय में बदल दिया। इस परिवर्तन का क्या परिणाम हुआ?

६

मुगल और मरहठे

मुगल साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु मरहठे थे जिन्होंने दो शताब्दी से अधिक **भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और मुगल-साम्राज्य के पतन में विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया।** मरहठा जाति को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित करने तथा मरहठा-साम्राज्य का निर्माण करने में शिवाजी अवश्य सफल हुए, किन्तु यहाँ यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह भारतीय इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम था। इसको हम एक भिन्न घटना स्वीकार नहीं करते। मरहठा शक्ति के उत्थान में विभिन्न कारणों ने योग दिया और वह शक्ति दिन-प्रतिदिन अधिक बलवती बनती गई।

मरहठा शक्ति के उत्थान के कारण

उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि मरहठों के उत्थान के विभिन्न कारण थे जिनमें से मुख्य पर निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला जायेगा—

(१) महाराष्ट्र की प्राकृतिक दशा— मरहठों के उत्थान में उनके प्रदेश की प्राकृतिक दशा ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। मरहठा देश के विन्ध्याचल पर्वत तथा सतपुड़ा पर्वत की शृङ्खलाओं तथा नर्मदा एवं ताप्ति नदियों से उत्तर, तथा मध्य भारत से सुरक्षित है तथा उसके पश्चिम की ओर अरब सागर तथा पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ हैं। इस प्रकार वह पूर्व के अतिरिक्त सब ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है और कोई एक सेना वर्षभर परिश्रम करने के उपरान्त भी उस प्रदेश पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त मरहठा प्रदेश पहाड़ी प्रदेश है जिसने उनकी बड़ी रक्षा की। मरहठों ने इन पहाड़ियों पर दुर्गों का निर्माण किया, जिन पर अधिकार करना सरल नहीं था। कम वर्षा, उपजाऊ भूमि की अधिकता का अभाव आदि कारणों के द्वारा इस प्रदेश के निवासी बड़े परिश्रमी थे तथा उनमें वीरता और साहस की पर्याप्त मात्रा विद्यमान थी। प्राकृतिक गुणों के कारण वहाँ के निवासियों में विभिन्न गुणों का उदय हुआ।*

मरहठा शक्ति के उत्थान के कारण

(१) महाराष्ट्र की प्राकृतिक दशा।
(२) धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव।
(३) स्थानीय संस्थाएँ।
(४) दक्षिण के राज्यों में हिन्दुओं का महत्व।
(५) रजानीतिक स्थिति।
(६) औरंगजेब की धार्मिक नीति।
(७) एक भाषा।
(८) शिवाजी का व्यक्तित्व।

---

* "Nature compelled them to develop self-reliance, courage, perseverance, a stern simplicity, a rough straight-forwardness, a sense of social equality and consequently bright in the dignity of man as man." —Sir. J. N. Sarkar.

(२) **धार्मिक क्रान्ति का अभाव**—समस्त भारत में पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक क्रान्ति हुई जिससे महाराष्ट्र भी अछूता न रहा, वरन् यह कह सकते हैं कि **महाराष्ट्र की धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव वहाँ के निवासी मरहठों पर तीव्र गति से हुआ।** इस क्रान्ति का श्रेय किसी एक वर्ग को प्राप्त नहीं, वरन् इस आन्दोलन में साधारण जनता ने बड़ा सहयोग दिया।* यह सर्वमान्य है कि राजनीतिक क्रान्ति के पूर्व धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्ति का होना अनिवार्य है; क्योंकि इसके द्वारा समाज तथा धर्म के दोषों तथा उनके बाह्य आडम्बरों का विरोध किया जाता है तथा उनके संगठन में इसका बड़ा महत्व रहता है। **ज्ञानेश्वर, हेमाद और चक्रधर से लेकर एकनाथ, तुकाराम, रामदास तक समस्त सन्तों ने जिस भक्ति सिद्धान्त पर बल दिया तथा जाति-पाँति के भेद-भाव के अन्त का प्रचार किया उसके द्वारा समस्त महाराष्ट्र प्रदेश में एकता की भावना जागृत हुई और उनमें राष्ट्रीय चेतना उदय हुई। कुछ सन्तों ने जातीय रक्षा के पाठ की शिक्षा भी प्रदान की।**

(३) **स्थानीय संस्थाएँ**—महाराष्ट्र की स्थानीय संस्थाओं का भी महाराष्ट्र के उत्थान में बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहा है। ग्राम संस्थाओं पर विदेशी प्रभाव नहीं पड़ पाया। प्रत्येक गाँव में पंचायतों की व्यवस्था थी जो छोटे-छोटे मामलों का निर्णय करती थी। इस प्रकार स्वायत्त शासन की प्रथम इकाई इस प्रदेशों में विद्यमान रही जिसके कारण वहाँ के निवासी स्वतन्त्रता-प्रेमी रहे और उनको स्वतन्त्रता बड़ी प्रिय रही।

(४) **दक्षिण के राज्यों में हिन्दुओं का महत्व**—दिल्ली सल्तनत के कुछ महत्वपूर्ण सुल्तानों ने दक्षिण भारत को अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न किया, किन्तु उनकी सफलता स्थायी न हो सकी और कुछ समय के उपरान्त ही उनकी शासन-व्यवस्था के शिथिल होने पर दक्षिण में पुनः नए राजवंश का उदय हुआ जिन्होंने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार दक्षिणी प्रदेशों पर मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति का उतना अधिक प्रभाव नहीं हो पाया जितना कि उत्तरी भारत के प्रदेशों पर हुआ। **यद्यपि दक्षिण में मुसलमान बहमनी वंश की स्थापना अवश्य हुई, किन्तु उस राज्य पर भी हिन्दुओं का विशेष प्रभाव था।** उनकी सेना में पर्याप्त हिन्दू सम्मिलित थे और उनको अपनी रक्षा के लिए उन पर निर्भर रहना अवश्यम्भावी था। इनकी धार्मिक नीति उदार थी और उनका हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार था। दक्षिण के मुसलमान शासकों के हरम में हिन्दू स्त्रियाँ थीं, जिनका शासकों पर बड़ा प्रभाव था। उन मुसलमानों का भी इन राज्यों में बड़ा प्रभाव था जिन्होंने किसी विशेष कारणवश इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उस समय की राजनीति में मरहठों का विशिष्ट स्थान था और वे उच्च पदों पर आसीन थे।

---

* "This religious revival was the work also of the people, of the masses, and not of the classes. At its head were saints and prophets, poets and philosophers, who sprang chiefly from the lower orders of society · tailors, carpenters, potters, gardeners, and even mahars (Scavengers), more often than Brahamans."

—**Ranade.**

मुरारीराय, मदन पण्डित तथा राजराय परिवार के कई सदस्य गोलकुण्डा राज्य के दीवान के पद पर आसीन रह चुके थे। मरहठे राजनीति तथा कूटनीति में भी दक्ष थे और इसी कारण प्रायः मरहठे पण्डित राजदूतों के पद पर आसीन किए जाते थे।

(५) **राजनीतिक स्थिति**—दक्षिण की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने भी मरहठों के उत्थान में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। अहमदनगर पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। बीजापुर राज्यों पर मुगलों के आक्रमण निरन्तर हो रहे थे और उसकी दशा इन आक्रमणों के कारण बड़ी शोचनीय हो रही थी। बीदर तथा बरार के राज्यों का पहले से ही अन्त हो चुका था। गोलकुण्डा ने अतुल धन देकर कुछ समय तक अपनी रक्षा की, किन्तु औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति के कारण वह भी अपनी अन्तिम साँस लेने लगा था। पुर्तगालियों की दशा शोचनीय थी। उनके पास अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव था। अंग्रेजी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का शैशव काल था और उसकी कोई शक्ति नहीं थी। इस प्रकार यह कहना सत्य है कि मरहठों को उपयुक्त अवसर प्राप्त था और दक्षिण में उनकी शक्ति का उत्थान रोकना असम्भव था।

(६) **औरंगजेब की धार्मिक नीति**—औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण मरहठों को अपना संगठन करने का अवसर प्राप्त हुआ तथा वे अपने प्रदेश की रक्षा के लिए संगठित रूप से खड़े हुए। **औरंगजेब की नीति ने मुसलमानी राज्यों का अन्त कर डाला और दक्षिण में मरहठों का सामना करने के लिए कोई भी शक्ति शेष न रही।**

(७) **एक भाषा**—महाराष्ट्र के लोगों की एक भाषा थी। एक भाषा द्वारा राष्ट्रीयता तथा जातीयता की भावना को बड़ा योग प्राप्त होता है। **मरहठा साहित्य का भी इस समय तक पर्याप्त विकास हो चुका था जिसने मरहठों को संगठित करने में तथा उनको एकता के सूत्र में बाँधने में बड़ा सहयोग प्रदान किया।**

(८) **शिवाजी का व्यक्तित्व**— **शिवाजी का व्यक्तित्व बहुत ऊँचा तथा उज्जवल था जिसने मरहठों पर जादू का प्रभाव डाला और उसके द्वारा मरहठे संगठित हुए और उसके योग्य नेतृत्व में उन्होंने विशेष उन्नति की और वे शक्तिशाली मुगल सम्राट औरंगजेब का सामना करने के लिए उद्यत हो गए।**

भौंसला परिवार का संक्षिप्त परिचय

शाहजी—शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भौंसला था। वे अपने को मेवाड़ के सिसोदिया वंश का मानते थे। इनका जन्म १५ मार्च सन् १५९४ ई० में हुआ था। **सन् १६०५ ई० में इनका विवाह जीजाबाई के साथ सम्पन्न हुआ।** अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त सन् १६२० ई० में शाहजी ने निजामशाही वंश की सेवा करना आरम्भ कर दिया और कुछ ही समय बाद अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण इनके मान तथा प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और **ये मलिक अम्बर के दाहिने हाथ समझे जाने लगे।** कुछ विशेष कारणों से मलिक अम्बर से इनकी अनबनी हो गई और इनको वाध्य होकर **आदिलशाह वंश की सेवा करनी पड़ी,**

किन्तु मलिक अम्बर की मृत्यु के उपरान्त ये पुनः निजामशाही वंश की सेवा में आ गए। जब निजामशाह ने मरहठों के साथ विश्वासघात करना आरम्भ कर दिया तो मरहठों में उसके विरुद्ध असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित हुई और शाहजी ने उसके विरुद्ध मुगलों का समर्थन करना आरम्भ कर दिया, किन्तु यह अवस्था अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी। **महावत खाँ के आक्रमण के समय शाहजी ने फिर निजामशाही वंश की सेवा करना आरम्भ कर दिया और अहमदनगर की रक्षा के लिए उसने गोलकुण्डा और बीजापुर के शासकों का सहयोग प्राप्त किया।** जिस समय शाहजहाँ ने अहमदनगर का अन्त करने के लिए तीन ओर से आक्रमण किया और बीजापुर और गोलकुण्डा को अपनी ओर मिला लिया तो शाहजी को बड़ी भीषण आपत्ति का सामना करना पड़ा। अहमदनगर के पतन के उपरान्त शाहजी ने सन् १६३६ ई० में आदिलशाही वंश की सेवा करना आरम्भ किया। **उन्होंने कर्नाटक की विजय में आदिलशाही वंश को बड़ा सहयोग प्रदान किया।** वे बंगलौर में निवास करने लगे। इधर उनके योग्य तथा कर्मठ पुत्र शिवाजी ने बीजापुर के कुछ दुर्गों को अपने अधिकार में करने का कार्य आरम्भ किया, जिसके कारण बीजापुर का सुल्तान उनको तथा उनके पुत्र को सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगा। **सन् १६४८ में शाहजी** बन्दी बना लिए गए, किन्तु आठ मास के उपरान्त वे बन्दीगृह से मुक्त कर दिए गए। सन् १६५४ में घोड़े से गिरने पर उनकी मृत्यु हुई। उनकी सेवाएँ दक्षिण के लिए बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उनको जीवन भर मुगलों का सामना करना पड़ा। उन्होंने मरहठा संस्कृति के प्रचार में बड़ा सक्रिय भाग लिया। दक्षिण की राजनीति में उनका प्रमुख हाथ था।

शिवाजी

मरहठा जाति के इतिहास तथा मुगल-कालीन युग में शिवाजी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वे एक राष्ट्र-निर्माता तथा स्वराज्य के संस्थापक थे। उन्होंने इन दोनों कार्यों के लिए जीवनपर्यन्त घोर परिश्रम किया और अनेक आपत्तियों तथा विपत्तियों का सामना अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ किया। उनका जीवन साधारणतया तीन भागों में विभक्त किया जाता है—

(क) शिवाजी के जीवन का प्रथम काल (१६२७ से ५९ तक)

शिवाजी का प्राथमिक जीवन निम्न शीर्षकों में विभक्त किया जाता है—

(१) जन्म तथा बाल्यकाल—शिवाजी की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। कुछ विद्वानों ने इनकी **जन्म-तिथि २० अप्रैल १६२७ बतलाई है और कुछ के अनुसार ९ फरवरी १६२० है।** उनका जन्म शिवनेर के पहाड़ी दुर्ग में हुआ। उनके पिता का नाम शाहजी भौंसला था और माता का नाम जीजाबाई था। वह लखोजी माधव राव की पुत्री थी। शाहजी ने एक और विवाह किया और वे अपनी नई पत्नी के साथ अपनी नई जागीर में चले गए। वे अपने पुत्र तथा प्रथम पत्नी जीजाबाई को बाह्मण दादाजी कोंणदेव के संरक्षण में पूना छोड़ गए। इस प्रकार शेरशाह के समान शिवाजी को पर्याप्त समय तक अपने जन्म के उपरान्त

अपने पिता से अनभिज्ञ रहे । इस प्रकार **शिवाजी पर उनकी माता तथा गुरु दादाजी कोंणदेव का बड़ा प्रभाव पड़ा ।** उनकी माता जी ने उनको रामायण तथा महाभारत के नायकों के कार्यों का वर्णन कहानियों के रूप में सुनाया जिनका शिवाजी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी उनके समान ही अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प किया । उनके हृदय में हिन्दू धर्म तथा गो, ब्राह्मण आदि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई । अतः यह माननीय है कि जैसे अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में वैसे ही शिवाजी में विशिष्ट गुणों का समावेश करने का श्रेय उनकी माता जीजाबाई तथा दादा कोंणदेव को प्राप्त है ।

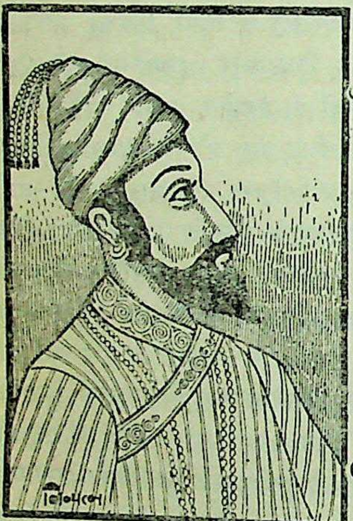

शिवाजी महाराज

(२) **शिक्षा**—शिवाजी को साहित्यिक शिक्षा प्राप्त नहीं थी जिस प्रकार हैदरअली अथवा रणजीतसिंह को प्राप्त नहीं हो पाई थी । उनके गुरु दादाजी कोंणदेव ने उनको घुड़सवारी, शस्त्र-विद्या तथा आखेट करना सिखलाया । इसके अतिरिक्त शासन-प्रबन्ध को सुचारु रूप से चलाने की शिक्षा भी उनको प्राप्त हुई । दादा जी की गणना उच्च कोटि के प्रबन्धकर्त्ताओं में की जाती है । इस प्रकार माता जीजाबाई तथा दादा कोंणदेव के प्रभाव के कारण उनमें वे समस्त गुण विद्यमान हुए कि वे राष्ट का निर्माण करे और स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर हिन्दू धर्म, गौ, तथा ब्राह्मण आदि की रक्षा करने में सफल हो सके ।[1]

शिवाजी के जीवन के तीन काल

(क) १६२७ से १६५६ तक
(ख) १६६० से १६७३ तक
(ग) १६७० से १६८० तक

(३) **धार्मिक गुरुओं का प्रभाव**—शिवाजी पर धार्मिक गुरुओं का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा । **वे सन्त तुकाराम तथा सन्त रामदास से बहुत अधिक प्रभावित हुए । वे उनको अपना वास्तवित धार्मिक गुरु मानते थे । रामदास की शिक्षाओं के द्वारा ही उनमें जाति तथा धर्म-प्रेम की भावना का उदय विशिष्ट रूप से हुआ और उन्होंने अपना जीवन इसके लिए उत्सर्ग कर दिया ।**

---

[1] "There seems to be little doubt that his career was inspired by a real desire to free his country form what he considered to be a foreign tyranny and not by a mere love of plunder."

—Rawlinson, page 30.

[2] "In the movement of Swarai Shivaji is supposed to represent the physical and Ram Das the moral force of the nation."

—Sardesai.

शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें—शिवाजी को जनता से सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर सन् १६४० ई० के उपरान्त प्राप्त हुआ जब वे बंगलौर की यात्रा कर महाराष्ट्र वापिस आए। इससे पूर्व भी वे दादा कोंणदेव के साथ सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहते थे। उन्होंने मलावा नवयुवकों से घनिष्ट सम्बन्ध की स्थापना की जिन्होंने शिवाजी के साथ अनेक साहसपूर्ण कार्य किए। प्रारम्भ में उन्होंने अपनी जागीर की उचित व्यवस्था की जहाँ अराजकता का साम्राज्य था। उन्होंने दुष्ट व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिया और अपनी समस्त जागीर में शान्ति की स्थापना की। उन्होंने कृषि को प्रोत्साहन दिया। इसके पश्चात् उन्होंने आस-पास के दुर्गों पर अधिकार करना आरम्भ किया।

(१) **मवालों की आठ घाटियाँ**—सर्वप्रथम शिवाजी ने मवालों की आठ घाटियों को अपने अधिकार में किया।

(२) **सिंहगढ़ पर अधिकार**—सन् १६४४ ई० में सिंहगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार हो गया और उन्होंने बीजापुर राज्य के विरुद्ध युद्ध करना आरम्भ किया।

(३) **रोहिन्दा पर अधिकार**—इसी वर्ष उन्होंने रोहिन्दा के दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया और रायगढ़ के दुर्ग का निर्माण करवाया।

(४) **चकन पर अधिकार**—उन्होंने शीघ्र ही चकन के दुर्ग को अपने अधिकार में किया।

(५) **तोरण पर अधिकार**—सन् १६४६ ई० में शिवाजी ने तोरण के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। यहाँ से शिवाजी को बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ।

(६) **पुरन्दर पर अधिकार**—इन विजयों के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने पुरन्दर के प्रसिद्ध दुर्ग को अपने अधिकार में करने की योजना बनाई। इस दुर्ग पर बीजापुर का अधिकार था और इसका अधिकारी मरहठा सरदार **नीलो नीलकंठ** था। सन् १६४८ ई० में शिवाजी ने बड़ी योग्यता तथा चालाकी से दुर्ग पर अधिकार किया। इस दुर्ग पर अधिकार स्थापित होने से शिवाजी का महत्व बहुत बढ़ गया और बीजापुर में खलबली मच गई। बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी को बन्दी कर लिया। शिवाजी ने जब मुगलों की सहायता बीजापुर के विरुद्ध करने की घोषणा की तो बाध्य होकर शाहजी को मुक्त कर दिया गया।

शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें

(१) मवालों की आठ घाटियों पर अधिकार।
(२) सिंहगढ़ पर अधिकार।
(३) रोहिन्दा पर अधिकार।
(४) चकन पर अधिकार।
(५) तोरण पर अधिकार।
(६) पुरन्दर के दुर्ग पर अधिकार।
(७) सूपा पर अधिकार।
(८) जावली-विजय।
(९) मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष।
(१०) कोंकण की विजय।
(११) मरहठे और बीजापुर व अफजल खाँ की मृत्यु।

(७) **सूपा पर अधिकार**—कुछ समय तक शिवाजी शान्त रहे, किन्तु कुछ समय उपरान्त उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया और सूपा के दुर्ग पर अधिकार किया। इस प्रकार लगभग दस वर्षों के अन्तर्गत शिवाजी का अधिकार अपनी जागीर के आस-पास के प्रदेशों के दुर्गों पर हो गया। शिवाजी ने इन समस्त प्रदेशों की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इस समय की शिवाजी की परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार **सारदेशाई** का मत है कि "शिवाजी ने मीरा तथा नीरा, पूना तथा शिखल के बीच के प्रदेश में अपनी सत्ता की स्थापना की जिसकी रक्षा के लिए चकन, पुरन्दर, सूपा तथा बारामाती के प्रसिद्ध दुर्ग थे जिन पर बिना रक्त बहाए तथा बिना अधिक मूल्य चुकाए अधिकार कर लिया गया था।"

(८) **जावली विजय**—कुछ समय तक शान्त रहने के उपरान्त उसका ध्यान जावली की ओर आकर्षित हुआ जो सितारा जिले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थित था। इस पर मरहठा सरदार **चन्द्रराव** का आधिपत्य था जो शिवाजी के विस्तार को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। शिवाजी ने इससे मुक्ति पाने के अभिप्राय से एक षड्यन्त्र रचा। उसका वध कराया गया और शीघ्र ही शिवाजी ने आक्रमण कर दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। कुछ समय उपरान्त उनका रैरी पर अधिकार हो गया और इस प्रकार समस्त जावली प्रदेश उसके हाथ में आ गया। जावली विजय के सम्बन्ध में **यदुनाथ सरकार** का कथन है कि "शिवाजी की जावली-विजय जान-बूझकर की गई हत्या एवं संगठित छल-कपट का परिणाम था। उस समय उसकी शक्ति बहुत कम थी और वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए विवेकपूर्ण साधनों को न अपना सका। उसके जीवन की इस घटना में प्रकाश की केवल एक ही किरण है कि उसने जो अपराध किया वह पाखण्ड या लोक-दिखावे के लिए नहीं किया। उसने इस बात की डींग नहीं मारी कि मैंने मोरे सदस्यों की हत्या हिन्दू 'स्वराज्य' की भावना से की अथवा उस विश्वासघाती शत्रु को अपने मार्ग से हटाने के लिए की गई थी, जिसने उसकी उदार सरलता का अनेक बार दुरुपयोग किया था।"* प्रसिद्ध इतिहासवेता **डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में जावली की विजय शिवाजी के जीवन में एक उल्लेखनीय घटना थी, क्योंकि इस विजय के बाद उसके राज्य के दक्षिण-पश्चिम में विस्तार के लिए द्वार खुल गए थे। दूसरे इस विजय से इसकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई, क्योंकि सेना के कई हजार पैदल मवाले सिपाही उनकी सेना में भर्ती हो गए। जावली के मिल जाने से शिवाजी मालव-प्रदेश का स्वामी बन गया। यह प्रदेश सेना में भर्ती के लिए बहुत ही

---

* "The conquest of Javli was the result of deliberate murder and organised treachery on the part of Shivaji. His power was then in its infancy, and he could not afford to be scrupulous in the choice of the means of strengthening himself......The only redeeming feature of his dark episode in his life is that the crime was not aggravated by hypocrisy...Shivaji never pretended that the murder of the three Mores was prompted by a desire to found a Hindu 'Swaraj' or to remove from his path a treacherous enemy who had repeatedly abused his generous leniency."

—Sarkar.

उपयुक्त स्थान था। तीसरे, शिवाजी के हाथ वह खजाना लग गया जो मीरों ने कई पीढ़ी से जमा कर रक्खा था।"

(१०) **मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष**—मुगलों से शिवाजी का प्रथम संघर्ष १६५७ ई० में हुआ जब मुगल-साम्राज्य के दक्षिणी वायसराय औरंगजेब ने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। शिवाजी ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा और कुछ शर्तों पर उसने अपनी सेवाएँ मुगलों को समर्पित करनी चाहीं, किन्तु जब मुगलों ने उनकी शर्तें मानने से इन्कार कर दिया तो **उसने चुनार और अहमदनगर के मुगल जिलों को लूटना आरम्भ कर दिया।** यहाँ से शिवाजी को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। औरंगजेब ने मरहठों को इन प्रदेशों से निकाल दिया। कुछ समय पश्चात् बीजापुर के सुल्तान ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की तो शिवाजी को भी अपने कार्य स्थगित करने पड़े। उसने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु इससे औरंगजेब को सन्तोष नहीं हुआ। वह शिवाजी को शक्ति का अन्त करने के लिए सक्रिय कदम उठाना चाहता था, किन्तु शाहजहाँ की बीमारी का समाचार प्राप्त होने के कारण उसका उत्तरी भारत को पलायन करना अनिवार्य हो गया और दक्षिण की स्थिति पूर्ववत् हो गई।

(११) **कोंकण विजय**—उत्तरी भारत में शाहजहाँ के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार युद्ध होने के कारण शिवाजी को अपने राज्य के विस्तार करने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने शीघ्र ही **जंजीरा के सिद्दियों पर आक्रमण किया,** जहाँ उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६५७ ई० के अन्त में उसने कोंकण पर आक्रमण कर कल्याण तथा भिवन्दी के दुर्गों को अपने अधिकार में किया और शीघ्र ही उन्होंने दक्षिण कोंकण पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण कोंकण पर उनका अधिकार हो गया।

(१२) **मरहठे और बीजापुर—अफजल खाँ की मृत्यु**—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर राज्य भयभीत हो गया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र अली आदिलशाह बीजापुर के राज्यसिंहासान पर आसीन हुआ। राज्य का समस्त कार्य उसकी माता करती थी। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को लिखा कि वह अपने पुत्र पर नियन्त्रण रखे, किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके ऊपर उनका कोई नियन्त्रण नहीं है। इस परिस्थिति के कारण बीजापुर की ओर से शिवाजी के दमन करने के कार्य पर विचार होने लगा। **अफजल खाँ ने यह कार्य अपने ऊपर लिया और यह घोषणा की कि वह शिवाजी को बिना अपने घोड़े से उतरे ही बन्दी बनाकर राजदरबार में उपस्थिति करेगा।** अफजल खाँ एक विशाल सेना जिसमें १२,००० सैनिक थे लेकर शिवाजी का दमन करने के अभिप्राय से चल पड़ा। उनको भयभीत करने के उद्देश्य से मार्ग के दुर्गों तथा मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ अफजल खाँ मराठा प्रदेश में घुस गया। जब उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि शिवाजी जावली के जंगलों में प्रतापगढ़ में है तो अफजल खाँ प्रतापगढ़ की ओर बढ़ा और वहाँ उसने अपनी वाई में डेरा डाली। जब अफजल खाँ

(७) **सूपा पर अधिकार**—कुछ समय तक शिवाजी शान्त रहे, किन्तु कुछ समय उपरान्त उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया और सूपा के दुर्ग पर अधिकार किया। इस प्रकार लगभग दस वर्षों के अन्तर्गत शिवाजी का अधिकार अपनी जागीर के आस-पास के प्रदेशों के दुर्गों पर हो गया। शिवाजी ने इन समस्त प्रदेशों की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इस समय की शिवाजी की परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार **सारदेशाई** का मत है कि "शिवाजी ने मीरा तथा नीरा, पूना तथा शिखल के बीच के प्रदेश में अपनी सत्ता की स्थापना की जिसकी रक्षा के लिए चकन, पुरन्दर, सूपा तथा बारामानी के प्रसिद्ध दुर्ग थे जिन पर बिना रक्त बहाए तथा बिना अधिक मूल्य चुकाए अधिकार कर लिया गया था।"

(८) **जावली विजय**—कुछ समय तक शान्त रहने के उपरान्त उसका ध्यान जावली की ओर आकर्षित हुआ जो सितारा जिले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थित था। इस पर मरहठा सरदार **चन्द्रराव** का आधिपत्य था जो शिवाजी के विस्तार को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। शिवाजी ने इससे मुक्ति पाने के अभिप्राय से एक षड्यन्त्र रचा। उसका वध कराया गया और शीघ्र ही शिवाजी ने आक्रमण कर दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। कुछ समय उपरान्त उनका रैरी पर अधिकार हो गया और इस प्रकार समस्त जावली प्रदेश उसके हाथ में आ गया। जावली विजय के सम्बन्ध में **यदुनाथ सरकार** का कथन है कि "शिवाजी की जावली-विजय जान-बूझकर की गई हत्या एवं संगठित छल-कपट का परिणाम था। उस समय उसकी शक्ति बहुत कम थी और वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए विवेकपूर्ण साधनों को न अपना सका। उसके जीवन की इस घटना में प्रकाश की केवल एक ही किरण है कि उसने जो अपराध किया वह पाखण्ड या लोक-दिखावे के लिए नहीं किया। उसने इस बात की डींग नहीं मारी कि मैंने मोरे सदस्यों की हत्या हिन्दू 'स्वराज्य' की भावना से की अथवा उस विश्वासघाती शत्रु को अपने मार्ग से हटाने के लिए की गई थी, जिसने उसकी उदार सरलता का अनेक बार दुरुपयोग किया था।"* प्रसिद्ध इतिहासवेता **डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में जावली की विजय शिवाजी के जीवन में एक उल्लेखनीय घटना थी, क्योंकि इस विजय के बाद उसके राज्य के दक्षिण-पश्चिम में विस्तार के लिए द्वार खुल गए थे। दूसरे इस विजय से इसकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई, क्योंकि सेना के कई हजार पैदल मवाले सिपाही उनकी सेना में भर्ती हो गए। जावली के मिल जाने से शिवाजी मालव-प्रदेश का स्वामी बन गया। यह प्रदेश सेना में भर्ती के लिए बहुत ही

---

* "The conquest of Javli was the result of deliberate murder and organised treachery on the part of Shivaji. His power was then in its infancy, and he could not afford to be scrupulous in the choice of the means of strengthening himself......The only redeeming feature of his dark episode in his life is that the crime was not aggravated by hypocrisy...Shivaji never pretended that the murder of the three Mores was prompted by a desire to found a Hindu 'Swaraj' or to remove from his path a treacherous enemy who had repeatedly abused his generous leniency." —Sarkar.

उपयुक्त स्थान था। तीसरे, शिवाजी के हाथ वह खजाना लग गया जो मीरों ने कई पीढ़ी से जमा कर रक्खा था।"

(१०) मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष—मुगलों से शिवाजी का प्रथम संघर्ष १६५७ ई० में हुआ जब मुगल-साम्राज्य के दक्षिणी वायसराय औरंगजेब ने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। शिवाजी ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा और कुछ शर्तों पर उसने अपनी सेवाएँ मुगलों को समर्पित करनी चाहीं, किन्तु जब मुगलों ने उनकी शर्तें मानने से इन्कार कर दिया तो **उसने चुनार और अहमदनगर के मुगल जिलों को लूटना आरम्भ कर दिया।** यहाँ से शिवाजी को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। औरंगजेब ने मरहठों को इन प्रदेशों से निकाल दिया। कुछ समय पश्चात् बीजापुर के सुल्तान ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की तो शिवाजी को भी अपने कार्य स्थगित करने पड़े। उसने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु इससे औरंगजेब को सन्तोष नहीं हुआ। वह शिवाजी को शक्ति का अन्त करने के लिए सक्रिय कदम उठाना चाहता था, किन्तु शाहजहाँ की बीमारी का समाचार प्राप्त होने के कारण उसका उत्तरी भारत को पलायन करना अनिवार्य हो गया और दक्षिण की स्थिति पूर्ववत् हो गई।

(११) कोंकण विजय—उत्तरी भारत में शाहजहाँ के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार युद्ध होने के कारण शिवाजी को अपने राज्य के विस्तार करने का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने शीघ्र ही **जंजीरा के सिद्दियों पर आक्रमण किया**, जहाँ उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १६५७ ई० के अन्त में उसने कोंकण पर आक्रमण कर कल्याण तथा भिवन्दी के दुर्गों को अपने अधिकार में किया और शीघ्र ही उन्होंने दक्षिण कोंकण पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण कोंकण पर उनका अधिकार हो गया।

(१२) मरहठे और बीजापुर—अफजल खाँ की मृत्यु—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर राज्य भयभीत हो गया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र अली आदिलशाह बीजापुर के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। राज्य का समस्त कार्य उसकी माता करती थी। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को लिखा कि वह अपने पुत्र पर नियन्त्रण रखे, किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके ऊपर उनका कोई नियन्त्रण नहीं है। इस परिस्थिति के कारण बीजापुर की ओर से शिवाजी के दमन करने के कार्य पर विचार होने लगा। **अफजल खाँ ने यह कार्य अपने ऊपर लिया और यह घोषणा की कि वह शिवाजी को बिना अपने घोड़े से उतरे ही बन्दी बनाकर राजदरबार में उपस्थिति करेगा।** अफजल खाँ एक विशाल सेना जिसमें १२,००० सैनिक थे लेकर शिवाजी का दमन करने के अभिप्राय से चल पड़ा। उनको भयभीत करने के उद्देश्य से मार्ग के दुर्गों तथा मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ अफजल खाँ मराठा प्रदेश में घुस गया। जब उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि शिवाजी जावली के जंगलों में प्रतापगढ़ में है तो अफजल खाँ प्रतापगढ़ की ओर बढ़ा और वहाँ उसने अपना वाई में डेरा डाला। जब अफजल खाँ

ने शिवाजी के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करना अपने हित में नहीं समझा तो उसने छल से शिवाजी पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने शिवाजी के पास कृष्ण जी भास्कर को अपना दूत बनाकर भेजा और उनको बुलाकर लाने की प्रार्थना की। इस पर शिवाजी ने अपने दूत पन्त जी गोपीनाथ को अफजल खाँ के विचार जानने के लिए भेजा। उनको अफजल खाँ के उद्देश्य का पता लग गया। अन्त में दोनों में मुलाकात होनी निश्चय हुई। एक पण्डाल मे दोनों की मुलाकात हुई। दोनों के साथ दो-दो शस्त्रधारी सैनिक थे। शिवाजी ने पण्डाल में पहुँचकर झुककर सलाम किया और अफजल खाँ ने उनको गले लगाया। **उसने शिवाजी का गला दबाया और खंजर से उनके प्राण लेने का प्रयत्न किया, किन्तु लोहे के कवच के कारण जिसको शिवाजी ने पहन रखा था उनके प्राण बच गए। शिवाजी ने शीघ्र ही बाघनख से अफजल खाँ पर आक्रमण कर उसकी आँतें निकाल लीं और बिछवे को अफजल खाँ की कोख में घुसेड़ दिया।** अफजल खाँ घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और कुछ समय के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई।

इतिहासकारों का इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है कि आक्रमण पहले अफजल खाँ ने किया या शिवाजी ने। अंग्रेज इतिहासकारों की यह धारणा है कि आक्रमण पहले शिवाजी ने किया, किन्तु भारतीय इतिहासकारों का यह मत है कि पहले आक्रमण अफजल खाँ ने किया और शिवाजी ने अपनी रक्षा के लिए ही शस्त्र का प्रयोग किया।

(ख) शिवाजी के जीवन का द्वितीय काल (१६६० से ७३ तक)

अफजल खाँ की मृत्यु के उपरान्त शिवाजी के जीवन का द्वितीय काल आरम्भ होता है जो सन् १६६० से १६७३ ई० तक का काल है जिसमें उनका मुगलों के साथ विशेष रूप में संघर्ष हुआ।

शिवाजी का मुगलों से संघर्ष

अफजलखाँ के वध के कारण बीजापुर में ही नहीं, वरन् समस्त भारत में खलबली मच गई। शिवाजी की इस विजय ने उसके साहस तथा उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि की और उसका ध्यान मुगल-प्रदेशों पर लूट-मार तथा छापे मारने की ओर आकर्षित हुआ। जब औरङ्गजेब को यह सूचना प्राप्त हुई तो उसने उनका दमन करने का दृढ़ निश्चय किया।

शिवाजी का मुगलों से संघर्ष

(१) शिवाजी और शाइस्ता खाँ।
(२) सूरत की प्रथम लूट।
(३) शिवाजी और जयसिंह।
(४) पुरन्दर की सन्धि।
(५) शिवाजी की आगरा यात्रा।
(६) शिवाजी की मुक्ति।
(७) मुगलों से पुनः संघर्ष।

(१) शिवाजी और शाइस्ता खाँ—उतराधिकारी युद्ध से निवृत्त होने के उपरान्त औरंगजेब ने मरहठों की नव-स्थापित शक्ति का अन्त करने का आदेश अपने मामा शाइस्ता खाँ को दिया जो इस समय दक्षिण का वाइसराय था। उ बीजापुर को अपनी ओर कर महाराष्ट्र प्रदेश पर दो ओर से आक्रमण करने

आयोजन किया। वह **स्वयं अहमदनगर से मुगल सेना सहित सन् १६६० ई० में चल पड़ा। मार्ग के दुर्गों पर अपना अधिकार करता हुआ वह १९ मई को पूना पहुँच गया।** विभिन्न दुर्गों के हाथ से निकल जाने के कारण शिवाजी की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। उसने अपने आपको मुगलों से डटकर सामना करने में असमर्थ पाया। इधर शाइस्ता खाँ ने वर्षा ऋतु पूना में ही व्यतीत करने का निश्चय किया। आस-पास के प्रदेशों पर मुगलों ने अपना अधिकार कर लिया। शिवाजी बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मुगलों को तितर-बितर करने का एक अन्य उपाय सोचा। शाइस्ता खाँ उसी महल में ठहरा था जिसमें शिवाजी ने बचपन में निवास किया था। **१५ अप्रैल १६६३ ई० की रात्रि के समय भेष बदल कर चुने हुए मरहठे सैनिकों ने महल पर आक्रमण किया।** शिवाजी उसके सोने के कमरे में शीघ्र ही पहुँच गए। मरहठों के आक्रमण का समाचार सुनकर वह भागने लगा किन्तु उसका अंगूठा कट गया। मुगलों के बहुत-से व्यक्ति मारे गए और उनकी सेना में खलबली मच गई। शिवाजी शीघ्र ही अपने सैनिकों को लेकर सिंहगढ़ भाग गए। इस कार्य से उनकी धाक जम गई और उनके मान प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए। औरंगजेब शाइस्ता खाँ से अप्रसन्न हो गया और उसको बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

(२) सूरत की प्रथम लूट—इस विजय के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने साम्राज्य के सबसे समृद्धिशाली व्यापारिक नगर सूरत को लूटने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी इस योजना को पूर्णतया गुप्त रखा। **१० जनवरी १६६४ को उन्होंने सूरत पर आक्रमण किया।** वहाँ के गवर्नर ने शिवाजी से सन्धि करने की वार्तालाप चलाई, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। १६ जनवरी से २० जनवरी तक मरहठों ने सूरत नगर को खूब लूटा और लूट का माल लेकर मरहठे अपने प्रदेश वापिस चले गए, इस अभियान से मरहठों को अतुल्य धन हाथ लगा।

(३) शिवाजी और जयसिंह—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के कारण औरंगजेब बड़ा चिन्तित तथा भयभीत हुआ। उसने आमेर के **मिर्जा राजा जयसिंह** को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया और उसको शिवाजी को कुचलने का आदेश दिया। **मिर्जा राजा जयसिंह अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों, कूटनीतिज्ञों तथा सेनापतियों में था।** वह अपने उत्साह तथा साहस का परिचय भारत और मध्य एशिया के युद्धों में दे चुका था।

(४) पुरन्दर की सन्धि—उसने सन् १६६५ ई० में पूना पहुँच कर मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह से कार्य-भार संभाल कर शिवाजी के दमन करने की योजना का निर्माण किया। उसने आस-पास के सरदारों को मिलाकर एक संघ बनाया और शिवाजी के राज्य के पूर्वी भाग में सेना लेकर पड़ाव डाला, जिससे बीजापुर राज्य से शिवाजी को कोई सहायता प्राप्त न हो सके। उसने शीघ्र ही शिवाजी के राज्य पर आक्रमण आरम्भ किया। उसने तुरन्त ही पुरन्दर तथा राजगढ़ के दुर्गों को घेर लिया। **शिवाजी में इतनी विशाल सेना तथा योग्य सेनानायक मिर्जा राजा जयसिंह का सामना करने की क्षमता नहीं थी। अतः सन्धि की वार्ता आरम्भ हो गई।** दोनों

अर्ध-रात्रि तक सन्धि की शर्तों के विषय में विचार करते रहे और अन्त में निर्णय पर पहुँचे। यह सन्धि १६६५ ई० में हुई जो पुरन्दर की सन्धि के नाम में विख्यात है।

इस सन्धि में निम्न बातें तय की गई—

(क) शिवाजी ने २३ किले और उनसे लगे हुए प्रदेशों को मुगलों को समर्पण कर दिया। इनकी आय लगभग ४ लाख हून थी। ये प्रदेश मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर दिए गए।

(ख) रायगढ़ तथा उनके समीप के १२ दुर्गों पर शिवाजी का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। ये उस समय तक उसके अधिकार में रहेंगे जब तक वह मुगलों के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करता रहें।

(ग) शिवाजी को मुगल दरबार की उपस्थिति से मुक्त कर दिया गया, किन्तु उसके पुत्र शंभाजी को ५,००० घोड़ों के एक दल के साथ मुगल-साम्राज्य की सेवा में रहना होगा और इस सेवा के उपलक्ष में उसको सम्राट की ओर से एक जागीर प्रदान की जायेगी।

(घ) शिवाजी को अपनी हानि की पूर्ति के लिए बीजापुर राज्य के कुछ जिले तथा प्रदेश चौथ और सारदेशमुखी वसूल करने के लिए मिले।

इस सन्धि के परिणामस्वरूप शिवाजो ने मुगलों की सहायता उस अभियान में की जो जयसिंह ने दक्षिण में बीजापुर के विरुद्ध किया। जयसिंह ने बीजापुर पर आक्रमण किया, किन्तु उसको भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी ने पनहाला पर आक्रमण किया, किन्तु उसको भी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(५) **शिवाजी की आगरा यात्रा**—जयसिंह यह चाहता था कि पुरन्दर की सन्धि स्थायी रहे। वह चाहता था शिवाजी और औरंगजेब में भेंट हो जाए। उसने शिवाजी को आगरे जाने के लिए तैयार किया और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया। शिवाजी ने बड़े संकोच के साथ आगरा जाना स्वीकार किया। अपने राज्य की सुव्यवस्था करने के उपरान्त शिवाजी अपने पुत्र शंभा जी को साथ लेकर आगरे की ओर चल पड़े। मई १६६६ ई० को शिवाजी ने आगरे पहुँच कर औरंगजेब से भेंट की।

शिवाजी ने दरबार में जो व्यवहार देखा उससे उनको बड़ा क्रोध आया। औरंगजेब ने उनसे वातचीत न कर उनका बड़ा अपमान किया और उनको पंचहजारी मनसबदारों की पक्ति में खड़ा कर दिया। शिवाजी इस अपमान को सहन नहीं कर सके और वे पंक्ति से निकलकर एक ओर खड़े हो गए। औरंगजेब ने शिवाजी और उनके पुत्र को वन्दीगृह में डाल दिया और फिर उनको मरवाने का निश्चय किया। शिवाजी वड़े असमंजस में पड़ गए और अपनी मुक्ति पर विचार करने लगे। अन्त में उनको एक बहाना मिला गया। उन्होंने घोषणा की कि वे बीमार हो गए है और मिठाई की टोकरियाँ ब्राह्मणों तथा साधु-सन्तों को भिजवाना आरम्भ किया।

(६) **शिवाजी की मुक्ति**—जब मिठाइयों की टोकरियाँ इस प्रकार जाने लगी तो १९ अगस्त १६६६ को शिवाजी और उसका पुत्र शम्भा जी दो टोकरियों में बैठकर

बाहर निकल गए और उनके स्थान पर हिरोजी फरजंद को लिटा दिया गया जो उनकी आकृति से मिलता-जुलता था। वे एक सुनसान स्थान में पहुँच गए, वहाँ उनके लिए घोड़े तैयार थे। उन्होंने सन्यासियों का भेष धारण कर मथुरा की ओर प्रस्थान किया। शम्भा जी को मथुरा छोड़ शिवाजी ने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान किया। गौंडवाना तथा गोलकुण्डा होते हुए शिवाजी २२ सितम्बर १६६६ को रायगढ़ पहुँच गए। शिवाजी का स्वास्थ्य खराब हो गया और वे लम्बे विश्राम के लिए विवश हुए। जयसिंह के स्थान पर जसवन्तसिंह दक्षिण के सूबेदार नियुक्त हुए। वे दक्षिण में व्यर्थ का युद्ध नहीं करना चाहते थे। **अतः मरहठों तथा मुगलों में सन्धि हो गई शिवाजी को 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई।**

(७) **मुगलों के साथ पुनः संघर्ष**—यह सन्धि भी स्थायी न हो सकी, क्योंकि औरंगजेब का हृदय शिवाजी के प्रति साफ नहीं था और शिवाजी भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए उनको मुगलों से अवश्य युद्ध करना होगा। उसने उन दुर्गों पर पुनः अधिकार आरम्भ किया जो पुरन्दर की सन्धि के कारण उसने मुगलों को दे दिए थे। उसने सिंहगढ़, पुरन्दर, कल्याण, भिवंडी, माहुली आदि दुर्गों पर अधिकार किया और मुगल प्रदेशों को लूटना आरम्भ किया। **शिवाजी ने १३ अक्टूबर १६७० ई० को सूरत को दूसरी बार लूटा और शिवाजी के हाथ बहुत अधिक धन लगा।** इसके उपरान्त शिवाजी ने बरार, बगलान और खानदेश पर आक्रमण किया और विभिन्न प्रदेशों से चौथ वसूल की। उन्होंने सलहेर और मुलहेर पर अधिकार करने के उपरान्त उत्तरी कोंकण पर आक्रमण किया। उनके अधिकार में जवाहर और रामनगर आए। बीजापुर ने मरहठों के विरुद्ध दो बार सेनाएं भेजीं, किन्तु उनको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी का अधिकार सतारा और पनहला दुर्गों पर स्थापित हुआ। बाद में सन्धि हो गई। इस प्रकार शिवाजी ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

(ग) शिवाजी के जीवन का तृतीय काल (१६७४-८०)

शिवाजी के जीवन का तृतीय काल सन् १६७४ ई० से १६८० तक का है। सन् १६७४ ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक किया और १६८० ई० में उनका देहान्त हो गया।

(१) **शिवाजी का राज्याभिषेक**—शिवाजी ने एक राज्य का निर्माण किया और उनके अधिकार में पर्याप्त प्रदेश आ गए थे। अतः उनके हृदय में राज्याभिषेक करने की इच्छा बलवती हुई। **सन् १६७४ ई० में उन्होंने अपना राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट से किया, किन्तु शोक की बात यह है कि इस अपूर्व समारोह के बारह दिन उपरान्त ही उनकी माता जीजाबाई का स्वर्गवास हो गया।** शिवाजी के राजा बनने से हिन्दू जाति में एक नई स्फूर्ति तथा आशा का संचार हुआ और उनके मन में यह भावना हिलोरें लेने लगी कि भारत में शीघ्र ही समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन पुनः आएगा। उधर औरंगजेब भी समझ गया कि मरहठों का दमन करना सरल कार्य नहीं है।

(२) **शिवाजी की विजयें**—राज्याभिषेक में बहुत अधिक धन व्यय किया गया था। शिवाजी आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव करने लगे थे। अत: उन्होंने धन प्राप्त करने के लिए मुगलों के विरुद्ध युद्ध करना और नए प्रदेशों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। (i) शिवाजी ने मुगल सेनापति बहादुर खाँ के शिविर पर आक्रमण किया जहाँ से उनको लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ और बहुत-से उच्च कोटि के घोड़े भी उनके हाथ लगे। (ii) इसके पश्चात् उसने बीजापुर राज्य के कोली प्रदेश पर आक्रमण किया। **(iii) फिर बगलाना और खानदेश पर आक्रमण कर कई नगरों को लूटा।** (iv) उन्होंने कोल्हापुर पर भी आक्रमण किया जहाँ से उनको पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। (v) इसके बाद उन्होंने **बीजापुर तथा गोलकुण्डा के कुछ प्रदेशों पर तथा हैदराबाद नगर पर आक्रमण किया जहाँ से उनको पर्याप्त धन मिला।** (vi) उधर मुगलों ने सन् १६७६ ई० में कल्याण पर आक्रमण किया, किन्तु मुगलों को मुँह की खानी पड़ी और पराजित तथा अपमानित होकर वापिस लौटना पड़ा। शिवाजी ने बीजापुर से सन्धि की। शिवाजी को तीन लाख रुपये मिले, किन्तु यह सन्धि अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी।

शिवाजी के जीवन का तृतीय काल

(१) शिवाजी का राज्याभिषेक।
(२) शिवाजी की विजयें।
(३) सिद्दियों से संघर्ष।
(४) कर्नाटक विजय।
(५) शिवाजी के अन्तिम दिवस और मृत्यु।

(३) **जंजीरा के सिद्दियों से संघर्ष**—शिवाजी अपने राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार कर समुद्रतट पर अधिकार करना चाहते थे। कुछ प्रदेशों पर वे पूर्ववत् अधिकार कर चुके थे। सिद्दियों का जंजीरा पर अधिकार था जिसको अपने अधिकार में करना शिवाजी आवश्यक समझते थे, क्योंकि इस पर अपना अधिकार किए बिना उनका कोंकण का प्रदेश सुरक्षित नहीं रह सकता था। सिद्दी भी अपने प्रदेश का त्याग नहीं करना चाहते थे, क्योंकि वह उनके जीवन-मरण का प्रश्न था, क्योंकि यह भूमि उनके भोजन और आय का साधन थी। **शिवाजी ने जंजीरा पर आक्रमण किया जिससे सिद्दियों का उत्साह मन्द पड़ गया।** उनके सरदार ने सन्धि करने का निश्चय किया, किन्तु अन्य सरदारों के विरोध के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। शिवाजी की मृत्यु (१६८०) तक मरहठों और सिद्दियों में संघर्ष चलता रहा, किन्तु कोई भी परिणाम नहीं निकला।

(४) **कर्नाटक विजय**—सन् १६७७ में शिवाजी ने कर्नाटक को अपने अधिकार में करने के लिए आक्रमण किया। **आक्रमण से पूर्व उसने गोलकुण्डा के सुलतान से एक सन्धि की। उसने कर्नाटक में लूट-मार करनी आरम्भ की और वहाँ के प्रमुख नगरों पर अधिकार किया।** इसके उपरान्त उसने तंजौर पर आक्रमण किया और वह विजयी हुआ। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर शिवाजी का अधिकार हो गया और वह स्वदेश वापिस आया।

(५) शिवाजी के अन्तिम दिवस और मृत्यु—अपने पुत्र शम्भा जी के चरित्र, व्यवहार तथा आचरण के कारण शिवाजी के अन्तिम दिवस कष्टमय व्यतीत हुए। उसके अवगुणों के कारण उसको नजरबन्द किया गया, किन्तु वह वहाँ से निकल कर मुगलों से मिल गया। इस कारण शिवाजी बड़े दुःखी रहने लगे और वह अपनी विजयों तथा परिश्रम का परिणाम शांतिपूर्वक न भोग सके। इसके अतिरिक्त मन्त्रियों में भी मतभेद हो गया था और दरबारी कुचक्र चलने लगे थे। **वे २ अप्रैल १६८० को बीमार पड़े और १३ अप्रैल को उनका देहान्त हो गया।***

शिवाजी का साम्राज्य—शिवाजी की मृत्यु के समय उनका राज्य विशाल था। उनका राज्य पुर्तगाली और सिद्दियों के प्रदेश को छोड़कर उत्तर में रामनगर से, दक्षिण में मालाबार तक विस्तृत था तथा पूर्व में बलगान, पूना, सितारा, कोल्हापुर का बहुत-सा भाग था। इन प्रदेशों पर तो उनका प्रत्यक्ष अधिकार था, किन्तु इनके अतिरिक्त कर्नाटक का भी पर्याप्त भाग इनके हाथ में था। कुछ प्रदेशों से ये चौथ वसूल किया करते थे यद्यपि इन पर मुगलों का अधिकार था।

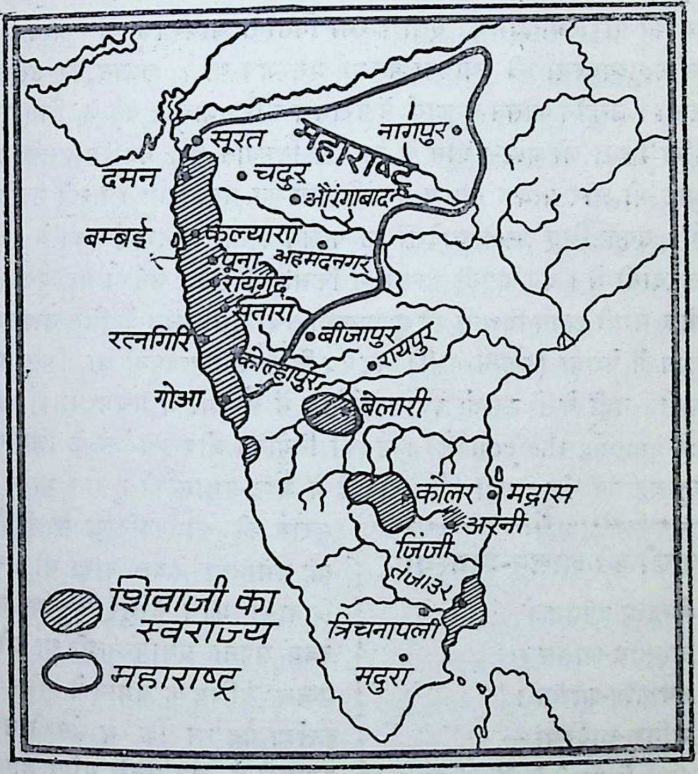
सूरत
महाराष्ट्र
नागपुर
दमन
चदुर
औरंगाबाद
बम्बई
कल्याण
अहमदनगर
पूना
रायगढ़
सतारा
बीजापुर
रत्नगिरि
रायपुर
कोल्हापुर
गोआ
बेलारी
कोलर
मद्रास
अरनी
जिंजी
तंजाउर
त्रिचनापली
मदुरा
▨ शिवाजी का स्वराज्य
○ महाराष्ट्र

---

* "On his return to the Ghats, after an absence of eighteen months, he compelled the Mughals to raise the siege of Bijapur, in return for large cessions on the part of the besieged government. Just as he was meditating still greater aggrandizement, a sudden illness put an end to his extraordinary career in 1680, when he was about quite fifty three of age." —Lane Poole.

(1983, 1985)

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

शिवाजी केवल एक उच्च-कोटि का सेनानायक तथा विजेता ही नहीं था, वरन् वह एक उच्च-कोटि का प्रबन्धक भी था। उसमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य और कुशल-शासक में होने चाहिएँ। उसकी तुलना सूर-वंश के संस्थापक शेरशाह तथा नैपोलियन से की जा सकती है, जिसने अपनी योग्यता का परिचय उच्च-कोटि की शासन-व्यवस्था में दिया। **शासन पर शिवाजी का अधिकार था और समस्त शक्ति उसमें केन्द्रीभूत थी, किन्तु उनके शासन को निरंकुश शासन या पूर्णतया सैनिक शासन कहना उनके साथ अन्याय करना होगा।** यह सत्य है कि उसके शासन का आधार सेना थी, किन्तु उनके राज्य में सामाजिक संस्थाओं का अभाव नहीं था।

(१) **केन्द्रीय-शासन**—शिवाजी ने दृढ़ केन्द्रीय-शासन की स्थापना की और उस समय की परिस्थितियों में ऐसा करना नितान्त आवश्यक था अन्यथा राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करना असम्भव था। शासन पर उसका सम्पूर्ण अधिकार था। उन्होंने शासन के कार्य में परामर्श और सहायता देने के लिए एक समिति का निर्माण किया जो अष्ट-प्रधान के नाम से विख्यात थी, क्योंकि उसके सदस्यों की संख्या आठ थी और प्रत्येक सदस्य एक विभाग का प्रधान था। मन्त्री उसके पूर्णतया अधीन थे। उनके लिए उसके आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। वे केवल उसके प्रति उत्तरदायी थे। वह अपनी इच्छा से किसी भी समय उनको पदच्युत कर सकता था। **प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की सुव्यवस्था तथा सुसंचालन के लिए उत्तरदायी था।** अष्ट-प्रधान में पेशवा (प्रधान-मंत्री) का पद विशिष्ट महत्वपूर्ण था, किन्तु अन्य मंत्री उसके अधीन नहीं थे। उसका स्थान वास्तव में समानों में प्रथम था। (He was the first among the equals)। उनकी नियुक्ति जीवन-पर्यन्त के लिए की जाती थी, किन्तु वह पद पैतृक नहीं था। रानाडे ने अष्ट-प्रधान की तुलना भारत के वाइसराय की कार्यकारिणी से की है, किन्तु यह समानता केवल बाह्य थी। वास्तव में शिवाजी फ्रांस के लुई चतुर्दश के समान स्वयं अपना प्रधान-मन्त्री था और मन्त्री केवल सचिव के समान थे जिनका मुख्य कर्त्तव्य यह था कि वे उसको उस समय परामर्श दें जब उनसे माँगा जाए अन्यथा वे उनके आदेशों का अक्षरश: पालन करें। अष्ट-प्रधान में निम्न आठ मन्त्री थे—

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

(१) **केन्द्रीय-शासन।**
(२) **प्रान्तीय-शासन।**
(३) **स्थानीय-शासन।**
(४) **सैनिक-व्यवस्था—**
    (क) **शिवाजी के सैनिक सुधार।**
    (ख) **दुर्गों की व्यवस्था।**
    (ग) **स्थायी सेना।**
    (घ) **रणनीति।**
(५) **आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व।**
(६) **चौथ और सारदेशमुखी।**

(i) **पेशवा**—इसका मुख्य कार्य समस्त शासन की देख-भाल करना तथा राज्य की सुव्यवस्था और जनता की व्यवस्था करना था। राजा की अनुपस्थिति में शासन का समस्त उत्तरदायित्व उस पर रहता था।

(ii) **आमात्य**—इसका मुख्य कार्य राज्य के हिसाब की जांच-पड़ताल करना था तथा राज्य की आय-व्यय का लेखा इसको रखना था।

(iii) **मन्त्री**—इसका कार्य राजा के दैनिक कार्यों और दरबारों की कार्यवाही का विवरण रखता था।

(iv) **सचिव**—वह राजा के पत्र-व्यवहार की देखभाल करता था। मसविदा बनाना तथा उनकी प्रतिलिपि करवाना उसका कार्य था।

(v) **सामन्त**—वह राजा को विदेशी राज्यों के विषय में सम्बन्ध स्थापित किए जाने की सलाह तथा परामर्श देता था। वह विदेशी राज्यों में अपने राज्य का गौरव बनाए रखता था।

(vi) **सेनापति**—उसका प्रमुख कार्य सेना की उचित व्यवस्था करना था। वह सेना का प्रधान होता था।

(vii) **पंडितराव और दानाध्यक्ष**—उसका मुख्य कार्य धार्मिक कार्यों का उचित रूप से करवाना तथा धार्मिक संस्थाओं को दान आदि देना था। उसका कार्य धार्मिक नियमों की व्याख्या करना तथा जनता का नैतिक स्तर उन्नत करता था।

(viii) **न्यायाधीश**—वह न्याय-विभाग का उच्चतम पदाधिकारी था। वह इस भाग का निरीक्षण भी करता था।

यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि सेनापति के अतिरिक्त सभी मन्त्री ब्राह्मण होते थे और पंडितराव और दानाध्यक्ष तथा न्यायाधीश के अतिरिक्त सभी मन्त्रियों को आवश्यकतानुसार युद्ध में सेना का नेतृत्व करना अनिवार्य था। इसी प्रकार मन्त्रियों को नागरिक कार्यों के साथ-साथ सैनिक-कार्यों को सम्पन्न करना पड़ता था। उनको प्रति मास वेतन मिलता था। राज्य उनको जागीर प्रदान नहीं करता था। सबका वेतन निश्चित था। पेशवा को १५,०००, आमात्य को १२,०००, तथा अन्य प्रत्येक मंत्री को १०,००० हूण वेतन के रूप में मिलते थे।

(२) **प्रान्तीय-शासन**—शिवाजी के अधिकार में पर्याप्त साम्राज्य था जिसको उन्होंने शासन की सुविधा का ध्यान रखकर चार भागों में विभक्त किया था। ये भाग प्रान्त कहलाते थे। एक प्रान्त जिसका प्रबन्ध शिवाजी स्वयं करते थे **'स्वराज्य'** नाम से सम्बोधित किया जाता था। अन्य तीन प्रान्तों में प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था जिसकी नियुक्ति शिवाजी स्वयं करते थे और अपने पद पर वह उनकी इच्छा पर्यन्त कार्य कर सकता था। अतः उनकी नियुक्ति तथा निवृत्ति का अधिकार राजा के हाथ में था। उसकी सहायता के लिए आठ मंत्री होते थे।

(३) **स्थानीय-शासन**—समस्त प्रान्तों में ग्रामीण समुदाय थे जो पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थे। शिवाजी ने इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया और वह पूर्ववत् चलती रही। आरम्भ में इस स्वतन्त्र ग्रामों के समूह पर देशमुख तथा देशपांडों की नियुक्ति की गई। इनका मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। कुछ समय उपरान्त इनका पद पैतृक हो गया और ये सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करने लगे। शिवाजी इस प्रकार की व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हुए; क्योंकि इनके द्वारा सामान्तशाही को प्रोत्साहन

प्राप्त होता था जो संगठित राजतन्त्र की विरोधी भावना थी। शिवाजी ने लगान वसूल करने के लिए अपने ही कर्मचारी की नियुक्ति की और प्राचीन देशमुख तथा देशपांडों को शक्तिहीन करना आरम्भ कर दिया।

(४) **सैनिक-व्यवस्था**—शिवाजी ने सैनिक बल पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना बड़ी भीषण परिस्थितयों में की। इस राज्य को स्थायी रूप देने के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि **सेना की व्यवस्था उच्च-कोटि** की हो तथा उसका संगठन दृढ़ हो। शिवाजी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और वे अपनी सेना को जितना भी अधिक उन्नत तथा सुसंगठन कर सकते थे ऐसा करने का उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया और उनको इस दिशा में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। इसके द्वारा ही वे बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मुगल-साम्राज्य की विशाल सेनाओं के मध्य तथा विरोध में राज्य की स्थापना कर सके।

(क) **शिवाजी के सैनिक सुधार**—शिवाजी प्राचीन सैनिक-व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने उसमें कुछ आवश्यक सुधार किए। (i) शिवाजी ने स्थायी सेना की व्यवस्था की जिसमें सैनिकों को बारहों मास कार्य करना पड़ता था। इसके पूर्व सैनिक छः महीने सेना में और छः महीने अपने खेतों में काम करते थे। (ii) उन्होंने **मरहठा जाति में देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना जागृत की, जिससे उन्होंने बड़े साहस और अदम्य उत्साह का परिचय दिया और भीषण कार्य करने के लिए वे सदा तत्पर रहे।** (iii) उन्होंने **जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन** कर सैनिकों को वेतन देने की व्यवस्था की। (iv) **घोड़ों पर दाग लगाने** की व्यवस्था की गई, और (v) सैनिक **की हुलिया रजिस्टर में लिखी जाने** लगी जिससे किसी प्रकार का गोलमाल घोड़ों अथवा सैनिकों के सम्बन्ध में सम्भव न हो सके। (vi) सेना में भर्ती योग्यता के आधार पर होती थी। पद पैतृक नहीं थे। (vii) उन्होंने सेना को पूर्ण अनुशासन में रखा। अनुशासन भंग करने वाले सैनिक को कठोर दण्ड दिया जाता था। (viii) उनकी सेना में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के सैनिक थे।

(ख) **दुर्गों की व्यवस्था**—शिवाजी ने दुर्गों की व्यवस्था तथा सुरक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया; क्योंकि वे उनको सम्पूर्ण राज्य के केन्द्र समझते थे। शिवाजी ने पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई और नए दुर्गों का निर्माण करवाया। **प्रत्येक दुर्ग के प्रबन्ध के लिए तीन कर्मचारी होते थे जिनका सैनिक उत्तरदायित्व था।** इसका लाभ यह था कि कोई भी कर्मचारी विश्वासघात न करने पाए। तीनों कर्मचारियों का स्तर समान था। **हवलदार** के अधिकार में दुर्ग की कुञ्जियाँ रहती थीं और उसको राजकीय पत्र-व्यवहार करना पड़ता था। **सरेनोबत** पुलिस व चौकीदार निकटवर्ती स्थानों का निरीक्षण करने का कार्य करते थे। **सबनिस** इन दोनों के मध्य था और वह सैनिक की उपस्थिति का कार्य करता था।

(ग) **स्थायी सेना**—शिवाजी की सेना उनकी मृत्यु के समय दक्षिण में सबसे अधिक शक्तिशाली थी। उसकी सेना में ४०,००० घुड़सवार, एक लाख पैदल सिपाही, १,२६० हाथी और २,००० ऊँट थे। शिवाजी की सेना का प्रधान अंग घुड़सवार

सेना थी जिसकी व्यवस्था की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इसमें दो प्रकार के सैनिक थे। एक तो वे जिनको राज्य की ओर से हथियार, घोड़े तथा निश्चित वेतन मिलता था, वे बर्गीर कहलाते थे। दूसरे वे जो घोड़े और हथियार अपने पास से क्रय करते थे। उनको युद्ध में भाग लेने के लिए निश्चित धन-राशि मिलती थी। प्रत्येक दस सिपाही के ऊपर एक नायक और प्रत्येक २५ नायकों के ऊपर एक हवलदार, पाँच हवलदारों के ऊपर एक जुमलादार तथा दस जुमलादारों के ऊपर एक हजारी होता था। पैदल सेना भी कई विभागों में विभक्त थी। शिवाजी के पास पर्याप्त बन्दूकें और तोपखाना भी था। उनके अधिकार में जल-सेना भी थी। उसके पास दो सौ के करीब जहाज थे।

(घ) **रण-नीति**—शिवाजी की रण-नीति मुगलों की रणनीति के बिल्कुल विपरीत थी। उन्होंने गुरिल्ला (छापामार) युद्ध नीति को अपनाया। वे आमने सामने युद्ध करने के स्थान पर सहसा आक्रमण पर अधिक विश्वास करते थे। **वे शत्रु की सेना पर छिपकर आक्रमण करते थे और लूट मार मचाकर पहाड़ियों** में छिप जाते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि सेना के पास कम सामान हो और घोड़े द्रुतगति के हों। देश की प्राकृतिक दशा ने भी उसकी इस नीति को सफल बनाने में सहयोग प्रदान किया। इस नीति के कारण मुगल उस पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सके।

(५) **आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व**—शिवाजी ने आर्थिक प्रबन्ध तथा राजस्व की ओर भी विशेष ध्यान दिया, क्योंकि उनको जनता के हितों का भी पर्यात ध्यान था। **राज्य की ओर से समस्त भूमि की पैमाइश (नाप-तोल) छड़ों द्वारा करवाई** गई। २० वर्ग छड़ों का एक बीघा और १२० बीघे का एक चावर था। भूमि की औसत उपज मालूम कर उपज का $\frac{२}{५}$ भाग लगान के रूप में राज्य लेता था। **किसानों को यह सुविधा प्राप्त थी कि वह लगान अनाज के रूप में भी दे सकता था।** राज्य की ओर से किसानों को बीज और पशु के लिए धन दिया जाता था जिसकी अदायगी वे किस्तों में करते थे। लगान सीधे किसान के लिया जाता था। जमींदारी-प्रथा का पूर्णतया उन्मूलन कर दिया गया था। इस प्रकार उसके राज्य में रैयतवाड़ी-व्यवस्था थी।

(६) **चौथ और सारदेशमुखी**—लगान तथा अन्य करों द्वारा राज्य को इतनी आय नहीं हो पाती थी कि उसका समस्त व्यय चल सके। इस कमी की पूर्ति करने के लिए उन्होंने चौथ और सारदेशमुखी को अपनाया जो पड़ौसी राज्यों के प्रदेशों से वसूल किए जाते थे। उनको अपनी आर्थिक आय के लिए सेना पर अधिक निर्भर रहना पड़ता था। ये कर प्रायः स्थायी रूप से वसूल किए जाते थे। चौथ निर्बलों द्वारा भेंट थी और उसके देने से उनको अन्य शक्ति के आक्रमण से रक्षा की अनुमति प्राप्त हो जाती थी। **वह सैनिक कर था जो जो लगान का $\frac{१}{५}$ भाग होता था। सारदेशमुखी १० वाँ भाग था।** शिवाजी अपने सम्पूर्ण महाराष्ट्र का पैत्रिक सारदेशमुखी समझते थे और वे दसवाँ भाग वसूल करते थे। रानाडे के अनुसार यह सैनिक चन्दा नहीं था वरन् तीसरी शक्ति के विरुद्ध यह रक्षा के बदले कर था।

इतिहासकारों ने शिवाजी की शासन-व्यवस्था की बहुत अधिक प्रशंसा की

है। **ग्रांट डफ** (Grant Duff) के अनुसार, "शिवाजी के राज्य में सुख और सुव्यवस्था थी। आर्थिक क्षेत्र में राज्य की आय लगान अथवा चुंगी से इतनी नहीं थी जितनी कि वह चौथ और सारदेशमुखी से थी।" **लेनपूल** (Lane-Pool) के शब्दों में, "शिवाजी ने अपने राज्य में जनता के सम्मान को सदा बनाए रखा। उन्होंने विद्रोह किए, लूटमार की और लोगों को कष्ट दिया, किन्तु उसने कभी भी बुरे कर्म नहीं किए। उसने सदा मुसलमान स्त्रियों और बच्चों का ध्यान रखा जब कभी भी वे उसके हाथ में पड़ जाते थे।[1]

शिवाजी की सफलता के कारण

शिवाजी को अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई। वे एक राष्ट्र के निर्माण करने तथा एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने में सफल हुए, यद्यपि बीजापुर राज्य तथा दृढ़ व सुसंगठित मुगल-साम्राज्य की ओर से उनका दमन करने के लिए अकथनीय प्रयत्न किए गए। उनकी सफलता के कारण निम्नलिखित हैं—

(१) महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति—शिवाजी की सफलता में महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति ने बहुत अधिक सहयोग प्रदान किया। महाराष्ट्र एक पहाड़ी प्रदेश है और पहाड़ियों की चोटियों पर दुर्ग बने हुए हैं जिन पर अधिकार करना सरल कार्य नहीं है। विशाल सेना द्वारा इस प्रदेश को अधीन करना कठिन था। इसके अतिरिक्त तीन ओर से यह समस्त प्रदेश पहाड़ियों से घिरा हुआ है तथा चौथी ओर पहाड़ियाँ और समुद्र हैं। यह नितान्त सत्य है कि यदि महाराष्ट्र पहाड़ी प्रदेश न होकर मैदान होता तो मरहठों को सफलता मिलनी असम्भव थी। मुगल सेना समस्त मरहठा प्रदेश को रौंद डालती।[2]

सफलता के कारण

(१) महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थिति।
(२) मरहठों की विशेषताएँ।
(३) दक्षिण में सुलतानों की दुर्बलता।
(४) शिवाजी की गौरिल्ला रण-नीति।
(५) शिवाजी का व्यक्तित्व।
(६) मुगलों के अवगुण।
(७) औरंगजेब की कठिनाइयाँ।

---

[1] "Shivaji always strove to maintain the honour of the people in the territories. He persisted in rebellion, plundering caravans and troubling mankind but he was absolutely guiltless of baser actions and was scrupulous of the honour of women and children of Muslims when they fell into his hands.

[2] "The whole of the Ghats and the neighbouring mountains often terminate towards the top in a wall of a smooth road, the highest points of which, as well as detached portions on insulated hills from natural fortresses, where the only labour acquired is to get accoss to the level space, which generally lie on the summit. Various princes at different times have profitted by these positions. They have cut flights of steps of winding roads up the rocks, fortified the entrance with a succession of gate-way, and erected tower to command the approaches and studded the whole region about the Ghats and their branches with forts, which, but for frequent experience, would be deemed impregnable."

—Elphinstio

(२) मरहठा जाति की विशेषताएँ—पहाड़ी प्रदेश में रहने के कारण मरहठा जाति में अदम्य उत्साह तथा साहस था। वे परिश्रम करने से नहीं घबराते थे। उनकी आर्थिक अवस्था उन्नत नहीं थी। उसको उन्नत करने से लिए वे सब कुछ करने को तत्पर रहते थे। **धार्मिक गुरुओं ने मरहठों में देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन दिया।** शिवाजी ने उनकी इस भावना का लाभ उठाकर उनको सुसंगठित किया। मरहठों को राजनीति का अच्छा अनुभव था और वे तत्कालीन परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित थे जिनका लाभ उन्होंने शिवाजी के नेतृत्व में उठाया।

(३) दक्षिण के सुल्तानों की निलर्बता—शिवाजी के उत्कर्ष के समय दक्षिण के राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहे थे। **इन दोनों का वैभव तथा प्रतिभा का दीपक बुझने के लिए टिमटिमा रहा था।** एक ओर तो बीजापुर और गोलकुण्डा पर मुगलों के निरन्तर आक्रमण हो रहे थे और दूसरी ओर उनमें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो राज्य की शक्ति बनाए रखता। राजा अयोग्य थे और दरबार में पारस्परिक मतभेद के कारण दलों का उदय होना आरम्भ हो गया था। शिवाजी ने इनकी निर्बलता का लाभ उठाया और अपनी शक्ति का विस्तार किया।

(४) शिवाजी की गौरिल्ला रणनीति—शिवाजी ने **गौरिल्ला रणनीति** को अपनाया और उसने आमने-सामने मुगल अथवा दक्षिण सुलतानों की सेना के विरुद्ध युद्ध नहीं किया। उसकी यह नीति पूर्णतया सफल हुई। **यदि वह शत्रुओं की सेना का आमना-सामना करता तो उसको कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती।** वास्तव में शिवाजी की शक्ति उनकी तुलना में कुछ भी नहीं थी।

(५) शिवाजी का व्यक्तित्व—शिवाजी का व्यक्तितत्व बड़ा आकर्षक तथा चरित्र बहुत उन्नत था। इसने भी उनको विजयी बनाने में बड़ा सहयोग प्रदान किया। **उन्होंने अपनी योग्यता से मरहठा राष्ट्र को संगठित किया और इसमें राष्ट्रीय भावना को सजग किया।** प्रत्येक मरहठा इनके इशारे पर अपने प्राण तक न्योछावर करने उद्यत हो जाता था। '**उनमें मैजनी जैसा विश्वास, गैरीबाल्डी जैसा अदम्य उत्साह, कैवूर की-सी कूटनीति और विक्टर इमैनुअल का-सा धैर्य और सहानुभूति थी।**'

(६) मुगलों के अवगुण—मुगल जाति में पर्याप्त अवगुण उत्पन्न हो गए थे—(i) उनमें अब **वीरता, साहस तथा उत्साह का अभाव था** जो उनमें पूर्व काल में विद्यमान था। (ii) उनमें **विलासिता की मात्रा** बहुत बढ़ गई थी। (iii) **सेना के साथ स्त्रियाँ तथा नर्तकियाँ** आदि भी जाती थीं, अतः वे अपना अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगे थे। (iv) **सेनापतियों में प्रतिद्वन्द्विता** के कारण सहयोग का अभाव था। (v) उनमें **कर्त्तव्यपरायणहीनता** उत्पन्न हो गई थी। (vi) **मुगल-साम्राज्य इतना विशाल** हो गया था कि यातायात के अभाव में उसका संगठित रखना तथा उसका एक छत्र-छाया में फूलना-फलना असम्भव था। वास्तव में मुगल-साम्राज्य का पतन होना आरम्भ हो गया था और जिसके चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे थे।

(७) औरंगजेब की कठिनाइयाँ—औरंगजेब की कठिनाइयों ने भी शिवाजी की सफलता में बहुत सहयोग प्रदान किया। जिस समय शिवाजी उत्कर्ष की ओर

अग्रसर हो रहा था उसी समय औरंगजेब उत्तरी भारत की समस्याओं के समाधान में इतना अधिक व्यस्त था कि वह शिवाजी की ओर ध्यान नहीं दे सका। दक्षिण के सूबेदारों पर राज्य के विशाल होने के कारण पूर्णतया नियन्त्रण रखना असम्भव था। इस नियन्त्रण के अभाव में वे अपना अधिकांश समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे। औरंगजेब की धार्मिक नीति ने उन राजपूतों को भी उसका विरोधी बना दिया जिन्होंने अपने रक्त से मुगल-साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था।

शिवाजी का चरित्र

इतिहासकारों में शिवाजी के चरित्र तथा कार्यों के सम्बन्ध में जितना अधिक मत-भेद है उतना अधिक मत-भेद किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में नहीं है। यूरोपीय तथा मुसलमान लेखकों ने उनके चरित्र का कलुषित चित्रण करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है, किन्तु आधुनिक अनुसन्धानों के आधार पर उनके चरित्र का कुछ दूसरा ही पहलू दृष्टिगोचर होता है। **वास्तव में वे एक राष्ट्र निर्माता थे और उनका इतिहास में बहुत उच्च स्थान है।** उनके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) **उच्च आदर्श**—शिवाजी का व्यक्तिगत चरित्र बहुत उच्च था। वे एक आज्ञाकारी पुत्र, दयालु पिता तथा उत्तरदायी पति थे। उनका अपनी माता के प्रति अगाध प्रेम था और वे उनको देवी के समान मानते थे। उनमें उनकी आज्ञाओं का विरोध करने की शक्ति नहीं थी। वे अपने पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों को बड़ा प्रेम करते थे। उन्होंने शम्भा जी को क्षमा कर दिया जब उसने विद्रोही प्रवृत्तियों का प्रदर्शन किया। उनको उस समय बड़ी प्रसन्नता हुई, जब शम्भा जी मुक्त होकर महाराष्ट्र आए। वे अपनी स्त्रियों से प्रेम करते थे। उनकी यद्यपि सात पत्नियाँ थी; किन्तु वे सबको समान समझते थे।

शिवाजी का चरित्र

(१) उच्च आदर्श।
(२) धार्मिक और सहिष्णु।
(३) जन्मजात नेता।
(४) उच्च कोटि का पारखी।
(५) सैनिक प्रतिभा।
(६) योग्य शासक।
(७) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ।
(८) महान् संगठनकर्त्ता।

(२) **धार्मिक और सहिष्णु**—शिवाजी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। बाल्यकाल से ही उनको इस प्रकार की शिक्षा दी गई थी। वे भवानी के भक्त थे। उनको **साधु महात्माओं से अगाध प्रेम** था। वे उनको आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। **उनको धार्मिक ग्रन्थों के सुनने में रुचि थी।** इसी कारण उनके आचरण में पर्याप्त पवित्रता तथा उदारता विद्यमान रही। धार्मिक प्रवृत्ति ने किसी भी समय उनके मस्तिष्क को कलुषित नहीं होने दिया और उनमें धार्मिक कट्टरता कभी भी उदय नहीं हुई। वे मुसलमान साधु-सन्तों तथा कुरान का भी बड़ा आदर करते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान समान थे। धर्म के नाम पर उन्होंने कोई अत्याचार तथा रक्त-प्रवाह नहीं किया। **खलीफा ने उनकी सहिष्णुता की बड़ी प्रशंसा की।** वह लिखता है कि "शिवाजी ने यह नियम बनाया था कि लूट के समय उनके सिपाही मस्जिदों,

कुरान तथा स्त्रियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाएँ। जब कभी कुरान की प्रति उसके हाथ आ जाती थी तो वह उसको सम्मानपूर्वक अपने मुसलमान अनुयायियों को दे दिया करता था। जब हिन्दू या मुसलमान स्त्रियाँ उसके आदमियों द्वारा बन्दी बनाकर उसके सामने उपस्थित की जाती थीं तो वह सावधानी से उनकी देख-भाल करता था और उन्हें उनके सम्बन्धियों को लौटा दिया करता था।"[1]

(३) **जन्मजात नेता**—शिवाजी एक जन्मजात नेता थे। **उनका व्यक्तित्व इतना अधिक आकर्षक था कि जो कोई भी उनके संसर्ग में आया वह उनसे अवश्य प्रभावित हुआ।** इसी गुण के कारण वह महाराष्ट्र की बिखरी हुई समस्त शक्तियों को एक ध्वजा के अन्तर्गत संगठित करने में सफल हो सके।

(४) **उच्च कोटि का पारखी**—वह मनुष्यों की परख करने की अद्वितीय शक्ति रखता था। उसने योग्य व्यक्तियों को ही उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने अपने कर्मचारियों की नियुक्ति करने में कभी भूल नहीं की। इसी कारण उसकी राजनीतिक तथा सैनिक व्यवस्था उच्च-कोटि की रही।

(५) **सैनिक प्रतिभा**—शिवाजी में **सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी।** इसी के आधार पर वे एक छोटे-से जागीरदार के पद से राजा के पद पर आसीन हुए और भीषण परिस्थितियों में राज्य का निर्माण करने में सफल हुए। वे उच्च कोटि के सेनानायक थे।[2] **उन्होंने जिस रणनीति को अपनाया वह मरहठों के लिए सर्वोत्तम थी।** उनका गुप्तचर विभाग उच्चकोटि का था जो पहले से ही उनको समस्त समाचार दे देता था।

(६) **योग्य शासक**—शिवाजी में न केवल उच्च कोटि की **सैनिक प्रतिभा ही थी, वरन् उनमें योग्य शासक के पर्याप्त गुण भी विद्यमान थे।**[3] उनकी शासन-व्यवस्था अनुपम थी और जब बाद में मरहठों ने उनके आदर्शों का परित्याग कर दिया तो वे पतन की ओर अग्रसर होने लगे।

(७) **उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ**—शिवाजी एक **उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ थे। वे राजनीति की गहन चालों से पूर्णतया परिचित थे।** यदि वे ऐसे न होते तो उनको सफलता प्राप्त होनी असम्भव थी। उन्होंने अपनी कूटनीति के आधार पर

---

[1] "He made it a rule that whenever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the Book of God or the women of any one. Whenever the copy of the sacred Quran came into his hands he treated it with respect and gave it to some of his Musalman followers. When the women of any Hindu or Mussalman were taken prisoners by his men, he watched over them until their relations came with a suitable ransom to buy their liberty."

—**Khafi Khan.**

[2] "My foe (Shivaji) was a great Captain. My armies had been employed against him for nineteen years and nevertheless state has always been improving."

—**Aurengzeb.**

[3] Shivaji well merited the kingship which he adorned by his valour and virtue. He was ambitious but ambition did not blind him to moral considera-tion."

—**Dr. Ishwari Prasad,**

ही अपने शत्रुओं से लोहा लिया और उनको कभी अपने विरुद्ध संगठित नहीं होने दिया। अपनी कूटनीति द्वारा ही वे औरंगजेब के चंगुल से अपनी रक्षा करने में सफल हुए। **उन्होंने समय को पहचाना और उसका पूर्ण लाभ उठाया।** कभी उन्होंने मुगलों से मित्रता का हाथ बढ़ाया और कभी उनके साथ संघर्ष किया। यही नीति उन्होंने बीजापुर राज्य के प्रति भी अपनाई।

(८) **महान् संगठनकर्त्ता**—शिवाजी महान् संगठनकर्त्ता थे। उनमें यह शक्ति अद्वितीय थी। इस गुण के कारण ही उन्होंने मरहठों को संगठित कर एक सुदृढ़ राष्ट्र में परिणित किया, जिससे उन्होंने पर्याप्त समय तक भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लिया। इसके कारण ही जब वे दस मास बन्दी रहने के उपरान्त दक्षिण वापिस आए तो उनको वहाँ किसी प्रकार का परिवर्तन दिखलाई नहीं दिया; क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में कार्य पूर्ववत् चलता रहा।

उक्त गुणों के कारण ही शिवाजी का स्थान भारतीय इतिहास में बहुत ऊँचा है।

क्या शिवाजी विश्वासघाती था ?—कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शिवाजी पर यह आरोप लगाया है कि उसने जावली सरदारों के साथ तथा बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ के साथ विश्वासघात किया। वास्तव में उनका यह आरोप उचित नहीं है, क्योकि आलोचक भूल जाते हैं कि वह काल सत्रहवीं शताब्दी का था जब राजा लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इससे भी बहुत बड़े कार्य करने से नहीं हिचकते थे। इसके अतिरिक्त अफजल खाँ के वध का जहाँ तक प्रश्न है उसमें शिवाजी के साथ अफजल खाँ ने विश्वासघात करने का प्रयत्न किया। शिवाजी को अपनी आत्मरक्षा करने के लिए उसका वध करना पड़ा।

क्या शिवाजी लुटेरा था ?— कुछ विदेशी इतिहासकारों ने शिवाजी को लुटेरा कहकर सम्बोधित किया है, किन्तु उन्होंने उसके सम्बन्ध में वास्तविकता का ध्यान नहीं किया और ऊपर के तथ्यों को देखकर ही ऐसा कहने का साहस किया। वह एक जागीरदार का पुत्र था जिसका दक्षिण की राजनीति में पर्याप्त हाथ था। उसने अपने साहस, उत्साह तथा परिश्रम से मरहठा जाति का संगठन कर राष्ट्रीयता की भावना का विस्तार किया और उसकी ही सहायता के आधार पर वह एक साम्राज्य की स्थापना बीजापुर और मुगल-साम्राज्य के विरोध में करने में सफलता प्राप्त कर सका। वह मरहठा जाति को बहुत अधिक संगठित करने में सफल हुआ और इसी के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु के उपरान्त भी इस जाति ने मुगलों से खूब डट कर युद्ध किया। मुगल-साम्राज्य के पतन पर मरहठा जाति ने अपना प्रभुत्व उत्तरी तथा दक्षिणी राजनीति में स्थापित किया। वह एक उच्च-कोटि का शासक तथा संगठनकर्त्ता था न कि लुटेरा।

क्या शिवाजी एक पहाड़ी चूहा था ?—कुछ इतिहासकारों ने उसको पहाड़ी चूहे की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार जिस प्रकार चूहा चोरी करके घर के सामान को खाता है उसी प्रकार वह भी करता था, परन्तु वास्तविकता इससे बहुत दूर है। उसकी विजयें बड़ी शानदार होती थीं। लूट में भी वह कठोर नियमों का

पालन करता था। वह नारियों तथा बालकों पर हाथ नहीं उठाता था। उसका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था।

शिवाजी के उत्तराधिकारी

(१) शम्भा जी—शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र शम्भा जी २२ वर्ष की अवस्था में सन् १६८० ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। **वह वीर और साहसी नवयुवक था, किन्तु उसमें अपने पिता के अन्य गुण विद्यमान नहीं थे। वह विलासी था और मादक द्रव्यों का सेवन करता था।** राज्यसिंहासन पर आसीन होते ही उसने अपने विरोधियों का दमन करना आरम्भ किया और उनको बड़े कठोर दण्ड दिए जिनके कारण शासन-व्यवस्था शिथिल होने लगी। उसका अपने पिता के स्वामी-भक्त सेवकों पर से भी विश्वास उठ गया था। औरंगजेब के पुत्र राजकुमार अकबर ने राजपूतों से मिलकर विद्रोह करने का प्रयत्न किया, किन्तु औरंगजेब की धूर्तता के कारण वह राजपूताना छोड़ने पर बाध्य हुआ। उसने महाराष्ट्र में शम्भा जी के यहाँ शरण ली और शम्भा जी उसकी सहायता करने को तत्पर हो गए।

जब औरंगजेब को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने राजकुमार मुअज्जम और आजम को अकबर को बन्दी करने के लिए दक्षिण भेजा। उन्होंने मरहठों पर आक्रमण किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। मुगलों को इतना लाभ अवश्य हुआ कि इन परेशानियों से भयभीत होकर अकबर फारस चला गया। शीघ्र ही मुगलों ने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों का अन्त कर दिया। शम्भा जी ने इस समय उदासीनता की नीति अपनाई। उधर से निवृत होकर मुगलों ने मरहठों की शक्ति का दमन करने की ओर ध्यान दिया। **सन् १६८९ ई० में मुगलों ने शम्भा जी को उसके अन्य २५ साथियों सहित संगमेश्वर नामक स्थान पर बन्दी कर** लिया। ये औरंगजेब के सामने उपस्थित किए गए, उसने उनका वध करवा दिया।

(१) शम्भा जी।
(२) राजाराम।
(३) शिवाजी द्वितीय।
(४) शाहू।

(२) राजाराम—शम्भा जी ने अपने सौतेले भाई राजाराम को रायगढ़ के दुर्ग में बन्दी कर दिया था, किन्तु जब शम्भा जी का औरंगजेब द्वारा वध करवा दिया गया तो मरहठा सरदारों ने राजाराम को बन्दीगृह से निकाल कर राज्यसिंहासन पर आसीन कर दिया। शम्भा जी के वध के बाद औरंगजेब कुछ निश्चित-सा हो गया था, किन्तु मरहठों ने राजाराम को गद्दी पर बैठाया तो औरंगजेब ने अपनी कार्यवाही आरम्भ की। उसने शीघ्र ही रायगढ़ पर आक्रमण किया। राजाराम अपनी स्त्री तथा बच्चों सहित दुर्ग से निकल भागा। औरंगजेब ने रायगढ़ पर अधिकार किया। कुछ समय तक राजाराम महाराष्ट्र में रहा, किन्तु वहाँ की दशा देखकर कर वह कर्नाटक चला गया, जहाँ उसने जिंजी के दुर्ग में शरण ली। औरंगजेब ने शम्भा जी की स्त्री तथा उसके अल्पवयस्क पुत्र शाहू को बन्दी किया। **इस समय मरहठा जाति ने बड़ी योग्यता, साहस तथा उत्साह का परिचय दिया और**

उन्होंने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा। मुगलों ने समस्त दुर्गों पर अधिकार कर लिया और कर्नाटक में जिंजी पर आक्रमण किया और जिंजी दुर्ग को घेर लिया। यह घेरा ९ वर्ष तक चलता रहा। राजाराम **परिस्थिति से विवश हो गया और** उसने **मरहठा सरदारों को उत्साहित तथा प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से जागीरदारी प्रथा को अपनाया।** उसने यह घोषणा की कि वे प्रदेश उन्हीं सरदारों के होंगे जिन पर वे अपना अधिकार स्थापित करने में सफल होंगे। उसकी यह नीति सफल रही और मरहठा सरदारों ने बड़े उत्साह के विरुद्ध मुगलों से संघर्ष करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मरहठों का अधिकार विभिन्न दुर्गों पर होने लगा। **सन् १६९८ ई० में मुगलों का जिंजी दुर्ग पर अधिकार हो गया, किन्तु राजाराम उनके हाथ न लगा।** उसने सतारा पहुँचकर मरहठा जाति तथा सेना को पुनः संगठित करना आरम्भ किया जिससे कि फिर मुगलों से समस्त प्रदेश छीन लिया जाएँ, किन्तु दुर्भाग्यवश अगले ही वर्ष सन् १७०० ई० में उसका देहान्त हो गया।

(३) **शिवाजी द्वितीय**—राजाराम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र शिवाजी द्वितीय राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसकी आयु कम थी। **उसकी माता ताराबाई ने शासन का समस्त भार अपने ऊपर लिया और मुगलों से संघर्ष जारी रखा।** 'तारावाई' एक अत्यन्त बुद्धिमती तथा वीर रमणी थी। वह शासन-प्रवन्ध की समस्याओं को भली प्रकार समझती थी और उसको युद्ध कला का भी अनुभव था। वह स्वयं एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग में जाती और सैन्य-संचालन करती। मरहठों ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। मुगलों का जिन दुर्गों पर अधिकार था वह केवल नाममात्र का अधिकार था; क्योंकि उनके हाथ कुछ भी नहीं आता था। सन् १७०५ ई० में मरहठों तथा मुगलों में सन्धि की वार्ता आरम्भ हुई, किन्तु कुछ कारणों से सन्धि नहीं हो सकी। मरहठों ने शीघ्र ही कुछ दुर्गों को मुगलों से छीन लिया। इस प्रकार औरंगजेब पूर्णतया असफल रहा। सन् १७०७ई० में औरंगजेब की मृत्यु औरंगाबाद में हुई और उसके पुत्र आजम ने शाहू को मुक्त कर दिया। मरहठों ने शाहू को राजा स्वीकार किया।

(४) **शाहू**—औरंगजेब ने सन् १६८९ ई० में शाहू और उसकी माता को बन्दी किया था। औरंगजेब की मृत्यु तक वह मुगलों का बन्दी रहा। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त मई १७०७ ई० में उसके पुत्र आजम ने जो बहादुरशाह के नाम से राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ शाहू को इस उद्देश्य से मुक्त कर दिया कि **मरहठों में दो दल बन जाएँगे जिसके कारण उनमें गृह-युद्ध होगा जिससे मरहठों की शक्ति का अन्त ही जाएगा।** उसने शाहू को दक्षिण के छः सूबों की चौथ तथा सारदेशमुखी वसूल करने का अधिकार भी प्रदान किया। इस फरमान (आज्ञापत्र) को लेकर शाहू दक्षिण पहुँचा। शीघ्र ही कुछ मरहठा सरदारों ने उसके पक्ष का समर्थन करना आरम्भ किया, किन्तु तारावाई ने उसका विरोध किया। नवम्बर १७०७ ई० में ताराबाई और शाहू की सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ। शाहू विजयी हुआ और जनवरी १७०७ ई० में शाहू ने सतारा पर अधिकार कर अपने को छत्रपति घोषित

किया। जब तक ताराबाई जीवित रही यह युद्ध किसी न किसी रूप में चलता रहा। इसी समय एक और प्रतिद्वन्द्वी शम्भा जी द्वितीय राजनीति में प्रविष्ट हुआ। यह राजाराम की दूसरी स्त्री राजसबाई का पुत्र था। उसने शीघ्र ही ताराबाई और उसके पुत्र शिवाजी को बन्दी कर लिया। निजाम की सहायता से उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी, किन्तु कुछ समय उपरान्त दोनों में सन्धि हो गई और दोनों अपने-अपने अधिकार-क्षेत्र में शासन करने लगे। शम्भा जी द्वितीय कोल्हापुर में और शाहू सतारा में शासन करते थे। इस समय मन्त्रियों तथा सेनापतियों में भी संघर्ष होना आरम्भ हो गया। सन् १७३१ ई० में पेशवा बाजीराव ने सेनापति जिम्बकराव को पराजित किया और धीरे-धीरे पेशवा की शक्ति बढ़ती चली गई। शाहू की मृत्यु १५ दिसम्बर सन् १७४९ ई० को हुई और उसके बाद १७५० ई० में राजाराम छत्रपति हुआ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) राष्ट्रीय वीर शिवाजी के जीवन-वृत्तान्तों का क्रमानुसार वर्णन संक्षेप में कीजिए और उनकी वीरता दर्शाइए। मुगल बादशाह के अंततः पतन के पथ बनवाने का कहाँ तक उनको श्रेय है? दिखलाइए।

(२) छत्रपति शिवाजी किन कारणों से अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए?

(३) महाराजा शिवाजी की शासन-व्यवस्था की व्याख्या कीजिए।

(४) "शिवाजी एक बड़ा वीर योद्धा एवं सफल शासक भी था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(५) मुगल काल में मरहठों को एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में क्यों सफलता मिली।

(६) शिवाजी ने दक्षिण में मरहठा शक्ति का संगठन किस प्रकार किया?

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) शिवाजी के संघर्षों तथा सफलताओं का वर्णन करो।

(२) शिवाजी के व्यक्तित्व तथा चरित्र का मूल्यांकन करो। यह कहना कहाँ तक उचित होगा कि वह मरहठा राष्ट्र का संस्थापक था?

(३) शिवाजी के चरित्र और सफलताओं का मूल्यांकन करो।

(४) शिवाजी की शासन-पद्धति का वर्णन कीजिए।

मध्य भारत—

(१) शिवाजी के राज्य-काल में मरहठों की शक्ति का वर्णन करो।

(२) देश में मरहठों के अभ्युदय के मुख्य कारणों का वर्णन करो।

(३) शिवाजी के उद्देश्य और नीति का वर्णन करो।

(४) शिवाजी की सफलता का क्या रहस्य था? सउदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(५) शिवाजी के समय में मरहठा राज्य के फौजी तथा दीवानी शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो।

१० मुगल और दक्षिण के मुसलमानी राज्य

जिस समय मुगल उत्तरी भारत को अपने अधीन करने में तत्पर थे उस समय दक्षिणी भारत में सात राज्य थे, जिनके नाम इस प्रकार थे—

(१) खानदेश, (२) बरार (३) बीजापुर (४) अहमदनगर (५) गोलकुण्डा (६) बीदर तथा (७) विजयनगर।

इन समस्त राज्यों में विजयनगर जो हिन्दू राज्य था सबसे शक्तिशाली था और उसका मुसलमान राज्यों से सदा संघर्ष रहता था और ये राज्य विजयनगर से ईर्ष्या करते थे। कई बार मुसलमानी राज्यों ने विजयनगर के विरुद्ध संघ बनाए, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। कई बार विजयनगर राज्य भी किसी एक मुसलमानी राज्य के विरुद्ध अन्य राज्यों से मिल गया। यह परिस्थिति पर्याप्त समय तक रही। अन्त में सन् १५६४ ई० में विजयनगर साम्राज्य का अन्त करने के अभिप्राय से मुसलमानी राज्यों से सुदृढ़ संघ की स्थापना कर विजयनगर राज्य पर आक्रमण किया। **तालीकोट के प्रसिद्ध युद्ध-स्थल पर विजयनगर की सेनाएँ परास्त हुईं और मुसलमान अपने उदेद्श्य में सफल हुए।** इस राज्य की महानता लुप्त हो गई, किन्तु इससे मुसलमानों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि विजय के कुछ समय उपरान्त ही मुसलमान राज्यों में मनमुटाव हो गया और वे पारस्परिक युद्धों में तल्लीन हो गए।

अकबर और दक्षिण

उत्तरी भारत की विजयों से निवृत्त होकर अकबर का ध्यान दक्षिण की ओर आकर्षित हुआ। उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। अकबर साम्राज्यवादी भावना से ओत-प्रोत था। उसके दो उद्देश्य थे—**प्रथम वह समस्त भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था।** वह नहीं देख सकता था कि दक्षिण में स्वतन्त्र राज्य बने रहें। **द्वितीय वह दक्षिण पर अधिकार कर भारत-भूमि को पुर्तगालियों से मुक्त करना चाहता था।** यद्यपि इस समय उसके उनसे सम्बन्ध अच्छे थे, किन्तु फिर भी उसको भय था कि वे किसी भी समय भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त बाह्य व्यापार उनके हाथ में था और वे उसमें बहुत अधिक लाभ उठा रहे थे। अकबर ने बहुत दूरदर्शिता की बात सोची, क्योंकि उस समय तक कोई भी राज्य सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह विदेशियों से मुक्ति प्राप्त न कर सके।

जब अकबर ने दक्षिण के अभियान का निश्चय किया तो इस समय वहाँ केवल चार स्वतन्त्र राज्य थे—(१) खानदेश (२) अहमदनगर (३) बीजापुर, और (४) गोलकुण्डा। बरार को अहमदनगर ने और बीदर को बीजापुर ने क्रमशः अपने-अपने राज्यों में सम्मिलित कर लिया था। अकबर ने इन चारों राज्यों के सुल्तानों के

नाम पत्र लिखे कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें, किन्तु खानदेश के अतिरिक्त सबने टाल-मटौल की। अकबर ने दक्षिण के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया।

(१) खानदेश

मुगल और खानदेश के सम्बन्धों का वर्णन करने से पूर्व खानदेश के पूर्व इतिहास का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होगा। मलिक अहमद ने खानदेश में फारुखी वंश की स्थापना की। बाद के सुल्तानों में आदिलशाह द्वितीय बड़ा प्रसिद्ध शासक था। उसके समय में राज्य का बड़ा विस्तार हुआ और उसकी वहुत प्रसिद्धि हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त सन् १५०८ ई० में आदिलशाह तृतीय सुल्तान हुआ। उसके बाद मुहम्मदशाह सुल्तान हुआ। उसकी मृत्यु सन् १५३७ ई० में हुई। उसके बाद मुबारकशाह द्वितीय सन् १५३७ ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसके शासन-काल में मुगलों ने खानदेश पर आक्रमण किया, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ।

अकबर और खानदेश—सन् १५६४ ई० में जब अकबर माँडू में कुछ समय तक रहा तो उसने खानदेश के मुबारकशाह से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की। सुल्तान ने उसकी बात स्वीकार कर अकबर को अपनी पुत्री समर्पित कर दी। जब बहादुरशाह खानदेश का शासक हुआ तो उसने अपने राज्य को मुगलों से मुक्त करने का विचार किया। उसकी धारणा थी कि जब मुगल दक्षिण की विजय करने में सफल हो जायेंगे तो वे खानदेश को भी अपने अधिकार में कर लेंगे। अतः जब मुगलों ने सन् १५९९ ई० में उससे अहमदनगर के विरुद्ध सहायता माँगी तो उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया। इसके उपरान्त उसने अपनी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया। अकबर उसके इस व्यवहार से बड़ा क्रोधित हुआ। उसने शीघ्र ही असीरगढ़ के दुर्ग का घेरा डाला और किलेदारों को लालच के जाल में फँसा कर असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। खानदेश के अन्य प्रदेशों पर भी मुगलों ने अधिकार किया और मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(२) अहमदनगर

दक्षिण के राज्यों में अहमदनगर का राज्य उत्तरी भारत में सबसे निकट था। अतः सर्वप्रथम अकबर की साम्राज्यवादी-नीति का प्रहार इसी राज्य पर हुआ। अहमदनगर पर निजामशाही वंश के शासकों का अधिकार था।

अकबर और अहमदनगर— जब अहमदनगर की ओर से अकबर को सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो सन् १५९३ ई० में अब्दुल रहीम के नेतृत्व में अहमदनगर के विरुद्ध एक सेना भेजी गई। सन् १५९५ ई० में राजकुमार मुराद को भी दक्षिण में अब्दुल रहीम की सहायता करने के लिए भेजा गया। मुगलों ने अपनी कूटनीति से अहमदनगर में दो विरोधी दलों की स्थापना करवाई जिसके कारण अहमदनगर की शक्ति कम हो गई। यद्यपि चाँदबीबी के नेतृत्व में बीजापुरियों ने मुगलों का डटकर सामना किया, किन्तु अन्त में उसको पराजित होना पड़ा और अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु मुगल अहमदनगर को पूर्णतया मुगल-

साम्राज्य में विलीन न कर सके। अकबर के सामने इसी समय कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो गईं जिसके कारण वह अहमदनगर के विरुद्ध दृढ़ नीति का पालन नहीं कर सका और अहमदनगर ने **मलिक अम्बर** के नेतृत्व में अपनी बिखरी हुई शक्ति को पुनः संगठित करना आरम्भ कर दिया और वह उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर के लिए सिर दर्द बन गया।

95 **जहाँगीर और अहमदनगर**—जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि अहमदनगर मलिक अम्बर के नेतृत्व में पुनः संगठित होने लगा। उसने अहमदनगर तथा बरार से मुगलों को भगाकर अहमदनगर के दुर्ग पर सन् १६०८ ई० में अधिकार किया। जहाँगीर ने कई बार मुगल सेनाएँ विभिन्न सेनापतियों के नेतृत्व में भेजीं, किन्तु **मलिक अम्बर** के सामने उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में राजकुमार खुर्रम दक्षिण गया। इस बार मुगलों की सेना से भयभीत होकर **मलिक अम्बर** ने मुगलों से सन्धि की, किन्तु शीघ्र ही मलिक अम्बर ने गोलकुण्डा और बीजापुर की सहायता से सन् १६२० ई० में मुगलों से अहमदनगर को मुक्त कराने के अभिप्राय से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। उसको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। बाध्य होकर राजकुमार खुर्रम पुनः दक्षिण भेजा गया। उसने इतनी तत्परता तथा योग्यता से सैन्य-संचालन किया कि **मलिक अम्बर** को बाध्य होकर सन्धि करनी पड़ी। शीघ्र ही राजकुमार खुर्रम ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया और **मलिक अम्बर** ने उसको सहायता देने का वचन दिया, किन्तु महावतखाँ के दक्षिण आने पर वे कुछ न कर सके। सन् १६२६ ई० में **मलिक अम्बर** की मृत्यु हो जाने से अहमदनगर को बड़ी क्षति हुई। अहमदनगर विजय करने में जहाँगीर पूर्णतया असफल रहा।

✓96 **शाहजहाँ और अहमदनगर**—शाहजहाँ ने अपने को राज्यसिंहासन पर सुदृढ़ कर अहमदनगर की विजय की ओर ध्यान दिया। इस समय अहमदनगर की स्थिति आन्तरिक कलह के कारण बड़ी शोचनीय हो रही थी। इसके अतिरिक्त शाहजहाँ दक्षिण से भली-भाँति परिचित था। उसको शीघ्र ही अहमदनगर पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया। विद्रोही खानेजहाँ लोधी ने अहमदनगर में शरण ली। शीघ्र ही अहमदनगर पर मुगलों ने तीनों ओर से आक्रमण किया। खानेजहाँ अहमदनगर से भाग गया। मुर्तजा की मृत्यु के बाद १० वर्षीय हुसैनशाह अहमदनगर के राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु कुछ समय उपरान्त अहमदनगर ने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर की सहायता प्राप्त कर पुनः युद्ध करना आरम्भ कर दिया। मुगलों ने विद्रोह का दमन किया। हुसैनशाह को बन्दी बनाकर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया, अतः इस प्रकार निजामशाही वंश का अन्त हुआ और अहमदनगर मुगल-साम्राज्य में पूर्णतया विलीन कर लिया गया।

(३) बीजापुर

बीजापुर राज्य की स्थापना सन् १४९० ई० में युसुफ आदिलशाह ने की। बीजापुर एक शक्तिशाली राज्य था और उसने बीदर पर अधिकार कर लिया था।

अकबर और बीजापुर—अकबर ने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह के पास

उसकी सत्ता स्वीकार करने के लिए सन्देश भेजा, किन्तु उसने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की, यद्यपि उसने राजदूतों का अच्छा सम्मान किया तथा सम्राट को कुछ मूल्यवान भेंट भी भेजीं। मुगलों ने उसके उत्तराधिकारी इब्राहीम आदिलशाह के पास भी ऐसा ही सन्देश भेजा। उसने भी उस प्रकार की नीति अपनाई। उसने तो उस समय अहमदनगर की सहायता भी की, जब मुगलों ने अहमदनगर पर आक्रमण किया था। अकबर अपनी अन्य कठिनाइयों में इतना अधिक व्यस्त था कि उसने बीजापुर के विरुद्ध कोई अभियान नहीं किया।

८६ **जहाँगीर और बीजापुर**—जब मुगलों का अहमदनगर से संघर्ष चल रहा था तो बीजापुर को अपनी शक्ति का विस्तार करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ। उसने विभिन्न समयों पर अहमदनगर की सहायता भी की। वह चाहता था कि मुगलों का और अहमदनगर का संघर्ष निरन्तर चलता रहे जिससे कि वे बीजापुर पर आक्रमण न कर सकें। वह मुगलों के राजदूतों का बड़ा सत्कार करता था। उसने एक बार दोनों के बीच मध्यस्थ का कार्य भी किया, जब अहमदनगर ने मुगलों के साथ युद्ध करना आरम्भ किया तो उसने अपनी निश्चित नीति के अनुसार मुगलों के विरुद्ध अहमदनगर की सहायता की। कुछ समय उपरान्त जब **मलिक अम्बर** ने बीजापुर पर आक्रमण किया तो उसने मुगलों के साथ सन्धि कर उसके विरुद्ध उनकी सहायता प्राप्त की।

८५ **शाहजहाँ और बीजापुर**—शाहजहाँ के समय में बीजापुर का सुल्तान आदिलशाह था। शाहजहाँ उसको अपनी ओर मिलाने में सफल हुआ, किन्तु बीजापुर का एक दल मुगलों का विरोधी था। उसने मुगलों पर आक्रमण कर दिया। मुगलों ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। १६३३ ई० में मुगलों ने अपनी पूरी शक्ति से बीजापुर पर आक्रमण किया और उसको तीन ओर से घेर लिया। बाध्य होकर सन् १६३६ ई० में बीजापुर ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की। जब औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ तो उसने बीजापुर के विरुद्ध युद्ध कर उसको मुगल साम्राज्य में विलीन करने का निश्चय किया। बड़े जोर-शोर से मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया। उसके बहुत-से दुर्गों पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु शाहजहाँ के हस्तक्षेप के कारण युद्ध बन्द कर दिया गया। मुगलों और बीजापुर में सन्धि हो गई। सन् १६५२ ई० में औरङ्गजेब फिर एक बार दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसने शाहजहाँ से बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करने की अनुमति प्राप्त कर ली। मुगलों ने बीजापुर पर आक्रमण किया। बीदर पर उनका अधिकार हो गया। बीजापुरिये गुलबर्ग के युद्ध में परास्त हुए। सन् १६५७ ई० में जब वह बीजापुर का पूर्ण दमन करने को उद्यत था उसी समय उसको युद्ध बन्द करने का आदेश प्राप्त हुआ। शीघ्र ही युद्ध का अन्त हुआ और सन्धि की वार्तालाप आरम्भ हो गई। दोनों में सन्धि हो गई, किन्तु उसने शीघ्र ही सन्धि की शर्तों का पालन करने से इन्कार कर दिया।

औरंगजेब और बीजापुर—प्रारम्भ में औरङ्गजेब ने उसकी शिवाजी के विरुद्ध

सहायता प्राप्त की, किन्तु वह शिवाजी का दमन नहीं कर सका। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह ने शिवाजी को अपनी ओर मिलाकर बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। सन् १६६५ ई० में जयसिंह के हाथ में बीजापुर के बहुत-से दुर्ग आ गए, किन्तु बीजापुरिए हतोत्साहित नहीं हुई। जब जयसिंह बीजापुर से केवल ११ मील दूर रह गया था तो उनके द्वारा वह बुरी तरह परास्त हुआ। सन् १६४८ ई० में राजकुमार मुअज्जम बीजापुर-विजय के लिए दक्षिण भेजा गया, किन्तु वह वहाँ के सुल्तान से मिल गया। सन् १६८५ ई० में औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और स्वयं सेना का संचालन किया। बीजापुर की सेना मुगलों का सामना नहीं कर सकी और सन् १६८६ ई० में मुगलों का बीजापुर पर अधिकार हो गया। बीजापुर का सुल्तान बन्दी बनाकर दौलताबाद के दुर्ग में रखा गया, जहाँ १७०० ई० में उसका देहान्त हो गया।

(४) गोलकुण्डा

गोलकुण्डा राज्य की स्थापना सन् १४८९ ई० में कुत्बुलमुल्क ने की थी। यह राज्य शीघ्र ही उन्नति की ओर अग्रसर होने लगा और उसने बड़ी ख्याति पाई।

अकबर व जहांगीर और गोलकुण्डा—अकबर का गोलकुण्डा राज्य से केवल इतना-सा ही सम्पर्क था कि उसने वहाँ के सुल्तान को मुगलों की अधीनता स्वीकार करने को कहा, किन्तु उसने मुगलों की अधीनता तो स्वीकार नहीं की, वरन् मुगल-सम्राट को भेट-स्वरुप पर्याप्त धन दिया। उसने मुगलों के विरुद्ध अहमदनगर को सहायता पहुँचाई। जहांगीर का भी गोलकुण्डा राज्य से कोई विशेष प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा। गोलकुण्डा राज्य ने सदा अहमदनगर की सहायता की, किन्तु उसने युद्ध में विशेष भाग नहीं लिया। वह अहमदनगर और बीजापुर राज्यों की इस उद्देश्य से सहायता करता रहता था जिससे कि मुगल उन्हीं राज्यों में उलझें रहें और उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न करें।

शाहजहाँ और गोलकुण्डा—बीजापुर से निश्चित होकर शाहजहाँ का ध्यान गोलकुण्डा की ओर आकर्षित हुआ। उसने गोलकुण्डा के साथ भी सन्धि कर ली, किन्तु यह अधिक काल तक नहीं चल सकी। मुगलों ने यह माँग की कि गोलकुण्डा में शिया रीति-रिवाजों का पालन न किया जाए और वे शाहजहाँ को अपना सम्राट स्वीकार करें। गोलकुण्डा के सुल्तान ने उसकी शर्तों को स्वीकार कर लिया। औरंगजेब जब दक्षिण का सूबेदार था तो गोलकुण्डा राज्य में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो गई। उसने उसका फायदा उठाना चाहा। उसको आक्रमण करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। सन् १६५६ ई० में मुगलों ने गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया। मुगल विजयी हुए और गोलकुण्डा का सुल्तान सन्धि करने को बाध्य हुआ। इसी समय फिर सघर्ष आरम्भ हो गया, किन्तु शाहजहाँ के हस्तक्षेप के कारण युद्ध का अन्त हुआ। दोनों में पुनः सन्धि हो गई।

औरंगजेब और गोलकुण्डा—बीजापुर को मुगल साम्राज्य में विलीन करने के उपरान्त औरंगजेब ने गोलकुण्डा के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। सन् १६८७

में मुगलों ने गोलकुण्डा की सेनाओं को परास्त किया, किन्तु दुर्ग मुगलों के अधिकार में नहीं आया। अतः मुगलों ने धन का लालच देकर दुर्ग के द्वार खुलवाए और शीघ्र ही दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। इस प्रकार गोलकुण्डा का पतन हुआ और वह मुगल-साम्राज्य में विलीन कर लिया गया।

औरंगजेब की दक्षिण नीति के परिणाम—औरंगजेब की दक्षिण नीति भी मुगल साम्राज्य के पतन में विशेष उत्तरदायी सिद्ध हुई। उत्तर की समस्याओं का समाधान करने के उपरान्त उसने दक्षिण के राज्यों को मुगल-साम्राज्य में विलीन करने के हेतु दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। **उसने दक्षिण में लगभग २५ वर्ष व्यतीत किए और इस सम्पूर्ण काल में वह अनवरत रूप से दीर्घकालीन युद्ध दक्षिण में करता रहा जिसके कारण साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचा।** (i) युद्धों में बहुत अधिक धन का व्यय हुआ, जिसकी पूर्ति विजयों द्वारा नहीं हो पाई। इससे राजकोष खाली हो गया और जनता को अधिक करों का भार सहन करना पड़ा। (ii) इसके कारण उत्तरी भारत के शासन में शिथिलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। जनता पर कर्मचारियों की ओर से कठोर व्यवहार किया जाने लगा। (iii) इन युद्धों में बहुत-से व्यक्ति मारे गए। (iv) उसके द्वारा गोलकुण्डा तथा बीजापुर राज्यों का अन्त करने से मरहठा शक्ति को उत्थान का अवसर प्राप्त हुआ। उनको आत्म-रक्षा के उद्देश्य से युद्ध करना पड़ा और जब उनको सफलता मिलती गई तो उन्होंने उत्तरी भारत की ओर सेनाओं के साथ प्रस्थान करना आरम्भ किया। (v) उनको उन हिन्दू अफसरों तथा सामन्तों द्वारा भी सहयोग मिला जो औरंगजेब की अन्यायपूर्ण नीति के कारण उससे अप्रसन्न थे और साम्राज्य के पतन की बाट जोह रहे थे। (vi) मरहठों और राजपूतों में मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही हिन्दू मुगल-साम्राज्य के शत्रु के रूप में भारतीय राजनीति में भाग लेने लगे। इन्हीं परिणामों से दक्षिण ने नासूर (ulcer) का रूप धारण किया।

औरंगजेब की असफलता के कारण—औरंगजेब अपनी दक्षिण की नीति में पूर्णतया असफल रहा। उसकी असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **औरंगजेब का धार्मिक कट्टरपन**—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था जिससे प्रभावित होकर वह दक्षिण के शिया मुसलमानी राज्यों तथा मरहठों को अपना शत्रु समझता था। मरहठों को ये राज्य सहायता प्रदान करते थे जिससे वे मुगलों का सामना कर सकें।

(२) **मरहठों का हिन्दुत्व**—मरहठों में हिन्दुत्व की भावना पूर्णरूपेण विद्यमान थी, जिसके कारण वे मुसलमानों का सामना करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।

(३) **औरंगजेब का अत्याचार**—औरंगजेब ने धार्मिक अत्याचार बहुत अधिक मात्रा में किया जिसके कारण उसको किसी भी क्षेत्र से सहायता प्राप्त नहीं हुई।

(४) **औरंगजेब का स्वभाव**—औरंगजेब किसी पर विश्वास नहीं करता था,

यहाँ तक कि उसको अपने पुत्रों पर भी विश्वास नहीं था जिसके कारण उसकी हृदय से कोई सहायता नहीं करता था।

(५) मुगलों की सैनिक दुर्बलता—मुगलों की सेना में पर्याप्त दुर्बलताएँ विद्यमान थीं जिसके कारण वह मरहठों का दमन ठीक प्रकार से नहीं कर सका। मरहठों ने समस्त जातियों के लोगों को अपने झण्डे के नीचे जमा किया और गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली से मुसलमानी सेना के दाँत खट्टे कर दिए।

(६) औरंगजेब की अयोग्यता—औरंगजेब की यह विशेष भूल रही कि उसने दक्षिण के समस्त राज्यों के विरुद्ध एक साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। उसके लिए यह आवश्यक था कि एक के साथ युद्ध करता और दूसरों के साथ मित्रता बनाए रखता। उसको एक-एक कर समस्त राज्यों को अपने अधिकार में करना चाहिए था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर-प्रदेश

(१) मुगलों की दक्षिण नीति पर प्रकाश डालिए।

(२) औरंगजेब की दक्षिण के प्रति क्या नीति थी? उसके परिणामों का उल्लेख करो।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगलों ने किस प्रकार दक्षिण को अपने अधिकार में किया?

११

मुगलों की धार्मिक नीति

अधिकांश दिल्ली सल्तनत के शासकों की नीति धर्मान्ध थी। उनका हिन्दुओं के साथ बड़ा कठोर व्यवहार था, किन्तु इस काल में भी कुछ ऐसे शासक हुए हैं; जिन्होंने समय के स्तर से उठकर राजनीति और धर्म को एक दूसरे से पृथक् समझा और उन्होंने हिन्दुओं के साथ न्यायोचित व्यवहार किया। पर्याप्त समय तक हिन्दुओं और मुसलमानों में विशेष कटुता रही और वे एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु बहुत समय तक एक साथ रहने के कारण दोनों में समीप्य होने लगा और दोनों धर्मों के साधु-सन्तों ने एक दूसरे को एक साथ तथा समीप लाने का घोर प्रयत्न किया। **इस काल में भक्ति आन्दोलन का बड़ा महत्व रहा और उसका कार्य विशेष सराहनीय था।** विश्व के इतिहास में सोलहवीं शताब्दी धार्मिक जागृति व पुनरुत्थान का युग था। यदि भारत में मुगलों ने, तो इङ्गलैण्ड में रानी एलिजाबेथ ने धार्मिक उदारता का परिचय दिया। दोनों ही ने अपने राष्ट्र के राष्ट्रीय शासक बनने की ओर कदम उठाया और विश्व में एक नये और महत्वपूर्ण युग का आरम्भ हुआ। **प्रोफेसर** सिन्हा के शब्दों में, "सोलहवीं शताब्दी विश्व के इतिहास में पुनरुत्थान का युग है—भारत में भी एक नवीन जागृति हुई जिसके फलस्वरूप विकास का युग प्रारम्भ हुआ तथा राष्ट्रीय जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। इस जागरण का सबसे प्रधान तत्व प्रेम तथा उदारता की भावना थी। हिन्दु तथा मुसलमान दोनों को इस भावना ने उच्च आदेशों द्वारा इस प्रकार प्रभावित किया कि थोड़े काल के लिए वे जातीय वैमनस्य भूल गये।"*

मध्यकालीन और विशेषतः दिल्ली सल्तनत का इतिहास स्पष्ट कर चुका है कि हिन्दू अपने धार्मिक गौरव को समझते हैं और वे उसका बलिदान करने के लिए उद्यत नहीं किए जा सकते। राजनीति को धर्म से पूर्णतया पृथक् करना एक राष्ट्रीय तथा सुदृढ़ शासक के लिए आवश्यक है। **शक्ति के आधार पर संस्थापित किया हुआ राज्य अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता। उसको जनता के विचार तथा मनोवृत्ति पर ध्यान अवश्य देना होगा, क्योंकि वास्तव में राज्य का आधार शक्ति न होकर**

---

* "The sixteenth century is a century of religious revival in the history of the world...India experienced an awakening that quickened her progress and vitalized her national life. The dominant note of this awakening was love and liberalism...With glorious ideals it inspired the Hindus and Muslims alike, and they forgot for a time the trivialities of their creed. To the Muslim and to the Hindu, it heralded the dawn of a new era, to the Muslim with the birth of the promised mahdi, to the Hindu with the realization of the all-adoring law of God."

—Prof. Sinha.

इच्छा है।* धर्म के नाम पर हिन्दुओं का मुसलमानी राज्य के विरुद्ध उठ खड़ा होना सम्भव था और धर्मान्ध धार्मिक नीति के अपनाने से यह अवसर शीघ्र आ सकता था।

बाबर की धार्मिक नीति

बाबर कट्टर सुनी मुसलमान था। वह दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता था और रमजान के महीने में व्रत रखता था, किन्तु वह उन कार्यों को भी करता था जिसकी अनुमति मुसलमान धर्म प्रदान नहीं करता था। वह शराब का सेवन करता था और बार-बार शपथ लेने पर भी उसका परित्याग नहीं कर सका। वह सुरा और सुन्दरियों में अपना जीवन व्यतीत करता था, किन्तु वह भगवान से डरता था और वह समझता था कि भगवान की कृपा से ही उसकी विजय हुई है। उसने मुसलमानों के धार्मिक उत्साह तथा जोश का लाभ उठाया, **किन्तु वह धर्मान्ध नहीं था और न उसका इस्लाम धर्म के कार्य-कलापों पर दृढ़ विश्वास था।** उसने जब फारस के शाह की सहायता माँगी तो उसने एक शिया स्त्री से विवाह किया और उसके पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसने शिया धर्म स्वीकार कर लिया था। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह समय के अनुसार अपने धार्मिक सिद्धान्तों में परिवर्तन ला सकता था। **बाबर ने भारत में आने पर हिन्दुओं का धर्म के नाम पर रक्तपात नहीं किया।**

हुमायूँ की धार्मिक नीति

हुमायूँ की धार्मिक नीति पूर्णतया अपने पिता बाबर के समान थी। अपनी माता के प्रभाव के कारण वह शिया धर्म की ओर विशेष रूप से प्रभावित था, किन्तु **बाद में उस पर सूफी रहस्यवाद का विशेष प्रभाव पड़ा और वह धार्मिक आडम्बरों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा।** फारस के शाह के कहने पर उसने शिया धर्म को स्वीकार किया, किन्तु उसने धर्मान्ध नीति का कभी अनुकरण नहीं किया। उसके **धार्मिक विचार उदार थे। उसने कभी भी धर्म के नाम पर हिन्दुओं का रक्तपात नहीं किया और न इस कारण उसने किसी हिन्दू राजा के विरुद्ध आक्रमण किया तथा न ही हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अंगीकार करने के लिए बाध्य किया।**

(1985)

अकबर की धार्मिक नीति

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक पुनरुत्थान आरम्भ हुआ और आरम्भ में भी भक्ति-आन्दोलन ने दोनों सम्प्रदायों के लोगों में सद्भावना तथा प्रेम जागृत करने की ओर विशेष महत्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि दोनों सम्प्रदायों का समन्वय होना आरम्भ हो गया था और इस समय उनमें वह कटुता, द्वेष, घृणा आदि न रह गई थी जो दिल्ली सल्तनत के काल में थी जिसमें एक वर्ग शासक और दूसरा वर्ग शासित के रूप में माना जाता था।

अकबर की धार्मिक नीति को उदार बनाने वाली बातें—अकबर इसी न

---

1. "Will not force is the basis of state."

7.11.80

युग का प्रतिनिधि था।[1] उसके धार्मिक विचार इस नवीन धार्मिक विचार-धारा तथा लहर के अनुसार थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रभावशाली परिस्थितियाँ भी थीं जिसने उसको विशेष रूप से प्रभावित किया। निम्न पंक्तियों में उसके ऊपर अलग-अलग विचार किया जाएगा—

(१) **पैतृक प्रभाव**—अकबर के पैतृक प्रभाव से उसके हृदय तथा मस्तिष्क में शुद्ध भावना जागृत हुई, जिसके द्वारा उसके ऊपर समकालीन वातावरण का प्रभाव पड़ सका और जिसका उचित प्रदर्शन वह अपने जीवन में करने में सफल हुआ। तैमूर **के वंशज और उसके उत्तराधिकारियों में धार्मिक कट्टरता तथा इस कारण भोली-भाली जनता का रक्तपात करने की प्रवृत्ति का सदा अभाव था।** बाबर और हुमायूँ दोनों की ही धार्मिक नीति में उदारता तथा सहिष्णुतापूर्ण थी। अकबर को उनके ये गुण उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुए। अकबर की माता हमीदाबानू बेगम भी बड़ी उदार तथा सहिष्णु महिला थी। उसके विचार सूफी मत से प्रभावित थे। **श्री एन० एस० सी० मेहता** के अनुसार, 'बाबर के आगमन से ही मुगल नीति सभी सूत्रों को एक सूत्र में बाँधकर तथा विभिन्न मतावलम्बियों को एकता का रसास्वादन कराकर समस्त भारत को एक राष्ट्र के सूत्र में परिणित करने की थी।"[2]

अकबर की धार्मिक नीति को उदार बनाने वाली बातें

- (१) पैतृक प्रभाव।
- (२) शिक्षकों तथा संरक्षकों का प्रभाव।
- (३) सूफी सिद्धान्तों का प्रभाव।
- (४) राजपूतों का प्रभाव।
- (५) भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव।
- (६) धार्मिक आचार्यों का प्रभाव।
- (७) राजनीतिक महत्वाकांक्षा।
- (८) धार्मिक सत्ता पर अधिकार करने की भावना।
- (९) धार्मिक तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति।

(२) **शिक्षकों तथा संरक्षकों का प्रभाव**—अकबर पर शिक्षकों तथा संरक्षकों के विचारों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा जैसा कि प्रत्येक बालक पर होता है, क्योंकि बाल्यकाल से वह इनके ही अधिक सम्पर्क में अपना जीवन व्यतीत करता था। **अकबर ऐसे ही संरक्षक तथा शिक्षक के सम्पर्क में आया जिसके धार्मिक विचार बड़े उदार तथा सहिष्णुता थे।** अकबर का शिक्षक अब्दुल लतीफ और उसके संरक्षक बैरमखाँ दोनों शिया धर्मावलम्बी थे। उनमें धार्मिक उदारता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी और वे सूफी मत से विशेष प्रभावित थे।

(३) **सूफी सिद्धान्तों का प्रभाव**—अकबर सूफी सिद्धान्तों से बड़ा प्रभावित हुआ। इनके द्वारा उनके मस्तिष्क में उदार भावनाओं तथा उच्च आदर्शों का संचार हुआ और उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न होने लगी कि वह अनिवर्चनीय ईश्वरीय

---

[1] "Akbar was the representative of the New Age."

[2] "The Mughal policy ever since the advent of Babar may justly be regarded as laudable attempt at welding the different elements present in the country into one harmonious whole and uniting the members of the different faitsh into Indian nation."

—N. C. Mehta.

आनन्द का सुख प्राप्त करे। सूफी लोग धार्मिक आडम्बरों में विश्वास नहीं करते और चरित्र की पवित्रता तथा शुद्धता को विशेष महत्व देते हैं अकबर के दरबार में **शेख मुबारक तथा उसके दो पुत्र फैजी और अबुलफजल विद्यमान थे**। ये बड़े विद्वान तथा सूफी सिद्धान्तों के अनुयायी थे। इनकी संगति का अकबर पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह इस्लाम की कट्टरता का विरोधी बनने लगा।*

(४) **राजपूतों का प्रभाव**—अकबर के धार्मिक विचारों को उदारता प्रदान करने में राजपूतों का प्रभाव विशेष रूप से था। अकबर का राजपूतों के साथ बड़ा निकटतम सम्बन्ध था। उसका जन्म राजपूतों की छत्रछाया में हुआ था। **उसके बाद उसका राजपूत कन्याओं से विवाह हुआ और राजपूत उसकी सभा तथा सेना में कार्य करने लगे।** उनकी उत्कृष्ट तथा बहुमूल्य सेवाओं तथा संगति का उस पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इसकी राजपूत पत्नियों ने अपने धर्म का परित्याग नहीं किया, वरन् जीवन भर अपने धर्मानुसार आचरण करती रहीं।

(५) **भक्ति-आन्दोलन का प्रभाव**—तब भारत में धार्मिक जागरण की लहर तीव्र गति से चल रही थी और बुद्धिमान व्यक्ति व्यर्थ के धार्मिक बाह्य आडम्बरों का विरोध कर पवित्र धर्म की ओर मानव का ध्यान आकर्षित करने की ओर प्रयत्नशील थे। **इस समय के विचारों ने प्रेम और उदारता की शिक्षा दी और दोनों धर्मों के अनुयायियों में अच्छे सम्बन्ध उत्पन्न करने की ओर प्रयत्नशील हुए।** जनता पर इसका प्रभाव पड़ा और इस प्रभाव से अकबर जैसा कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति भी प्रभावित होने से न बच सका।

(६) **धार्मिक आचार्यों का प्रभाव**—भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित होकर अकबर विभिन्न धार्मिक आचार्यों से प्रभावित हुआ जो उसकी संगति में आए। हिन्दुओं में वह **पुरुषोत्तम** तथा **देवी** से विशेष प्रभावित हुआ। उनके सत्संग के कारण उसके धार्मिक विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ। जैन आचार्यों में हरिविजय **सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचन्द्र** ने विशेष रूप से उसको प्रभावित किया। इनके प्रभाव में आकर वह अहिंसा के महत्व को समझ गया और उसने कुछ दिनों के लिए मांस-भक्षण निषेध कर दिया तथा पशुओं का वध भी। **अकबर पर ईसाई, सिख तथा पारसी आदि के धार्मिक आचार्यों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा।** पारसियों के प्रभाव में वह सूर्य की उपासना करने लगा। ईसाइयों का भी प्रभाव उस पर विशेष रूप से पड़ा। अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार अकबर इस धर्म से इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि वह इस धर्म को स्वीकार करने के लिए तैयार था, किन्तु कुछ व्यक्तिगत कारणों से वह इस धर्म को अंगाकार नहीं कर सका।

(६) **राजनीतिक महत्वाकांक्षा**—अकबर बड़ा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। वह समस्त भारत को अपनी पताका के अन्तर्गत करना चाहता था। भारत की राज-

---

* "The doctrines of Sufism saturated his mind with liberal and sublime ideas, carried him away from the path of Islamic orthodoxy and made him earnestly seek to attain the ineffable bliss of direct contact with Divine Reality.

नीतिक स्थिति का अध्ययन कर वह समझ गया था कि **उसकी यह महत्वाकांक्षा केवल उसी समय पूर्ण हो सकती है जब वह भारत में निवास करने वाले बहुसंख्यक हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार करे और उनके धर्म को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाए।** हिन्दू सब कुछ खो सकते हैं, किन्तु अपना धर्म नहीं। जब उसकी समझ में यह आ गया तब उसने धार्मिक उदारता की नीति को अपनाकर उनके साथ उचित व्यवहार करना आरम्भ किया और उनकी सेवाएँ साम्राज्य के लिए प्राप्त कीं। उन्होंने मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ करने में किसी प्रकार की कमी नहीं की।

(८) **धार्मिक सत्ता पर अधिकार करने की भावना**—अकबर धर्म की सत्ता पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था। उस समय धर्म पर मुल्लाओं का विशेष अधिकार था और वे राजनीति में विशेष हाथ रखते थे। राजनीति और धर्म एक साथ चलते थे। अकबर को यह विचार उचित न जंचा; क्योंकि इसके कारण सम्राट मुल्लाओं के हाथ की कठपुतली का रूप धारण कर लेता है। इसके अतिरिक्त मुल्लाओं की छोटी-सी बात के कारण तीव्र वाद-विवाद उत्पन्न हो जाता था, जिसके कारण इस्लाम धर्म पर से उसका विश्वास कम होने लगा था। **मुल्लाओं की धार्मिक कट्टरता ने भी उसके हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा जागृत की।**[1]

(९) **धार्मिक तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति**—अकबर की प्रवृत्ति बड़ी धार्मिक तथा जिज्ञासु थी। वह धार्मिक विषयों पर घोर चिन्तन किया करता था और स्वयं किसी निष्कर्ष विशेष तक पहुँचने की ओर प्रयत्न करता था।[2] वह सत्य की खोज बराबर करता था और इसी उद्देश्य से सन् १५७५ ई० उसने फतहपुर सीकरी में 'इबादतखाना' अर्थात् पूजा-गृह की स्थापना करवाई, जहाँ धार्मिक वाद-विवाद हुआ करते थे, जिनमें विभिन्न धर्मों के विद्वान् भाग लेते थे। इसका लाभ सम्राट को यह हुआ कि **वह समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्तों को समझने में सफल हुआ और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सब धर्मों में सत्य का अंश अवश्य है और मानव में धार्मिक कट्टरता उसकी अनुदार प्रवृत्ति के कारण जागृत होती है।**

अकबर के धार्मिक विचारों का विकास—अकबर के धार्मिक विचारों में परिवर्तन किसी एक कारणवश नहीं, अपितु विभिन्न परिस्थितियों के विभिन्न समयों पर उत्पन्न होने के कारण शनैः शनैः हुआ। अकबर जिज्ञासु था और सत्य की खोज में निरन्तर संलग्न रहता था। प्रारम्भ में उसने इस बात को जानने का प्रयत्न किया कि विश्व का कौन-सा धर्म सर्वोत्तम है और विभिन्न धर्मों के मध्य संघर्ष आदि के

---

[1] "The learned men used to draw the sword of the tongue on the battle-field of mutual contradiction and opposition and antagonism of the sects reached such a pitch that they could call one another fools and heretics. The controversies used to part beyond the differences of Sunni and Shia, of Haniff and shafi, lawyers and divine, and they would attack the very basis of belief."
—Badauni.

[2] "He would sit many a morning alone in prayer and melancholy, on a large flat stone of an old building near the palace in a lonely spot with his head bent over his chest and gathering the bliss of early hours. —Badauni.

क्या कारण हैं। इन समस्त धर्मों में सत्य का अंश विद्यमान है और झगड़ों का कारण धर्म न होकर उनके अनुयायियों तथा आचार्यों में धार्मिक अन्धविश्वास की बहुलता है। अतः उसने एक नए धर्म **'दीन-इलाही'** का प्रतिपादन किया जिसके द्वारा वह मानव में से धार्मिक अंध-विश्वास का अन्त करना चाहता था।

डाक्टर विन्सेंट स्मिथ ने अकबर के धार्मिक विचारों का विकास तीन भागों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं—

धार्मिक विचारों के विकास के तीन भाग

(१) सन् १५५६ से १५७५ तक।
(२) सन् १५७६ से १५८५ तक।
(३) सन् १५८५ के बाद।

(१) सन् १५५६ से १५७५ ई० तक—**इस काल में अकबर ने एक सच्चे मुसलमान के समान इस्लाम धर्म के नियमों तथा सिद्धान्तों का पालन किया।** वह प्रतिदिन पाँच वक्त नमाज पढ़ता था, रमजान के महीने में रोजे रखता था तथा मुल्लाओं और मौलवियों को आदर एवम् श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। वह मुसलमान साधु-सन्तों का आदर करता था। वह दरगाहों का दर्शन करने जाता था। वह इस्लाम धर्म के विरोधियों को दण्ड देने में तनिक भी संकोच नहीं करता था। एक बार उसने मुल्लाओं के कहने से शेख मुबारक को उसके धार्मिक विचारों के कारण दण्ड देने की आज्ञा दी, किन्तु उसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। **अपने संरक्षक बैरम खां, अपनी माता हमीदा बानू बेगम तथा अपने गुरु अब्दुल लतीफ के कारण वह शिया सिद्धान्तों की ओर आकर्षित होने लगा और उसमें धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता का अंकुर उत्पन्न होने लगा था।** इस काल में उसका राजपूत कन्याओं से विवाह हुआ और वह राजपूत जाति के गुणों से परिचित हुआ जिसके कारण उसने उनको उच्च पदों पर आसीन कर उनका प्रेम और श्रद्धा प्राप्त की, जिसने मुगल-साम्राज्य की बहुत सेवा की। उसने हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करने के अभिप्राय से जजिया आदि करों को स्थगित कर दिया था। परन्तु इन सबसे उस धार्मिक आचरणों में कोई विशेष अन्तर उत्पन्न नहीं हो पाया था। इस उदार नीति का सम्बन्ध उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा से था जिसके अन्तर्गत वह एक चिरस्था तथा संगठित शासन की स्थापना समस्त भारत में करने का विचार रखता था।

(२) सन् १५७६ से १५८५ ई० तक—अकबर के धार्मिक विचारों के विका में वह द्वितीय काल था जिसका आरम्भ सन् १५७६ ई० से हुआ और जिसका अन सन् १५८५ ई० में हुआ। **इस काल में उसका हृदय इस्लाम धर्म की कट्टरता त वाह्य आडम्बरों से हटकर सत्य की खोज में अन्य धर्मों की ओर आकृष्ट हुआ औ सब धर्मों की अच्छाइयों को सम्मिलित कर उसने एक नए धर्म का प्रचलन किया 'दीन-इलाही' के नाम से विख्यात है।**

(क) इबादत खाने या पूजा-गृह की स्थापना—जब अकबर ने इस्लाम ध द्वारा सत्य की खोज करने में अपने आपको असमर्थ पाया तो उसका ध्यान स्वाभावि रूप से अन्य धर्मों की ओर आकर्षित होना आरम्भ हुआ। **उसने सन् १५७५ ई**

में फतहपुरसीकरी में 'इबादतखाने' का निर्माण करवाया। इसके निर्माण करने का उद्देश्य यही था कि समय-समय पर विभिन्न धर्मों के आचार्यों में इस स्थान पर वाद-विवाद कराया जाए और उनके वाद-विवाद के आधार पर सत्य की खोज की जाए। इस्लाम धर्म का नेतृत्व **मखदूम-उल मुल्क और शेख अब्दुलनबी** ने किया था और विरोधी दल का नेतृत्व **शेख मुबारक** ने किया था। इससे शिया और सुन्नियों में बड़ी कटुता उत्पन्न हो गई और इन मत-भेदों तथा संघर्ष के कारण अकबर इस्लाम धर्म को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। कुछ समय उपरान्त उसने 'इबादतखाने' में धार्मिक वाद-विवाद का आयोजन करवाना स्थगित कर दिया, क्योंकि इससे लाभ के स्थान पर हानि अधिक होने लगी थी।

(ख) **आत्म-चिन्तन**—अब सम्राट ने अपना ध्यान आत्म-चिन्तन की ओर लगाया जिसके कारण उसमें विशेष परिवर्तन हुए। उसको आखेट तथा मांसाहार करने से घृणा होने लगी। उसने केवल निश्चित दिन ही मांस खाना आरम्भ कर दिया और यह घोषणा करवाई कि केवल निश्चित दिन ही पशु-वध करवाया जाए।

(ग) **पुर्नविवाद की व्यवस्था**—कुछ समय उपरान्त अकबर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'इबादतखाने' में पुर्नविवाद की व्यवस्था की जाए और उसमें अन्य धर्मों के आचार्यों को भी आमन्त्रित किया जाए। **इस समय कट्टर इस्लाम धर्म के अनुयायी दो दलों में विभक्त हो चुके थे जिनमें बड़ा वाद-विवाद तथा झगड़े होने आरम्भ हो गए थे।** अकबर को शान्ति प्राप्त नहीं हुई। उसने पारसी, ईसाई, जैन तथा हिन्दुओं के आचार्यों को वाद-विवाद में सम्मिलित होने को बुलाया। उनके विचारों तथा सिद्धान्तों का प्रभाव अकबर पर तीव्र गति से पड़ने लगा। प्रत्येक यह समझने लगा कि अकबर शीघ्र ही उनके धर्म का अनुयायी हो जाएगा,* किन्तु उसने किसी भी धर्म को अंगीकार नहीं किया। अंग्रेज इतिहासकारों की यह धारणा है कि अकबर का झुकाव ईसाई धर्म की ओर विशेष रूप से था, किन्तु अकबर के व्यवहार से ऐसी कोई बात स्पष्ट नहीं होती थी। वास्तव में इस्लाम धर्म से असन्तुष्ट होकर ही उसने वाद-विवाद द्वारा अन्य धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन किया और उसके कारण ही उसमें यह धार्मिक जागृति तथा परिवर्तन का उदय हुआ।

(घ) **मुल्लाओं के नियन्त्रण का अन्त करना**—इसके अतिरिक्त अकबर मुल्लाओं के नियन्त्रण से मुक्त होना चाहता था। वह अपनी राजनीतिक शक्ति पर मुल्लाओं के प्रभाव तथा नियन्त्रण को सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि इनके कारण उसको इस्लाम धर्म की कट्टरता सहन करनी होती जो साम्राज्य के लिए घातक थी। **उसने राज्य को धर्म के अनुचित व्यवहार से स्वतन्त्र रखने का निश्चय किया। सन् १५७८ ई० में शेख मुबारक ने उससे प्रस्ताव किया कि वह धार्मिक क्षेत्र में भी सर्वोच्च पद ग्रहण करे।** अकबर ने सहर्ष उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया। धार्मिक

---

* "Went so far in relation to each religion that different people had reasonable grounds of affirming him to be a Zorastrian, a Hindu, a Jain or a Christian."

—**Smith.**

प्रधानता प्राप्त करने के लिए उसने धीरे-धीरे कार्य करना आरम्भ किया। जून १५७९ ई० में उसने फतहपुर सीकरी की मस्जिद के धर्म प्रचारक को पदच्युत किया और अपने आपको धर्म का प्रधान घोषित करने के उद्देश्य से अपने नाम से खुतबा पढ़वाया, जिस प्रकार मुहम्मद तथा उसके उत्तराधिकारी खलीफ़ा खुतबा पढ़वाते थे। शेख मुबारक के योग्य तथा सुशिक्षित पुत्र ने इस ख़ुतबे को छन्द-बद्ध किया।

इससे कट्टर पंथी मुसलमान अकबर के विरोधी हो गए और उन्होंने उसका विरोध करना आरम्भ कर दिया, किन्तु अकबर अपनी बात पर डटा रहा और उसने विरोधियों का कठोरता से दमन किया। **सितम्बर १५७९ में उसने एक अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाया और 'इस्लाम-ए-आदिल' बनने का निश्चय किया जिसका मसविदा अबदुल फजल ने तैयार किया। उसने एक अधिकार-पत्र** (Infallibility decree) **घोषित किया।** यह इस्लाम धर्म के नेताओं के हस्ताक्षरों द्वारा प्रकाशित हुई। इस पर शेख मुबारक के साथ मखदूमउलमुल्क तथा अब्दुलनबी के भी हस्ताक्षर थे। इनके द्वारा अकबर के हाथ में धार्मिक सत्ता आ गई और उसका निर्णय अन्तिम हो गया।* कट्टर मुसलमानों को यह उचित न लगा और उन्होंने अकबर के विरुद्ध बहुत आरोप लगाए, किन्तु अकबर इनसे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में डाक्टर **स्मिथ** का मत है कि इस आज्ञा ने इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धान्तों का खण्डन किया, किन्तु वास्तविकता यह थी कि इनके द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं किया गया, वरन् परिवर्तन धार्मिक संगठन तथा प्रबन्ध में किया गया था। वह मुहम्मद साहब में श्रद्धा तथा उनके प्रति आदर प्रदर्शित करने के कारण अजमेर गया, किन्तु उसके आलोचकों ने उसको दिखावे का प्रदर्शन ही कहा है।

(ङ) नए धर्म की खोज—उक्त कार्यों के करने के उपरान्त अकबर का ध्यान धार्मिक और राजनीतिक प्रधानता की विलोमता की ओर आकर्षित हुआ। वह विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ, किन्तु अनेक कारणों से वह किसी एक धर्म को न अपना सका और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि एक ऐसे नवीन धर्म का प्रतिपादन किया जाए जिसको सब धर्मों के अनुयायी सरलतापूर्वक अपना सकें। उसने **दीन-इलाही धर्म का प्रचलन किया जो ईसाई लेखक बारटोली के शब्दों में,** 'विभिन्न

---

* "This "Infallibility Decree" made Akbar the supreme arbiter in all cases spiritual and temporal, and thus it was laid down that should in future a religious question come regarding which the opinions of the mujtahids are at variance, and his Majesty in His penetrating understanding and pear wisdom be inclined to adopt for the benefit of the nation and as a political expedient, any of the conflicting opinions which exist on that point and should issue a decree to that effect, we do hereby agree that such a decree shall be binding on us and on the whole nation: provided always that such order be not only in accordance with some verse of the Quran, but also of real benefit of the nation, and further, that any opposition on the part of his subjects to such an order passed by His Majesty shall involve domination in the world to come and loss of property and religious privileges in this."

—Quoted from Sarkar and Dutta's Modern History. Part I, pp. 320-321.

धर्मों के सम्मिश्रण से बना जिसमें कुछ सिद्धान्त मुहम्मद साहब की कुरान, कुछ ब्राह्मणों के धार्मिक ग्रंथों और कुछ ईसामसीह के धार्मिक ग्रंथ से लिए गए थे।'*

दीन-इलाही धर्म

जैसा उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अकबर ने दीन-इलाही धर्म का प्रचलन धार्मिक और राजनीतिक प्रधानता का विलोम करने के कारण किया। इस धर्म की राजकीय घोषणा सन् १५८१ ई० में की गई।

दीन-इलाही धर्म के सिद्धान्त—अब्बुल फजल **'आइने अकबरी'** के ७७ वें आईन में दीन-इलाही का विवरण दिया है। इस धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

(१) ईश्वर एक है और अकबर उसका पैगम्बर है।

(२) मांस-भक्षण इस धर्म के अनुयायियों के लिए निषेध था।

(३) इस धर्म के अनुयायियों को सम्राट के सामने सिजदा (साष्ठांग प्रणाम) करना पड़ता था। यह प्रथा केवल सम्राट के प्रति आदर और श्रद्धा प्रकट करने के लिए थी।

(४) सब को सूर्य तथा अग्नि की उपासना करना अनियार्य था।

(५) इसके अनुयायियों को बहेलियों, मछुओं, कसाइयों तथा इस प्रकार का उद्योग करने वालों के साथ भोजन करने की अनुमति नहीं थी।

(६) गर्भवती, वृद्ध, बाँझ स्त्रियों तथा अपरिपक्क बालिकाओं के साथ सहवास करना निषेध था।

(७) प्रत्येक अनुयायी को अपनी वर्ष-गाँठ के दिन प्रीतिभोज करना पड़ता था।

(८) धर्म का परिवर्तन केवल रविवार को ही हो सकता था।

(९) प्रत्येक व्यक्ति को सम्राट के प्रति सम्पत्ति, जीवन, मान तथा धर्म का बलिदान करने के लिए उद्यत रहना पड़ता था।

(१०) मृतक देह के मस्तिष्क को पूर्व की ओर तथा पैरों को पश्चिम की ओर करके दफनाया नहीं जा सकता था।

सदस्य—नवीन धर्म के सदस्यों की संख्या १८ थी। राजा बीरबल, शेख मुबारक और उनके दोनों पुत्रों आदि ने इस धर्म को अपनाया। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि अकबर ने नये धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के लिए बड़ी उदार नीति को अपनाया। उसने किसी व्यक्ति के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया। **सर वूल्जले हेग** ने उचित ही कहा है कि 'दीन-इलाही के अनुयायियों की संख्या कभी भी कुछ हजारों से अधिक पहुँची हुई प्रतीत नहीं होती। जिन लोगों ने इस नवीन धर्म को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया उनके प्रति अकबर के हृदय में

---

* "A new religion out of various elements, taken partly from the Quran of Mohammad, partly from the scriptures of the Brahamans, and to a certain extent, as far as suited his purpose, from the Gospel of Christ."
—**Bartoli.**

किसी प्रकार का भेद-भाव न था। यदि अकबर चाहता तो वह अवश्य ही अनुयायियों की इस सीमित संख्या में वृद्धि कर सकता था। **परन्तु वास्तव में उसकी आकांक्षा अनुयायियों में वृद्धि करने की न थी, वरन् दीन-इलाही में निहित पारस्परिक सद्भावना की प्रकृति का विस्तार करने की थी।** उस समय के तथा उसके पश्चात् के अनेक लोगों ने सम्राट द्वारा भिन्न तत्वों की सहायता से एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण किए जाने के स्मरणार्थ प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।'

दीन-इलाही पर विवेचनात्मक दृष्टि—कुछ आधुनिक तथा तत्कालीन इतिहासकारों ने दीन-इलाही की कटु-आलोचना की। तत्कालीन इतिहासकारों में **बदायूँनी** ने विशेष रूप से उसकी आलोचना की। उसके अनुसार 'मुसलमानों के साथ अकबर ने अमानुषिक व्यवहार किया और ऐसे नियम घोषित किए जो इस्लाम धर्म के विरोधी थे।'[1] आधुनिक इतिहासकारों में **डाक्टर विन्सेंट स्मिथ** ने दीन-इलाही की कटु आलोचना की। उसके अनुसार "दीन-इलाही अकबर की अज्ञानता का, न कि उसकी बुद्धिमता का सूचक था। यह समस्त योजना हास्यप्रद, अहंकार तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता की उपज थी।"[2] वास्तव में यह आलोचना बहुत कटु है जिसकी सत्यता पर विश्वास करना अपने साथ तथा अकबर जैसे महान् सम्राट के साथ अन्याय करना होगा। वास्तव में सम्राट उचित तथा उच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के कारण इस ओर आकर्षित हुआ। 'पारस्परिक विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद से प्रारम्भ होकर एक नवीन धर्म की उद्घोषणा की समस्त प्रणाली इस बात का सुनिश्चित प्रमाण है कि सम्राट की वास्तविक इच्छा अपनी प्रजा के लिए एक सामान्य धर्म को प्रारम्भ करने तथा इस प्रकार राजनीतिक एकता की वृद्धि करने की थी।'

वास्तव में अकबर का दीन-इलाही उसकी अज्ञानता तथा अबुद्धि का सूचक न होकर उसके ज्ञान तथा बुद्धि का उज्ज्वल उदाहरण है। यह उसकी सार्वजनिक सहिष्णुता की नीति का परिणाम है और यही उसके राष्ट्रीय आदर्शवाद का प्रमाण है। **डाक्टर ताराचन्द** के शब्दों में 'अकबर का दीन-इलाही एक निरंकुश शासक का क्षणिक उद्वेग नहीं था जिसके पास आवश्यकताओं से अधिक शक्तियाँ थीं, वरन् उन तत्वों का परिणाम था जो भारत-भूमि में विकसित हो रहे थे तथा कबीर आदि की शिक्षाओं द्वारा व्यक्त किए जा रहे थे। परिस्थितियों ने उस प्रयत्न को विफल कर दिया, परन्तु दैव अब भी उसी लक्ष्य की ओर इंगित करता है।'[3]

---

[1] "Beef was prohibited, wearing of beards discouraged, wearing of gold and silk dresses forbidden by the Shariat was made obligatory, public prayers abolished, fast of Ramzan, pilgrimage of Mecca prohibited. study of Arabic considered to be a crime, slaughter of cows was forbidden, etc."

—Badauni.

[2] "The Din-e-Ilahi was the monument of Akbar's folly, and not of his wisdom. The whole scheme was the outcome of ridiculous vanity, a monstrous growth of unrestrained autocracy."

—Dr. Smith.

[3] "Akbar's Din-e-Ilahi was not an isolated freek of an autocrat who

बदायूंनी तथा जैसूइट पादरियों के इस कथन में कोई सार प्रतीत नहीं होता कि अकबर ने इस धर्म के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के उद्देश्य से रिश्वत दी तथा लोगों को बाध्य किया। यदि वह ऐसा करने पर उतारू हो जाता तो उसके सदस्यों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती। अकबर का व्यवहार हिन्दू और मुसलमानों के साथ समान रहा। यदि बदायूंनी द्वारा बतलाए गए नियमों को सत्य भी मान लिया जाए तो भी यह समझना भूल होगी कि वह इस्लाम को गिरी हुई दृष्टि से देखने लगा था। इसका कारण यह हो सकता है कि वह मुसलमानों को मुल्लाओं के चक्कर से निकालकर विशुद्ध मार्ग की ओर ले जाना चाहता था। वास्तव में इस्लाम इस समय पतन की ओर अग्रसर होने लगा था और उसमें सुधारों की आवश्यकता थी। अकबर को अन्धविश्वास से घृणा थी और वह प्रत्येक बात को मानवीय तर्क की कसौटी पर कसना चाहता था। यह सम्भव हो सकता है कि इस प्रयत्न में 'अकबर इस्लाम धर्म के कुछ विश्वासों की अधिसीमाओं का उल्लंघन कर गया हो।' वास्तव में अकबर का अपनी प्रजा के साथ सदा सद्व्यवहार रहा और वह अपनी प्रजा को अपने पुत्र के समान मानता था।

दीन-इलाही का राजनीतिक परिणाम—दीन-इलाही का राजनीतिक परिणाम बड़ा महत्वपूर्ण तथा लाभप्रद रहा, क्योंकि इसके द्वारा भारत में एकता की भावना उदय हुई जिसका अन्त पर्याप्त समय से हो चुका था, किन्तु धर्म के रूप में उसको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अकबर की मृत्यु होने पर उसका अन्त हो गया। "अकबर ने जिस प्रकार एक नवीन साम्राज्य का निर्माण किया उसी प्रकार वह एक नए धर्म की स्थापना करना चाहता था। जिस प्रकार उसने विभिन्न प्रान्तों को मिलाकर विशाल साम्राज्य की स्थापना की उसी प्रकार वह विभिन्न धर्मों को एक सूत्र में बाँधना चाहता था। परन्तु उसकी एक कमी यह हुई कि वह इस बात को नहीं समझ पाया कि धर्मों का निर्माण नहीं किया जाता तथा उनके तत्वों को एकत्रित कर एक सूत्र में नहीं बाँधा जा सकता। धर्म के महान् प्रवर्तकों का उद्देश्य कभी भी एक धर्म की स्थापना करना नहीं रहा...उनके अनुयायियों ने अपने आपकों समूहों में संगठित किया तथा इस प्रकार सम्प्रदायों का आरम्भ हुआ। अकबर ने इसके बिलकुल विपरीत ढंग से कार्य किया। उसने उस बिन्दु से अपना कार्य आरम्भ किया जहाँ पर एक धर्म-प्रवर्तक का कार्य समाप्त होता है। आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित करने के उपरान्त उसने दीन-इलाही की विस्तृत योजना का निर्माण किया।"* फिर भी इस बात को अवश्य स्वीकार करना होगा कि इससे द्वारा जिज्ञासा की

---

had more power than he knew how to employ, but an inevitable result of the forces which were deeply surging in India's breast and finding expression in the teachings of man like Kabir. Circumstances thwarted the attempt, but destiry still points towards the same goal."

—Dr. Tara Chand.

* "Akbar wanted to found a new religion, just as he founded an empire. He would piece together the different bits of every religion, and make a new one of them in a way he had conquered and annexed provinces of India

उदार भावना, जिसका जन्म इसके द्वारा हुआ, चलती रही और यदि इसका अन्त न हो पाया होता तो अन्धविश्वासों का अन्त हो जाता।

88, 85

जहाँगीर और उसकी धार्मिक नीति

९१) जहाँगीर कट्टर मुसलमान था, किन्तु उसकी धार्मिक नीति उदार थी और उसमें सहिष्णुता की मात्रा पर्याप्त थी। उस पर भी उसके पिता के धार्मिक विचारों तथा नीति का विशेष प्रभाव पड़ा। अकबर द्वारा कुछ धार्मिक करों का अन्त कर दिया गया था। जहाँगीर ने उनका प्रचलन पुनः नहीं किया। उसने भी अकबर के समान राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को उच्च पदों पर आसीन किया। वह भी बहुत से हिन्दू रीतिरिवाजों के अनुसार आचरण करता था। **उसने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया, किन्तु इसके विपरीत उसके कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनके द्वारा यह संदेह उत्पन्न होता है कि उसमें उदारता की मात्रा कम थी।** उसने उन व्यक्तियों के साथ सद्व्यवहार किया तथा उनको ही आर्थिक सहायता प्रदान की जिन्होंने इस्लाम धर्म को अंगीकार किया। उसने कुछ मुसलमान स्त्रियों को हिन्दू धर्म स्वीकार करने से रोका। उसने पुष्कर के बारह मन्दिरों को नष्ट कराया तथा जैनियों का साम्राज्य से बहिष्कार करने का आदेश प्रदान किया। उसने गुरु अर्जुन का इसलिए वध करवाया कि उसने राजकुमार खुसरो को आशीर्वाद दिया था। वास्तव में उसने कुछ कार्य ऐसे अवश्य किए थे जिससे यह प्रकट होता है कि उसमें कट्टरता किसी अंश तक विद्यमान थी, किन्तु वह समय की गति के कारण उसका खुलकर दिग्दर्शन नहीं कर सका। उसके शासन के अन्तिम दिनों में राजपूतों का प्रभाव कम होने लगा था। चाहे किसी कारण से भी, उसने धार्मिक उदारता की नीति को अपनाया और हिन्दुओं को ऐसा अवसर प्रदान नहीं किया कि वे मुगल-साम्राज्य के विरोध में उठ खड़े हों।

शाहजहाँ की धार्मिक नीति

शाहजहाँ की धार्मिक नीति में उदारता तथा सहिष्णुता का पूर्णतया अभाव था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और अन्य धर्मों के अनुयायियों को घृणा की दृष्टि से देखता था। तत्कालीन इतिहासकारों ने उसकी धार्मिक कट्टरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **उस पर मुल्लाओं और मौलवियों का विशेष प्रभाव था।** उसने **ईसाइयों का वध करवाया। उसने बहुत-से मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करा दिया।** उसने दक्षिण के राज्यों का अन्त करने का निश्चिय किया, क्योंकि वे शिया धर्मावलम्बी थे। उसने बहुत-से नियमों की उद्घोषणा करवाई जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि उसने उदारता की नीति का पूर्णतया परित्याग कर दिया था।

---

and built up one great empire. In his folly he forgot that religions are never made, their elements are not borrowed and pieced together. The great founders of religions never meant to found them......It was their followers who formed themselves into groups and thus creeds came into being. Akbar was doing just the other way, he began where religion ends. He planned and arranged the details of his Divine Faith after enunciating its basic priniciples."

—Journal of Indian History, 1930

औरंगजेब की धार्मिक नीति

भारत के इतिहास में औरङ्गजेब अपनी धार्मिक कट्टरता तथा असहिष्णुता के लिए विख्यात है। उसकी धार्मिक नीति उसके धार्मिक आचार-विचारों पर आश्रित थी। वह पक्का सुन्नी मुसलमान था और वास्तव में वह उनकी ही सहायता से राज्य-सिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ और उदार दल का नेतृत्व करने वाले दारा को पराजित कर सका। **उसने राजनीति और धर्म को सम्मिलित किया जबकि अकबर ने इन दोनों को एक दूसरे से प्रथक् कर मुल्लाओं की शक्ति का अन्त किया।** औरंगजेब कुरान को धार्मिक ग्रन्थ के साथ-साथ राजनीति का पथ-प्रदर्शक मानता था। उसने उसी के अनुसार नियम बनाए और उन नियमों को समाप्त कर डाला जो उसके विरोध में थे। वह मूर्ति-पूजा का कट्टर शत्रु था और इसी कारण उसने हिन्दुओं के अनेक भव्य मन्दिरों को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने धार्मिक उत्सवों पर कर लगाना आरम्भ कर दिया तथा हिन्दु-मेलों का अन्त कर दिया। उसने दक्षिणी राज्यों को इसलिए मुगल साम्राज्य में विलीन किया कि वे शिया धर्म के अनुयायी थे। उसने उन सब प्रदेशों पर जिहाद करवाया जहाँ हिन्दू अधिक संख्या में निवास करते थे जिससे वे इस्लाम धर्म को अंगीकार कर लें। उसने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी कुरान के आदेश को माना और आराम तथा भोगविलास से अपना हाथ खींच लिया और एक फकीर के समान जीवन व्यतीत करने लगा जिसके कारण वह **'जिन्दा पीर'** के नाम से विख्यात हुआ। **उसने हिन्दुओं पर वे कर लगाए जो उन पर इसलिए लगाए जाने चाहिए थे कि वे काफिर हैं।** इन करों को हिन्दू बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन करों को लगाते समय औरंगजेब ने उनकी धार्मिक भावनाओं की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। औरंगजेब के प्रारम्भिक काल में **मिर्जा राजा जयसिंह और जोधपुर के राजा जसवंतसिंह** महत्वपूर्ण पदों पर आसीन थे और वे हिन्दू हितों के रक्षक माने जाते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनसे मुक्ति पाने के लिए औरंगजेब ने उनकी मृत्यु में सहायता प्रदान की जिसके कारण राजपूत उसके विरोधी हो गए और उन्होंने खुलकर संग्राम करने का निश्चय किया।

औरंगजेब के आदेश—औरंगजेब ने न केवल अपनी दिनचर्या को कुरान के अनुसार बनाया वरन् वह अपनी जनता को भी उसके अनुसार आचरण के लिए बाध्य करता था। उसने निम्न आज्ञाएँ निकालीं—

(१) उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बन्द कर दिया जिससे वे पवित्र शब्द विधर्मियों के स्पर्श से अपवित्र न हो जाएँ।

(२) उसने नौरोज का उत्सव बन्द कर दिया।

(३) उसने मुहतसिब धार्मिक निरीक्षक नियुक्त किए। इनका काम जनता को कुरान के नियमों को समझाना था तथा वे उनके अनुसार जीवन व्यतीत करना आवश्यक बतलाते थे। सूबेदारों तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों को भी कुरान के अनुसार जीवन व्यतीत करने के आदेश दिए गए।

(४) भांग की उपज बन्द दी गई।

(५) पुरानी मस्जिदों की मरम्मत की व्यवस्था की गई।

(६) संगीत पर प्रतिबन्ध लगाकर गायकों को दरबार से निवृत्त कर दिया।

(७) तुलादान बन्द कर दिया गया जो सम्राट की वर्षगांठ के दिन हुआ करता था—सम्राट सोने-चांदी से तोला जाता था।

(८) जहाँगीर द्वारा आगरे के दुर्ग के द्वार पर रखी हुई हाथियों की पत्थर की मूर्तियाँ हटा दी गई।

(९) अभिवादन करने की हिन्दू-प्रथा का अन्त कर दिया गया।

(१०) ज्योषित-ज्ञाताओं पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

(११) जन्म-दिवस तथा राजतिलक-सम्बन्धी उत्सवों का अन्त कर दिया गया।

(१२) रेशमी वस्त्र धारण करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

(१३) प्रजा भवन से सोने और चाँदी की छड़ें हटा दी गईं।

(१४) राजपूत राजाओं के माथे पर तिलक लगाने की प्रथा का अन्त कर दिया गया।

(१५) सम्राट ने झोरखे से दर्शन देना बन्द कर दिया।

(१६) स्त्रियों का साधुओं के पास आना-जाना बन्द कर दिया।

(१७) होली के उत्सव तथा मोहर्रम के जलूसों पर रोक लगाई।

(१८) सती-प्रथा को बन्द करने का प्रयास किया गया।

(१९) गुलाम-प्रथा का अन्त करने का आदेश दिया गया।

उक्त नियमों द्वारा यह सिद्ध होता है कि वह जनता को कुरान के अनुसार नियमित रूप से जीवन व्यतीत कराना चाहता था। उसने स्वयं भी अपने व्यक्तिगत जीवन को इसी प्रकार व्यतीत किया। उसका नैतिक स्तर उन्नत था। उसमें वे दोष विद्यमान नहीं थे जो उस समय के सम्राटों में थे। उसने जनता के नैतिक स्तर को उन्नत करने का प्रयास किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि ये नियम कट्टर धार्मिक भावनाओं के परिणाम थे और राजनीति के विरुद्ध थे। 'नैतिकता ऊपर नहीं लादी जा सकी, उसका सम्बन्ध आन्तरिक भावनाओं से है'। प्रारम्भ में इन नियमों के मनवाने में विशेष कठोरता दिखाई गई, किन्तु कुछ समय उपरान्त उसमें पर्याप्त शिथिलता आ गई।

(1986, 1983)

औरंगजेब का हिन्दुओं से सम्बन्ध

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसके शासन का आधार कुरान थी। इस कारण उसने हिन्दुओं के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया तथा उसने उस नीति का परित्याग किया जिसको अकबर ने अपनाया और जिसके कारण वह मुगल-साम्राज्य की स्थापना करने में सफल रहा। औरंगजेब अपने धार्मिक उत्साह तथा अन्धविश्वास के कारण उस नीति की सराहना नहीं कर सका, जिसने हिन्दू और मुसलमानों को बहुत समीप कर दिया था उसने निम्न उपायों का अनुकरण हिन्दुओं के प्रति किया—

(१) हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करना—जिस समय औरंगजेब गुजरात का सूबेदार था उसी समय उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करने की नीति अपनाना आरम्भ किया।[1] उसने चूड़ामणि के मन्दिर को नष्ट करवाकर उसके स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया। राज्यसिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त उसने इस ओर विशेष रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया। **उसने आदेश जारी किया कि हिन्दुओं के सभी मन्दिरों को नष्ट कर दिया जाए।** "मन्दिर तोड़ने के लिए नियुक्त किए गए सरकारी कर्मचारियों की इतनी अधिक संख्या थी कि उनको आदेश देने तथा देखने-भालने के लिए एक दरोगा की नियुक्ति करनी पड़ी थी। उसके आदेश देने के अनुसार सोमनाथ का दूसरा मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ का मन्दिर तथा मथुरा का केशवराय का मन्दिर नष्ट कर दिए गए। धार्मिक उत्साह के कारण उसने मथुरा का नाम जो मन्दिरों का नगर है, इस्लामाबाद रख दिया। उसने बनारस के विश्वनाथ के मन्दिर के स्थान पर एक गगनचुम्बी मस्जिद का निर्माण करवाया। उसने उन हिन्दू राजाओं द्वारा निर्मित मन्दिरों को तुड़वाया जो उसके मित्र थे। उसने अजमेर के बहुत से मन्दिरों को नष्ट करवाया। उसने यह भी आदेश दिया कि नए मन्दिरों का निर्माण न किया जाए और पुराने मन्दिरों की मरम्मत न करवाई जाए। उसने मन्दिरों की मूर्तियाँ तुड़वाईं और जनता द्वारा उनको कुचलवाया गया। कुछ मन्दिरों में तो उसने गो-वध की भी आज्ञा प्रदान की।

औरंगजेब का हिन्दुओं से सम्बन्ध

(१) हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट करना।
(२) हिन्दू विद्यालय का अन्त।
(३) जजिया कर लगाया जाना।
(४) हिन्दुओं को सरकारी सेवाओं से वंचित करना।
(५) धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देना।
(६) हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबंध।

(२) हिन्दू विद्यालयों का अन्त—उसने हिन्दुओं के धर्म के साथ-साथ उनकी सभ्यता तथा संस्कृति को भी आघात पहुँचाया। **उसने आदेश निकाला कि हिन्दुओं के विद्यालयों का अन्त कर दिया जाए।**[2] मुसलमान विद्यार्थियों को हिन्दू-विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और हिन्दुओं को आदेश दिया गया कि अपने विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा स्थगित कर दें।

(३) जजिया कर का लगाया जाना—औरंगजेब ने १२ अप्रैल सन् १६७९ ई० को **काफिरों को नीचा दिखाने के अभिप्राय से जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया जिसको वे बहुत-ही घृणित समझते थे।** यह कर हिन्दुओं पर इस्लाम धर्म स्वीकार

---

[1] For religion he persecuted the Hindus and destroyed their temples, while he damaged their exchequer by abolishing the time-honoured tax on the religious festivals and fairs of the unbelievers." —Sarkar and Dutta.

[2] "Orders in accordance with the organisation of Islam were sent to the Governors of the provinces that they should destroy all the schools and the practice of the Kafirs." —Maasir-e-Alamgiri.

न करने के कारण लगाया जाता था। अकबर से लेकर शाहजहाँ तक यह कर माफ था। उसने इस कर को वसूल करने के लिए विशेष पदाधिकारियों की नियुक्ति की जिन्होंने विशेष तत्परता तथा कठोरता की इस नीति को अपनाया।

(४) **हिन्दुओं को सरकारी सेवाओं से वंचित करना**—औरंगजेब ने सन् १६७० ई० में यह विज्ञाप्ति प्रकाशित की कि **माल-विभाग के बेईमान कर्मचारियों को उनके पदों से निवृत कर दिया जाए।** उनके पदों पर मुसलमान पदाधिकारी नियुक्त किए जाएं। शीघ्र ही आज्ञा का पालन किया गया। बहुत-से हिन्दुओं को उनके पदों से अलग कर दिया गया और उनके स्थान पर मुसलमान नियुक्त किए गए।* वास्तव में औरंगजेब का यह कहना कि बेइमानों को अलग किया जाए, बहाना-मात्र था। वास्तव में वह हिन्दुओं को ही अलग करना चाहता था, क्योंकि कोई भी मुसलमान कर्मचारी **अपने पद से मुक्त** नहीं किया गया। जब बाद में उसको यह अनुभव हुआ कि हिन्दुओं के अभाव में विभाग का कार्य शिथिल पड़ गया तो उसने यह आदेश जारी किया कि एक हिन्दू के साथ एक मुसलमान भी होना चाहिए। यह नीति उसने सेना के सम्बन्ध में भी अपनाई। इसका प्रमुख कारण यह था कि उसका हिन्दुओं पर तनिक भी विश्वास नहीं था।

(५) **धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देना**—औरंगजेब चाहता था कि हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार करें। इसी कारण वह **धार्मिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देता था।** वह उनको प्रत्येक प्रकार के प्रलोभन देता था। ऐसे व्यक्तियों को उच्च पदों पर आसीन किया जाता था तथा उसको जागीरें आदि भी भेंट-स्वरूप दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त उसने बहुत-से व्यक्तियों को बलात् इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। ऐसे उदाहरण पर्याप्त विद्यमान हैं जहाँ लोगों ने बाध्य होकर इस्लाम धर्म अंगीकार किया।

(६) **हिन्दुओं पर सामाजिक प्रतिबन्ध**—औरंगजेब ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबन्ध लगाए जिनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

(क) राजपूतों के अतिरिक्त अन्य हिन्दुओं को हाथियों, पालकियों तथा अरबी घोड़ों पर चढ़ने के अधिकार से वंचित किया गया।

(ख) तीर्थ-स्थानों पर मेला लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(ग) दीपावली तथा होली के उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए।

परिणाम—औरंगजेब की इस धार्मिक असहिष्णुता की नीति का प्रभाव साम्राज्य के लिए हितकर सिद्ध न होकर बड़ा घातक सिद्ध हुआ। आर्थिक क्षेत्र में

---

* "A general order prohibiting the employment of Hindus was passed. This was particularly so with regard to the revenue department. The Hindus enjoyed a monopoly in the clerical establishments because most of the Muslims were reserved for the Royal army. Many Hindus changed their religion and thereby bought the security of the tenure of their offce. Aurangzeb systematically followed the practice of appointing Muslims in place of Hindus in various departments of the Government."

—Sarkar and Dutta.

राज्य का आय बहुत घट गई और उसके विपरीत राज्य को इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए बहुत अधिक धन व्यय करना पड़ा। राजनीति-क्षेत्र में हिन्दुओं ने साम्राज्य की सेवा से हाथ खींच लिया और विद्रोहों का होना आरम्भ हो गया। जाटों का विद्रोह, सतनामियों का विद्रोह, राजपूतों का विद्रोह तथा सिक्खों का विद्रोह उसकी इस नीति के कारण हुए। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसकी धार्मिक नीति के कारण अकबर का कार्य अधूरा रह गया और पुन: हिन्दुओं और मुसलमानों में कटुता उत्पन्न हो गई और वे दोनों एक दूसरे के शत्रु बन गए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) किन कारणों से सम्राट अकबर एक 'राष्ट्रीय सम्राट' माना जाता है ?

(२) "दीन-इलाही अकबर की बुद्धिमानी का सूचक है।" आलोचना कीजिए।

(३) अकबर को भारत का सम्राट क्यों माना जाता है ?

(४) अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों में मेल-झोल कराने का क्या प्रयत्न किया ? और वह कहाँ तक सफल रहा ?

(५) अकबर के सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों का वर्णन कीजिए। उनसे राज्य को और समाज को क्या लाभ हुआ ?

(६) अकबर ने भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए क्या प्रयत्न किए ? उसको अपने प्रयत्नों में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई ?

(७) दीन-इलाही पर एक टिप्पणी लिखो।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) "अकबर मुगल सम्राटों में महान् था।" सिद्ध करो।

मध्य प्रदेश—

(१) अकबर की धार्मिक नीति का विवरण लिखो।

१२

मुगलों की शासन-व्यवस्था

मुगल शासन-व्यवस्था की विशेषताएँ

इससे पूर्व कि मुगलों की शासन-व्यवस्था का उल्लेख किया जाए उसकी विशेषताओं का अध्ययन करना अधिक उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अध्ययन द्वारा इसके स्वरूप का ज्ञान पूर्णरूप से हो जाएगा और उनके शासन को समझना भी सरल होगा। प्रसिद्ध इतिहासकार **यदुनाथ सरकार** ने मुगल-शासन की निम्न मुख्य विशेषताएं बतलाई हैं—

(१) विदेशी प्रभाव—मुगलों की शासन-व्यवस्था पर विदेशी प्रभाव था। मुगल मध्य एशिया से भारत में आए। उनके शासन का आधार फारस और अरब का शासन था। उन्होंने भारतीय परिस्थिति के अनुसार उसमें कुछ सुधार किए जिससे वे भारतीय जनता के अनुकूल बन सकें।

(२) सैनिक-शासन—मुगलों के शासन का आधार सैनिक था। प्रत्येक राजकीय पदाधिकारी को सैनिक कार्य करना पड़ता था और उसका सेना में भर्ती होना अनिवार्य था। वह मनसबदार होता था। उसके मनसब के अनुसार ही उसका पद और वेतन निश्चित होता था।

(३) भूमि कर की प्राचीन व्यवस्था—मुगलों ने प्राचीन भूमि-व्यवस्था को अपनाया और उसी के अनुसार कर लगाए, किन्तु अन्य करों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं था। अन्य कर शरियत के अनुसार लगाए गए।

(४) राज्य उत्पादक के रूप में—राज्य सबसे बड़ा उत्पादक था। दरोगा के नियन्त्रण में कारखानों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती थीं।

(५) केन्द्रीय निरंकुश शासन—मुगल-शासन में सम्राट का पद सर्वोच्च था। शासन की समस्त सत्ता उसमें निहित थी और उनकी शक्ति असीमित थी। साम्राज्य अधिक विस्तृत था जिसके कारण अधिकतर कार्य पत्रों द्वारा किया जाता था।

मुगल-शासन-व्यवस्था की विशेषताएँ

(१) विदेशी प्रभाव।
(२) सैनिक शासन।
(३) भूमिकर की प्राचीन व्यवस्था।
(४) राज्य उत्पादक के रूप में।
(५) केन्द्रीय निरंकुश शासन।
(६) न्याय तथा नियम आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध।
(७) सामाजिक कार्यों से राज्य का उदासीन होना।
(८) धर्म अप्रभावित शासन।
(९) उत्तराधिकार नियम का अभाव।

(६) न्याय तथा नियम आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध—मुगल-सम्राटों की प्रवृति न्याय तथा नियम-सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों के विरुद्ध थी। देश में शान्ति स्थापित तथा सुव्यवस्था को स्थापित करना आधुनिक राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य समझा जाता है। मुगल-शासन द्वारा ऐसी व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकी। उसने गाँवों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, जबकि इनकी संख्या बहुत अधिक थी। इतना तो मानना ही होगा कि मुगलों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों की अपेक्षा देश में शांति की स्थापना की ओर अधिक प्रयत्न किया।

(७) सामाजिक कार्यों से राज्य का उदासीन होना—राज्य की ओर से सामाजिक कार्यों के करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने समाज की उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया। राज्य ने शिक्षा को प्रोत्साहन देने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और न सामाजिक दोषों व कुरीतियों के अन्त करने की ओर ही। यदि किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न किया तो यह उसका व्यक्तिगत कार्य होता था न कि राज्य का।

(८) धर्म अप्रभावित शासन—मुगलों के शासन पर धार्मिक प्रभाव नहीं था उनमें धार्मिक उदारता थी। औरंगजेब ने धर्म के नाम पर अत्याचार अवश्य किए, किन्तु साधारणतः मुगल-शासन इस प्रभाव से मुक्त ही था।

(९) उत्तराधिकार के नियम का अभाव—मुगलों में उत्तराधिकार के नियम का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक सम्राट को विद्रोहों का सामना करना पड़ा। सम्राट की मृत्यु होने पर उत्तराधिकार-युद्ध होना अनिवार्य रहता था, जिससे देश की बड़ी हानि उठानी पड़ती थी। ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार अकाट्य नहीं माना जाता था और न सम्राट अपनी निजी इच्छा से अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सकता था।

मुगलों का शासन-प्रबन्ध जिन सिद्धान्तों तथा विचारों पर अवलम्बित था वे दिल्ली सल्तनत काल के शासकों से पूर्णतया भिन्न थे। यह कार्य अकबर ने किया, बाबर और हुमायूं को शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का न अवकाश प्राप्त हुआ और न उनमें इतनी योग्यता ही थी। अकबर में यद्यपि राजनीतिक प्रतिभा की विशेष मात्रा विद्यमान थी, किन्तु उसने शेरशाह सूरी के बहुत-से सिद्धान्तों को अपनाया और इस कारण शेरशाह अकबर का अग्रगामी (Fore-runner) माना जाता है।

(अ) मुगलों की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था V84

मुगलों के केन्द्रीय शासन को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है—

(१) सम्राट—सम्राट शासन का केन्द्र था और शासन की समस्त सत्ता उसमें पूर्णतया केन्द्रीभूत थी। **उसकी शक्ति असीमित थी और उस पर किसी संस्था का कोई नियन्त्रण नहीं था।** किन्तु एक दृष्टि से उसकी असीमित शक्ति सीमित थी। उसके आदेश दूरस्थ प्रदेशों में पूर्णतया माननीय नहीं होते थे। पहाड़ी प्रदेशों में उनकी सत्ता नहीं मानी जाती थी। अतः मुगल सम्राट स्वेच्छापूर्ण तथा निरंकुश शासक थे, किन्तु प्रथम छः मुगल सम्राटों ने एक अन्यायी तथा अत्याचारी तानाशाह के रूप

मुगलों की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था

(१) सम्राट ।
(२) मन्त्रिपरिषद् ।
(३) शासन के विभिन्न विभाग :
(i) दीवान या प्रधानमन्त्री ।
(ii) खानसामा अथवा मीरसामा
(iii) मीरबख्शी ।
(iv) प्रधान काजी ।
(v) सद्रउल सदूर ।
(vi) मुहतसीब ।
(vii) मीर आतिश ।
(viii) डाक चौकी का दारोगा ।

में शासन नहीं किया और न उन्होंने जनता के अधिकारों का दमन किया। **इन सम्राटों में स्वेच्छाचारिता के उदार** शासकों (Benevolent depots) को **प्रवृति पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी** जैसा **कि इस समय योरुप के शासकों में** पाई जाती थी। उनके समान ही इन्होंने जनता की स्थिति उन्नत करने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया। यद्यपि यह केवल राजधानी या प्रान्तीय राजधानियों तक ही सीमित रही। मुल्ला और मौलवियों पर भी इनका पूर्ण नियन्त्रण था। ये किसी अन्य शक्ति के आधिपत्य में नहीं थे, अतः ये पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न सम्राट थे। विद्रोहों की आशंका ही केवल इनके ऊपर प्रतिबन्ध थी। वे अपने आपको ईश्वर का प्रतिनिधि या उसकी छाया के रूप में मानते थे जिनके कारण धर्म पर भी उनका अधिकार था। साम्राज्य का प्रधान होने के साथ-साथ वह सेना का प्रधान सेनापति तथा न्याय-व्यवस्था का प्रधान उद्गम भी था। इस प्रकार समस्त शासन पर उसका अधिकार था।

(२) मन्त्रि-परिषद्—मुगल-शासन में मन्त्रि-परिषद् की भी व्यवस्था थी, किन्तु वह आजकल की मन्त्रि-परिषद् के समान नहीं थी। **प्रधानमन्त्री का पद अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा ऊँचा था।** प्रायः सम्राट गम्भीर प्रश्नों पर उससे परामर्श लिया करता था, किन्तु उसकी बात मानना या न मानना सम्राट की निजी इच्छा पर निर्भर था, अन्य मन्त्रियों का पद प्रधानमन्त्री से छोटा था। वास्तव में अन्य मन्त्री सचिव थे जिसके अधिकार में एक विभाग होता था। प्रधानमन्त्री उनके कार्यों का पुनरावलोकन कर सकता था। **यह परिषद् राज्य की नीति का निर्धारण नहीं करती थी। इसका प्रमुख कार्य सम्राट को सलाह देना था। वे उसी के प्रति उत्तरदायी थे।** वे उस समय तक ही अपने पदों पर आसीन रहते थे जब तक कि वे उसके कृपापात्र थे। वास्तव में योग्य प्रतिभाशाली सम्राट स्वयं प्रधानमन्त्री थे और वे ही राज्य की नीति का निर्धारण करते थे।

(३) शासन के विभिन्न विभाग—बाबर से अकबर तक शासन-व्यवस्था के चार विभाग थे। औरंगज़ेब के शासन-काल में इनकी संख्या ६ कर दी गई और बाद में इनकी संख्या ८ निश्चित की गई। ये विभाग इस प्रकार थे—

(१) कोष तथा राजस्व विभाग (दीवान के अधीन)
(२) राजकीय गृह-व्यवस्था विभाग (खानेसामा अथवा मीरसामा के अधीन)
(३) सैनिकों;का वेतन तथा जमा खर्च विभाग (मीर बख्शी के अधीन)

(४) न्याय विभाग (दीवानी और फौजदारी) (प्रधान काजी के अधीन)

(५) धार्मिक धन-सम्पत्ति निर्धारण तथा दान व्यय विभाग (प्रधान सद्र अथवा सद्रउल सदूर के अधीन)

(६) जनता का समाचार-निरीक्षण विभाग (मुहतसीम के अधीन)

(७) तोपखाना विभाग (मीर आतिश अथवा दारोगा-ए-तोपखाना के अधीन)

(८) सम्वाद, समाचार तथा डाक-विभाग (डाक चौकी के दरोगा के अधीन)

निम्न पंक्तियों में इन मन्त्रियों के कार्यों पर विचार किया जाएगा—

(i) **दीवान या प्रधानमन्त्री**—राजकीय सेवाओं में दीवान का पद सबसे श्रेष्ठ था। इसके अधिकार में कोष तथा राजस्व विभाग रहता था। **साधारणतः यह नागरिक (Civil) अफसर होता था और इसको बहुत कम सैनिक कार्य दिया जाता था।** वह सम्राट तथा अन्य मन्त्रियों के बीच मध्यस्थ का कार्य सम्पन्न करता था। सम्राट की अनुपस्थिति में वह उसकी जगह पर कार्य करता था। समस्त आय-व्यय सम्बन्धी पत्र तथा युद्ध-क्षेत्र सम्बन्धी पत्र उसके पास आते थे। उसको सब प्रकार के व्यय की आज्ञा प्रदान करने का अधिकार था। साधारणतः सम्राट उससे मन्त्रणा किया करता था। अयोग्य शासकों के काल में उसका पद बड़ा महत्वपूर्ण हो गया था। उसकी सहायता के लिए उसके नीचे दो पदाधिकारी होते थे, जिनमें से एक **'दीवाने खास'** कहलाता था और दूसरा **'दीवाने आम'** कहलाता था।

(ii) **खानेसामा अथवा मीरसामा**—खानेसामा अथवा मीरसामा के अधीन राजकीय गृह-व्यवस्था विभाग था। **उसका सम्बन्ध सम्राट की घरेलू वस्तुओं से था।** सम्राट के समस्त नौकर आदि उसके नियन्त्रण में थे। वह सदा सम्राट के पास रहता था और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। वह सम्राट के दैनिक भोजन-व्यय आदि का निरीक्षण करता था।

(iii) **मीर बख्शी**—मीर बख्शी के अधीन सैनिकों का वेतन तथा आय-व्यय विभाग था। **वह मनसबों की नियुक्ति करता था और उनके वेतन का निरीक्षण कर उसका वितरण करता था।** वह सेना में सिपाहियों की भर्ती स्वयं करता था। उसके पास एक रजिस्टर होता था, जिसमें समस्त मनसबदारों के अधीन रहने वाले सैनिकों की संख्या लिखी रहती थी।

(iv) **काजीउल-कुजात (प्रधान काजी)**—काजीउल-कुजात न्याय-विभाग का प्रधान होता था। **वह प्रधान काज़ी (न्यायाधीश) था और उसका न्यायालय सबसे बड़ा न्यायालय था। प्रत्येक बुधवार को वह कचहरी करता था। उसका अन्य काजियों पर नियन्त्रण था। वह उनकी नियुक्ति करता था। उन्हें पद से निवृत करने का भी उसको अधिकार था।** वह मुस्लिम विधि के अनुसार निर्णय करता था। उसके अधीन बहुत-से काजी होते थे जिनके निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों को वह सुना करता था। प्रत्येक प्रान्त, जिले तथा नगरों में काजी मुकदमे सुनते थे। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। उसके अधिकार बहुत विस्तृत थे। न्याय-विभाग में पर्याप्त भ्रष्टाचार था।

(v) **सद्रउल-सदूर**—सद्रउल-सदूर के अधीन धार्मिक धन-सम्बन्धी निर्धारण तथा दातव्य विभाग था। **उसका प्रमुख कार्य धन का वितरण योग्य धार्मिक व्यक्तियों व संस्थाओं में करना था।** वह मुल्लाओं आदि को जागीर दिया करता था। यह पद बड़ा लाभदायक था और ये लोग मालमाल रहते थे।

(vi) **मुहतसीब**—मुहतसीब के अधीन जनता का सदाचार-निरीक्षण विभाग था। **वह मुस्लिम विधि के अनुसार जनता के सदाचार को उन्नत करता था और उसके दोषों को दूर करने की ओर उसका ध्यान आकर्षित करता था।** "उसका काम खींची गई शराब अथवा जौ की उत्तेजक शराब, भाँग और मादक द्रव्यों का पीना, जुआ खेलना तथा कुछ विशेष प्रकार के मैथुनों का रोकना था।" वह उन मुसलमानों को दण्ड देता था जो इस्लाम के विरुद्ध विचार रखते थे या पैगम्बर में अविश्वास रखते थे और पाँचों वक्त नमाज या रोजे नहीं रखते थे। औरंगजेब के शासन-काल से इसका प्रमुख कार्य हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाना था।

(vii) **मीर आतिश**—मीर आतिश के अधीन तोपखाना विभाग था और इस **विभाग को सुचारु रूप से चलाने का उत्तरदायित्व उस पर था।** उसके अधिकार में समस्त तोपें और बन्दूकें थीं।

(viii) **डाक चौकी का दरोगा**—डाक चौकी के दरोगा के अधीन संवाद, समाचार तथा डाक विभाग था। **इसके अधिकार में समाचार-लेखक, गुप्तचर और संवादवाहक होते थे जिनकी नियुक्ति समस्त राज्य में की जाती थी।** डाक तथा सूचना ले जाने के लिए जगह-जगह पर घोड़े रहते थे। इसके द्वारा ही सम्राट को समस्त साम्राज्य की सूचना प्राप्त होती रहती थी।

प्रा.आ.१७८८

(आ) प्रान्तीय शासन-व्यवस्था

साम्राज्य की उचित शासन-व्यवस्था के लिए मुगलों ने समस्त साम्राज्य को प्रान्तों में विभाजित कर दिया था, अन्यथा इतने विस्तृत साम्राज्य पर शासन का होना सर्वथा असम्भव था। **जागीरदारी-प्रथा का अन्त करने के उपरान्त अकबर का समस्त साम्राज्य १५ सूबों (प्रान्तों) में विभक्त था।** जहाँगीर के समय में समस्त साम्राज्य १७ सूबों (प्रान्त) में, शाहजहाँ के समय में २२ सूबों (प्रान्तों) में और औरंगजेब के समय में २१ सूबों (प्रान्तों) में विभक्त था। प्रान्तीय शासन की रूप-रेखा केन्द्रीय शासन के समान थी। आवागमन के पर्याप्त साधनों के अभाव में दूरस्थ प्रान्तों के सूबेदारों में विद्रोह की भावना बलवती हो जाती थी। शासन की दुर्बलता के समय वे अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर केन्द्रीय शासन से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया करते थे। **ऐसे प्रदेशों पर साधारण राजवंश के अथवा विश्वसनीय व्यक्ति ही नियुक्त किए जाते थे।** इसके अतिरिक्त सूबेदारों को अधिक काल तक एक प्रान्त में नहीं रखा जाता था। दो-तीन वर्ष के उपरान्त दूसरे सूबेदारों की नियुक्ति कर दी जाती थी।

(१) **प्रान्तीय सूबेदार**—प्रत्येक प्रान्त का मुख्य पदाधिकारी सूबेदार कहलाता था। अकबर के समय में उसको सिपहसालार कहते थे, किन्तु इसके उत्तराधिकारियों

के समय में वह सूबेदार अथवा नाजिम कहलाता था। **उसका प्रमुख कार्य प्रान्त के अन्तर्गत शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना करना था। वह प्रान्त के अन्दर विद्रोहों** का दमन करता था। **उसके पास इस कार्य के लिए एक सेना होती थी।**[1] उसको अधीनस्थ राजाओं तथा सरदारों से कर वसूल करना पड़ता था। वह प्रान्त की समस्त सूचनाओं से सम्राट को अवगत करता रहता था। वह अपने समस्त कार्यों के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। वह अपने पद पर केवल उस समय तक आसीन रह सकता था जिस समय तक सम्राट का उस पर विश्वास हो। इस पद पर योग्य सेनापतियों तथा राजवंश के व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाती थी। यह पद बड़ा महत्वपूर्ण पद माना जाता था।

उसकी सहायता के लिए कई अन्य कर्मचारी होते थे जिनमें दीवान बख्शी, काजी, आदि थे। दीवान का प्रमुख कार्य प्रान्त की मालगुजारी को शाही कोष में भेजना था। बख्शी प्रान्त की समस्त सेना का प्रबन्ध करता था। किसानों और राज्य के कर्मचारियों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।[2]

(२) **सरकार या जिला**—प्रत्येक सरकार प्रान्त (जिलों) में विभाजित थी। 'सरकार' का सबसे बड़ा पदाधिकारी फौजदार कहलाता था। वह सरकार में सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था, किन्तु उसको सूबेदार के अनुशासन में रहकर उसके आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। उसकी नियुक्ति **स्वयं सम्राट किया करता था। वह उच्च-कोटि का मनसबदार होता था।** उसका **मुख्य कार्य जिले में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना करना था।** वह जनता, जमींदारों आदि से सीधा सम्पर्क बनाए रखता था। उसके नियन्त्रण में एक छोटी-सी सेना रहती थी जिसकी सहायता से वह चोरों तथा डाकुओं पर नियन्त्रण रखता था तथा छोटे-छोटे विद्रोहों का दमन किया करता था। इसके अतिरिक्त सरकार में एक **आमिल** होता था जिसका काम लगान वसूल करना था। प्रसिद्ध नगरों में **कोतवाल** होता था जिसका काम नगर में शान्ति की स्थापना करना था।

(३) **परगना**—प्रत्येक सरकार (जिला) परगनों में विभक्त थी। **प्रत्येक परगने में एक शिकदार, एक आमिल और एक खजांची तथा कुछ अन्य कर्मचारी और होते थे।** परगने का लगान वसूल करने का कार्य आमिल का था। शिकदार को परगने में शान्ति की व्यवस्था करनी पड़ती थी। उसके नियन्त्रण में एक सेना की एक छोटी-सी टुकड़ी रहती थी।

(४) **नगर**—नगर के प्रबन्ध के लिए एक **कोतवाल** होता था। उसकी नियुक्ति

---

[1] "He should punish rebellious Zamidars and all lawlessmen and every month sent two despatches to court by Dak Chauki, reporting the occurrences of the provinces."
—**Ain-i-Akbari.**

[2] "The contact, however, was not very intimate, and the villagers were left pretty much to their own devices, uninfluenced by indifferent to the Government at chief town of the provinces, so long as they paid the land-tax and did not disturb the peace."

केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। वह नगर की पुलिस का प्रधान होता था। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित थे—

(१) नगर की रक्षा करना।
(२) बाजार पर नियन्त्रण रखना।
(३) नगरवासियों की सम्पत्ति की उचित व्यवस्था करना।
(४) जनता के चरित्र को उन्नत करना।
(५) अपराधों को रोकना।
(६) सामाजिक कुरीतियों का अन्त करना।
(७) शमशान, बूचड़खानों, कब्रिस्तान आदि का सुचारु प्रबन्ध करना।

उसका पुलिस तथा गुप्तचर विभाग पर नियन्त्रण रहता था और उसकी सहायता से वह समस्त ज्ञातव्य बातों की जानकारी प्राप्त कर लेता था। वह महत्वपूर्ण सूचनाओं से सरकार को अवगत कराता रहता था।

(इ) सैनिक व्यवस्था

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है कि मुगलों के साम्राज्य का आधार सैनिक था, वास्तव में यह युग ही ऐसा था जब इसी आधार पर राज्य की सुरक्षा सम्भव थी। मुगलों ने इसको उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक कर्मचारी को सैनिक कार्य आवश्यकतानुसार तथा समयानुसार करना पड़ता था। अकबर ने सैनिक संगठन मनसबदारी प्रथा के आधार पर किया।

(१) **मनसबदारी-प्रथा**—मनसबदारी-प्रथा भारत के लिए कोई नई बात नहीं थी, "क्योंकि दिल्ली के सल्तनत काल में भी हमें इस प्रथा के चिन्ह दिखलाई देते थे। शेरशाह और इस्लामशाह की सेना में भी कुछ इसी प्रकार का श्रेणी विभाजन था।" अकबर ने इस प्रथा को वैज्ञानिक ढंग से संगठित किया। साधारणतः मनसब का अर्थ पद, प्रतिष्ठा या नौकरी है। इस प्रकार मनसबदार वे व्यक्ति होते थे जो राज्य की सैनिक अथवा अन्य प्रकार की सेवाओं में कार्य करते थे। अकबर के समय में तो मनसबदार ३३ श्रेणियों में विभक्त थे। सबसे नीचे का मनसब १० का और सबसे ऊँचे का मनसब १२,००० का होता था। ५,००० के ऊपर के मनसब राजकुमारों को प्रदान किए जाते थे, किन्तु कुछ समय के उपरान्त ७,००० तक की मनसबदारी कुछ व्यक्तियों को उनकी राजकीय सेवाओं का ध्यान रखते हुए प्रदान कर दी गईं थीं। सैद्धान्तिक रूप में प्रत्येक मनसबदार को उतने सैनिक रखने पड़ते थे जितनों का वह मनसबदार था, इनकी नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था। यह आवश्यक नहीं था कि मनसबदार सर्वप्रथम सबसे निम्न श्रेणी का मनसबदार बनाया जाए। यह पद वंशानुगत नहीं था। मनसबदारों के पुत्र को उसकी योग्यता के अनुसार पद प्राप्त होता था। मनसबदारों को अपने पदों के अनुसार निश्चित हाथी, घोड़े, खच्चर, गाड़िया आदि रखनी पड़ती थीं, किन्तु यह सन्देहात्मक है कि मनसबदार निश्चित पशु रखता था। **इरविन** के अनुसार, 'प्रदर्शन तथा दाग की व्यवस्था होते हुए भी यह स्वीकार करना होगा कि ऐसे मनसबदारों की संख्या कम थी जो उतने

ही घुड़सवार रखते थे जितने के लिए उनको वेतन मिलता था ।'* समस्मनसबदारों का विभाजन दो भागों में किया गया था । एक वे जो दरबार में उपस्थित रहते थे तथा दूसरे वे जो प्रान्तों में रहते थे ।

(२) **जात और सवार**—जात और सवार के अन्तर में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । सत्य तो यह प्रतीत होता है कि जात मनसबदार का व्यक्तिगत पद था जिसके साथ सवारों की एक टुकड़ी सम्मिलित कर दी जाती थी जिसका मनसबदार को अलग से भत्ता मिलता था और उसका यह पद सवार पद कहलाता था । प्रत्येक श्रेणी का पद सवारों की संख्या पर निश्चित किया जाता था । ५०० से नीचे का मनसबदार प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आता था, यदि उसके सवारों तथा जात की संख्या बराबर हो । द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत उसकी गणना की जाती थी जिसके सवारों की संख्या जात की संख्या से आधी हो, और तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत उनकी गणना की जाती थी जिनके सवारों की संख्या जात की संख्या की आधी से भी कम हो । इस प्रकार बिना सवार का पद प्राप्त किए, जात पद मिल सकता था, किन्तु जात के बिना सवार पद नहीं मिलता था ।

(३) **सेना का विभाजन**—समस्त मुगल सेना पाँच भागों में विभक्त थी—(i) **पैदल**, (ii) **घुड़सवार**, (iii) **तोपखाना**, (iv) **हाथी और** (v) **जलसेना**। निम्न पंक्तियों में से इनके ऊपर अलग विचार किया जाएगा—

(i) **पैदल**—मुगलों के समय में पैदल सेना का विशेष महत्व नहीं था और इनको वेतन भी कम मिलता था । यह सेना दो भागों में विभक्त थी—

(क) अहशाम । (ख) सेहबन्दी ।

इसके पास एक तलवार और छोट भाला होता था ।

(ii) **घुड़सवार**—मुगलों के समय में घुड़सवारों का विशेष महत्व था और मुगल सेना में इनकी ही बहुलता थी । घुड़सवार दो प्रकार के होते थे—(क) **बरगिरि**—इनको साज का समस्त सामान सरकार से मिलता था और (ख) **सिलेदार**—जिनके अपने घोड़े तथा अस्त्र होते थे । इनका वेतन बरगिरि के वेतन से अधिक था । सम्राट अकबर ने घोड़ों की भर्ती तथा सैन्य-प्रदर्शन के लिए कुछ नियम निर्मित कर दिए थे । वह घोड़ों का स्वयं निरीक्षण किया करता था ।

(iii) **तोपखाना**—मुगलों के पास तोपखाना भी था । बाबर तथा हुमायूँ ने भी अपने युद्धों में तोपों का प्रयोग किया । ये विभाग आतिश अथवा तोपखाने के दारोगा के अधिकार में था । इनके अन्तर्गत वे सिपाही भी सम्मिलित थे जिनके पास बन्दूकें होती थीं । बन्दूकें देश में भी बनाई जाती थीं तथा बाहर से भी मंगाई जाती थीं । मुगल गोलन्दाजी में निपुण नहीं थे । उनको रूमियों तथा योरोपीयनों से सहायता लेनी पड़ती थी । तोपखाना आलमगीर के समय में अकबर के समय से अधिक सुदृढ़

---

* Irwin writies that "inspite of musterings and brandings we may safely assume that very few mansabdars kept up at full strength even the quota of horsemen for which they received pay."

तथा बहुसंख्यक था ।[1]

(iv) जलसेना—मुगलों की सेना का चौथा अंग जल-सेना थी, किन्तु यह विशेष प्रबल तथा शक्तिशाली नहीं थी। मुगलों ने पश्चिमी समुद्रतट की रक्षा का भार अबीसीनियों को तथा जंजीरा के सिद्दियों के अधिकार में दे दिया था, केवल पूर्वी बंगाल में नावों का एक बेड़ा था। नावों द्वारा आवश्यकता के समय हाथियों को चढ़ाकर ले जाया जाता था। नावों पर तोपें भी रखी जाती थीं। नदी पार करने के लिए नावों का पुल भी बनवाया जाता था और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था उसी सेना द्वारा की जाती थी।

(v) हस्ति-सेना—मुगलों के पास हस्ति-सेना भी थी। युद्ध में हाथियों का भी प्रयोग किया जाता था। बड़ी-बड़ी तोपें हाथियों द्वारा ले जाई जाती थीं। सेनापति हाथी पर बैठकर युद्ध करते थे तथा समस्त रण-क्षेत्र का निरीक्षण करते थे। नदियों को पार करने में भी ये बड़े सहायक सिद्ध होते थे। इस सेना का प्रयोग शत्रु की पैदल पंक्ति को तोड़ने के लिए कहा जाता था। इनको उस समय छोड़ा जाता था तब तोपों का प्रयोग नहीं होता था, क्योंकि तोपों की घड़घड़ाहट के कारण हाथी भयभीत हो जाते थे और वापस लौटकर अपनी सेना का ही संहार करना आरम्भ कर देते थे।

सैनिक-व्यवस्था में दोष—मुगलों की सैनिक-शक्ति पर्याप्त दृढ़ थी, किन्तु सैनिक-व्यवस्था में पर्याप्त दोष भी विद्यमान थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(i) राष्ट्रीय सेना न होना—मुगलों की सेना राष्ट्रीय नहीं थी, वरन् वह एक प्रकार की खिचड़ी थी जिसमें विभिन्न प्रकार के लोग सम्मिलित थे।

(ii) सैनिकों का सम्राट के प्रति उत्तरदायी न होना—सैनिक सम्राटों के प्रति उत्तरदायी नहीं थे, वरन् वे अपने को अपने मनसबदारों के प्रति उत्तरदायी समझते थे, जिनमें पर्याप्त मतभेद रहता था।

(ई) आर्थिक-व्यवस्था

अर्थ शासन की रीढ़ है और भारत जैसे कृषि प्रधान देश में राज्य की आय का मुख्य साधन लगान ही होता है। मुगलों के शासन-काल में इसका महत्व बहुत अधिक था, यद्यपि राज्य की आय के अन्य साधन-चुंगी, टकसाल, उत्तराधिकारी का नियम, लूट का माल, भेंट आदि भी थे।[2]

लगान-व्यवस्था—बाबर और हुमायूं के शासन-काल में प्राचीन प्रथा के अनुसार ही लगान-व्यवस्था थी। उसमें उन्होंने किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। उन

---

[1] "The artillery was much more perfect and numerous in Alamgir's reign than it was under his great-grandfather Akbar."
—Irwin.

[2] "Finance is the backbone of administration in an agicultural country like India, land revenue has always formed an important source of state income it was the most, important in the days of the Mughal empire, though there were other heads of income such as customs, mint, inheritance, plunder, presents and monopoly."
—**Moreland, page 273 : Quoted from Sarkar and Dutta's Modern Indian History**

समय मालगुजारी प्रथा थी। उन्होंने उसको ही अपनाया और बिना किसी प्रकार के नाप-तौल या जाँच कराए ही उसको वसूल कराना आरम्भ किया। शेरशाह ने उसमें आवश्यक परिवर्तन करवाए और उसको सुव्यवस्थित करने की ओर प्रयास किया, जिसके कारण जनता और राज्य दोनों की पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उसने भूमि की नाप-तोल कराई और उपज का ध्यान रखकर लगान की दर निश्चित की, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त भारत की दशा में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और उसकी व्यवस्था समाप्त हो गई। अकबर के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के पूर्व समस्त भूमि दो भागों में विभक्त थी—(१) खालसा और (२) जागीर। खालसा भूमि सम्राट के अधिकार में थी और वहाँ से राज्य सीधे रूप में लगान वसूल करता था। जागीर भूमि पर जागीर तथा अमीरों का अधिकार था जो एक निश्चित धन-राशि सरकार को मालगुजारी के रूप में प्रदान किया करते थे।

अकबर के कृषि-सम्बन्धी सुधार—**यद्यपि अकबर एक मौलिक सुधारक नहीं था और वह शेरशाह का अनुगामी था, किन्तु उसने इस दिशा में परिवर्तन कर एक नई शासन-व्यवस्था का प्रचलन करवाया जिसने प्राचीन-व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिए।** अकबर ने इस विभाग को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया उसको योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त हुईं जिनमें ख्वाजा अब्दुल मजीद, मुजफ्फर तुरबती और राजा टोडरमल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिस समय अब्दुल मजीद दीवान थे तो अनुमान के आधार पर विभिन्न सरकारों में लगान लगाया जाता था, किन्तु इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जब मुजफ्फर खाँ सन् १५६४ ई० में दीवान के पद पर आसीन हुए और राजा टोडरमल उनके सहायक हुए तो भूमि-कर के निश्चित करने का दूसरी बार प्रयास किया गया, किन्तु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सन् १५७३ ई० में अकबर के अधिकार में गुजरात आया और वहाँ उसने टोडरमल को भेजा। राजा टोडरमल ने वहाँ भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने भूमि की नाप-तौल करवाई और भूमि के क्षेत्रफल तथा उसकी उत्पादक शक्ति का ध्यान रखकर भूमि का कर निश्चित किया। **सन् १५८२ ई० में राजा टोडरमल दीवान के पद पर आसीन किए गए और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर इस ओर विशेष ध्यान दिया।** उनके सम्मुख निम्न पाँच समस्याएँ थीं और उन्होंने उनका समाधान करने के उपायों पर बड़ी योग्यता के साथ विचार किया—

(१) कृषि योग्य भूमि की ठीक-ठीक नाप-तौल करवाना,

(२) कृषि योग्य भूमि का वर्गीकरण,

(३) प्रत्येक बीघे की औसत उपज का ज्ञान प्राप्त करना,

(४) बीघे की उपज में राज्य का भाग निश्चित करना, तथा

(५) राज्य के भाग का मूल्य निश्चित करना जिससे प्रजा लगान नगद रुपये के रूप में दे सके।

न पाँचों समस्याओं का राजा टोडरमल ने निम्न उपायों से समाधान किया:

(१) कृषि-योग्य भूमि की ठीक-ठीक नाप-तौल करवाना—अकबर ने जमीन की नाप-तौल सन की रस्सी के स्थान पर बाँसों में लोहे के छल्ले डलवाकर जरीबों द्वारा करवानी आरम्भ की। सन की रस्सी गरम और ठण्डे मौसम में घट और बढ़ जाती थी। जरीबों द्वारा नाप-तौल में किसी प्रकार की अव्यवस्था होने का भय नहीं रहा यह नाप पटवारी के कागजों में लिख दी गई।

(२) भूमि का वर्गीकरण—कृषि-योग्य सम्पूर्ण भूमि चार श्रेणियों में विभक्त कर दी गई। इस विभाजन का आधार भूमि की किस्म अथवा उसका उपजाऊपन न होकर काश्त का होना था।

(क) पोलज—प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत भूमि पोलज कहलाती थी जिस पर सदैव काश्त होती थी और जो वर्ष में कभी भी परती नहीं छोड़ी जाती थी।

(ख) परौती—द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत भूमि परौती कहलाती थी। यह भूमि प्रथम श्रेणी की अपेक्षा कम उर्वर थी। इस पर दो-तीन वर्ष निरन्तर खेती करने के उपरान्त एक आध वर्ष के लिए परती छोड़ दी जाती थी जिससे भूमि पुनः अपनी उर्वरा शक्ति प्राप्त कर सके।

(ग) चाचर—तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत चाचर भूमि थी। इसकी उत्पादन शक्ति द्वितीय श्रेणी की शक्ति से कम होती थी। यह भूमि उर्वरा शक्ति प्राप्त करने के लिए तीन-चार वर्ष तक से लिए परती छोड़ दी जाती है।

(घ) बंजर—यह चौथी श्रेणी की भूमि के अन्तर्गत आती है। इसकी उत्पादन शक्ति बहुत ही कम होती है। उर्वरा-शक्ति की प्राप्ति के लिए यह भूमि पाँच-छः वर्ष तक परती छोड़ दी जाती है। इसको अपनी उर्वरा शक्ति की प्राप्ति के लिए पर्याप्त समय लगता है।

(३) औसत उपज का ज्ञान—प्रथम तीन श्रेणियाँ तीन भागों में विभक्त की जाती थीं। इन तीन श्रेणियों की भूमि की औसत पैदावार निकाल ली जाती थी और वह प्रत्येक प्रकार की भूमि की पैदावार मान ली जाती थी। पिछले दस वर्षों की पैदावार के आधार पर प्रत्येक फसल की प्रति बीघा पैदावार का औसत निकाल लिया जाता था।

(४) राज्य का भाग निश्चित करना—औसत उपज निश्चित करने के उपरान्त राज्य उस औसत उपज का $\frac{१}{३}$ भाग लगान के रूप में लेता था।

(५) मूल्य निश्चित करना—राज्य का भाग निश्चित करने के उपरान्त उसका नकद मूल्य निकाला जाता था, क्योंकि राज्य लगान अनाज के रूप में नहीं रन् नकद रुपए के रूप में वसूल करने की ओर प्रयत्नशील रहता था। दस वर्षों के ौसत के आधार पर अनाज का मूल्य निश्चित कर उसको नकद रुपए के रूप में रिणत करके पटवारी के कागजों में दर्ज कर दिया जाता था।

माल विभाग के पदाधिकारी—अकबर ने रैयतवाड़ी प्रथा को अपनाया और मींदारी-प्रथा का अन्त कर दिया। इस प्रथा में राज्य का सीधा सम्पर्क एवम् म्बन्ध किसानों से होता था जो स्वयं कृषि करते थे। उसने लगान वसूल करने के

लिए कुछ राजकीय कर्मचाररियों की नियुक्ति की। उसने मालगुजारी वसूल करने के लिए 'अमीन' नियुक्त किए और उसकी सहायता के लिए 'बितिक्ची', 'पोद्दार', 'क़ानूनगो,' 'पटवारी' 'मुकद्दम' की नियुक्ति की गई। राज्य की ओर से कर्मचारियों को आदेश था कि जनता का ध्यान रखकर लगान वसूल करें। किसान को यह अधिकार था कि वह स्वयं राजकोष में धन जमा कर सकता था। निश्चित लगान के अतिरिक्त धन वसूल नहीं किया जाता था। जो कर्मचारी ऐसा करता था उसको राज्य की ओर से दण्ड दिया जाता था।

उक्त सुधारों का परिणाम—अकबर की राजस्व-स्थापना उच्च-कोटि की थी और इस विभाग को उन्नत करने में अकबर ने अपनी योग्यता का पूर्णरूप से परिचय दिया। इस व्यवस्था में किसान और राज्य दोनों को लाभ हुआ। राज्य की आय में बड़ी वृद्धि हुई और किसान का सीधा सम्पर्क राज्य से स्थापित होने के कारण वह ठेकेदारों तथा जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गया। किसान का भूमि पर अधिकार सुरक्षित हो गया। उससे न कर अधिक वसूल किया जा सकता था और न वह कम दे सकता था। प्रसिद्ध इतिहासकार **डाक्टर विन्सेंट स्मिथ** ने भी अकबर की राजस्व व्यवस्था की प्रशंसा की है। उसके अनुसार, **'अकबर की राजस्व-व्यवस्था प्रशंसनीय थी। उसके सिद्धान्त उच्च कोटि के थे और वे आदेश जो राज्य की ओर से कर्मचारियों को दिए गए थे सन्तोषजनक से।''*** अकबर द्वारा स्थापित राजस्व व्यवस्था पर्याप्त समय तक चलती रही और अंग्रेजों ने भी इसी व्यवस्था में कुछ सुधार कर अपनाया। बाद में केन्द्रीय शासन के शिथिल होने के कारण इस व्यवस्था में कुछ दोष उत्पन्न हो गए, किन्तु उस समय तक जब तक केन्द्रीय शासन सशक्त रहा यह व्यवस्था चलती रही। ऐसे उदाहरण है जब शाहजहाँ तथा औरंगजेब के शासन-काल में उन व्यक्तियों के साथ कठोर व्यवहार किया गया जिन्होंने घूँस लेना तथा भ्रष्टाचार करना आरम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त फसल आदि के नष्ट हो जाने पर किसानों को माफी मिल जाती थी और कभी-कभी राज्य की ओर से उनको तकावी भी दी जाती थी।

(उ) न्याय-विभाग

न्याय-विभाग शासन का प्रधान अंग होता है। सरकार को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा ही राज्य निर्बल व्यक्तियों की शक्तिशाली व्यक्तियों से रक्षा करता है। अकबर ने इस विभाग की ओर भी ध्यान दिया। समस्त मुगल-सम्राटों को अपनी न्याय-प्रियता पर गर्व था और वास्तव में वे जनता की फरियाद सुनने को प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। कुछ सम्राटों ने इसकी विशेष व्यवस्था की थी। जहाँगीर ने तो एक सोने की जंजीर दुर्ग के बाहर लटकवाई थी जिसको खींचने का अधिकार प्रत्येक फरियादी को प्राप्त था। उसकी आवाज

---

* "The system was an admirable one, the principles were sound and the practical instructions of the official all that could be desired."

— **Dr. Smith: Akbar pp. 367—368.**

सुनते ही सम्राट फरियाद सुनता था और निर्णय किया करता था ।

सम्राट न्याय का स्रोत था और साम्राज्य का उच्चतम न्यायाधीश था। प्रत्येक व्यक्ति को निम्न न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त था । महत्वपूर्ण मुकदमें सीधे सम्राट के न्यायालय में उपस्थित किए जाते थे। न्याय के लिए दिन निश्चित थे । सम्राट के नीचे **सदर-ए-सदूर** होता था जो माल तथा धन-सम्बन्धी मामलों का निर्णय करता था । दूसरा **काजी-उल-कुजात** होता था, यह प्रधान काजी था । अधिकतर ये दोनों पद एक ही व्यक्ति के हाथ में रहते थे। उसके ऊपर ही समस्त न्याय का संचालन तथा उचित व्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व था । **उसकी नियुक्त सम्राट करता था और वह अपने पद पर उसी समय तक आसीन रह सकता था जब तक कि सम्राट का उस पर विश्वास हो ।** 'अब तक प्रमुख काजी की मुख्य योग्यता इस्लामी धर्मशास्त्र का ज्ञान तथा उसकी संकीर्ण धार्मिक विचार धारा ही समझी जाती थी, किन्तु अकबर ने इस पद पर उन व्यक्तियों को नियुक्त करना आरम्भ किया जिनके धार्मिक विचार उदार थे तथा सभी मत-सम्प्रदायों के लोगों के प्रति उनकी पूर्ण सहानुभूति थी ।''*

प्रधान काजी सम्राट की अनुमति से प्रान्तों-जिलों और नगरों में काजियों की **नियुक्ति करता था ।** प्रत्येक न्यायालय में एक काजी, एक मुफ्ती और एक मीर अदल होता था । **काजी का कार्य मामले की जाँच करना, मुफ्ती का कार्य** विधि की व्याख्या **करना तथा मीर अदल का कार्य फैसला सुनाना था ।** इनको राज्य की ओर से यह आदेश था कि वे निष्पक्ष निर्णय करें, किन्तु ऐसा कम होता था, क्योंकि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था । साधारणतः कुरान के नियमों के अनुसार न्याय किया जाता था, किन्तु हिन्दुओं के मामले में उनके रीति-रिवाज आदि का ध्यान रखा जाता था। दण्ड-व्यवस्था कठोर थी । अंग-भंग का दण्ड भी दिया जाता था और जुर्मानों की धन-राशि बहुत अधिक होती थी । विद्रोह तथा कत्ल सम्बन्धी मुकदमों में फांसी की सजा तथा जेल की सजा भी दी जाती थी । गांवों में न्याय की उचित व्यवस्था नहीं थी, वहाँ के लोग अपने मामलों को अपनी पंचायतों में ही निर्णय कर लिया करते थे ।

औरंगजेब ने न्याय-व्यवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय से दो लाख रुपए **व्यय करके इस्लाम धर्म के आधार पर संहिता (Code) का निर्माण करवाया** जिससे **काजियों को विशेष कठिनाई का अनुभव न करना पड़े ।** यह 'फतुवाए-आलमगीरी, के नाम से प्रसिद्ध है । वह उनकी नियुक्ति के समय निष्पक्ष रहने का आदेश देता था और उनसे शीघ्र न्याय की आशा करता था ।

न्याय-व्यवस्था में दोष—मुगलों की न्याय-व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था । वे धन के लालच में आकर न्याय का गला

---

* "Originally the chief Qazi's main qualifications used to be his knowledge of Islamic theology and his narrow sectarion views. But Akbar appointed to this post men of liberal religious out-look and broad sympathies towards all sections of the people."

—Dr. A. L. Srivastava : The Mughal Empire. P. 230.

घोंटते थे, यद्यपि उनसे निष्पक्ष होने की आशा की जाती थी। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। न्यायालयों का संगठन भी उन्नत नहीं था। मुकदमों की लिखा-पढ़ी की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। इसमें काजियों को मनमानी करने का अवसर प्राप्त हो जाता था। दण्ड-विधान बड़ा कठोर था और गाँवों के लिए न्याय की कोई व्यवस्था ही नहीं थीं। न्याय-विधान का भी सर्वदा अभाव था। काज़ी के ऊपर ही सब कुछ रहता था। अधिकतर इस्माल के कानूनों के अनुसार निर्णय करने की व्यवस्था थी।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर-प्रदेश

(१) मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की व्याख्या करो।

(२) अकबर के समय की मालगुजारी-प्रथा का विवरण लिखिए। उसका कृषकों की आर्थिक-अवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा?

(३) मुगलों के राजस्व-प्रबन्ध (मालगुजारी-व्यवस्था) का वर्णन कीजिए। उसका कृषक वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ा।

(४) मुगलों ने केन्द्रीय शासन की व्यवस्था किस तरह की थी?

(५) टोडरमल के भूमि-कर सुधारों का वर्णन करो।

(६) मुगल-राज्य में प्रान्तीय राज्यों का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता था?

(७) मुगल युग की मनसबदारी-प्रथा पर संक्षिप्त नोट लिखिए तथा उसके गुणों और दोषों की विवेचना कीजिए।

(८) अकबर ने मुगल साम्राज्य का संगठन किस प्रकार किया?

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगलों की शासन-व्यवस्था का वर्णन करो।

मध्य भारत—

(१) अकबर की राज्य-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

(२) मुगलों के भूमि-कर प्रबन्ध का विवरण दीजिए।

१३

मुगलकालीन समाज

मुगलकालीन राजनीतिक घटनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त तत्कालीन समाज का अध्ययन करना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि किसी देश अथवा काल की राजनीतिक घटनाओं से ही उसके इतिहास का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता। वास्तव में समाज का अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक है और उसके द्वारा ही मानव को उस समय की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है। मुगलों ने भारत को न केवल एक राजनीतिक सूत्र में संगठित करने का प्रयास किया, वरन् उनके शासन-काल में सुख-शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना भी हुई, जिसके कारण साधारण सामाजिक जीवन उन्नत हुआ और भारत ने चहुँमुखी उन्नति की जो इस काल की मख्य विशेषता है। दिल्ली सल्तनत के शासकों के समय में भारत में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना न हो सकी और इस युग में विद्रोहों की प्रधानता रही तथा शासकों को वाह्य आक्रमणों का विशेष भय रहा। वे उत्तरी-पश्चिमी सीमा के आक्रमणों द्वारा सदा सशंवित रहते थे जिसके कारण वे प्रजा के हितों की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सके।

मुगल-समाज के ज्ञान के सम्बन्ध में स्रोतों का अभाव है। **उसका ज्ञान केवल यूरोपीय तथा अन्य यात्रियों द्वारा होता है जो विभिन्न समयों पर भारत में आए।** इनके अतिरिक्त तत्कालीन इतिहासकारों ने फारसी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी इस पर प्रकाश डाला है।

सामाजिक-व्यवस्था

मुगलकालीन समाज आधुनिक युग के समाज से बहुत-से अर्थों में समानता रखता है। समाज तीन वर्गों में विभक्त था—

(१) उच्च वर्ग—उच्च वर्ग के अन्तर्गत सम्राट और उसके उच्च-कोटि के मनसब थे। इनका जीवन-स्तर बहुत उन्नत था और इनको राज्य की ओर से विशेष अधिकार प्राप्त थे। इनकी आर्थिक स्थिति उन्नत थी और ये धन-धान्यपूर्ण थे। **धन की बहुलता के कारण ये अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे।** मुगलों का नियम था कि मृत्यु के उपरान्त प्रत्येक राजकीय पदाधिकारियों की सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था और उसके उत्तराधिकारियों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता था। इससे प्रत्येक पदाधिकारी अपना समस्त धन अपने जीवन-काल में व्यय करना ठीक समझता था। **वे बड़े भव्य भवनों में निवास करते थे और स्त्रियों में अपना समस्त धन फूंक देते थे।** सम्राट और अमीरों के हरमों में सैंकड़ों स्त्रियाँ निवास करती थीं। उनमें घमण्ड विशेष होता था और वे साधारण जनता के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखते थे। वे उनको हेय दृष्टि

से देखते थे और उनका अनादर करने में उनको तनिक भी संकोच नहीं होता था। **स्त्रियां केवल भोग-विलास की ही वस्तु समझी जाती थीं।** मुगल सम्राटों की भी ऐसी ही धारणा थी। अकबर के हरम में पाँच हजार स्त्रियां थीं जिसका प्रबन्ध करने के लिए अलग विभाग स्थापित किया गया था। **पैलसट** का कथन है कि 'अमीरों के महलों में सजधज विशेष रूप से विद्यमान रहती थी और वे व्यभिचार के केन्द्र थे।'* इससे यह न समझ लेना चाहिए कि इनके जीवन में भोग-विलास के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। **ये वीर, कुशल शासन-प्रबन्धक दानशील, विद्या तथा कला-प्रेमी भी होते थे और इनके संरक्षण में तथा प्रोत्साहन द्वारा विद्या और कला ने विशेष प्रगति की।** ये उत्तम भोजन करते तथा सुन्दर वस्त्र धारण करते थे। इस पर इनका बहुत अधिक व्यय होता था। इनको आभूषण धारण करने का भी चाव था। इनको संगीत तथा नाचने गाने से विशेष प्रेम था। ये लोग फल बुखारा आदि से मंगवाते थे। गोश्त का प्रयोग अधिक मात्रा में होता था।

(२) **मध्य वर्ग**—मध्य वर्ग के अन्तर्गत व्यापारी या मध्यम श्रेणी के राजकीय पदाधिकारी थे। इनका जीवन सरल और सादा था। इनकी आर्थिक अवस्था उन्नत थी, किन्तु ये लोग उच्च वर्ग के लोगों के समान अधिक ठाट-बाट या भोग-विलास का जीवन व्यतीत नहीं करते थे। इनका जीवन कलुषित नहीं था। ये लोग अधिक मात्रा में मदिरा सेवन नहीं करते थे। **पश्चिमी समुद्रतट के व्यापारियों का जीवन अन्य व्यापारियों के जीवन की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा ठाट-बाट का था,** क्योंकि उनको वाह्य व्यापार से पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था। उनमें वे कुछ व्यसन विद्यमान थे जो उच्च कुल के व्यक्तियों में पाये जाते थे।

(३) **निम्न वर्ग**—निम्न वर्ग के अन्तर्गत मजदूर, छोटे व्यापारी और छोटे कर्मचारी आते हैं। **इनका जीवन बहुत ही साधारण था और इनको आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव था।** वास्तव में इनका जीवन नारकीय जीवन के समान था। इनके जीवन की तुलना दासों के जीवन से की जा सकती है। ये अपनी परिस्थिति तथा आर्थिक दयनीय अवस्था से बाध्य होकर इस जीवन को व्यतीत करते थे। **इनका समाज में कोई स्थान नहीं था और न वे आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे।** इनके पास पर्याप्त वस्त्र और न भोजन था। ये नंगे पाँव रहते थे। ये मिट्टी तथा फूंस के मकानों में अपना जीवन व्यतीत करते थे। मजदूरी की दर बहुत कम थी और उनको बेगार पर भी कार्य करना पड़ता था। वास्तव में उनकी दयनीय व्यवस्था के कारण ही मुगल भव्य भवनों का निर्माण करने में सफल हो सके। ये लोग भाग्यवादी थे जिसके कारण इन्होंने कभी भी राजा के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया। साधारण समय में इनको दोनों समय में पेट भर भोजन अवश्य मिल जाता था। **डाक्टर सरकार तथा दत्त के शब्दों में,** "श्रमिकों को बहुत कम वेतन मिलता था। सामन्त तथा

---

* "That the mahals of the rich were adorned internally with luxurious sensuality, wanton and reckless festivity, superfluous pomp, inflated pride and ornamental daintiness'.

—Palsaeat.

राजकीय अधिकारी वर्ग उनका शोषण करता था और वे बेगार करने पर बाध्य किए जाते थे। इसके बदले में उनको बहुत कम मजदूरी मिलती थी अथवा कुछ भी नहीं मिलता था। उनका भोजन बड़ा साधारण था और वे दिन में केवल एक बार ही भोजन करते थे। भोजन में चावल में मिली हुई हरी दाल की थोड़ी-सी खिचड़ी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता था। उनके घर मिट्टी के बने होते थे, उनके छप्पर फूंस के होते थे, उनके पास कुछ मिट्टी के बर्तनों के बिछौने के अतिरिक्त लिए कुछ न होता था। चपरासी और नोकर बहुत संख्या में मिलते थे। उनका वेतन कम था, परन्तु उनको दस्तूरी बराबर मिलती थी और उनमें से उनकी संख्या बहुत कम थी जो ईमानदारी से अपनी स्वामी की सेवा करते हो।'* मजदूरों की अपेक्षा दूकानदारों की स्थिति उन्नत थी, किन्तु कर्मचारियों के आंतक तथा भय के कारण वे भी अपना जीवन गरीबी में व्यतीत करते थे।

अन्य श्रेणियों में वे दुर्व्यसन नहीं पाए जाते थे जो उच्च कुल के व्यक्तियों में विद्यमान थे। वे कभी भी मदिरापान नहीं करते थे और उनका भोजन भी सात्विक था। लोगों का व्यापार विदेशियों के साथ साधारणतः शिष्टतापूर्ण था।

स्त्री-समाज—मुगल-काल में स्त्री-समाज उन्नत नहीं था। उच्च कुल के लोग उनको **केवल भोग-विलास की वस्तु समझते थे**। वे अपनी पति की इच्छा पर आश्रित थीं। उनको किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी। उनका समस्त समय मकान की चाहरदीवारी में सीमित था। उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थी। पर्दा-प्रथा का रिवाज था। **मुसलमानों में तलाक की व्यवस्था थी।** तलाक के उपरान्त उनका जीवन बड़ा कलुषित हो जाता था। एक-एक सामन्त तथा पदाधिकारी के घर में सैंकड़ों स्त्रियाँ रहती थीं। **समाज में वेश्यावृत्ति थी।** हिन्दुओं में सती-प्रथा का प्रचलन था। अकबर ने इस प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु वह इस कुप्रथा को रोकने में सफल नहीं हो सका। उस समय बाल-विवाह की प्रथा के साथ-साथ दहेज प्रथा भी विद्यमान थी। कन्याओं का विवाह माता-पिता की इच्छा पर निर्भर था। सारांश यह है कि इनका समाज में आदर नहीं था, किन्तु इस काल में कुछ स्त्रियाँ ऐसी हुई हैं जिन्होंने पर्याप्त उन्नति की; और जो अपने पतियों को उनके कार्यों में सहायता प्रदान करती थीं तथा विशेष सुशिक्षित तथा सभ्य थीं। **उनमें अकबर की माता हमीदाबानू बेगम, उसकी दाई महामअनंगा, नूरजहाँ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।** कुछ स्त्रियों ने अपनी जान जोखिम में डालकर अपने सतीत्व की रक्षा की। बहु-विवाह की विशेष प्रथा थी।

---

* "The workmen received low wages, they were subject to the oppressions of the nobles and the royal officers and were sometimes forced to work for them receiving insufficient remuneration or nothing at all in return. They lived on poor food, and took one meal a day for which they got nothing but a little Khichri made of green pulse mixed with rice. Their houses were built of mud with thatched roofs and contained no furniture at all, except some earthen pots and their humble beds. Peons or servants were available in large numbers. They received low wages but were allowed the customary commission for desturi, and very few of them served their masters honestly."

—**Dr. Sarkar and Dutta: Modern Indian History, Part I. p. 289-290.**

सम्राटों का हिन्दुओं के साथ सद्व्यवहार—सम्राटों का साधारणतः हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सद्व्यवहार था जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के पर्याप्त समीप आ गए और उनमें इस प्रकार की ईर्ष्या तथा वैमनस्य नहीं था जो दिल्ली-सुल्तानों के युग में विद्यमान था। दोनों एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। राजपूतों और मुगलों में वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना हुई। औरंगजेब की असहिष्णुतापूर्ण नीति ने हिन्दू और मुसलमानों में खाई तो अवश्य उत्पन्न कर दी, किन्तु वे एक दूसरे से बिलकुल अलग नहीं हो सके। मुसलमानों ने हिन्दुओं के साहित्यिक तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा उनका फारसी भाषा में अनुवाद करवाया।

सामाजिक दोष— हिन्दू और मुसलमानों में धार्मिक दोष विद्यमान थे। इनमें धार्मिक अन्धविश्वास पर्याप्त मात्रा में था। इनका पीरों, फकीरों, साधुओं में बड़ा विश्वास था। ये जादू-टोना में भी विश्वास करते थे। इनका ज्योतिष में भी विश्वास था। धार्मिक यात्राओं में भी समान विश्वास था। मदिरापान तथा व्यभिचार का बोल-बाला था। शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, जिसके कारण लोगों का नैतिक तथा मानसिक विकास नहीं हो पाया। हिन्दुओं में सती-प्रथा, बाल-विवाह तथा दहेज की कुप्रथाएँ विद्यमान थीं।

इस प्रकार यह कहना ठीक ही होगा कि मुगलों के काल में भारत की सामाजिक स्थिति उन्नत नहीं थी और उसका मानसिक तथा नैतिक पतन हो चुका था। लोगों की मनोभावनाएं पतित तथा कलुषित जीवन की ओर अधिक आकर्षित थीं और सम्राटों ने इसको उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

मुगलकालीन आर्थिक-दशा

बाबर और हुमायूँ के समय की आर्थिक दशा का बहुत कम उल्लेख मिलता है। जितना भी उल्लेख प्राप्त है उनके आधार पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि वस्तुओं के दाम अधिक नहीं थे और साधारण जनता का जीवन अधिक सुखमय नहीं था। **शेरशाह ने आर्थिक सुधार किए जिन्होंने सारधारण जनता की हीन अवस्था में कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया।** इसके शासन-काल में व्यापार और कृषि के क्षेत्र में उन्नति हुई, किन्तु अन्तिम सूर-वंश के शासकों के समय में शासन में शिथिलता उत्पन्न हो जाने के कारण व्यापार और कृषि को बड़ा आघात पहुँचा, किन्तु अकबर ने अपनी नीति से देश में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना कर व्यापार और कृषि को प्रोत्साहन प्रदान करने का प्रयत्न किया। **उसके प्रयत्नों का फल उसके उत्तराधिकारी जहांगीर और शाहजहाँ ने भोगा. जिनका काल विशेष गौरवमय था, किन्तु समस्त गौरव सम्राट तथा उच्च कुल के व्यक्तियों तथा बड़े-बड़े पदाधिकारियों तक ही सीमित था।** औरंगजेब के शासन-काल में उसकी नीति ने जनता में असन्तोष का प्रचार किया, जिसके कारण उसके समय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई और साम्राज्य का अधिकांश धन युद्धों में व्यय किया गया और जनता की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर तनिक भी प्रयास नहीं किया। उत्तर-कालीन मुगल-सम्राट

के समय में आर्थिक दशा का दिन-प्रतिदिन ह्रास होना आरम्भ हो गया। आर्थिक दृष्टि से भारत की जनता को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है जो इस प्रकार है

(१) **प्रथम श्रेणी**—इस श्रेणी के अन्तर्गत स्वयं सम्राट, राजपूत राजा जिन्हों मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी और जो उच्चतम पदों पर आसीन थे तथ अन्य उच्च पदाधिकारी तथा मनसबदार थे। इन सबकी आर्थिक अवस्था बहुत उन्न थी। **सम्राट की आय का तो कोई ठिकाना ही नहीं था और इसी कारण वे बहुत ही शान-शौकत तथा ठाट-बाट का जीवन व्यतीत करते थे।** राजपूत राजा अपनी आय का कुछ भाग राजकोष में जमा करते थे। उनका उनकी प्रजा से अधिक अच्छा व्यवहार नहीं था। वे मन-माने ढंग से कर वसूल करते थे। इनके अतिरिक्त राज की ओर से वे उच्च पदों पर आसीन थे और उनका वेतन बहुत अधिक था। वे अप **समस्त धन आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यय करते थे।** वे बचत करने क तनिक भी प्रयत्न नहीं करते थे, क्योंकि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी समस्त सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था।

(२) **द्वितीय श्रेणी**—इन श्रेणी के अन्तर्गत बड़े व्यापारी तथा मध्य वर्ग के राजकीय कर्मचारी होते थे। **मुगल-काल में व्यापार की पर्याप्त उन्नति होने के कार व्यापारी वर्ग की आर्थिक-स्थिति उन्नत थी।** मध्य वर्ग के राजकीय कर्मचारियों का वेतन भी पर्याप्त था। अच्छे जीवन-स्तर के लिए उनके पास धन का अभाव नहीं था, किन्तु जब वे अपने से ऊँची श्रेणी के व्यक्तियों का अनुकरण करना आरम्भ कर देते थे तो उनको आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था, किन्तु साधारणतः उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। व्यापारी वर्ग धन का व्यर्थ अपव्यय नहीं करता था। केवल कुछ ही व्यक्ति शान-शौकत का जीवन व्यतीत करते थे। मुल्ला और मौलवी भी इसी श्रेणी में आते थे। उनकी आय भी पर्याप्त थी।

(३) **तृतीय श्रेणी**—इस श्रेणी के अन्तर्गत **छोटे राजकीय कर्मचारी तथा छो दुकानदार थे।** इस श्रेणी के व्यक्तियों की आय साधारण जीवन व्यतीत करने के लिए पर्याप्त थी। राज्य में कुछ ऐसे स्थान थे जहाँ रिश्वत आदि लेने का अवकाश मिल सकता था। **ऐसे लोगों की आय पर्याप्त हो जाती थी, किन्तु वे राजकर्मचारि के भय से उच्च-कोटि का जीवन व्यतीत नहीं करते थे।**

(४) **चौथी श्रेणी**—इस श्रेणी के अन्तर्गत मजदूर, कारीगर और किसानों की गणना होती थी। इनकी स्थिति अच्छी न थी। मजदूरों की बहुलता थी जिसके कारण उनको उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता था और बहुधा उनको बेगार करने के लि वाध्य किया जाता था। **साधारण समय में किसानों की दशा अच्छी रहती थी, किन् अकाल आदि के समय उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती थी और उनको अने प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ता था।** मुगल-काल में कई भीषण अका विभिन्न समयों पर पड़े जिनके कारण किसानों को असह्य दुःख उठाने पड़े। मुग सम्राटों ने इनका सामना करने का प्रयास किया और किसानों को कुछ सहाय देने का भी प्रयत्न किया, किन्तु इन सबसे इनको विशेष सान्त्वना तथा सन्तोष प्रा

नहीं होता था, क्योंकि सहायता अधिकतर उस समय पहुँचती थी जब सैंकड़ों या हजारों व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती थी। **शेरशाह** तथा **अकबर** ने किसानों की स्थिति को उन्नत करने का प्रयास किया, किन्तु सिंचाई के उपयुक्त साधन के अभाव तथा दैवी के प्रकोपों के सामने उनके सुधार बहुत शिथिल पड़ जाते थे।

उद्योग-धन्धे—भारत की अधिकांश जनता राजकीय सेवा के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्योग-धन्घे भी करती थी जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) **कृषि**—भारत एक कृषिप्रधान देश था और इस कारण भारत की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर रहती थी। यह लोगों का मुख्य उद्यम था। बाबर और हुमायूँ को अपने जीवन-काल में कृषि की उन्नति करने का अवकाश प्राप्त नहीं हुआ और उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। **शेरशाह इस युग में प्रथम शासक था जिसने किसानों के साथ सद्व्यवहार किया और उनकी दशा को उन्नत करने का प्रयास किया।** अकबर ने भी इस ओर विशेष ध्यान दिया और उनके उत्तराधिकारियों ने भी उसकी ही नीति के अनुसार आचरण किया, किन्तु भारतीय किसान अपने पुराने औजारों से प्राचीन प्रथा के अनुसार ही कार्य करता था जिससे भूमि की उत्पादन-शक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं हो पाया। सिंचाई के पर्याप्त साधनों के अभाव में तथा दैवी-प्रकोपों के कारण बहुधा अकाल पड़ते रहते थे और किसानों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। किसान गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का, गन्ना, ज्वार, तिलहन, कपास तथा नील, दाल आदि की उपज करता था। बंगाल और बिहार में चाय, नील, गन्ना आदि अधिकतर उत्पन्न किए जाते थे। गमनागमन के साधनों के अभाव में माल एक स्थान से दूसरे स्थान को बहुत कम भेजा जा सकता था जिसके कारण अकाल ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता उतनी नहीं हो पाती थी जितनी होनी चाहिए थी।

(२) **व्यापार**— मुगलों के समय में व्यापार में बड़ी उन्नति हुई। इस समय भारत का विदेशों से व्यापार था तथा आन्तरिक व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। बाह्य व्यापार के कारण पश्चिम के नगरों ने विशेष उन्नति की। इनमें सूरत विशेष प्रसिद्ध था। **भारत से अन्य देशों को सूती और रेशमी वस्त्र नील, काली मिर्च तथा अन्य मसाले भेजे जाते थे और दूसरे देशों से सोना, चाँदी, ताँबा बहुमूल्य पत्थर आदि मंगाए जाते थे।** इसी व्यापार के कारण योरोप की कुछ जातियों ने भारत में अपनी कोठियों की स्थापना की। **मुगलों ने व्यापार की वृद्धि के उद्देश्य से सड़कों की सुरक्षा की ओर ध्यान दिया।** सड़कों पर वृक्ष लगवाए और उन पर अनेकों सराएँ भी बनवाईं जिनमें यात्री रात्रि के समय ठहर सकते थे। इस व्यापार के कारण विभिन्न उद्योगों में बड़ी वृद्धि हुई और भारत में अच्छे-से अच्छा समान तैयार किया जाने लगा। इससे कारीगर तथा व्यापारी वर्ग के साथ-साथ राजकीय आय में बड़ी वृद्धि हुई और देश समृद्धिशाली बन गया। भारत में बहुत अच्छा धातु का तथा लकड़ी का काम होता था।

समृद्धिशाली और औद्योगिक नगर— व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की वृद्धि

के कारण औद्योगिक नगरों का महत्व बहुत बढ़ गया और वे समृद्धिशाली हो गए। सूर-वंश के शासन-काल में लाहौर बड़ी उन्नत अवस्था में था। **एर्स्किन** (Earskine) के अनुसार शेरशाह और इस्लामशाह के समय में 'लाहोर एक बड़ा और सम्पन्न व समृद्धिशाली नगर था। वह व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था और वहाँ प्रत्येक उपयोगी वस्तु तथा लाभप्रद वस्तु सरलता से प्राप्त हो सकती थी।'[1] सन् १५८५ ई० में फिच (Fitch) ने लिखा है कि "आगरा और फतेहपुर दो बड़े नगर हैं। दोनों ही नगर अलग-अलग लन्दन नगर से बहुत बड़े और अधिक आबादी वाले हैं। आगरा और फतहपुर के मध्य बारह मील दूरी है और समस्त रास्ते में रसद और अन्य वस्तुओं से परिपूर्ण बाजार हैं, ऐसा ज्ञात होता है कि मनुष्य नगर में हैं, और अधिक व्यक्तियों के कारण ऐसा पता चलता है कि मनुष्य अभी भी बाजार में हैं।"[2] **टैरी** (Tarry) का कथन पंजाब के सम्बन्ध में इस प्रकार है कि "यह अत्यन्त बड़ा तथा उपजाऊ प्रदेश है। इनका प्रधान नगर लाहौर है जिसमें मनुष्य तथा धन की बहुलता है। यह नगर व्यापारिक केन्द्र है और व्यापारिक दृष्टि से इनका बहुत अधिक महत्व है।"[3] लाहौर के अतिरिक्त खानदेश में बुहारनपुर भी एक प्रसिद्ध नगर था। अहमदाबाद की प्रशंसा **अबुलफजल** ने की है। उसके अनुसार यह नगर उच्च-कोटि का तथा समृद्धिशाली है। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत में बनारस, पटना, राजमहल, बर्दुवान, ढाका विशेष उल्लेखनीय समृद्धिशाली नगर थे। काबुल भी इस समय उन्नत अवस्था में था, क्योंकि यह मध्य एशिया और भारत का केन्द्र था।

वस्तुओं का मूल्य—मुगलों के समय में वस्तुओं का मूल्य कम था और इसी कारण साधारण व्यक्ति साधारण समय में अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ सरलता से प्राप्त कर लेता था। यह सत्य है कि **निम्न वर्ग की आर्थिक अवस्था अधिक उन्नत नहीं थी और इनको कठिनाई का सामना करना पड़ता था,** किन्तु **भूखों की संख्या का अभाव-सा था।** **अबुलफजल** ने मजदूरों के वेतन को बहुत कम बतलाया है। उसके साथ-साथ उसने वस्तुओं के मूल्य की एक विस्तृत सूची भी दी है। दोनों पर ध्यानपूर्वक विचार कर इस परिणाम पर अवश्य पहुँचना होगा कि साधारणतया जीवन सुखमय था। साधारण मजदूर को प्रतिदिन २ दाम (आधुनिक ४/५ आने) मिलते थे और कुशल मजदूर को ७ दाम (आधुनिक ३ आने) मिलते थे। वस्तुओं के भाव अग्रलिखित तालिका के अनुसार थे—

---

[1] Lahore was a large and flourshins city, the centre of rich trade, and amply flourished with every useful and costly production of the time."

—Erskine, Vol II pp. 469-70.

[2] "Agra and Fatehpore are two very great cities, either of them much greater than London and very populous. Between Agra and Fatehpore are twelve miles and all the way is a market of rituals and other things as full as though a man were still in a town; and many people as if a man were still in a market."

—Fitch, p. 98.

[3] "A large province, and most fruitful. Lahore is the chief city and very large and abounds both in people and riches, one of the principal cities for trade in all India."

—Tarry.

क्रम	वस्तुएँ	प्रति मन	मूल्य (दामों में)
१	गेहूँ	,,	१२
२	गेहूँ का आटा	,,	२२
३	मोठ का आटा	,,	१५
४	जौ	,,	८
५	जौ का आटा	,,	११
६	बाजरा	,,	६
७	बढ़िया धान	,,	१००
८	साठी मोटा (चावल)	,,	२०
९	ज्वार	,,	१०
१०	चना	,,	१६½
११	सरसों	,,	१०
१२	तिल्ली	,,	६
१३	घी	,,	१०५
१४	मूंग	,,	१८
१५	तेल	,,	८०
१६	दूध	,,	२३
१७	दही	,,	१८
१८	बढ़िया गुड़	,,	६

इनके अतिरिक्त सब्जी, गोश्त, पशु आदि का मूल्य भी पर्याप्त कम था। इस प्रकार साधारण जनता की आय भी कम थी और मूल्य भी कम थे। कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि उस समय के साधारण व्यक्ति का जीवन आज के साधारण व्यक्ति के जीवन से अच्छा था। **किन्तु मोरलैण्ड (Moreland) के अनुसार साधारण जनता दुखी थी, क्योंकि उसकी आय बहुत कम थी।**

औरंगजेब के उपरान्त भारतीय आर्थिक स्थिति—औरंगजेब के शासन-काल के अन्तिम चरणों में ही **भारतीयों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने लगी थी**। उस का प्रमुख कारण यह था कि साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति, कलह, एवं विद्रोह फैल गया था। इसका प्रभाव भारत के उद्योग-धन्धों पर विशेष रूप से पड़ा। उसकी मृत्यु के उपरान्त तो स्थिति और भी भयंकर हो गई। साम्राज्य में बहुत-से युद्ध हुए।* नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया। नादिरशाह भारत ने अतुल धन लेकर गया। इधर मरहठों ने उत्तरी भारत में आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। इन सबका बहुत बुरा प्रभाव हुआ और जनता का अत्यधिक शोषण किया गया। बंगाल में ठेकेदारी की व्यवस्था

---

* "The incessant wars of the reign, bankruptcy of the administration and exhaustion of the exhequer, made maintence of peace and order impossible, and consequently agriculture, industries and trade were so badly affected that for sometime trade came almost to a stand-still."

—An Advanced History of India, P. 576.

के कारण किसानों को बहुत अधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। बाद में वॉरन हेस्टिंग्ज तथा लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल की दशा को उन्नत करने का अवश्य प्रयास किया, किन्तु स्थिति कुछ विशेष उन्नत नहीं हो पाई।

धार्मिक अवस्था—साधारणतः मुगल सम्राटों ने औरंगजेब के अतिरिक्त धार्मिक उदारता की नीति को अपनाया जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इस समय हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन का जोर होने लगा जिसका आरम्भ दिल्ली सल्तन के अन्तिम दिनों में आरम्भ हो गया था। इस काल में **मीराबाई, सूरदास आदि सन्तों ने कृष्ण की उपासना की शिक्षा दी तथा तुलसीदास ने राम की उपासना का पाठ पढ़ाया।** उनके अनुसार मानव केवल भक्ति के आधार पर ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है, उसको ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। **बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, दक्षिण में एकनाथ इस मार्ग का साधारण जनता में प्रचार कर रहे थे।** कुछ महात्माओं ने आडम्बरों का खण्डन करने के लिए प्रयत्न किया। अकबर स्वयं अपने युग के विचारों से बड़ा प्रभावित हुआ और वह कट्टर पंथियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। उसने अपने विचारों को 'दीन-इलाही' धर्म के रूप में परिलक्षित किया, जिसके द्वारा वह दोनों धर्मों के अनुयायियों की कटुता का अन्त करने का विचार रखता था। अकबर के समान **जहाँगीर की भी धार्मिक नीति बहुत उदार थी** और धार्मिक-व्यवस्था पूर्ववत चलती रही। **शाहजहाँ ने धार्मिक नीति में उलट-फेर करना आरम्भ किया। उसके शासन-काल में नये मन्दिरों के बनाने के लिए निषेध कर दिया गया और जो उस समय बन रहे थे उनको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया।** औरंगजेब पक्का कट्टर मुसलमान था। **उसने शाहजहाँ की नीति को आगे बढ़ाया। और धार्मिक अत्याचारों का युग आरम्भ हुआ। उसने केवल हिन्दुओं के साथ ही नहीं, वरन् शिया मुसलमानों तथा ईसाइयों के साथ भी कठोर व्यवहार किया।** उसने अनेकों मन्दिरों को नष्ट कर उसके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने हिन्दुओं को बाध्य कर इस्लाम धर्म में दीक्षित करवाया। उसने उनकी पाठशालाओं को बन्द कर दिया। उसने उनके ऊपर जजिया कर लगवाया, जिसको हिन्दू लोग बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनकी यह नीति मुगल-साम्राज्य को अधोपतन की ओर ले गई और उसके उत्तराधिकारियों को इसका दुःखद परिणाम भोगना पड़ा।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मुगलकालीन समाज का वर्णन करो।

(२) १६वीं और १७वीं शताब्दी के प्रमुख धार्मिक नेताओं तथा सन्तों के कार्य तथा प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करो।

(३) मुगलकालीन सामाजिक-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

मध्यभारत—

(१) मुगल-काल में भारत की जनता की सामाजिक और धार्मिक दशा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

१४

मुगलकालीन सभ्यता और संस्कृति

मुगल-काल दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा बहुत उन्नत था। इस काल के शासकों के समय में भारत ने सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। समस्त मुगल शासक शिक्षित थे और वे विद्वानों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और प्रत्येक समय उसके द्वार उनके लिए खुले रहते थे। वे इनके आश्रयदाता थे और उनकी सहायता करने में अपना गौरव समझते थे।

शिक्षा

मुगल-काल में शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त था, यद्यपि उस समय कोई शिक्षा-विभाग नहीं था जो शिक्षा के प्रचार के लिए उचित व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयत्न करता, किन्तु फिर भी इनकी ओर से विद्यालयों को पर्याप्त धन सहायतार्थ प्राप्त होता था। राज्य के उच्च पदाधिकारी भी इनकी सहायता समय-समय पर करते थे। प्रत्येक मस्जिद में एक मकतब (पाठशाला) होती थी जिसमें समीप के बालक आकर विद्याध्ययन करते थे।

बाबर और हुमायूं—बाबर स्वयं अरबी, फारसी और तुर्की भाषा का पर्याप्त ज्ञान रखता था। उसके समय का पब्लिक वर्क्स विभाग (शोरहते आम) का अन्य कार्यों के अतिरिक्त यह भी कार्य था कि वह विद्यालयों के भवनों का निर्माण करे। हुमायूं को विद्या से बड़ा प्रेम था। **वह स्वयं बहुत अध्ययन किया करता था और उसका पुस्तकालय उच्च-कोटि के ग्रंथों से पूर्ण था।** वह अपने साथ सदा कुछ चुनी हुई पुस्तकें रखता था। उसने दिल्ली के मदरसे का निर्माण करवाया तथा एक पुस्तकालय का शिलान्यास किया।

अकबर—अकबर के समय में विद्या का प्रसार करने का विशेष प्रयत्न किया गया; यद्यपि वह स्वयं शिक्षित नहीं था। विद्यालयों में शिक्षा देने की परिपाटी की दृष्टि से अकबर का शासन-काल नवयुग माना गया है।* उसने पाठ्यक्रम (केरिकुल्लम) में पर्याप्त संशोधन कराए जिससे शिक्षा अधिक उन्न हो पाई। उसने शिक्षा-प्रणाली को उन्नत करने का प्रयत्न किया, जिसका प्रभाव बड़ा अच्छा हुआ। उसने फतहपुर सीकरी, आगरा तथा अन्य कुछ स्थानों पर विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में हिन्दू भी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

जहाँगीर—जहाँगीर एक शिक्षित व्यक्ति था। उसको विद्या तथा साहित्य से अनुराग था। वह फारसी और तुर्की भाषा का पर्याप्त ज्ञान रखता था। उसके आदेशानुसार घोषित किया कि उच्च पदाधिकारियों की मृत्यु पर उनकी समस्त

---

* "Akbar's reign marks a new epoch for the system introduced for imparting education in schools and colleges."

सम्पत्ति का प्रयोग शिक्षा प्रसार के लिए किया जायेगा यदि उनका कोई उत्तराधिकारी न हो। राज्य-सिंहासन पर आसीन होते ही उसने उन मदरसों का जीर्णोद्धार किया जो पर्याप्त समय से बेकार पड़े हुए थे और जिनमें जङ्गली पशुओं ने अपना निवास-स्थान बना लिया था।

शाहजहाँ—शाहजहाँ भी विद्या-प्रेमी था। उसने भी शिक्षा का प्रसार किया और इसी उद्देश्य से वह विद्वानों को अतुल धन देता था। उसने दिल्ली में एक मदरसे की स्थापना की और बहुत-से पुराने स्कूल और कालिजों का उद्धार किया और उनको आर्थिक सहायता प्रदान की। उसका ज्येष्ठ पुत्र द्वाराशिकोह बड़ा विद्वान तथा साहियत्कार था। वह अरबी, फारसी तथा संस्कृत का विद्वान था। उसने हिन्दुओं के कई ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया। उसने स्वयं कुछ ग्रन्थों की रचना भी की।

औरंगजेब—औरंगजेब यद्यपि विद्वान था, किन्तु उसने शिक्षा के प्रसार के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, यद्यपि उसने मुसलमानों के विद्यालयों को पर्याप्त धन दिया और उनके लिए ही कुछ स्कूल तथा विद्यालय स्थापित किए। इनके विपरीत उसने हिन्दुओं की पाठशालाओं को बन्द करवा दिया और उनको सहायता देना भी रोक दिया जो उनको पहले से मिलती थी।

उत्तर काल—उत्तर काल के मुगलों को इस ओर ध्यान देने का बहुत कम अवकाश मिला, किन्तु फिर भी कुछ सम्राटों ने इस ओर कुछ प्रयास अवश्य किया। बहादुरशाह तथा मुहम्मशाह ने स्कूल और मरदसे खोले। इनके अतिरिक्त प्रान्तीय सूबेदारों ने भी शिक्षा-प्रसार कार्य में सहयोग प्रदान किया और इन्होंने कई मदरसों तथा कालिजों की स्थापना की। महमूद गवाँ ने बीदर में एक कालिज की स्थापना की। जौनपुर उस समय शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था।

स्त्री-शिक्षा

मुगलों ने स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया। उनको शिक्षा के लिए अलग कालिज तथा स्कूल की व्यवस्था नहीं थी। उच्च-कुल की स्त्रियाँ अवश्य कुछ शिक्षित होती थो। उनकी शिक्षा घर पर ही होती थी। राजपरिवार की स्त्रियों की शिक्षा की अवश्य व्यवस्था थी। गुलबदन बेगम, सलाही बेगम नूरजहाँ, जहाँनारा बेगम तथा जुबुनिसा पर्याप्त शिक्षित तथा सुसंस्कृत थीं, किन्तु साधारण स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था का सर्वथा अभाव था।

(8846(83)

साहित्य

मुगलों में शासन-काल में विभिन्न भाषाओं ने साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की।[1] समस्त मुगल शासक विद्वानों तथा साहित्यकारों के आश्रयदाता थे, और इसी कारण इस काल में उच्च कोटि के साहित्य की रचना हुई।[2] बाबर ने

---

[1] "As far as literature of different languages is concerned, it attained to the h'ghest point during the Mughal period."

[2] "Tne Timurid rulers of India were patrons of literature and gave

तुर्की भाषा में अपनी **"आत्म कथा"** की रचना की। हुमायूँ विद्वान था और उसको लिखने का भी कुछ शौक था। उसकी बहन **गुलबदन बेगम** ने **"हुमायु नामा"** नामक ग्रन्थ की रचना की। हुमायूँ के एक सेवक **जौहर** ने **"वतजकिराते वाकयात"** नामक ग्रन्थ की रचना की। शेरशाह स्वयं बड़ा शिक्षित था। वह विद्वानों तथा साहित्यकारों का आश्रय दाता था, और उनको आदर एवम् श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसके शासन-काल में भी साहित्य के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई।

अकबर—अकबर यद्यपि स्वयं सुशिक्षित नहीं था, किन्तु उसने विद्वानों तथा साहित्यकारों को अपने यहाँ आश्रय दिया। **वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करता था। अकबर की संरक्षिता में भारत में साहित्य का बड़ा विकास हुआ।** अकबर के काल में एक अनुवाद-विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग के अन्तर्गत संस्कृत, अरबी तथा योरोपियन भाषाओं में रचित ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया गया। इसके अतिरिक्त उसके काल में ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई तथा फारसी भाषा में उच्च-कोटि का साहित्य रचा गया। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग प्रकाश डाला जाएगा—

(क) **अनवादित ग्रन्थ**—जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है कि इस काल में विभिन्न भाषाओं के ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाने के लिए एक अनुवाद विभाग की स्थापना की गई। अनुवादकों में अब्दुलरहीम खानखाना, बदायूंनी, अबुल-फजल, फैजी, नकीब खाँ इब्राहीम सरहिन्दी विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल में निम्नलिखित ग्रन्थों का अनुवाद हुआ—

(१) महाभारत—समस्त अनुवादकों द्वारा, (२) रामायण—बदायूंनी द्वारा (३) अथर्ववेद—बदायूंनी तथा इब्राहीम सरहिन्दी द्वारा, (४) लीलावती—फैजी द्वारा, (५) ताजक—मुकम्मल खाँ गुजराती द्वारा, (६) राजतरंगिणी—मौलाना शाह मुहम्मद शाहावादी द्वारा, (७) नल-दमयन्ती—फैजी द्वारा, (८) कालीयदमन—अब्बुल-फजल द्वारा, (९) तुजके बाबरी—अब्दुल रहीम खानखाना द्वारा, (१०) तारीखे रशीदा - बदायूंनी द्वारा, (११) बाइबिल, (१२) कुरान।

(ख) **ऐतिहासिक ग्रन्थ**—अकबर के शासन-काल में ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी पर्याप्त रचना हुई। ऐतिहासिक ग्रन्थों के रचियताओं में अबुलफजल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय तथा महत्वपूर्ण है।

(१) अबुलफजल का **अकबर नामा**, (२) अबुलफजल का आइने-अकबरी, (३) बदायूंनी की मुन्तखबउतवारीख, (४) मुल्ला दाऊनी तथा अन्य की तारीखे अलफी, (५) निजामुद्दीन अहमद की तबकाते अकबरी।

उक्त ग्रन्थों में अबुलफजल द्वारा रचित ग्रन्थ **'अकबर नामा'** अपना विशेष स्थान रखता है। इसकी भाषा बड़ी अलंकृत तथा प्रभावोत्पादक है। इसमें भारत-वासियों के रीति-रिवाजों का बड़ा सुन्दर तथा विशद वर्णन किया गया है। **'आइने**

---

considerable impetus to its development in different branches. Many scholars flourished and wrote interesting and important work under the patronage of Akbar."

—**Majumdar.**

अकबरी' में अबुलफजल ने राजनीतिक तथा सैनिक-व्यवस्था का विशद् वर्णन किया है। इसके साथ-साथ इसके अन्तर्गत तत्कालीन साहित्य और दर्शन का भी बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ उस समय के ग्रन्थों में सबसे उत्कृष्ट है। इस ग्रन्थ के उपरान्त दूसरा ग्रन्थ बदायूंनी का है। यह गुप्त रीति से लिखा गया था क्योंकि लेखक सम्राट की धार्मिक नीति का विरोधी था। यह ग्रन्थ अकबर की मृत्यु के उपरान्त प्रकाश में आया। इसमें अन्य बातों के साथ अकबर की धार्मिक नीति की आलोचना मिलती है। अतः इससे विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ग) फारसी के मूल ग्रन्थ—इस काल में ऐसे लेखकों तथा विद्वानों ने भी जन्म लिया, जिन्होंने फारसी भाषा के मूल ग्रन्थों की रचना की। इस भाषा के कवि भी पर्याप्त मात्रा में थे। **अबुलफजल** के अनुसार दरबार सैंकड़ों कवियों से सुशोभित रहता था जिनमें गिजाली तथा **फैजी** के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अकबर के समय में निम्न कवि विशेष प्रसिद्ध थे—

(१) गिजाली—यह राजकवि था। इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ मिरातुल कायनात, नक्शे वार्दाद, इसरारे मकतब हैं।

(२) फैजी— यह शेख मुबारक का पुत्र और अबुलफजल का भाई था। यह अरबी तथा फारसी भाषा का बड़ा विद्वान था। उसकी प्रमुख रचनाएं मनसवी नलोदमन, मरकजे अदवार, मेवारिदूलकलाप, सवातुलइल्हाम आदि हैं।

(३) मुहम्मद हुसैन नाजिरी—ये उच्च-कोटि की गजलें लिखते थे।

(४) शीराज का सैयद जमालुद्दीन उर्फी—ये कसीदा रचना उच्चकोटि की करते थे।

जहाँगीर—जहाँगीर सुशिक्षित तथा बड़ा विद्वान् था। उसने भी अपने पिता के समान साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। **उसने स्वयं अपनी आत्मकथा लिखी, जिसका नाम 'तुज्के जहाँगीरी' है। नूरजहाँ और जहाँगीर को कविता करने का चाव था, किन्तु उनकी कविताएँ उच्च कोटि की नहीं थीं।** उसके समय के प्रसिद्ध विद्वान ग्यास वेग, नकीब खाँ मुतामिद खाँ, न्यामतउल्ला तथा अब्दुलहक देहलवी थे। उसके शासन काल में कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थों की भी रचना हुई, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—

(१) ख्वाजा कामगार द्वारा रचित मुआसिरे जहाँगीरी, (२) मुतमिद खाँ द्वारा रचित इकबालनामा-ए-जहाँगीरी, (३) मुहम्मद कासिम फरिश्ता द्वारा रचित तारीखे फरिश्ता।

शाहजहाँ—शाहजहाँ के काल में साहित्य की बड़ी प्रगति हुई। वह स्वयं **सुशिक्षित तथा विद्वान् था और विद्वानों को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखता था।** इसके शासन-काल में ऐतिहासिकों की, अनुवादों की, काव्यों की तथा दर्शन-शास्त्रों की रचना हुई। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग विचार किया जायगा—

(क) ऐतिहासिक ग्रन्थ—शाहजहाँ के समय के प्रमुख ग्रन्थ तथा इतिहासकार इस प्रकार थे—

(१) अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा रचित पादशाहनामा, (२) इनायत खाँ द्वारा रचित शाहजहाँनामा, (३) मिर्जा अमीन कजनीवी द्वारा रचित पादशाहनामा, (४) मुहम्मद सलिह द्वारा रचित अमल सालिह, (५) मुहम्मद सादिक द्वारा रचित शाहजहाँनामा, (६) मुहम्मद ताहिर अशना द्वारा रचित मुलख् खवास, (७) जलालउद्दीन तवताई द्वारा रचित पादशाहनामा।

(ख) **अनुवादित ग्रन्थ**—शाहजहाँ के समय में कुछ धार्मिक ग्रन्थों का उसके सुशिक्षित पुत्र दाराशिकोह द्वारा अनुवाद सम्पन्न करवाया गया। उसके संरक्षण में भगवत् गीता, योग वशिष्ट तथा उपनिषदों का अनुवाद फारसी भाषा में करवाया गया।

(ग) **काव्य**—प्रसिद्ध साहित्यकार तथा कवि भी उसके शासन-काल में पर्याप्त हुए हैं, जिनमें अब्दुल तालीम, कालीन, हाजी मुहम्मद जान, गिलानी विशेष उल्लेखनीय थे।

(घ) **धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ**—शाहजहाँ के काल में धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना हुई। राजकुमार दाराशिकोह तथा मोहिसन फानी ने अनेक धार्मिक ग्रंथों की भी रचना की, जिनकी उस समय पर्याप्त ख्याति तथा प्रसिद्धि थी।

औरंगजेब—औरंगजेब स्वयं विद्वान् था। वह फारसी का बड़ा ज्ञाता था, किन्तु उसने साहित्य के प्रोत्साहन में तनिक भी योग नहीं दिया, फिर भी गुप्त रूप से कुछ व्यक्तियों ने साहित्य की वृद्धि की। कुछ लोगों ने ऐतिहासिक ग्रंथों की भी रचना की, जबकि इस प्रकार के ग्रंथों की रचना पर निषेध लगा दिया गया था। इसमें खफीं का नाम उल्लेखनीय है जिसने **मुंतखन उल्लुवान** नामक ग्रन्थ की रचना की। औरंगजेब ने अन्य ग्रन्थों की सहायता से **फतवा-ए-आलमगीरी** नामक ग्रन्थ का संकलन कराया।

हिन्दी साहित्य की प्रगति—मुगलों के समय में हिन्दी साहित्य ने बड़ी प्रगति की। भक्ति आन्दोलन द्वारा जन-साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन मिला। सन् १५४० ई० में **मलिक मुहम्मद जायसी** ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **'पद्मावत्'** की रचना की जिसमें मेवाड़ की रानी पद्मनी के जीवन का वर्णन है। हिन्दी जगत् में इसका स्थान पर्याप्त उच्च है। ये शृङ्गार रस के तथा रहस्यवादी कवि थे। स्वयं अकबर हिन्दी कविता से प्रेम करता था और हिन्दी के कवियों को उसने आश्रय दिया। **राजा भगवानदास,** मानसिंह, **बीरबल की गणना अच्छे कवियों में की जाती थी।** सम्राट ने राजा बीरबल को लोकप्रिय की उपाधि से सम्मानित किया। **अब्दुल रहीम खानखाना** उच्च कोटि के कवि थे। उनके दोहे आज भी आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखे और पढ़े जाते हैं। उक्त कवियों के अतिरिक्त अकबर के दरबार में **करन, हरिनाथ गर्ग** आदि कवि थे।

भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर कुछ साधु तथा सन्तों ने भी रचनाएँ की जिनकी हिन्दी साहित्य में बहुत प्रतिष्ठा है और जिनका स्थान बहुत श्रेष्ठ है। इस काल में भक्ति आन्दोलन दो शाखाओं में विभक्त हो गया था, एक राम मार्गी और दूसरा कृष्णमार्गी। इन्हीं की प्रशंसा में उन्होंने काव्यों की रचनाएँ कीं। कृष्णमार्गी कवियों में **सूरदास** और राम मार्गी कवियों में **तुलसीदास** का नाम विशेष महत्वपूर्ण

है। सूरदास ने अपने काव्य में कृष्ण भगवान की बाल-लीला, कृष्ण और राधा के प्रेम को विशेष रूप से चित्रित किया है। उन्होंने ब्रज-भाषा में **'सूरसागर'** की रचना की। इसके बाद नन्द दास, विट्ठल दास, परमानन्द दास तथा रसखान का नाम आता है, जिन्होंने कृष्ण की जीवन-लीला के सम्बन्ध में अपने काव्यों की रचना की। तुलसीदास राम मार्गी थे। उनकी रचित **'रामचरित मानस'** उनकी अमर कृति है। इसके अतिरिक्त उन्होंने **विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल** आदि काव्यों की रचना की। उनका ग्रन्थ **'रामचरित मानस'** आज भी बड़ी श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वे कवि के साथ-साथ समाज-सुधारक तथा एक बड़े विचारक तथा दार्शनिक भी थे। इनके उपरान्त **केशव** का स्थान है जो संस्कृत भाषा के प्रगाढ़ पण्डित थे। इनकी भाषा विशेष क्लिष्ट है जिसके कारण वह आसानी से समझ में नहीं आती। इनकी रचित **'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया', 'रसिक प्रिया'** आदि हैं। ये प्रधानतः श्रृङ्गार रस के कवि थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी हुए हैं जिनमें **सेनापति, सुन्दर, भूषण, देव तथा बिहारी हैं। सेनापति कृष्ण के भक्त थे।** इनकी मुख्य रचना **'कवित्तरत्नाकर'** है। **भूषण** राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण थे। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं **'सिवा बावनी'** तथा **'छत्रसाल दशक'** हैं। **बिहारी की 'सतसई'** बड़ी **प्रसिद्ध है।** ये प्रधानतः श्रृङ्गार रस के कवि थे। औरंगजेब की असहिष्णुतापूर्ण नीति के कारण उसके शासन में हिन्दी साहित्य का विकास उस तीव्र गति से नहीं हो पाया जितना उसके पूर्व सम्राटों के शासन-काल में हुआ था। मुगलों के समय में बंगला साहित्य का भी विकास हुआ।

कला

1883, 86

मुगल-सम्राटों को कला से भी विशेष प्रेम था। इनके संरक्षण में समस्त कलाओं का विकास हुआ और कलाकारों को राज्य की ओर से विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। औरंगजेब अवश्य एक ऐसा मुगल-सम्राट हुआ जिसने कला के विकास में प्रोत्साहन देने के स्थान पर उसका अन्त करना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। वास्तव में उसमें कलात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था। मुगलों के समय में निम्न कलाओं ने विशेष प्रगति की—

(१) स्थापत्य कला—मुगलों को स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था और उनके काल में इस कला को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, किन्तु **इस काल की स्थापत्य कला न तो पूर्णतया मुगल-स्थापत्य कला ही कही जा सकती है और न पूर्णतया भारतीय ही।** इसका कारण यह है कि इस स्थापत्य कला में मध्य-एशिया, दक्षिणी-पूर्व एशिया तथा भारतीय स्थापत्य कला का समन्वय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस बात की पुष्टि **श्री हैवल, सरकार, दत्त** तथा **डाक्टर ईश्वरी प्रसाद** करते हैं, किन्तु कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि मुगलकालीन स्थापत्य कला विदेशी है और उस पर भारतीय कला का कोई प्रभाव नहीं था। **डाक्टर ईश्वरी प्रसाद** ने अपना मत निम्न शब्दों में व्यक्त किया, "निष्पक्ष भाव से देखने पर यह ज्ञात होता है कि अपनी विशालता के कारण वास्तव में कोई एक शैली विशेष रूप से नहीं अपनाई गई। विभिन्न स्थानों

पर विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया। बाबर के काल तक भारतीय कला पर विदेशी कला का प्रभाव पड़ा, जो अकबर के शासन-काल में इसी प्रकार चलता रहा, किन्तु उसके उपरान्त वह भारतीय कला में इतना अधिक घुल मिल गया कि उसके पृथक् अस्तित्व का पता लगाना कठिन प्रतीत होता है।"* वास्तव में यह मत सत्य है।

बाबर की स्थापत्य कला—बाबर को स्थापत्य कला से बड़ा अनुराग तथा प्रेम था और वह उच्चकोटि का पारखी था। उसको तुर्कों और अफगानों द्वारा बनवाए हुए भवन चित्ताकर्षक नहीं लगे। वह ग्वालियर की शिल्प कला से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की। उसने आगरा, सीकरी, बियाना, धौलपुर, ग्वालियर, अलीगढ़ में इमारतों के निर्माण कराने के लिए सैकड़ों कारीगर लगाए थे, किन्तु उसके द्वारा बनवाई हुई अधिकतर इमारतें समय के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। इस समय उनकी बनवाई हुई केवल दो इमारतें ही शेष हैं, एक मस्जिद पानीपत में है और दूसरी मस्जिद रुहेलखण्ड के सम्भल नामक नगर में है। इन दोनों मस्जिदों का निर्माण १५२६ ई० में हुआ था।

हुमायूँ की स्थापत्य कला—हुमायूँ का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ जिसके कारण वह भवनों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान न दे सका, यद्यपि उसको भी स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था। उसने भी कुछ मस्जिदों का निर्माण करवाया, उनमें से एक फतेहबाद (हिसार) में अब भी विद्यमान है जो कला की दृष्टि से देखने योग्य है। इसकी खपरैलों पर फारसी ढंग से मीनाकारी की गई थी।

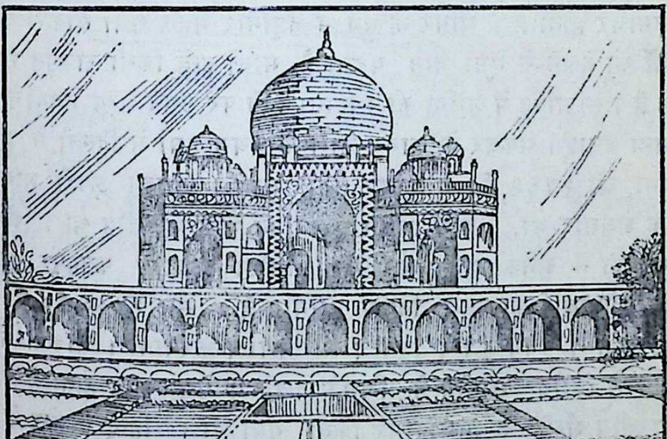

हुमायूँ का मकबरा

शेरशाह की स्थापत्य कला—शेरशाह को भी स्थापत्य कला से प्रेम था। उसने भी बहुत-सी इमारतें बनवाई जिसमें उसका सहसराम स्थित मकबरा विशेष दर्शनीय है। इसका बाह्य रूप मुसलमानी ढंग का है, किन्तु इसका भीतरी भाग तोड़ों तथा हिन्दू ढंग के खम्भों से सुसज्जित है। "शेरशाह का यह मकबरा स्थापत्य कला

---

* "History of Muslim Rule in India." —Dr. Ishwari Prasad. p. 660.

के विकास के इतिहास में तुगलक सुल्तानों के समय की भारी तथा भद्दी इमारतों और शाहजहाँ की बनवाई हुई सुन्दर इमारतों के बीच की कड़ी है।*

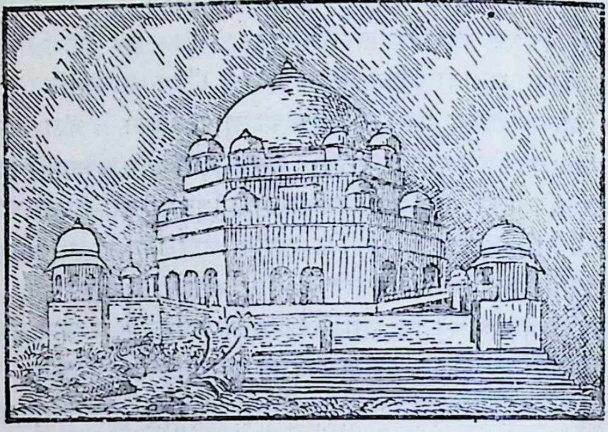

शेरशाह का मकबरा

अकबर की स्थापत्य कला—अकबर को स्थापत्य कला से बड़ा अनुराग था। उसके शासन-काल में सुख और शान्ति को स्थापना हुई और चारों ओर सांस्कृतिक किया। इसी कारण उसकी इमारतों में फारसी तथा भारतीय शैलियों का समन्वय स्पस्ट दृष्टिगोचर होता है। आगरे के दुर्ग में जहाँगीर महल तथा सीकरी की बहुत-सी इमारतों को देखने-से ऐसा जान पड़ता है मानों इन्हें किसी राजपूत राजकुमार ने बनवाया है। साम्राज्य में शान्ति की स्थापना होने पर उसने भव्य भवनों के निर्माण की आयोजना बनाई। अकबर के शासन-काल के प्रथम वर्षों में दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा बना, जो १५६९ ई० में बनकर तैयार हुआ। इसका ऊपरी भाग फारस की शैली के अनुसार था, जबकि इसका नीचे का भाग भारतीय था। **अकबर ने फतहपुर सीकरी में अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया।** फतहपुर सीकरी की इमारतों में जोधाबाई का महल विशेष दर्शनीय है। सन् १५७६ ई० में गुजरात विजय के उपलक्ष में उसने बुलन्द दरवाजे का निर्माण करवाया। सीकरी में स्थिति दीवाने खास भी विशेष दर्शनीय है, जिसके देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इनका निर्माण भारतीय शैली के आधार पर किया गया था। हिन्दू विचार के अनुसार इसके मध्य में कमल के फूल के आकार का सिंहासन स्तम्भ है। पंच-महल भी देखने योग्य है। इसमें बौद्धकालीन कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। 'वहाँ की जामा मजिस्द भी एक सुन्दर इमारतों में है। **फरग्यूसन** (Furgueson) ने इनको समन्वय की स्थापना हो रही थी। उसने स्थापत्य कला में भी समन्वय करना आरम्भ 'Romance in stone' के नाम से सम्बोधित किया है। फतहपुर सीकरी के भवनों

---

* Critics are of opinion that it is intermediate between the austerity of the Tughlak buildings and the feminine grace of Shahjahan's master piece"

—Dr. A. L. Shrivastava—The Mughal Empire, p. 535.

के अतिरिक्त उसने आगरे के समीप सिकन्दरा में अपने मकबरे की आयोजना अपने जीवन-काल में ही की थी। यह भी फतहपुर सीकरी में स्थित पंच-महल के ढंग

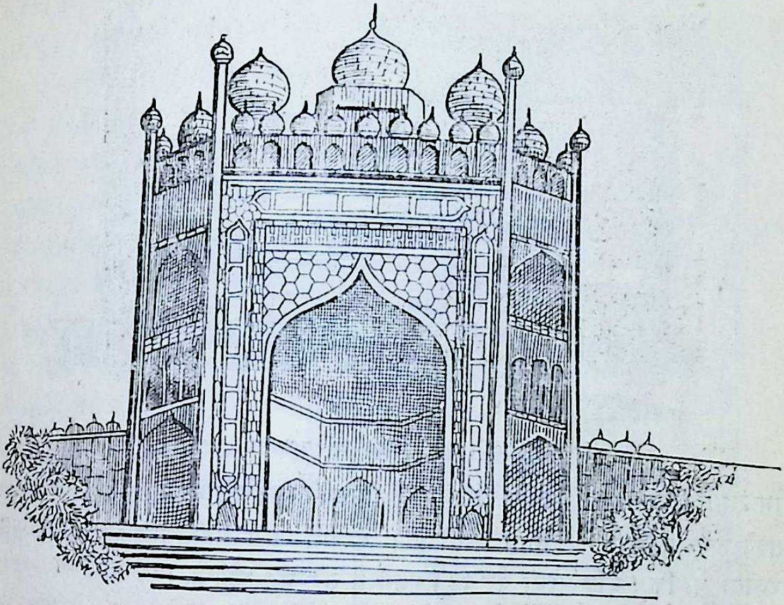

बुलन्द दरवाजा फतहपुर सीकरी

का है। उसने इलाहबाद में एक दुर्ग का निर्माण करवाया जो लगभग ४० वर्ष में बनकर तैयार हुआ।

जहाँगीर की स्थापत्य कला— जहाँगीर को अपने पिता के समान स्थापत्य कला से विशेष प्रेम नहीं था और इसके द्वारा निर्मित इमारतें उसके पिता द्वारा निर्मित इमारतों की अपेक्षा कम दर्शनीय हैं फिर भी उसके समय के दो भवन **सिकन्दरा में अकबर का मकबरा** तथा आगरे में **एतमाद-उद्दौला का मकबरा** विशेष महत्वपूर्ण हैं। अकबर का मकबरा १६१३ ई० में बनकर तैयार हुआ। उसका आयोजना अकबर ने अपने जीवन में ही बनवा दी थी। एतमाद-उद्दौला का मकबरा नूरजहाँ ने अपने पिता की स्मृति में बनवाया था। **यह स्वच्छ सफेद संगमरमर का है और बहुमूल्य पत्थरों से अलंकृत है।** यद्यपि यह आकार में बहुत छोटा है किन्तु बड़ा मनोहर है। इसके द्वारा नूरजहाँ के स्थापत्य कला के प्रेम का दिग्दर्शन होता है।

80 **शाहजहाँ की स्थापत्य कला**—मुगल सम्राटों मे शाहजहां को इमारतों के बनवाने का सबसे बड़ा चाव था। उसने अपने शासनकाल में बहुत-सी इमारतों का विभिन्न नगरों में निर्माण कराया। उसने इनके निर्माण में बहुत अधिक धन व्यय किया, जिसका सही अनुमान बड़ा कठिन है। **शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों में उतनी अधिक भव्यता तथा मौलिकता नहीं है जितनी कि अकबर द्वारा निर्मित इमारतों में विद्यमान है, किन्तु उसके भवनों में कोमलता, सुन्दरता तथा सजावट अकबर के भवनों से अधिक दिखाई देती है।** शाहजहाँ ने अनेकों भवन, दुर्ग एवं

मस्जिदों आदि का निर्माण आगरा, दिल्ली, लाहौर, काबुल, कंधार, अजमेर, अहमदाबाद आदि स्थानों में करवाया। उसने दिल्ली का लाल किला बनवाया। उसमें दीवाने आम तथा दीवाने खास विशेष दर्शनीय हैं। उसकी सुन्दरता बहुत अधिक है, और यह उसकी उच्च कृतियों में गिनी जाती है। दीवाने खास की दीवार पर उसने अंकित करवाया था कि **"यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है।"**

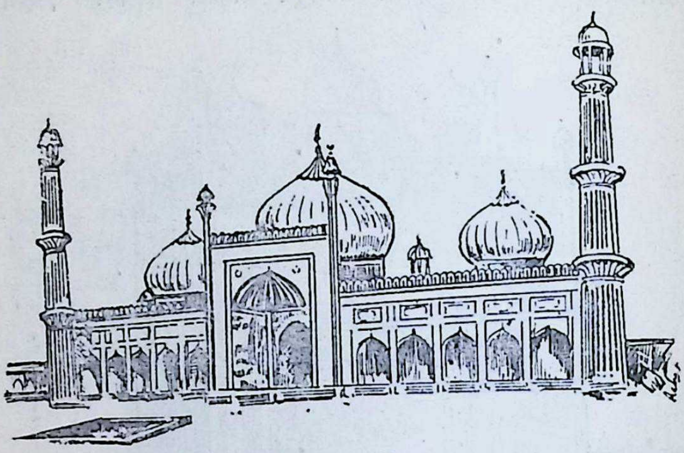

दिल्ली की जामा मस्जिद

शाहजहाँ ने **आगरे के दुर्ग में मोती मस्जिद** का निर्माण करवाया जो स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। वहाँ पर उसने एक और मस्जिद का निर्माण कराया जो मस्जिदे जहाँनामा के नाम से विख्यात है। उसको सब इमारतों में उत्कृष्ट तथा दर्शनीय ताजमहल है जो उसने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज महल की यादगार में बनवाकर

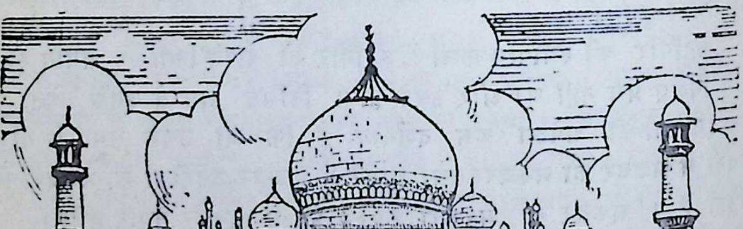

ताजमहल

तैयार किया। अपनी सुन्दरता तथा भव्यता व विशालता के कारण यह विश्व की अनोखी वस्तुओं में अपना स्थान रखता है। इसके ऊपर ५० लाख रुपये से भी अधिक धन व्यय किया गया था। इसका निर्माण २२ वर्ष में हुआ था। उसने लाहौर में जहाँगीर का मक़बरा बनवाया जो कला का उत्कृष्ट नमूना है। तख्ते-ताऊस का निर्माण १ करोड़ रुपये से अधिक व्यय करके ७ साल में करवाया। यह सिंहासन उसने मोर के समान आकृति में बनवाया था जो सात फीट चौड़ा, ७ फीट लम्बा और १५ फीट ऊँचा था। इसके ऊपरी भाग पर लाल, हीरे-जवाहिरात, पन्ने आदि जड़े हुए थे और यह भाग बारह खम्भों पर आश्रित था, और प्रत्येक खम्भे पर रत्न-जड़ित मोर बने हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि इसको देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। फारस का बादशाह नादिरशाह इसको अपने साथ फारस ले गया, किन्तु दुर्भाग्य से वह आज कहीं भी नहीं मिलता। न मालूम उसका क्या हुआ।

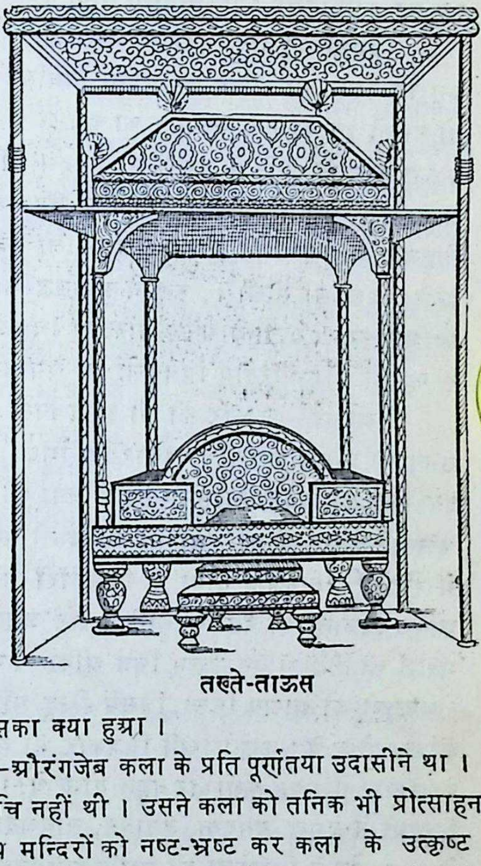

तख्ते-ताऊस

औरंगजेब की स्थापत्य कला—औरंगजेब कला के प्रति पूर्णतया उदासीन था। उसको इस दिशा में तनिक भी अभिरुचि नहीं थी। उसने कला को तनिक भी प्रोत्साहन नहीं दिया, वरन् हिन्दुओं के कुछ भव्य मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर कला के उत्कृष्ट नमूनों को सदा के लिए जगत् से विलीन कर दिया। उसके समय में कुछ मस्जिदों का अवश्य निर्माण किया गया, जैसे देहली के दुर्ग की मजिस्द तथा लाहौर की मस्जिद, किन्तु वे बहुत सादी हैं।

औरंगजेब के समय से स्थापत्य कला का पतन होना आरम्भ हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य में अराजकता के उत्पन्न होने के कारण मुगल-सम्राटों को इस ओर विशेष ध्यान देने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

चित्रकला

मुगल-सम्राटों को चित्रकला से भी अनुराग था, यद्यपि कुरान में इनका निषेध है। प्रारम्भ में मंगोलों ने फारस में चित्रकला का आरम्भ किया। इस काल पर विभिन्न कलाओं का प्रभाव पड़ा और बाद के राजाओं ने इनको संरक्षता प्रदान की।

बाबर—बाबर को चित्रकला से प्रेम था। जब बाबर हिरात में आया तो

उसको फारस की चित्रकला का ज्ञान हुआ और उसने उनको संरक्षण दिया। उसने अपनी आत्मकथा को चित्रित करवाया। जीवन संघर्षमय व्यतीत करने के कारण वह इस ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाया।

हुमायूँ—हुमायुँ स्थापत्य कला की अपेक्षा चित्रकला में अधिक रुचि तथा अनुराग रखता था। जब वह अपना निर्वासन काल फारस में व्यतीत कर रहा था तो उसको इस कला के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। इसी समय उनका परिचय फारस के उच्च कोटि के कलाकारों से हुआ, जिनमें से दो को वह अपने साथ भारत ले आया। इनमें से एक का नाम मीर सैयद अली था जो हिरात के प्रसिद्ध कलाकार विहजाद का शिष्य था और दूसरा ख्वाजा अब्दुल समद था। हुमायूँ और अकबर ने इनसे चित्रकला सीखी। **इन्होंने सुप्रसिद्ध फारसी ग्रन्थ दास्ताने-अमीर-हमाजा को चित्रित किया।** ये दोनों अनेक भारतीय चित्रकारों के साथ कार्य करते थे, इसी समय से फारसी और भारतीय चित्रकला का समन्वय आरम्भ होता है।

अकबर—अकबर की भी अपने पिता के समान चित्रकला की ओर रुचि थी, उसने भी प्रसिद्ध फारसी चित्रकारों से शिक्षा ग्रहण की थी। उसके शासन-काल में इस कला का विदेशीपन समाप्त होने लगा और अन्त में उसका रूप भारतीय हो गया। **'दास्ताने-अमीर-हमजा,' 'तारीखे खानदानी तेमुरिया' और पटने की खुदाबख्श लाइब्रेरी में रखे हुए 'बादशाह नामा' के चित्रकारों की चित्रकारी देखकर मुगल-चित्रकला के क्रमिक विकास का पता सरलता से लग जाता है।** अकबर ने फतहपुर सीकरी के महलों की दीवारों पर उत्तम चित्र अंकित करवाए थे। अकबर के दरबार में बहुत-से चित्रकारों को आश्रय मिला, जिसमें हिन्दू अधिक थे तथा अन्य चित्रकारों की अपेक्षा अधिक योग्य थे। कुछ फारसी चित्रकार भी थे। इनमें भी पर्याप्त योग्यता थी। सब कलाकारों में सत्रह कलाकार बहुत योग्य थे, जिनमें से ६ हिन्दू और ४ मुसलमान थे। हिन्दुओं में प्रमुख दसवन्त, बसावन, सांवलदास, ताराचन्द, जगन्नाथ विशेष प्रसिद्ध थे। अकबर ने चित्रकला की उन्नति तथा विकास के लिए अब्दुल समद की अध्यक्षता में एक विभाग की स्थापना की जिसने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया।

जहाँगीर—जहाँगीर को चित्रकला से बड़ा अनुराग था और वह स्वयं बड़ा पारखी था। उच्च-कोटि के चित्रों के लिए वह बहुत अधिक धन व्यय करने को उद्यत हो जाता था। वह स्वयं उच्च-कोटि का चित्रकार था। वह चित्र देखकर चित्रकारों का नाम बतला दिया करता था। उसने स्वयं लिखा है कि "यदि एक चित्र कई कलाकारों द्वारा बनाया गया है तो भी में प्रत्येक कलाकार की चित्रकारी अलग-अलग बतला सकता हूँ।" उसके दरबार में बहुत-से चित्रकार थे, जिनमें हिरात के आगा रजा और उसका पुत्र अब्दुल हसन, समरकन्द के मुहम्मद नादिर और मुराद तथा उस्ताद मंसूर प्रसिद्ध थे। हिन्दू चित्रकारों में बिसनदास, मनोहर, माधव, तुलसी और गोवर्धन अधिक प्रसिद्ध थे।

शाहजहाँ—शाहजहाँ को चित्रकला की अपेक्षा स्थापत्य कला से विशेष अनुराग था, किन्तु उसने कला को प्रश्रय दिया, किन्तु उतना नहीं जितना अकबर और

जहांगीर ने प्रदान किया था **इसके समय में चित्रकला की अवनति होने लगी।** दरबार में चित्रकारों की संख्या भी कम कर दी गई। उसके समय में फकीर उल्ला, मीर हाशिम इत्यादि दरबारी कलाकार थे। साधारण कलाकारों की दशा शोचनीय हो गई। उसका पुत्र दारा शिकोह चित्रकला का बड़ा प्रेमी था और उसके ही कारण कुछ चित्रकार दरबार मे आश्रय पाते रहे, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त इस कला के विकास को बड़ा आघात पहुँचा।

औरंगजेब—औरंगजेब जैसा कट्टर सुन्नी मुसलमान इस कला को कैसे प्रोत्साहन प्रदान कर सकता था जब कि यह कुरान के विरुद्ध है। **उसने दरबार से समस्त चित्रकारों को अलग कर दिया और इस अनुपम कला की पूर्ण अवनति होने लगी।** इन कलाकारों को अन्य स्थानों में प्रश्रय अवश्य मिला, और वे इधर-उधर चले गये। उसने चित्रकला के कुछ उत्कृष्ट नमूनों का अन्त कर उनमें सफेदी भरवा दी।

उसकी मृत्यु के उपरान्त चित्रकला को संरक्षण प्रान्तीय सूबेदारों द्वारा प्राप्त हुआ और उसका विकास होना आरम्भ हुआ। राजपूतों में इस कला की विशेष प्रगति हुई, और यह शैली राजपूत शैली के नाम से प्रसिद्ध है। लखनऊ और पटना के दरबारों से भी इस कला को संरक्षण प्राप्त हुआ।

संगीत कला

मुगल-सम्राटों को औरंगजेब के अतिरिक्त अन्य कलाओं के साथ-साथ संगीत कला से भी विशेष अनुराग तथा प्रेम था। उन सबने इस कला की उन्नति तथा विकास में बड़ा सहयोग प्रदान किया।

बाबर और हुमायूँ—बाबर स्वयं इस कला का बड़ा ज्ञाता था, और उसने इनकी एक पुस्तक में रचना भी की। हुमायूँ को भी इस कला से अपने पिता के ही समान रुचि थी। वह सोमवार तथा बुद्धवार को बड़े प्रेम से संगीत सुना करता था। उसके दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया जाता था। मांडू विजय के बाद कैदियों में से उसने **बच्चू** नामक संगीतज्ञ को बुलवाया और वह उसके संगीत से इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसको मुक्त कर दिया और दरबार में उनको स्थान दिया। सूर वंश के शासकों को भी इस कला से अभिरुचि थी।

अकबर—अकबर को संगीत से बड़ा प्रेम था और वह उसका बड़ा पारखी था। वह सगीत पर विशेष ध्यान देता था और वह अच्छे संगीतज्ञों की बहुत सहायता करता था। वह स्वयं एक उच्च कोटि का गायक था और उसका नक्कारे पर प्रदर्शन बड़ा कलात्मक होता था। उसने इस कला का बड़ा अभ्यास किया। वह अन्य प्रदेशों से भी प्रसिद्ध गायकों को बुलाकर अपने दरबार में आश्रम देता था। अब्दुल फजल के अनुसार अकबर के दरबार में गायकों की संख्या बहुत अधिक थी और इनमें हिन्दू, ईरानी, तूरानी और काश्मीरी स्त्री और पुरुष सभी सम्मिलित थे। ये सात विभागों में विभक्त थे। प्रत्येक विभाग सप्ताह में एक दिन सम्राट का मनोरंजन किया करता था। उसके दरबार में ३६ प्रसिद्ध गायक थे, जिनमें तानसेन और मालव का शासक बाजबहादुर विशेष प्रसिद्ध थे। अब्दुल फजल के अनुसार तानसेन

के समान हजारों वर्षों से कोई गायक नहीं हुआ। वास्तव में वह अपनी इस कला में अद्वितीय था। इस समय के अन्य गायक बाबा रामदास, बैजूबावरा तथा सूरदास विशेष प्रसिद्ध थे। उनके प्रयत्नों के कारण इस कला का बड़ा विकास हुआ।

जहाँगीर—जहाँगीर को भी संगीत कला से प्रेम था। उसके दरबार में उच्च कोटि के गायकों को आश्रय प्रदान किया जाता था। उसके दरबार में बहुत से पुरुष तथा स्त्रियाँ गायिका थीं जो सम्राट, उसके पदाधिकारियों तथा बेगमों का मनोरंजन अपने संगीत से किया करते थे। उसके दरबार में ६ प्रसिद्ध गायक थे।

शाहजहाँ—शाहजहाँ भी संगीत कला का बड़ा प्रेमी था। दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय मिलता था। रात्रि का समय होने से पूर्व वह गायन सुना करता था। वह स्वयं संगीत का ज्ञाता था और उसकी आवाज बड़ी सुरीली तथा चित्ताकर्षक थी। उसके दरबार में रामदास तथा महापात्र दो प्रधान गायक थे। **ऐसा कहा जाता है कि वह एक बार संस्कृत राजकवि जगन्नाथ के गायन से इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसने उसको पारितोषिक के रूप में उसके वजन के बराबर सोना प्रदान किया।**

औरंगजेब—शासन के प्रारम्भिक काल में औरंगजेब को भी गायन विद्या का चाव था और वह उसको दरबार में आश्रय दिया करता था, किन्तु जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ने लगी उसको इससे विरक्ति हो गई। **उसने गायन सुनना** बिलकुल बन्द **करवा दिया और गायकों का संरक्षण करना बन्द कर दिया।** इससे इस विद्या के विकास को बड़ा आघात पहुँचा। ऐसा कहा जाता है कि संगीतज्ञों ने संगीत की एक अर्थी निकाली। औरंगजेब ने उनसे इनका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि संगीत को राज्य का आश्रय न मिलने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। इस पर औरंगजेब ने उत्तर दिया कि उसको खूब गहरा गाढ़ना जिससे वह पुनः जीवित न हो सके। संगीतज्ञ अन्य प्रदेशों की ओर चले गए। कुछ को बड़े-बड़े पदाधिकारियों व राजा-महाराजाओं ने आश्रय दिया, जिसके कारण उसका पूर्णतया अन्त न हो पाया, और वहाँ यह कला कुछ फूलती-फूलती रही।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मुगल शासकों के समय में भारतीय संस्कृति के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

(२) मुगल-साम्राज्य की भारत को क्या देन है ?

(३) मुगलकालीन भारत में साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।

(४) मुगल-राज्यकाल में भारतीय साहित्य या कला के विकास पर प्रकाश डालिए।

(५) सविस्तार बतलाइये कि अकबर ने कला और विद्या के विकास के लिए क्या-क्या कार्य किए ?

(६) "मुगल-राज्य कला अथवा विद्या का संरक्षक था।" इनकी व्याख्या कीजिए।

(७) मुगल-वास्तु-कला की विशेषताओं का वर्णन करो। अपने उत्तर में कतिपय प्रसिद्ध इमारतों का उल्लेख करो।

(८) भारत के सांस्कृति जीवन को मुगलों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

अजमेर—

(१) मुगलकालीन सांस्कृतिक जीवन का दिग्दर्शन कराओ।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) मुगलकालीन कला और साहित्य का वर्णन करो।

(२) मुगल-काल में वास्तु-कला के विकास का विवरण लिखिए।

मध्य प्रदेश—

(१) मुगल-काल में कला, साहित्य, व्यापारों तथा व्यवसाय की दशा का उल्लेख करो।

१५

मुगलकालीन अन्य ज्ञातव्य बातें

गत अध्यायों में मुगलों की विभिन्न नीतियों का दिग्दर्शन कराने के उपरान्त इस काल के कुछ विषय ऐसे रह जाते हैं जिनका वर्णन नितान्त आवश्यक है। इनके वर्णन के अभाव में कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मुगलों का अध्ययन कुछ अधूरा-सा रह गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस अध्याय का लिखना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। जिन घटनाओं का इस अध्याय के अन्तर्गत वर्णन किया जाएगा उन्होंने मुगलकालीन इतिहास पर विशेष प्रभाव डाला है जिनके कारण उनका अध्ययन करना परमावश्यक है। ये विषय इस प्रकार हैं —

(क) अकबर के नवरत्न

अकबर यद्यपि सुशिक्षित नहीं था, किन्तु प्रकृति की ओर से उसमें अनेक गुणों का समावेश था जिसके कारण उसने उन समस्त व्यक्तियों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जो विशेष योग्य तथा प्रतिभापूर्ण व्यक्ति थे। उसका दरबार योग्य व्यक्तियों से सदा भरा रहता था। उसके दरबार के नवरत्न प्रसिद्ध हैं जो इस प्रकार हैं—

अकबर के नवरत्न

(१) मुल्ला दो प्याजा,
(२) हकीम हुमाम,
(३) अब्दुर्रहीम खानखाना,
(४) अब्बुल फजल,
(५) शेख फैजी,
(६) तानसैन,
(७) राजा मानसिंह,
(८) राजा टोडरमल,
(९) राजा बीरबल।

(१) मुल्ला दो प्याजा—इनका निवास-स्थान अरब था। ये हुमायूं के समय में भारत आए थे। ये अपनी वाक्-पटुता तथा बुद्धिमानी के कारण प्रसिद्ध हुए और अकबर को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। धीरे-धीरे इन्हीं गुणों के कारण ये अकबर के विशेष कृपा-पात्र बन गए और उसने इनको अपने नवरत्नों में स्थान प्रदान किया। इनको मांस में प्याज बहुत अच्छी लगती थी और इसी कारण उनको दो प्याजा की उपाधि प्रदान की गई।

(२) हकीम हुमाम—ये सम्राट के रसोईघर के प्रधान पदाधिकारी थे। उनका राज-दरबार में बहुत अधिक प्रभाव था और ये अकबर के अंतरंग मित्रों में माने जाते थे।

(३) अब्दुर्रहीम खानखाना—आप बैरमखाँ के पुत्र थे जो अकबर के प्रारम्भिक काल में उसके संरक्षक के पद पर आसीन थे और जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की स्थापना में सक्रिय भाग लिया। बैरमखाँ की मृत्यु के समय अकबर ने उनको

अपना संरक्षण प्रदान किया और उसके ऊपर उसकी सदा विशेष कृपा बना रही। इसी कारण उसमें विशेष प्रतिभा का उदय हुआ। **वह फारसी, तुर्की तथा हिन्दी भाषा का विद्वान् था।** उसने बाबर की आत्मकथा **'बाबरनामा'** का तुर्की भाषा से फारसी भाषा में अनुवाद किया। **उन्होंने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहों की रचना की।** ये बड़े ही शिक्षाप्रद हैं और आज भी बड़े चाव से उनका अध्ययन किया जाता है। उनकी गणना उच्च-कोटि के सेनापतियों तथा सेनानायकों में की जाती है। उन्होंने साम्राज्य के विकास में सहयोग प्रदान किया। उन्होंने गुजरात, दक्षिण तथा सिन्ध के अभियानों में भाग लेकर अपनी कीर्ति की स्थापना की। उनकी अद्भुत प्रतिभा तथा योग्यता से प्रभावित होकर अकबर ने उनको **'खानखाना'** की पदवी प्रदान की। जहाँगीर के समय में उनके मान की क्षति हुई। उनका देहान्त सन् १६२७ ई० में हुआ।

(४) अब्बुल फजल—आप शेख मुबारक के पुत्र थे, जो बड़े विद्वान तथा शिया धर्म के अनुयायी थे। इनका जन्म १५५१ ई० में हुआ था। इन पर अपने पिता के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा, जिसके कारण इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे। ये बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इनका सम्पर्क सम्राट से १५७२ ई० में हुआ। अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के आधार पर ये शीघ्र ही सम्राट के कृपा-पात्र बन गए। कट्टर मुसलमान इनको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इनका सम्राट पर विशेष प्रभाव था। उसके धार्मिक विचारों में उदारता लाने का पर्याप्त श्रेय इनको ही प्राप्त है। सम्राट इनको अपना अंतरंग मित्र तथा हितैषी समझते थे। इनको साहित्य से विशेष प्रेम था। ये उच्च-कोटि के विद्वान् थे। **'अकबरनामा'** तथा **आइन-ए-अकबरी** इनके अमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं, जिनसे अकबर के समय का पर्याप्त प्राप्त ज्ञान होता है। **ये उच्च-कोटि के सेनानायक भी थे।** इन्होंने दक्षिण के अभियानों में भाग लिया। ये जब दक्षिण के अभियान से वापिस आ रहे थे तो जहाँगीर के षड्यन्त्र के कारण बुन्देला सरदार बीरसिंह देव ने इनका वध १६०२ ई० में कर दिया। इनकी मृत्यु का शोकमय समाचार सुनकर सम्राट अकबर को बड़ा दुःख हुआ।

(५) शेख फैजी—शेख फैजी अब्बुल फजल के ज्येष्ठ भ्राता थे। १५७२ ई० के समीप आप सम्राट अकबर के सम्पर्क में आए। **ये उच्च-कोटि के कवि तथा साहित्यकार थे।** अकबर ने इनकी विद्वत्ता के कारण इनको राजकवि के पद पर सुशोभित किया। इनके धार्मिक विचार बड़े उदार थे, और इनका भी सम्राट पर विशेष प्रभाव था। आपने **'लीलावती'** का अनुवाद फारसी में किया। इनका देहान्त १५९५ ई० में हुआ।

(६) तानसैन—तानसैन ग्वालियर के निवासी थे। इनको गायन तथा संगीत से विशेष प्रेम था। ये अपने समय के सर्वोत्कृष्ट गायक से। ये रींवा के राजा रामचन्द्र के दरबार में थे। १५६० ई० में उनके गायन की प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने उनको अपने दरबार में बुलाया और उनका बड़ा आदर-सत्कार किया गया। बाद में इन्होंने इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था। इनको कविता करने का भी

चाव था। सन् १५८९ ई० में इनका देहान्त हो गया और ये ग्वालियर में दफनाए गए। आज भी उनके मजार पर प्रतिवर्ष एक मेला लगता है।

टिप्पणी

(७) राजा मानसिंह— आप राजा भगवान दास के दत्तक पुत्र थे जो आमेर के राजा थे। सन् १६५१ ई० में इन्होंने सम्राट अकबर की सेना में प्रवेश किया। इस वंश के सम्राट तथा राजकुमार सलीम से इनका वैवाहिक सम्बन्ध था, जिसके कारण दरबार में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। इन्होंने मुगल-साम्राज्य के विस्तार में अकथनीय परिश्रम किया। उनके ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं को जजिया तथा अन्य करों से मुक्ति मिली। ये उच्च-कोटि के सेनानायक तथा सेनापति थे। इन्होंने महाराणा प्रताप को हल्दीघाटी के युद्ध में परास्त किया। इन्होंने अफगानों को परास्त किया। ये बंगाल, बिहार तथा काबुल के सूबेदारों के पद पर आसीन हुए। ये राजकुमार खुसरों को अकबर के उपरान्त सम्राट बनाना चाहते थे, किन्तु षड्यन्त्र में असफल हुए। जहाँगीर ने इनको माफ कर दिया और इनको बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। सन् १६११ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। जहाँगीर के समय में इनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत कम हो गई थी।

(८) राजा टोडरमल— इनका जन्म मोलहपुर गाँव में हुआ था। ये जाति के खत्री थे। आपने शेरशाह को भूमि-व्यवस्था में बड़ी सहायता प्रदान की थी। अकबर के शासन-काल में ये लेखक के पद पर आसीन हुए, किन्तु धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आप वकील के पद पर आसीन हुए। आपको माल-विभाग से जानकारी थी। सन् १५७३ ई० में गुजरात में जो भूमि-सुधार अकबर ने किए वे उनकी ही योजना पर आधारित थे। यहीं से उनकी उन्नति होनी आरम्भ हुई। १५७७ ई० में वजीर, १५८२ ई० में वकील के पद पर आसीन हुए। उन्होंने वकील के पद पर रहकर जो भूमि-व्यवस्था की उसने उनके नाम को अमर कर दिया। ये उच्च कोटि के सेनानायक तथा सेनापति भी थे। इन्होंने बहुत-से युद्धों में भाग लिया। १५८९ ई० में इनका देहान्त हो गया। राजा टोडरमल बड़े ही चरित्रवान तथा धर्म-परायण व्यक्ति थे। मुस्लिम दरबार में रहकर भी इन्होंने अपने धर्म के आचार-व्यवहारों को निभाया और सम्राट का इतना बड़ा कृपा-पात्र होने पर भी इन्होंने दीने-इलाही को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यद्यपि अब्बुल फजल उनको धार्मिक कट्टरता तथा गर्वशीलता के कारण पसन्द नहीं करता था, परन्तु उनके साहस उनके शासन-कौशल तथा उनकी निर्लोभिता की उसने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

टिप्पणी

(९) राजा बीरबल—इनका जन्म कालपी में सन् १५२८ ई० में हुआ था। इनका बालकपन का नाम महेशदास था। ये जाति के ब्राह्मण थे। राजा भगवानदास ने इनका दरबार में प्रवेश कराया। ये अच्छे कवि और संगीतज्ञ थे। इनकी वाक्-पटुता प्रसिद्ध है। अपने गुणों के कारण ये सम्राट अकबर को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुए। ये धीरे-धीरे उनके कृपा-पात्र बनते गए और बाद में उनके अन्तरंग मित्र बन गए। अकबर ने इनको **'कविराज'** की पदवी प्रदान की। ये सेनापति भी थे। कई युद्धों में इन्होंने भाग लिया। १५८५ ई० में अफगान जातियों का दमन करते

हुए इनकी मृत्यु हो गई। अकबर ने उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया। इनके लतीफे आज भी मनोविनोद का साधन प्रस्तुत करते हैं। सम्राट ने उनके लिए फतहपुर सीकरी में एक भव्य भवन बनवाया। उन्होंने दीने-इलाही को स्वीकार किया था।

(ख) जहाँगीर के पुत्र राजकुमार खुसरो का विद्रोह तथा उसका अन्त 4

राजकुमार खुसरो बड़ा होनहार तथा लोकप्रिय था। वह बड़ा सुन्दर, शक्तिशाली तथा चरित्रवान था। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण था। उसका व्यवहार बड़ा सुन्दर तथा प्रशंसनीय था। अकबर उसके गुणों से बड़ा प्रभावित था और वह उसको बड़ा प्रेम करता था। वह आमेर के राजा मानसिंह का भानजा था और दरबार के एक प्रसिद्ध सरदार अजीज कोका का दामाद था। उनको इन दोनों महान् व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त था। अकबर की मृत्यु के समय इन दोनों महान् व्यक्तियों ने जहाँगीर के स्थान पर राजकुमार खुसरो को सम्राट बनाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में दोनों में मेल हो गया, किन्तु राजकुमार खुसरो की राज्य प्राप्ति की आकांक्षा का अन्त नहीं हुआ और जहाँगीर के हृदय में खुसरो के प्रति शंका बनी रही। जहाँगीर ने उसको आगरे के किले में नजरबन्द कर लिया। उसके ऊपर कड़ा पहरा रहता था।

सन् १६०६ ई० में ख़ुसरो आगरे के दुर्ग से अपने कुछ अश्वारोहियों के साथ एक रात्रि को अकबर के मकबरे का दर्शन करने के लिए निकल गया। वह मथुरा गया और वहाँ से कुछ सेना लेकर उसने लाहौर की ओर प्रस्थान किया। पानीपत के स्थान पर लाहौर का दीवान खुसरो से मिल गया और उसने उसका पक्ष लेने का निश्चय किया। वह सिक्खों के **गुरू अर्जुनसिंह** से तरन-तारन नामक स्थान पर मिला। वह भी राजकुमार खुसरो के प्रभावशाली व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने उसको आशीर्वाद दिया और धन से भी उसकी सहायता की। इसके पश्चात् वह लाहौर गया, किन्तु लाहौर के गवर्नर दिलावर खाँ ने उसका विरोध किया और उसको नगर में प्रवेश नहीं करने दिया। उसने लाहौर का घेरा डाला, किन्तु इसी समय शाही सेना के आगमन के कारण वह उस पर अधिकार नहीं कर सका। एक सप्ताह उपरान्त उसको जहाँगीर के आगमन का समाचार मिला। इस समाचार के प्राप्त होते ही उसने उत्तर पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। जहाँगीर उसके इस कार्य से बड़ा चिन्तित हुआ। उसने खुसरो को बुलाने के लिए पत्र-व्यवहार किया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। जहाँगीर ने बाध्य होकर उसका पीछा करने का निश्चिय किया। दोनों सेनाओं में भारीवाल नामक स्थान पर भीषण संग्राम हुआ। जहाँगीर विजयी हुआ। जब खुसरो काबुल की ओर भाग रहा था तो उसको बन्दी बना लिया गया और जहाँगीर के सामने उपस्थित किया गया। जहाँगीर ने उसको कारावास में डाल दिया।

खुसरो के विद्रोह के परिणाम—खुसरो बन्दीगृह में डाल दिया गया और उसके समर्थकों को कठोरदण्ड दिया गया। गुरू अर्जुन पर दो लाख रुपये जुर्माना किया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उनको कारावास में डाल दिया। गया और बाद में उनको प्राण-दण्ड दिया गया। इस कार्य से सिक्खों और मुगलों में

वैमनस्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने सैनिक जाति का रूप धारण किया। अन्य कुछ भागों में भी विद्रोह हुए जिनको दबाने में पर्याप्त धन व्यय करना पड़ा। इस विद्रोह ने फारस के शाह को कन्धार-विजय करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया और उसने शीघ्र ही उस पर अधिकार कर लिया।

खुसरो का अन्त—सम्राट जहाँगीर के आदेशानुसार राजकुमार खुसरो को अन्धा करके बन्दीगृह में डाल दिया गया, किन्तु कुछ समय उपरान्त सम्राट में वात्सल्य प्रेम उमड़ने के कारण उसने खुसरों की आंखों का इलाज करवाना आरम्भ किया जिससे वह आंशिक दृष्टि प्राप्त करने में सफल हुआ। जहाँगीर ने प्रतिदिन उसको अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी। दिन-प्रतिदिन भेंट के कारण दोनों में प्रेम बढ़ने लगा। इससे राजकुमार खुसरो के विरोधियों में ईर्ष्या का उदय हुआ। नूरजहाँ राजकुमार खुर्रम की समर्थक थी और जब बाद में उसने अपनी पुत्री का विवाह राजकुमार शहरयार से किया तो वह उसकी समर्थक बन गई। अतः उसने राजकुमार खुसरो का विरोध किया। उसके तथा उसके अन्य समर्थकों के कारण सम्राट जहाँगीर और राजकुमार खुसरो के सम्बन्ध खराब होने लगे और जहाँगीर का हृदय उसकी ओर से फिर गया। सन् १५१६ ई० में वह **आसफखाँ** (नूरजहाँ का भाई और राजकुमार खुर्रम का श्वसुर) को सौंप दिया गया और सन् १६२० ई० में वह उसके सबसे बड़े शत्रु तथा प्रतिद्वन्द्वी **राजकुमार खुर्रम** के अधिकार में दे दिया गया। सन् १६२२ ई० में बुहारनपुर दुर्ग में उसकी मृत्यु हो गई। जब जहाँगीर को उसकी मृत्यु का समाचार विदित हुआ तो उसे बड़ा दुःख हुआ। इस प्रकार लोकप्रिय राजकुमार का दुःखद अन्त हुआ। उसकी मृत्यु में राजकुमार खुर्रम का हाथ था। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उसको इस अभियोग से मुक्त करने का प्रयत्न किया।

(ग) नूरजहाँ

83, 86, 88, 90,

भारत के इतिहास में नूरजहाँ की गणना उन महान् रमणियों में की जाती है जिन्होंने अपने समय के इतिहास तथा राजनीति पर विशेष प्रभाव डाला।[1] वह अत्यन्त रूपवती, हृष्ट-पुष्ट, वीर तथा अन्य गुणों से परिपूर्ण थीं। जहाँगीर के शासन-काल में उनका विशेष प्रभाव था और उसके बहुत-से कार्यों का उत्तरदायित्व उस पर ही था।[2] इसलिए उसके जीवन तथा कार्यों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

---

[1] "Few women in the world's history have displayed such masterful qualities of courage and statesmanship as this extraodinary woman, who helped her husband in leading strings and dominasted the state for a number of years."
—Dr. Ishwari Prasad.

[2] "No figure in medeval Indian History has been shrouded in romance as the name of Nurjahan calls to the mind. No incident in the reign of Jahangir has attracted such attention as his marriage with Nurjahan. For full fifteen years that celebrated lady stood forth as most striking and most powerful personality in the Mughal Empire. No wonder that round her early life there has gathered a thick fog of myth and fable."
—Dr. Beni Prasad.

नूरजहाँ का प्रारम्भिक जीवन—नूरजहाँ ग्यासवेग की पुत्री थी जो तेहरान के निवासी शरीफ का पुत्र और खुरासन के शासक का वजीर था। पिता की मृत्यु के बाद ग्यासवेग को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण उसने भारत की यात्रा का निश्चय किया। इस समय उसकी स्त्री गर्भवती थी। यात्रा की कठिनाइयों का सामना करता हुआ वह कन्धार पहुँचा, जहाँ उसके यहाँ एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम मेहरुनिशा रक्खा गया। वह एक कारवाँ के साथ भारत की ओर चल पड़ा और भारत आया। इस कारवाँ के नेता ने ग्यासबेग की बड़ी सहायता की और वह उसको दरबार में एक साधारण नौकरी दिलवाने में सफल हुआ। अपनी योग्यता तथा कार्यकुशलता के कारण वह शनैः शनैः उन्नति करने लगा। कुछ समय उपरान्त वह काबुल का दीवान बना दिया गया। १७ वर्ष की अवस्था में मेहरुनिशा का विवाह एक उच्च कुल के व्यक्ति शेर अफगान के साथ हो गया। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि जहाँगीर नूरजहाँ से प्रेम करता था और वह उससे विवाह करना चाहता था, किन्तु अकबर इस विवाह के लिए तैयार नहीं हुआ, किन्तु इस प्रेम का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। जब जहांगीर सम्राट बना तो उसने शेर अफगन को बंगाल भेज दिया। कुछ समय उपरान्त जहाँगीर को यह समाचार प्राप्त हुआ कि शेर अफगन विद्रोह करना चाहता है। उसने बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन को आदेश दिया कि वह शेर अफगन को दरबार में भेजे, किन्तु कुतुबुद्दीन ने उसको बन्दी करने का प्रयत्न किया जिसके कारण दोनों में झगड़ा हो गया। शेर अफगन ने कुतुबुद्दीन का वध किया और उसके आदमियों ने शेर अफगन का वध कर दिया। मेहरुनिसा दरबार में लाई गई और उसको राजमाता सलीमा बेगम के संरक्षण में रखा गया। छः वर्ष उपरान्त सन् १६११ ई० में जहाँगीर ने उसके साथ विवाह किया और उसको नूरमहल की उपाधि से सुशोभित किया, बाद में उसको 'नूरजहाँ' की उपाधि प्रदान की गई।

नूरजहाँ का जहाँगीर पर प्रभाव—सन् १६११ ई० में जहाँगीर ने नूरजहाँ से विवाह किया। इस समय नूरजहाँ की अवस्था ३५ वर्ष की थी और जहाँगीर की अवस्था ४३ वर्ष की थी। जहाँगीर में विलासिता की मात्रा अधिक हो गई थी। नूरजहाँ ने भी शासन-सत्ता को अपने अधिकार में लाने के उद्देश्य से जहाँगीर की विलासिता में वृद्धि करने में और भी अधिक सहयोग दिया। वह बड़ी महत्वाकांक्षी थी। उसने शासन पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए समस्त उपायों का प्रयत्न प्रयोग किया। उसने जहाँगीर को अपने प्रेम-पाश में ऐसा बाँधा कि जहाँगीर उससे न निकल सका और शासन पर नूरजहाँ की सत्ता स्थापित हो गई।

शेर अफगन के वध में जहाँगीर का हाथ—यह प्रश्न आज भी विवादग्रस्त है कि शेर अफगन के वध में जहाँगीर का हाथ था। डा० **बेणीप्रसाद** ने अपने अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि शेर अफगन की मृत्यु में जहाँगीर का कोई हाथ नहीं था, जबकि **डा० ईश्वरी प्रसाद** का मत इसके विरुद्ध है। दोनों के प्रमाणों के अध्ययन करने के उपरान्त हम **डा० बेणी प्रसाद** के मत को मान्यता प्रदान करते हैं और इस बात को स्वीकार करते हैं कि जहाँगीर का हाथ शेर अफगन

की मृत्यु में नहीं था। कुतुबुद्दीन की मूर्खता के कारण घटना-चक्र ऐसा चला कि शेर अफगन की मृत्यु हो गई। तब नूरजहाँ राजप्रसाद में निवास करने लगी तो उस पर जहाँगीर की दृष्टि पड़ी और वह उसको प्रेम करने लगा और शीघ्र ही उसने उसके साथ विवाह किया।

नूरजहाँ का गुट—नूरजहाँ ने अपने गुट का निर्माण किया। उसके सम्बन्धियों ने उसकी बड़ी सहायता की। उसके माता-पिता, उसके भाई तथा राजकुमार खुर्रम उसके दल के प्रमुख सदस्य थे। उसके माता-पिता का उसके ऊपर नियन्त्रण था जिन्होंने उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत अधिक बढ़ने नहीं दिया। उसके पिता ग्यासबेग ने जिसको बाद में **एतमादउद्दौला** की उपाधि से सुशोभित किया गया था उसकी बड़ी सहायता की। नूरजहाँ के भाई **आसफ खाँ** ने भी नूरजहाँ की बड़ी सहायता की। वह एक योग्य कूटनीतिज्ञ था और दरबार के दाव-पेचों की उसको पूर्ण जानकारी थी। नूरजहाँ के प्रयत्न के कारण राजकुमार खुर्रम का विवाह आसफ खाँ की पुत्री अर्जूमन्दबानू बेगम के साथ सन् १६१२ ई० में सम्पन्न हुआ। वह राजकुमार अपने समस्त भाइयों में योग्य था और वह जहाँगीर का वास्तविक उत्तराधिकारी समझा जाता था, क्योंकि जहाँगीर और राजकुमार खुसरों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। शासन की समस्त सत्ता पर इन्हीं व्यक्तियों का अधिकार था और दस वर्ष तक इस गुट ने बड़ी योग्यता और प्रतिभा के साथ शासन किया। इस वर्णन से यह न समझ लेना चाहिए कि जहाँगीर राज्य-कार्य से इस काल में पूर्णतया उदासीन रहा। उसने कई बार इस गुट की नीति का घोर विरोध किया। वास्तव में यह गुट जहाँगीर की इच्छाओं के अनुसार शासन-कार्य करता था।

नूरजहाँ का शासन पर प्रभाव—नूरजहाँ के प्रभाव-काल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम काल सन् १६११ से १६२२ तक और द्वितीय काल १६२३ से १६२७ तक का है। प्रथम काल में जहाँगीर शासन के कार्यों में पूर्ण भाग लेता था। नूरजहाँ के माता-पिता दोनों जीवित थे जो उनकी महत्वाकांक्षा पर विशेष प्रतिबन्ध रखते थे। नूरजहाँ और राजकुमार खुर्रम के सम्बन्ध अच्छे थे और हर सम्भव प्रकार से नूरजहाँ ने अन्य राजकुमारों की अपेक्षा उसको उन्नति करने का अवसर दिया। उन्होंने अपने सम्बन्धियों तथा समर्थकों को उच्च पदों पर आसीन किया, जिससे वे अपनी मनोकामना पूर्ण करने में सफलता प्राप्त कर सकें। राजकुमार खुर्रम का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और जहाँगीर ने उसको विशेष आदर तथा सम्मान प्रदान किया। उसने भी साम्राज्य की बड़ी सेवाएं की, किन्तु इस दल का विरोध धीरे-धीरे बढ़ने लगा। विरोधी दल का नेता महावत खाँ था जो राजकुमार खुर्रम के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण उससे ईर्ष्या और द्वेष करने लगा। वह साम्राज्य का बहुत बड़ा स्तम्भ था और उसको अपनी राजपूत सेना पर विशेष गर्व था। उसने जहाँगीर को समझाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि वह नूरजहाँ के प्रेम-पाश में बुरी तरह फस चुका था। विरोधियों ने राजकुमार खुसरो का पक्ष लेकर उसको राज्य

का उत्तराधिकारी बनाने का निश्चिय किया। जब नूरजहाँ तथा उसकें गुट के सदस्यों को विरोधियों के विचार का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उन्होंने राजकुमार खुसरो को प्रारम्भ में आसफ खाँ की तथा बाद में राजकुमार खुर्रम की हिरासत में भेजा, जहाँ उसका वध सन् १३२२ ई० में कर दिया गया। यह गुट अधिक काल तक नहीं रह सका, क्योंकि नूरजहाँ राजकुमार शहरयार की ओर अधिक आकर्षित हो गई, क्योंकि वह उनका दामाद था। उसने अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह जो उसके शेर अफगान से हुई थी कर दिया था। वह राजकुमार खुर्रम के गर्व तथा महत्वाकांक्षा से भली प्रकार परिचित थी। वह जान गई थी कि शासन की सत्ता उसके हाथ में नहीं रह सकती यदि शाहजहाँ सम्राट हो गया। जहाँगीर का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब रहने लगा था और उसकी किसी भी समय मृत्यु हो सकती थी। उसके माता और पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी थी और उनके ऊपर से नियन्त्रण हट गया था। अब उसको अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसने इनकी पूर्ति के लिए जो कार्य किए वे साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुए। उसके कारण प्रथम विद्रोह राजकुमार खुर्रम ने किया और बाद में महावत खाँ ने और फिर दोनों एक दूसरे के सहायक बन गए और इन्होंने नूरजहाँ का विरोध किया।[1] जहाँगीर की मृत्यु पर उत्तराधिकारी-युद्ध हुआ जिसमें शाहजहाँ सफल हुआ और नूरजहाँ तथा उसका दामाद शहरयार परास्त हुए। नूरजहाँ राजनीति से अलग हो गई। शाहजहाँ ने उसकी दो लाख रुपया वार्षिक पेंशन नियत कर दी। १८ वर्ष तक शोकयुक्त जीवन व्यतीत कर सन् १६४५ ई० में उनका देहान्त हो गया और उसको लौहार में जहाँगीर के मकबरे के समीप दफना दिया गया। 1.1.81

नूरजहाँ का चरित्र—नूरजहाँ का सौंदर्य तथा रूप अद्वितीय था। जिस समय उनका विवाह जहाँगीर से हुआ उस समय उसकी अवस्था ३५ वर्ष की थी, किन्तु उस समय भी वह अनुपम सुन्दरी थी। अपनी सुन्दरता के कारण ही वह मुगल सम्राट जहाँगीर के हृदय को पराजित करने में सफल हुई। उसके मुख पर एक अद्भुत आभा तथा ज्योति थी जिसके कारण वह बड़ी प्रभावशाली थी।[2] उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। शारीरिक बल तथा साहस तो उसमें कूट-कूट कर भरा था।

---

[1] "The gifted woman aided by her subtle brother Asaf Khan practically ruled the empire during greater part of Jahangir's reign much to his satisfaction, but although at first her influence kept him straight and benefitted the empire but her over-wearing power, covetousness and unscrupulous favouritism aroused bitter jealousies and to the resulting intriguse were due to the troubles that darkened the closing days of the self-indulgent empire the weakening of the old martial spirits of the Mughals, the corruption and cupidity of the court, and the rebellian of Jahangirs' son." —Lane Poole.

[2] "No gift of nature seemed to be wanting in her. Beautiful with the rich beauty of Persia, her soft features were lighted up, with a springhtly vivacity and super loveliness. Painters, overted their utmost skill in transmitting the lineaments of her person to posterity. Her name calls up at once a slim slender frame an oval face, apple for head, large blue eyes and close lips."—Dr. Beni prasad.

उसको शिकार करने का बहुत शौक था। वह जहाँगीर के साथ घोड़े पर चढ़कर आखेट करती थी। भयानक शेरों तथा चीजों का शिकार करने में वह अनुपम आनन्द लेती थी। उसमें धैर्य की मात्रा बहुत अधिक थी और उसने उसको कभी अपने हाथ से विशेष संकट के समय में भी नहीं जाने दिया। वह बड़ी योग्य तथा बुद्धिमान स्त्री थी। उसको फारसी भाषा का ज्ञान था और कविता करने का भी उसको चाव था। वह राजनीति के गूढ़ प्रश्नों को भली प्रकार समझ लेती थी और शीघ्र ही निश्चय पर पहुँच जाती थी। उसको कला से भी विशेष प्रेम तथा अनुरक्ति थी। वह बड़ी दानी थी। उसने सैकड़ों असहाय बालिकाओं को सहायता प्रदान की और उनके विवाह करवाए। वह बड़ी उदार थी। उसने अपने सम्बन्धियों के साथ सदा अच्छा व्यवहार किया। वह अपने शत्रुओं के साथ कठोर व्यवहार करने से नहीं हिचकती थी और उनको पददलित करके ही चैन लेती थी। वह बड़ी परिश्रमी थी और कार्य से कभी भी नहीं घबराती थी। उसने शासन को अपने अधिकार में करने के लिए जहाँगीर को अत्यधिक विलासी बनाया। वह लोगों को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। जितने भी षड्यन्त्र या विद्रोह जहाँगीर के काल में हुए उन सब का उत्तरदायित्व उस पर ही था। इसी कारण उसका राजनीतिक प्रभाव साम्राज्य के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि मुगल दरबार में गुट बन्दियाँ हो गईं। मुगलों की वाह्य नीति असफल रही। कन्धार पर फारस के शाह का अधिकार हो गया। राजकुमार खुर्रम तथा महावत खाँ के विद्रोह उसकी ही नीति तथा महत्वाकांक्षा के कारण हुए। सारांश यह है कि नूरजहाँ के कारण मुगल-साम्राज्य को बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

84,88,90,

(घ) क्या शाहजहाँ-काल स्वर्णयुग था ?

1983,85

इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान शाहजहाँ के काल को स्वर्ण युग मानते हैं और कुछ इसका विरोध करते हैं। जो इतिहासकार इस मत का विरोध करते हैं उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) शाहजहाँ का व्यक्तित्व उन्नत न था। उसने अपने पिता के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया। उसने राजकुमार खुसरो का वध किया तथा अन्य भाइयों तथा सम्बन्धियों का वध कर डाला। वह दारा शिकोह तथा जहाँनारा से अन्य पुत्रों तथा पुत्रियों की अपेक्षा अधिक प्रेम करता था जिसके कारण उत्तराधिकारी युद्ध हुआ और साम्राज्य की बड़ी क्षति हुई। उसका व्यक्तिगत चरित्र भी उन्नत न था। वह बड़ा क्रोधी, कामातुर तथा विलासी था। वह निर्दयी, धोखेबाज तथा बेईमान था।

(२) उसकी मध्य-एशियाई तथा सीमान्त-नीति असफल रही। यद्यपि दक्षिण की ओर वह मुगल-साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ। किन्तु उसका परिणाम राज्य के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ। उसकी सेनाएँ विशाल थीं, किन्तु वे श्लाघनीय कार्य करने में सफल न हो सकीं।

(३) उसकी न्याय-व्यवस्था बड़ी कठोर थी। उसने स्वेच्छाचारी तथा वैदेशिक शासक के समान कार्य किया। उसमें दया लेशमात्र भी न थी।

(४) उसके शासन-काल में जनता की दशा अच्छी न थी। उसने भव्य भवनों

के निर्माण में बहुत अधिक धन व्यय किया जिसका भार निर्धन जनता पर पड़ा। राजकोष प्रायः खाली हो गया था। जनता पर अधिक कर लगे।

(५) उसकी धार्मिक नीति अनुदार थी। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया और उनको बाध्य होकर इस्लाम धर्म स्वीकार करना पड़ा। उच्च पदों पर अधिकांशतः मुसलमान ही नियुक्त किए जाते थे।

जिन विद्वानों ने उसके काल को स्वर्ण युग स्वीकार किया है उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) शाहजहाँ ने जो व्यवहार अपने पिता तथा भाइयों व अन्य सम्बन्धियों के साथ किया वह समय के अनुकूल था। वह स्वभाव से रक्त-पिपासु नहीं था। परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह रक्त-पात करने के लिए बाध्य हुआ। उसका अपने परिवार के सदस्यों के प्रति प्रेम तथा अनुराग था। उत्तराधिकारी के युद्ध का कारण उसकी दुर्बलता न होकर उसके पुत्रों की महत्वाकांक्षा थी तथा उत्तराधिकार के नियम का अभाव था। उसका जहाँनारा तथा दारा पर विशेष प्रेम था जो होना स्वाभाविक था, क्योंकि ये उसकी ज्येष्ठ सन्तान थीं। वह व्यभिचारी नहीं था।

(२) उसके काल में शान्ति व सुव्यवस्था थी। कुछ विद्रोह अवश्य हुए जिनका कारण विद्रोहियों की महत्वाकांक्षा थी न कि राज्य की अव्यवस्था। पुर्तगालियों का दमन कठोरता से किया गया, क्योंकि उन्होंने बड़े अत्याचार करने आरम्भ कर दिए थे।

(३) उसके काल में किसी विदेशी ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। यद्यपि उसकी मध्य एशिया-सम्बन्धी नीति असफल रही और कन्धार पर फारस के शाह का अधिकार हो गया, किन्तु इन दोनों का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, राज्य की सीमाएँ पूर्ववत् बनी रहीं।

(४) उसके काल में व्यापार तथा वाणिज्य की बड़ी वृद्धि हुई, जिसके द्वारा राज्य की आय बड़ी विकसित हुई। भूमि द्वारा भी राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। बहुत अधिक धन व्यय करने पर भी राजकोष में पर्याप्त धन था।

(५) उसने अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया जिनके कारण उसके शासन के महत्व तथा गौरव में बड़ी वृद्धि हुई। तख्ते-ताऊस तथा ताजमहल ही उसके राज्य को स्वर्ण युग बनाने के लिए पर्याप्त थे।

(६) उसके शासन-काल में साहित्य तथा कला की भी विशेष प्रगति हुई। उच्च-कोटि के साहित्य की रचना हुई तथा समस्त कलाओं का विकास हुआ।

(७) वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। विदेशी लेखकों ने भी उसके न्याय की बड़ी प्रशंसा की है। वह योग्य व्यक्तियों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करता था।

इस प्रकार दोनों पक्षों के तर्कों का सुगम अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट प्रतीत होता है कि वास्तव में उसका काल स्वर्ण युग था।

84,86,89,91,92

(ड) उत्तराधिकार का युद्ध

√√

शाहजहाँ के समय में उसके चारों पुत्रों में साम्राज्य प्राप्ति के लिए भीषण संग्राम हुआ जिसका प्रभाव मुगल-साम्राज्य पर विशेष रूप से पड़ा। इसके पूर्व कि

इस युद्ध का वर्णन किया जाए यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि उसकी सन्तानों के विषय में कुछ बतला दिया जाय, जिन्होंने इस युद्ध में भाग लिया। शाहजहाँ के एकाएक बीमार पड़ जाने पर (१६५८) उसके तीन पुत्रों **औरंगजेब**, **मुराद** तथा **शुजा** ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित किया। दारा शाहजहाँ के पास था। इस समय इन चारों पुत्रों के अतिरिक्त इसके जहाँनारा तथा रोशनआरा दो पुत्रियाँ भी थी। जहाँनारा तथा रोशनआरा औरंगजेब की ओर अधिक प्रभावित थीं।

दारा शिकोह—शाहजहाँ के सबसे बड़े पुत्र का नाम दारा था। उसका जन्म सन् १६१५ ई० में हुआ था। वह बड़ा शिक्षित, विद्वान् तथा दार्शनिक था। उसकी सूफी धर्म की ओर अधिक रुची थी। उसने अन्य धर्मों के ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह वेदों का बड़ा आदर करता था। उसने उपनिषदों का अनुवाद किया। वह सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखता था, जिसके कारण उसके धार्मिक विचार बड़े उदार थे। उसको कट्टर सुन्नी मुसलमान घृणा की दृष्टि के देखते थे। शाहजहाँ का उस पर विशेष अनुराग था और वह अधिकांश समय उसको अपने समीप ही रखता था। उसको विभिन्न कलाओं से प्रेम था। यह योरोपवासियों का आश्रयदाता था। उसका दरबारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था जिसके कारण वे उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। वह उच्च-कोटि का सेनापति नहीं था और न उसको शासन-प्रबन्ध का विशेष अनुभव था। शाहजहाँ के लाड़-प्यार ने उसमें कुछ उत्पन्न कर दिए थे।

शुजा—शाहजहाँ का दूसरा पुत्र शुजा था जिसका जन्म सन् १६१६ ई० में हुआ था। वह बड़ा साहसी, वीर, बुद्धिमान तथा दृढ़प्रतिज्ञ था। वह षड्यन्त्र रचने में बड़ा निपुण था और अमीरों तथा सरदारों को घूस देकर अपनी ओर मिला लेता था। वह शिया धर्म का अनुयायी था और ऐसा कहा जाता है कि उसने शिया सम्प्रदाय का समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से ऐसा किया। उसमें दुर्गुणों की कमी नहीं थी। वह अपना अधिकांश समय भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद में व्यतीत करता था। उसको नारी और संगीत एवं नृत्य से विशेष प्रेम था। सन् १६४२ से १६५८ ई० तक वह बंगाल का सूबेदार रहा जहाँ की जलवायु ने उस पर विशेष प्रभाव डाला। उसका स्वास्थ्य खराब हो गया; वह आलसी, उदासी तथा कर्त्तव्यहीन हो गया। इन्हीं कारणों से वह उत्तराधिकारी युद्ध में सफल न हो सका।

औरंगजेब—शाहजहाँ के तीसरे पुत्र का नाम औरंगजेब था। उसका जन्म सन् १६१८ ई० में हुआ था। वह अपने अन्य भाइयों में सबसे योग्य था। वह बड़ा साहसी, वीर तथा कूटनीतिज्ञ था। उसको विशेष आपत्तियों तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण वह बड़ा दृढ़प्रतिज्ञ व कर्त्तव्य-निष्ठ बन गया। वह एक योग्य सेनापति था। उसने अनेक युद्धों में अपनी योग्यता तथा प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था जिसके कारण मुसलमानों का उसको समर्थन प्राप्त हुआ था। वह मनुष्यों का बड़ा पारखी तथा उनसे काम लेना जानता था। उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल था। वह अपने गुणों के कारण ही उत्तराधिकारी युद्ध में सफल हुआ।

मुराद—शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र मुराद था जिसका जन्म सन् १६२४ ई० में हुआ था। वह गुजरात तथा मालवा का सूबेदार था। उसमें विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण था। वह बड़ा वीर तथा साहसी था, परन्तु बड़ा विलासी था। वह बड़ा निर्भीक तथा साहसी था, परन्तु उच्च-कोटि का सेनापति नहीं था। उसमें उत्तेजना के साथ-साथ भद्रता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी। उसमें साम्राज्य पर अधिकार करने की आकांक्षा थी, किन्तु उसमें उसको पूर्ण करने की योग्यता का सर्वथा अभाव था। उसके सम्बन्ध में **लेनपूल** ने लिखा है कि "शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र साहसी था। वह शेर के समान बहादुर तथा दिन की भाँति स्पष्ट था, किन्तु राजनीति में मूर्ख था। राज्य के कार्यों में वह निराला था और रक्तपात में दृढ़ विश्वास रखता था। वह रण-क्षेत्र में विकराल था और मद्य-पान में भी मस्त रहता था। भिड़न्त युद्ध में किसी अन्य व्यक्ति पर इतना विश्वास नहीं किया जा सकता था, परन्तु सम्मत्ति में उससे बड़ा मूर्ख और व्यभिचार से उससे बड़ा प्रमत्त भी कोई नहीं होता था। मद्यपान का वंशानुगत व्यसन जो बाबर के समय चला आ रहा था। इस वीर दुर्जन में भी पाया जाता था। सारांश यह है कि वह विचार-शून्य व्यक्ति था।"

जहाँनआरा—शाहजहाँ की सबसे बड़ी पुत्री का नाम जहाँनआरा था जिसका जन्म सन् १६१४ ई० में हुआ। वह शाहजहाँ की अत्यन्त प्रिय पुत्री थी। उसमें मानसिक प्रतिभा तथा आलौकिक सौन्दर्य था। मुगल दरबार में उसका बड़ा प्रभाव था। वह दीन-दुखियों तथा असहायों की सदा सहायता करने को उद्यत रहती थी। वह शाहजहाँ के प्रति अनुपम अनुराग तथा श्रद्धा रखती थी। अन्य भाइयों में वह दारा की ओर अधिक अनुरक्ती रखती थी। शाहजहाँ के शासनकाल में वह साम्राज्य की अग्रगण्य महिला थी। उसकी मृत्यु सन् १६८१ ई० में हुई।

रोशनआरा--शाहजहाँ की छोटी पुत्री रोशनआरा थी जिसका जन्म सन् १६२१ ई० में हुआ था। वह अपनी बहिन के समान योग्य तथा प्रभावशाली नहीं थी, किन्तु वह षड्यन्त्र रचने में बड़ी कुटिल थी। वह औरंगजेब की ओर विशेष आकृष्ट थी। उसकी मृत्यु सन् १६७० ई० में हुई।

उत्तराधिकार के युद्ध का आरम्भ—शाहजहाँ दारा को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था और इसी कारण वह उसको अपने पास दरबार में रखता था। उसका उसके प्रति अनन्य प्रेम था जिसके कारण अन्य राजकुमार सदा सशंकित रहते थे। ६ सितम्बर १६५७ ई० को शाहजहाँ एकाएक बीमार हो गया। वैद्यों तथा हकीमों ने बहुत प्रयास किया, किन्तु उसकी दशा में सुधार नहीं हुआ। उसके पुत्रों ने उसका अन्तिम समय समझकर उत्तराधिकार के युद्ध की तैयारियां करनी आरम्भ कर दीं। यद्यपि उसकी अवस्था सुधरने लगी थी, परन्तु उत्तराधिकारी का युद्ध नहीं टल सका। ५ दिसम्बर सन् १६५७ ई० को मुराद ने अपने को सम्राट घोषित किया। औरंगजेब जानता था कि कोई भी राजकुमार अकेला दारा को परास्त नहीं सकता, अतः उसने मुराद से गठ-बन्धन किया और दोनों में साम्राज्य के विभाजन का निश्चय

हुआ। मुराद अपनी समस्त तैयारियाँ करने के उपरान्त १४ अप्रैल १६५८ ई० को औरंगजेब के साथ अपनी सेना लेकर मिल गया। इसी समय औरंगजेब ने मीर जुमला को अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार औरंगजेब को एक बड़े योग्य तथा अनुभवी सेनापति का सहयोग प्राप्त हुआ। इधर दारा ने भी अपने भाइयों की सेना का सामना करने के लिए विशाल सेना का निर्माण किया जिसको उसने राजा जसवन्तसिंह तथा कासिम खाँ के नेतृत्व में दक्षिण की ओर भेजा।

धरमत का युद्ध—दोनों सेनाओं में उज्जैन से १४ मील उत्तर-पश्चिम की ओर घरमत में बड़ा धमसान युद्ध हुआ। प्रारम्भ में शाही सेना की सफलता हुई। कासिम खाँ के विश्वासघात करने पर राजपूती सेना भागने के लिए विवश हुई। विरोधी सेनाओं ने बड़े अदम्य उत्साह के साथ शाही सेना को बुरी तरह परास्त किया। शाही सेना में भगदड़ मच गई और विरोधियों की सेना को सफलता प्राप्त हुई।

सामुगढ़ का युद्ध—धरमत के युद्ध में विजयी होकर औरंगजेब और मुराद ने आगरे की ओर बढ़ना आरम्भ किया। दारा ने उस सेना का सामना करने के लिए सामुगढ़ नामक स्थान पर पड़ाव डाला। २८ मई १६५८ को औरंगजेब तथा मुराद भी वहाँ आ गए। दोनों सेनाओं में अगले दिन युद्ध हुआ। युद्ध में दारा की सेना ने बड़ी वीरता का परिचय दिया। इसी समय दारा अपने हाथी से उतर कर घोड़े पर सवार हुआ जिसका प्रभाव अच्छा नहीं हुआ। सेना में अफवाह हो गई कि राजकुमार दारा मारा गया। इस समाचार के फैलने के कारण सेना में भगदड़ मच गई। दारा आगरे की ओर भाग गया। इस प्रकार विरोधियों को सफलता प्राप्त हुई।

शाहजहाँ का बन्दी होना—दारा आगरे गया और शीघ्र ही अपने परिवार को लेकर वह दिल्ली भाग गया। औरंगजेब तथा मुराद की सेनाओं ने आगरे का दुर्ग घेर लिया। विवश होकर शाहजहाँ ने आत्म-समर्पण किया। उससे सम्राट के समस्त अधिकार छीन लिए गए और वह बन्दी कर लिया गया।

मुराद का अन्त—औरंगजेब ने आगरे पर अधिकार करने के उपरान्त दारा का पीछा किया, किन्तु उसे यह समाचार मिला कि मुराद उसका विरोध करने को तैयार हो रहा है। औरंगजेब ने चालाकी से मुराद को मद्यपान कराकर बन्दी किया और उसको नशे की हालत में ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी कर दिया, जहाँ तीन वर्ष उपरान्त उसका वध कर दिया गया।

दारा का अन्त—दारा ने दिल्ली आकर एक सेना का संगठन किया, किन्तु वह शीघ्र ही लौहार भाग गया। औरंगजेब उसका पीछा करता हुआ लौहार गया। दारा मुल्तान की ओर भाग गया और वहाँ से सक्कर गया। औरंगजेब दिल्ली वापिस आ गया, किन्तु उसके सेनापति दारा का पीछा करते रहे। सक्कर से दारा सेहवान और फिर थट्टा पहुँचा, किन्तु वहाँ से वह गुजरात चला गया। राजपूतों की सहायता से उसने फिर युद्ध किया, किन्तु पराजित हुआ। वहाँ से वह दादर गया, किन्तु वहाँ के शासक ने दारा को बन्दी कर औरंगजेब के सुपुर्द किया। औरंगजेब ने दारा को

एक नंगे हाथी पर बैठाकर नगर में घुमाया और उसके उपरान्त उसका वध करवाया। उसके ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह का भी वध कर दिया गया।

शुजा का अन्त—शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शुजा ने बंगाल में अपने आपको सम्राट घोषित किया और विशाल सेना के साथ बनारस की ओर चल पड़ा। दारा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह तथा मिर्जा राजा जयसिंह की अध्यक्षता में एक सेना शुजा के विरुद्ध भेजी। १४ फरवरी १६५८ को शुजा परास्त हुआ। शुजा भाग कर मुंगेर चला गया। जब सुलेमान शिकोह को धरमत की पराजय का समाचार विदित हुआ तो वह शीघ्र आगरे आया। इसी बीच में शुजा ने सेना का संगठन किया और पटना से चल पड़ा। औरंगजेब ने इसी सेना को खजवाह नामक स्थान पर परास्त किया। शुजा युद्ध क्षेत्र से भाग गया। मीर जुमला ने उसका पिछा किया। वह अराकन भाग गया और वहाँ उसका वध कर दिया गया।

उत्तराधिकार के युद्ध का परिणाम—इस युद्ध का भारतीय इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा जो निम्नलिखित है—

(१) समस्त शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई।

(२) धन तथा जन की अपार क्षति हुई।

(३) शाहजहाँ को कारागार का जीवन व्यतीत करना पड़ा।

(४) राज्य पर योग्यतम राजकुमार का अधिकार हुआ।

(५) दक्षिण के राजा कुछ समय तक मुगलों की साम्राज्यवादी नीति से बच गए।

औरंगजेब की सफलता के कारण—औरंगजेब की सफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(१) **वीर सैनिक तथा उच्च-कोटि का सेनापति**—औरंगजेब अपने समय का एक वीर सैनिक तथा उच्च कोटि का सेनापति था। उसमें सैनिक प्रतिभा कूट-कूट कर भरी हुई थी। अपने पिता के शासन-काल में उसने अपनी इस प्रतिभा का पूर्व परिचय दक्षिण के युद्धों तथा उत्तरी पश्चिमी सीमान्त के युद्धों में दिया था। उसमें अदम्य उत्साह, अटल धैर्य तथा अनुपम साहस था। वह भय से नहीं डरता था और भयंकर तथा भीषण परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर तनिक भी विचलित नहीं होता था।

(२) **कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ठ**—वह बड़ा कर्मठ तथा कर्त्तव्यनिष्ट था। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति को सर्वोपरि समझता था और सदा उसी की पूर्ति में व्यस्त रहता था। वह अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार समझता था और उसके लिए हर सम्भव रूप से प्रयत्नशील रहता था।

(३) **कूटनीति का ज्ञाता**—औरंगजेब कूटनीति का प्रगाढ़ पण्डित था। वह अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए समस्त प्रकार की कूटनीति का प्रयोग कर सकता था। शत्रुओं को प्रलोभन देकर वह उसको अपनी ओर मिला लेता था तथा शत्रुओं में फूट डाल देता था। मुराद को मिला लेना उसकी कूटनीति का उज्जवल उदाहरण

है ; क्योंकि वह भली प्रकार जानता था कि वह अकेला शाही सेना का सामना करने में असमर्थ होगा ।

(४) व्यवहार-कुशल—औरंगजेब बड़ा व्यवहार-कुशल था । इसी कारण अमीरों का एक दल उसका सदा समर्थन करता था और उसको हर सम्भव रूप से सहायता प्रदान करता था तथा उसका पक्षपात करता था । उसका अपने व्यवहार तथा कार्यों पर पूर्ण नियन्त्रण था, जिसके कारण उसके विरोधियों की संख्या कम थी ।

(५) धर्म परायण—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था । उसका अपने धर्म पर अटूट विश्वास था और उसके समस्त आचरण धर्म के अनुकूल होते थे और इसी कारण उसको कट्टर मुसलमानों का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त था ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) क्या यह कथन सत्य है कि शाहजहाँ का राज्य-काल मुगल-साम्राज्य का स्वर्ण युग है ? सविस्तार विवेचना कीजिए ।

(२) नूरजहाँ के जीवन और कृत्यों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

(३) शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकारी-युद्ध का वर्णन कीजिए । औरंगजेब को उसमें क्यों सफलता मिली ?

(४) अब्बुल फजल पर एक टिप्पणी लिखो ।

(५) राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) के विद्रोह का वर्णन करो । नूरजहां उसके लिए कहाँ तक उत्तरदायी है ?

(६) जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ के प्रभुत्व का क्या प्रभाव पड़ा और उसके क्या परिणाम हुए ?

(७) दाराशिकोह पर एक टिप्पणी लिखो ।

मध्य भारत—

(१) शाहजहाँ का शासन-काल मुगल-शासन का स्वर्ण-युग कहा जाता है इस कथन पर विचार प्रकट कीजिए ।

(२) नूरजहाँ के चरित्र और व्यक्तित्व का निरूपण कीजिए और राज्य के कार्यों में उसका क्या प्रभाव था, बतलाइए ।

(३) शाहजहाँ के पुत्रों का चरित्र-चरिण कीजिए तथा सिंहासन प्राप्त करने के हेतु उनके संघर्ष का वर्णन कीजिए ।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) "शाहजहाँ का काल मुगल-शासन में स्वर्ण युग था ।" विवेचना करो।

(२) जहाँगीर के शासन-काल में राज्य की नीतियों पर नूरजहाँ के प्रभाव का उल्लेख कीजिए तथा इस नीति के परिणामों पर प्रकाश डालिए ।

१६ उत्तरकालीन मुगल सम्राट

उत्तराधिकारी-युद्ध—औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके तीन पुत्र जीवित थे, जिनमें एक का नाम **मुअज्जम** दूसरे का नाम **आजम** और तीसरे का नाम **कामबख्श** था। उसके दो पुत्र मुहम्मद और अकबर का देहान्त उसके जीवन-काल में ही हो चुका था। जिस समय औरंगजेब की मृत्यु हुई उस समय उसके तीनों पुत्र विभिन्न प्रान्तों में थे। मुअज्जम काबुल में, आजम गुजरात में और कामबख्श बीजापुर में सूबेदार था। औरंगजेब ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपने तीनों पुत्रों में साम्राज्य का विभाजन एक वसीयत द्वारा किया था, किन्तु इस वसीयत का ज्ञान उसकी मृत्यु के उपरान्त ही हुआ। उसकी यह योजना सफल नहीं हुई और उत्तराधिकारी के प्रश्न का समाधान युद्ध द्वारा ही हुआ। औरंगजेब के मरने का समाचार सर्वप्रथम **आजम** को प्राप्त हुआ जिसने अपने आपको तुरन्त ही सम्राट घोषित कर दिया और आगरे पर अधिकार करने के लिए उत्तर की ओर चल पड़ा। मुअज्जम ने अपने आपको काबुल में सम्राट घोषित किया और वह भी आगरे पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा। लाहौर के सूबेदार मुनीम खां से मुअज्जम को बड़ी सहायता प्राप्त हुई। उसका आगरे पर शीघ्र ही अधिकार हो गया और समस्त कोष उसके हाथ लगा। **कामबख्श** ने भी बीजापुर में अपने आपको सम्राट घोषित किया किन्तु उसने उत्तर की ओर प्रस्थान नहीं किया। मुअज्जम की हार्दिक इच्छा थी कि भाइयों में पारस्परिक युद्ध न हो। उसने आजम को साम्राज्य-विभाजन करने के लिए पत्र लिखा, किन्तु आजम ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और सेना लेकर आगरे के समीप जजऊ नामक स्थान पर आ डटा। मुअज्जम भी युद्ध करने के लिए तैयार था। वह भी आजम का सामना करने के लिए रण-क्षेत्र में आ डटा। **दोनों सेनाओं में बड़ा घमासान युद्ध हुआ जिसमें मुअज्जम विजयी हुआ और आजम अपने दो पुत्रों के साथ युद्ध में मारा गया।** अब मुअज्जम ने कामबख्श से सन्धि करने की वार्ता चलाई, किन्तु उसका भी कोई परिणाम नहीं निकला। **मुअज्जम ने एक विशाल सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने कामबख्श को हैदराबाद के समीप बुरी तरह परास्त किया।** कामबख्श बुरी तरह घायल हुआ और उसी रात्रि को उसका देहान्त हो गया। इस प्रकार **मुअज्जम उत्तराधिकारी-युद्ध में सफल हुआ और बहादुरशाह की उपाधि धारण कर राज्य-सिंहासन पर १७०७ ई० में आसीन हुआ।**

बहादुरशाह—औरंगजेब के जीवित पुत्रों में बहादुरशाह सबसे अधिक योग्य तथा उदार प्रकृति का था। उसने उत्तराधिकारी के युद्ध में अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। उसने बड़े धैर्य से काम लिया, लाहौर के सूबेदार मुनीम खाँ को अपना

मित्र बनाया जिसकी सहायता से उसका आगरे पर शीघ्र ही अधिकार स्थापित हो गया। उसने अपने व्यवहार द्वारा सेना का भी समर्थन प्राप्त किया।

बहादुरशाह की कठिनाइयाँ और उनका निवारण—जिस समय बहादुरशाह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ उसके सामने कई कठिनाइयाँ थी। औरंगजेब की नीति के कारण राजपूतों ने विद्रोह किया। पंजाब में सिक्ख बन्दा वैरागी के नेतृत्व में विद्रोह कर रहे थे तथा मरहठे स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। निम्न पंक्तियों में इनका अलग-अलग वर्णन किया जाएगा—

(१) बहादुरशाह और राजपूत—आजम को परास्त कर बहादुरशाह ने राजपूतों की ओर ध्यान दिया। उत्तराधिकारी के युद्ध से लाभ उठाकर अजीतसिंह ने, जो मारवाड़ का स्वतन्त्र राजा बन गया था, अजमेर के मुगल प्रदेश पर आक्रमण कर दिया था। बहादुरशाह शीघ्र ही आमेर पहुँचा और वहाँ के उत्तराधिकारी के प्रश्न का समाधान कर विजयसिंह को आमेर का राजा घोषित किया। इसके उपरान्त वह जोधपुर गया। उसने अजीतसिंह को परास्त किया। उसने उसके साथ उदारतापूर्ण नीति अपनाई। उसको क्षमा कर दिया गया और उसने उसको जोधपुर का राजा स्वीकार कर ३,५०० की मनसबदारी प्रदान की। जब वह अपनी सेना सहित कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहा था तो अजीतसिंह, दुर्गादास आदि ने आमेर के राजा विजयसिंह को परास्त कर राज्य पर अधिकार किया। बहादुरशाह को राजपूतों का दमन करने के लिए राजपूताना जाना पड़ा, किन्तु शीघ्र ही उसने उनसे सन्धि कर उनको अपने राज्य में आने की अनुमति प्रदान की।

(२) बहादुरशाह और सिक्ख—उत्तराधिकारी के युद्ध से लाभ उठाकर पंजाब में सिक्खों ने मुगलों की सत्ता उखाड़ने के अभिप्राय से विद्रोह करना आरम्भ किया। विद्रोहियों का नेता बन्दा वैरागी था, जो गुरु गोविन्दसिंह की आकृति से बहुत कुछ मिलता था। उसने मुगलों को बहुत तंग करना आरम्भ किया और उनके बहुत-से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। **राजपूतों से सन्धि करने के उपरान्त सन् १७१० ई० में बहादुरशाह पंजाब गया और सिक्खों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ हो गया।** सिक्खों को भारी क्षति उठानी पड़ी, और मुगलों ने बन्दा को कई स्थानों पर परास्त किया। बाध्य होकर उसको जम्मू की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। बहादुरशाह की मृत्यु होने के कारण मुगलों ने सिक्खों के विरुद्ध अपना कार्य शिथिल कर दिया।

(३) बहादुरशाह और मरहठे—बहादुरशाह ने शम्भा जी के पुत्र शाहू को सन् १७०७ ई० में मुक्त कर दिया और उसको दक्षिण में छः प्रान्तों से चौथ और सारदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया। उसके इस कार्य में कूटनीति की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। **उसकी यह धारणा थी कि शाहू के दक्षिण पहुँचने पर मरहठे दो दलों में विभक्त हो जायेंगे और उनके गृह युद्ध से लाभ उठाकर मुगल उनके प्रदेशों पर अधिकार करने में सफलता पाएँगे। उसका यह मन्तव्य पूर्ण हुआ और महाराष्ट्र में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया और उनका मुगल-साम्राज्य की ओर से ध्यान हट गया।**

बहादुरशाह की मृत्यु—बहादुरशाह ने अपनी उदार नीति के कारण भारत में शान्ति की स्थापना करने का प्रयास किया । वह केवल पाँच वर्ष तक ही शासन कर सका । सन् १७७२ ई० में ६९ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया । यदि वह कुछ समय तक और जीवित रहता तो सम्भवतः वह मुगल-साम्राज्य की रक्षा करने में सफल होता और वह इतनी शीघ्र छिन्न-भिन्न न होने पाता ।

जहाँदारशाह—बहादुरशाह के चार पुत्र थे–**(१) मुईजुद्दीन, (२) अजीमुश्शान, (३) रफीउश्शान और (४) जहानशाह** । अपने पिता बहादुरशाह की मृत्यु के अवसर पर ये चारों भाई उसके पास लाहौर ही में थे । इन चारों भाइयों में अजीमुश्शान सबसे योग्य था, किन्तु मुईजुद्दीन को असद खाँ के पुत्र जुलफिकार खाँ का समर्थन प्राप्त हुआ जिसका साम्राज्य में बड़ा प्रभाव था और जो ईरानी दल का नेता था । उसने कूटनीति द्वारा अजीमुश्शान के विरुद्ध अन्य तीन भाइयों का गठबन्धन करवाया । युद्ध में अजीमुश्शान पराजित हुआ और १७ मार्च १७१२ ई० को वह युद्ध में मारा गया । इसके उपरान्त तीनों भाइयों में युद्ध हुआ जिसमें मुईजुद्दीन विजयी हुआ और अन्य दोनों भाई युद्ध में परास्त हुए । **२९ मार्च सन् १७१२ ई० को वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ ।**

जहाँदारशाह की उपाधि धारण कर, उसने शासन करना आरम्भ किया, किन्तु वह बिलकुल अयोग्य, निकम्मा और लम्पट था, यद्यपि इस समय उसकी अवस्था ५१ वर्ष की थी । उसने जुलफिकार खाँ को अपना प्रधानमन्त्री बनाया । २२ जून को वह लाहौर से दिल्ली आया । वह अपना समस्त समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगा । उसकी विशेष अनुरक्ति **लाल कुमारी नमक वैश्या** में थी । उस वैश्या का सुल्तान पर बहुत अधिक प्रभाव ाथ, जिसके कारण उसके सम्बन्धियों को उच्च पदों पर आसीन किया गया जिसके लिए वे पूर्णतया अयोग्य थे । शासन में भ्रष्टाचार फैल गया और वह पतन की ओर अग्रसर होने लगा । लाल कुमारी के सम्बन्धियों का व्यवहार अन्य अमीरों के साथ अच्छा नहीं था, जिसके कारण उनमें असन्तोष की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी । अजीमुश्शान के द्वितीय पुत्र फरुखसियर ने अपने आपको अप्रैल १७१२ ई० में सम्राट घोषित किया । इस समय वह बंगाल का सहायक सूबेदार था और उसकी अवस्था ३० वर्ष की थी । उसको पटना के सहायक सूबेदार सैयद हुसैन अली खाँ और इलाहाबाद के सहायक सूबेदार अब्दुल्ला खाँ का समर्थन और सहायता प्राप्त हुई । **सैयद हुसैन अली खाँ और अब्दुल्ला खाँ दोनों भाई थे । ये दोनों "सैयद भाइयों" के नाम से इतिहास में विख्यात हैं और बाद में शासक निर्माताओं (king-makers) के नाम से विख्यात हुए ।** इनका समर्थन तथा सैनिक सहायता प्राप्त कर फरुखसियर १८ अक्टूबर सन् १७१२ ई० को पटना से चला । जहाँदारशाह ने राजकुमार अजीजुद्दीन को उसका सामना करने के लिए भेजा, किन्तु वह पराजित हुआ और विजयी सेना ने शीघ्र ही उसके खजाने तथा शिविर को अपने अधिकार में किया । बाद में १० जनवरी सन् १७१३ ई० को जहाँदारशाह भी फरुखसियर द्वारा परास्त हुआ । वह आगरे से भागकर दिल्ली असद खाँ के पास

पहुँचा जिसने उसको फरुखसियर को सौंप दिया। ११ फरवरी सन् १७१३ ई० को उसका वध करवा दिया गया।

फरुखसियर—११ जनवरी सन् १७१३ ई० को फरुखसियर सैयद भाइयों की सहायता द्वारा राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। वह बड़ा ही अयोग्य था। उसमें सम्राट बनने के योग्य कोई भी गुण विद्यमान न थे। उसमें न बुद्धि थी और न चरित्र-बल ही था। शीघ्र ही उस पर सैयद भाइयों का प्रभाव बढ़ गया और वह उनके हाथ की कठपुतली बन गया, जिसके कारण शासन की वास्तविक सत्ता इन दोनों भाइयों के हाथों में आ गई। अब्दुला खाँ प्रधान मन्त्री और सैयद अली खाँ सेनापति के पद पर नियुक्त किए गए। इनके परिणामस्वरूप दरबार में षड्यन्त्र होने लगे, जिसमें फरुखसियर भी भाग लेता था। सैयद-भाइयों ने मुगल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने का घोर प्रयत्न किया।

राजपूत—उन्होंने सर्वप्रथम राजपूताने की ओर ध्यान दिया। मारवाड़ के राजा अजीतसिंह ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण कर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। हुसैन अली विशाल सेना लेकर राजपूताना गया और उसने राजपूतों को बुरी तरह परास्त किया। बाध्य होकर अजीतसिंह ने अपने पुत्र को दरबार में भेजना तथा अपनी पुत्री का विवाह सम्राट फरुखसियर के साथ करना स्वीकार किया। हुसैन अली को शीघ्र लौटना पड़ा, क्योंकि सम्राट अब्दुला खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा था। हुसैन अली के आने पर सम्राट झुक गया। उसने हुसैन अली को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया।

सिक्ख—बहादुरशाह ने पंजाब में सिक्खों का दमन करने के लिए भरसक प्रयत्न किया और वह बन्दा वैरागी को जम्मू की पहाड़ियों में खदेड़ने में सफल हुआ, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उन्होंने अपना संगठन कर अपनी शक्ति का पर्याप्त विकास किया और मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करने लगे। बन्दा ने सिधौरा के समीप एक दुर्ग का निर्माण कर आस-पास के प्रदेशों पर शासन करना आरम्भ कर दिया। मुगलों ने सिक्खों का दमन करने का निश्चय किया। लाहौर के सूबेदार अब्दुल समद खाँ ने सिधौरा के दुर्ग को घेर लिया। सिक्खों ने बड़े साहस तथा उत्साह से मुगल सेना का सामना किया, किन्तु उनको दुर्ग छोड़ना पड़ा। सिक्खों ने लौहगढ़ की ओर प्रस्थान किया। मुगलों ने इनका भी घेरा डाला और बाध्य होकर बन्दा पुनः पहाड़ियों में चला गया और उसने वहाँ के मुगल-प्रदेशों को लूटना आरम्भ किया। **सन् १७७५ ई० में बन्दा को मुगलों ने गुरदासपुर में घेर लिया और बाध्य होकर उसने आत्म-समर्पण किया।** दिल्ली लाकर बन्दा का, उसके ७४० अनुयायियों के साथ, वध कर डाला गया।

जाट—जाटों ने दिल्ली और आगरे के पास अपनी शक्ति का विस्तार किया। इनका नेतृत्व चूरामन कर रहा था। यद्यपि बहादुरशाह ने उसको बड़ा पद प्रदान कर अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया था, किन्तु वह आगरे के समीप बहुधा छापे मारा करता था। जयपुर का राजा जयसिंह जाटों का दमन करने के लिए भेजा गया,

किन्तु वह जाटों का दमन नहीं कर सका। अन्त में दोनों में सन्धि हुई और चूरामन को ५० लाख रुपया मिला, और उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की।

फरुखसियर का अन्त—फरुखसियर को राज्यसिंहासन सैयद भाइयों की सहायता द्वारा प्राप्त हुआ था, किन्तु शीघ्र ही फरुखसियर अपने आपको उनके चंगुल से मुक्त करना चाहता था। उसने उनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने आरम्भ किए। हुसैन अली ने मरहठों की सेना के साथ फरवरी १७१९ ई० में दिल्ली पर आक्रमण किया और उसका उस पर अधिकार हो गया। फरुखसियर को बन्दी बना लिया गया और दो माह पश्चात् उसका अन्त करवा दिया गया। इससे सैयद भाइयों की शक्ति बहुत बढ़ गई और शासन पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया। फरुखसियर उन सब सम्राटों में निकम्मा तथा अयोग्य था जितने शासक बाबर के वंश के राज्यसिंहासन पर आसीन हुए।

रफीउद दरजात—फरुखसियर का वध कर सैयद भाइयों ने रफीउश्शान के पुत्र रफीउद दरजात को २८ फरवरी १७१९ ई० को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। इस समय उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी, और वह क्षय रोग का शिकार था। शासन की समस्त सत्ता पर सैयद भाइयों का आधिपत्य था। वह नाम-मात्र का शासक था। ४ जून १७१९ ई० को वह राज्यसिंहासन च्युत कर दिया गया और इसके एक सप्ताह के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

रफीउद्दौला—रफीउद दरजात को राज्यसिंहासन पर से उतार कर सैयद भाइयों ने उसके बड़े भाई रफीउद्दौला को शाहजहाँ द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठाया। पेचिश की बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद सैयद भाइयों ने जहाँदारशाह के पुत्र रोशन अख्तर को मुहम्मदशाह के नाम से राज्यसिंहासन पर आसीन किया।

मुहम्मदशाह—सैयद भाइयों द्वारा २८ सितम्बर सन् १७१९ ई० में मुहम्मदशाह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। इसके शासन-काल की सबसे प्रमुख घटना सैयद भाइयों का पतन था। इस समय मुगल अमीर सैयद भाइयों के व्यवहार तथा नीति से अप्रसन्न हो गए थे। इन विरोधी तत्वों का नेतृत्व निजाम-उल-मुल्क ने किया, जिसको मुहम्मदशाह ने गद्दी पर बैठने के समय मालवा का सूबेदार नियुक्त किया था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। उसने १७२० ई० में खानदेश पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। खानदेश सैयद हुसैन अली खाँ के अधिकार-क्षेत्र में था। जब उसको यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने अपने भतीजे दिलावरअली खाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना निजाम से युद्ध करने के लिए भेजी। इसी काल में निजाम ने असीरगढ़ तथा बुरहानपुर पर भी अधिकार कर लिया था। निजाम ने दिलावर अली खाँ को परास्त किया और उसका वध कर दिया। इस पर सैयद हुसैन अली ने अपनी सेना तथा सम्राट को साथ ले दक्षिण की ओर निजाम का दमन करने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में ही हुसैन अली खाँ का वध करने का षड्यन्त्र रचा गया और उसका वध कर दिया गया। फिर सम्राट ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया

अब्दुल्ला खाँ ने शाही सेना को परास्त करने के लिए सेना एकत्रित की, किन्तु बिलोचपुर के समीप वह हार गया और बन्दी बना लिया गया।

सैयद भाइयों के पतन के उपरान्त तथा नए मन्त्री मुहम्मद अमीर खाँ की मृत्यु के बाद निजाम-उल-मुल्क को मन्त्री पद पर आसीन किया गया। वह दरबार की दशा का वास्तविक अध्ययन कर परेशान हो गया, क्योंकि उसको समस्त शासन में शिथिलता दिखलाई दी। उसने शासन में अनुशासन स्थापित करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। ८ सितम्बर १७२३ ई० को शिकार का बहाना कर वह दक्षिण की ओर चल दिया। सम्राट ने उसके पलायन करने पर अमीर खाँ के पुत्र कमरुद्दीन खाँ को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया।

निजाम की कूटनीति—निजाम-उल-मुल्क दक्षिण जाकर ६ सूबों पर स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करने लगा। मुगल-सम्राट ने उसका दमन करने के लिए दक्षिण में सेना भेजी, किन्तु निजाम ने उस सेना को परास्त कर दिया। उसको शान्त करने के उद्देश्य से सम्राट ने उसे आसफजाह की उपाधि से सुशोभित किया। निजाम ने मरहठों से अपने राज्य की रक्षा करने के उद्देश्य से मरहठों से एक सन्धि की और पेशवा बाजीराव के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपना ध्यान उत्तरी भारत की ओर आकर्षित करे और उसी ओर अपने साम्राज्य का विस्तार करने की ओर ध्यान दे।

मुगल और मरहठे—बाजीराव ने निजाम के प्रस्ताव को स्वीकार किया। सन् १७३४ ई० में मरहठों ने हिंडौन पर आक्रमण किया जो आगरे से ७० मील दक्षिण में स्थित था। वे उस पर अधिकार करने में सफल हुए, परन्तु बाद में मुगलों के विरोध के कारण उनको वहाँ से हटना पड़ा। उन्होंने सांभर पर आक्रमण किया। मुगल भयभीत हो गए और उन्होंने मरहठों को प्रसन्न करने के लिए उनके पेशवा को मालवा का सूबेदार स्वीकार किया, किन्तु मरहठों को इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने अपनी मागें मुगलों के सामने रखीं जिनको मुगलों ने स्वीकारन हीं किया। मुगलों ने उसका सामना करने के लिए सेना भेजी, किन्तु मरहठों ने शाही सेना को धोखे में डालकर दिल्ली के समीप आक्रमण किया। सम्राट ने इस भीषण परिस्थिति के समय निजाम-उल-मुल्क को दक्षिण से दिल्ली बुलाया। मरहठों ने निजाम की सेना को परास्त किया, अतः निजाम को भी १७ जनवरी सन् १७३८ ई० को मरहठों के साथ एक सन्धि करनी पड़ी। इसके द्वारा उसको नर्मदा से चम्बल नदी के समस्त प्रदेश मरहठों को देने पड़े, और उसने उनको ५० लाख रुपए भी भेंट-स्वरूप प्रदान किए।

अवध का स्वतन्त्र होना—शासन की शिथिलता से लाभ उठाने का प्रयत्न महत्वाकांक्षी अमीरों ने भी करना आरम्भ कर दिया। ९ सितम्बर १७२२ ई० को सआदत खाँ बुरहान उल-मुल्क अवध का सूबेदार नियुक्त किया गया था। वह बड़ा वीर, साहसी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसको शीघ्र ही मुगलों की दयनीय दशा का ज्ञान हो गया। उसने अवध में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और नाम-मात्र के लिए ही दिल्ली से अपना सम्बन्ध रखा, अन्यथा वह स्वतन्त्र शासक के समान शासन करता था।

बंगाल का स्वतन्त्र होना—इसके शासन-काल में बंगाल ने भी अपना सम्बन्ध मुगल-साम्राज्य से विच्छेद किया। १२ मई १७४० ई० को बिहार के सहायक सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने बंगाल के सूबेदार सरफराज खाँ को परास्त कर बंगाल पर अधिकार किया। सम्राट ने उसको बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का सूबेदार स्वीकार कर लिया। उसने अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की। वह भी नाम-मात्र के लिए दिल्ली से अपना सम्बन्ध रखता था।

नादिरशाह का आक्रमण—मुगल-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो रहा था उसी समय उस पर एक विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। सन् १७३७ ई० में ईरानी वीर नादिरशाह ने आक्रमण किया। वह काबुल, कन्धार पर अधिकार करता हुआ भारत-भूमि में आ गया। उसने बड़ी सरलता से लाहौर पर अधिकार कर लिया। मुगल अभी तक नादिरशाह के आक्रमण का कोई महत्व नहीं समझते थे, किन्तु जब वह लाहौर से आगे बढ़ने लगा तो सम्राट चिन्तित हुआ और नादिरशाह का सामना करने के लिए सेना लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा। दोनों सेनाओं में करनाल के समीप घमासान युद्ध हुआ जिसमें नादिरशाह विजयी हुआ और मुगलों को मुँह की खानी पड़ी। मुगल नादिरशाह को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिए २ करोड़ रुपए की भेंट देने को तैयार हो गए, किन्तु नादिरशाह को इतने धन से सन्तोष नहीं हुआ और उसने २० करोड़ रुपए की माँग की। अन्त में यह निश्चिय हुआ कि नादिरशाह को दिल्ली ले जाकर धन दिया जाए। दिल्ली में नादिरशाह का भव्य स्वागत हुआ, किन्तु संयोग से २२ मार्च को नगर में दंगा हो गया। नादिरशाह ने कत्लेआम की आज्ञा दे दी, जिसके परिणामस्वरूप ३०,००० नागरिकों का वध कर डाला गया। ८ घण्टों तक कत्लेआम चलता रहा और अन्त में मुहम्मदशाह की प्रार्थना पर कत्लेआम की आज्ञा उठा ली गई। १५ मई तक नादिरशाह दिल्ली में रहा। वहाँ से वह अतुल धन-राशि के साथ शाहजहाँ द्वारा निर्मित मयूरआसन (तख्तेताऊस) अपने साथ ले गया।

मरहठों के उत्तरी भारत पर आक्रमण—नादिरशाह के आक्रमण से मुगलों की प्रतिष्ठा को बहुत आघात पहुँचा। सबको उनकी दयानीय दशा का ज्ञान हो गया, किन्तु शक्ति को सुसंगठित करने के लिए कुछ भी ध्यान नहीं किया गया। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर मरहठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उनके आक्रमण बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मालवा, गुजरात और बुन्देलखण्ड के उत्तरी प्रदेशों तक होने लगे। सम्राट उनको नहीं रोक सका।

रुहेलखण्ड का स्वतन्त्रता प्राप्त करना—इस परिस्थिति से लाभ उठाकर अली मुहम्मद खाँ रुहेलखण्ड ने कटेहर पर अपना अधिकार स्थापित किया। उसके नाम से ही यह प्रदेश रुहेलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मदशाह ने उस पर आक्रमण किया। अली मुहम्मद बन्दी बनाया गया, किन्तु बाद में उसको स्वतन्त्र कर दिया गया और उसका रुहेलखण्ड पर पुनः अधिकार हो गया।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण—नादिरशाह की मृत्यु सन् १७४७ ई० में

हुई। अहमदशाह अब्दाली ने सन् १७४८ ई० में अफगानिस्तान को अपने अधिकार में किया। राज्यसिंहान पर आसीन होते ही पंजाब के सूबेदार शाहबाज खां के निमंत्रण पर अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। लाहौर पर अधिकार करने के उपरान्त उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया, किन्तु मुहम्मदशाह के पुत्र राजकुमार अहमद ने उसको परास्त किया और बाध्य होकर उसे काबुल लौटना पड़ा।

मुहम्मदशाह की मृत्यु—२६ अप्रैल सन् १७४८ ई० में मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। वह बड़ा अयोग्य शासक था। वह अपना समस्त समय आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यतीत किया करता था। इसी कारण वह **'मुहम्मदशाह रंगीला'** के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसके शासन में मुगल प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा और साम्राज्य का विच्छेद होने लगा। शासन के प्रत्येक भाग में शिथिलता उत्पन्न हो गई। महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने मुगल-सम्राट की नाम-मात्र की सत्ता स्वीकार कर अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। मरहठों ने भी उसका लाभ उठाकर उत्तरी भारत को अपने अधिकार-क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया।

अहमदशाह—मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अहमदशाह सन् १७४८ ई० में राज्यसिंहान पर आसीन हुआ। उसने सन् १७५४ ई० तक शासन किया। उसके शासन-काल में बहुत उपद्रव हुए और उसको बाध्य होकर मरहठों से सहायता लेनी पड़ी। सन् १७४९ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर दूसरा आक्रमण किया और पंजाब के सूबेदार को १४ हजार रुपया वार्षिक कर देने से लिए बाध्य किया। उसने तीसरा आक्रमण भारत पर सन् १७५२ ई० में किया। उसने समस्त पंजाब को अपने अधिकार में किया। उसके शासन-काल में एक बड़ा गृह-युद्ध हुआ। एक दल का नेता नवाब सफदरजंग और दूसरे दल का नेता निजाम-उल-मुल्क का पुत्र गाजीउद्दीन था। गृह-युद्ध में गाजीउद्दीन को सफलता प्राप्त हुई और उसने शासन पर अधिकार कर लिया। वह अहमदशाह का मन्त्री बना। उसने शीघ्र ही अहमदशाह को सिंहासन च्युत करके जहाँदारशाह के द्वितीय पुत्र अजीजउद्दीन को आलमगीर द्वितीय के नाम से सन् १७५४ ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन किया।

आलमगीर द्वितीय—वह सन् १७५४ ई० में राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसका अधिकांश समय कारागृह की चाहरदीवारी के अन्दर व्यतीत हुआ था। इस समय उसकी अवस्था ५५ वर्ष की थी। वह न योग्य शासक था न योग्य सेनापति। वास्तव में कारागृह में रहने के कारण उसको इनका तनिक भी अनुभव नहीं था। शासन की समस्त-सत्ता पर गाजीउद्दीन का अधिकार था। कुछ समय उपरान्त उसने अपने आपको मन्त्री के हाथों से मुक्त करने के लिए षड्यन्त्र रचा, किन्तु अनुभवहीन होने के कारण उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। गाजीउद्दीन ने पंजाब पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। उसके इस कार्य से अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर तृतीय आक्रमण सन् १७५७ ई० में किया। दिल्ली, मथुरा आदि प्रदेशों को लूटता हुआ वह अफगानिस्तान वापिस चला गया। गाजीउद्दीन

ने सन् १७५६ ई० में सम्राट का वध कर उसके पुत्र शाहआलम को सम्राट घोषित किया।

शाहआलम द्वितीय—सन् १७५६ ई० में वह राज्यसिहान पर आसीन हुआ। शासन की सत्ता पर गाजीउद्दीन का प्रभुत्व था। गाजीउद्दीन की नीति के कारण दिन-प्रतिदिन उसका विरोध बढ़ने लगा जिससे भयभीत होकर उसने मरहठों की सहायता प्राप्त की। मरहठों को साम्राज्य की नीति में हस्तक्षेप करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने दिल्ली में प्रवेश किया और पंजाब पर अधिकार किया। मरहठों के प्रभाव को बढ़ता देख मुसलमान अमीरों ने अहमदशाह अब्दाली को भारत आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया और उसको सहायता देने का वचन दिया। सन् १७६१ ई० में उसने आक्रमण किया। मरहठों ने बड़ी वीरता से पानीपत के प्रसिद्ध रणक्षेत्र में उसका सामना किया, किन्तु वे पराजित हुए। इस पराजय से मरहठों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। अहमदशाह अब्दाली ने शाहआलम को दिल्ली का सम्राट स्वीकार किया। बंगाल की ओर से अंग्रेज अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। सन् १६६४ ई० में वे बक्सर के युद्ध में विजयी हुए। अगले वर्ष सन् १७६५ ई० में अंग्रेजों को बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा से दीवानी वसूल करने का अधिकार मिला। अंग्रेजों ने इलाहाबाद और कड़ा के जिले सम्राट को दिए और उसको २६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में देना आरम्भ किया जो सन् १७६१ ई० में बन्द कर दी गई, क्योंकि सम्राट मरहठों की संरक्षिता तथा प्रभाव क्षेत्र में आ गया था। सन् १७८८ ई० में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर शाहआलम को राज्यसिहासन से पद-च्युत कर दिया। वह अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया। सन् १८०६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

अकबर द्वितीय—शाहआलम द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अकबर द्वितीय राज्यसिहासन पर आसीन हुआ। वह केवल नाम-मात्र का शासक था। अंग्रेज इसको वार्षिक पैंशन देते थे।

बहादुरशाह द्वितीय—अकबर द्वितीय की मृत्यु होने पर सन् १८३७ ई० में उसका पुत्र बहादुरशाह द्वितीय राज्यसिहासन पर आसीन हुआ। वह मुगल वंश का अन्तिम सम्राट था। सन् १८५७ ई० तक अंग्रेज उसको वार्षिक पेंशन देते रहे, किन्तु जब उसने सन् १८५७ ई० की क्रांति में अंग्रेजों का विरोध किया तो उन्होंने उसको बन्दी कर रंगून भेज दिया, जहाँ उसकी सन् १८६२ ई० में मृत्यु हो गई।

मुगल-साम्राज्य के पतन के कारण (1986)

उत्तरकालीन मुगलों के इतिहास का अध्ययन करने के उपरान्त मुगल-साम्राज्य के पतन के कारणों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। यह प्रकृति का नियम है कि जिसकी उन्नति होती है उसका एक दिन पतन भी अवश्य होता है। इसी नियम के अनुसार मुगलों का पतन हुआ, जिन्होंने पर्याप्त समय तक भारत पर राज्य किया। इस पतन के लिए **सबसे अधिक उत्तरदायी मुगल वंश का अन्तिम प्रसिद्ध सम्राट औरंगजेब आलमगीर था।** उसकी नीति के कारण जनता में साम्राज्य के प्रति विद्रोह

की भावना बलवती हुई और उन्होंने अपनी जान की बाजी लगाकर साम्राज्य के पतन में सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त कुछ और अन्य कारण थे। जिनके कारण मुगल-साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हुआ। इन सब कारणों के विषय में निम्न पंक्तियों प्रकाश डाला जाएगा—

मुगलों के पतन के कारण

(१) औरंगजेब की धार्मिक नीति।
(२) औरंगजेब की दक्षिणी नीति।
(३) अयोग्य उत्तराधिकारी।
(४) मुगल सरदारों का चरित्र भ्रष्ट होना।
(५) सैनिक कुव्यवस्था।
(६) उत्तराधिकार का निर्णय करने वाले नियम का अभाव।
(७) जागीर प्रथा का आरम्भ।
(८) वाह्य आक्रमण।
(९) मुगलों की आर्थिक दुर्बलता।
(१०) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना।

(१) औरंगजेब की धार्मिक नीति—औरंगजेब की धार्मिक नीति बड़ी मूर्खतापूर्ण तथा अन्यायपूर्ण थी। जिस **धार्मिक समन्वय के आधार पर अकबर हिन्दुओं की और विशेषतया राजपूतों की सहायता प्राप्त करने में सफल हुआ औरंगजेब ने उस एकता के आधार का परित्याग कर हिन्दुओं का न केवल समर्थन ही खोया, वरन् उनको अपने शत्रु के रूप में परिणित कर लिया।** उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया जिसको वे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे और जिसका अन्त अकबर के समय में हो चुका था। उसने उनके पवित्र मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया जिससे उनकी आत्मा को बड़ा आघात पहुँचा। हिन्दू-जाति सब कुछ सहन कर सकती थी, किन्तु अपने धर्म पर कुठाराघात नहीं। इसके अतिरिक्त औरंगजेब ने शिया **मुसलमानों** के साथ भी अन्यायपूर्ण एवं कठोर व्यवहार किया, जिससे वे भी उसको घृणा की दृष्टि से देखने लगे। औरङ्गजेब ने दक्षिण के शिया-राज्य बीजापुर और गोलकुण्डा का दमन तथा अन्त इसी धार्मिक भावना के अन्तर्गत किया, जिनका परिणाम मुगल-साम्राज्य के लिए घातक हुआ, क्योंकि उनके पतन के कारण मरहठा शक्ति पर दक्षिण से प्रतिबन्ध हट गया और उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित कर मुगल-साम्राज्य की नीति का विध्वंस करना आरम्भ कर दिया। **औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण उत्तरी भारत की सैनिक जातियों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया,** राजपूतों ने सम्मिलित रूप से विद्रोह किया। **बुन्देलों, जाटों** तथा **सतनामियों** ने भी ऐसा ही किया। औरंगजेब अपनी सैनिक शक्ति के आधार पर इनका दमन करने में सफल हुआ, किन्तु वह उसके हृदयों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सका। जब उनको अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने पुनः अपने स्वतन्त्र राज्य प्राप्त किए। पंजाब में औरंगजेब के अत्याचारों के कारण सिक्ख सैनिक जाति के रूप में संगठित हुए और उन्होंने मुगलों पर भीषण आक्रमण कर पंजाब से उसके राज्य का अन्त कर डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि **वह इन वीर जातियों का सहयोग**

मरहठों के **विरुद्ध प्राप्त नहीं कर सका। शिवाजी** मरहठों को दृढ़ तथा सुसंगठित करने में सफल हुए। (1985)

(२) **औरंगजेब की दक्षिणी नीति**—औरङ्गजेब की दक्षिणी नीति भी मुगल-साम्राज्य के पतन में विशेष उत्तरदायी सिद्ध हुई। उत्तर की समस्याओं का समाधान करने के उपरान्त उसने दक्षिण के राज्यों को मुगल-साम्राज्य में विलीन करने के हेतु दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। **उसने दक्षिण में लगभग २५ वर्ष व्यतीत किए और इस सम्पूर्ण काल में वह अनवरत रूप से दीर्घकालीन युद्ध दक्षिण में करता रहा जिसके कारण साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचा।** (i) युद्ध में बहुत अधिक धन का व्यय हुआ, जिसकी पूर्ति विजयों द्वारा नहीं हो पाई। इससे राजकोष खाली हो गया और जनता को अधिक करों का भार सहन करना पड़ा। (ii) इसके कारण उत्तरी भारत में शासन में शिथिलता के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। जनता पर कर्मचारियों की ओर से कठोर व्यवहार किया जाने लगा। (iii) इन युद्धों के कारण बहुत से व्यक्ति मर गए। (iv) उसके गोलकुण्डा तथा बीजापुर राज्य का अन्त करने से मरहठा शक्ति को उत्थान करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनको आत्म-रक्षा के उद्देश्यों से युद्ध करना पड़ा और जब उनको सफलता मिलती गई तो उन्होंने उत्तरी भारत की ओर अपनी सेनाओं के साथ प्रस्थान करना आरम्भ किया। (v) उनको उन हिन्दू पदाधिकारियों तथा सामन्तों द्वारा भी सहयोग मिला जो औरंगजेब की अन्यायपूर्ण नीति के कारण उससे अप्रसन्न थे और साम्राज्य के पतन की बाट जोह रहे थे। (vi) मरहठा और राजपूतों में मैत्रिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस प्रकार औरङ्गजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही हिन्दू मुगल-साम्राज्य के शत्रु के रूप में भारतीय राजनीति में भाग लेने लगे।

(३) **अयोग्य उत्तराधिकारी**—औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त किसी भी मुगल-सम्राट में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह इतने विस्तृत व विशाल साम्राज्य का संचालन योग्यता तथा सुव्यवस्थित रूप से करता। **उसके उत्तराधिकारी निकम्मे और भोग-विलासी थे, जिनमें योग्यता का सर्वथा अभाव था।** कुछ सीमा तक इसके लिए औरङ्गजेब उत्तरदायी था। उसका शासन-काल इतना अधिक लम्बा था कि उसके पुत्र तथा पौत्रों की अवस्था बहुत अधिक हो गई थी, जिसके कारण न उनमें शक्ति ही रह गई थी और न महत्वाकांक्षा ही। इसके अतिरिक्त औरङ्गजेब बड़ा शक्की था और वह किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नहीं करता था। इससे उनमें योग्यता का अभाव हो गया। वे अपने मंत्रियों की सलाह पर निर्भर रहते थे। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों ने तो राजकुमारों को और भी अधिक निकम्मा बना दिया, क्योंकि ये इनको दरबार में ही रखते थे और उनको शासन-व्यवस्था का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने का, कूटनीति के प्रयोग का तथा सूदूर प्रान्तों में युद्ध करने का अवसर तक नहीं देते थे, इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि **उनमें योग्यता का सर्वथा अभाव रहा और वे अपने महत्वाकांक्षी सरदारों तथा अमीरों के हाथ की कतपुतली बने रहे और शासन की सत्ता पर से उनका अधिकार समाप्त हो गया और समस्त सत्ता**

मंत्रियों के हाथ में आ जाने के कारण दरबार दलबन्दी का अखाड़ा बन गया। कुछ मन्त्री तो इतने अधिक शक्तिशाली हो गए थे कि वे अपनी इच्छा से सम्राट बनाने लगे। कुछ सम्राट तो अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करने लगे तथा राज्य के कार्य से पूर्णतया उदासीन हो गए।

(४) **मुगल सरदारों का चरित्र भ्रष्ट होना**—ऐसा कोई भी राज्य अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता, जिसके कार्यकर्त्ता भ्रष्टाचारी हों या जिनके चरित्र का नैतिक पतन हो जाए। प्रारम्भिक काल में मुगल सरदारों का चरित्र उज्ज्वल एवं उन्नत था और विशेषतया उनका जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की स्थापना तथा उसको दृढ़ करने में विशेष सहयोग प्रदान किया। इनमें बैरम खाँ मुनीम खां, अब्दुल रहीम खानखाना, महावत खाँ, आसफ खाँ, आदि विशेष महत्वपूर्ण थे, किन्तु जब मुगल-सम्राटों का चरित्र भ्रष्ट हो गया तो उसका प्रभाव उनके सरदारों पर भी बहुत पड़ा। **मुगल-सरदार तथा उच्च पदाधिकारी भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद** का जीवन **व्यतीत करने लगे थे और वे राज्य-कार्य से उदासीन से हो गए।** इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य में शिथिलता उत्पन्न होने लगी और उनके अधीन कर्मचारी मनमानी करने लगे। वे उन प्रदेशों से भारत आए थे, जहाँ उनको भोग-विलास के साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न थे, किन्तु जब वे भारत आए और उनकी आय पर्याप्त हुई तो उनका ध्यान स्वाभाविक रूप से इस ओर आकर्षित हुआ और वे उनमें लिप्त हो गए। **अन्तिम मुगल-सम्राटों के काल में तो इनका चरित्र और** भी **गिर गया। वे कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो गए और उनकी राज्य-भक्ति केवल दिखावटी रह** गई। वे राज्य-कार्य की अपेक्षा अपने स्वार्थों की ओर विशेष ध्यान देते थे और उनमें पद प्राप्त करने की प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न हो गई जिससे राज्य-कार्य उचित रूप से न हो सका।

(५) **सैनिक कुव्यवस्था**—मुगलों के पतन में उनकी सैनिक कुव्यवस्था भी विशेष उत्तरदायी थी। **मुगलों के सैनिक संगठन में मौलिक दोष विद्यमान थे।** मनसबदारी-प्रथा के कारण समस्त सेना विभिन्न टुकड़ियों में विभक्त रहती थी। मनसबदार अपनी सेना को नियन्त्रण में रखते थे और उनके सैनिक अपने को उसके अधीन समझते थे। उनमें राज्य के प्रति भक्ति के स्थान पर मनसबदार के प्रति भक्ति होती थी। जब तक केन्द्रीय शक्ति सशक्त रही उसी समय तक मनसबदारों पर नियन्त्रण रहा, किन्तु बाद में उन पर नियन्त्रण रखना असम्भव हो गया। औरंगजेब के शासन-काल में ही मनसबदार न तो निश्चित सैनिक और न निश्चित घोड़े ही रखते थे और न वे सैनिक कार्यों में विशेष दिलचस्पी से कार्य करते थे। सैनिकों का राज्य से कोई सीधा सम्वन्ध न होने के कारण वे भी युद्ध से उदासीन रहते थे। **राज्य की कोई स्थायी सेना नहीं थी जिस पर सम्राट का अधिकार हो।** वह मनसबदारों पर ही निर्भर रहता था। मनसबदारों में परस्पर ईर्ष्या थी, जिसके कारण सम्मिलित रूप से कार्य नहीं हो पाता था। सैनिक अनुशासन भी शिथिल हो गया था। सैनिकों तथा सेनापति के साथ उनकी पत्नियाँ, प्रेमिकाएँ भी युद्ध-क्षेत्र में जाया करती

थी। रात्रि के समय सैनिक भोग-विलास में लिप्त रहते थे **और** दिन के समय में युद्ध करने में। इस परिस्थिति में युद्ध में सफलता का प्राप्त होना असम्भव ही रहता था।

(६) **उत्तराधिकारी के निर्णय करने वाले नियम का अभाव**—मुसलमानों में उत्तराधिकारी के निर्णय करने वाले नियम का अभाव था **जिसके कारण राजकुमार राज्य की प्राप्ति के लिए सदा ही विद्रोह करने के लिए उद्यत रहते थे।** इसके अतिरिक्त एक सम्राट की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकारी के निर्णय के लिए गृह-युद्ध का होना अनिवार्य था। इसके कारण साम्राज्य को बड़ी हानि उठानी पड़ी। हुमायूं और अकबर के समय में भी राजकुमारों ने विद्रोह किए, किन्तु जहाँगीर के समय से तो इन्होंने बहुत उग्र रूप धारण किया। जहाँगीर के समय में राजकुमार खुसरों तथा बाद में राजकुमार खुर्रम ने विद्रोह किया जिसके कारण मेवाड़-विजय तथा कन्धार-अभियान निश्चित समय पर नहीं हो सका। शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य की प्राप्ति के लिए उत्तराधिकारी युद्ध उस समय ही आरम्भ हो गया जब शाहजहाँ की मृत्यु भी नहीं हुई थी। इसने साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचाया। उसके बाद तो गृह-युद्धों ने और भी भीषण रूप धारण कर लिया। इन पारस्परिक संघर्षों तथा युद्ध के कारण मुगलों की सैनिक शक्ति दिन-प्रतिदिन दुर्बल होती चली गई और अन्य शक्तियों को संगठित होने तथा अपनी शक्ति का विकास करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(७) **जागीर-प्रथा का आरम्भ**—अकबर ने जागीर-प्रथा का उन्मूलन कर किसानों का सम्बन्ध राज्य से सीधा स्थापित कर दिया था, जिससे किसान जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गए। **किन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने इस प्रथा को समाप्त कर जमींदारी प्रथा को आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि समस्त मुगल-साम्राज्य जागीरों में विभक्त हो गया और प्रत्येक प्रान्तीय सूबेदार छोटे-छोटे राजा हो गए और शासन के शिथिल होने पर उन्होंने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर पड़ोसियों पर आक्रमण कर अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया।**

(८) **बाह्य आक्रमण**—मुगल-साम्राज्य अधोगति को प्राप्त हो ही रहा था कि उसी समय फारस के शाह **नादिरशाह से भारत का आक्रमण** किया और वह यहाँ से अतुल धन लेकर वापिस चला गया। उसके कुछ ही समय उपरान्त **अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया।** इन आक्रमणों के कारण गिरते हुए मुगल-साम्राज्य का और भी तीव्रगति से पतन होना आरम्भ हो गया।

(९) **मुगलों की आर्थिक दुर्बलता**—औरंगजेब के शासन-काल में ही मुगल राज-कोष रिक्त होने लगा था। उसके उत्तराधिकारियों के समय में आर्थिक-व्यवस्था और भी शोचनीय हो गई। **साम्राज्य में अशान्ति तथा कुव्यस्वथा की स्थापना के कारण उद्योग-धन्धे चौपट हो गए। आर्थिक संकट के निवारण के लिए विलासी मुगल सम्राटों ने अधिक कर का भार जनता पर थोपा जिसके उनकी अवस्था पहले से भी अधिक शोचनीय हो गई।** इस परिस्थिति में स्वभावत: जनता परिवर्तन चाहने लगी और जब ऐसी भावना का उदय जनता में हो जाता है तो राज्य किसी भी दशा में स्थायी नहीं रह सकता।

(१०) **ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना**—आरम्भ में इस कम्पनी की स्थापना व्यापार के उद्देश्य से की गई थी, किन्तु भारत की अव्यवस्था तथा शोचनीय परिस्थितियों के कारण इसने राज्य की प्राप्ति करना आरम्भ कर दिया। मुगल इस जाति का सामना न कर सके और उसने लगभग १०० वर्षों में समस्त भारत पर अपना अधिकार स्थापित किया।

प्रथम छः मुगल-सम्राटों की वंशावली

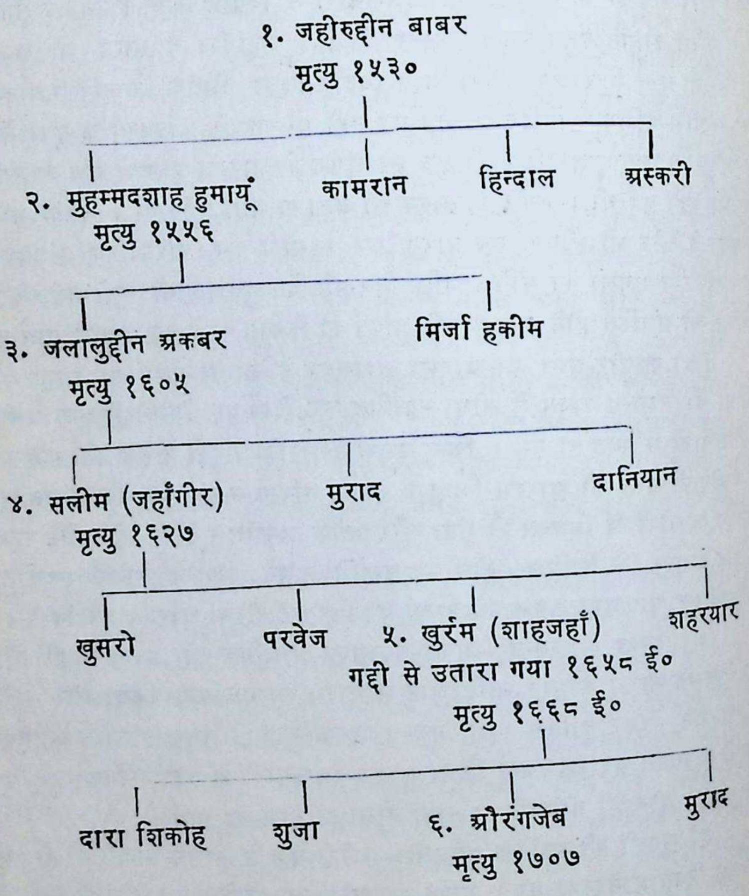
१. जहीरुद्दीन बाबर
मृत्यु १५३०
२. मुहम्मदशाह हुमायूँ
मृत्यु १५५६
कामरान
हिन्दाल
अस्करी
३. जलालुद्दीन अकबर
मृत्यु १६०५
मिर्जा हकीम
४. सलीम (जहाँगीर)
मृत्यु १६२७
मुराद
दानियान
खुसरो
परवेज
५. खुर्रम (शाहजहाँ)
गद्दी से उतारा गया १६५८ ई०
मृत्यु १६६८ ई०
शहरयार
दारा शिकोह
शुजा
६. औरंगजेब
मृत्यु १७०७
मुराद

उत्तरकालीन मुगल-सम्राटों की वंशावली

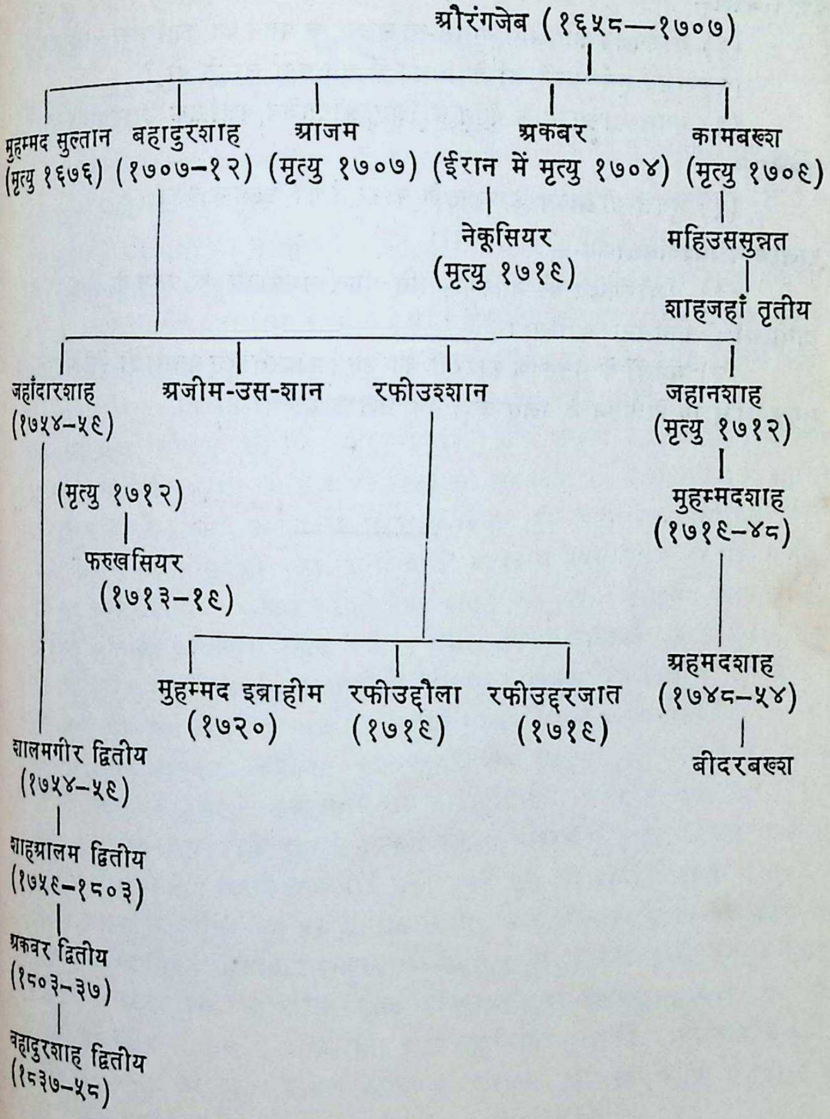
औरंगजेब (१६५८—१७०७)
मुहम्मद सुल्तान (मृत्यु १६७६)
बहादुरशाह (१७०७–१२)
आजम (मृत्यु १७०७)
अकबर (ईरान में मृत्यु १७०४)
कामबख्श (मृत्यु १७०९)
नेकूसियर (मृत्यु १७१९)
महिउससुन्नत
शाहजहाँ तृतीय
जहाँदारशाह (१७५४–५९)
अजीम-उस-शान
रफीउश्शान
जहानशाह (मृत्यु १७१२)
(मृत्यु १७१२)
फरुखसियर (१७१३–१९)
मुहम्मदशाह (१७१९–४८)
मुहम्मद इब्राहीम (१७२०)
रफीउद्दौला (१७१९)
रफीउद्दरजात (१७१९)
अहमदशाह (१७४८–५४)
बीदरबख्श
आलमगीर द्वितीय (१७५४–५९)
शाहआलम द्वितीय (१७५९–१८०३)
अकबर द्वितीय (१८०३–३७)
बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–५८)

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) औरंगजेब की नीति मुगल-साम्राज्य के पतन का कहाँ तक कारण हुई?

(२) सैयद हुसैनअली खाँ के विषय में तुम क्या जानते हो ?

(३) मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब कहाँ तक उत्तरदायी था ?

अजमेर—

(१) मुगल-साम्राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख करो।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) 'औरंगजेब की दक्षिणी-नीति मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।' विवेचना कीजिए।

(२) मुगलों के पतन के कारणों का उल्लेख करते हुए बतलाओ कि औरंगजेब मुगल-साम्राज्य के पतन के लिए कहाँ तक उत्तरदायी था।

१७ मरहठों का उत्थान (१७१३–७२)

छत्रपति शाहू

गत अध्यायों में इस विषय में प्रकाश डाला गया है कि औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र बहादुरशाह ने अपने सेनापति जुल्फिकार खाँ के कहने पर मई १७०७ ई० को शाहू को मुक्ति प्रदान की, जिसको औरंगजेब ने सन् १६८९ ई० को बन्दी बनाया था। साहू अपने साथियों सहित दक्षिण की ओर चल पड़ा और महाराष्ट्र पहुंचा, जहाँ उसका बड़ा भव्य स्वागत हुआ। कुछ मरहठा सरदारों का उसको समर्थन प्राप्त हुआ। उसकी ओर से शीघ्र ही एक सेना का संगठन किया गया, जिसने सतारा को घेर लिया। ताराबाई शासन-सत्ता का परित्याग करना नहीं चाहती थी और उसने शीघ्र ही घोषणा की कि शाह पाखण्डी है और उसका मरहठा राज्य पर कोई अधिकार नहीं है, शम्भा जी ने अपने राज्य को खो दिया। राज्य की पुनः स्थापना राजाराम ने की। अतः उसका पुत्र शिवाजी द्वितीय ही शासन का वास्तविक उत्तराधिकारी है। उसने यह भी कहा कि शिवाजी महाराज अपने राज्य को शम्भा जी को न देकर उसके पिता राजाराम को ही देना चाहते थे। उसने साहू का सामना करने के लिए धानाजी माधव के नेतृत्व में सेना भेजी, किन्तु धानाजी युद्ध के पूर्व ही शाहू की ओर हो गया और उसने ताराबाई के पक्ष का परित्याग कर दिया। ताराबाई की शेष सेना को साहू ने सन् १७०७ ई० में खेद नामक स्थान पर परास्त किया। शाहू ने सतारा पर अधिकार किया। २२ जनवरी सन् १७०८ ई० को शाहू का राज्याभिषेक सतारा में हुआ। कुछ समय तक ताराबाई इधर-उधर भटकती रही, किन्तु अन्त में शासन-सत्ता उसके हाथ से निकल कर राजाराम की दूसरी पत्नी रजसबाई के हाथ में आ गई, जिसने ताराबाई और उसके पुत्र को बन्दी किया और अपने पुत्र शम्भा जी को राज्यसिंहासन पर आसीन किया। वह कोल्हपुर में निवास करने लगा और शाहू के विरुद्ध निजाम-उल-मुल्क की सहायता से षड्यन्त्र करने लगा। शाहू ने उसको भी परास्त किया और उसको एक सन्धि करने पर बाध्य होना पड़ा। यह सन्धि वार्ना की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इससे यह निर्णय हुआ कि कार्ना नदी के दक्षिण प्रदेश पर शम्भा जी का और उत्तर-प्रदेश पर शाहू का अधिकार रहेगा। दोनों वंश शान्तिपूर्वक अपने-अपने प्रदेशों पर अधिकार स्थापित करेंगे।

बालाजी विश्वनाथ

बालाजी विश्वनाथ ने शाहू की ताराबाई के विरुद्ध बड़ी शलांघनीय सेवा की, जिसके परिणामस्वरुप उसने सन् १७१३ ई० में कुछ समय उसकी परीक्षा करने के उपरान्त उसको अपना पेशवा (प्रधानमन्त्री) नियुक्त किया। पेशवा पद पर आसीन होने के बाद बालाजी विश्वनाथ ने सर्वप्रथम राज्य में शान्ति की स्थापना का प्रयास

किया जिसका अन्त शासन की शिथिलता तथा मुगलों के आक्रमण तथा पारस्परिक गृह-युद्ध के कारण हो गया था। इसके उपरान्त उसने समस्त मरहठा सरदारों को नियन्त्रण में रखने की ओर पग उठाया। उसने समस्त सरदारों को एकता का पाठ पढ़ाया जिसका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे पारस्परिक वैमनस्य त्यागकर शाहू के अधीन हो गए। इससे मरहठों की शक्ति का बहुत विकास हुआ। जिन सरदारों ने शाहू की अधीनता स्वीकार नहीं की उनकी शक्ति का अन्त किया गया और उनको बाध्य होकर शाहू की शरण में आना पड़ा। इस समय देहली की राजधानी में बड़ी उथल-पुथल मच रही थी।

मरहठों और सैयद हुसैनअली में सन्धि—सैयद भाई फरुखसियर को राज्य-सिंहासन पर आसीन करने में सफल हुए, किन्तु फरुखसियर ने उनके विरुद्ध कुछ ही समय उपरान्त षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। सैयद हुसैनअली दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। जब उसको यह समाचार ज्ञात हुआ कि फरुखसियर उसके भाई अब्दुल्ला खाँ के विरुद्ध षडयन्त्र रच रहा है तो उसने मरहठों से सहायता की याचना की। मरहठों ने उसकी सहायता करने का वचन दिया और दोनों पक्षों में निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) शाहू का उन समस्त प्रदेशों तथा दुर्गों पर अधिकार सम्राट को मानना होगा जो शिवाजी के स्वराज्य से अन्तर्गत थे।

(२) शाहू को वे प्रदेश प्राप्त होंगे जिनको मरहठों ने खानदेश, बरार, गौंडवाना, हैदराबाद औरकर्नाटक में जीता है।

(३) मरहठों को छः प्रान्तों से चौथ और सारदेशमुखी वसूल करने का अधिकार होगा।

(४) चौथ के बदले में शाहू १५,००० व्यक्तियों की सेवा सम्राट की सहायता के लिए देगा।

(५) सारदेशमुखी के बदले में शाहू दक्षिण में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेगा।

(६) शाहू कोल्हसापुर राज्य का आदर करेगा।

(७) शाहू मुगल सम्राट को १०,००० रुपये वार्षिक कर के रूप में देगा।

(८) सम्राट शाहू की माता, अन्य सम्बन्धियों तथा उनके सेवकों को मुक्त कर देगा।

जब हुसैन अली ने दक्षिण से उत्तर की ओर प्रस्थान किया तो महरठों के १५,००० जवान बालाजी विश्वनाथ और खांडेराव धमादे के नेतृत्व में उसके साथ थे। सैयद भाई फरुखसियर को सिंहासन से उतारने में सफल हुए और नये सम्राट ने सन्धि की शर्तों को स्वीकार किया। **यह सन्धि बालाजी विश्वनाथ की महान्ता का परिचय देती है।** जब वह वापिस आया तो उसका भव्य स्वागत किया गया।

१२ अप्रैल सन् १७२० ई० को बालाजी विश्वनाथ का देहान्त हो गया और उसके स्थान पर उसका पुत्र बाजीराव पेशवा नियुक्त किया गया। जिसकी

अवस्था इस समय केवल १९ वर्ष की थी। बालाजी विश्वनाथ के सम्बन्ध में उसके कार्यों का मूल्यांकन करते हुए **सर रिचर्ड टैम्पल** ने कहा है कि "वह भावी उत्तराधिकारियों की अपेक्षा अधिक आदर्श ब्राह्मण था। उसका मस्तिष्क शान्त एवं क्रियाशील था। उसका प्रबन्ध कल्पनाशील तथा उत्साहवर्धक था। वह अपने चरित्रबल से नीचों को वश में कर सकता था। वह एक अच्छा कूटनीतिज्ञ और कुशल अर्थशास्त्री था। राजनीतिक कार्यकर्त्ता होने के कारण उसे अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उसको अनेक बार मौत की धमकी दी गई, किन्तु उसने अवसर आने पर उसका दृढ़तापूर्वक सामना किया। उसके भय तथा तर्क से मुगलों ने शाहू को मरहठों का छत्रपति स्वीकार कर लिया। वह अपनी सभी कूटनीतिज्ञ चालों में विजयी रहा। यद्यपि उसकी मृत्यु असमय में हो गई थी, किन्तु उसे इस बात का अभिमान था कि वह मुसलमान शासकों के खण्डहरों पर हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना कर सका था, और उस साम्राज्य में उसकी वंश-परम्परा का प्रधान मन्त्रित्व सुरक्षित हो गया था।"*

बाजीराव (१७२०-१७४०)

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के उपरान्त शाहू ने उसके पुत्र बाजीराव को सन् १७२० ई॰ में पेशवा के पद पर नियुक्त किया, यद्यपि उसकी नियुक्ति पर अन्य सरदारों द्वारा प्रबल विरोध किया गया। उस समय बाजीराव की अवस्था २० वर्ष की भी नहीं थी, किन्तु **उसकी योग्यता साहस तथा प्रतिभा से प्रभावित होकर ही शाहू ने उसको इतने अधिक महत्वपूर्ण पद पर आसीन किया।** उसने भी अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि वह अपने पद के लिए सर्वथा योग्य है। बाजीराव समय, परिस्थिति तथा वास्तविकता को खूब पहचानता था। वह मुगल साम्राज्य की गिरती हुई अवस्था से लाभ उठाकर मरहठा-सम्राज्य का विस्तार उत्तरी भारत की ओर करना चाहता था। कुछ सरदारों ने उसकी इस नीति का विरोध किया, किन्तु अकाट्य तर्कों के आधार पर वह छत्रपति शाहू की अनुमति प्राप्त करने में सफल हुआ।

बाजीराव की विजय

(१) मालवा पर अधिकार—बाजीराव ने शीघ्र ही अपना ध्यान नर्मदा नदी

---

* "He was more like a typical Brahman than any of his successors, He had a calm, combehensive and commanding intellect, an imaginative and aspiring disposition of sppetite for ruling rude nature by moral force a genious for diplomatic combination and a mastery of finance. His political destiny propelled him into affairs where in his misery must have been acute. More than once, he was threatened with death for which he doubtless prepared himself with all the stoicism of his race when a ransom opportunity arrived. He wrung by power menace and arguments from the Mughals, a recognition of Maratha sovereignty. He carried victoriously all his diplomatic points and sank into premature death with the consciousness that Hindu empire had been created over the ruins of Mohammadan power and that of his empire the hereditary chiefship had been secured fcr his family."—**Oriental Experience—pp. 369—90.**

के उत्तरी मुगल प्रदेशों पर अधिकार करने की ओर आकर्षित किया। उसने मालवा पर आक्रमण किया और वह सरलता से उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुआ। राजपूतों से उसने मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया जिसके परिणामस्वरुप उन्होंने मरहठों का तनिक भी विरोध नहीं किया। सन् १७२४ ई० में उसका मालवा पर अधिकार स्थापित हो गया। वह अपने सेनापतियों को मालवा छोड़कर पूना चला गया।

(ii) **गुजरात पर अधिकार**— इसके बाद उसका ध्यान गुजरात की ओर आकर्षित हुआ। उसने शीघ्र ही उस पर अधिकार किया और वहाँ की आय सेनापति खांड़ेराव दाभाडे के नाम कर दी। उसके सहायक गायकवाड़ ने बड़ौदा में राजवंश की स्थापना की और उसके भतीजे पिलाजी गायकवाड़ ने गुजरात पर अधिकार कर सूरत से पचास मील दूर सोनगढ़ नामक स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया।

(iii) **बाजीराव और निजाम**—निजाम की ओर से मरहठों को सदा भय रहता था और वास्तव में यह मरहठों के लिए सबसे बड़ी समस्या थी। सैयद भाई के पतन के उपरान्त उसका प्रभाव मुगल-साम्राज्य में बहुत बढ़ गया। उसने उस सन्धि को अस्वीकार किया जो १७१९ ई० में मरहठों और मुगल-सम्राट में हुई थी। बाजीराव ने शीघ्र ही युद्ध का निश्चय किया, किन्तु शाहू निजाम की शक्ति से भयभीत होकर शान्तिमय उपायों से इस समस्या का समाधान करना चाहता था। निजाम ने बहुत से मरहठा सरदारों तथा शम्भाजी में विरोध की भावना जागृत कर दी, और वह उसको सदा भड़काता रहता था कि वह समस्त महाराष्ट्र को अपने अधिकार में करने की चेष्टा करे। शाहू विभिन्न समयों पर तीन बार निजाम से मिला, किन्तु इसका कोई खास परिणाम नहीं निकला। जब निजाम उत्तर की राजनीति से ऊब कर दक्षिण की ओर आया तो उसके प्रतिनिधि ने उसका विरोध किया, किन्तु वह विजयी हुआ और निजाम के हाथ में दक्षिण की सूबेदारी आ गई।

(iv) **बाजीराव का कर्नाटक पर आक्रमण**—बाजीराव ने निजाम से मिल कर कर्नाटक पर आक्रमण करने की बात तय की। सन् १७२५ और १७२६ ई० के मध्य बाजीराव ने दो बार कर्नाटक पर आक्रमण किया, निजाम ने उसकी सहायता नहीं की वरन् इसके विपरीत उसने स्वयं अपनी सेना को कर्नाटक विजय के लिए भेजा। इस समय जब बाजीराव कर्नाटक में था तो निजाम ने महाराष्ट्र की राजनीति में कुचक्र चलाया और बहुत-से मरहठा सरदारों के साथ शम्भाजी को अपनी ओर मिलाया। शाहू डर गया और उसने इस समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से निजाम से वार्तालाप चलाई। सन्धि ही होने वाली थी कि बाजीराव अपने सैन्य बल के साथ महाराष्ट्र में आ गया। निजाम ने पुनः सन्धि वार्ता स्थगित कर दी।

पालखेद का युद्ध—शाहू भी निजाम से सचेत हो गया और उसने बाजीराव को निजाम के विरुद्ध अभियान करने की अनुमति प्रदान की। पेशवा बाजीराव ने युद्ध की तैयारियाँ कर पालखेद नामक स्थान पर निजाम को उसकी सेना सहित घेर लिया। निजाम ने बाध्य होकर सन्धि करने का प्रस्ताव किया। यह सन्धि मुंगेश

गाँव की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है जो ६ मार्च १७२८ ई० में शाहू और निजाम के मध्य हुई ।

मुंगेश गांव की सन्धि—इस सन्धि ने अनुसार निम्न शर्तें निश्चित हुईं—

(१) निजाम को चौथ तथा सारदेशमुखी का शेष धन शाहू को देना पड़ा ।

(२) उसको उन समस्त व्यक्तियों को रखना पड़ा जो मरहठों ने कर वसूल करने के लिए नियुक्त किए ।

(३) निजाम ने शाहू को सम्पूर्ण महाराष्ट्र का स्वामी माना ।

(४) निजाम ने शम्भाजी को पनहाला भेजना स्वीकार किया ।

मुंगेश गांव की सन्धि का परिणाम—मरहठों के इतिहास में इस सन्धि का बड़ा महत्व है, क्योंकि **इस सन्धि के अनुसार निजाम ने १७१९ ई० की सन्धि में दिए गए मरहठों के अधिकार को नियमपूर्वक स्वीकार कर लिया । इसके अतिरिक्त यह भी लाभ हुआ कि निजाम ने शम्भा जी की सुरक्षा न करने की प्रतिज्ञा की, जिसके कारण शाहू के प्रतिद्वन्द्वी की शक्ति क्षीण हो गई ।** इस सन्धि के कारण बाजीराव की प्रतिष्ठा में वहुत विस्तार हुआ ।

निजाम इस सधि को अपमानजनक समझता था । उसने मरहठों के विरुद्ध पुनः षड्यन्त्र रचे, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई । उसने बाजीराव को युद्ध में ही परास्त करने का निश्चय किया, किन्तु स्वयं पराजित हुआ । उसने वाजीराव से सन्धि की, जिसमें निश्चय हुआ कि निजाम चौथ और सारदेशमुखी मरहठों को देगा और मरहठे उसके राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे ।

(v) **मालवा पर पुनः अभियान**—बाजीराब ने पुनः मालवा पर आक्रमण किया । इस समय मुगलों की ओर से राजा गिरधरसिंह मालवा में सूबेदारी के पद पर नियुक्त था । वह बड़ा योग्य अधिकारी था । मरहठों ने मालवा पर आक्रमण किया । अमेझरा के भीषण युद्ध में वह और उसका चचेरा भाई दयाबहादुर मारे गये । मालवा पर मरहठों ने सन् १७२८ ई० में पूर्ण अधिकार किया ।

(vi) **बुन्देलखण्ड पर आक्रमण**—मालवा से निवृत्त होकर बाजीराव ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने का निश्चय किया । इसी समय बुन्देला सरदार छत्रसाल ने बाजीराव को आक्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया । वाजीराव स्वयं मरहठा सेना लेकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा । उसने बुन्देलखण्ड को मुगलों से मुक्त किया । **इस कार्य से प्रसन्न होकर छत्रसाल ने बाजीराव को अपने दो पुत्र भेंटस्वरूप दिए और अपने राज्य का एक बड़ा भाग भी दिया ।** इससे मरहठे दोआब और आगरे के सम्पर्क में आ गये ।

(vii) **दाभाड़ों का पतन**—बाजीराव ने १७३१ ई० में गुजरात के सूबेदार मारवाड़ के राजा अभयसिंह के साथ सन्धि की । इस बीच शाहू के सेनापति त्रिम्बकराव दाभाड़े और पेशवा बाजीराव में संघर्ष आरम्भ हो गया । बाजीराव की यह धारणा थी कि दाभाड़े निजाम से मिला हुआ है, और वह उसका बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी

भी है। दोनों में दभाई नामक स्थान पर संघर्ष हुआ जिसमें पेशवा विजयी हुआ और त्र्यम्बकराव का वध कर दिया गया। अब पेशवा का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा।

(viii) **दिल्ली पर आक्रमण**—सन् १७३७ ई० में बाजीराव ने यमुना नदी पार कर उत्तरी भारत पर आक्रमण करने की योजना का निर्माण किया। उसके सरदारों ने दोआब के विभिन्न भागों पर आक्रमण किया और उसने बड़ी तेजी से दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों को लूटा और दिल्ली पर आक्रमण किया। शीघ्र ही वह मुगल सेना को परास्त करता हुआ ग्वालियर वापिस आया।

(ix) **निजाम और पेशवा का पुनः युद्ध**—मुगल-सम्राट मरहठों के दिल्ली अभियान से बहुत भयभीत हुआ। उसने शीघ्र ही निजाम को बुलाया कि केवल वह ही मरहठों से मुगल-साम्राज्य की रक्षा कर सकता है। निजाम मुगल-सम्राट का आमन्त्रण पाकर शीघ्र ही दिल्ली पहुँचा। मरहठों का दमन करने के लिए निजाम ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। **बाजीराव ने उसकी सेना को भोपाल के स्थान पर घेर लिया।** निजाम ने बाध्य होकर १७ जनवरी सन् १७३८ ई० को **दुराह सराय की सन्धि की।** इस सन्धि के अनुसार—(i) मरहठों का मालवा पर अधिकार हो गया, (ii) नर्मदा और चम्बल नदी के मध्य के प्रदेश मरहठों के अधिकार में आ गए और उसने वचन दिया कि (iii) वह इस सन्धि का अनुमोदन सम्राट से भी करवा देगा। इस सन्धि का महत्व बहुत अधिक है। इसके द्वारा मरहठों की धाक भारत में जम गई।

(x) **कोंकण**—बाजीराव का ध्यान कोंकण की ओर आकर्षित हुआ। यह प्रदेश पश्चिमी घाट की पहाड़ियों और समुद्र के मध्य का उपजाऊ प्रदेश है। यहां तीन शक्तियाँ आग्रे, पुर्तगाली तथा सिद्दी थीं। इनमें पारस्परिक संघर्ष था। पुर्तगाली मरहठों के विरोधी थे और पुर्तगाली सूबेदार ने पेशवा का अपमान किया। बाजीराव ने अपमान का बदला लेने के अभिप्राय से अपने भाई चिमन जी को भेजा। उसने **शीघ्र ही सन् १७३७ ई० में थाना पर अधिकार किया। सालसट पर भी मरहठों का** अधिकार हो गया, **किन्तु मरहठे बेसीन को अपने अधिकार में नहीं कर सके।** अन्त में **सुरंग लगाई गई जिससे भयभीत होकर पुर्तगालियों ने आत्म समर्पण किया।** इसके पश्चात् उसने जंजीरा के सिद्दियों की शक्ति का अन्त किया और आग्रे परिवार के झगड़े का निबटारा किया। इस प्रकार कोंकण पर मरहठों का अधिकार हो गया।

बाजीराव की मृत्यु और उसका मूल्यांकन—अप्रैल सन् १७४० ई० में इस महान् पेशवा की अल्प आयु में मृत्यु हो गई। बाजीराव एक **उच्चकोटि का** सेनानायक **था।** उनमें योजनाओं के बनाने की अपूर्व योग्यता थी और उसको कार्यरूप से परिणित करने की पूर्ण क्षमता थी। उसकी योग्यता के आधार पर मरहठों की धाक समस्त भारत में फैल गई। उसने निजाम जैसे योग्य मुगलों के स्तम्भ को युद्ध में परास्त किया, दिल्ली पर अभियान किया और अधिकांश प्रदेशों को रौंद डाला। उसने उत्तरी भारत की ओर मरहठों का ध्यान आकर्षित किया, जिससे मुगलों का पतन होना आरम्भ हो गया। **सर रिचर्ड टेम्पुल के शब्दों में,** "बाजीराव सबसे अच्छा घुड़सवार था। काम करने में सबसे आगे रहता था और आवश्यकता पड़ने पर कठिनाइयों का

सामना करने के लिए आग में कूद पड़ने के लिए तैयार रहता था। वह सब प्रकार के कष्टों को सहन कर सकता था और उसे इस बात का गौरव था कि वह अपने सैनिकों के समान ही कष्ट-सहिष्णु है और उनके समान ही उनके रूखे-सूखे भोजन से सन्तुष्ट हो सकता है।" परन्तु बाजीराव में कुछ दुर्गुण भी विद्यमान थे। **वह उग्र प्रकृति का था और उसमें पर्याप्त गर्व विद्यमान था।** उसने युद्ध में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त किया, किन्तु वह उनको अपनी ओर आकर्षित करने में सफल नहीं हो सका। **उसने सामन्तशाही पद्धति को प्रोत्साहन दिया** और उसने अपने सेनापतियों तथा सरदारों को अपने प्रभाव-क्षेत्र को विस्तृत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया। जब तक पेशवा शक्तिशाली रहे सरदार उनके आधीन कार्य करते रहे, किन्तु उनके दुर्बल होते ही उन्होंने अपने प्रदेशों में स्वेच्छा से शासन करना आरम्भ कर दिया और इस कारण मरहठा-संघ का शासन शिथिल हो गया। **डा० डिंगे** के अनुसार, "उनकी समस्त सफलताओं के होने पर भी उसमें रचनात्मक प्रतिभा का अभाव था और शिवाजी की कोटि में स्थान नहीं दिया जा सकता। उसने राज्य की राजनीतिक संस्थाओं में कोई परिवर्तन अथवा सुधार नहीं किया जिससे जनता को लाभ हो सके।" किन्तु इतना अवश्य मानना होगा कि उसने मरहठा-साम्राज्य की उन्नति की भरपूर चेष्टा की और अपने कार्यों में सफलता प्राप्त की। अतः उसको मरहठा-साम्राज्य का द्वितीय संस्थापक कहा जा सकता है।

बालाजी बाजीराव (१७४०–६१)

बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त शाहू ने उसके ज्येष्ठ पुत्र बालाजी को पेशवा नियुक्त किया। यद्यपि उसकी नियुक्ति पर कुछ सरदारों की ओर से पर्याप्त विरोध किया गया था, किन्तु शाहू ने उन सबकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अतः ४ जुलाई सन् १७४० ई० को वह पेशवा पद पर आसीन हुआ। वह नाना साहब तथा बालाजी बाजीराव के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय उसकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। यद्यपि उसमें अपने पिता बाजीराव के समान योग्यता और प्रतिभा नहीं थी, किन्तु उसने अपने पिता के निरीक्षण तथा संरक्षिता में सैन्य-संचालन तथा कूटनीति की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली थी।

पेशवा और मालवा—बालाजी ने मालवा को अपने अधिकार में करने के लिए एक योजना का निर्माण किया। जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि निजाम ने बाजीराव को मालवा देने की प्रतिज्ञा की थी। बालाजी अपने चाचा चिमनाजी के साथ मालवा गया, किन्तु उसका चाचा स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण पूना वापिस आ गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। पेशवा बालाजी मई १७४१ ई० में धौलपुर पहुँचा और राजा जयसिंह के साथ एक समझौता किया और निम्न बातें तय हुईं—

(१) पेशवा और जयसिंह एक दूसरे के मित्र रहेंगे और एक दूसरे की सहायता करने को सदा उद्यत होंगे।

(२) मरहठे मुगलों के प्रति स्वामी भक्त रहेंगे।

(३) मालवा की सूबेदारी छः माह के अन्तर्गत पेशवा को मिल जाएगी।

इस समझौते के होने के उपरान्त पेशवा पूना चला गया। राजा जयसिंह के प्रयत्नों से मुगल-सम्राट के एक फरमान द्वारा पेशवा को मालवा का नायब सूबेदार घोषित किया गया और उस प्रदेश पर मुगलों का न्यायाकूल अधिकार स्थापित हो गया।

कर्नाटक विजय—बाजीराव के समय में ही रघुजी कर्नाटक की विजय के कार्य में संलग्न था। रघुजी ने कर्नाटक के नवाब दोस्तअली को परास्त किया और उसके पुत्र सफदरअली को सन्धि करने पर बाध्य किया। सन् १७४१ ई० में उसने दोस्तअली के दामाद चाँदा साहेब को परास्त कर बन्दी बनाकर सतारा भेज दिया। इसके उपरान्त उसका ध्यान पाण्डेचेरी की ओर आकर्षित हुआ जो फ्रांसीसियों के अधिकार में था, किन्तु कुछ विशेष कारणों से उसने अपना विचार स्थगित कर दिया और वह पूना लौट आया।

पेशवा और रघुजी—रघुजी शाहू का निकटवर्ती सम्बन्धी था। वह शिवाजी प्रथम का धात्री भाई व्यकोजी **का वंशज था।** उसकी इच्छा यह थी कि पेशवा अधिक शक्तिशाली न हो, क्योंकि ऐसा होने पर छत्रपति के समस्त अधिकारों पर उसका नियन्त्रण हो जाएगा। इसी कारण वह बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त अपने पक्ष का पेशवा बनाना चाहता था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस कारण वह बालाजी से वैमनस्य रखता था। पेशवा ने उसको बंगाल आदि प्रदेशों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। रघुजी ने बंगाल पर आक्रमण किया। वहाँ के सूबेदार अलीवर्दी खाँ को बाध्य होकर सन्धि करनी पड़ी और वह चौथ देने को तैयार हो गया। कुछ समय उपरान्त उसका संघर्ष पेशवा से हुआ, जिसमें पेशवा विजयी हुआ। अन्त में शाहू के हस्तक्षेप के कारण दोनों में फिर मेल हो गया और दोनों की अधिकार सीमाएँ निश्चित हो गईं।

पेशवा और राजपूत—सन् १७४३ ई० में आमेर के राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई। उसके पुत्र ईश्वरीसिंह तथा माधवसिंह थे। जयसिंह की मृत्यु के उपरान्त राज्य पर अधिकार रखने के लिए दोनों पुत्रों में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। उदयपुर के राणा जगतसिंह ने माधवसिंह का पक्ष लिया और ईश्वरसिंह ने रानोजी सिंधिया तथा मल्लाराव होल्कर की सहायता प्राप्त की। ईश्वरसिंह ने अपने समर्थकों की सहायता से माधवसिंह को सन् १७४५ ई० में परास्त किया, किन्तु कुछ समय उपरान्त रानोजी सिंधिया की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र जयप्पा और मल्लाराव होल्कर में रुपए के वितरण के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। अब माधवसिंह ने होल्कर को धन का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार मरहठा सरदारों में युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। इसी समय पेशवा ने युद्ध को टालने के अभिप्राय से हस्तक्षेप किया और समझौता करवाने में सफल हुआ, किन्तु पेशवा के लौटते ही स्थिति पुनः भयंकर हो गई, क्योंकि ईश्वरसिंह ने समझौते की शर्तों को ठुकरा दिया। अब होल्कर ने माधवसिंह का पक्ष लिया और उसको समझौते को मानने के लिए बाध्य किया। सन् १७५० ई० में पेशवा ने सिंधिया और होल्कर को ईश्वरसिंह से

चौथ वसूल करने का आदेश दिया, किन्तु इस समय उसकी आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी और वह रुपया देने में असमर्थ था। मरहठों ने जयपुर पर आक्रमण किया। उनके इस व्यवहार से ईश्वरसिंह इतना दुखी हुआ कि उसने आत्य-हत्या कर ली। इसके उपरान्त माधवसिंह राज्यसिंहान पर आसीन हुआ, किन्तु वह भी मरहठों के व्यवहार से असन्तुष्ट हो गया। उसने उनसे बदला लेने का निश्चिय किया। उसने बहुत-से मरहठों का वध कर डाला जिससे मरहठे उसके शत्रु हो गए। संयोग से इस समय होल्कर और सिंधियाँ दोनों वहाँ पर नहीं थे।

पेशवा और निजाम—सन् १७४८ ई० में निजाम-उल-मुल्क की मृत्यु हो गई और सन् १७४९ ई० में शाहू की भी मृत्यु हो गई। इस घटना से पेशवा का शासन पर पूरा अधिकार हो गया। निजाम की मृत्यु होने पर उनके पुत्रों में राज्य-प्राप्ति के लिए संघर्ष होना आरम्भ हो गया। पेशवा ने निजाम के छोटे पुत्र सलावत जंग के विरुद्ध बड़े भाई गाजीउद्दीन खाँ का पक्ष लिया। सलावत जंग ने फ्रांसीसियों की सहायता प्राप्त कर पेशवा की सेना को कई स्थानों पर परास्त किया। इसी समय निजाम की सेना में विद्रोह हो गया और वह सेना शीघ्र बुला ली गई। गाजीउद्दीन खाँ की मृत्यु पर युद्ध का अन्त हो गया। सलावत जंग ने पेशवा से तग आकर उससे एक सन्धि की जिससे पेशवा को २ लाख रु. वार्षिक आय के प्रदेश प्राप्त हुए। उनको कर्नाटक तथा हैदराबाद से चौथ वसूल करने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। इनके बदले में पेशवा ने उसकी सहायता करने का वचन दिया, किन्तु कुछ समय के उपरान्त दोनों में पुनः कटुता उत्पन्न हो गई। निजाम ने पेशवा पर सन् १७५८ ई० में आक्रमण किया, किन्तु परास्त हुआ। निजाम की शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होने लगी। सन् १७५९ ई० में सदाशिव राव भाऊ ने अहमदनगर के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। सन् १७६० ई० में मरहठों ने निजाम की सेना को उदगीर नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। निजाम को बाध्य होकर मरहठों से सन्धि करनी पड़ी। **निजाम ने मरहठों को बीजापुर और बीदर का आधा भाग तथा औरंगाबाद के कुछ प्रदेश दिए तथा दौलदाबाद, असीरगढ़, बीजापुर, अहमदनगर और बुहारनपुर के दुर्ग भी मरहठों को प्राप्त हुए।** इस प्रकार दक्षिण भारत में मरहठों की धाक जम गई और निजाम की शक्ति क्षीण हो गई। सदासिव राव भाऊ की कीर्ति बहुत बढ़ गई।

मरहठों का उत्तर की ओर प्रसार—जिस समय मरहठे दक्षिण में व्यस्त थे उस समय उत्तरी भारत की अवस्था बड़ी शोचनीय हो रही थी। अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए थे। मरहठे भी चम्बल नदी तक आक्रमण कर रहे थे। सन् १७५२ ई० में मरहठों और मुगलों में एक सन्धि हुई जिससे मुगल-सम्राट मरहठों को ५० लाख रुपया देगा तथा मरहठे उसकी उसके शत्रु से रक्षा करेंगे। किन्तु सम्राट ने उसको स्वीकार नहीं किया। रघुनाथ राव के नेतृत्व में सन् १७५४-५६ ई० में मरहठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। सन् १७५७-५८ ई० में उन्होंने दूसरा आक्रमण किया तथा दिल्ली पर भी आक्रमण किया। उन्होंने नजीब-उद-दौला को परास्त कर सन्धि करने के लिए बाध्य किया।

रघुनाथ राव अपने मित्र इमाउदल-मुल्क को वजीर बनाकर वापिस आ गया। इसके बाद उसने मल्लारराव होल्कर के साथ पंजाब पर आक्रमण किया। इस समय पंजाब पर अहमदशाह अब्दाली का अधिकार था और उसका पुत्र विमूरशाह वहाँ शासन कर रहा था। मरहठों का सामना विमूरशाह न कर सका और मरहठों ने शीघ्र ही सरहिन्द और लाहौर पर अपना अधिकार स्थापित किया। रघुनाथ राव मई सन् १७५८ ई० में पूना चला गया। उसके पंजाब छोड़ने के उपरान्त अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर आक्रमण कर मरहठों को परास्त किया तथा मरहठों की शक्ति का अन्त करने के अभिप्राय से एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण किया जिसमें जाट और राजपूत भी सम्मिलित थे। अब्दाली ने सन् १७५९ ई० में दत्ता जी सिंधिया को परास्त किया और दिल्ली पर पुनः अपना अधिकार स्थापित किया।

जब मरहठों को दत्ता जी के वध का समाचार विदित हुआ तो पेशवा ने अपने चचेरे भाई **सदाशिवराव भाऊ** को एक सुसज्जित विशाल सेना के साथ अहमदशाह अब्दाली का सामना करने के लिए भेजा। आगरे के समीप मल्लारराव होल्कर जनकोजी भाऊ से मिले और इसके पश्चात् मरहठों ने भरतपुर के जाट राजा सूरजमल से अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध सहायता माँगी। वह शीघ्र ही तैयार हो गया। अब मरहठे दिल्ली पर अधिकार करने के लिए चल पड़े। २ अगस्त सन् १७६० ई० में मरहठों ने बड़ी सरलता से दिल्ली पर अधिकार किया।

अब मरहठों ने अन्य देशी राजाओं से अब्दाली के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी समय युद्ध की नीति के सम्बन्ध में सूरजमल जाट और मरहठों में बाद-विवाद हो गया। सूरजमल अपनी सेना लेकर भरतपुर चला गया। इससे मरहठों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। कई महीने तक भाऊजी दिल्ली में रहा। वह वहाँ भोजन की कमी का अनुभव करने लगा और उधर अब्दाली को भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। समझौते की कुछ बातचीत आरम्भ हुई, किन्तु नजीउद्दौला के कठिन रुख के कारण समझौता नहीं हो सका। दोनों सेनाओं में कई प्रारम्भिक युद्ध हुए, किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला।

पानीपत का युद्ध—भाऊ को अन्न संकट बड़ा परेशान कर रहा था। अतः उसने अब्दाली से युद्ध करने का निश्चय किया और वह प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र पानीपत में अपनी सेना को लेकर आ डटा। उसने युद्ध का संचालन किया और आक्रमण करना आरम्भ किया। १४ जनवरी सन् १७६१ ई० को यह युद्ध हुआ। अब्दाली की सेना में ६० हजार सैनिक थे और भाऊ की सेना में ४५ हजार सैनिक थे। मरहठों ने ६ बजे शत्रु पर आक्रमण किया। कई घण्टों तक बड़ा घमासान युद्ध होता रहा। लगभग २ बजे पेशवा का सबसे बड़ा पुत्र विश्वासराव मारा गया। भाऊ को जब यह समाचार मिला तो वह पागल के समान शत्रु की सेना में घुसकर युद्ध करने लगा, किन्तु वह भी वीरगति को प्राप्त हुआ। इन दो महान् व्यक्तियों की मृत्यु हो जाने के कारण मरहठों को बड़ा आघात पहुँचा और उचित नेतृत्व के न होने के कारण सेना

में भगदड़ मच गई । मरहठों की भगोड़ी सेना का अफगानों ने पीछा किया । उन्होंने उनके शिविर को लूट लिया और इस प्रकार पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में मरहठों की भीषण पराजय हुई और अब्दाली विजयी हुआ । ऐसा कहा जाता है कि "**पानीपत के युद्ध ने मरहठों की रीढ़ तोड़ दी । महाराष्ट्र में ऐसा कोई घर नहीं बचा था जिसका** कोई लाल इस युद्ध **में काम न आया हो ।**" वास्तव में मरहठों की एक समस्त पीढ़ी का इस युद्ध में अन्त हो गया ।

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम—पानीपत का यह तृतीय युद्ध भारत के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है । इसके परिणाम के सम्बन्ध में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं । महाराष्ट्र के सभी आधुनिक लेखक इस विषय में एक मत हैं कि मरहठों को केवल ४५००० व्यक्तियों की हानि उठानी पड़ी, किन्तु इससे उनके लक्ष्य को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई । इतिहासकार **सरदेसाई** लिखते हैं कि "इस युद्ध-क्षेत्र में मरहठा जन-शक्ति का महाविनाश अवश्य हुआ, किन्तु यह विनाश उनकी शक्ति का अन्तिम निर्णायक नहीं था । वास्तव में इस युद्ध ने लम्बे अर्से के बाद महान् जाति के प्रसिद्ध पुरुष नाना फड़नवीस और महादजी सिंधिया को चमका दिया था जो कि इस प्रलयकारी दिन बड़ी आश्चर्यजनक रीति से बचकर निकल गए थे और उन्होंने मरहठों के पूर्व गौरव को फिर से जीवित कर दिया था । पानीपत के इस युद्ध में हुआ मरहठों का विनाश दैवी प्रकोप के समान था । इसने मरहठों की जीवन-शक्ति को नष्ट कर दिया, किन्तु इससे उनके राजनैतिक जीवन का अन्त नहीं हो पाया । यह मान लेना कि पानीपत के विनाश ने मरहठों की सार्वभौमिकता के प्रिय स्वपन को सदा के लिए नष्ट कर दिया था, परिस्थिति को ठीक-ठीक न समझना है, जैसा कि तत्कालीन लेखों से ज्ञात होता है ।" महान् इतिहासकार **सरयदुनाथ सरकार** का इस विषय में मत भिन्न है । वे कहते कि "इतिहास के पक्षपात रहित अध्ययन से ज्ञात होगा कि मरहठों का यह जोरदार दावा कितना निर्मूल है । इसमें सन्देह नहीं कि मरहठा सेना ने निर्वासित मुगल-सम्राट को १७७२ ई० में अपने पूर्वजों के सिंहासन पर फिर से आसीन किया था, किन्तु वे उस समय न तो राज्य-निर्माता हुए और न मुगल-साम्राज्य के वास्तविक शासक ही, वरन् उनकी स्थिति तो नाम-मात्र के मन्त्रियों तथा सेनापतियों जैसी ही

पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम

(१) मरहठों की अपार जन-क्षति ।
(२) पेशवा के प्रभुत्व का अन्त ।
(३) उत्तरी भारत से मरहठों के प्रभाव का अन्त ।
(४) पराजय का नैतिक प्रभाव ।
(५) अंग्रेजों का उत्कर्ष ।
(६) मुसलमानों की शक्ति का पतन ।
(७) नैतिक परिणाम ।

---

* "It was, in short, a nation wide-disaster like Flodden Field; there was not a home in Maharashtra that had not to mourn the loss of a member, and several hourses lost their heads." —Sjr J. N Sarkar.

थी। इस प्रकार का गौरवपूर्ण पद तो केवल सन् १७८० ई० में महादजी सिंधिया और सन् १८०३ ई० में अंग्रेज प्राप्त कर पाए थे।"[1] दूसरा मत युक्तियुक्त और सत्य है। इस युद्ध में पराजित होने से मरहठों की बड़ी हानि हुई। युद्ध के परिणाम निम्नलिखित हुए—

(१) **मरहठों की अपार जन-क्षति**—मरहठों की इस युद्ध में बहुत अधिक जन-क्षति हुई जो लगभग ४५००० के आंकी जाती है। एक लाख से अधिक व्यक्तियों में से केवल कुछ हजार ही महाराष्ट्र वापिस पहुँच सके। वास्तव में इस युद्ध के कारण मरहठों की एक पीढ़ी का अन्त हो गया।

(२) **पेशवा के प्रभुत्व का अन्त**—इस युद्ध के कारण पेशवा के प्रभुत्व का अन्त हो गया, जिससे मरहठों की एकता विलीन हो गई। मरहठों में संघर्ष और कलह तीव्रगति से होने लगे, जिससे महाराष्ट्र-संघ को बड़ा आवात पहुँचा। प्रसिद्ध सरदारों ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किए और पेशवा को उन्हें अपने नियन्त्रण में रखने का घोर प्रयत्न करना पड़ा। इस कारण पेशवा की शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होने लगी, और कुछ समय उपरान्त वह इन सरदारों के हाथ में कठपुतली के समान खेलने लगा।

(३) **उत्तरी भारत से मरहठों के प्रभाव का अन्त**—मरहठों के अधिकार से पंजाब, दोआब आदि प्रदेश निकल गए। इन पर कभी मरहठों का अधिकार हो जाता था तो कभी मुसलमानों का।

(४) **पराजय का नैतिक प्रभाव**—अब तक मरहठा सेना अजेय समझी जाती थी, किन्तु इस पराजय के कारण उनके मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। उनकी मित्रता का कोई मूल्य नहीं रह गया।

(५) **अंग्रेजों का उत्कर्ष**—मरहठों की पराजय से अंग्रेजों के उत्कर्ष का मार्ग खुल गया। अब भारत में कोई भी ऐसी शक्ति नहीं रही जो उनके बढ़ते हुए साम्राज्य की गति को रोकने में सफल हो सकती थी। इसके उपरान्त भारत में अंग्रेजी शक्ति का विस्तार होना आरम्भ हो गया।[2]

(६) **मुसलमानों की शक्ति का पतन**—इस युद्ध के कारण मुसलमानों की शक्ति का भी पतन होना आरम्भ हो गया और उनमें इतनी सामर्थ्य तथा शक्ति न रही कि वे अंग्रेजों का सामना करने में सफल होते।

---

[1] "A dispassionate survey of Indian history will show how unfounded this (Maratha) chauvinstic claim is. A Maratha army did, no doubt, restore the exiled Mughal emperor of the capital of his fathers in 1772, but they came then not as king makers, not the dominators of the Mughal 'Empire and the real master of his nominal ministers and generals. That proud position was secured by Madadji Sindhia only in 1789 and by the British in 1803."

—Sir, J. N. Sarkar : Fall of Mughal Empire. Vol. II. p. 260.

[2] "If Plassey had sown the seeds of British supremacy in India Panipat afforded time for their maturing and stricking roots. When the Marathas again tried to check the supremacy of the English in India the latter had been able to effect an immense improvement in their position."

—Quoted from 'An Advanced History of India', p. 553.

(७) **नैतिक परिणाम**— इस पराजय का नैतिक परिणाम भी हुआ। भारतीय नरेशों को ज्ञात हो गया कि वास्तविक संकट के अवसर पर मरहठों की दोस्ती विशेष लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकती। उनकी किसी भी समय पराजय सम्भव है।

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु और उसका मूल्यांकन—लगभग दो महीने तक बालाजी विश्वनाथ को पानीपत से कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ, जिससे उसको चिन्ता होने लगी। वह अपनी सेना को लेकर उत्तर की ओर अग्रसर हुआ, किन्तु इस समय उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। जब वह २४ जनवरी को भेलसा पहुँचा तो उसको मरहठों की पराजय का विस्तारपूर्वक ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसको सुनकर उसका हृदय बड़ा दुखी हुआ। वहाँ से वह और आगे को बढ़ा और जब उसको समस्त समाचार प्राप्त हुए तो उसका हृदय बड़ा चीत्कार कर उठा। वह इस दुःख को सहन नहीं कर सका। वह पूना वापिस आ गया जहाँ उसकी २३ जून १७६१ ई० में मृत्यु हो गई।

बालाजी विश्वनाथ की गणना **महान् शासकों में की जाती है।** इसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप मरहठों ने न केवल दक्षिण भारत में वरन् पंजाब से बंगाल तक अपनी धाक जमा दी। उसकी सेना अजय मानी जाती थी। **उसने मरहठा-शासन को सुदृढ़ करने की ओर भी ध्यान दिया।** उसने निजाम की शक्ति और मुगल-साम्राज्य का अन्त कर डाला। मुगल-सम्राट उसकी इच्छा पर आश्रित था, किन्तु वह अपने पिता बाजीराव के समान न **कूटनीतिज्ञ ही था और न अपने पितामह के समान कुशल सेनानायक ही।** उसमें इन गुणों का अभाव था। उसको **सैन्य संचालन के लिए अन्य सरदारों पर आश्रित रहना पड़ता था** जो वास्तव में उसमें एक बड़ी भारी कमी थी, यद्यपि उनको अपने भाई सदाशिव भाऊ जैसे योग्य सेनापति की सहायता प्राप्त थी। वह अपने **सरदारों तथा सेनापतियों को भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण में नहीं रख सका,** जिनके कारण मरहठों में एकता का अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। उसने **राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं के साथ उदारता का व्यवहार नहीं किया** जिसके कारण वे उसके विरोधी हो गए। उसने **छापामार नीति के स्थान पर खुले युद्ध का आरम्भ** किया, जिसका मरहठों को विशेष अनुभव प्राप्त नहीं हो पाया था। यदि मरहठे पानीपत के तृतीय युद्ध में इसी प्रणाली के अनुसार कार्य करते तो अवश्य विजयी होते। पेशवा में **विलासिता आमोद-प्रमोद की मात्रा अधिक थी।** वह अपना पर्याप्त समय नर्तकियों तथा आमोद-प्रमोद आदि में व्यतीत करता था, यद्यपि उसके काल में मरहठा साम्राज्य तथा उसके प्रभाव का पर्याप्त विस्तार हुआ, किन्तु उसके पतन के लिए भी वही उत्तरदायी था।

माधवराव प्रथम (१७६१–१७७२)

बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त उसका १६ वर्षीय पुत्र माधव राव पेशवा राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसकी अल्प आयु होने के कारण उसका चाचा रघुनाथ राव संरक्षक नियुक्त किया गया, किन्तु वह अपने पद का लाभ उठाकर शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में लेना चाहता था। माधवराव ने अपने कुछ समर्थकों द्वारा अपने आपको उससे मुक्त किया और स्वयं शासन-भार सम्भाला। वह बड़ा

योग्य तथा प्रनिभाशाली था। उसके शासन के अन्तर्गत मरहठों ने पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त की।

मरहठे और निजाम—पानीपत में मरहठों के पराजित होने के कारण निजाम ने मरहठों के विरुद्ध एक गुट का निर्माण किया। उसने बहुत-से मरहठा सरदारों को अपनी ओर मिला लिया और उसने अंग्रेजों की भी सहायता प्राप्त की। एक विशाल सेना के साथ उसने पूना की ओर प्रस्थान किया, किन्तु हिन्दू विरोधी नीति के कारण मरहठों ने उसका परित्याग किया। **मरहठों ने सन् १७६९ ई० में निजाम को बुरी तरह परास्त किया और उसको सन्धि करने पर बाध्य किया।** सन्धि की शर्तें रघुनाथ के कारण विशेष कठिन न थीं। इससे पेशवा को बड़ा क्षोभ हुआ। पेशवा को रघुनाथराव पर बड़ा क्रोध आया। रघुनाथ निजाम की शरण में चला गया, किन्तु बड़ी चालाकी से पेशवा ने फिर उनको अपनी ओर मिला लिया। मरहठों ने निजाम की सरकार पर आक्रमण किया। उसने निजाम से सहायता की प्रार्थना की। निजाम ने पुनः पूना की ओर प्रस्थान किया। पेशवा ने तुरन्त हैदराबाद पर आक्रमण किया। बाध्य होकर निजाम को वापिस जाना पड़ा। १० अगस्त को मरहठों ने निजाम को राक्षसभुवन नामक स्थान पर परास्त कर उसको सन्धि करने के लिए बाध्य किया। इन युद्धों ने निजाम की शक्ति कुचल डाली और मरहठों की शक्ति फिर उन्नत होनी आरम्भ हुई।

मरहठे और हैदरअली—हैदरअली ने मैसूर के राजा का अन्त कर स्वयं को मैसूर का शासक घोषित किया। सन् १७७२ ई० तक मरहठों ने चार बार हैदरअली को परास्त किया। हैदरअली ने मरहठों को तीन लाख रुपया नकद देने का वचन दिया, किन्तु जब उससे रुपया माँगा गया तो उसने रुपया देने से इन्कार कर दिया और मरहठों के विरुद्ध निजाम को सहायता प्रदान की। उसने कर्नाटक की ओर भी अपना विस्तार करना आरम्भ किया। निजाम से सन्धि होने के उपरान्त मरहठों ने हैदरअली की ओर ध्यान दिया, किन्तु कुछ विशेष कारणवश उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १७६४ ई० में मरहठों ने हैदरअली को परास्त किया और उसको विवश होकर सन्धि करनी पड़ी। सन् १७६७ ई० में पेशवा ने उस पर पुनः आक्रमण किया। इस बार भी वह पराजित हुआ और उसने मरहठों से सन्धि की, किन्तु सन्धि स्थायी न रह सकी और मरहठों को पुनः हैदरअली पर आक्रमण करने के लिए विवश होना पड़ा। माधवराव का स्वास्थ्य खराब होने के कारण वह वापिस चला आया। सन् १७७१ ई० में उसने पुनः कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया, किन्तु स्वास्थ्य के पुनः बिगड़ जाने के कारण वह फिर वापिस लौट आया। उसके सेनापति त्र्यम्बकराव पेठे ने हैदरअली को ५ मार्च १७७१ ई० को मोती तालाब के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया। इसके पश्चात् मरहठों ने श्री रंगपट्टम का घेरा डाला। अन्त में अप्रैल १७७२ ई० में सन्धि हो गई। इसके अनुसार हैदरअली ने मरहठों को १५ लाख रुपया नकद और ६ लाख रुपए के आभूषण दिए और १९ लाख रुपए तीन वार्षिक किश्तों में देने का वचन दिया। मरहठों ने कुछ दुर्गों पर भी अधिकार जमाए रखा।

उत्तर भारत में प्रभुत्व की स्थापना—दक्षिण से निश्चित होकर पेशवा माधव

राव ने उत्तर में खोए हुए प्रभुत्व की स्थापना करने की ओर ध्यान दिया। मल्लाराव ने जयपुर के राजा माधोसिंह और अवध के नवाब के विरुद्ध युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु सन् १७६६ ई० में मल्लाराव होल्कर की मृत्यु होने के कारण विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके उपरान्त रघुनाथ राव ने उत्तर की ओर प्रस्थान किया, किन्तु अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण का समाचार सुनकर वह दक्षिण की ओर चला गया। अब पेशवा ने महादजी सिंधिया और तुकोजी होल्कर को उत्तर भेजा, किन्तु आपसी वैमनस्य के कारण इनको विषेश सफलता प्राप्त नहीं हुई। महादजी सिंधिया ने जनवरी सन् १७७२ ई० में शाहआलम को दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन किया और उसने मरहठों को इलाहाबाद तथा कडा के जिले तथा ४० लाख रुपया दिया। इससे मरहठे अपने पूर्व प्रभुत्व की स्थापना उत्तरी भारत में करने में सफल हुए।

माधव राव की मृत्यु—माधव राव का स्वास्थ्य अधिक दिनों तक ठीक नहीं रह सका। ११ वर्ष पेशवा का कार्य बड़ी योग्यता तथा कुशलता से सम्पादन करने के उपरान्त १८ नवम्बर सन् १७७२ ई० में उसकी २७ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई।

पेशवा

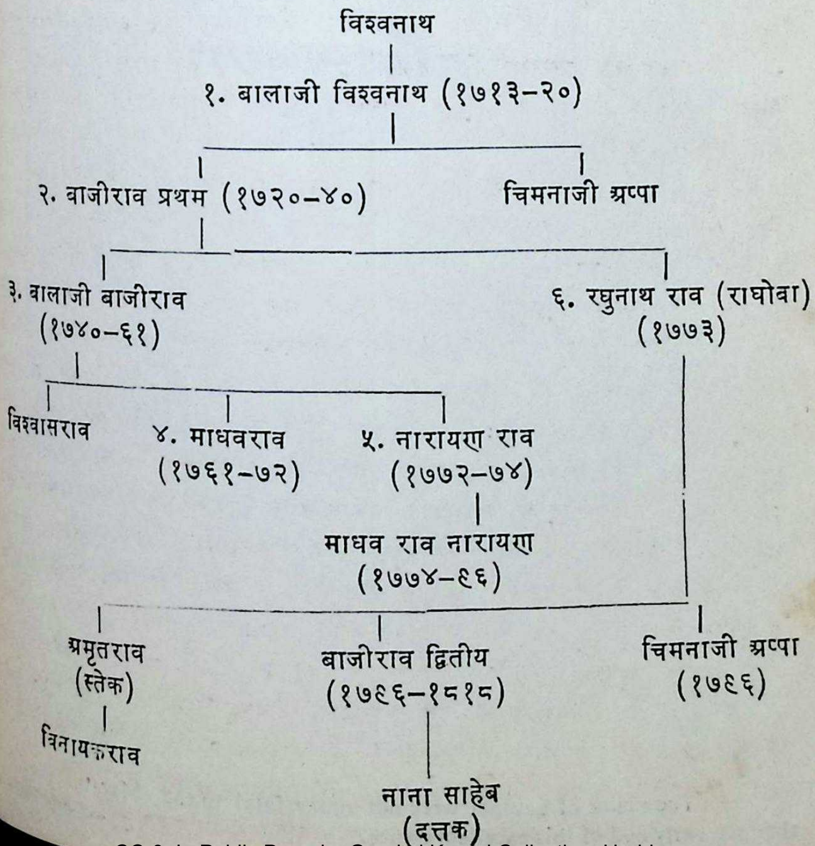
विश्वनाथ
१. बालाजी विश्वनाथ (१७१३–२०)
२. बाजीराव प्रथम (१७२०–४०)
चिमनाजी अप्पा
३. बालाजी बाजीराव (१७४०–६१)
६. रघुनाथ राव (राघोबा) (१७७३)
विश्वासराव
४. माधवराव (१७६१–७२)
५. नारायण राव (१७७२–७४)
माधव राव नारायण (१७७४–९६)
अमृतराव (स्तेक)
बाजीराव द्वितीय (१७९६–१८१८)
चिमनाजी अप्पा (१७९६)
विनायकराव
नाना साहेब (दत्तक)

उसकी मृत्यु से मरहठों को बड़ी क्षति हुई। **ग्राण्ट डफ** (Grand Duff) के अनुसार 'इसकी मृत्यु मरहठों के लिए पानीपत की पराजय से अधिक हानिकारक सिद्ध हुई।'* वह अपने अल्पकाल में मरहठों का प्रभुत्व पुनः स्थापित करने में सफल हुआ। यदि वह कुछ समय और जीवित रहता तो मरहठों की शक्ति बहुत प्रबल हो जाती और सम्भवतः भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) मरहठा-संघ राज्य के विकास में पहले तीन पेशवाओं की सेवाओं का दिग्दर्शन कीजिए।

(२) पानीपत के तृतीय युद्ध का वर्णन करो तथा इसके परिणाम का उल्लेख करो।

---

* "The plains of Panipat were not more fatal to the Maratha Empire than the early end of this excellent prince." —Grant Duff.

द्वितीय खण्ड

(१७०७–१८१८)

2.12.84.

1, भारत में यूरोपीय जातियों का आगमन

मध्यकालीन युग से निकलकर यूरोप की जातियों ने भौगोलिक खोजों द्वारा विभिन्न देशों का पता लगाना आरम्भ किया था। भारत का यूरोप के साथ व्यापार पर्याप्त समय से होता आ रहा था, और उसका बनाया हुआ माल यूरोप के समस्त बाजारों में बिकता था। यह व्यापार तीन मार्गों से होता था जो इस प्रकार हैं—(१) उत्तरी मार्ग ओक्सस से केस्पियन तथा काले सागर तक, (२) मध्य मार्ग सीरिया से होता हुआ भूमध्यसागर तक और (३) दक्षिण का सामुद्रिक मार्ग। **मध्य एशिया की उथल-पुथल तथा कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो जाने के कारण समस्त व्यापारिक मार्गों पर तुर्क लोगों का आधिपत्य हो गया जिसके कारण भारत के पूर्वी व्यापार की गति पर विशेष प्रतिबन्ध लग गया।** यूरोप के लोगों ने भारत के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से जल-मार्ग की खोज करनी आरम्भ की। २६ मई सन् १४९८ ई० को **वास्को-डि-गामा केप ऑफ गुड होप** होकर भारत आने में सफल हुआ और कालीकट के प्रसिद्ध बन्दरगाह पर पहुँचा। इससे पूर्व कि **वास्को-डि-गामा** के विषय में अधिक उल्लेख किया जाए इस बात पर प्रकाश डालना अधिक उचित प्रतीत होता है कि मुगलों की ओर से समुद्र-रक्षा की ओर कोई प्रयत्न नहीं किया गया था, जबकि विदेशी इस मार्ग द्वारा भी भारत में प्रवेश कर सकते थे। मुगलों ने केवल उत्तरी-पश्चिम सीमा को दृढ़ करने के लिए ही विशेष प्रयत्न किए। उत्तरकालीन मुगल शासकों के काल में उत्तरी-पश्चिमी सीमा भी अरक्षित हो गई थी और उधर से भी भारत पर आक्रमण होने आरम्भ हो गए थे। **मरहठों ने समुद्र की रक्षा करने की ओर कुछ प्रयत्न अवश्य किए थे।** भारत में सर्व प्रथम आने वाली यूरोप की पुर्तगाल जाति थी। नीचे की पंक्तियों में पुर्तगालियों के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जायगा—

पुर्तगाल जाति

जैसा उपरोक्त पंक्तियों में उल्लेख किया गया है कि वास्को-डि-गामा २७ मई १४९८ ई० को कालीकट पहुँचा। वहाँ के हिन्दू राजा **जमोरिन** ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहाँ से वह **कनानोर** गया। कनानोर के राजा ने उसके साथ मित्रता प्रदर्शित करते हुए एक सन्धि की। अपने जहाजों को भेंट तथा अन्य भारतीय सामानों से लादकर और कुछ समय भारत में रहने के उपरान्त वह सन् १४९९ ई० में पुर्तगाल वापिस चला गया। इसके उपरान्त पुर्तगाली व्यापारियों ने भारत के साथ व्यापार करना आरम्भ किया। ९ मार्च १५०० ई० को **पेड्रो अलवरेज केब्रल** ने पुर्तगाल से भारत-यात्रा आरम्भ की। वह अपने साथ १३ जहाजों का एक बेड़ा अपने व्यापार की सुरक्षा तथा पूर्वी सागर पर अधिकार करने के उद्देश्य से लाया।

कालीकट के राजा जमोरिन ने इस वेड़े का बड़ा भव्य स्वागत किया। इस समय समुद्री व्यापार पर अरब जाति का पूर्ण अधिकार था। अत: पुर्तगालियों का अरब वालों से संघर्ष होना अनिवार्य था; क्योंकि उन्होंने उनके व्यापार को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था और इधर पुर्तगालियों ने कालीकट के बन्दरगाह पर अपनी एक कोठी का निर्माण भी कर लिया था और उन्होंने कालीकट के बन्दरगाह में अरब के एक जहाज को लूट लिया, इसी कारण अरबों ने पुर्तगालियों की कोठी को नष्ट कर दिया। इस पर केब्रल ने अरब वालों के दस जहाजों को नष्ट कर दिया और वहाँ से प्रस्थान किया। स्पेन पहुँचकर पुर्तगालियों ने कोचीन के राजा को जमोरिन के विरुद्ध सहायता का आश्वासन देकर कुछ व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त कीं। वहाँ भी उन्होंने अपनी कोठी की स्थापना की। उनकी इस नीति के कारण जमोरिन पुर्तगालियों से अप्रसन्न हो गया। केब्रल के जाने पर डी नीवा भारत आया और उसने कालीकट में अरबवासियों के जहाजों को लूटा और अरब सागर पर आधिपत्य स्थापित करने की ओर प्रयत्न करने लगा। इसके उपरान्त वास्को-डि-गामा दूसरी बार १५०२ ई० में भारत आया। उसने मालाबार के तट के कुछ बन्दरगाहों पर अपनी कोठियों की स्थापना की।

अलमीडा—सन् १५०३ ई० में **एलफेन्जो एलबुकर्क** एक जहाजी वेड़े का कमाण्डर बनकर भारत आया। उसने अपने कार्य को वड़ी योग्यता से सम्पन्न किया और अरववासियों के व्यापार को बड़ा आघात पहुँचाया। इस समय तक पुर्तगाली भारत में कई कोठियों की स्थापना कर चुके थे। उनकी ओर से अलमीडा भारत आया और उसने पुर्तगाल के राजा से प्रार्थना की कि उस समय तक हमारी सफलता का कोई महत्व नहीं होगा जिस समय तक समुद्र पर हमारा पूर्ण नियन्त्रण व अधिकार स्थापित नहीं होता। राजा ने इस ओर ध्यान दिया और शीघ्र ही एलबुकर्क को एक विशाल वेड़े का सेनानायक बनाकर लाल सागर, अरब सागर तथा हिन्द महासागर को अपने नियन्त्रण में कर ने के अभिप्राय से भेजा। राजा ने उसको पुर्तगालियों के प्रतिद्वन्द्रियों को शीघ्रातिशीघ्र विनाश करने का आदेश भी दिया। वह अपने कार्य में पूर्ण सफल हुआ और जब वह भारत आया तो अलमीडा ने कार्य-भार उसको सौं दिया और वह पुर्तगालियों के गर्वनर के रूप में कार्य करने लगा। ५ मार्च १५०९ को उसने स्पेन के लिए प्रस्थान किया, परन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई।

एलबुकर्क—अलमीडा के उपरान्त एकबुकर्क पुर्तगाली बस्तियों का गवर्नर नियुक्त हुआ। वह साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था। उसका उद्देश्य भारत में पुर्तगाली साम्राज्य की स्थापना करना था। उसने अपने पद पर आसीन होते ही अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया। उसका उद्देश्य भारत में पुर्तगाली व्यापार की वृद्धि करना था, साथ ही वह भारत में राज्य की भी स्थापना करना चाहता था। (i) उसने शीघ्र ही १५१० ई० में गोआ पर अधिकार कर लिया और उसे पुर्तगाली भारत-साम्राज्य की राजधानी घोषित किया। (ii) उसने सन् १५११ ई० में मलन्द पर अधिकार किया। इससे पुर्तगालियों का

पश्चिमी हिन्द महासागर पर पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया। इससे अरब शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। उसने उन प्रदेशों में उचित शासन-व्यवस्था की स्थापना की, जिससे उसको जनता का सहयोग तथा समर्थन भी प्राप्त हुआ, किन्तु उसकी धार्मिक नीति में उदारता का तनिक भी अंश न था। वह बलात् लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षा दिलवाता था। उसकी इस नीति का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। जनता पुर्तगालियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगी।

पुर्तगालियों का उत्कर्ष तथा पतन—धीरे-धीरे पुर्तगाली शक्ति का उत्कर्ष होना आरम्भ हुआ। उसकी इस काल में किसी भी योरोपीय शक्ति से प्रतिद्वन्द्विता न थी। **उन्होंने १५१८ ई० में कोलम्बो पर अधिकार किया** और कुछ समय के उपरान्त उनका समस्त लंका द्वीप पर अधिकार हो गया। सन् १५३४ ई० में उनका बसई तथा १५३७ ई० में दीव पर भी अधिकार हो गया। यहाँ यह स्मरणीय है कि पुर्तगालियों ने भारत के आन्तरिक भागों में घुसने का प्रयत्न नहीं किया। पुर्तगालियों की शक्ति का विस्तार दिन-प्रतिदिन होता गया और उनका सामुद्रिक व्यापार पर एकाधिकार निश्चित रूप से बना रहा। भारत के किसी भी शासक ने उसका डटकर विरोध नहीं किया और न उनकी ओर विशेष ध्यान ही दिया। वे उनको केवल व्यापारियों के रूप में ही मानते थे। उन्होंने अपने उपनिवेश ड्यु डामन, सालसेट, बेसीन, चौल तथा बम्बई, मद्रास के समीप सेण्ट टोम और बंगाल में हुगली में स्थापित किए। जब पुर्तगालियों ने बंगाल की जनता को ईसाई धर्म में दीक्षित करना आरम्भ किया तो मुगल सम्राट शाहजहाँ का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इस समय तक उन्होंने हुगली की किलेबन्दी भी कर ली थी। इसी समय उन्होंने मुम्ताजमहल बेगम की दो दासियों को भी बन्दी कर लिया, जिससे शाहजहाँ को बड़ा क्रोध आया और उसके आदेश पर कासिम अली ने हुगली पर अधिकार किया। **१७३९ ई० में मराठों ने सालसिट तथा बेसीन पर अधिकार कर लिया।** इसके उपरान्त उसके अधिकार में केवल गोआ, डामन, ड्यु ही रह गए, जिन पर सन् १९६१ ई० में भारत का अधिकार स्थापित हुआ। 1.2.80

पुर्तगाली शक्ति के पतन के कारण—पुर्तगाली शक्ति के पतन के बहुत-से कारण थे जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं--

(१) **पुर्तगालियों की धार्मिक-नीति**—पुर्तगालियों की धार्मिक-नीति बड़ी अनुदार थी। वे भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहते थे। **उन्होंने लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध ईसाई धर्म में दीक्षित करना आरम्भ** किया जिसके कारण भारतीय जनता उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगी। उन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों तथा मुसलमानों की मस्जिदों को भी नष्ट-भ्रष्ट किया।

(२) **दोषपूर्ण शासन**—पुर्तगाली शासन दोषपूर्ण था। बाद के आने वाले गवर्नरों ने शासन को उन्नत करने की ओर ध्यान नहीं दिया। **वे अपने निजी स्वार्थों में इतने अधिक लिप्त हो गए कि उन्होंने अपने देश के हितों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं रखा।** उन्होंने हर सम्भव रूप से अधिक से अधिक धन प्राप्त करना

आरम्भ कर दिया । इसके अतिरिक्त उनकी न्याय-व्यवस्था तथा दण्ड-विधान भी पक्षपातपूर्ण था । चारों ओर भ्रष्टाचार तथा घूंसखोरी फैली हुई थी। उन्होंने विजित प्रदेशों में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया । उनका मुख्य उद्देश्य खूब धन इकट्ठा करना था चाहे वह किसी भी साधन द्वारा क्यों न किया जाए । इस परिस्थिति में उनको जनता का सहयोग प्राप्त करना असम्भव था, जनता उनके शासन में बड़ी दुःखी थी।

पुर्तगालियों के पतन के कारण

(१) पुर्तगालियों की धार्मिक नीति ।
(२) दोषपूर्ण शासन ।
(३) उचित सामुद्रिक शक्ति का अभाव ।
(४) स्थलीय सेना का न होना ।
(५) मुगलों तथा मरहठों की नीति ।
(६) अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार ।

(३) उचित सामुद्रिक शक्ति का अभाव–उन्होंने विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, किन्तु **उसको सुरक्षित रखने के लिए सामुद्रिक शक्ति का होना अनिवार्य था, जिसका उनके पास अभाव था ।** उन्होंने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । जब तक उनकी प्रतिद्वन्द्विता पूर्वी देशों के साथ रही वे सशक्त सिद्ध हुए, किन्तु जब उनको पश्चिमी देशों का सामना करना पड़ा तो उनको पराजित होना पड़ा । वास्तव में उनके पास न अच्छा सामुद्रिक वेड़ा ही था और न उनका सैनिक संगठन ही उच्चकोटि का था ।

(४) स्थलीय सेना का न होना—पुर्तगालियों ने कभी भी देश के आन्तरिक भागों को अपने अधिकार में करने की चेष्टा नहीं की, जिसके कारण वह स्थलीय शक्ति न बनकर केवल समुद्री शक्ति ही वना रहा । **उस समय उनके सामने कोई चारा भी न था, यदि समुद्र की ओर से कोई शक्ति उन पर आक्रमण कर देती ।** इनको शरण लेने के लिए कोई स्थान भी न था । अतः वाध्य होकर उनको आत्म-समर्पण करना पड़ता था । इसके अतिरिक्त समुद्री शक्ति को बल भी प्राप्त नहीं होता था । जिस समय पुर्तगालियों पर कोई संकट आता था तो उनके प्रदेशों की जनता उनकी कठिनाइयों से लाभ उठाने के लिए विद्रोह कर उनके सामने और भी भीषण परिस्थिति तथा समस्या उत्पन्न कर देती थी ।

(५) मुगलों तथा मरहठों की नीति—मुगलों तथा मरहठों की शक्ति के उदय होने के कारण पुर्तगालियों की दशा शोचनीय होने लगी । जब तक इनका उदय नहीं हो पाया था उस समय तक पुर्तगालियों को विशेष भय नहीं था । मरहठों ने साल तथा बेसीन पर अधिकार किया और मुगलों ने उनको वंगाल से बाहर खदेड़ दिया। इसके अतिरिक्त वाद में डच और अंग्रेजों ने भी इस ओर अपना-अपना प्रसार करना आरम्भ किया, जिनका सामना पुर्तगाली नहीं कर सके, क्योंकि इनकी सामुद्रिक शक्ति पुर्तगालियों की सामुद्रिक शक्ति की अपेक्षा अधिक उन्नत थी ।

(६) अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार— पुर्तगालियों में नैतिकता का पूर्णतया अभाव

था। उन्होंने हर सम्भव उपाय से धन प्राप्त करना आरम्भ किया। उन्होंने अन्य देश के व्यापारिक जहाजों को लूटा। **वास्तव में वे सामुद्रिक लुटेरों के समान व्यवहार करने** लगे। उनका जनता के साथ भी ऐसा ही व्यवहार था। चारों ओर भ्रष्टाचार का नग्न नृत्य हो रहा था।

डच जाति

जब डच जाति को पुर्तगालियों के पूर्व के व्यापार का ज्ञान प्राप्त हुआ तो उनके मन में भी पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। ये लोग समुद्र के अधिक निकट निवास करने के कारण अच्छे नाविक थे। सन् १५८१ ई० में इनको स्पेन की पराधीनता से मुक्ति प्राप्त हुई और ये स्वतन्त्र हो गए। सन् १५९२ ई० में डच जाति के कुछ व्यापारियों ने पूर्व के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से एक कम्पनी की स्थापना की। अप्रैल सन् १५९५ ई० में डचों का एक जहाजी बेड़ा मलाया द्वीप-समूह पहुँचा और उसने वहाँ के लोगों के साथ व्यापार करना आरम्भ किया। १५९७ ई० में यह जहाजी बेड़ा स्वदेश वापिस पहुँचा। इनकी व्यापारिक सफलताओं को देखकर डच जाति के अन्य व्यापारियों के हृदय में भी पूर्वीय देशों के साथ व्यापार करने की इच्छा बलवती हुई। **पूर्वी देशों से व्यापार करने वाली समस्त कम्पनियों को मिलाकर सन् १६०२ ई० में एक संयुक्त कम्पनी की स्थापना संयुक्त ईस्ट इण्डिया** कम्पनी के नाम से हुई।

डच जातियों का पुर्तगालियों से संघर्ष—डच जाति उस समय तक अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती थी जब तक वह पुर्तगालियों के साथ संघर्ष न करे, क्योंकि इस समय समस्त व्यापार पर उनका ही एकाधिकार था। सन् १६०२ ई० में डच जाति ने पुर्तगालियों को युद्ध में परास्त कर **अम्बोयना** पर अधिकार किया और धीरे-धीरे पूर्वी द्वीप-समूहों पर उनका अधिकार होना आरम्भ हो गया। इससे पुर्तगाली व्यापार को बड़ी चोट पहुँची। सन् १६१९ ई० में उन्होंने **बटाविया** को अपनी राजधानी बनाया तथा बाद में लंका और मलक्का पर अधिकार किया। सन् **१६६४ ई० तक उन्होंने पुर्तगालियों को विभिन्न युद्धों में परास्त कर उनके केन्द्रों पर अधिकार कर लिया।** उन्होंने भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तट पर बंगाल तथा गुजरात में अपने व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना की। उनके मुख्य केन्द्र पूलीकट, सूरत, चिन्सुरा, कासिम बाजार, पटना, बवासोर, बरानगर, नागपाटन और कोचीन थे। वहाँ से व्यापार करने से डच लोगों का व्यापार दिन-प्रतिदिन बहुत बढ़ने लगा।

डच जाति का अंग्रेजों से संघर्ष—डच जाति के कारण पुर्तगालियों के व्यापार को तथा शक्ति को बहुत आघात पहुँचा और डच जाति की उन्नति दिन-प्रतिदिन होने लगी, किन्तु कुछ ही समय उपरान्त उनका संघर्ष अंग्रेजों से होना आरम्भ हुआ। सत्रहवीं शताब्दी में इन दोनों जातियों में बड़ी भारी व्यापारिक स्पर्धा होनी आरम्भ हो गई थी। सन् १६१८ ई० में अंग्रेजों और डचों में संघर्ष हुआ, जिनमें डचों की विजय हुई और उन्होंने अंग्रेजों का बहुत बड़ी संख्या में वध कर डाला। इसके उपरान्त दोनों जातियों में बड़ी ईर्ष्या तथा शत्रुता आरम्भ हो गई। अंग्रेजों ने

पूर्वी द्वीप समूह से अपना ध्यान हटाकर भारत की ओर लगाया। यहाँ भी डचों से उनका संघर्ष हुआ, जिसमें अंग्रेज सफल हुए। डचों को पूरी तरह पराजित होना पड़ा। इस प्रकार अंग्रेजों के प्रतिद्विन्द्वी का प्राय: अन्त-सा हो गया।

फ्रैंच कम्पनी

पुर्तगाली, डच तथा अंग्रेजों की व्यापारिक सफलता को देखकर सन् १६६४ ई० में फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना हुई, यद्यपि इससे पूर्व भी फ्रांसीसियों की ओर से पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के प्रयत्न किए गए थे। सन् १६६४ ई० में फ्रैंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गई। यद्यपि इसकी स्थापना राज्य की ओर से की गई थी, परन्तु उसको प्रारम्भ में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने सन् १६६८ ई० में सूरत तथा सन् १६६९ ई० मसुलीपट्टम में अपनी कोठियों की स्थापना की। सन् १६७३ ई० में उन्होंने पाण्डिचेरी पर अधिकार किया जो बाद में फ्रांसीसी बस्तियों की राजधानी बना। फ्रांसीसियों ने सन् १६९०-९२ ई० में बंगाल में चन्द्रनगर नामक स्थान में एक कोठी की स्थापना की। योरोप में फ्रांसीसियों और डचों का युद्ध होने के कारण भारत में भी यह युद्ध आरम्भ हो गया, जिसने भारत में फ्रांसीसियों की स्थिति शोचनीय करदी। डचों ने पाण्डिचेरी पर अधिकार किया, किन्तु सन्१६९७ ई० की रिजविक की सन्धि होने पर वह फ्रांसीसियों को वापिस लौटा दिया गया।

अंग्रेजी कम्पनी

सोलहवीं शताब्दी में अंग्रेजों में भी पूर्व के साथ व्यापार करने की इच्छा हुई। अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना सन् १६०० ई० में की गई। उसी समय से इस कम्पनी ने पूर्वी देशों के साथ व्यापार करना आरम्भ कर दिया। इससे पूर्व भी कुछ अंग्रेज भारत में आए थे, किन्तु उनको कोई विशेष व्यापारिक सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी पहली संस्था थी जिसने व्यक्तिगत प्रयत्न के बल पर भारत के साथ व्यापार किया। अन्य समस्त संस्थाओं को अपने राज्यों का संरक्षण प्राप्त था।

इस कम्पनी की स्थापना भारत तथा ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण घटना थी; क्योंकि इसी कम्पनी के द्वारा भारत में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसका सुख अंग्रेजों ने पर्याप्त समय तक भोगा। व्यापारियों ने बड़े उत्साह के साथ कार्य करना आरम्भ किया। इस कम्पनी को व्यापारी वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था, जिसके कारण इस कम्पनी की स्थिति अन्य कम्पनियों की स्थिति से कुछ अच्छी थी। उन्होंने अधिक श्रम तथा अध्यवसाय से कार्य किया जबकि सरकारी संस्थाओं में इस बात का अभाव रहता था।

अंग्रेजी कम्पनी के प्रारम्भिक प्रयत्न—१३ फरवरी १६०१ ई० को कम्पनी की ओर से एक जहाजी बेड़ा, जिसमें पाँच जहाज थे और जिसका नेता जेम्स लंकास्टर था, सुमात्रा के अचिन नामक स्थान पर पहुँचा। उसने वहाँ के बादशाह से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं। उसने बैंटम में एक कारखाने की स्थापना की। सन् १६०३ ई० के सितम्बर मास में वह मूल्यवान वस्तुओं से भरा हुआ ए

जहाज लेकर इंगलैण्ड की ओर चल पड़ा। इसके उपरान्त एक दूसरा बेड़ा **मिडल्टन** के नेतृत्व में बैंटम, अम्बोयना, टरनेट और टिड़ोर पहुँचा। वहाँ उनका डचों से संघर्ष हुआ। इसके पश्चात् सन् १६०८ ई० में **केप्टिन हॉकिंस** भारत आया और उसने मुगल-सम्राट जहाँगीर से भारत में बसने की अनुमति प्राप्त की, किन्तु पुर्तगालियों के कारण जहाँगीर ने अपनी अनुमति वापिस ले ली। हॉकिंस ने पुनः सम्राट की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको सफलता प्रान्त नहीं हुई। अन्त में निराश होकर जनवरी १६१२ ई० में वह इंगलैण्ड के लिए वापिस चल पड़ा। उसके अनुभवों का अंग्रेजों ने प्रर्याप्त लाभ उठाया।

अंग्रेजों का पुर्तगाली और डचों से संघर्ष—अंग्रेज जाति को यद्यपि प्रारम्भिक काल में भारत में पैर जमाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उन्होंने अपना साहस नहीं छोड़ा। अंग्रेज सूरत में रहकर व्यापार अवश्य कर रहे थे, परन्तु डच और पुर्तगाली उनको भारत-भूमि से बाहर निकालने का षड्यन्त्र रच रहे थे। सन् १६११ ई० में पुर्तगाली बेड़े ने **सर हेनरी मिडिल्टन** को ताप्ती नदी के मुहाने में प्रवेश करने से रोका, किन्तु अगले ही वर्ष **कैप्टिन बैस्ट ने पुर्तगालियों को परास्त किया,** जिससे उनके सामुद्रिक प्रभुत्व का अन्त हो गया और मुगल-साम्राज्य की स्थापना ने उनकी जल सेना के महत्व को पूर्णतया समाप्त कर दिया। इन विजयों ने परिस्थिति में कुछ अन्तर अवश्य उत्पन्न कर दिया। इधर अंग्रेजों को सूरत में स्थायी रूप से अपना कारखाना खोलने की अनुमति मुगल-सम्राट जहाँगीर ने प्रदान कर दी। शीघ्र ही कारखाना खोल दिया गया और **थामस ऑल्डवर्थ** के शब्दों में, "यह कारखाना हिन्द-द्वीप-समूह के सबमें अधिक और मूल्यवान और सर्वश्रेष्ठ व्यापार को खोलने वाली एक मात्र कुंजी थी।" इसके उपरान्त अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत के आन्तरिक भागों से भी व्यापार करना आरम्भ कर दिया और उन्होंने विभिन्न प्रदेशों में भी एजेन्सियों की स्थापना की।

✓**सर टॉमस रो का भारत आगमन**—मुगल दरबार से और अधिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए १६१५ ई० में इंगलैण्ड के राजा जेम्स प्रथम ने **सर टॉमस रो** को इंगलैण्ड का राजदूत बनाकर भारत भेजा। सर टामस रो बड़ा विद्वान्, गम्भीर, धीर-बुद्धि, प्रशंसा प्राप्त उद्यमी तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति था। प्रारम्भ में उसको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; क्योंकि राजकुमार खुर्रम पुर्तगालियों का समर्थक था। इस समय उसका प्रभाव मुगल दरबार में पराकाष्ठा पर था। 'रो' इस परिस्थिति से निराश नहीं हुआ और बराबर अपने कार्य के करने में तत्पर रहा। उसने नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ द्वारा जहाँगीर को अपनी ओर आकर्षित किया। उसको मुगल-साम्राज्य के कुछ नगरों में अंग्रेजी फैक्टरियाँ स्थापित करने की आज्ञा प्राप्त हो गई। सर **टॉमस रो** १६१९ ई० इंगलैंड वापिस चला गया।

कम्पनी के संचालकों ने शीघ्र ही भारत के विभिन्न नगरों में कोठियों की स्थापना करनी आरम्भ कर दी। भारत के पूर्वी समुद्र-तट पर १६११ ई० में केप्टिन हिप्पन कृष्णा नदी के डेल्टे में पत्तापोली नामक स्थान पर उत्तरा। उसने शीघ्र ही

मसुलीपट्टम में एक कोठी की स्थापना की, किन्तु डचों के विरोध के कारण उसको कारखाना बन्द करना पड़ा, किन्तु बाद में उसका पुनरुद्धार किया गया। सन् १६४० ई० में मछलीपट्टम की कौंसिल के एक सदस्य ने मछलीपट्टम के दक्षिण में २३० मील की दूरी पर एक साधारण हिन्दू राजा से भूमि का एक टुकड़ा ले कर वहां पर एक कारखाना खोला। वहाँ उसने **सेंट जार्ज** (St. George) के नाम से एक किलेबन्द कारखाना स्थापित किया। कुछ ही वर्षों के उपरान्त उसके चारों ओर मद्रास नगर बस गया।

इसी बीच अंग्रेजों ने बंगाल और उड़ीसा में अपनी व्यापारिक बस्तियों की स्थापना की। सन् १६५१ ई० में अंग्रेजों ने हुगली में एक फैक्ट्री की स्थापना की, किन्तु इन प्रदेशों की मद्रास से अधिक दूरी होने के कारण यहाँ कार्य नियमानुसार नहीं चलता था।

इंगलैण्ड के गृह-युद्ध के कारण कम्पनी की अवस्था कुछ शोचनीय होने लगी, क्योंकि उसको राज्य की ओर से कोई विशेष सहायता प्राप्त नहीं हो सकी, किन्तु **चार्ल्स द्वितीय** के राज्यसिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त राज्य की सहायता कम्पनी को प्राप्त होने लगी, जिसके कारण उनकी अवस्था में परिवर्तन होने लगा। सन् १६६१ ई० से सन् १६८३ ई० तक के आज्ञा-पत्रों द्वारा कम्पनी की स्थिति दृढ़ हो गई। इसके द्वारा उसको सिक्के ढालने, किलेबन्दी करने 'पूर्व' में निवास करने वाली अंग्रेजी प्रजा पर न्यायसंगत अधिकार करने और गैर-ईसाई मतावलम्बियों के साथ युद्ध, सन्धि अथवा मित्रता स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया। चार्ल्स ने कम्पनी को बम्बई का बन्दरगाह सन् १६८८ ई० में १० पौंड वार्षिक किराए पर दे दिया। यह बन्दरगाह उसको पुर्तगाली राजकुमारी कैथरीन के साथ विवाह करने के उपलक्ष में दहेज में प्राप्त हुआ था। यह वन्दरगाह आगे चलकर पश्चिमी प्रेसीडेंसी की राजधानी बना और जिसने शीघ्र ही सूरत का स्थान प्राप्त कर लिया। इस सम्वन्ध में गोआ के पुर्तगाली वाइसराय ने कहा था कि 'जिस दिन अंग्रेज बम्बई में बस जायेंगे उसी दिन भारत पर हमारे अधिकार का अन्त हो जाएगा।'

सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कम्पनी की स्थिति कुछ उन्नत होनी आरम्भ हो गई और उसको भारतीय परिस्थितियों के कारण अपनी नीति में भी परिवर्तन करना पड़ा। अब तक कम्पनी का ध्यान मुख्य रूप से व्यापार की ओर लगा हुआ था किन्तु अब उसने राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करना भी आरम्भ कर दिया। इस समय भारत की स्थिति में भी कुछ परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। उसने अपनी सुरक्षा की ओर ध्यान दिया और सैनिक किलेबन्दी करना आरम्भ कर दिया। शिवाजी ने दो बार सूरत को लूटा, जिसका वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है। वह कर्नाटक विजय के लिए अपनी सेना के साथ मद्रास के पास से निकला। इसी समय सूरत के प्रेसीडेण्ट ने कम्पनी से प्रार्थना की कि अब ऐसा अवसर आ गया है कि उनको अपने व्यापार की रक्षा तलवार के आधार पर करनी होगी। कम्पनी के संचालकों ने उसकी नीति को स्वीकार कर लिया।

मुगलों से संघर्ष—इसी समय अंग्रेजों का मुगलों में संघर्ष होना आरम्भ हो गया। सन् १७५१-५२ ई० में कम्पनी को बंगाल के सूबेदार राजकुमार शुजा ने एक आज्ञा-पत्र प्रदान किया कि वह ३,००० रुपए मासिक देने पर बिना कर दिए व्यापार कर सकते हैं। **सन् १६५६ ई० में उनको कुछ और सुविधाएँ प्राप्त हुईं।** इनके कारण उसका उत्साह बहुत बढ़ गया। अंग्रेजी कम्पनी के कर्मचारियों ने अपना निजी व्यापार भी इन्हीं सुविधाओं के अन्तर्गत करना आरम्भ कर दिया। बाद में मुगल अफसरों ने उनकी सुविधाओं को कम करने का प्रयत्न किया, जिसके कारण उनका मुगलों से संघर्ष होना अनिवार्य हो गया। कम्पनी के संचालकों ने भी निश्चय लिया कि वे अपने व्यापार की रक्षा शस्त्रों द्वारा करेंगे। कम्पनी ने चटगाँव पर अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई। **भारत के पश्चिम समुद्र-तट पर सर जॉन चाइट ने दिसम्बर १६८८ ई० में मुगलों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ताप्ति नदी के मुहाने पर अधिकार कर मुगलों के जहाजों को पकड़ लिया और मक्का जाने वाले जहाजों को लूटा।** जब मुगल सम्राट औरंगजेब को यह समाचार विदित हुआ तो उसने उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही आज्ञा दी कि मुगल-साम्राज्य में अंग्रेजों की जितनी भी कोठियाँ हैं उन सब पर अधिकार कर लिया जाए। तैलिगाना में बहुत-से अंग्रेज बन्दी कर लिए गए और बम्बई पर मुगलों ने अपना अधिकार स्थापित किया। परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अंग्रेजों ने औरंगजेब से क्षमा याचना की। औरंगजेब ने यह समझ कर कि अंग्रेजों के व्यापार से साम्राज्य को बड़ा लाभ हो रहा है उनको क्षमा प्रदान की और उनसे दो लाख रुपये युद्ध क्षति-पूर्ति के लिए प्राप्त किए। अंग्रेजों ने इस समय यह आश्वासन भी दिया कि वे "भविष्य में कभी इस प्रकार के अपमानजनक कार्यों में भाग न लेंगे" और "यह अपमान करने वाले मि० चाइल्ड का सर्वथा परित्याग कर देंगे।" इस पर कम्पनी को पुन: व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो गई। **कम्पनी की ओर से बंगाल में सुतानती नामक स्थान पर कोठी की स्थापना करने का अधिकार मिला और इस प्रकार भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य की भविष्य में होने वाली राजधानी कलकत्ता की नींव पड़ी।** इस समय बंगाल के बर्द्धमान जिले के जमींदारों ने विद्रोह किया तो उन्होंने अपनी कोठी की किले-बन्दी करनी आरम्भ कर दी। मुगल सम्राट अजीज-उश-शान ने अंग्रेजों को तीन गाँवों की जमींदारी खरीदने की आज्ञा प्रदान की। १,३०० रुपये देकर अंग्रेजों ने कालीकट, कलकत्ता और गोविन्दपुर की भी जमींदारी खरीद ली। **इस किले-बन्द कोठी का नाम 'फोर्ट विलियम' (इंगलैण्ड के सम्राट विलियम तृतीय के नाम पर) रखा गया और सर्वप्रथम सर चार्लस आयर यहाँ का प्रेसीडेण्ट और गवर्नर नियुक्त हुआ।**

नई कम्पनियों की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कम्पनी की बढ़ती हुई शक्ति तथा व्यापार के कारण इंगलैंड के बहुत-से व्यापारी उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने हर प्रकार से इस कम्पनी को बदनाम करने का प्रयत्न किया, किन्तु इङ्गलैंड की सरकार ने कम्पनी को १६९३ ई० में एक नया आज्ञा-पत्र प्रदान किया। इसके

दिलवाने में **सर जौन चाइड** का विशेष हाथ था। उसने **डाइरेक्टर** को बहुत अधिक धन घूंस के रूप में देकर कर उनका मुँह बन्द कर दिया। इससे व्यापारियों को सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने इङ्गलैंड की सरकार से व्यापार करने के लिए एक आज्ञा-पत्र सन् १६९८ ई० में प्राप्त किया। सम्राट को इस समय धन की बड़ी आवश्यकता थी। इसी कारण वह नई कम्पनी की स्थापना तथा उसको पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने का आज्ञा-पत्र देने को सहमत हो गया। अब भारत के साथ नई और पुरानी दोनों कम्पनियाँ व्यापार करने लगीं।

अंग्रेजी कम्पनियों में पारस्परिक संघर्ष—दोनों कम्पनियों ने भारत के साथ व्यापार करने का कार्य आरम्भ कर दिया, किन्तु शीघ्र ही उन दोनों में संघर्ष होने लगा। नई कम्पनी के कर्मचारियों तथा संचालकों ने हर सम्भव रूप से पुरानी कम्पनी को नीचा दिखलाने तथा उसके प्रयत्नों को असफल करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। नई कम्पनी की ओर से सन् १७०१ ई० में **सर विलियम मोरिस** औरंगजेब के दरबार में व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से उपस्थित हुआ, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। अपनी इस पराजय पर वह बड़ा क्षुब्ध और दुःखी हुआ। स्वदेश लौटते समय मार्ग में उसकी मृत्यु हो गई। व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण दोनों कम्पनियों में से किसी को भी वास्वनिक लाभ नहीं हो पाया, और दोनों ओर से यह विचार प्रकट किया जाने लगा कि दोनों कम्पनियों को मिलाकर एक कर दिया जाए। **सन् १७०८ ई० में अर्ल आफ गोडोल्फिन** के निर्णय के अनुसार **दोनों कम्पनियाँ सम्मिलित कर दी गईं। सम्मिलित कम्पनी** का नाम **'युनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी' रक्खा गया।**

कम्पनी की प्रगति—इस सम्मिलित कम्पनी की प्रगति शीघ्र होने लगी। देश में तथा इङ्गलैंड की पार्लियामेंट में उसके समर्थकों की संख्या में विकास हुआ। उसको व्यापार में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होने लगी। सन् १७'१ ई० में इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने कम्पनी के व्यापार करने की अवधि सन् १७६३ ई० तक कर दी और बाद में १७३० के अधिनियम द्वारा इस अवधि को बढ़ाकर सन् १७६६ तक कर दिया गया।

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त भारत में अशान्ति तथा अव्यवस्था का काल आरम्भ हो गया। इससे कम्पनी को लाभ हुआ और उसने अपनी स्थित को सुदृढ़ करने का प्रयास करना आरम्भ किया। कभी-कभी उसको प्रान्तीय सूबेदारों अथवा स्थानीय पदाधिकारियों द्वारा कुछ असुविधाओं का सामना अवश्य करना पड़ा। इस समय कम्पनी की स्थिति पर्याप्त उन्नत थी। इसी समय १७१५ ई० में न फरमान प्राप्त करने के लिए **जोन सुरमन** तथा **एडवर्ड स्टिफिनसन** कलकत्ता से देहली भेजे गए। उनके साथ **डाक्टर हैमिल्टन** भी दिल्ली आए। डाक्टर हैमिल्टन ने सम्राट **फरुखसियर का इलाज किया** जिससे वह अच्छा हो गया। उसके इस कार्य से सम्राट उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसके इलाज के उपलक्ष में कम्पनी को कलकत्ता और **मद्रास के समीप के कुछ गाँव भेट-स्वरूप प्रदान** किए। उनको कुछ अन्य विशेष

सुविधाएँ भी प्राप्त हुईं जिससे कम्पनी की स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई ।[1]

अंग्रेजों के पश्चिमी समुद्र-तट के व्यापार को मरहठों तथा पुर्तगालियों के संघर्ष के कारण हानि अवश्य हुई, किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों ने समुद्री डाकुओं से बम्बई की रक्षा करने के लिए सन् १७१५ और १७२२ के बीच में उसके चारों ओर एक दीवार बनाई और बहुत-से लड़ाकू जहाजों का निर्माण किया । अंग्रेजों ने मरहठों से सन् १७२६ ई० में एक सन्धि की, जिसके द्वारा उनको मरहठा राज्य में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ । पेशवा की सहायता से उन्होंने आगरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की । सन् १७५० ई० में कामेडोर जेम्स ने स्वर्ण दुर्ग पर अधिकार किया और सन् १७५७ ई० में वाट्सन और क्लाइव ने घेरिया पर अधिकार किया । पूर्वी व्यापार की अवस्था भी उन्नत हो गई । अंग्रेजों ने मद्रास के समीप के कुछ गाँव प्राप्त किए । बंगाल में शान्ति तथा सुव्यवस्था थी जिसके कारण उनका व्यापार इस प्रदेश में बहुत उन्नतिशील हो गया । इस प्रकार अंग्रेजों की शक्ति तथा व्यापार सुदृढ़ अवस्था को प्राप्त हुआ उनके अधिकार में भारत-भूमि के कुछ प्रदेश भी आ गए । कम्पनी के अधिकार में बम्बई, मद्रास और कलकत्ता आ गए । कलकत्ते की उन्नति वहाँ के व्यापार की प्रगति के कारण होनी आरम्भ हो गई । दक्षिण की राजनीति में विशेष उथल-पुथल मची हुई थी, जिससे वहाँ कम्पनी को विशेष लाभ नहीं हो पाया था, किन्तु इस बीच कम्पनी ने कर्नाटक तथा हैदराबाद राज्यों से कुछ सुविधाएँ अवश्य प्राप्त कर ली थीं ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) सर टॉमस रो पर एक टिप्पणी लिखो ।

(२) पुर्तगाली भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में क्यों असफल रहे ?

राजस्थान—

(१) भारत में पुर्तगालियों के उद्देश्यों का वर्णन करो । वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल हुए ?

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) भारत में पुर्तगाली सत्ता के उत्कर्ष और पतन का वर्णन कीजिए ।

---

[1] "This embassy marks a turning point in the history of the English East India Company in India. It secured for it important privileges for which the historian Orme afterwards rightly described it as the "Magna Charta of the company." The concession for settling in certain villages near Madras and Calcutta made the company an "integral part of empire of the Mughals" and the right of coining and issuing money from the Bombay mint was an "extraordinary privilege." The firman exempting the company's trade from dues- immensely contributed towards the growth of its commerce and influence in India. Moreover, the English came to have some knowledge through their envoys about the rotten state of the Mughal Empire in India. Though hammered occasionally here and there by the evils accompanying the break up of the Mughal Empire the privileged trade of the company entered upon a period of progress and prosperity, No doubt some disturbing influences appeared but these were sufficiently overcome and more than balanced by the favourable circumstances."

—**Dr. Sarkar and Dutta : Modern History. Vol. II, p. 24.**

२

अंग्रेजों और फ्रांसीसियों का संघर्ष

भारत में जिन यूरोपीय जातियों ने व्यापार किया उनमें से दो—पुर्तगाली और डचों—की शक्ति प्रारम्भ में ही बहुत कम हो गई थी, जिसका उल्लेख गत अध्याय में किया जा चुका है, किन्तु शेष दो—अंग्रेज और फ्रांसीसी भारत के साथ व्यापार करते रहे और उन दोनों की शक्ति पर्याप्त दृढ़ थी। यूरोप में भी इन दोनों जातियों में बड़ी प्रतिद्वन्द्विता थी, जिसके कारण भारत में भी यह प्रतिद्वन्द्विता बनी रही। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन दोनों जातियों में बड़ा संघर्ष हुआ जिसका भारतीय इतिहास पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इन युद्धों तथा संघर्षों द्वारा सिद्ध हो गया कि अंग्रेज जाति अधिक शक्तिशाली तथा दृढ़ है और इसी कारण वह कालान्तर में भारत-भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुई। इससे पूर्व कि इन दोनों जातियों के कार्यों तथा युद्धों का वर्णन किया जाए, तत्कालीन भारतीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना अधिक उचित होगा।

भारत की दशा—औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही मुगलों का अधिकार दक्षिणी भारत पर से प्रायः समाप्त-सा ही हो गया था। मरहठे पेशवाओं के नेतृत्व में अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहे थे। आसफजहाँ निजाम-उलमुल्क ने अपने आपको मुगल-सम्राट से स्वतन्त्र कर, स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करना आरम्भ कर दिया था। उसको सदा मरहठों से भय बना रहता था। **तामिलनाड (कर्नाटक) पर १७०४ ई० तक मुगलों का अधिकार था।** उस पर नवाब शासन कर रहा था जो केवल नाम-मात्र को दक्षिण के सूबेदार आसफजहाँ के अधीन था, किन्तु वास्तव में वह अपने स्वामी के समान ही स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगा था।

तामिलनाड (कर्नाटक) का संक्षिप्त इतिहास—तामिलनाड (कर्नाटक) के संक्षिप्त इतिहास का परिचय पाठकों को लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि इसी प्रदेश पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में आगे होने वाला संघर्ष हुआ। तामिलनाड के तटीय प्रदेश पर यूरोप की तीन जातियों ने अपनी कोठियों की स्थापना की थी। इनके अतिरिक्त इस प्रदेश पर मुसलमान और हिन्दू राजाओं का अधिकार था। सन् **१७१० ई० में मुगल सम्राट बहादुरशाह ने सआदत खाँ को यहाँ का नवाब घोषित किया, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका भतीजा दोस्तअली फ्रांसीसियों की सहायता द्वारा कर्नाटक का नवाब हुआ, जिसको बाद में मुगल-साम्राज्य ने स्वीकार कर लिया।** कर्नाटक के नवाब ने त्रिचनापली पर सन् १७३७ ई० में अधिकार कर लिया था, किन्तु वह तंजौर को अपने अधिकार में नहीं कर सका। कर्नाटक के धन-धान्य से प्रभावित तथा लालायित होकर मरहठे भी इस प्रदेश को अपने अधिकार में करना चाहते थे। उन्होंने सैयद भाइयों द्वारा कर्नाटक मे चौथ वसूल करने के लिए सन्

१७४० ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया। कर्नाटक के नवाब दोस्तअली की मृत्यु युद्ध क्षेत्र में हुई। मरहठों से दोस्तअली के पुत्र सफदरअली ने सन्धि की और उसको रुपया देने का वचन दिया। अगले वर्ष मरहठों ने त्रिचनापली पर आक्रमण कर चाँदा साहेब को बन्दी कर लिया। कर्नाटक के नवाब सफदरअली का वध कर उसका चेचरा भाई मुर्तजाअली सन् १७४२ ई० में कर्नाटक का नवाब बना, किन्तु उसको अर्काट की जनता का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और वह वहाँ से भाग गया। उसके उपरान्त सफदरअली के अल्पवयस्क पुत्र को कर्नाटक का नवाब घोषित किया गया। दक्षिण के सूबेदार ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और उसने **अनवरुद्दीन** नामक व्यक्ति को उसका संरक्षक घोषित किया। कुछ समय उपरान्त उसके हृदय में कर्नाटक का नवाब बनने की भावना बलवती हुई। उसने अल्पवयस्क नवाव का वध कर शासन पर अपना अधिकार स्थापित किया, किन्तु वह अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने में सफल नहीं हो सका। सन् १७४४ ई० तक दोनों कम्पनी अपने व्यापार में संलग्न थीं और उन्होंने वहाँ की राजनीति में किसी प्रकार का सक्रिय भाग नहीं लिया, जिस समय तक उसने उनके व्यापार को प्रभावित नहीं किया।

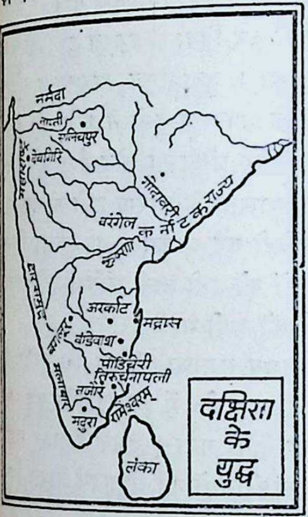

कर्नाटक का प्रथम युद्ध—(१७४४—१७४८)

जब दक्षिण तथा कर्नाटक भीषण परिस्थितियों में से गुजर रहे थे तब यूरोप की दो जातियों—अंग्रेज और फ्रांसीसियों के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया। यूरोप में आस्ट्रियन साम्राज्य के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर इङ्गलैण्ड और फ्रांस में युद्ध आरम्भ हुआ। डूप्ले जो इस समय पाण्डिचेरी का गर्वनर था, वह फ्रांस की समुद्री शक्ति को निर्बल समझता था। उसने अंग्रेजों के साथ सन्धि करने की बातचीत चलाई, किन्तु अंग्रेजों ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया; यद्यपि भारत में काम करने वाले अंग्रेज युद्ध करना नहीं चाहते थे। इसी समय अंग्रेजों ने पाण्डिचेरी पर आक्रमण किया, किन्तु उनको पराजित होकर लौटना पड़ा। पाण्डिचेरी के गवर्नर डूप्ले ने मॉरीशस द्वीप से ला बूंदोने को आमन्त्रित किया। उसको फ्रांसीसी सरकार से यह आदेश प्राप्त हो चुका था कि वह भारतवर्ष के अंग्रेजी व्यापारियों तथा उपनिवेशों पर आक्रमण करे। ला बूंदोने तुरन्त पाण्डिचेरी पहुँचा और उसने १७४६ ई० में अंग्रेज सेनापति पेटन को परास्त किया। पेटन पराजित होकर हुगली की ओर चला गया। उसके बाद ला बूंदोने ने मद्रास पर आक्रमण किया। अंग्रेज उसके आक्रमण का सामना नहीं कर सके। मद्रास पर फ्रांसीसियों का अधिकार स्थापित हो गया।

मद्रास के प्रश्न को लेकर डूप्ले और ला बूँदोने के बीच पारस्परिक मत-भेद हो गया। बूँदोने की इच्छा थी कि वह अंग्रेजों से ४ लाख पौंड वसूल कर मद्रास उनको वापिस कर दे, किन्तु डूप्ले मद्रास पर अधिकार रखना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि मद्रास के उपरान्त वह फोर्ट सैण्ट डेविड को अपने अधिकार में कर समस्त पूर्वी तट पर फ्रांसीसी पताका फहरा देगा और उसके उपरान्त वह बंगाल से अंग्रेजों को निकालने में सफल होगा, जिससे चन्द्रनगर एक सुरक्षित फ्रांसीसी बस्ती बन जाएगी।[1] ला बूँदोने पर डूप्ले की प्रार्थना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने ४ लाख पौंड अंग्रेजों से लेकर उनको मद्रास वापस कर दिया। इसका डूप्ले को बड़ा दुःख हुआ किन्तु वह बेचारा कर ही क्या सकता था। कुछ समय उपरान्त ला बूँदोने फ्रांस वापस चला गया। उसके वापस चले जाने के उपरान्त डूप्ले ने सन्धि की शर्तों का परित्याग कर मद्रास पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही फोर्ट सैण्ट डेविड पर आक्रमण किया। अंग्रेज अफसर लॉरेन्स की रण-कुशलता के कारण डूप्ले को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंग्रेजों ने इसके उत्तर में पाण्डिचेरी पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उनको पराजित होकर वापस आना पड़ा। अंग्रेजों को बड़ी भारी क्षति उठानी पड़ी। यह डूप्ले की बड़ी भारी सफलता थी और अंग्रेजों की बड़ी भारी पराजय। दोनों ओर युद्ध की भीषण तैयारियाँ हो रही थीं कि इसी समय समाचार मिला कि यूरोप में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में एलाशपल की सन्धि १७४८ ई० में हो गई और युद्ध की समाप्ति हो गई। भारत में भी युद्ध का अन्त कर दिया गया। इसके अनुसार मद्रास अंग्रेजों को वापिस मिल गया और अमरीका में फ्रांसीसियों को लुईसबर्ग वापस मिल गया। **इस सन्धि ने डूप्ले के कार्यों पर पानी फेर दिया।**

युद्ध के परिणाम—इस प्रथम कर्नाटक युद्ध के बड़े भीषण परिणाम हुए जो इस प्रकार हैं—

(१) यद्यपि देखने में दोनों कम्पनियों की स्थिति पूर्ववत् हो गई, परन्तु आने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि वास्तवित स्थिति में पर्याप्त अन्तर उत्पन्न हो गया है।

(२) दोनों कम्पनियों ने व्यापार की उपेक्षा करके अपनी सुरक्षा के लिए सैनिक दल संगठित करने की ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ कर दिया।

(३) उन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया।

---

[1] "Dupleix adopted that policy even then connected by genius, the policy of Alexander, of Hannibal, of Gustavus, to carry the war into the enemy's country, and to use the means, which had been so wonderfully, so expectedly, placed at his disposal, to crush him at once and for ever. Madras in his hands, Fort St. David could scarcely hold out and then secure the Coromandal coast, it might be possible to despatch a fleet to Bengal to destory the colony which had rivalled and was threatening to supress his own tenderly nursed settlement of Chandranagar." —**Malleson: History of the French in India, p. 106.**

(४) इससे यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के संघर्ष में जल सेना का महत्व बहुत अधिक है और विजय उसकी ही निश्चित है जिसका सामुद्रिक बेड़ा उन्नत होगा। फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेजों का जहाजी बेड़ा अधिक उन्नत था और इस कारण फ्रांसीसियों को अधिक सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए।[1]

(५) फ्रांसीसियों को इस युद्ध से यह लाभ हुआ कि **उनके बल तथा शक्ति का प्रभुत्व देशी राज्यों पर जम गया**। देशी नरेशों ने अपनी आन्तरिक तथा घरेलू समस्याओं के समाधान करने में इनकी सहायता प्राप्त करनी आरम्भ कर दी और उनको भी अपने जौहर दिखाने तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने का उचित अवसर प्राप्त हो गया। इस युद्ध के सम्बन्ध में **प्रोफेसर डोडवेल** का कथन कि "यद्यपि आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध से बाह्य रूप में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, स्थिति पूर्ववत् ही बनी रही, किन्तु उसके कारण भारतीय इतिहास में एक नवयुग का सूत्रपात हुआ। इसके द्वारा बुद्धिमानी से संचालित समुद्री शक्ति के महान् प्रभाव का दिग्दर्शन हुआ तथा इस बात पर प्रकाश पड़ा कि यूरोपीय युद्ध-प्रणाली भारतीय युद्ध-प्रणाली की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। इसके द्वारा भारतीय राजनीतिक पतन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ और यूरोपीय शक्तियों के मन में भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने की भावना बलवती हो गई। सारांश में, इसने **डूप्ले के प्रयोगों के लिए तथा क्लाइव के कार्यों के लिए एक मंच तैयार कर दिया**।[2]

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (१७४८–१७५४)— प्रथम कर्नाटक युद्ध की समाप्ति पर दोनों जातियों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना न हो पाई। भारत में स्थित फ्रांसीसी यह विचार कर दुःखी हुए कि उनके हाथ से विजय का अवसर निकल गया और अंग्रेज यह सोचते रहे कि भाग्य ने उनकी पराजय से रक्षा की। इसके उपरान्त अंग्रेजों ने तंजोर में होने वाले उत्तराधिकारी युद्ध में एक प्रार्थी का समर्थन किया और वे उसको तंजोर के राज्य पर बैठाने में सफल हुए। डूप्ले ने इस युद्ध में कोई भाग नहीं लिया, किन्तु उसने भी अंग्रेजों के समान अपनी नीति निश्चित कर ली तथा उसने अवसर

---

[1] "The war had illustrated the great importance of sea-power. It demonstrated beyond doubt that situated as they were, neither the French nor the English could hope to obtain a decisive and permanent success unless they could control the sea. The recognized supremacy of the English in this respect offered, therefore, but gloomy prospect to the French."

—**An Advanced History of India, p. 649.**

[2] "The War of Austrian Succession, though in appearance it achieved nothing and left the political borders of India unaltered yet marks an epoch in Indian History. It demonstrated the overwhelming influence of seapower when intelligently directed it displayed the superiority of European methods of war over those followed by Indian armies, it revealed the political decay that had eaten into the heart of the Indian state system and its conclusion illustrated the resultant tendency of European traders to intrude into a world that had previously ignored them altogether. In short, it set the stage for the experiments of Dupleix and accomplishments of Clive."

—**Cambridge History of India. Vol. V. p. 125.**

की खोज करना आरम्भ कर दिया, जिससे कि वह राज्यों के पारस्परिक झगड़ों में भाग लेकर फ्रांसीसी कम्पनी की स्थिति को उन्नत कर सके।

हैदराबाद में उत्तराधिकारी युद्ध—सन् १७४८ ई० में दक्षिण के सूबेदार आसफजहाँ निजामुलमुल्क की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों और पोतों में राज्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष होना आरम्भ हो गया। डूप्ले ने आसफजहाँ निजामुलमुल्क के पोते मुजफ्फरजंग के पक्ष का समर्थन किया, यद्यपि आसफजहाँ निजामुलमुल्क का पुत्र नासिरजंग राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ।

कर्नाटक में उत्तराधिकारी युद्ध—कर्नाटक पर इस समय अनवरउद्दीन का अधिकार था। चाँदा साहेब, जो दोस्तअली का दामाद था, कर्नाटक पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था। **फ्रांसीसियों ने उसको कर्नाटक का नवाब बनाने का निश्चय किया।**

डूप्ले ने मुजफ्फरजंग तथा चाँदा साहेब दोनों से गुप्त सन्धि की। इसके अनुसार डूप्ले की योजना थी कि कर्नाटक का नवाब और दक्षिण का सूबेदार दोनों ही उसके हाथ में हो जाएंगे और दोनों ही अपने राज्याधिकार को फ्रांस की देन समझकर उसको विशेष सुविधाएँ प्रदान करेंगे। **वास्तव में डूप्ले की महत्वाकांक्षा बहुत अधिक थी और यदि वह अपने कार्य व उद्देश्य में सफल हो जाता तो वास्तव में फ्रांसीसियों की शक्ति बहुत बढ़ जाती और अंग्रेजों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचता।** प्रारम्भ में उमको अपने उद्देश्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, किन्तु बाद में उमकी सफलता असफलता में परिणित हो गई।

युद्ध की प्रगति—जैसे हमने उक्त पंक्तियों में बतलाया है कि फ्रांसीसियों, **मुजफ्फरजंग और चाँदा साहेब, तीनों में एक गुप्त सन्धि हुई और उसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि तीनों संयुक्त प्रयत्न कर चाँदा साहेब को कर्नाटक के नवाब के पद पर आसीन करेंगे।** इस निश्चय के अनुसार फ्रांसीसियों की सहायता से मुजफ्फरजंग और चाँदा साहेब की सम्मिलित सेनाओं ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और वहाँ के नवाब अनवरउद्दीन को अम्बर नामक स्थान पर परास्त किया। शीघ्र ही उसका व कर दिया गया। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अनवरउद्दीन का पुत्र त्रिचना भाग गया और उसने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की। अंग्रेजों ने उसको सहा प्रदान करना स्वीकार किया। अम्बर के युद्ध में विजयी होने पर कर्नाटक पर चाँ साहेब का अधिकार हो गया। चाँदा साहेब ने फ्रांसीसियों को पाण्डिचेरी के समीप ८० गाँव भेंट-स्वरूप प्रदान किए। इस महान् विजय के उपरान्त डूप्ले की हार्दि इच्छा त्रिचनापली पर आक्रमण करने तथा दक्षिण के नवाब नासिरजंग के विरुद्ध अभियान करने की हुई, किन्तु वह देशी नरेशों को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित न कर सका। चाँदा साहेब ने तंजौर पर आक्रमण किया। यह आक्रमण पूर्ण नहीं पाया था कि नासिरजंग ने कर्नाटक पर एक विशाल सेना के साथ आक्रमण दिया। अंग्रेजों ने भी नासिरजंग की सहायता की और उनकी सेना में मेजर ला के नेतृत्व में ६०० मनुष्यों का एक अंग्रेज दल सम्मिलित हो गया। मुजफ्फरजंग

समर्पण के लिए वाध्य हो गया और चाँदा साहेब को त्रिचनापली का घेरा उठाना पड़ा। इस भीषण परिस्थिति के उत्पन्न होने पर डूप्ले का सितारा गिरने लगा और अंग्रेजों का सितारा चमकने लगा। इस समय डूप्ले ने अदम्य उत्साह, धैर्य तथा शान्ति से काम लिया। उसके प्रयत्नों के कारण परिस्थितियों में शीघ्र ही परिवर्तन हो गया। इसी समय फ्रांसीसियों ने मसुलीपट्टम, त्रिवादी और जिंजी पर अधिकार कर लिया। सन् १७५० ई० के दिसम्बर के मास में नासिरजंग का वध कर दिया गया। शीघ्र ही फ्रांसीसियों ने मुजफ्फरजंग को मुक्त कर उसको पाण्डिचेरी में दक्षिण का सूबेदार घोषित किया। **प्रो० राबर्ट्स** के शब्दों में, उसने फ्रांसीसियों को दिवि और मसुलीपट्टम के नगर और बहुत-सा धन दिया गया। ५०,००० पौंड कम्पनी को दिए। इतना ही धन सेनाओं को मिला और कहा जाता है कि डूप्ले को २००,००० पौंड नकद और १००,००० पौंड वार्षिक आय की एक जागीर 'बलदापुर गांव' प्राप्त हुई। नए सूबेदार ने डूप्ले का अभिनन्दन 'कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक फैले हुए दक्षिण भारत के अधिपति' के रूप में किया। इस अस्पष्ट और शानदार पादवी (जैसे कहा जाता है) का यह अर्थ न था। यद्यपि मैकॉले और कई लेखकों ने यह अर्थ लगाया है कि इस समय से "डूप्ले लगभग सम्पूर्ण सत्ता का स्वामी होकर तीन करोड़ मनुष्यों पर शासन करने लगा।" इस पदवी से डूप्ले को उस प्रदेश पर शासन करने का कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं दिया गया था, जिसमें तंजौर, मदूरा और मैसूर के प्रदेश सम्मिलित थे। उन राज्यों ने तो कभी 'दक्षिण' के सूबेदार को भी अपना अधिपति न माना था। अतः दक्षिण के सूबेदार का यह अधिकार न था कि वह किसी व्यक्ति को इन प्रदेशों का अधिपति बना दे।[1] इससे इतना तो अवश्य हुआ कि देशी नरेशों की दृष्टि में डूप्ले का मान और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उसने भारतीय नरेशों के समान शानदार जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया और उसको ऐसा करने का अधिकार भी मिल गया।

नए सूबेदार मुजफ्फरजंग को लेकर फ्रांसीसी सेनापति **बुसी** औरंगाबाद के लिए चल दिया, किन्तु वहीं कुछ असन्तुष्ट पठान सरदारों ने उनका वध कर दिया। इस समय **बुसी** ने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया। उसने मुजफ्फरजंग के अल्प-

---

[1] "Then he made over to the French the towns of Divi and Masulipattam and added large pecuniary grants. A sum of £. 50,000 was given to the company and a like amount to the troops while Dupleix, it, is said, received £. 200,000 and a jagir consisting of the village Valdavur with £. 1000,000 a year. The new Subedar hailed Dupleix as suzerain of Southern India from the Krishna to Cape Camorin The vague and magnificient title, as it has been described, by no means meant as Macaulaly and many other writers have supposed that Dupleix hence forward ruled thirty millions of people with almort absolute power. It gave him no direct right of administration over the region indicated which embraced the territories of Tanjor, Madura and Mysore. Those kingdoms had never even acknowledged the suzerainty of the Subedar of Deccan and that ruler had no power to deluge the soverignty over them."

—Roberts P. E : History of British India, p. 108

वयस्क पुत्र को राज्यसिंहासन पर आसीन करने के स्थान पर मृतक आसफजहाँ निजाम-उल-मुल्क के तृतीय पुत्र सलावतजंग को राज्यसिंहासन पर आसीन किया और उसकी स्थिति सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से वह स्वयं सात वर्ष तक हैदराबाद में रहा। 'इस अवधि में उसने सलावतजंग की नीतियों का निर्देशन किया, उसने उसे राज्य के असंख्य भीतरी शत्रुओं से बचाया और उसके राज्य पर आक्रमण करने वाली बाहरी शक्ति को भी हराया।'

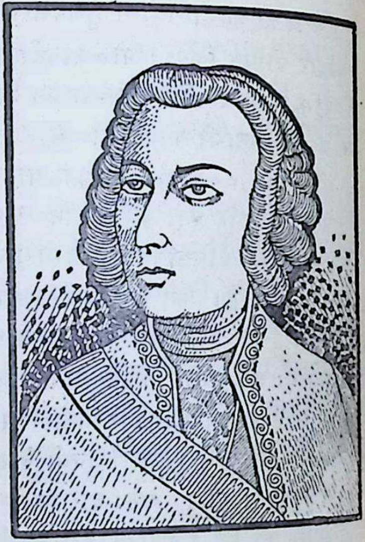
डुप्ले

इस प्रकार डुप्ले सन् १७५१ ई० में अपने सौभाग्य के उच्चतम शिखर पर था, क्योंकि दक्षिण का सूबेदार सलावतजंग और कर्नाटक का नवाब चाँदा साहेब उसके पूर्ण नियन्त्रण में तथा उसके आश्रित थे, किन्तु इस समय उसके भाग्य ने पलटा खाया। अंग्रेजों को अपनी इस दयनीय स्थिति के कारण क्षोभ उत्पन्न होने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए वे फ्रांसीसियों का अधिकार सहन नहीं कर सकते; क्योंकि इनके द्वारा उनका समस्त व्यापार समाप्त हो जाता था। उन्होंने मुहम्मदअली के पक्ष का समर्थन करने का निश्चय किया।

अर्कांट का घेरा—चाँदा साहेब जब अंग्रेजों के विचारों से अवगत हुए तो उसने शीघ्र ही त्रिचनापली का घेरा डाला। त्रिचनापली पर चाँदा साहेब का अधिकार होना अवश्यम्भावी था। इसी समय क्लाइव की असाधारण प्रतिभा और योग्यता के कारण उसकी रक्षा का उपाय निकल आया। क्लाइव कम्पनी का एक सैनिक था, जो लिपिक (क्लर्क) के रूप में भारत आया था। उसने मद्रास के गवर्नर के सामने अपनी योजना रखी। **उसकी योजना थी कि शीघ्र ही चाँदा साहेब की राजधानी अर्कांट पर आक्रमण किया जाए। चाँदा साहेब अवश्य ही अर्कांट की रक्षा करने लिए त्रिचनापली से अर्कांट आएगा और तब मुहम्मद अली की सहायता करना तथा उसको मुक्त कराना सरल कार्य हो जाएगा।** मद्रास के गवर्नर ने उसकी योजना स्वीकार कर उसको अर्कांट पर आक्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। वह शीघ्र ही कुछ अंग्रेज तथा भारतीय सैनिक लेकर और अपने सैनिकों को सैनिक प्रशिक्षण देता हुआ अर्कांट की ओर अग्रसर हुआ। उसने शीघ्र ही अरक्षित अर्कांट को अपने अधिकार में कर लिया। जब चाँदा साहेब को त्रिचनापली में यह समाचार ज्ञात हुआ, तो उसने अपने पुत्र राजा साहेब के नेतृत्व में अर्कांट की रक्षार्थ अपनी आधी सेना भेजी। क्लाइव ने इस सेना का बड़े साहस, धैर्य तथा वीरता से सामना किया। ५३ दिन तक युद्ध चलता

वहां। अन्त में क्लाइव ने आक्रमणकारियों को मार भगाया। फ्रांसीसी जनरल लॉ बड़ा दुःखी हुआ। उसने भागकर श्रीरंगम नामक टापू में शरण ली। क्लाइव के कहने पर अंग्रेजों ने इस टापू पर आक्रमण किया। लॉ और फ्रांसीसी सैनिक बन्दी बना लिए गए। अर्काट का यह घेरा, भारतीय इतिहास में तथा ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है; चूंकि इसके द्वारा क्लाइव एवं अंग्रेजों की ख्याति बहुत बढ़ गई तथा फ्रांसीसियों का उत्साह बहुत कम हो गया।

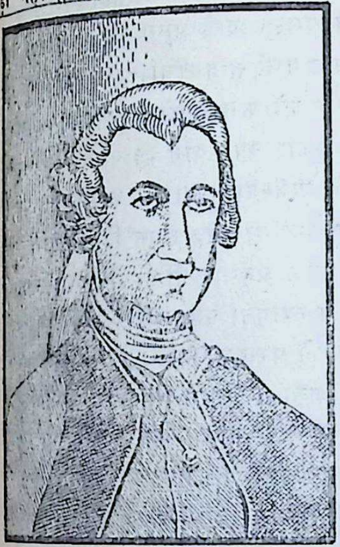
क्लाइव

मुहम्मदअली की मुक्ति—इसके उपरान्त अंग्रेजों ने शीघ्र ही त्रिचनापली में मुहम्मदअली को मुक्त करने का प्रयत्न किया। शीघ्र ही त्रिचनापली पर आक्रमण किया गया। फ्रांसीसी सेना ने आत्म समर्पण किया और कुछ समय के उपरान्त चाँदा साहेब ने तंजौर के राजा के सेनापति के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। चाँदा साहेब को बन्दी बनाकर शीघ्र ही उसका वध कर डाला गया। उसकी हत्या में अंग्रेजों का भी हाथ था। उसकी मृत्यु होने पर मुहम्मदअली को कर्नाटक का नवाब घोषित किया गया।

फ्रांसीसियों की पराजय—डूप्ले ने इस संकट की स्थिति का डटकर सामना करने का निश्चय किया। उसने अंग्रेजों के मित्र-नरेशों के विरुद्ध षड्यन्त्र करने और मराठों की सहायता भी प्राप्त करने का निश्चय किया, किन्तु उसकी योजनाओं को अंग्रेज सेनापति लॉरेंस ने निष्फल कर दिया। सन् १७५२ ई० तक अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के बहुत-से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। फ्रांसीसियों के पास केवल जिंजी और पाण्डिचेरी ही शेष रह गए थे। सन् १७५३ ई० के अन्त में परिस्थिति में विवश होकर डूप्ले ने अंग्रेजों से सन्धि की वार्ता चलाई, किन्तु उनका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। 1.2.71

डूप्ले की वापसी—फ्रांस में उक्त असफलताओं के कारण डूप्ले के मान और प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा। सन् १७५४ ई० में फ्रांस से गोड़ह्य को भेजा गया। उसे आदेश था कि वह डूप्ले का स्थान ग्रहण करे और घटनाओं की पूरी जाँच करे। अगस्त १७५४ ई० को वह पाण्डिचेरी आया और उसने अंग्रेजों से सन्धि की वार्ता प्रारम्भ की। अन्त में सन् १७५५ ई० में दोनों में पाण्डिचेरी की सन्धि हुई।

डूप्ले ने इस सन्धि का विरोध किया। उसका कथन था कि "गोडह्य ने एक ऐसे सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं, जिसमें उसके देश का सर्वनाश और उसमें राष्ट्र

का अपमान निहित है।" इसके उपरान्त डूप्ले फ्रांस चला गया। वहां ९ वर्ष के उपरान्त उसका देहान्त हो गया।

इस सन्धि द्वारा फ्रांस को बड़ी हानि उठानी पड़ी, क्योंकि अब इनका कर्नाटक पर प्रभाव समाप्त-सा हो गया। फ्रांसीसियों की भारत में राज्य स्थापित करने की भावना का सदा के लिए अन्त हो गया। इस सम्बन्ध में इतिहासकार मिल का कथन है कि "इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों को वे समस्त बातें प्राप्त हो गई जिनके लिए वे संघर्ष कर रहे थे और फ्रांसीसियों को उन समस्त सुविधाओं का त्याग करना पड़ा जो उनको प्राप्त थीं। इस शर्त से कि देशी नरेशों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा मुहम्मदअली वस्तुत: कर्नाटक अथवा अर्काट का नवाब हो गया और इस शर्त से कि दोनों राष्ट्रों के अधिकृत भागों की व्यवस्था समानता के सिद्धान्त पर की जाए चारों 'सरकारों पर जो महत्वपूर्ण अधिकार था वह त्याग दिया गया।" कुछ विद्वानों ने इस सन्धि का समर्थन किया। उनके अनुसार परिस्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई थी कि फ्रांस को अपना सब कुछ भारत में त्यागना पड़ता और उसमें अब इतनी शक्ति तथा सामर्थ नहीं थी कि वह अंग्रेजों को परास्त करता। सन्धि के कारण कुछ फ्रांसीसी हित अवश्य सुरक्षित हो गए, अन्यथा उनसे भी हाथ धोना पड़ता। इस सम्बन्ध में **प्रो० रोबर्टस्** का कथन है कि 'इस सन्धि को किसी भी रूप में फ्रांसीसियों के लिए अपमानजनक कहना बहुत बड़ी भूल होगी······स्पष्ट सत्य तो यह है कि डूप्ले की आयोजनाएँ जो साहसी, कुशल तथा महत्वपूर्ण थीं, पूर्णतया समाप्त हो गईं। वह गोडह्य का कार्य था कि इस विनाश से वह जो कुछ बचा सका उसने उसको बचा लिया। जितनी आशा की जाती थी उससे अधिक वह सफल रहा और अपने देशवासियों को क्षति-पूर्ति के लिए उसने अवसर प्रदान किया। यह सन्धि अधिक काल तक स्थायी न रह सकी, क्योंकि यूरोप में सप्त वर्षीय युद्ध सन् १७५६ ई० में आरम्भ हो गया और इससे भारत में भी दोनों कम्पनियों के मध्य युद्ध आरम्भ हो गया।

हैदराबाद में बुसी—उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि बुसी ने मुजफ्फरजंग की मृत्यु के उपरान्त निजामुलमुल्क आसफजहाँ के तृतीय पुत्र को दक्षिण का सूबेदार बनाकर उसका राज्यभिषेक करवाया। उसने फ्रांसीसियों को बहुत-सा धन भेंट-स्वरूप प्रदान किया। हैदराबाद में फ्रांसीसी शक्ति को बढ़ते हुए देख मरहठों को चिन्ता होने लगी, क्योंकि उनको भय था कि इससे निजाम की शक्ति बढ़ जाएगी और वह उनका प्रतिद्वन्द्वी बन जाएगा। पेशवा बालाजी बाजीराव ने सलावतजंग के स्थान पर निजामुलमुल्क आसफजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन को जो इस समय दिल्ली में था और जिसने उत्तराधिकारी के युद्ध में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया था, राज्यसिंहासन पर आसीन करने का निश्चय किया। मरहठों ने शीघ्र ही निजाम के राज्य पर आक्रमण किया। उन्होंने अंग्रेजों से इस कार्य में सहायता करने की प्रार्थना की, किन्तु अंग्रेजों ने उनकी कोई सहायता नहीं की। मरहठों के आक्रमण से बुसी तथा सलावतजंग दोनों बड़े भयभीत हुए। बुसी सलावत-

जंग के साथ मसुलीपट्टम की ओर भागने की योजना का निर्माण कर रहा था कि इसी समय उन्हें गाजीउद्दीन की मृत्यु का समाचार मिला। उसकी मृत्यु के कारण मरहठों का पक्ष दुर्बल हो गया। बुसी ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर मरहठों से सन्धि की, जिसके अनुसार सलावतजंग निजाम के पद पर आसीन रहा। उसने फ्रांसीसियों को मसुलीपट्टम के समीप कोंडविड का एक जिला भेंट किया।

फ्रांसीसियों के सामने नया संकट– फ्रांसीसी अपनी स्थिति पूर्णतया सुदृढ़ करने भी नहीं पाए थे कि उनको एक नई आपत्ति ने आ घेरा। निजाम के दरबार में लश्करखां के नेतृत्व में **एक नए दल का निर्माण हुआ जो फ्रांसीसियों की बढ़ती हुई शक्ति का विरोधी था।** इसके विरोध का कारण यह था कि फ्रांसीसी अपनी शक्ति का विस्तार करने के उद्देश्य से बहुत अधिक धन व्यय कर रहे थे तथा फ्रांसीसी सेना पर प्रचुर मात्रा में धन व्यय किया जा रहा था। धीरे-धीरे लश्कर खाँ के समर्थकों की संख्या में बड़ी वृद्धि हो गई। इसी समय बुसी बीमार था और वह मसुलीपट्टम चला आया था। बुसी की अनुपस्थिति के कारण लश्करखाँ का उत्साह बहुत बढ़ गया था। उसने अंग्रेजों से भी अपने कार्य में सहायता देने का वचन प्राप्त कर लिया था। जब यह समाचार डूप्ले को प्राप्त हुआ तो उसने सेनापति बुसी को हैदराबाद जाने की अनुमति दी और उससे यह कहा कि वहाँ वह जाकर समस्त कार्य अपने हाथ में ले ले। उसने डूप्ले के आदेशानुसार कार्य किया। निजाम बुसी का विरोध करने की शक्ति नहीं रखता था। इससे फ्रांसीसियों का प्रभुत्व हैदराबाद में पुनः स्थापित हो गया। बुसी ने फ्रांसीसी सेना के व्यय के लिए कुछ प्रदेश ले लिए और उसने निजाम को बाध्य किया कि वह अपनी सुरक्षा के लिए अपने समीप एक फ्रांसीसी दल रक्खे और भविष्य में कर्नाटक से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न न करे।

फ्रांसीसियों का दक्षिण में प्रभुत्व – इस प्रकार फ्रांसीसी दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हुए, किन्तु पाण्डिचेरी की सन्धि ने फ्रांसीसियों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचाया। इसका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। सन् १७५७ ई० में फ्रांसीसियों को शक्ति दृढ़ करने का एक स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। निजाम ने मैसूर-राज्य से मुगल-सम्राट का प्रतिनिधि होने के कारण कर माँगा। इस समय मरहठों ने मैसूर राज्य पर आक्रमण कर दिया था जिसके कारण मैसूर की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई थी। वह फ्रांसीसियों का मित्र था। इस समय सेनापति बुसी ने बड़ी योग्यता तथा बुद्धिमानी का कार्य किया। उसने निजाम और मरहठों में सन्धि कराई और मैसूर राज्य को बाध्य कर उचित कर दिलवाया। इसी समय दरबार में कुछ व्यक्तियों के प्रभाव में आकर निजाम सलावतजंग ने बुसी को पदच्युत कर दिया। यह घटना सन् १७५६ ई० की है। बुसी शीघ्र ही हैदराबाद पहुँचकर युद्ध की तैयारी करने में व्यस्त हो गया। सलावतजंग उनकी तैयारियाँ सुनकर बड़ा भयभीत हुआ। उसने अपनी आत्म-रक्षा के लिए अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण अंग्रेजों ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। निजाम ने बाध्य होकर बुसी को पुनः अपने पद पर नियुक्त किया। इससे हैदराबाद में पुनः फ्रांसीसियों की धाक जम गई।

डूप्ले का चरित्र और उसकी पराजय के कारण—डूप्ले की गणना **उच्च-कोटि के कूटनीतिज्ञों तथा चतुर शासकों में की जाती है** । उसकी योग्यता तथा **प्रतिभा का सामना करने की क्षमता कोई अन्य** व्यक्ति नहीं कर सकता था। मैलसिन के शब्दों में, "डूप्ले एक कुशल शासक और संगठन-कर्त्ता था । उसमें अदम्य उत्साह, साहस तथा देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी, वह तत्कालीन परिस्थिति का बड़ा अच्छा ज्ञाता था और उसने सदा लाभ उठाने का प्रयत्न किया था ।" वह बहुत **दूरदर्शी था** । वह भारत में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना करना चाहता था और इसी कारण उसने भारत की राजनीति में सक्रिय भाग लेकर फ्रांस की मान और प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ाया था । वह अपनी योग्यता के आधार पर ही हैदराबाद में मुजफ्फरजंग को तथा कर्नाटक में चाँदा साहेब को राज्यसिहासन पर आसीन करने में सफल हुआ। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह अंग्रेजों को भारत से निकाल दे और समस्त भारतीय व्यापार पर फ्रांसीसियों का आधिपत्य स्थापित हो । प्रारम्भ में उसको अपने उद्देश्यों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, किन्तु बाद में कम्पनी की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई और उनको विशेष आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वास्तव में वह राजनीति में इतना अधिक उलझ गया था कि वह व्यापार की ओर उतना अधिक ध्यान नहीं दे सका जितना कि आवश्यक था। इसके अतिरिक्त उसने फ्रांस की सरकार को अपने पक्ष में लेने का प्रयत्न नहीं किया और न कभी उसको वास्तविक परिस्थिति से अवगत कराया, जिसके कारण सरकार का उस पर से विश्वास उठ गया।

डूप्ले की नीति के दोष—डूप्ले की नीति में कुछ प्रमुख दोष थे, जो इस प्रकार थे—

(१) उसने विदेशी राजाओं व नवाब की सहायता कर लम्बे-लम्बे उपहार ग्रहण किए, जिसका परिणाम अन्य पदाधिकारियों पर भी पड़ा । वे पथ-भ्रष्ट हो गए और उन्होंने कम्पनी के प्रति अपने कर्त्तव्यों को तिलाञ्जली दे दी । वे भी स्वार्थी हो गए और उन्होंने भी भेंट लेना स्वीकार किया ।

डूप्ले की नीति के दोष

(१) उपहार ग्रहण करना ।
(२) कम्पनी की शोचनीय आर्थिक स्थिति ।
(३) धन का अधिक व्यय ।
(४) जहाजी बेड़े का शक्तिहीन होना ।

(२) उसको विभिन्न युद्धों में भाग लेना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप **कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई** । यदि इन युद्धों के कारण कम्पनी को लाभ हुआ होता और कम्पनी का राजकोष धन से परिपूर्ण हुआ होता तो कम्पनी के अधिकारी उसकी नीति का विरोध नहीं करते, वरन् उसकी अत्याधिक सहायता करने के लिए सदा तत्पर रहते । डूप्ले को यह आशा थी कि वह विजित प्रदेशों की आय से कम्पनी के धन की पूर्ति में सफल होगा, किन्तु उसकी यह धारणा ठीक न निकली ।

(३) **उसने पांच वर्षों में ६० लाख रुपया व्यय कर दिया,** परन्तु विजित प्रदेशों से उनको इतनी अधिक आय नहीं हो पाई।

(४) इसके अतिरिक्त डूप्ले ने कभी इस बात पर विचार भी नहीं किया कि फ्रांसीसियों का **जहाजी बेड़ा अंग्रेजों के जहाजी बेड़े के सामने शक्तिहीन है।** ऐसी दशा में फ्रांसीसियों का भारत में प्रभुत्व स्थापित करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

डूप्ले का मूल्यांकन—कुछ इतिहासकारों ने उसको घमण्डी, अवसरवादी, चरित्र-हीन तथा षड्यन्त्रकारी कहा है, किन्तु वास्तव में उसका जितना कलुषित चरित्र-चित्रण किया गया है उसमें सत्य का अंश बहुत कम है। **वास्तव में वह बड़ा दूरदर्शी, साहसी तथा देशभक्त था जिसने अपने देश के लिए भीषण परिस्थितियों का बड़े धैर्य तथा योग्यता के साथ सामना किया।** वास्तव में गृह-सरकार उनके कार्यों का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाई, जिसकी उदासीनता के कारण ही वह असफल रहा। वास्तव में उसकी नीति जिसका सुन्दर ढंग से संचालन हुआ था और साथ ही जो फ्रांसीसियों के हितों को पूरी तरह ध्यान में रखकर निर्मित की गई थी, सफलीभूत नहीं हो सकी। उसमें कुछ ऐसी भूल थीं, जिसके कारण वह सफल नहीं हो सका। **सर्वप्रथम तो यह कि वह इस बात को नहीं समझ सका कि जिस कार्य को वह कर रहा है यदि उसी कार्य को अंग्रेजों ने आरम्भ कर दिया तो उससे अंग्रेजों के मान और प्रतिष्ठा की बड़ी वृद्धि होगी।** यदि वह इस बात को समझ लेता तो वह मुहम्मदअली की शक्ति का पूर्णतया दमन करने में सफल हो जाता और अंग्रेजों को उसकी सहायता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त न होता और न उनको चाँदा साहेब की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने का अवसर ही प्राप्त होता। चाँदा साहेब का त्रिचनापली पर शीघ्र ही अधिकार हो जाता तो परिस्थिति में एकदम परिवर्तन हो जाता। इसके अतिरिक्त **डूप्ले के पास बुसी के अतिरिक्त कोई अन्य सेनापति होता तो उसको अवश्य सफलता प्राप्त होती।** यदि युद्ध सन् १७५१ ई० के आरम्भ में अथवा उसके अन्त होने तक समाप्त हो जाता तो वह भारत में फ्रांस के साम्राज्य का संस्थापक स्वीकार किया जाता, किन्तु वह अयोग्य सेनापतियों के कारण ऐसा करने में असमर्थ रहा, जिसके कारण उसको दुर्दिनों का सामना करना पड़ा।

तृतीय कर्नाटक युद्ध—१७५६-६३—पाण्डिचेरी की सन्धि पूर्णतया कार्यान्वित भी न हो पाई थी कि योरोप में सन् १७५६ ई० में सप्त वर्षीय युद्ध इङ्गलैण्ड और फ्रांस के मध्य आरम्भ हो गया और उसके परिणामस्वरूप भारत में भी युद्ध का श्रीगणेश हुआ। द्वितीय कर्नाटक-युद्ध के कारण फ्रांसीसियों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा था जिसका वर्णन उक्त पृष्ठों में किया जा चुका है। उस समय मद्रास और पाण्डिचेरी के पास युद्ध के लिए पर्याप्त सेनाएं नहीं थीं। बुसी हैदराबाद में परेशान था, किन्तु उसने अपनी योग्यता के कारण वहाँ अपनी आर्थिक स्थिति को उन्नत किया। इसके उपरान्त उसने आंध्र प्रदेश पर फ्रांसीसियों के अधिकार

को निश्चित करने की ओर ध्यान दिया। उधर क्लाइव बंगाल की राजनीति में बुरी तरह उलझा हुआ था। उसने चन्द्रनगर पर अधिकार किया और शीघ्र ही बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में परास्त किया।

काउण्ट लैली का भारत आगमन—फ्रांसीसी सरकार ने लैली नाम के एक वीर, योग्य व सहासी व्यक्ति को भारत भेजा कि वह वहाँ जाकर भारत से अंग्रेजों को सदा के लिए बाहर निकाले तथा साम्राज्य-विस्तार के लिए प्रयत्न करे। जिस कार्य के लिए लैली भेजा गया था उस कार्य के लिए वह सर्वथा अयोग्य था, क्योंकि वह बड़ा हठी और क्रोधी था, जिसके कारण कम्पनी के कर्मचारियों के साथ उसका व्यवहार अच्छा न रहा। भारत-आगमन पर उसने भ्रष्टाचार का अन्त करने का प्रयास किया, जिससे बहुत-से कर्मचारी उसके विरोधी हो गए और उन्होंने पूर्ण रूप से उसकी सहायता नहीं की। वह शीघ्र ही उनसे रुष्ट हो गया। यदि वह थोड़ी योग्यता और कुशलता से कार्य करता तो वह कम्पनी के कर्मचारियों का समर्थन प्राप्त करने तथा अंग्रेजों के साथ दृढ़ नीति का पालन करने में सफल होता। इस प्रकार लैली जिसमें यद्यपि पर्याप्त गुण विद्यमान थे अपने ही दोषों के कारण सफलता प्राप्त न कर सका।

दक्षिण में युद्ध—उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि लैली के आगमन पर अंग्रेजों ने अपनी शक्ति को पर्याप्त दृढ़ कर लिया था। बंगाल में उन्होंने सिराजुद्दौला को परास्त कर **मीर जाफर** को नवाब बनाया और पुर्तगालियों की समस्त कोठियों और बस्तियों पर अधिकार कर लिया। बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार होने के कारण वे देश के पर्याप्त साधनों का प्रयोग उपयोग करने में सफल हुए। लैली ने पाण्डिचेरी **आने पर सैण्ट डेविड के दुर्ग पर आक्रमण किया** और बिना किसी विशेष प्रतिरोध **के २ जून १७५८ को उस पर फ्रांसीसियों का अधिकार हो गया**। इसके उपरान्त वह अंग्रेजों के द्वितीय प्रसिद्ध गढ़ मद्रास पर आक्रमण करना चाहता था, किन्तु धन के अभाव और फ्रांसीसी कर्मचारियों के असहयोग के कारण उसको अपनी योजना में परिवर्तन करना पड़ा। उसने धन की कमी की पूर्ति करने के उद्देश्य में तंजौर के राजा पर आक्रमण करने का निश्चय किया जिस पर फ्रांसीसियों का ५३ लाख रुपया था, जिसके देने का वचन उसने चाँदा साहेब तथा फ्रांसीसियों का घेरा उठाने के समय किया था। लैली को अपने इस अभियान में सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने सेनापति बुसी को हैदराबाद से बुला लिया जिसका उसकी सत्ता पर बुरा प्रभाव पडा; क्योंकि बुसी के चले आने पर वहाँ फ्रांसीसी प्रभाव कम होने लगा और अंग्रेजों ने वहाँ अपना प्रभाव आरम्भ किया। तंजौर के राजा को अंग्रेजों ने सहायता दी। फ्रांसीसियों को कारीकल के युद्ध में अंग्रेजों ने परास्त किया।

मद्रास पर आक्रमण—सन् १७५८ ई० में फ्रांसीसियों ने मद्रास पर आक्रमण किया। क्लाइव ने मद्रास की रक्षा के लिए कलकत्ता से कर्नल फोर्ड को भेजा, यद्यपि कौंसिल ने उसका विरोध किया। वह विजयनगरम के राजा आनन्दराव की सहायता के लिए भेजा गया था, जिसने फ्रांसीसियों के विरुद्ध विद्रोह कर उनकी

कोठी पर अधिकार किया। **कर्नल फोर्ड** ने फ्रांसीसी सेना को कोंडो नामक स्थान पर परास्त किया और अगले वर्ष अप्रैल में उसने मसुलीपट्टम पर अधिकार स्थापित किया। उसने शीघ्र ही निजाम सलावतजंग से सन्धि की, जिसके अनुसार निजाम ने फ्रांस की मित्रता का परित्याग किया औरमसुलीपट्टम के समीप के कुछ प्रदेश उसने अंग्रेजों को भेट-स्वरूप प्रदान किए, जिससे फ्रांस की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा और उनका हैदराबाद से प्रभाव उठ गया।

अंग्रेजों को सहायता मिलना—मद्रास का घेरा चलता रहा, किन्तु लॉरेन्स की योग्यता तथा कुशलता के कारण फ्रांसीसियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्त में उनको यह घेरा उठाना पड़ा। इसी समय बम्बई से अंग्रेजी बेड़ा आ गया था जिसके आगमन से फ्रांसीसी हतोत्साहित हो गए।

फ्रांसीसियों की पराजय—इस प्रकार लैली की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। एक ओर उसको सेनापति बुसी का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि दोनों की नीतियों में विशेष मत-भेद था, दूसरी ओर पाण्डिचेरी की कौंसिल ने उसको धन की सहायता प्रदान न की तथा गृह-सरकार से भी उसको पर्याप्त सहायता तथा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इसी बीच अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में कई स्थानों पर युद्ध हुआ जिसमें **सर आयर कूट** के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना **वाण्डेवश** के युद्ध में बुरी तरह परास्त हुई। **यह युद्ध सन् १७६० ई० में हुआ।** फ्रांसीसी सेनापति बुसी बन्दी बना लिया गया और फ्रांसीसी सेना पराजित व अपमानित होने पर पाण्डिचेरी की ओर भागी। इस पराजय से फ्रांसीसियों का उत्साह बहुत शिथिल पड़ गया। इसी समय लैली के मन में हैदरअली (मैसूर का शासक) से सहायता प्राप्त करने की भावना उदय हुई। उसने उससे सहायता की प्रार्थना की। हैदरअली अपनी शक्ति का विस्तार करना चाहता था। उसने फ्रांसीसियों को सहायता देने का वचन दिया और उसने उनकी सहायता के लिए सेना भेजी, किन्तु जब उसको यह समाचार विदित हुआ कि फ्रांसीसियों की शक्ति अंग्रेजों की शक्ति की अपेक्षा बहुत कम है, तो उसने अपना इरादा बदल दिया और अपनी सेना को वापिस बुला लिया।

अंग्रेजों का त्रिचनापली पर आक्रमण—इससे लैली का हृदय टूट गया और उसकी स्थिति पूर्णतया निराशाजनक हो गई। अंग्रेजों ने उसकी इस दयनीय दशा का लाभ उठाने के अभिप्राय से त्रिचनापली पर आक्रमण किया। फ्रांसीसियों ने प्रारम्भ में बड़ी दृढ़ता, साहस तथा वीरता से अंग्रेजों का सामना किया, किन्तु अन्त में अन्नाभाव, फौज, धन आदि के अभाव के कारण वे आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य हुए। फ्रांसीसियों का पतन हुआ और उनके समस्त प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गए। लैली बन्दी कर लिया गया और उसको बन्दी के रूप में फ्रांस भेज दिया गया, जहाँ उस पर अभियोग चलाया गया और उसको १७६६ ई० में मृत्यु-दण्ड मिला। यह उसके साथ अन्याय था; क्योंकि वह न कायर था और न देशद्रोही ही।

पैरिस की सन्धि—तृतीय कर्नाटक युद्ध का अन्त पैरिस की सन्धि होने पर हुआ। यह संधि १७६२ ई० में हुई। इस संधि के अनुसार (i) फ्रांसीसियों को पा-ण्डि

चेरी मिल गया, किन्तु उनको उसकी किले-बन्दी करने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, (ii) भारत के पूर्वी तट पर सैनिकों की संख्या सीमित कर दी गई, (iii) बंगाल में फ्रांसीसियों को केवल व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ और वहां से उनकी राजनीतिक शक्ति का पूर्णतया अन्त हो गया, (iv) मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब स्वीकार किया गया, (v) सलावतजंग को निजाम स्वीकार किया गया, किन्तु वहीं से फ्रांसीसी प्रभाव का एकदम अन्त कर दिया गया।

सन्धि का प्रभाव—इस प्रकार संधि द्वारा अंग्रेजों ने भारत से फ्रांसीसी प्रभाव को समाप्त किया, यद्यपि कुछ फ्रांसीसियों ने विभिन्न समयों पर अंग्रेजों के विरुद्ध देशी नरेशों से मिलकर कार्य किया, किन्तु उनको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।[1] उनकी महत्वाकांक्षाओं का अन्त सन् १८१८ ई० में हुआ जब लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत में अंग्रेजी प्रभुता पूर्णतया स्थापित कर दी।

(1985)

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण

(१) आर्थिक।
(२) राजनीतिक।
(३) सैनिक।
(४) सामाजिक।
(५) धार्मिक।

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण—फ्रांसीसियों ने भारत में फ्रांसीसी राज्य की स्थापना के लिए घोर प्रयत्न किया और वे अपने व्यापार को बढ़ाना चाहते थे, किन्तु वे अपने दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सके। सौभाग्य से उनको योग्य पदाधिकारी भी प्राप्त हुए, किन्तु फिर भी उनकी अंग्रेजों के सामने एक न चली और उनको असफलता का मुंह देखना पड़ा। उनकी पराजय के अनेक कारण थे, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) आर्थिक कारण—फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। वह एक प्रकार की दिवालिया कम्पनी थी—(i) उसका व्यापार उन्नत अवस्था में नहीं था और उसको भारतीय व्यापार से विशेष लाभ भी नहीं था। (ii) जब डूप्ले ने फ्रांसीसी व्यापार की ओर से ध्यान हटाकर भारत में राज्य-स्थापना के उद्देश्य से भारतीय नरेशों के संघर्षों में पड़ना आरम्भ कर दिया, तब तो कम्पनी की आर्थिक दशा और भी अधिक शोचनीय हो गई। (iii) कम्पनी के संचालकों तथा भागीदारों में विशेष मतभेद उत्पन्न हो गया और उनकी ओर से कम्पनी के कार्यों में सहयोग

---

1. "The Anglo French stuggle in India defitenitly ended in 1763 with the Peace of Paris. Their future attempts to regain the lost ground was without any prospect of success. The grand designs of St. Lubin at the Court of Nana Fandnavis of the intrigues of Haider and Tippu with Napolean served only as spurs to the ambition of the English in the work of conquest and consolidation. That work proceeded uncheked without the fear of rival, with the removal of the French from the field of operations the road for English expansion became clear. Fighting there still was and often hard, but the fighting was with Indian powers and not with any European rival.

—**Dr. Ishwari prasad & S. K. Subedar : History of Modern India, p. 54.**

नहीं मिला । इसका प्रभाव यह हुआ कि न तो कम्पनी को आर्थिक लाभ ही हुआ और न कम्पनी राज्य-उद्देश्य में ही सफलता प्राप्त कर सकी । (iv) डूप्ले की नीति के कारण कम्पनी को बहुत अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी; क्योंकि डूप्ले ने बहुत अधिक धन व्यय कर दिया, जिस भार को कम्पनी सहन करने में असमर्थ थी । इसी कारण कम्पनी ने उसकी नीति का समर्थन नहीं किया । डूप्ले में पर्याप्त उत्साह था और इसी कारण उसको प्रारम्भिक सफलताएँ भी प्राप्त हुईं । (v) आर्थिक दशा के शोचनीय होने के कारण हर समय रुपये की आवश्यकता बनी रहती थी, जिससे युद्ध उचित रूप से संचालित नहीं हो पाया और न युद्ध-सम्बन्धी सामग्री ही पर्याप्त मात्रा में एकत्रित तथा संग्रहीत की जा सकी । (vi) इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी की आर्थिक अवस्था उन्नत थी । उनका व्यापार फ्रांसीसियों की अपेक्षा बड़ा विस्तृत था और उनके पास बहुत अधिक साधन थे । उत्तरी प्रदेशों और विशेषत: बंगाल में अंग्रेजी व्यापार अधिक उन्नत था । फ्रांसीसियों का अधिकार दक्षिण पर था जो व्यापारिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं था ।

(२) **राजनीतिक कारण**—फ्रांसीसी कम्पनी की सफलता में राजनीतिक कारणों का भी स्थान प्रमुख था—(i) फ्रांस की गृह-सरकार भारत स्थिति फ्रांसीसी कम्पनी के प्रति विशेष दिलचस्पी नहीं लेती थी । वह वास्तव में इससे उदासीन ही थी, क्योंकि व्यय बहुत अधिक हो रहा था आय कम थी । प्रति वर्ष डूप्ले कार्य-संचालन के लिए गृह-सरकार से रुपया लिया करता था । (ii) फ्रांस का ध्यान उपनिवेशों की स्थापना के लिए आकर्षित नहीं हो पाया था । वह भारत में राज्य-स्थापना की अपेक्षा व्यापार पर विशेष महत्व देना चाहती थी । जबकि डूप्ले का ध्यान राज्य-स्थापना की ओर विशेष रूप से था । इससे दोनों में सहयोग की भावना उदय नहीं हो पाई । (iii) इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी के संचालक व्यापार और राज्य-स्थापना के लिए पर्याप्त सहयोग तथा सहायता करने को सदा उद्यत रहते थे । इसके विपरीत फ्रांस में लुई १५वें का शासन था और उसके मन्त्री आदि अपने समय को भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे । वे राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्य से उदासीन रहते थे, जबकि इंगलैंड का प्रसिद्ध **ज्येष्ठ पिट** एक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ तथा युद्ध-मन्त्री था, जिसने इंगलैण्ड को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न किया । इन मन्त्रियों के भेद तथा दोनों देशों की दशा के कारण ही यूरोप में फ्रांसीसी परास्त हुए और इंगलैण्ड को सफलता प्राप्त हुई । इनका प्रभाव भारत पर विशेष रूप से पड़ा । (iv) इंगलैण्ड ने फ्रांस को यूरोप के युद्धों में इतना अधिक व्यस्त कर दिया कि वह भारत की ओर विशेष ध्यान देने में असमर्थ रहा । समस्त युद्धों का निर्णय भारत में न होकर यूरोप में हुआ । जो जाति यूरोपीय युद्धों में विजयी हुई वही विजयी मानी गई । (v) फ्रांसीसी कम्पनी प्रत्यक्ष रूप के फ्रांस की सरकारके अधीन थी । उसकी नीति का निश्चय करना फ्रांस की सरकार के हाथ में था और उसका निर्णय फ्रांस की अपनी निजी नीति पर अवलम्बित था । इसके विपरीत अंग्रेजी कम्पनी इंगलैण्ड की सरकार के नियन्त्रण से मुक्त थी । उसकी नीति

का संचालन कम्पनी के संचालक अपने तथा कम्पनी के हितों का ध्यान रखकर किया करते थे और उन्होंने भारतीय पदाधिकारियों के कार्यों में सहयोग प्रदान किया और उस समय उसकी भरसक सहायता की। (vi) फ्रांस की सरकार ने भारतीय पदाधिकारियों के साथ सद्व्यवहार नहीं किया, जिसके कारण कम्पनी के कर्मचारी उसके कार्यों से उदासीन होकर पथ-भ्रष्ट हो गए। वे अपने कर्त्तव्य पालन में विशेष दिलचस्पी नहीं लेते थे। डूप्ले तथा लैली के प्रति फ्रांस की सरकार का व्यवहार उचित नहीं था। ये दोनों देश-भक्त थे और देश की उन्नति के लिए इन्होंने भरसक प्रयत्न किया और फ्रांस की सरकार ने उनको पारितोषिक दिया कि लैली को प्राण-दण्ड तथा डूप्ले का अनादर आदि। इसके विपरीत अंग्रेजों ने अपने कार्यकर्त्ताओं का सम्मान किया और वे उनको विशेष आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इससे सरकारी कर्मचारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे जी-जान से कम्पनी के कार्यों को करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। (vii) इसके साथ-साथ फ्रांसीसी कर्मचारियों में पारस्परिक सहयोग की भावना का नितान्त अभाव था। डूप्ले और ला बूंदोने में सहयोग न था और बुसी ने भी उस समय सहायता प्रदान नहीं की जिस समय उसकी विशेष आवश्यकता थी। इसके कारण फ्रांसीसी कम्पनी को विशेष हानि उठानी पड़ी। (viii) बाद में डूप्ले की नीति का परित्याग कर दिया गया और उसको भारत से वापिस बुला लिया गया। यदि फ्रांस की सरकार उसकी नीति का समर्थन करती और उस समय पर आर्थिक तथा सैनिक सहायता प्राप्त होती रहती तो सम्भव था कि वे विजयी हो जाते।

(३) **सैनिक कारण**—सैनिक कारणों ने भी फ्रांसीसियों की पराजय में बड़ा सहयोग प्रदान किया—(i) यूरोप की जातियों की सैनिक शक्ति का आधार जल-सेना थी। व्यापार पर उसी राज्य का एकाधिकार स्थापित हो सकता था जिसकी समुद्री शक्ति उच्चतम हो, क्योंकि व्यापारिक मार्ग पर अधिकार करना इसके लिए अत्यन्त आवश्यक था। फ्रांसीसी कम्पनी की अपेक्षा अंग्रेजों का समुद्र पर अधिक अधिकार था और उनकी समुद्री शक्ति बहुत उन्नत थी। इसका सबसे बड़ा लाभ यह था कि अंग्रेजी कम्पनी का व्यापार अबाध तथा तीव्र गति से चलता रहता था और उसको समय-समय पर इंगलैण्ड से सहायता प्राप्त हो जाती थी। ला बूंदोने को मद्रास का घेरा इसलिए उठाना पड़ा कि मद्रास के समीप अंग्रेजों की नौ सेना का आगमन हो चुका था। उसके आगमन के कारण उनमें भय उत्पन्न हो गया। (ii) फ्रांसीसियों ने इस ओर ध्यान न देकर स्थल-सेना की ओर ध्यान दिया जिसमें वे अंग्रेजों की अपेक्षा कम संगठित तथा व्यवस्थित थे। अंग्रेजों को आवश्यकता के समय बंगाल तथा बम्बई की ओर से आवश्यक सेना बिना किसी परेशानी व कठिनाई के प्राप्त हो सकती थी, जबकि फ्रांसीसी इस परिस्थिति में बिलकुल भी नहीं थे। (iii) फ्रांस को केवल मॉरीशस से सहायता मिल सकती थी, किन्तु मॉरीशस से सहायता लेकर भारत में साम्राज्य की स्थापना को मूर्तरूप देना असम्भव था।

(४) **सामाजिक कारण**—फ्रांसीसी कर्मचारियों में एक दूसरे के प्रति सहयोग

की भावना का नितान्त अभाव होने के साथ-साथ कुछ अन्य दुर्बलताएँ भी विद्यमान थीं। सर्वप्रथम तो यह कि फ्रांसीसियों में योग्य नेताओं का अभाव था। केवल डूप्ले, बुसी तथा लैली ही योग्य व्यक्ति थे और उनमें भी कुछ व्यक्तिगत कमियाँ विद्यमान थीं। उदाहरण के लिए डूप्ले उच्च संगठनकर्त्ता तथा शासक था, किन्तु उसमें सैनिक प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। बुसी उच्च-कोटि का सेनानायक था, परन्तु उच्च-कोटि का शासक न था। साथ ही बड़ा स्वार्थी भी था। परन्तु लैली देश-भक्त तथा ईमानदार था, किन्तु वह बड़ा क्रोधी व हठी था। वह किसी की बात नहीं मानता था और अपने विचारों की ही मान्यता रखता था। इन सब व्यक्तिगत दोषों का दुष्परिणाम उनको भोगना पड़ा। इसके विपरीत अंग्रेजों में पर्याप्त योग्य नेता थे। क्लाइव की प्रतिभा के सामने सबकी प्रतिभा मन्द थी।

(५) **धार्मिक कारण**—फ्रांसीसियों की धार्मिक नीति बड़ी कठोर थी। उन्होंने भारतीय जनता को बाध्य कर ईसाई धर्म अंगीकार करवाया, जिससे वे भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त न कर सके, जबकि अंग्रेजों की धार्मिक नीति उदार थी और उन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न भी नहीं किया।

उक्त कारणों के फलस्वरूप फ्रांसीसियों का भारत-विजय का स्वप्न पूर्ण न हो सका, जबकि अंग्रेज अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) कर्नाटक तथा दक्षिण में डूप्ले की क्या नीति थी तथा वह क्यों असफल रहा?

(२) डूप्ले की नीति की व्याख्या करो और उसकी असफलता के कारण बताइए।

(२) डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिए और बताइए की क्या यथार्थ में फ्रांस की सरकार के असहयोग के कारण ही वह असफल हुआ?

मध्य प्रदेश—

(१) 'डूप्ले अपने अन्तिम पतन होने पर भी भारतवर्ष के इतिहास में महान् और चमकता हुआ व्यक्ति है, आलोचना कीजिए।

(२) "अपने राजा तथा देशवासियों द्वारा समर्थन न प्राप्त होने से डूप्ले की महान् प्रतिभा अंग्रेजों के सुव्यवस्थित राष्ट्रीय प्रयत्न के समक्ष कुछ न कर सकी।" आलोचना करो।

(४) 'यद्यपि डूप्ले की अन्तिम असफलता हुई, परन्तु फिर भी वह भारतीय इतिहास में एक प्रमुख तथा प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

(४) डूप्ले की साम्राज्य योजना की असफलता के कारण लिखिए।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

(१) 'डूप्ले अपने अन्तिम पतन होने पर भी भारतवर्ष के इतिहास में महान् और चमकता हुआ व्यक्ति है।' इस कथन की आलोचना कीजिए।

(२) अट्ठारहवीं शताब्दी के अंग्रेज और फ्रांसीसी संघर्ष का वर्णन करो।

(३) डूप्ले के उद्देश्य तथा नीति का साम्राज्य स्थापना के सम्बन्ध में वर्णन करो।

(४) 'डूप्ले को अपने चरित्र तथा कार्यों में वह प्रशंसा प्राप्त नहीं हुई जिसके लिए वह योग्य था।' विवेचना करो.।

(५) डूप्ले की महत्वकांक्षाओं का वर्णन करो। उसकी अस्थायी असफलता तथा स्थायी पतन के कारणों का उल्लेख करो।

(६) कर्नाटक के युद्धों में अंग्रेजों की सफलता अपने प्रतिद्वन्द्वी फ्रांसीसियों के ऊपर क्यों हुई ?

(७) सन् १७४० से १७५६ ई० तक अंग्रेजी शक्ति के विकास का वर्णन करो।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) सन् १७४४-१७६३ में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष का वर्णन कीजिए और उसमें फ्रांसीसियों की असफलता के कारण बतलाइए।

(२) डूप्ले की नीति की विवेचना उसके पतन के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कीजिए।

(३) अर्काट के घेरे पर एक टिप्पणी लिखो।

(४) डूप्ले और क्लाइव के उद्देश्यों और नीतियों की तुलना कीजिए।

(५) दक्षिण में राजनीतिक प्रभुत्व के लिए फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए और उसमे अंग्रेजों की सफलता के कारण बतलाइए।

(६) ब्रिटिश ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने में सफलता के कारण बतलाइए तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्र ऐसा करने में क्यों असफल हुए ?

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) डूप्ले की नीति और कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और उसकी असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

(२) अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी भारतवर्ष में अपना साम्राज्य स्थापित करने में क्यों असफल रहे ?

(३) अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों को भारत में साम्राज्य स्थापित करने में क्यों सफलता प्राप्त हुई ?

(४) भारत में फ्रांसीसियों के विरुद्ध अंग्रेजी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की सफलता के कारणों की समीक्षा कीजिए।

(५) क्लाइव तथा डूप्ले के चरित्र, नीति तथा उपलब्धियों की तुलना कीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) डूप्ले पर एक टिप्पणी लिखो।

(२) भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न क्यों सफल न हो सका ? कारण लिखिए।

(३) अंग्रेज व फ्रांसीसियों के संघर्ष तथा कर्नाटक की तीनों लड़ाइयों के कारण लिखिए।

३

बंगाल में नवाबी का अन्त

अंग्रेजों का राज्य भारत में बंगाल की ओर से स्थापित हुआ। यूरोपीय जातियों ने बंगाल में अपनी कोठियों की स्थापना मुगलों के समय में ही कर ली थी। अंग्रेजों की कोठियाँ कलकत्ते तथा कासिम बाजार में, फ्रांसीसियों की चन्द्रनगर तथा डचों की चिन्सुरा में थीं। जब तक मुगल-साम्राज्य दृढ़ तथा शक्तिशाली रहा तब तक यूरोपीय जातियों का ध्यान व्यापार की ओर था और उन्होंने उसे व्यापारिक प्रगति की ओर ही रक्खा, किन्तु मुगल-सत्ता का पतन होने पर जब बंगाल के सूबेदारों ने स्वतन्त्र रूप से शासन करना आरम्भ कर दिया और उनकी शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई तो यूरोपीय निवासियों मुख्यतः अंग्रेजों ने बंगाल में लूट-खसोट आरम्भ कर दी। उनके व्यापारिक केन्द्रों के साथ-साथ सैनिक केन्द्र भी बन गए और उन्होंने उनकी किलेबन्दी आरम्भ कर दी। उस समय के यूरोपीय लोग, जिस दृष्टि से भारत को देखते थे, उसका परिचय एक अंग्रेज सैनिक कर्नल मिल के उद्धरण से मिल जाएगा जो उसने जर्मनी के फ्रांसिस को सन् १७४६ ई० में लिखा था। वह इस प्रकार है कि "मुगल-साम्राज्य सोने और चाँदी से भरपूर है। यह साम्राज्य सदा निर्बल और रक्षा-रहित रहा है। यह आचर्श्य की बात है कि समुद्री शक्ति रखने वाले किसी यूरोपीय राजा ने बंगाल को जीतने का प्रयत्न नहीं किया। एक ही मार में अनन्त धनराशि प्राप्त की जा सकती है, जिसके सामने ब्राजील और पेरु की खाने मात खा जाएँगी।" वास्तव में उसके कथन में पर्याप्त सत्यता विद्यमान थी। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि अंग्रेज प्लासी के युद्ध में थोड़े से ही प्रयत्न से सफल हो गए और उनका अधिकार भारत के धनिक तथा धन-सम्पन्न प्रान्त पर स्थापित हो गया और धीरे-धीरे उनका समस्त भारत पर अधिकार हो गया।

बंगाल के प्रान्तीय सूबेदार

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त बंगाल के सूबेदारों ने भी स्वतन्त्र रूप से शासन करना 'आरम्भ कर दिया। दिल्ली के मुगल-सम्राटों की सत्ता बंगाल के सूबेदारों पर नाम-मात्र की थी। वे उसका प्रयोग केवल उसी समय किया करते थे जब वे उससे कोई लाभ होता हुआ समझते थे। अतः उन पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं था।

मुर्शिद कुली खाँ—फरुखसियर के समय में **मुर्शिद कुली खाँ**, सन् १७१३ ई० में बंगाल का नवाब बना। इससे पूर्व वह वहाँ का दीवान था, किन्तु बंगाल के सूबेदार से झगड़ा होने के कारण उसने आधुनिक मुर्शिदाबाद में निवास करना आरम्भ कर दिया जो उस समय मुक्सावाद के नाम से विख्यात था। उसने ही इस नगर का नाम सन् १७०४ ई० में मुर्शिदाबाद रखा। वह एक योग्य शासक था, उसमें अपने विरोधियों

के साथ कठोरता का व्यवहार किया और उनको सर उठाने का अवसर नहीं दिया।

अलीवर्दी खाँ—मुर्शिदकुली खाँ की मृत्यु सन् १७२५ ई० में हुई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका दामाद **शुजा खाँ** बंगाल के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। सन् १७३९ ई० में उसकी भी मृत्यु हो गई। उसके समय में बिहार पर भी बंगाल का अधिकार हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र **सरफराज खाँ** बंगाल का नवाब बना। **अलीवर्दी खाँ**, जो बिहार का नायब नाजिम था, अपनी शक्ति को संगठित कर रहा था। उसने सन् १७४० ई० में सरफराज का वध कर अपने आपको बंगाल का शासक घोषित किया। मुगल सम्राट ने बाद में उसको बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का नवाब स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अलीवर्दी खाँ ने बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा पर अपना अधिकार स्थापित किया।

बंगाल के प्रान्तीय सूबेदार

(१) मुर्शिदकुली खाँ।
(२) शुजा खाँ।
(३) सरफराज खाँ।
(४) अलीवर्दी खाँ।

अलीवर्दी खाँ बड़ा योग्य तथा सशक्त नवाब था। उसने शासन को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने जमींदारों की शक्ति कम की। चोर डाकुओं का दमन कर, प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह दूरदर्शी शासक नहीं था। उसके समय में मरहठों ने बंगाल पर आक्रमण किया। उसने शीघ्र ही उनको धन देकर तथा उडीसा का सूबा देकर वापस किया।

अलीवर्दी खाँ तथा यूरोप की जातियाँ—अलीवर्दी खाँ यूरोपीय जातियों की दक्षिण तथा कर्नाटक में हुई सरगर्मी को बड़े ध्यान से देख रहा था और उसकी धारणा थी कि **यदि इन जातियों पर उचित अंकुश नहीं रखा जाएगा तो भारतीयों के अधिकार में भारतीय शासन नहीं रहेगा।** वह उनके प्रत्येक कार्य को सन्देह तथा शंका की दृष्टि से देखता था और उनसे सदा सचेत रहता था। उसने अपने शासन-काल में उनको पूर्णतया नियन्त्रण में रखा, परन्तु उनके व्यापार में कोई बाधा उत्पन्न नहीं की, क्योंकि उससे राज्य को पर्याप्त धन प्राप्त होता था। उनको वह "मधु-मक्खी के समान समझता था जिनसे मधु प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु उनके छेड़ने पर वे डंक भी मार देती हैं।"[1] जब उसको अपने गुप्तचरों से यह समाचार ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने क्रमशः कलकत्ता और चन्द्रनगर में किलेबन्दियाँ करनी प्रारम्भ कर दी हैं तो उसने शीघ्र ही आदेश दिया कि तुरन्त समस्त किलेबन्दियाँ स्थगित कर दी जाएँ। वह उनसे कहा करता था कि तुमको किलेबन्दियाँ करने की आवश्यकता नहीं है। तुम मेरे संरक्षण में हो, तुमको किसी शत्रु से भय नहीं खाना चाहिए।[2] उसका आदेश पाकर किलेबन्दी स्थगित कर

---

[1] "To a hive of bees that was a source of profit to its owner when undisturbed, but a cause of danger and embarrasment if rashly interfered with."
—**P. E. Roberts : History of British India, pp, 129-130.**

[2] "What need have you of a fortress you are merchants. Being under my protection, you have no enemies to fear."
—Alivardi Khan

दीं। सन् १७५२ ई० में अलीवर्दी खां ने अपने धेवते सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, जिसके कारण अन्य दो धेवते उससे शत्रुता करने लगे थे और उसके विरुद्ध उन्होंने षड्यन्त्र रचा। राजवल्लभ को जो विरोधियों का नेता था, अंग्रेजों ने शरण दी, जिसके कारण सिराजुद्दौला के हृदय में यह शंका उत्पन्न हो गई कि अंग्रेज उसके विरोधी हैं और वे विरोधियों के पक्ष का समर्थन कर रहे हैं। इस कारण सिराजुद्दौला अपने नाना अलीवर्दी खाँ के समय में ही अंग्रेजों का शत्रु बन गया था। १७५६ ई० में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गई। भारत के दुर्भाग्य से उसका अन्त ऐसे समय में हुआ जब उस जैसे योग्य व्यक्ति की देश को विशेष आवश्यकता थी। **सम्भव था कि यदि वह कुछ समय और जीवित रहा होता तो भारत को दुर्दिनों का सामना न करना पड़ता, और अंग्रेजों को अपनी राजनीतिक चालों में सफलता प्राप्त न होती।** अपनी मृत्यु को समीप आते देख अलीवर्दी खाँ ने अपने उत्तराधिकारी नवयुवक सिराजुद्दौला को निम्न शब्दों में आदेश दिया—

"यूरोप की जातियों की गतिविधि पर सदा दृष्टि रखना। यदि मेरा जीवन लम्बा होता तो मैं तुम्हें इस डर से मुक्त कर देता—अब तो बेटा यह कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा। तैलिंग देश में उनकी लड़ाइयों और चालों के विषय में सचेत रहना। बादशाहों की आपसी लड़ाइयों से उन्होंने हमारे सम्राट के प्रान्तों पर अधिकार कर, उनको आपस में बाँट लिया है और यहाँ की सम्पत्ति को अपने लोगों में वितरित कर दिया है। तीनों को एक साथ निर्बल करने का विचार मत करना। इन तीनों में अंग्रेज सबसे अधिक सशक्त हैं। पहले उनका अन्त करो, अन्य तुमको विशेष कष्ट नहीं देंगे। बेटा दुर्ग या सेना में उनको आगे मत बढ़ने देना। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो देश तुम्हारे हाथ से निकल जायगा और उस पर उनका अधिकार हो जाएगा।"

अलीवर्दी खाँ का यह आदेश पूर्णतया उपयुक्त था। वह परिस्थिति को भलीभाँति समझता था और वह अंग्रेजी कूटनीति से, अपने जीवन काल के अन्तिम दिनों में, बहुत परेशान हो गया था, अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उसने अपनी मृत्यु के समय अपने नवयुवक उत्तराधिकारी को यह आदेश दिया।

सिराजुद्दौला—-अपने नाना अलीवर्दी खाँ के उपरान्त नवयुवक सिराजुद्दौला राज्यसिंहासन पर बिना किसी विरोध के सन् १७५६ ई० के अप्रैल माह में आसीन हुआ। **अंग्रेजों ने उसके चरित्र का बड़ा कलुषित चित्रण किया है। उन्होंने उसको राक्षस के रूप में चित्रत किया है।** कुछ भारतीय इतिहासकारों ने उसमें पर्याप्त गुण देखे और **उसको उच्च-कोटि का शासक बतलाते हुए एक भोला शिकार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है,** किन्तु वास्तविकता इन दोनों के मध्य में है। वह अंग्रेजों की विचारधारा के अनुसार न तो पूर्ण राक्षस था और न भारतीयों की विचारधारा के अनुसार निरा एक भोला शिकार ही था। हम **सर शफात अहमद खाँ** के विचारों से सहमत हैं कि "सिराजुद्दौला अदूरदर्शी, हठी और दृढ़ था। उसको बूढ़े अलीवर्दीखाँ के लाड़-प्यार ने बिलकुल बिगाड़ दिया था। गद्दी पर बैठने पर भी उसमें कोई सुधार नहीं हुआ।

वह झूठा, कायर, नीच और अकृतज्ञ था, उनमें अपने पूर्व पुरुषों के कोई गुण न थे और उसमें जो गुण विद्यमान थे, उनको प्रयोग में लाने की शक्ति उसमें न थी।" उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि सिराजुद्दौला में पर्याप्त गुण और पर्याप्त दोष भी विद्यमान थे। **परन्तु तीन कारणों ने उसको निकम्मा कर दिया**—(i) **वह अपने नाना की प्यारी गोद में पला था,** (ii) **जिस समय वह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ उस समय वह अबोध बालक था,** (iii) **वह अनुभवहीन था और उसकी अवस्था केवल २५ वर्ष की थी।** उसको गद्दी पर बैठते ही भयानक परिस्थितियों तथा सशक्त शत्रुओं का सामना करना पड़ा, जिसका सामना करने की योग्यता व क्षमता उसमें नहीं थी। वह भी अंग्रेजों की कुटिल नीति का उसी प्रकार शिकार बना जिस प्रकार दक्षिण के कुछ राजा तथा अन्य नवाब शिकार बने।

सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण

इससे पूर्व कि सिराजुद्दौला और कम्पनी के मध्य संघर्ष का अध्ययन किया जाए यह अति आवश्यक होगा कि इन दोनों के संघर्ष के कारण का ज्ञान प्राप्त किया जाए। इनके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

सिराजुद्दौला और अंग्रेजों के मध्य संघर्ष के कारण

(१) अंग्रेजों का सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र।
(२) अंग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग।
(३) किले-बन्दी करना।
(४) कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार।
(५) कलकत्ते की कोठी पर अधिकार।

(१) अंग्रेजों का सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यन्त्र—हम बतला चुके हैं कि बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां ने अपने धेवते सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था, जिसके कारण कुछ असन्तोष उत्पन्न हो गया था। अंग्रेजों ने उन मुसलमानों को अपनी ओर मिलाया जो नवाब बनना चाहते थे तथा उन हिन्दू व्यापारियों का समर्थन प्राप्त किया जिनको अंग्रेजों ने विश्वास दिलाया था कि वे उनको विशेष सुविधाएँ प्रदान करेंगे यदि शासन की सत्ता उनके हाथ में आ जाए। उन्होंने विरोधी दल के नेता राजवल्लभ तथा उनके पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में शरण दी, जबकि उस पर यह आरोप लगाया गया कि उसने घसीटा बेगम के खजाने को छिपा लिया है। उन्होंने शौकतजंग की गुप्त रूप से सहायता की। फिर भला सिराजुद्दौला किस प्रकार उनका मित्र बन सकता था।

(२) अंग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग—फरुखसियर ने अंग्रेजों को सन् १७१७ ई० में बिना चुंगी व्यापार करने की सुविधा प्रदान की थी, परन्तु उन्होंने इस सुविधा का दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया था। यह सुविधा केवल कम्पनी को प्रदान की गई थी, किन्तु इस सुविधा का कम्पनी के कर्मचारी अपने निजी व्यापार में भी प्रयोग करके विशेष लाभ थे। उठाते इतना ही नहीं वरन्

अपने 'दस्तक' देकर भारतीय व्यापारियों को भी इस प्रकार के बिना चुंगी दिए व्यापार करने को प्रोत्साहन देते थे। इससे राज्य की आय को बहुत धक्का लगा और कम्पनी के कर्मचारी धनवान होने लगे।

(३) **किलेबन्दी करना**—इसी समय सिराजुद्दौला को समाचार मिला कि यूरोपीय जातियों ने अपनी बस्तियों की किलेबन्दी करना आरम्भ कर दिया है। कुछ विदेशी इतिहासकारों ने इसका कारण यूरोप में होने वाले युद्ध को बतलाया है, किन्तु वास्तव में किलेबन्दी करने का कारण बंगाल में अपनी सत्ता की स्थापना करना था। इस समाचार का ज्ञान प्राप्त होते ही उसने कलकत्ते के अंग्रेज अधिकारियों को इस आशय का एक पत्र लिखा कि **'आप लोगों को अलग किलेबन्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि देश में शान्ति की स्थापना रखने का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है और मैं अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता हूँ। मैं आपके इस कार्य को किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता।"** इसी आशय का पत्र उसने फ्रांसीसी कम्पनी के अधिकारियों को भी भेजा। फ्रांसीसियों ने आदेश को स्वीकार किया, किन्तु अंग्रेजों ने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वे अपना कार्य पूर्ववत् करते रहे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने नवाब के दूत का अपमान किया, उन्होंने उससे वे शब्द कहे जो वास्तव में बंगाल के नवयुवक नवाब के लिए असहनीय थे। इसका परिणाम यह हुआ कि राजमहल से १ जून १७५६ ई० को वह शीघ्र मुर्शिदाबाद आया।

(४) **कासिम बाजार की कोठी पर अधिकार**—अंग्रेजों के अभद्र व्यवहार से नवाब सिराजुद्दौला बड़ा क्रोधित हुआ और उसने यह परिणाम निकाला कि अंग्रेज बातचीत तथा समझाने-बुझाने से नहीं मानेंगे। उसने शीघ्र ही ४ जून १७५६ ई० को अंग्रेजों की कासिम बाजार वाली कोठी पर अधिकार करने के लिए एक सेना भेजी। अंग्रेज नवाब की सेना के आगमन का समाचार सुनकर बड़े भयभीत हुए। वे युद्ध के लिए बिलकुल भी तैयार न थे। अतः उनमें भगदड़ मच गई और उन्होंने आत्म-समर्पण करने में ही अपना हित समझा। 1.1.82

(५) **कलकत्ते की कोठी पर अधिकार**—कासिम बाजार को अपने अधीन कर उसने शीघ्र ही १६ जून १७५६ ई० को अंग्रेजों की कलकत्ते की कोठी पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने यद्यपि पर्याप्त तैयारी कर ली, किन्तु नवाब की सेना के आगमन पर उनका उत्साह मन्द हो गया। वहाँ का गर्वनर ड्रेक तथा कुछ प्रसिद्ध अंग्रेज कोठी छोड़कर भाग गए। उन्होंने जहाजों में शरण ली। २० जून को नवाब का फोर्ट विलियम पर अधिकार हो गया। इसके उपरान्त कलकत्ते पर भी उसका अधिकार हो गया और उसने कुछ अंग्रेजों को बन्दी भी बनाया।

ब्लैक होल की वास्तविकता—कासिम बाजार और कलकत्ते पर नवाब का अधिकार होने पर वह बंगाल को अंग्रेजों से बिलकुल मुक्त करने में सफल हो सकता था, किन्तु उसने इस समय उनके प्रति उदार नीति का प्रयोग किया। वास्तव में नवाब सिराजुद्दौला उनको एक पाठ सिखाना चाहता था कि वे बंगाल की राजनीति

में किसी प्रकार का भाग न लें और अपना सम्बन्ध केवल व्यापार तक ही सीमित रखें। अंग्रेजों के साथ कलकत्ता-विजय के समय एक काल्पनिक घटना घटी। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस घटना का कोई वर्णन फारसी के तत्कालीन साहित्य तथा इतिहास में नहीं मिलता। वास्तव में यह केवल **होलवैल** की मनघड़न्त कहानी थी, जिसके द्वारा वह चाहता था कि अंग्रेज सिराजुद्दौला के विरुद्ध कार्य कर उसको नवाबी से हटा दें और कोई ऐसा व्यक्ति नवाब बनाया जाए, जो उनको मनमानी करने दे। यह कहानी इस प्रकार है—

कलकत्ते पर जिस समय नवाब का अधिकार हुआ उसने बहुत से अंग्रेजों को बन्दी बना लिया था। इन सबका नेता होलवैल था। रात्रि के समय जब नवाब सिराजुद्दौला आराम करने चला गया तब १४६ बन्दियों को एक कोठरी में बन्द कर दिया गया, जिसका क्षेत्रफल २०० वर्गफीट के लगभग था। पहरेदारों ने जबरदस्ती इन व्यक्तियों को कोठरी में धकेल कर दरवाजा बन्द कर दिया। गर्मी का मौसम था और कोठरी की ऊँचाई पर केवल एक खिड़की थी। अंग्रेजों को रात्रि भर इस कोठरी में अनेकों आपत्तियों का सामना करना पड़ा। सुबह जब कोठरी का दरवाजा खोला गया तो केवल २२ व्यक्ति जीवित निकले, अन्य १२४ व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी।

अंग्रेज लेखकों ने इस घटना को लेकर अनेक ग्रन्थों की रचना की। मेकाले ने तो इस घटना का करने वर्णन में "**अंग्रेजी भाषा के निन्दात्मक शब्दों का कोष ही समाप्त कर दिया है।**" पर्याप्त समय तक लोग इसको सत्य मानते रहे, किन्तु जब इस सम्बन्ध में गहरी छानबीन की गई तो उसकी असत्यता पूर्णरूप से प्रकट हो गई और लोगों में यह विश्वास उत्पन्न हो गया कि इस घटना की रचना, समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए, की गई थी। वास्तव में इस घटना का वर्णन तत्कालीन अंग्रेजी पत्रों तथा लेखों में भी नहीं मिलता। **सबसे महत्वपूर्ण युक्ति यह है कि प्लासी के युद्ध के पूर्व क्लाइव या वाट्सन ने नवाब को जो पत्र भेजे उनमें भी ब्लैक होल का निर्देश नहीं किया गया।'** इसके अतिरिक्त **ओर्मे** के कहने पर भी क्लाइव ने उन व्यक्तियों को दण्ड नहीं दिया जो घटना के लिए उत्तरदायी थे। क्लाइव ने ओर्मे की बात को क्यों नहीं माना? वास्तव में इसका कारण यह था कि वह उसकी असत्यता को पूर्णतया जानता था। इस प्रकार अंग्रेजों ने नवाब को इस मनघड़न्त अपराध के लिए दोषी ठहराया, जिसमें उसका तनिक भी हाथ नहीं था। इसका एक मात्र उद्देश्य यह था कि अंग्रेजों के हृदय में प्रतिशोध की भावना जागृत हो जाए। यह सम्भव हो सकता है कि कुछ बन्दियों को कारागृह में डाल दिया गया हो और उनका नवाब के कर्मचारियों से कुछ झगड़ा हो गया हो जिसमें दो-चार की मृत्यु हो गई हो, किन्तु कमरे का आकार बन्दियों की संख्या तथा मृतकों की संख्या पर तनिक भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

कलकत्ते पर अंग्रेजों का अधिकार—नवाब सिराजुद्दौला मानिक चन्द को क़िलेदार नियुक्त कर कलकत्ते से अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद चला गया। कलकत्ते

षड्यन्त्रकारियों का देश तथा नवाब के साथ विश्वासघात करने पर पराजित हुई[1] और भारत-भूमि को दुर्दिनों का सामना करना पड़ा।

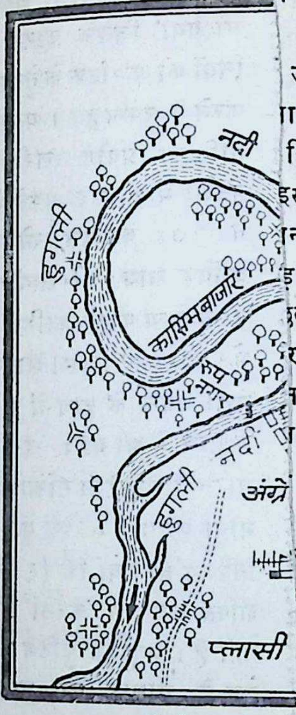

का नाद का उपभोग नहीं करने देगी।
अतुल धन-राशि का वितरण किया,
उसको बाध्य होकर जवाहिरात बेचने
ा शान्त न हुई। अब परिस्थितियों से
जिनकी पर्याप्त आय थी। उसने कम्पनी
इस जागीर की आय १,५०,००० पौंड
न दी गई। अमीचन्द को षड्यन्त्र के
ड़ा दुःख हुआ। जब उसको सन्धि-पत्र
ृत हो गया।
र सिराजुद्दौला के विरुद्ध अङ्गरेजों की
नवाब बना तो उसके सामने विभिन्न
ा करने में वह सफल नहीं हो सका।

बहुत अधिक धन अङ्गरेजों तथा
न्होंने उनको नवाब बनाने में सहायता
रिक्त हो गया। इतने पर भी अङ्गरेजों
शान्त नहीं हुई। उनकी माँगे निरन्तर
से हाथ खींचने का प्रयत्न करता तब-
देकर अपना कार्य सिद्ध कर लेते थे।

प्लासी के युद्ध का

प्लासी के युद्ध के परिणाम—प्लासी का युद्ध अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार निर्णायक युद्ध था और इसी युद्ध में विजयी होने के कारण क्लाइव की गणना विश्व के महान् सेनापतियों में की जाने लगी, किन्तु वास्तव में—(१) **इस युद्ध का सैनिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है,**[2] और न उनका क्लाइव सम्बन्धी दावा सत्य है। वास्तव में यह युद्ध था ही नहीं, वरन् यह तो (२) एक **विशाल तथा गहरे षड्यन्त्र का प्रदर्शन** था, किन्तु इसके द्वारा ही **अंग्रेज सफल हुए और भारत की राज्यश्री उनके हाथ में आने लगी।** इसलिए ऐसा कहा जाता है कि इस युद्ध का महत्व केवल राजनीतिक दृष्टि से था[3]। सिराजुद्दौला के स्थान पर (३) **मीरजाफर नवाब घोषित**

---

[1] "The English victory was won not by valour' not by the 'superb generalship of Clive' but by treachery. The part which Clive played in the battle was insignificant, his part was in the conspiracy that preceeded the battle and in the loot of Bengal which followed."

—Dr. Ishwari Prasad and S. K. Subedar : History of Modern India, p. 61.

[2] From the military point of view it was a farce, an exchange of a few shots and the death of fewer men.

[3] Plassey made the English masters of Bengal from whence within the next hundred years they overran the whole of India.

किया गया, जिसने अंग्रेजों को विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं। (४) **अंग्रेजों की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और** (५) **उनके प्रतिद्वन्द्वियों को बड़ा आघात पहुँचा।** अंग्रेजों के अधिकार में बंगाल जैसा उपजाऊ प्रदेश आ गया, जिसके कारण वे (६) **फ्रांसीसियों को कर्नाटक के तृतीय युद्ध में परास्त करने में सफल हुए।** अब वे अपनी कुटिल नीति का प्रयोग उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों में भी कर सकते थे। मीरजाफर ने (७) **क्लाइव को ३०,००० पौंड वार्षिक आय की जागीर प्रदान की।** उसने अन्य पदाधिकारियों को भी बहुमूल्य भेंट प्रदान की। (८) **शासन की वास्तविक सत्ता नवाब के हाथ में न रहकर क्लाइव के हाथ में आ गई।** इसी कारण क्लाइव भारत में अङ्गरेजी साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। इस युद्ध द्वारा यह भी निश्चय हो गया कि (९) **देशी नरेशों की शक्ति का अन्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है।** अङ्गरेज कुटिल नीति तथा सैन्य बल के आधार पर भारत में अङ्गरेजी राज्य की स्थापना सरलता से करने में फल हो सकते हैं।[1]

ऐतिहासिक प्रमाण उ ब्ध नहीं है। इस
साहित्य तथा इतिहास में नहीं मिलता।
कहानी थी, जिसके द्वारा वह चाहता
कर उसको नवाबी से हटा दें और कोई ऐ
मनमानी करने दे। यह कहानी इस प्रका
कलकत्ते पर जिस समय नवाब व
बन्दी बना लिया था। इन सबका नेत
सिराजुद्दौला आराम करने चला गया त
कर दिया गया, जिसका क्षेत्रफल २०० व
दस्ती इन व्यक्तियों को कोठरी में धकेल क
था और कोठरी की ऊँचाई पर केवल एव
कोठरी में अनेकों आपत्तियों का सामना क
खोला गया तो केवल २२ व्यक्ति जीवित
चुकी थी।
अंग्रेज लेखकों ने इस घटना को
ौ तो इस घटना का करने वर्णन में "अं
समाप्त कर दिया है।" पर्याप्त समय तक
इस सम्बन्ध में गहरी छानबीन की गई त
और लोगों में यह विश्वास उत्पन्न हो

मीर जाफर—प्लासी के युद्ध में अंग्रेज सफल हुए और उन्होंने मीरजाफर

---

[1] "Admiral Waston described it to be of extraordinary importance not only to the Company but to the British nation in general." A contemporary memoir defines exactly what the events of 1757 meant to the English - "Many of these who would have totally lost the fruits of long labours and various hardships, and who must have been beggars if subject to any other powes, are again easy in their fortunes, and some of them have already transported their efforts to their Native country, the proper return for their assistance. They derived from her maternal affection, and as these events have distinguished the present age and present administration, so their efforts will probably, be felt in succeeding times. The Company, by an accession of territory has an opportunity of making an ample settlement, which under proper management, may not only be extremely serviceable to her, but also to the Nation, and having a revenue from these lands, the mint at Calcutta, and the lease of salt-petre at Patna, which amounts on the whole to one hunderd thousand pounds a year, there is a provision against future dangers upon the spot, and without further advance." —**Sarkar and Dutta : Modren Indian History, Vol. II. pp. 67–68.**

को अपने षड्यन्त्र के अनुसार बंगाल का नवाब घोषित किया। मीरजाफर नवाब बनकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु उसको क्या मालूम था कि जिस नवाबी पर वह आसीन किया जा रहा है वह उसको सुख तथा आराम की नींद का उपयोग नहीं करने देगी। उसने अंग्रेजों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से अतुल धन-राशि का वितरण किया, जिसके कारण राजकोष रिक्त हो गया और उसको बाध्य होकर जवाहिरात बेचने पड़े, किन्तु इतने पर लालचियों की धन लिप्सा शान्त न हुई। अब परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने उनको जागीरें प्रदान की; जिनकी पर्याप्त आय थी। उसने कम्पनी को २४ परगनों की जमींदारी प्रदान की। इस जागीर की आय १,५०,००० पौंड वार्षिक थी। क्लाइव को भी एक जागीर प्रदान दी गई। अमीचन्द को षड्यन्त्र के सफल होने पर कुछ भी न मिला। उसको बड़ा दुःख हुआ। जब उसको सन्धि-पत्र के जाली होने का समाचार मिला तो वह मूर्छित हो गया।

मीरजाफर की कठिनाइयाँ—मीरजाफर सिराजुद्दौला के विरुद्ध अङ्गरेजों की सहायता से सन् १७५७ ई० में बंगाल का नवाब बना तो उसके सामने विभिन्न कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, जिनका समाधान करने में वह सफल नहीं हो सका। उसकी विभिन्न कठिनाइयों निम्नलिखित थीं—

(१) **आर्थिक कठिनाई**—मीरजाफर ने बहुत अधिक धन अङ्गरेजों तथा अन्य व्यक्तियों को भेंट-स्वरूप प्रदान किया, जिन्होंने उनको नवाब बनाने में सहायता प्रदान की थी, जिसके कारण राजकोष प्रायः रिक्त हो गया। इतने पर भी अङ्गरेजों तथा नवाब के लालची पदाधिकारियों की तृष्णा शान्त नहीं हुई। उनकी माँगे निरन्तर बढ़ती गईं। जब-जब नवाब उनकी सहायता से हाथ खींचने का प्रयत्न करता तब-तब वे उसको नवाबी से पृथक् करने की धमकी देकर अपना कार्य सिद्ध कर लेते थे। अतः नवाब उनसे सदा भयभीत रहने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि शासन उन्नत नहीं हो सका और शासन की अवस्था दिन-प्रतिदिन शोचनीय होने लगी। जब अंग्रेजों की भूख नवाब द्वारा शान्त नहीं हुई तो उन्होंने धन प्राप्त करने के लिए अन्य मार्गों का अनुकरण किया।

मीरजाफर की कठिनाइयाँ

(१) आर्थिक कठिनाई।
(२) शक्ति की स्थापना।
(३) हिन्दुओं का विरोध।
(४) अलीगौहर का आक्रमण।
(५) डच आक्रमण।

(२) **शक्ति की स्थापना**—मीरजाफर ने अपनी शक्ति की स्थापना की ओर कदम बढ़ाना आरम्भ किया, किन्तु वह ऐसा करने में सफल नहीं हो सका, क्योंकि उसको सदा डर बना रहता था कि राज्य के कर्मचारी विद्रोह अथवा षड्यन्त्र द्वारा उसको पदच्युत न कर दें। इस प्रकार धीरे-धीरे शासन की सत्ता पर अङ्गरेजों का अधिकार स्थापित होने लगा और वह कठपुतली के समान कार्य करने पर बाध्य हुआ। वह अपने कर्मचारियों पर विश्वास नहीं करता था; क्योंकि वे उसकी तरह ही अङ्गरेजों से अपना गठ-बन्धन रखते थे और उनको अपनी सहायतार्थ धन अङ्गरेजों द्वारा प्राप्त हो सकता था।

(३) **हिन्दुओं का विरोध**—मीरजाफर ने कुछ विपत्तियों को अपने आप निर्मित किया। उसने हिन्दुओं के साथ कठोर व्यवहार किया। उसने हिन्दू कर्मचारियों को उनके पदों से अलग कर मुसलमानों को उनके स्थान पर नियुक्त किया। उसने दुर्लभराय तथा रामसिंह के विरुद्ध कार्यवाही की जिसके कारण पटना, पूर्णिया, मिदनापुर तथा ढाका में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। मीरजाफर अङ्गरेजों की सहायता से इनका दमन करने में सफल हुआ, किन्तु इस सहायता के कारण अङ्गरेजों का प्रभाव मीरजाफर पर बहुत बढ़ गया और उसने अङ्गरेजों को कुछ अन्य व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं। इसके द्वारा ही शासन पर से मीरजाफर का अधिकार उठने लगा और वह हर समय अङ्गरेजों की ओर देखने के लिए बाध्य हुआ।

(४) **अलीगौहर का आक्रमण**—उक्त आन्तरिक समस्याओं के अतिरिक्त मीरजाफर को बाह्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। बंगाल की दयनीय दशा का लाभ उठाने के अभिप्राय से आलमगीर द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र अलीगौहर का ध्यान बंगाल की ओर आकर्षित हुआ। अवध के नवाब और वजीर शुजाउद्दौला ने उनको बंगाल-अभियान में सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया। उसने शीघ्र ही सन् १७५९ ई० में बिहार पर आक्रमण किया। बिहार के गर्वनर रामनारायण ने तुरन्त ही मीरजाफर के पास अलीगौहर के आक्रमण का समाचार भेजा और उसने इस समाचार से क्लाइव को अवगत कराया। शीघ्र ही एक सेना मीरजाफर के पुत्र मीरन की अध्यक्षता में बिहार भेजी गई और स्वयं क्लाइव अंग्रेजों की एक सेना लेकर पटना की ओर चल पड़ा। अलीगौहर को ठीक समय पर शुजाउद्दौला की सहायता प्राप्त नहीं हुई और वह बाध्य होकर वापस लौट गया। उसने सन् १७६० और १७६१ ई० में पुनः आक्रमण किया, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(५) **डच आक्रमण**—सन् १७५९ ई० में डचों ने बंगाल पर आक्रमण किया। अभी तक उन्होंने बंगाल के झगड़ों में किसी प्रकार से सक्रिय भाग नहीं लिया था, किन्तु प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय होने पर उनको अंग्रेजों से भय होने लगा। कुछ लोगों की यह धारणा है कि मीरजाफर ने अङ्गरेजों के प्रभुत्व का अन्त करने के लिए उनको बंगाल पर आक्रमण करने के लिए आमान्त्रित किया था, किन्तु इसमें सत्य नहीं है। उन्होंने ३०० यूरोपीयनों तथा ६०० मलायन सैनिकों के साथ बंगाल पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने शीघ्र ही उसका सामना करने के तैयारी की। २५ नवम्बर १७५९ ई० में अङ्गरेजों और डचों में चन्द्रनगर और चिन्सुरा के मध्य वेदरा के मैदान में युद्ध हुआ जिसमें डच पराजित हुए और उन्होंने क्षति-पूर्ति करने का वचन दिया।[1] शीघ्र ही मीरन अपनी सेना लेकर चिन्सुरा के समीप पहुँच गया

---

[1] "They disavowed the proceedings of their ships below, acknowledged themselves the aggressors, and agreed to pay costs and damages."
—Malcolm : Life of Cli

और उसको अपमानजनक सन्धि करने पर बाध्य किया। इस पराजय के कारण डच शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा और उनकी महत्वाकांक्षाओं का अन्त हो गया। इससे अङ्गरेजों को अपनी शक्ति के विकास का अवसर प्राप्त हो गया।

क्लाइव का इंगलैण्ड जाना—निरन्तर परिश्रम करने के कारण क्लाइव का स्वास्थ्य खराब हो गया था। वह सन् १७६० ई० के फरवरी मास में इङ्गलैण्ड चला गया। इस प्रकार बंगाल में क्लाइव की प्रथम गर्वनरी का अन्त हुआ, जिसका प्रारम्भ सन् १७५६ ई० में हुआ था। वह कार्य-भार **होलवैल** को तब तक के लिए सौंपा गया जब तक इङ्गलैण्ड से नया गवर्नर **वैन्सिटार्ट** भारत न आए। क्लाइव ने बंगाल में अङ्गरेजों की स्थिति को दृढ़ करने का भरसक प्रयत्न किया।[1] उसने फ्रांसीसियों तथा डचों की शक्ति प्रायः समाप्त करदी। उसने कठपुतली नवाब मीरजाफर को बनाया, मुगल-सम्राट के पुत्र अलीगौहर से, आन्तरिक कलह तथा संघर्ष से बंगाल की रक्षा की और अङ्गरेजों के लिए विशेष व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं, किन्तु क्लाइव की नीति के कारण नवाब को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वह एक भीषण आर्थिक संकट में पड़ गया।

क्लाइव के पश्चात् बंगाल—बंगाल की दशा तो क्लाइव के समय में ही शोचनीय हो गयी थी। शासन-व्यवस्था बिलकुल शिथिल पड़ गई थी। अङ्गरेजों तथा नवाब के कर्मचारी प्रजा को विभिन्न उपायों द्वारा तंग कर अत्यधिक धन वसूल करने के कार्य में लिप्त थे। उन्होंने जनता के सुख तथा उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। कृषि तथा व्यापार की अवस्था खराब हो गई और बंगाल में अराजकता फैल गई। क्लाइव के चले जाने के उपरान्त स्थिति और भी अधिक भयंकर तथा शोचनीय होने लगी। इसका प्रमुख कारण यह था कि कम्पनी का प्रबन्ध अयोग्य तथा अनुभवहीन व्यक्तियों के हाथ में आ गया, जिन्होंने केवल धन प्राप्त करने के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसने परिस्थिति को और भी दूषित कर दिया। **कम्पनी के अफसर सुविधाओं का तो उपभोग करते थे, किन्तु अपने कर्त्तव्यों की ओर से पूर्ण उदासीन थे**। कम्पनी और नवाब दोनों को धन की हर समय आवश्यकता रहती थी। कम्पनी के कर्मचारियों को प्रत्येक वर्ष बहुत-सा धन इङ्गलैण्ड भेजना पड़ता था और नवाब के लिए अपनी सेना तथा कर्मचारियों के अतिरिक्त अङ्गरेजी कर्मचारियों की धन पिपासा को भी शान्त करना अनिवार्य था।

---

[1] Miran "received their deputies, and after severe altercation forgave them and promised ample proteotion in their trade and prilvileges on the following terms, that they shall never meditate on war, introduce or enlist troops, or raise fortifications in the country, that they shall be allwed to keep up one hundred and seventy-five European soldiers and no more for the service of their factories at Chinsura, Kassim Bazar and Patna, they shall forthwith send their ships and remaining troops out of the counry, and that a breach of any of these articles shall be punished with utter expulsion."

—**Malcolm : Life of Clive,**

इसकी पूर्ति के लिए जनता को अनेक प्रकार के अमानुषिक कष्टों का सामना करना पड़ा और हर-सम्भव रूप से उनका शोषण किया गया। कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने व्यापार की वृद्धि करने के अभिप्राय से भारतीय कुटीर उद्योगों को नष्ट-भ्रष्ट करना आरम्भ कर दिया और कारीगरों को बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। होलवैल इस भीषण परिस्थिति को काबू में लाने के लिए पूर्णतया अयोग्य सिद्ध हुआ। कम्पनी के छोटे कर्मचारी कम वेतन पाते थे और वे सदा धन कमाने की चिन्ता में लगे रहते थे। इसके लिए उन्होंने विभिन्न उपायों की खोज भी करली थी। कुछ ने तो अपना निजी व्यापार भी आरम्भ कर दिया था। वे उन समस्त सुविधाओं का उपभोग करते थे जो कम्पनी को प्राप्त थीं।

वैन्सिटार्ट—वैन्सिटार्ट ने होलवैल से कार्य-भार सम्भाला। वह बड़ा नेक तथा सच्चरित्र व्यक्ति था। जिस समय वह भारत आया उस समय कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी के व्यापार की अपेक्षा अपने निजी व्यापार की ओर विशेष ध्यान देते थे। कम्पनी के संचालकों की यह धारणा थी कि बंगाल में बहुत अधिक धन है, इसलिए उन्होंने बंगाल के पदाधिकारियों को मद्रास तथा बम्बई की सरकारों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का आदेश दिया। इसी समय अलीगौहर ने जो इस समय शाह-आलम द्वितीय के नाम से दिल्ली पर शासन कर रहा था, बंगाल पर आक्रमण किया और मरहठों ने भी दक्षिण-पश्चिम से आक्रमण किया। मीरजाफर बड़ी दुविधा में पड़ गया और उसको अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना करनी पड़ी। अंग्रेजों की सहायता से अलीगौहर का यह आक्रमण विफल हो गया और वह वापस चला गया।

मीरकासिम का नवाब होना—कम्पनी के कर्मचारियों ने मीरजाफर को समस्त परेशानियों तथा कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी ठहराया और होलवैल के कहने पर दूसरा नवाब चुनने का निश्चय किया। होलवैल ने उस पर विशेष आरोप लगाए और इस बात पर जोर दिया कि परिस्थिति उस समय तक नहीं सुधर सकती जब तक कि मीरजाफर के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नवाब के पद पर आसीन नहीं किया जाता। कम्पनी के कर्मचारियों ने मीरजाफर के दामाद मीरकासिम को नवाब बनाने का निश्चय किया। २७ सितम्बर १७६० ई० को मीरकासिम और कम्पनी के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि नवाब कम्पनी को वर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले देगा, जिससे कम्पनी बंगाल की रक्षा के लिए एक सेना रखेगी और उसको उप-सुबेदार के पद पर नियुक्त किया जाएगा और भविष्य में उसको नवाब बनाया जाएगा। यह समझौता कर मीरकासिम मुर्शिदाबाद चला गया और बाद में क्लाइव तथा वैन्सिटार्ट भी वहाँ पहुंच गए, अंग्रेजों ने नवाब मीरजाफर से मीरकासिम को उप-सूबेदार बनाने को कहा, किन्तु वह ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस प्रसंग में पाँच दिनों तक पर्याप्त वादविवाद चलता रहा, किन्तु मीरजाफर उनकी बात मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस पर वैन्सिटार्ट ने क्लाइव को मीरजाफर के महल पर आक्रमण करने का

आदेश दिया। इस पर मीरजाफर ने अपने पद अर्थात नवाबी से त्याग-पत्र दे दिया और तुरन्त ही अंग्रेजों ने मीरकासिम को बंगाल का नवाब घोषित किया। कौंसिल के कुछ सदस्यों ने इस कार्य का विरोध किया।' किन्तु अन्य व्यक्तियों ने स्वार्थ के सामने न्याय की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। मीर जाफर कलकत्ते में नजर-बन्द कर दिया गया।

मीरकासिम की कठिनाइयाँ तथा उनका निराकरण—मीरकासिम को भी नवाब बनते ही कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वह एक योग्य शासक था और उसने बंगाल की अवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह अधिक काल तक ऐसा नहीं कर पाया और अंग्रेजों के साथ उसका संघर्ष हो गया।

(१) **आर्थिक समस्या**—आरम्भ में उसने आर्थिक समस्या का समाधान करने का निश्चय किया। इस समय राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत अधिक खराब हो चुकी थी। राजकोष बिलकुल रिक्त था, किन्तु राजकर्मचारियों के पास बहुत अधिक धन था, क्योंकि समस्त राज्य में भ्रष्टाचार घूसखोरी का बुरी तरह प्रचलन था। उसने सर्वप्रथम इनकी ओर ध्यान दिया। उसने पिछला हिसाब माँगा और उन लोगों से वह धन वसूल किया गया जिन पर यह शेष था।

(२) **नए विभाग की स्थापना**—उसने एक अलग विभाग की स्थापना की। यह विभाग उन व्यक्तियों की खोज में रहता था जिन्होंने हिसाब में गोल-माल किया था। इसके कारण राजकोष को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ।

(३) **स्थानीय सेठों से ऋण लेना**—उसने स्थानीय सेठों से बहुत-सा धन ऋण के रूप में वसूल किया।

(४) **व्यय पर नियन्त्रण करना**—उसने व्यय पर कठोर नियन्त्रण किया। इन कार्यों से उसने आर्थिक स्थिति को उन्नत किया, इसके अभाव से राज्य-संचालन असम्भव था।

(५) **स्थानीय जमींदारों से पिछला धन वसूल करना**—उसने कुछ स्थानीय जमींदारों से भी पिछला धन वसूल किया और उन जमींदारों का दमन किया जो उसके विरुद्ध मुगलों की सहायता करते थे।

मीरकासिम और अंग्रेज

प्रारम्भ में तो मीरकासिम और अंग्रेजों के सम्बन्ध अच्छे रहे, क्योंकि वह उनकी सहायता के आधार पर ही नवाब हुआ था, किन्तु यह परिस्थिति अधिक काल तक नहीं चल सकी। अंग्रेजों की नीति के कारण जमींदार तथा व्यापारी वर्ग अंग्रेजों का विरोधी हो गया और उनके द्वारा अंग्रेजों का विरोध भी किया गया, किन्तु कम्पनी तथा नवाब की सेना ने मिलकर इनका दमन किया और इनके साथ कठोर व्यवहार भी किया। कुछ समय उपरान्त दोनों में मनमुटाव होना आरम्भ हो गया। वह अधिक काल तक अङ्गरेजों के चंगुल में रहकर कार्य नहीं कर सका। इसी कारण कहा जाता है कि मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम का नवाब होना एक नए संघर्ष की संभावना साथ लाया।

संघर्ष के कारण—मीरकासिम और अंग्रेजों के संघर्ष के मुख्य कारण इस प्रकार हैं—

(१) **राजधानी परिवर्तन**—मीरकासिम ने अनुभव किया कि अंग्रेजों का प्रभाव मुर्शिदाबाद में बहुत बढ़ गया है और इस प्रभाव के कारण उसकी स्थिति कभी दृढ़ नहीं हो सकती, क्योंकि षड्यन्त्र करना अंग्रेजों का कार्य है। वे विरोधियों से मिलकर उसको राज्य-सिंहासन त्यागने पर वाध्य कर सकते हैं। अतः उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद के स्थान पर मुँगेर बनाई और उसकी किलेबन्दी दृढ़ रूप से की। उसने एक विशाल सेना का संगठन किया जिसको यूरोपीय ढंग से शिक्षा प्रदान की गई थी।

संघर्ष के कारण

(१) राजधानी परिवर्तन।
(२) व्यापार के कारण मतभेद।
(३) मीर कासिम के विरुद्ध षडयन्त्र।
(४) मीर कासिम की प्रतिक्रिया।

(२) **व्यापार के कारण मत-भेद**—कम्पनी को निःशुल्क व्यापार का अधिकार मुगल-सम्राट फरुखसियर द्वारा प्राप्त हुआ था। पिछले अध्याय में इसका पर्याप्त वर्णन किया जा चुका है। कुछ समय तक तो कम्पनी इनका प्रयोग करती रही, किन्तु बाद में कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने निजी व्यापार के लिए भी इस सुविधा का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था और इसके साथ-साथ ने भारतीय व्यापारियों से रिश्वत आदि लेकर इसी सुविधा के आधार पर व्यापार करवाते थे। इस प्रकार राज्य की आय विशेष रूप से कम हो गई। उसने कलकत्ते की कौंसिल का ध्यान इस ओर आकर्षित किया, किन्तु उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इस पर मीरकासिम ने समस्त व्यापारियों को अंग्रेजों के समान सुविधाएं प्रदान कर दीं। अंग्रेज भला इसे कैसे सहन कर सकते थे, क्योंकि इस कारण उनके व्यापार तथा व्यक्तिगत लाभ को वहुत अधिक धक्का लगता था।

(३) **मीरकासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र**—अंग्रेज समझ गए कि मीरकासिम उनके हाथ से निकल गया है। उसको गद्दी से उतारने के लिए उन्होंने फिर पुराने नवाब मीरजाफर को केन्द्र बना कर मीरकासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया।

(४) **मीर कासिम की प्रतिक्रिया**—मीरकासिम को अंग्रेजों के षड्यन्त्र का पता चला तो उसने शीघ्र ही कासिम-बाजार पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लिया। इसी समय कलकत्ता से अंग्रेजी सेना कासिम बाजार की रक्षा के लिए आयी जिसने मीरकासिम को परास्त किया। वह पटना कि ओर भागा और इसी बीच में अंग्रेजों ने मुंगेर पर अधिकार कर लिया। पटना से भी उसको विरोध सहायता प्राप्त नहीं हुई। वहाँ उसको पता चला कि उसके विरुद्ध षड्यन्त्र का ज्ञा विछ चुका है जो उसको बन्दी कर अंग्रेजों से सुपुर्द करेगा। अति क्रुद्ध हो उसने समर्प

नायव सूबेदार का पद बनाया गया और उसकी नियुक्ति का अधिकार कम्पनी ने अपने हाथ में रक्खा। नवाब ने यह भी वचन दिया कि वह उतनी ही सेना रखेगा जितनी मालगुजारी वसूल करने के लिए तथा अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिये आवश्यक होगी। वह कम्पनी को उसकी सेना के व्यय के लिए ५ लाख रुपया प्रतिवर्ष देगा। इस प्रकार अङ्गरेजों ने उसकी सैनिक शक्ति प्रायः समाप्त कर दी। नज्मुद्दौला केवल नाम-मात्र का नवाब था और वास्तविक शासन कम्पनी के हाथ में था। अङ्गरेजों ने नायब सूबेदार के पद पर मुहम्मद रजा खाँ को नियुक्त किया। कम्पनी के पदाधिकारियों ने नए नवाब से पर्याप्त धन प्राप्त किया तथा बहुत-से उपहार लिए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) बंगाल में मीरकासिम तथा अंग्रेजों में झगड़े के क्या कारण थे। वास्तव में दोषी कौन था?

(२) 'बक्सर के युद्ध ने प्लासी के कार्य को पूर्ण किया।' इस कथन की विवेचना करो।

(३) अंग्रेजों को भारत पर अपनी सत्ता स्थापित करने में किन कारणों से सफलता मिली?

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) "क्लाइव के प्रथम तथा द्वितीय शासन के मध्य का काल ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर एक कलंक है जिसे वर्षों के न्यायोचित एवं मानवीय शासन द्वारा भी नहीं मिटाया जा सकता है।" विवेचना कीजिए।

(२) उन परिस्थितयों का उल्लेख कीजिए जिनके द्वारा बङ्गाल में मीरकासिम तथा अंग्रजों में संघर्ष हुआ।

(३) प्लासी तथा बक्सर के युद्धों के कारणों और परिणामों की समीक्षा कीजिए।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) प्लासी के युद्ध के क्या कारण थे? उसके परिणामों का उल्लेख कीजिए।

(२) उन परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए जिनके कारण बङ्गाल पर ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई।

(३) 'प्लासी का युद्ध देखने में तो साधारण भिड़न्त मात्र था, परन्तु उसका परिणाम विश्व के महायुद्धों में से बहुतों के परिणामों से अधिक महत्वपूर्ण था।' इस उक्ति का स्पष्टीकरण कीजिए।

राजस्थान--

(१) "बक्सर के युद्ध का महत्व प्लासी के युद्ध की अपेक्षा भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के लिए अधिक है।" विवेचना करो।

(२) शिराजुदौला पर एक टिप्पणी लिखो।

मध्य प्रदेश—

(१) अंग्रेजों से मीरकासिम की हार के कारण का वर्णन करो।

(२) "बक्सर के युद्ध ने प्लासी के युद्ध के काम को पूरा किया।" विवेचना करो।

(३) 'मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम का परिवर्तन एक नये संघर्ष को निश्चयपूर्वक साथ लाया।" विवेचना करो।

सागर विश्वविद्यालय—

१. १७५७ से १७६५ तक बङ्गाल और बिहार में ब्रिटिश आधिपत्य की वृद्धि का विवरण लिखिए।

४

क्लाइव की दूसरी गवर्नरी

क्लाइव की बंगाल के गवर्नर के पद पर नियुक्ति

फरवरी १७६० ई० में स्वास्थ्य के बिगड़ जाने के उपरान्त क्लाइव इंगलैण्ड चला गया था। उसके जाने के उपरान्त की घटनाओं का वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। पाठकों को अवश्य ध्यान होगा कि इस बीच में मीरजाफर के स्थान पर मीरकासिम, और पुनः मीरजाफर तथा उसकी मृत्यु पर नज्मुद्दौला बंगाल का नवाब बना। इसी बीच पटना का हत्याकाण्ड तथा बक्सर का युद्ध हुआ। कम्पनी के कर्मचारी पथ-भ्रष्ट हो गए थे। सन् १७६१ में मरहठे पानीपत के तृतीय युद्ध में परास्त हो चुके थे। यद्यपि कम्पनी की स्थिति बाह्य दृष्टि से सुदृढ़ हो गई थी, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से अङ्गरेजों में बड़ा भ्रष्टाचार फैला हुआ था। वे कम्पनी के हितों का ध्यान न रख अपने स्वार्थ में लिप्त हो रहे थे। कम्पनी के व्यापार के बदले वे अपने निजी व्यापार की ओर विशेष ध्यान दे रहे थे। उन्होंने बहुत-सा रुपया बंगाल के नवाब तथा अन्य व्यक्तियों से घूस के रूप में प्राप्त किया था। जब ये शोचनीय समाचार इंगलैण्ड पहुँचे तो इस समस्या पर गभीरता से विचार किया गया। कम्पनी के संचालकों ने क्लाइव को दूसरी बार बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया, क्योंकि भारतीयों की वास्तविक दशा का ज्ञान उससे अच्छा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं था। कुछ व्यक्तियों ने उसकी नियुक्ति का विरोध किया, किन्तु कोर्ट ऑफ प्रोप्राइटर्स ने इन सब बातों का ध्यान न रखकर कम्पनी का खोया हुआ सौभाग्य फिर से प्राप्त करने के लिए उसकी ही नियुक्ति की। उसको बंगाल का गवर्नर तथा प्रधान सेनापति बनाया गया। उसको अपनी जागीर का दस वर्ष तक उपभोग करने का आश्वासन भी दिया गया। शासन-कार्य में सहायता के लिए एक कौंसिल तथा एक सिलेक्ट कमेटी की भी स्थापना की गई। उसको यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि जब कौंसिल से मिलकर कार्य करने की सम्भावना न रहे तो वह अपनी प्रधानता में चार सदस्यों की सिलेक्ट कमेटी नियुक्त कर कार्य करना आरम्भ कर दे। क्लाइव इन अधिकारों को लेकर मई १७६५ ई० में बंगाल आया।

क्लाइव के आगमन पर बंगाल की दशा

क्लाइव के आगमन पर बंगाल की दशा बड़ी शोचनीय थी। आन्तरिक विषयों में कम्पनी के अधिकारियों ने खुले-आम सुधार-सम्बन्धी उन नियमों की अवज्ञा की थी जो डाइरेक्टरों ने उनके सामने रक्खे थे। क्लाइव के शब्दों में, "मैं केवल इतना कहूँगा कि अराजकता, अव्यवस्था, उत्कोच, भ्रष्टाचार और शोषण का जैसा दृश्य बंगाल में था ऐसा न तो किसी देश में देखा गया है और न सुना गया है। ऐसे अन्याय-युक्त और लोभपूर्ण ढंग से इतने लाभ कभी नहीं प्राप्त किए गए। मीरजाफर की

पुनः स्थापना के समय से बंगाल, बिहार और उड़ीसा के तीनों प्रान्त, जिनकी आय तीस लाख पौंड स्टर्लिंग है, पूर्णतया कम्पनी के कर्मचारियों के अधीन हैं। उनको मुल्की (नागरिक) तथा फौजी अधिकार प्राप्त हैं और उन्होंने नवाब से लेकर छोटे-से छोटे जमींदार पर कर लगाया है तथा उनसे वसूल किया है।" **सिलेक्ट कमेटी** के अनुसार, "प्रेसीडेन्सी में फूट थी और लोग हट्ठी तथा दुर्व्यसनी थे। सरकार में शक्ति का अभाव था, कोष रिक्त था तथा कर्मचारियों में अधीनता, अनुशासन तथा सार्वजनिक कर्त्तव्य की भावना का अभाव था। उद्योग-धन्धों तथा न्यायोचित व्यापार की अवनति हो रही थी, किन्तु व्यक्तिगत व्यापार फल-फूल रहा था जिसके कारण लोग बहुत अधिक धन एकत्रित कर रहे थे। यह धन उन लोगों ने अपमानित राजकुमारों तथा असन्तुष्ट प्रजा से वसूल किया था। जनता अनेक कष्टों का सामना कर रही थी।"[1] इसके अतिरिक्त क्लाइव ने देखा कि चारों ओर भ्रष्टाचार तथा धनलोलुपता का साम्राज्य है। इसका वर्णन उसने इन शब्दों में किया—

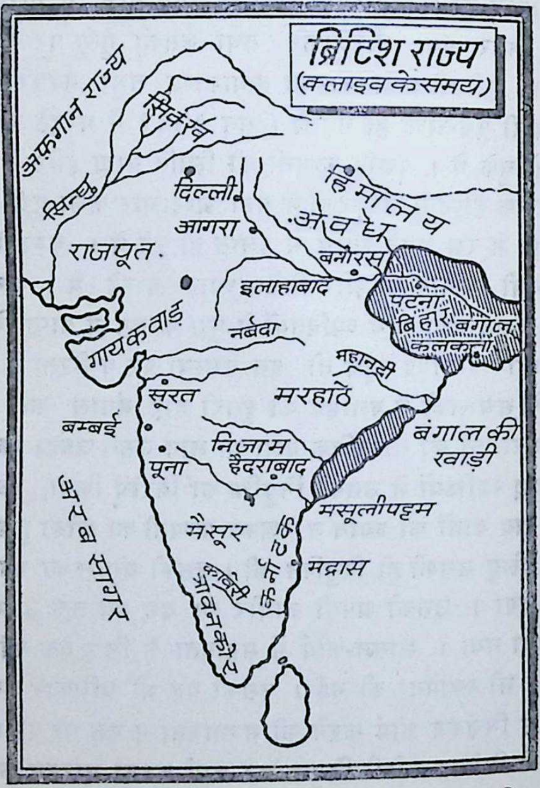
ब्रिटिश राज्य
(क्लाइव के समय)
अफ़गान राज्य
सिक्ख
सिन्धु
दिल्ली
आगरा
हिमालय
अवध
राजपूत
बनारस
इलाहाबाद
पटना
बिहार
बंगाल
कलकत्ता
गायकवाड़
नर्बदा
महानदी
सूरत
मरहाठे
बम्बई
बंगाल की खाड़ी
निजाम
हैदराबाद
पूना
मसूलीपट्टम
अरब सागर
मैसूर
कर्नाटक
मद्रास
कावेरी
ट्रावनकोर

---

[1] Presideny divided, headstrong and licentious, a government, without nerves, a treasury without money and service without sub-ordination, discipline or public spirit,......amidst a general stagnation of useful industry and of licenced commerce, individuals were accumulating immense riches which they had ravished from the insulted prince and his helpless people who groaned under the united pressure of discontent, poverty and oppression."

—Report of the Select Committee.

"भारत पहुँचने पर मैंने देखा कि शासन का कहीं नाम तक नहीं है। खूब धन प्राप्त कर पदाधिकारी वैभवपूर्ण शानदार जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी उनका अनुकरण कर उनके ही समान जीवन व्यतीत करते हैं। सेना विभाग में भी ऐसा ही होना आरम्भ हो गया था जिसके कारण अनुशासन तथा व्यवस्था का अन्त हो चुका था। घूसखोरी तथा विलासिता के अधिक बढ़ जाने से कोई राज्य की स्थापना नहीं कर सकता। कम्पनी के कर्मचारी जनता पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करते हैं। मुझे भय है कि इस देश में अङ्गरेजों के नाम पर ऐसा धब्बा लग रहा है जो कभी भी नहीं छूट सकता। महत्वाकांक्षा, विलासिता तथा उच्छृंखलता के कारण एक नई व्यवस्था का उदय हो गया है और जनता का कम्पनी से विश्वास उठ गया है। यह साधारण न्याय तथा मानवता के विरुद्ध भी है।"

क्लाइव की समस्याएँ तथा उनका समाधान—उक्त दशा में क्लाइव दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर मई १७६५ ई० में आया। उसके सामने कई भीषण समस्याएँ थीं, जिनका सामना उसने बड़ी योग्यता तथा तत्परता से किया। प्रोफेसर रोबर्ट्स के शब्दों में क्लाइव ने 'इस बार भी अपनी स्वाभाविक निश्चयात्मक तत्परता से काम लिया।' उसका पूरा काम तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है जो इस प्रकार हैं—

समस्याओं का समाधान

(१) कम्पनी की नागरिक तथा सैनिक सेवाओं में सुधार करना।

(२) बंगाल की दीवानी प्राप्त करना।

(३) वाह्य-नीति।

(१) **कम्पनी की नागरिकता तथा सैनिक सेवाओं में सुधार करना**—स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त क्लाइव ने कुछ सुधार करने आवश्यक समझे। इसके अन्तर्गत उसने निम्न सुधार किए—

(क) **प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ**—क्लाइव ने भारत आने पर कम्पनी के कर्मचारियों से एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कराने की प्रथा का प्रचलन किया, जिसके अनुसार वे किसी प्रकार की भेंट अथवा उपहार किसी से भी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

(ख) **क्लाइव-कोष की स्थापना**—क्लाइव ने उस धन से एक कोष की स्थापना की जो मीरजाफर ५० लाख रुपया उसके (क्लाइव) के लिए छोड़ गया था। इस कोष के द्वारा उन सिपाहियों तथा भारतीय सैनिक पदाधिकारियों को सहायता प्रदान की जाती थी, जिनका युद्ध में अङ्ग-भङ्ग हो जाता था और जो सैनिक कार्य या अन्य कार्यों के करने के अयोग्य हो जाते थे।

नागरिक तथा सैनिक सुधार

(क) प्रतिज्ञा-पत्र का आरम्भ।

(ख) क्लाइव-कोष की स्थापना।

(ग) व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण।

(घ) कलकत्ता-कौंसिल-सम्बन्धी सुधार।

(ङ) सैनिक सुधार।

(ग) व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण—इस समय कम्पनी के कर्मचारी कम्पनी की परमिट पर अपना निजी व्यापार बिना चुंगी आदि किए करते थे। इसके कारण कम्पनी के व्यापार को बड़ा धक्का लगा और उनकी आय बहुत कम हो गई। क्लाइव ने व्यक्तिगत व्यापार बन्द करने का निश्चय किया। क्लाइव की तो यह योजना थी कि लाइसेंस लेकर किया जाने वाला व्यापार बिलकुल बन्द कर दिया जाए और कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी जाए, किन्तु कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने उसको स्वीकार नहीं किया। इसके उपरान्त उसने निजी व्यापार-प्रथा को एक विशेष ढंग से नियमित और सीमित करने का प्रयत्न किया। उसने कम्पनी के उच्च सेवकों को नाम-मात्र का व्यापार करने का अधिकार दिया और उनके लाभ को पद के अनुपात में वितरित किया गया। इसके अनुसार गवर्नर की १७,५०० पौंड की, सेना के कर्नल तथा कौंसिल सदस्य की ७,००० पौंड वार्षिक आय निश्चित की गई। यह प्रथा दो वर्ष उपरान्त समाप्त कर दी गई और प्रान्त की आय पर कमीशन निश्चित हुआ। इस प्रकार गवर्नर को ४,८०० पौंड वेतन के अतिरिक्त १८,५०० पौंड और मिलते थे और अन्य व्यक्तियों को उनके पद के अनुसार और धन मिलता था।

(घ) कलकत्ता कौंसिल-सम्बन्धी सुधार—क्लाइव के उपरोक्त सुधारों का कलकत्ता-कौंसिल ने घोर विरोध किया, जिससे क्लाइव ने कलकत्ता-कौंसिल में सुधार करने का निश्चय किया। उसने उसकी उपेक्षा कर सिलेक्ट कमेटी का निर्माण किया था, जिसके चार सदस्य थे और वह उनका अध्यक्ष था। कौंसिल के कई सदस्यों को या तो निकाल दिया गया अथवा उनको त्याग-पत्र दे देने के लिए बाध्य किया गया। उसके स्थान पर उसने मद्रास के व्यक्तियों को पदासीन किया। वह जानता था कि बंगाल के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ है और वह अपनी पुरानी नीति का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं हैं।

(ङ) सैनिक-सुधार—क्लाइव ने सैनिक सुधारों की ओर भी ध्यान दिया। उसने सेना को तीन भागों में विभक्त किया, जिसका एक भाग मुंगेर में, दूसरा भाग बाँकीपुर में और तीसरा भाग इलाहाबाद में रक्खा। प्रत्येक भाग में यूरोपीयन पैदल सेना, एक बन्दूकची दस्ता, छः गुल्म सैनिक तथा एक गुल्म अश्वारोहियों का था। इसके उपरान्त उसने दोहरे भत्ते की प्रथा का अन्त किया। युद्ध-काल में सैनिकों को दोहरा भत्ता मिलता था, परन्तु मीरजाफर ने प्लासी के युद्ध के उपरान्त शान्तिकाल में भी इस भत्ते के देने का प्रचलन चालू रखा। उसने सन् १७६६ ई० में इस दोहरे भत्ते को एक आदेश द्वारा देना बन्द कर दिया। इस आदेश से सेना में बड़ा असन्तोष फैला और बहुत-से सैनिकों ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिए। क्लाइव ने शीघ्र ही रिक्त स्थानों पर नई नियुक्तियाँ कीं और उनके त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए।

विद्रोह—क्लाइव के सुधारों के कारण नागरिक तथा सैनिक कर्मचारियों में बड़ा असन्तोष फैला। उन्होंने विद्रोह का निश्चय कर अपने आपको संगठित किया; क्लाइव ने बड़ी तत्परता तथा योग्यता से भारतीय सैनिकों द्वारा इस विद्रोह का कठोर

से दमन किया। उसने विद्रोह की भावना कुचली और विद्रोही दलों को बिलकुल शान्त कर दिया।

(२) **बंगाल की दीवानी प्राप्त करना**—क्लाइव ने कम्पनी के लिए शाहआलम से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। दीवानी प्राप्त करने वाले को पूरे प्रान्त की मालगुजारी का नियन्त्रण तथा संग्रह करने का अधिकार दे दिया जाता था। इस समय के उपरान्त कम्पनी के सेवकों को ही मालगुजारी वसूल करनी पड़ती थी और सरकारी भुगतान करने के उपरान्त नवाब को ५३ लाख रुपए की निश्चित रकम और मुगल-सम्राट शाहआलम को २६ लाख रुपया वार्षिक देना पड़ता था। **सन् १७६५ ई० में नवाब ने कम्पनी को 'निजामत' भी सौंप दी। इस प्रकार कम्पनी के हाथ में अगस्त १७६५ ई० तक 'निजामत और दीवानी' दोनों आ गईं।** कुछ समय तक कम्पनी ने अपने पदाधिकारियों को निजाम तथा दीवानी के पद पर नियुक्त नहीं किया था। निजामत के पद पर डिप्टी नवाब होता था, जिसको नवाब कम्पनी की राय से नियुक्त करता था और नवाब उसको पदच्युत नहीं कर सकता था। बंगाल में इस पद पर **मुहम्मद रजा खाँ** कार्य करता रहा। बिहार में इस पद पर सिताबराय को नियुक्त किया गया। सन् १७६९ ई० में कम्पनी की ओर से स्थानीय माल कर्मचारियों की देख-भाल के लिए अंग्रेज निरीक्षकों की नियुक्ति की गई; बाद में ये **'कलक्टर'** कहलाने लगे। यही क्लाइव द्वारा स्थापित 'दोहरा' प्रबन्ध था। इसका वर्णन विस्तार से अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

(३) **बाह्य नीति**—क्लाइव जब भारत आया तो अंग्रेज मुगल-सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला को युद्ध में परास्त कर चुके थे और वे उनकी कृपा के भिकारी थे। मीरकासिम की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई थी। क्लाइव को यह स्थिति देखकर अवश्य कुछ निराशा हुई होगी, किन्तु क्लाइव ने इस समय बड़ी योग्यता का परिचय दिया।

(क) **अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न करना**—इस समय यदि वह चाहता तो अवध पर अंग्रेजी राज्य स्थापित कर सकता था, किन्तु क्लाइव ने अंग्रेजों के हित में उसको अपने अधिकार-क्षेत्र से बाहर समझा और उसने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा तक ही अपना अधिकार सीमित रखा। क्लाइव ने यह कार्य बड़ी दूरदर्शिता का किया। यदि इस समय क्लाइव अपने अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयत्न करता तो उसको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता, क्योंकि अंग्रेजों की शक्ति उस समय इतनी दृढ़ नहीं थी कि वे इतने अधिक भू-भाग पर सुव्यवस्थित शासन की स्थापना करने में सफल हो जाते। **क्लाइव अगस्त सन् १७६५ ई० में इलाहाबाद गया और उसने मुगल-सम्राट शाहआलम और अवध के**

बाह्य नीति

(क) अवध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न करना।
(ख) शाहआलम और अवध के नवाब से इलाहाबाद की सन्धि करना।
(ग) शाहआलम के साथ नम्रता का व्यवहार।

नवाब शुजाउद्दौला के साथ १६ अगस्त सन् १७६५ ई० को एक सन्धि की।

(ख) **इलाहाबाद की सन्धि**—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं—

(i) युद्ध के समय दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(ii) धन लेकर कम्पनी हर समय नवाब को सैनिक सहायता प्रदान करेगी।

(iii) अवध के नवाब को उसका राज्य लौटा दिया जाएगा।

(iv) अवध के नवाब ने कम्पनी को युद्ध की क्षति-पूर्ति के लिए ५० लाख रुपया देने का वचन दिया।

(v) नवाब से कड़ा और इलाहाबाद के जिले लेकर मुगल-सम्राट शाहआलम को दे दिए गए।

(vi) बनारस के राजवंश को स्वीकार कर लिया गया और वह अवध-राज्य के अधीन माना गया।

(vii) अवध के नवाब ने यह भी विश्वास दिलाया कि वह मीरकासिम और सुमरु को अपने राज्य में आश्रय प्रदान नहीं करेगा।

इलाहाबाद की सन्धि का प्रभाव—यह समझौता बहुत अधिक स्थायी सिद्ध हुआ। लार्ड डलहौजी द्वारा अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने से पूर्व तक अवध एक मध्यस्थ राज्य के रूप में बना रहा। इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा अवध अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्र में पूर्णतया आ गया और इस समय के उपरान्त अंग्रेजों ने उसके साथ निकटतम सम्बन्ध बनाए रखा, जिससे मरहठे उसको उनके विरुद्ध प्रयोग न कर सकें, वरन् उसको उनके विरुद्ध संरक्षक के रूप में प्रयोग किया जा सके।

(ग) **शाहआलम के साथ नम्रता का व्यवहार**—इसके बाद क्लाइव ने भगोड़े मुगल-सम्राट शाहआलम की ओर ध्यान दिया। इस समय मुगल-सम्राट के पास केवल उपाधि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। इसी उद्देश्य से उसको कड़ा और इलाहाबाद के प्रदेश दिए गए और उसको २६ लाख रुपये वार्षिक पेन्शन देने का वचन दिया। इनके बदले में उसने कम्पनी को दीवानी वसूल करने का अधिकार प्रदान किया। क्लाइव ने उससे उत्तरी सरकार के लिए भी फरमान प्राप्त किया। इस प्रकार क्लाइव ने शाहआलम के साथ बड़ा नम्रतापूर्ण व्यवहार किया, किन्तु उसका यह व्यवहार बड़ा ही कूटनीतिपूर्ण था क्योंकि 'आगे बढ़ने का विचार……उत्कंठापूर्ण होकर भी इतना महंगा तथा व्यर्थ है कि जब तक कम्पनी के हित की समस्त योजना पूरी तरह न सिरे से निर्धारित न की जाए तब तक किसी भी समझदार गवर्नर अथवा कौंसि द्वारा उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।' उसने इस समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स से भी यही प्रार्थना की थी कि 'वे अपने अधीनस्थ प्रदेशों के विचार के लिए विचलित न हों।' उसका मत उचित ही था, क्योंकि अगले कुछ वर्षों तक अंग्रेजों को अपने प्रदेशों को पूर्ण तया सुरक्षित रखना बड़ा कठिन हो गया था।

क्लाइव की मृत्यु—सन् १७६७ ई० में क्लाइव रोगग्रस्त होने के कारण इंगलैण्ड वापिस चला गया। वहाँ पहुँचकर उसके शत्रुओं ने उसके विरुद्ध एक सं ठित दल की स्थापना की जिसने उसको हर प्रकार से देश में बदनाम किया। उन्हें

ार्यों की समीक्षा के लिए एक सिलेक्ट कमेटी का निर्माण किया गया, जिसने लाइव के कार्यों की तीव्र निन्दा की और उसको दोषी ठहराया, किन्तु क्लाइव ने ने आपको निर्दोष बतलाया। इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में इस पर खूब वाद-विवाद हुआ, किन्तु अन्त में उसकी सेवाओं का ध्यान कर उसको आदरपूर्वक अपराध मुक्त घोषित किया गया। उसको बड़ा दुःख हुआ कि उस पर लोगों ने बड़े कठोर आरोप लगाए थे। मुक्त होने पर उसको प्रसन्नता अवश्य हुई, किन्तु यह प्रसन्नता आंशिक थी। उसकी मृत्यु २ नवम्बर सन् १७७४ ई० में हुई, क्योंकि उसने स्वयं आत्म-हत्या की थी।

क्लाइव का चरित्र तथा उसके कार्यों का मूल्यांकन (1983)

क्लाइव ने कम्पनी तथा अङ्गरेज जाति की बड़ी सेवा की। उसके ही कारण अंग्रेज भारत में राज्य स्थापित करने में सफल हुए और इसीलिए वह भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक माना जाता है। **प्रोफेसर रोबटस** के अनुसार, "क्लाइव अपने विशेष गुणों के कारण उस अभिनय के लिए असाधारण रूप के उपयुक्त था जो उसको भारतीय रंगमंच पर करना था।"

क्लाइव के गुण—क्लाइव के मुख्य गुण इस प्रकार हैं—

(१) **व्यक्तिगत गुण**—वह बड़ा परिश्रमी, बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति था। उसकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। वह भीषण परिस्थिति का सामना बड़े धैर्य तथा उत्साह से करने की क्षमता रखता था।

(२) **कुटिल राजनीतिज्ञ**—वह एक कुटिल राजनीतिज्ञ था और भारतीय परिस्थिति का उसको पूर्ण ज्ञान था। उसने भारतीयों के चरित्र का पूर्ण अध्ययन कर लिया था। वह समझ गया था कि अंग्रेज तभी सफलता प्राप्त कर सकते हैं, जबकि भारतीयों के अन्दर फूट डाल दी जाए और विरोधी तत्वों को अपनी ओर मिला लिया जाए। उसकी इस नीति को अंग्रेज मानते रहे। अतः उसकी यह नीति अंग्रेजी साम्राज्य की आधारशिला बन गई।

क्लाइव के गुण

(१) व्यक्तिगत गुण।
(२) कुटिल राजनीतिज्ञ।
(३) योग्य सेनापति।
(४) तुरन्त-बुद्धि तथा दृढ़-प्रतिज्ञ।

(३) **योग्य सेनापति**—कुछ विद्वानों ने उसकी तुलना सिकन्दर तथा नैपोलियन से सेनापति के रूप में की है। यह सत्य है कि वह अर्काट तथा प्लासी के युद्ध में सफल हुआ; किन्तु वास्तव में प्लासी का युद्ध निर्णायक सिद्ध होते हुए भी युद्ध न होकर केवल एक षड्यन्त्र था, जिसमें वह पूर्णतया सफल रहा। इतिहास लेखक **ओर्मे** ने लिखा है कि जब प्लासी का युद्ध हो रहा था तब क्लाइव सो रहा था। अतः स्पष्ट है कि प्लासी की विजय सामरिक विजय नहीं थी वरन् 'वह प्रभाव पर पुरुषार्थ की और मूर्खता पर धूर्तता की जीत थी। इस सम्बन्ध में चार्ल्स ने सत्य ही कहा है कि "क्लाइव की योजनाओं में योग्यतापूर्ण संयोजन का प्रायः अभाव है और कुछ अवसरों पर तो वह सर्वथा स्पष्ट सैनिक सावधानियों की भी उपेक्षा करता जान पड़ता है। शत्रु को ढूंढने और उसे पा लेने पर एकाग्र शूरवीरता के साथ उसका उन पर टूट पड़ना उसका आधारभूत सिद्धान्त जान पड़ता है और उसकी

सफलता का मूल कारण अध्ययनपूर्ण योजनाओं और निपुण कूटनीति से कहीं अधिक उसकी व्यक्तिगत निडरता और पूरे विश्वास के साथ अनगिनत मनुष्यों को प्रेरणा देने की शक्ति है।"

(४) **तुरन्त-बुद्धि तथा दृढ़ प्रतिज्ञ**—उसकी इस योग्यता के कारण फ्रांसिसीयों की शक्ति का ह्रास हुआ। वह तुरन्त-बुद्धि था। जब फ्रांसीसी तथा चाँदा साहेब मुहम्मद अली को त्रिचनापली में घेरे हुए थे और अंग्रेज किंकर्त्तव्यमूढ़ थे, उसी समय उसने मद्रास कौंसिल का ध्यान कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने की ओर आकर्षित किया, जिसने पूर्णतया पासा पलट दिया और यहीं से वास्तव में अंग्रेजों की विजय का सूत्रपात्र हुआ। यदि अंग्रेजों को यह विजय प्राप्त नहीं होती तो फ्रांसीसियों की शक्ति बहुत बढ़ जाती और उनके हाथ में भारत की राजसत्ता भी आ जाती। उससे फ्रांसीसी बहुत डरने लगे थे। अंग्रेजों में वह ही उस समय एक योग्य व्यक्ति था और उसने ही फ्रांसीसियों को नीचा दिखाया, जिससे उनको बड़ा आघात पहुँचा। उसने उनके साम्राज्य-विस्तार तथा राज्य की स्थापना की योजना को असफल कर दिया। क्लाइव ने उस समय भी अदम्य उत्साह, धैर्य तथा साहस का परिचय दिया, जब उसके नागरिक तथा सैनिक सुधारों के कारण कम्पनी के कर्मचारियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। उसका सबसे बड़ा गुण यह था कि वह अपनी योजनाओं का विरोध होने पर भी प्रयत्न करने से कभी नहीं हिचकता था। उसने कलकत्ता कौंसिल के विरोध का ध्यान न कर अपनी योजनाओं को सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया।

प्रोफेसर रोबर्ट्स ने कहा है कि युद्ध-भूमि पर उसका अदम्य शौर्य, राजनीतिक संकट के अवसर पर उसका अपूर्व साहस और उद्दण्डता, क्रुद्ध, विरोधी और विद्रोही आश्रितों का सामना करने में उसकी नैतिक दृढ़ता, वाद-विवाद में उसकी भाषा का ओज और बल इन्हीं सब विशेषताओं ने **लार्ड मैकॉले** की यह उक्ति सत्य कर दी है कि हमारे द्वीप ने शायद ही कभी युद्ध-भूमि और विचार-भवन दोनों ही स्थानों पर वस्तुतः उससे अधिक महान् व्यक्ति को जन्म दिया हो।"

लार्ड कर्जन ने क्लाइव के सम्बन्ध में लिखा है कि "अंग्रेज जाति में क्लाइव एक महान् आत्मा का व्यक्ति था। उसकी गणना उन व्यक्तियों में की जाती है जो मानव जाति के निर्माण के लिए इस विश्व में अवतरित होते हैं। क्लाइव एक मनुष्य था और मनुष्यों का वह स्वामी था......वह इस देश में दोषारोपण करने वालों तथा प्रतिद्वन्द्रियों के विरुद्ध ऐसे साहस के साथ खड़ा रहा जिसका अद्योपान्त दमन न हो सका। क्लाइव ऐसा व्यक्ति था जो अपने साथियों की सतह से उसी प्रकार ऊंचा उठा रहा, जिस प्रकार जहाज समुद्र के प्रहार से ऊंचा उठा रहता है।"

स्टेफन होप के शब्दों में, "कोई भी वस्तु उसको (क्लाइव) आतंकित नहीं कर पाती थी, उसका विवेक किसी बात से मन्द नहीं पड़ पाता था। उसका निर्णय तात्कालिक होता था और सदैव ठीक होता था।"

क्लाइव के दोष

उक्त गुणों के होने पर भी उसका नैतिक चरित्र उन्नत नहीं था। वह चरित्र-हीन था। उसने बंगाल में अनेक भद्र महिलाओं को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। उसने **अमीचन्द** के, साथ बड़ा धोखा किया। उसने **वाट्सन** के हस्ताक्षर बनाए और जाली सन्धि-पत्र के द्वारा अमीचन्द को धोखे में रक्खा। उसको धन से बड़ा प्रेम था। उसने हर सम्भव रूप से भारत से धन का उपार्जन किया। वह लम्बी-लम्बी भेंट और रिश्वत स्वीकार करने का आदी था, जिनको वह उपहार के रूप में मानता था। इसका प्रभाव कम्पनी के कर्मचारियों पर अच्छा नहीं पड़ा, जिसके कारण घूसखोरी और भ्रष्टाचार समस्त बंगाल में फैल गया। दूसरी बार बंगाल का गवर्नर होने पर उसने आवश्यक सुधारों के करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि बाद के जीवन में उसका मोह धन के प्रति अवश्य कम हो गया था, किन्तु उसके पूर्व के कारनामे नहीं मिट सके और वे अपनी छाप अंग्रेज कर्मचारियों पर छोड़ गए। सुधारों के उपरान्त भी व्यक्तिगत व्यापार पूर्ववत् चलता रहा और उपहार आदि का चलन भी जारी रहा। उसने दोहरे शासन-प्रबन्ध की स्थापना की, जिसके कारण बंगाल की जनता को विशेष कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा। सन् १७७० में बंगाल में एक ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा जिसने जनता को बड़ा कष्ट पहुँचाया और उसके लिए कम्पनी की नीति ही स्पष्ट कारण थी।

अतः यह कहा जा सकता है कि **क्लाइव में व्यक्तिगत अवगुण तथा गुण दोनों का सम्मिश्रण था, किन्तु उसने अपने देश के प्रति जो कार्य किया वह महान् था और इसी कारण इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट ने उसको उसके विरुद्ध लगाए गए अपराधों तथा आरोपों से मुक्ति प्रदान की।** वास्तव में वह भारत में **अंग्रेजी राज्य का संस्थापक** था। जब वह भारत से गया उस समय बंगाल पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार था। अवध का नवाब तथा मुगल-सम्राट शाहआलम उनके आश्रित थे। दक्षिण में भी उनका प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत हो चुका था।

क्लाइव द्वारा स्थापित बंगाल का दोहरा शासन—अपनी प्रारम्भिक समस्याओं का समाधान करने के उपरान्त क्लाइव का ध्यान बंगाल की शासन-व्यवस्था की ओर आकर्षित हुआ। उसने जो शासन-व्यवस्था स्थापित की वह दोहरे शासन के नाम से विख्यात है।

(क) **दोहरे-शासन की रूप-रेखा**—इस व्यवस्था के स्थापित करने के पूर्व बंगाल के नवाब जो पहले सूबेदार कहलाते थे और दिल्ली सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में बंगाल पर शासन करते थे, उनको दीवानी तथा निजामत दोनों का कार्य करना पड़ता था। दीवानी के अन्तर्गत मालगुजारी का वसूल करना, उसका व्यय करना और दीवानी से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णय करना था। निजामत के अन्तर्गत सैनिक शक्ति और फौजदारी-सम्बन्धी मुकदमों का निर्णय करना था। सन् १७६५ ई० के फरवरी मास में निजामत के कार्यों पर कम्पनी का अधिकार हो गया था और अगस्त

१७६५ ई० में कम्पनी को मुगल-सम्राट शाहआलम से बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई थी। इस प्रकार दोनों दीवानी और निजामत पर कम्पनी का अधिकार स्थापित हो गया, परन्तु उस समय कम्पनी की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह इस प्रकार आए हुए पूर्ण उत्तरदायित्व को सम्हालने में सफल हो सकती थी, इसलिए उसने अपने अधिकार में सेना, कोष, विदेशी नीति तथा विदेशी व्यापार को अपने हाथ में ले लिया, परन्तु लगान वसूल करना और न्याय करने का काम उसने अपने हाथ में रखने के स्थान पर भारतीय पदाधिकारियों को सौंपा, यद्यपि ये कर्मचारी कम्पनी के ही अधीन थे। बंगाल के नवाब को ५३ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर शासन-भार से मुक्त कर दिया था। **रजा खाँ** को बंगाल में और **सिताबराय** को बिहार में नायब नाजिम के पद पर नियुक्त किया गया। रजा खाँ का मुर्शिदाबाद और सिताबराय का पटना केन्द्र बनाया गया। इन दोनों की नियुक्ति तथा इनको इनके पद से अलग करने का अधिकार कम्पनी के हाथ में था। मालगुजारी वसूल करने पर निजामत का समस्त व्यय, मुगल-सम्राट और बंगाल के नवाब को पेंशन दी जाती थी और जो शेष धन बचता वह कम्पनी के अधिकार में रहता। इसके द्वारा समस्त शक्ति पर कम्पनी का अधिकार हो गया। नवाब के कर्मचारियों के हाथ में बहुत थोड़ी शक्ति रही। इसी को क्लाइव द्वारा स्थापित दोहरा शासन कहते हैं।

(ख) **दोहरे शासन से लाभ**—दोहरे शासन से निम्नलिखित लाभ हुए—

(१) **कम्पनी की सुविधा**—सन् १७६५ ई० में कम्पनी को निजामत तथा दीवानी दोनों के अधिकार प्राप्त हो गए। उन दोनों को सम्भालना कम्पनी के लिए कठिन कार्य था, क्योंकि इन कर्मचारियों को प्रशासन का कोई ज्ञान नहीं था। अतः दोहरे शासन की स्थापना से कम्पनी का कार्य-भार हलका हो गया और बंगाल पर उनका पूर्ण नियन्त्रण भी रह सका।

(२) **विदेशी जातियों की ईर्षा से छुटकारा**—यदि बंगाल का प्रशासन कम्पनी अपने ही हाथों में रखती तो विदेशी जातियाँ (फ्रांसीसी, डच तथा पुर्तगाली) ईर्षा के कारण इसे सहन न करतीं और घोर विरोध करतीं।

(३) **भारतीय कर्मचारियों का सहयोग**—मालगुजारी वसूल करने तथा न्याय करने के लिए भारतीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। इस प्रकार कम्पनी को भारतीय पदाधिकारियों का सहयोग प्राप्त हो गया।

(४) **कम्पनी की आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ता**—इस दोहरे शासन से कम्पनी की व्यापारिक तथा आर्थिक स्थिति बिना उत्तरदायित्व बढ़े हुए दृढ़ बन गई।

(५) **कम्पनी के उद्देश्य की स्पष्टता**—इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि कम्पनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार करना था न कि शासन करना।

(६) **अंग्रेजी शासन की स्थापना**—इस दोहरे शासन से भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ गई। बंगाल में अब नवाब की शक्ति केवल नाम-मात्र की ही रह गई थी। दीवानी तथा निजामत के अधिकार कम्पनी के हाथ में पहुँच गए।

(ग) दोहरे शासन के दोष—इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं—

(१) उत्तरदायित्व का अभाव—सम्पूर्ण शक्तियाँ कम्पनी के हाथ में थीं, किन्तु उसने अपने अधिकारियों को भारतीय पदाधिकारियों को सौंप दिया और कम्पनी इन कर्मचारियों के कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी न थी। इस प्रकार के अभाव से पदाधिकारियों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और वे उसका दुरुपयोग करने लगे। इस प्रकार अत्याचार बढ़ गए।

(२) आर्थिक उत्पीड़न—मालगुजारी के वसूल करने में बड़ी कठोरता से कार्य किया जाने लगा। जमींदारी नीलामी द्वारा खरीदी जाती थी; जो सबसे अधिक बोली बोल देता था वही उसका मालिक बन जाता था। इसके पश्चात् वह निरीह कृषकों से मनमाना लगान वसूल करता था और वसूल करने में अमानुषिक रीतियों का भी प्रयोग करने में नहीं चूकता था।

(३) नवाबी शासन में हस्तक्षेप—कम्पनी के कर्मचारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हर प्रकार का उत्पीड़न करते और नवाब के कर्मचारियों के काम में प्रजा की बाधाएँ डालने लगे।

(४) शासन की ओर से कम्पनी की उदासीनता—सेना और कृषि पर कम्पनी का पूर्ण अधिकार था और उससे वह पूरा लाभ भी उठाती थी, किन्तु उसने शासन की ओर तनिक भी ध्यान नहीं था। इसका फल यह हुआ कि प्रजा के कष्ट बढ़ गए। रक्षा खतरे में पड़ गई।

(५) भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश—कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप बंगाल के व्यापार पर भी उसका एकाधिकार हो गया। व्यापार में भी कम्पनी के कर्मचारी मनमानी लूट-खसोट करने लगे। देश के उद्योग-धन्धे नष्ट हो गए।

(६) कम्पनी के लिए अहितकारी—बंगाल का दोहरा शासन कम्पनी के लिए भी हितकर नहीं था। इससे कम्पनी के कर्मचारियों की निरंकुशता में वृद्धि हुई और भारतीय जनता को अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। चारों ओर अराजकता तथा अशान्ति का वातावरण छा गया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बंगाल के "**द्वैध-शासन**" से कृषि तथा उद्योग-धन्धे नष्ट हो गए। जनता कम्पनी के कर्मचारियों के अत्याचारों के कारण त्राही-त्राही करने लगी। इसके विनाशकारी दोषों के कारण ही सन् १७७२ ई० में **वारेन हेस्टिंग्ज** ने इसे समाप्त कर दिया।

(1982)

क्या भारत में क्लाइव ब्रिटिश राज्य का संस्थापक था?—भारत में अंग्रेजी राज्य का निर्माता क्लाइव ही था। उसने अपनी वीरता, धैर्य तथा साहस से अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक व्यापारी कम्पनी से ऊपर उठाकर एक राजनैतिक संस्था बना दिया। प्लासी तथा बक्सर के युद्धों में विजय प्राप्त करके तथा अपनी कुटिल नीति से उसने अंग्रेजी राज्य की नींव जमा दी। उसी की महान् सेवाओं तथा दूरदर्शिता से अंग्रेज लोग भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ

हो सके। इसी कारण उसको भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। **प्रोफेसर रोबर्ट्स के अनुसार,** "क्लाइव अपने विशेष गुणों के कारण अभिनय के लिए असाधारण रूप से उपयुक्त था जो उसको भारतीय रंगमंच पर करना था।"

क्लाइव बड़ा दृढ़ प्रतिज्ञ, आत्म-विश्वासी और महत्वाकांक्षी था। इसके साथ-साथ ही वह सच्चा देश-भक्त भी था। उसने अपना सम्पूर्ण जीवन देश-सेवा के लिए ही अर्पित कर दिया। इस कथन की पुष्टि में कि क्लाइव भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य का संस्थापक था निम्नलिखित युक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

(१) **कर्नाटक का द्वितीय युद्ध**—कर्नाटक के द्वितीय युद्ध में फ्रांसीसियों की विजय से अङ्गरेजों की स्थिति बहुत गम्भीर हो गई थी। ऐसे अल्पकाल तथा संकट-काल में उसने अर्काट का घेरा डालकर अर्काट की रक्षा कर अङ्गरेजों को दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों से बचा लिया।

(२) **प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करना**—सन् १७५७ ई० में क्लाइव ने **प्लासी के प्रसिद्ध युद्ध** में विजय प्राप्त करके भारत में अङ्गरेजी राज्य का शिलान्यास किया। बंगाल पर प्रभुत्व स्थापित हो जाने से अङ्गरेजों को अपने शत्रुओं के विरुद्ध बहुत सहायता मिली और इसी कारण वे फ्रांसीसियों को पराजित करने में सफल हो सके।

(३) **इलाहाबाद की सन्धि**—इलाहाबाद की सन्धि भी उसकी दूरदर्शिता तथा कूटनीतिज्ञता की द्योतक है। इसके अनुसार उसने सिराजुद्दौला से बंगाल की नवाबी हस्तगत की और वहाँ पर कम्पनी की प्रभुता स्थापित की। मुगल-सम्राट शाहआलम से दीवानी और नए नवाब से निजामत प्राप्त करके कम्पनी को बंगाल का वैधानिक स्वामी बना दिया। बंगाल में कम्पनी का निष्कण्टक राज्य स्थापित करने के लिए उसने फ्रांसीसियों की शक्ति को सर्वदा के लिए नष्ट कर दिया।

(४) **क्लाइव के सुधार**—उसने कम्पनी को आन्तरिक व्यवस्था में बहुत-से सुधार किए जिनके अभाव में कम्पनी कभी उन्नति नहीं कर सकती थी। उसने अपने सुधारों से कम्पनी के प्रबन्ध को सुन्दरता के साथ संगठित कर दिया।

क्लाइव तीन बार भारत आया और उसने हर बार कोई न कोई महत्वपूर्ण कार्य किया। पहली बार उसने दक्षिण में कम्पनी की सत्ता को दृढ़ किया, दूसरी बार उसने बंगाल विजय किया और तीसरी बार उसने कम्पनी को राजनीतिक शक्ति के रूप में परिणित कर दिया।

इन सब कारण से **क्लाइव को ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक** कहने में कोई अत्युक्ति न होगी।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) बंगाल अहाते की गवर्नरी के पद पर दूसरी बार गवर्नर के हा क्लाइव को अपने शासन-कार्य में कितनी बार सफलता प्राप्त हुई ?

(२) क्या क्लाइव को भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य का संथापक कहना उचित होगा ? कारण बतलाइए ।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) सन् १७६५ ई० से सन् १७६७ ई० तक क्लाइव की उपलब्धियों का आलोचनात्मक विवरण दीजिए ।

राजस्थान—

(१) क्लाइव की द्वितीय गवर्नरी के पूर्व मीरजाफर की कुशासन-व्यवस्था के क्या कारण थे ? क्लाइव ने इन दोषों का अन्त किस प्रकार किया ?

(२) भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य की स्थापना में क्लाइव के कार्यों का मूल्यांकन करो ।

मध्य प्रदेश—

(१) लार्ड क्लाइव को भारत में अंग्रेजी राज्य का संस्थापक क्यों कहा जाता है ?

सागर विश्वविद्यालय—

(१) क्लाइव के द्वैध-शासन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए तथा बंगाल पर इन प्रभावों का निर्देशन कीजिए ।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) क्लाइव की बंगाल की दूसरी गवर्नरी का वर्णन और महत्व लिखिए ।

(२) कम्पनी द्वारा दीवानी हस्तगत करने के विषय में आप क्या जानते हैं ? इससे भारत में कम्पनी की दशा में क्या परिवर्तन हुआ ?

(३) लार्ड क्लाइव के द्वैध-शासन के लाभ और हानियों का वर्णन कीजिए ।

(४) लार्ड क्लाइव के द्वितीय प्रशासन का वर्णन कीजिए ।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) बंगाल की अपनी दूसरी गवर्नरी में क्लाइव ने जो राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ कीं उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

(२) 'हमारे द्वीप ने रॉबर्ट क्लाइव से बढ़कर सच्चे अर्थों में कदाचित् ही किसी अन्य महापुरुष को युद्ध अथवा सन्धि के क्षेत्र में जन्म दिया हो ।'—मैकाले । इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

५

वारेन हेस्टिंग्ज

क्लाइव के जाने के उपरान्त बंगाल की दशा—क्लाइव सन् १७६७ ई० में स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण स्वदेश लौट गया। उसके स्थान पर वालसर्ट बंगाल का गवर्नर नियुक्त हुआ और उसके उपरान्त सन् १७६९ ई० में कार्टियर उसके पद पर आसीन हुआ, किन्तु दोनों में इतनी योग्यता नहीं थी कि वे बंगाल के शासन को उन्नत करने में सफल होते। वास्तव में इन दोनों व्यक्तियों के शासन-काल में बंगाल की अवस्था पहले से भी अधिक शोचनीय हो गई और क्लाइव द्वारा किए गए सुधारों का देश की रक्षा को उन्नत करने में कोई परिणाम नहीं निकला। क्लाइव ने बंगाल में द्वैध-शासन की स्थापना की थी, जिसके दुष्परिणाम इनके शासन-काल में स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगे थे। इस शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत बंगाल का शासन नवाब और अंग्रेजों के अधिकार में आ गया था। निजामत-विभाग पर अंग्रेजों का अधिकार था और दीवानी वसूल करने का कार्य अंग्रेजों के हाथ में था। प्रान्त में शक्तिशाली शासन का अभाव होने के कारण शासन-व्यवस्था शिथिल हो गई, जिसके कारण समस्त प्रान्त में अराजकता-सी फैल गई। कम्पनी तथा नवाब के कर्मचारी बड़े उद्दण्ड थे और वे नवाब की आज्ञाओं की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। इस द्वैध-शासन के कारण जनता की अवस्था बहुत शोचनीय हो गई। कम्पनी को प्रत्येक समय धन की आवश्यकता रहती थी, जिसके कारण मालगुजारी बड़ी कठोरता से वसूल की जाती थी। इसके अतिरिक्त जमींदारों को अधिक मालगुजारी देनी पड़ती थी। वे किसानों से अधिक लगान वसूल करने लगे। इसके अतिरिक्त लगान वसूल करने वाले कर्मचारियों की देख-भाल नहीं होती थी, जिसके कारण वे प्रजा पर मनमाने अत्याचार करते थे। इसके अतिरिक्त इस शासन में भारतीय व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को भी बड़ा आघात पहुँचा। देशी कारीगरों को बाध्य किया जाता था कि वे अपना माल अंग्रेजों को बेचें। अंग्रेजों के कर्मचारी कारीगरों को उनकी आज्ञाओं का पालन नहीं करने पर जेलों में बन्द कर दिया करते थे। इसके अतिरिक्त कम्पनी के गुमाश्ते देशी कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं का मूल्य निर्धारित किया करते थे। वे उनकी वस्तु का मूल्य बाजार भाव से अधिकतर कम रखते थे। इस प्रकार बहुत-से कारीगरों ने कठिनाइयों को देखकर काम करना ही बन्द कर दिया, किन्तु जीविकोपार्जन का कोई अन्य साधन न होने के कारण किसान और कारीगरों की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी और उनको बेकार रहना पड़ता था।

इस दशा का सत्य तथा वास्तविक वर्णन रिचर्ड बीचर ने अपने उस पत्र

द्वारा किया जो उसने १४ मई, सन् १७६९ ई० को डाइरेक्टरों की गुप्त समिति के नाम भेजा था। यह पत्र इस प्रकार था—

"जिस अंग्रेज के पास विवेक है उसको यह सोचकर अवश्य दुःख होगा कि जिस समय से कम्पनी के अधिकार में दिवानी वसूल करने का काम आया है उस समय से इस देश के लोगों की दशा पहले से कहीं अधिक शोचनीय हो गई है···। यह सुन्दर देश जो अत्यन्त निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के अन्तर्गत भी समृद्ध तथा सम्पन्न था, अपने विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है।"[1]

गवर्नर वलसर्ट भी इस प्रणाली को पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने अपने विचार इस सम्बन्ध में निम्न शब्दों में इस प्रकार प्रगट किए——

"···कम्पनी के नौकर बर्बरता से ऐसे काण्ड, जिनकी समता किसी भी देश के इतिहास में नहीं मिल सकती, करने के पश्चात् धन-राशि से लदे हुए इंगलैण्ड पहुँचे हैं·····बंगाल की शासनकारिणी के रूप में तथा देश के सम्पूर्ण व्यापार की एकाधिकारिणी के रूप में कम्पनी के विभिन्न हित प्रत्यक्ष रूप से विरोधी दिशाओं में कार्य कर रहे हैं और वे एक दूसरे के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। अतः किसी नवीन व्यवस्था के बिना दशा अवश्य ही बिगड़ती जाएगी। यदि कम्पनी को अपनी वर्तमान प्रणाली के अनुसार कार्य करने दिया गया तो वह अपना विनाश स्वयं कर बैठेगी।"

कम्पनी के कर्मचारियों की मनमानी को रोकने के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति की गई। ये ही निरीक्षक बाद में कलक्टर के नाम से विख्यात हुए, किन्तु इन्होंने स्वयं निजी व्यापार करना आरम्भ कर दिया, जिसके कारण भ्रष्टाचार और भी अधिक व्यापक रूप में फैल गया। इन सब कार्यों का परिणाम यह हुआ कि जनता ने बिलख-बिलख कर जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया और उसके दुःख-दर्द को दूर करने वाला तो क्या सुनने वाला भी कोई नहीं था।

सन् १७०० का दुर्भिक्ष—उक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त बंगाल की भोली-भाली जनता पर एक पहाड़ और टूटा। यह सन् १७०० ई० का दुर्भिक्ष था, जिसने मरती हुई जनता को शीघ्र मरने के लिए अपना ताण्डव नृत्य करना आरम्भ किया। लार्ड मैकॉले ने इस दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

"१७०० की गर्मियों में वर्षा नहीं हुई, भूमि कठोर हो गई, तालाब सूख गए, नदियाँ काकपेया रह गईं और गंगा की समस्त घाटी में ऐसा दुर्भिक्ष छा गया, जैसा केवल उन देशों के निवासियों को ज्ञान है जहाँ के परिवार भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में खेती करके अपना पेट पालन करते थे। कोमल और निर्बल सूर्यपश्या स्त्रियाँ जो कभी घर की दहलीज से बाहर नहीं निकली थीं सड़कों पर आकर यात्रियों के सामने

---

[1] "It must give pain to an Englishman who has reason to think that since the accession of the Company to the Diwani the condition of the people of the country has been worse than it was before...This fine country which florished under the most despotic and arbitrary govenment, is verging towards its ruin."
—Quoted by Ramsay Muir.

जमीन को छूती थीं और पेट भरने के लिए मुट्ठी भर चावल मांगती थीं। विजेता अंग्रेजों के मकानों और उद्यानों के समीप, हुगली के प्रवाह से दिन-प्रतिदिन हजारों दुर्भिक्ष-पीड़ितों की लाशें बहकर समुद्र में जाती थीं। **मरते हुए और मरे हुओं से कलकत्ते के बाजारों का रास्ता तक भर गया था।** निर्बल लोग अपने सम्बन्धियों की लाशों को मरघट तक या पवित्र नदी तक ले जाने में असमर्थ थे, और न ही वह उन गीधों और स्यारों को भगा सकते थे, जो दिन-दहाड़े लाशों को नोचते या खाते थे। कितने व्यक्ति मरे इसका पूरा पता नहीं लग सका, परन्तु अनुमान है कि मृतकों की संख्या लाखों होगी।"

इस सम्बन्ध में एक अन्य कर्मचारी ने लिखा था कि **"दुर्दशा के जो दृश्य देखने में आए और अब भी आ रहे हैं, वे इतने वीभत्स हैं कि उनका वर्णन करना असम्भव है। सच बात तो यह है कि कितने ही स्थानों पर जीवित प्राणी मुर्दा प्राणियों को खाकर जीवित रहे।"**

हम इन्द्र विद्यावाचस्पति से सहमत हैं कि लार्ड मैकॉले ने जो इस दुर्भिक्ष का उत्तरदायित्व अनावृष्टि पर रखा है, यथार्थ नहीं है। वास्तव में अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि के कारण ऐसा भीषण दुर्भिक्ष नहीं पड़ सकता था, जिसके कारण ३० लाख व्यक्ति भूख और बीमारी से मर गए। **शासन की लोलुपता और कर्त्तव्य की उपेक्षा से ही ऐसे भयानक परिणाम निकल सकते हैं। उस समय कम्पनी और उसके कर्मचारियों के कुकृत्यों के कारण बंगाल को इतनी भयानक दुर्दशा में से गुजरना पड़ा।**

कम्पनी की शोषण नीति—वास्तव में कम्पनी की शोषण नीति के कारण बंगाल की जनता की दशा इतनी शोचनीय हो गई कि वह अकाल के छोटे-से धक्के को भी सहन न कर सकी। अंग्रेजों ने जनता को निर्धन बना दिया था, जिसके कारण अनावृष्टि के होते ही बंगाल में मृत्यु का ताण्डव नृत्य आरम्भ हो गया।

कम्पनी के कर्मचारियों का अन्याय—इसके अतिरिक्त कम्पनी के कर्मचारियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए बहुत-सा चावल खरीद लिया और अधिक दामों पर बेचना शुरू किया। इस समय कम्पनी की ओर से लगान बड़ी कड़ाई से वसूल किया गया। कम्पनी ने ५ प्रतिशत लगान में कमी की और अगले वर्ष १० प्रतिशत लगान बढ़ा दिया गया। इसी प्रकार यह स्वीकार करना होगा कि इस दुर्भिक्ष में कम्पनी के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का ही हाथ था।

वारेन हेस्टिंग्ज का बंगाल का गवर्नर होना

जब कार्टियर किसी प्रकार का भी सुधार करने में असमर्थ रहा तो कम्पनी के डाइरेक्टरों ने मद्रास-कौंसिल के सदस्य **वारेन हेस्टिंग्ज** को सन् १७७२ ई० में बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया।

वारेन हेस्टिंग्ज का प्रारम्भिक जीवन— वारेन हेस्टिंग्ज का जन्म १७३२ ई० में हुआ था। कुछ ही समय उपरान्त हेस्टिंग्ज की माता का देहान्त हो गया। इसके उसके पिता ने भी उसका परित्याग कर दिया। बालक हेस्टिंग्ज का भार उनके चाचा पर आ पड़ा, जिसने उसकी शिक्षा की उचित व्यवस्था की। हेस्टिंग्ज योग्य

और प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी था। थोड़े दिनों बाद उसके चाचा की मृत्यु के कारण उसके विद्यार्थी-जीवन का अन्त हुआ और वह निराश्रय हो गया। वह अपने एक दूर के सम्बन्धी की शरण लेने पर बाध्य हुआ। उसका वह सम्बन्धी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का संचालक था। उसने कम्पनी में हेस्टिंग्ज को क्लर्क के पद पर नियुक्त करवाया। सन् १७५० ई० में केवल **अट्ठारह वर्ष की अवस्था में वह क्लर्क** बनकर कलकत्ता आया। कम्पनी की नौकरी के साथ-साथ वह अपना व्यक्तिगत व्यापार भी करने लगा, जैसा कि कम्पनी के लगभग सभी कर्मचारी कर रहे थे। उसने अपने कार्य को बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया। **सन् १७५३ ई० में वह कलकत्ते से कासिम बाजार** भेज दिया गया और वहाँ से वह अपनी योग्यता के आधार पर **१७५५ ई० में कासिम बाजार की कोठी की कौंसिल का सदस्य** नियुक्त कर दिया गया। **सन् १७५६ ई०** के आरम्भ में सिराजुद्दौला ने कासिम-बाजार को अपने अधिकार में किया तो वह बन्दी बना लिया गया था, किन्तु कुछ समय उपरान्त वह मुक्त कर दिया गया। उसने उस षड्यन्त्र में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया था, जिसके द्वारा मीरजाफर को नवाब बनाया जाना था। मीर जाफर के नवाब बनने पर उसकी नियुक्ति मीर जाफर के दरबार में रेजीडेण्ट के पद पर कर दी गई और वह मुर्शिदाबाद में रहने लगा। यहाँ रहकर उसने तत्कालीन परिस्थिति का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। **सन् १७६१ ई० में वह कलकत्ता कौंसिल का सदस्य बना।** बक्सर के युद्ध तक उसने इस पद पर बड़ी योग्यता तथा ईमानदारी से कार्य किया, यद्यपि कम्पनी के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार फैला हुआ था। वह स्वदेश वापिस चला गया। ऐसा कहा जाता है कि इस समय उसके पास ३०,००० पौंड थे। उसकी प्रतिभा, कार्य-क्षमता एवं वाक् पटुता से इंगलैण्ड की पार्लियामेंट बहुत प्रभावित हुई। कम्पनी के संचालकों पर उसकी ईमानदारी का विशेष प्रभाव था। उसने फिर कम्पनी की सेवा में काम करने का निश्चय किया। **सन् १७६९ ई० में वह मद्रास कौंसिल का सदस्य बनाकर भारत** भेजा गया। उसने अपना कार्य बड़ी योग्यता से सम्पन्न किया, यद्यपि इस काल में उसने राजनीतिक कार्यों में कोई भाग नहीं लिया। **सन् १७७२ ई० में वह बंगाल के गवर्नर के पद पर आसीन हुआ।**

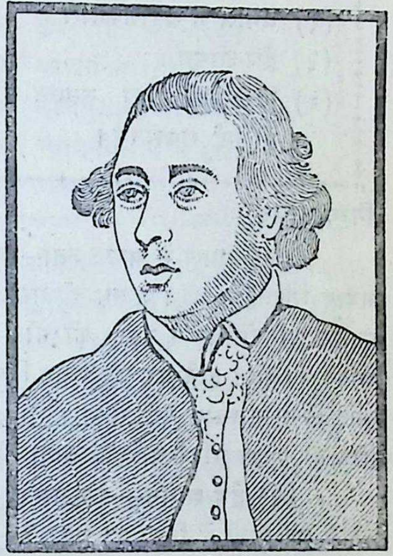

वारेन हेस्टिंग्ज

वारेन हेस्टिंग्ज की कठिनाइयाँ—जैसा उक्त पक्तियों में उल्लिखित है वारेन हेस्टिंग्ज सन् १७७२ ई० में कार्टियर के पश्चात् बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया था। उसकी नियुक्ति का प्रमुख कारण उसका भारतीय परिस्थिति का ज्ञान

था। कम्पनी ने उसको तत्कालीन परिस्थिति में सुधार करने के पूर्ण अधिकारों से सुशोभित किया था। पद-भार सम्भालते ही उसने स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और सुधारों की एक विस्तृत योजना का निर्माण किया। इससे पूर्व कि उसके सुधारों पर प्रकाश डाला जाए यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि उसके सामने जो समस्याएँ तथा कठिनाइयाँ थीं उनका विशद् तथा विस्तृत अध्ययन किया जाए, जिससे उसके सुधारों का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है। हेस्टिंग्ज के सामने मुख्य समस्याएं निम्नलिखित थीं—

वारेन हेस्टिंग्ज की कठिनाइयाँ

(१) बंगाल में अराजकता।
(२) द्वैध-शासन।
(३) विरोधियों द्वारा उत्पन्न की की गई समस्याएँ।

(१) **बंगाल में अराजकता**— बंगाल में चारों ओर अराजकता का राज्य था। नवाब शक्तिहीन था। जनता की सुख-समृद्धि और शान्ति की ओर न तो कम्पनी के पदाधिकारियों और न नवाब की ओर से ही ध्यान दिया जाता था। नवाब की शक्ति का अन्त होने पर यह स्थान रिक्त हो गया। कम्पनी ने इस रिक्त स्थान की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। १७७० ई० के दुर्भिक्ष ने तो जनता की पीठ ही तोड़ दी। इस परिस्थिति में जनता को असहनीय कष्ट सहन करने पड़े।

(२) **द्वैध-शासन**—इस समय बंगाल में द्वैध-शासन था। इस शासन का वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। उसके आर्थिक तथा राजनीतिक परिणाम जनता के लिए बड़े हानिकारक सिद्ध हुए। उसके द्वारा जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। इसका समाधान नितान्त आवश्यक था, क्योंकि जनता में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत होने लगी थी।

(३) **विरोधियों द्वारा उत्पन्न की गई समस्याएँ**—इस समय तक मरहठों ने अपनी शक्ति का संगठन कर लिया था और उन्होंने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। शाहआलम मरहठों के संरक्षण में चला गया था। मैसूर के राजा हैदरअली के भी अंग्रेजों के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था और उनको भारत से निकालने के लिए प्रयत्नशील था। उसने अपनी सेना का संगठन योरोपीयन ढंग से करना आरम्भ कर दिया था। अंग्रेजों के निज़ाम से भी सम्बन्ध अच्छे नहीं थे।

(1966)

वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार—अपनी कठिनाइयों तथा समस्याओं को भली प्रकार समझने के उपरान्त हेस्टिंग्ज ने सुधारों की ओर ध्यान दिया और एक विशद योजना का निर्माण किया। उसके सुधारों को पाठकों की सुविधा के निम्न लिए शीर्षकों में विभाजित किया गया है—

(क) **द्वैध-शासन का अन्त**—वास्तव में हेस्टिंग्ज द्वैध-शासन का अन्त करने के उद्देश्य से ही प्रधानतः बंगाल की गवर्नरी के पद पर नियुक्त किया गया था।

द्वैध-शासन के कारण पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गए थे जिसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। **उसने द्वैध-शासन की समाप्ति का आदेश जारी किया।** इस कार्य को पूर्ण करने के अभिप्राय से उसने नायब नाजिम के पदों को समाप्त कर दिया। बंगाल में इस पद पर मुहम्मद रजा खाँ और बिहार में इस पद पर सिताब राय कार्य कर रहे थे। दोनों पर मुकदमा चलाया गया, किन्तु बाद में वे आदरपूर्वक छोड़ दिए गए। (i) कम्पनी ने स्वयं अपने सेवकों द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों में मालगुजारी वसूल करवानी आरम्भ कर दी। इस प्रकार कम्पनी 'दीवानी के रूप में' कार्य करने लगी। (ii) अब तक भारतीय मालगुजारी वसूल करते थे, परन्तु उसने उनको उनके पदों से अलग कर उनके स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त किया। (iii) मालगुजारी वसूल करने के लिए एक **रिवेन्यु बोर्ड** की स्थापना की गई। (iv) सैद्धान्तिक रूप से शासन का समस्त उत्तरदायित्व नवाब पर था। उसने नवाब को शासन के उत्तरदायित्व से अलग कर दिया। (v) वह कम्पनी का पेंशनर बना दिया गया और उसको १६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में दिया जाने लगा। पाठकों को याद होगा कि १७६५ ई० में सन्धि के अनुसार कम्पनी नवाब को १३ लाख रुपया देती थी, सन् १७६६ ई० में वह ४१ लाख था। सन् १७६९ ई० में वह धन ३२ लाख रुपया कर दिया और अब वह धन १६ लाख रुपया कर दिया गया। (vi) नवाब के अल्पव्यस्क होने के कारण मीरजाफर की विधवा पत्नि मुन्नी बाई उसकी संरक्षक नियुक्त की गई और नन्दकुमार के पुत्र गुरुदास को उसके प्रबन्धक के पद पर नियुक्त किया गया। मुन्नी बाई ने हेस्टिग्ज को १½ लाख रुपया अपनी कृतज्ञता-प्रदर्शन करने के लिए दिया। (vii) उसने मितव्ययिता करने के लिए कुछ अनावश्यक वैतनिक पदों की समाप्ति कर दी। शासन की उचित व्यवस्था करने के उद्देश्य से कलकत्ता राजधानी बनाई गई तथा राजकोष कलकत्ता लाया गया।

हेस्टिग्ज के सुधार

(क) द्वैध-शासन का अन्त।
(ख) व्यापारिक सुधार।
(ग) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार।
(घ) न्याय-विभाग में सुधार।
(ङ) अन्य सुधार।

(ख) **व्यापारिक सुधार**—बंगाल की व्यापारिक स्थिति कम्पनी के एकाधिकार के कारण बड़ी शोचनीय हो गई थी। छोटे व्यापारियों का व्यापार ठप्प हो गया था। कम्पनी के कर्मचारी व्यक्तिगत व्यापार में मस्त थे। वस्तुओं का मूल्य, भ्रष्टाचार के कारण, बहुत बढ़ गया था। हेस्टिग्ज ने शीघ्र ही इस ओर ध्यान दिया और विभिन्न उपायों द्वारा उनको दूर किया। इससे कम्पनी को और छोटे-छोटे व्यापारियों को भी लाभ हुआ। इस दिशा में उसने पर्याप्त सुधार किए, जिनमें से मुख्य सुधार निम्नलिखित थे—

(१) **चुंगी में कमी**—हेस्टिग्ज ने चुंगी की दर २½ प्रतिशत नमक, पान, तम्बाकू और सुपारी के अतिरिक्त निश्चित कर दी। यह दर समस्त भारतीय तथा

यूरोपीय व्यापारियों के लिए समान थी। इससे पूर्व अङ्गरेजों को बहुत-सी वस्तुओं पर चुंगी नहीं देनी पड़ती थी और भारतीय व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी। इसके कारण भारतीय व्यापारी अङ्गरेज व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। उनके माल के दाम अङ्गरेज व्यापारियों के दामों से अधिक रहते थे। इस सुधार के कारण एक बहुत बड़े दोष का अन्त हुआ।

(२) दस्तक-प्रथा का अन्त—हेस्टिंग्ज ने दस्तक प्रथा समाप्त कर दी। इसके अनुसार चुंगी की आय सीधे कम्पनी को नहीं मिलती थी, वरन् मध्यस्थों को मिलती थी और वे फिर बाद में कुछ कमी कर कम्पनी को देते थे। इसका लाभ यह हुआ कि अब से चुंगी की आय सीधे कम्पनी को प्राप्त होने लगी।

(३) चौकियों की समाप्ति—हेस्टिंग्ज ने चौकियों की समाप्ति की। इससे पूर्व जमींदारों ने विभिन्न स्थानों पर चौकियों की स्थापना कर दी थी। ये चौकियाँ व्यापारिक यातायात में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित करती थीं, इन चौकियों में बड़ा भ्रष्टाचार था। हेस्टिंग्ज ने केवल कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, पटना और ढाका में ही चौकियां रहने दीं। इनकी समाप्ति से व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

व्यापारिक सुधार

(१) चुंगी में कमी।
(२) दस्तक प्रथा का अन्त।
(३) चौकियों की समाप्ति।
(४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण।
(५) बैंक की स्थापना।
(६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त।
(७) दादनी का अन्त।
(८) व्यापारिक संधियाँ।

(४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण—नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित किया गया। व्यापार ठेके पर उठाया गया, जबकि अब तक भूमि ही ठेके पर उठाई जाती थी।

(५) बैंक की स्थापना—हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में एक बैंक की स्थापना की, जिससे व्यापारियों को पर्याप्त सहायता मिल जाती थी। इससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त—हेस्टिंग्ज ने व्यक्तिगत व्यापार का अन्त करने के लिए उस पर कठोर प्रतिबन्ध लगाए। क्लाइव ने भी इसी ओर प्रयत्न किया था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई थी।

(७) दादनी का अन्त— हेस्टिंग्ज ने दादनी की प्रथा का अन्त किया। इसके अनुसार पहले कम्पनी के कर्मचारी कारीगरों को दादनी देकर उसका तैयार किया हुआ माल निश्चित दामों पर बेचने के लिए बाध्य करते थे। इसका प्रभाव भारतीय उद्योग-धन्धों पर बहुत बुरा पड़ रहा था। इस प्रथा की समाप्ति के उपरान्त व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की दशा उन्नत हुई।

(८) व्यापारिक संधियां— हेस्टिंग्ज ने व्यापार की वृद्धि के लिए मिश्र, तिब्बत

तथा भूटान के राजाओं से व्यापारिक सन्धियाँ कीं, जिनके कारण व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने अवध के नवाब तथा बनारस के राजा से भी व्यापारिक सन्धियाँ कीं।

(ग) **मालगुजारी-सम्बन्धी सुधार**—अंग्रेजों को मालगुजारी वसूल करने का ज्ञान प्राप्त नहीं था। जब उसके हाथ में दीवानी वसूल करने का अधिकार आया तो उन्होंने यह कार्य पुराने जमींदारों के हाथ में दे दिया। इनका व्यवहार बेचारे किसानों के साथ अच्छा नहीं था। वे किसानों से मनमाना धन वसूल करते थे और कम्पनी को निश्चित धन दे दिया करते थे। इनके अत्याचारों का अन्त करने के उद्देश्य से निरीक्षकों की नियुक्ति की गई, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। निरीक्षक अपने निजी व्यापार में फंस गए और अपने कर्त्तव्यों से उदासीन रहे। उसने इस विभाग का पुनर्गठन करने का निश्चय किया। उसने निम्नलिखित सुधार किए—

(१) **भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध**—हेस्टिंग्ज ने ठेकेदारी प्रथा का प्रचलन करवाया। पुराने प्रबन्ध के अनुसार जमींदार तथा कानूनगो के पद पैतृक हो गए थे। हेस्टिंग्ज ने उन सबको अलग कर दिया। उसने एक कमेटी द्वारा भूमि-कर पिछले वर्षों के आधार पर पाँच वर्ष के लिए निश्चित किया। अधिकांश व्यक्तियों ने जब इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया तो जमींदारियों का नीलाम पाँच वर्ष के लिए कर दिया गया और अधिक बोली बोलने वालों के नाम जमींदारी छोड़ दी गई। इसका घातक परिणाम हुआ। **जमींदारों ने कृषकों से अत्यधिक धन वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। जागीरों पर कलकत्ता के दलालों तथा गुमाश्तों का अधिकार** हो गया। कभी-कभी वे भूमिकर चुकाए बिना ही भाग जाते थे। इससे इस प्रकार कम्पनी और जनता को लाभ के बदले हानि हुई।

(२) **राजस्व समिति की नियुक्ति**—हेस्टिंग्ज ने एक राजस्व समिति का निर्माण किया, जिसके हाथ में लगान के वसूल करने का कार्य सौंपा गया। इस समिति में कौंसिल के दो सदस्य तथा तीन उच्च पदाधिकारी थे। जिले का नियन्त्रण करने के लिए एक अंग्रेज अफसर नियुक्त किया गया जो कलक्टर कहलाता था। उसकी सहायता के लिए भारतीय सहायक नियुक्त किए गए।

मालगुजारी सम्बन्धी सुधार

(१) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध।
(२) राजस्व समिति की नियुक्ति।
(६) नवाब की पेंशन में कमी।
(४) शाहआलम की पेंशन बन्द।
(५) नई व्यवस्था।

(३) **नवाब की पेंशन में कमी**—हेस्टिंग्ज ने आर्थिक-व्यवस्था को उन्नत करने के लिए नवाब की पेंशन में कमी कर दी। उसे ३२ लाख रुपया वार्षिक पेंशन मिलती थी। वह घटाकर १६ लाख कर दी गई।

(४) **शाहआलम की पेंशन बन्द**—शाहआलम को कम्पनी की ओर से २६ लाख रु० वार्षिक पेंशन मिलती थी। हेस्टिंग्ज ने उसकी पेंशन बन्द कर दी; क्योंकि वह उनके संरक्षण से निकल कर मरहठों के संरक्षण में चला गया था।

(५) **नई व्यवस्था**—कुछ समय उपरान्त उसने प्रान्तीय कौंसिल की स्थापना की। उसने तीनों सूबों को ६ भागों में विभक्त किया जो इस प्रकार थे—कलकत्ता, बर्दवान, दीनाजपुर मुर्शिदाबाद, ढाका तथा पटना। प्रत्येक भाग के लिए एक प्रान्तीय कौंसिल नियुक्त की गई जिसमें एक प्रमुख और कम्पनी के चार सदस्य होते थे। प्रत्येक विभाग में हिसाब-किताब के लिए एक दीवान होता था। सन् १७८१ ई० में उसने कुछ परिवर्तन किए जिनके द्वारा प्रान्तीय कौंसिल और कलक्टर हटा दिए गए और उनके स्थान पर समिति का निर्माण किया गया, जिसके चार सदस्य होते थे। इनको दस प्रतिशत कमीशन मिलता था और उस धन पर २० प्रतिशत कमीशन मिलता था जो धन वे तुरन्त कलकत्ता भेजा करते थे।

(घ) **न्याय-संम्बन्धी सुधार**—हेस्टिंग्ज ने न्याय-सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में मुख्य सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) **न्यायालओं का संगठन**—हेस्टिंग्ज के समय से पूर्व जमींदारों को कुछ न्याय-सम्बन्धी अधिकार थे। उसने उनके अधिकारों का अन्त कर दिया। उसने प्रत्येक **जिले में एक दीवानी (मुफस्सिल दीवानी) अदालत और एक फौजदारी न्यायालय की स्थापना** की। दीवानी अदालत का अध्यक्ष कलक्टर होता था और फौजदारी का अध्यक्ष काजी या पण्डित होता था। यह कानून की व्यवस्था करता था तथा दण्ड देता था। इन पर भी कलक्टर का अधिकार था। हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में **एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत** की स्थापना की। इन अदालतों में जिले के फैसलों की अपीलें सुनी जाती थीं। सदर दीवानी अदालत में अध्यक्ष तथा कौंसिल के दो सदस्य होते थे तथा निजामत अदालत में एक मुख्य न्यायाधीश होता था।

न्याय-सम्बन्धी सुधार

(१) **न्यायालयों का संगठन।**
(२) **कानूनों का संकलन।**
(३) **दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र।**

(२) **विधियों का संकलन**— उसने हिन्दू और मुसलमानों की विधियों संकलन करवाया, जिससे पक्षपातरहित निर्णय किया जाना सम्भव हो गया।

(३) **दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र**— हेस्टिंग्ज ने दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र भी अलग-अलग कर दिए। दीवानी अदालत के अन्तर्गत, उत्तराधिकार, विवाह, जाति, ऋण, ब्याज आदि थे और फौजदारी अदालत के अन्तर्गत हत्या, डकैती, चोरी, जालसाजी आदि थे।

(ङ) **अन्य सुधार**—उक्त सुधारों के अतिरिक्त हेस्टिंग्ज ने अन्य सुधार किए जिनका पर्याप्त महत्व है। उसने **पुलिस** विभाग का संगठन किया और प्र जिले की पुलिस के लिए एक स्वतन्त्र पदाधिकारी की नियुक्ति की। अराज के दमन के लिए उसने विशेष प्रयत्न किया। इस समय चोरों और डाकुओं ने उत्पात मचा रखा था। उसने आदेश दिया कि चोरों और डाकुओं को पकड़ उनके गाँवों में ही फाँसी दी जाए। इधर कुछ सन्यासी आदि भी गड़बड़ मचा

थे। वास्तव में ये डाकू थे, जो सन्यासी के वेष में जनता पर अत्याचार कर रहे थे। उनका दमन भी किया गया और इस कार्य में **केप्टिन स्टीवार्ड** ने बड़ा सहयोग दिया।

उक्त सुधारों के द्वारा दूषित स्थिति का अन्त करने की ओर कदम उठाया गया। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। हेस्टिंग्ज तो कुछ अन्य सुधार और भी करना चाहता था, किन्तु उसको कम्पनी के संचालकों ने विशेष सहयोग नहीं दिया। उसने द्वैध-शासन का अन्त कर समस्त क्षेत्रों में सुधार किए, जिससे कम्पनी की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। इसके अतिरिक्त इन सुधारों से हेस्टिंग्ज की योग्यता तथा कार्यक्षमता स्पष्ट प्रतीत होती है। **सर विलियम हण्टर** के शब्दों में, **"वारेन हेस्टिंग्ज ने उस नागरिक शासन प्रणाली की भली-भाँति नींव डाली थी जिस पर कार्नवालिस ने एक विशाल भवन का निर्माण किया।"**[1]

रेग्यूलेटिंग एक्ट—१७७३ ई० (1983)

कम्पनी के संचालकों ने वारेन हेस्टिंग्ज को जिस समय बंगाल का गर्वनर नियुक्त किया उस समय वह विशेष अधिकारों से सुशोभित था। इंगलैण्ड की **पार्लियामेंट ने उसके अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्देश्य से रेग्यूलेटिंग एक्ट सन् १७७३ ई० में** पास किया। इसी एक्ट के द्वारा अंग्रेज जाति ने कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा प्राप्त किए हुए प्रदेश का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह भावना विकसित हो रही थी कि भारत में ब्रिटिश शासन का उत्तरदायित्व इंगलैण्ड की पार्लियामेंट को कम्पनी के स्थान पर अपने हाथों में ले लेना चाहिए, क्योंकि कम्पनी यद्यपि शक्तिशाली एवं सम्पन्न है फिर भी वह इतने बड़े तथा महत्वपूर्ण भार को उठाने में असमर्थ है। लोगों में यह भावना भी जागृत होने लगी थी कि कम्पनी के लाभ का कुछ भाग यदि अंग्रेजी राजकोष में जाएगा तो इंगलैण्ड के कर-दाताओं को बड़ी सान्त्वना प्राप्त होगी। उनके कर का भार कम हो जाएगा। यद्यपि कम्पनी की आर्थिक अवस्था उन्नत नहीं थी, फिर भी कम्पनी ने लाभांश में वृद्धि की। पार्लियामेंट के कुछ उत्साही सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि कम्पनी की समस्त सम्पत्ति इंगलैण्ड के सम्राट की है। सन् १७६७ ई० में पार्लियामेंट ने लाभांश की दर निश्चय कर दी और डाइरेक्टरों को बाध्य किया कि वे प्रतिवर्ष सरकारी राजकोष में ४ लाख पौंड दिया करें। कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था विभिन्न कारणों द्वारा दिन-प्रतिदिन खराब होने लगी। कम्पनी को बहुत अधिक धन सेना आदि पर व्यय करना पड़ता था। वह राजनीतिक झंझटों में इतनी फँस गई थी कि व्यापार की ओर वह अधिक ध्यान देने में असमर्थ थी। सन् १७७२ ई० में कम्पनी के संचालकों ने इंगलैण्ड की सरकार से प्रार्थना की कि वे **कम्पनी को १० लाख पौंड का ऋण दे वरन् उनका व्यापार करना असम्भव हो जाएगा।** सरकार ने कम्पनी की वास्तविक दशा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से ३१

---

[1] "Warren Hastings well and firmly laid the foundations of the system of civil administration on which the superstucture was raised by Cornwallis."
—**Sir William Hunter ; The Imperial Gazetter of India Vol. II. p. 486.**

सदस्यों की एक विशेष समिति और १३ सदस्यों की एक गुप्त समिति नियुक्त की। उनकी रिपोर्टों द्वारा स्पष्ट हो गया कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय है। यदि इस समय कम्पनी को आर्थिक सहायता प्रदान नहीं की गई तो उसका दिवाला निकल जाएगा और सब करा-कराया काम चौपट हो जाएगा।

इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने घोर वाद-विवाद के उपरान्त सन् १७७३ ई. में दो एक्ट पास किए। (i) **एक एक्ट के अनुसार कम्पनी को १४** लाख पौंड का **ऋण ४ प्रतिशत ब्याज की दर से दिया जाना निश्चित हुआ। इसके** लाभांश निश्चित **कर दिए गए तथा वह अपना हिसाब-किताब राजकोष को दे।** (ii) दूसरा एक्ट प्रथम एक्ट की अपेक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। **यह एक्ट रेग्यूलेटिंग एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा कम्पनी का नया विधान बनाया गया।** यह प्रथम एक्ट है, जो इंगलैण्ड की पार्लियामेंट द्वारा निर्मित किया गया था और जिसने भारतीय शासन की रूप-रेखा निश्चित की। इसने निम्न **तीन दिशाओं में परिवर्तन किया**—

(i) इसने इंगलैण्ड में स्थित कम्पनी के संगठन में परिवर्तन किया तथा भारत में कम्पनी के शासन के संगठन में परिवर्तन किया।

(ii) इसने बम्बई और मद्रास प्रेसीडेंसियों के शासन को कुछ सीमाओं तक बंगाल के गवर्नर-जनरल के नियन्त्रण में किया और इस प्रकार अंग्रेजों का समस्त भारतीय साम्राज्य भारत में एक सर्वोच्च पदाधिकारी के अधिकार में आ गया।

(iii) कम्पनी के कार्यों का निरीक्षण तथा देख-भाल के करने का अधिकार इङ्गलैण्ड के मन्त्रिमण्डल के अधिकार में आ गया, यद्यपि यह बहुत ही सीमित था।

रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएँ—रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएँ निम्नलिखित थीं:

(१) इस एक्ट के द्वारा **डाइरेक्टरों का कार्य-काल चार वर्ष** निश्चित कर **दिया गया**। उसमें एक चौथाई सदस्यों को प्रतिवर्ष अपना स्थान रिक्त करना होता था। उनको कम से कम एक वर्ष तक अपने पद से अलग रहना पड़ता था।

(२) **बंगाल प्रान्त का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल होता था।** मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर उसके आधीन होते थे। वे उसके आदेश बिना देशी राज्यों से न सन्धि कर सकते थे और न युद्ध ही। इस प्रकार उन पर उसका पूर्ण नियन्त्रण था।

(३) **गवर्नर-जनरल के कार्यों में सहायता देने के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। इसके सदस्यों की संख्या ४ थी।** एक्ट के अनुसार जनरल क्लेवरिंग, **बारवेल, कर्नल मॉन्सन और फिलिप फ्रांसिस** कौंसिल के सदस्य नियुक्त किए गए। इनके स्थानों की पूर्ति करने का अधिकार **कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स** को प्रदान किया गया। इनका कार्य-काल ५ वर्ष था।

(४) बंगाल के गवर्नर-जनरल का वेतन २५ हजार पौंड वार्षिक तथा कौंसिल के सदस्यों का वेतन १० हजार पौंड **प्रतिवर्ष** निश्चित किया गया।

(५) **कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई,** जिसमें एक मुख्य न्यायाधिपति **और तीन अन्य न्यायाधिपति थे।** इनकी नियुक्ति इङ्गलैण्ड का सम्राट करता था और ये उस समय तक अपने पद पर आसीन रहते थे जिस समय तक इङ्गलैं

सम्राट उनको उनके पद से पृथक् नहीं करता था। मुख्य न्यायाधिपति के पद पर सर इलिजाह इम्पे की नियुक्ति की गई। वह अङ्गरेजी विधि के अनुसार अङ्गरेजी प्रजा के मुकदमों का निर्णय करते थे। इन पर गवर्नर-जनरल व उसकी कौंसिल का कोई प्रभाव न था। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध अपील इंगलैण्ड स्थित प्रिवी कौंसिल में की जा सकती थी। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति का वेतन ८,००० पौंड वार्षिक निश्चित किया गया था। इसका अधिकार-क्षेत्र बहुत विस्तृत था।[1]

(६) **कम्पनी का कोई भी कर्मचारी बिना लाइसेंस प्राप्त किए, व्यक्तिगत व्यापार नहीं कर सकता था।** वे किसी से भेंट तथा उपहार नहीं ले सकते थे।

(७) **कम्पनी के डायरेक्टरों को कम्पनी के राजनीतिक तथा सैनिक कार्यों से सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को सूचित करते रहना होगा।**

(८) **गवर्नर-जनरल की कौंसिल के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे।** दोनों पक्षों में समान मत होने की दशा में गवर्नर-जनरल को निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) देने का अधिकार प्रदान किया गया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के गुण—रेग्यूलेटिंग एक्ट में पर्याप्त गुण विद्यमान थे। **इसका उद्देश्य उत्तम था।** इसके द्वारा शासन-व्यवस्था को उन्नत तथा दृढ़ करने का प्रबल तथा समान नीति अपनाने की ओर प्रयत्न किया गया था। अब तक तीनों प्रेसीडेन्सियों के गवर्नर एक दूसरे से अलग थे और वे कम्पनी के संचालकों से सीधे पत्र-व्यवहार करते थे, किन्तु इसके द्वारा मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर बंगाल के गवर्नर-जनरल के आधीन हो गए। कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर भी प्रतिवन्ध लगा दिया गया, और उनको भेंट तथा उपहार स्वीकार न करने का आदेश दिया गया। कम्पनी के शासन पर इङ्गलैण्ड की सरकार का कुछ सीमा तक नियन्त्रण स्थापित हो गया। **प्रो० कीथ** के शब्दों में 'इस एक्ट ने कम्पनी की इङ्गलैण्ड स्थित संस्थाओं के विधान में परिवर्तन किया, भारत सरकार के स्वरूप में कुछ सुधार किए। कम्पनी के समस्त विजित भागों पर एक शक्ति का नियन्त्रण स्थापित किया गया। कम्पनी को किसी अंश तक ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल की देख-रेख में रखने का प्रयत्न किया गया।'[2] इस एक्ट के महत्व का वर्णन **प्रो० श्रीराम शर्मा** के शब्दों में, "रेग्यूलेटिंग एक्ट ने इन भारत में कम्पनी के शासन को उन्नत करने के लिए बिना 'ताज' से महत्वपूर्ण प्रयत्न

---

[1] "It had full power and authority to hear and determine all complaints against any of His Majesty's subjects of crimes, misdemeanours, or oppositions, and also to entertain, hear and determine any suit or action whatsoever against any of His Majesty's subject in Bengal, Bihar and Orissa, and any suit, action or complaint against any person employed by or in the service of the Company or of any of his Majesty'y subjects."

[2] "This measure altered the Constitution of the Company at home, changed the structure of Government in India, subjected in some degree the whole of the territories to one supreme control in India, and provided in a very inefficient way for the supervision of the Company by the Ministry."

— **Report on Indian Constitutional Reforms, 1918. p. 17.**

किया और उसका उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष रूप से धारण किया। इसकी सबसे महत्वपूर्ण धारा सुप्रीम कोर्ट की स्थापना, बंगाल में उच्चतम न्यायालय की स्थापना के लिए थी। इसके द्वारा 'ताज' को समय-समय पर समस्त समाचार अवगत होते रहते थे, जिसके कारण वह कम्पनी के शासन का निर्माण कर सकता था। इसके द्वारा व्यक्तिगत व्यापार तथा भेंट व उपहार स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगाए गए। गवर्नर-जनरल की कौंसिल को सम्मिलित अधिकार प्राप्त हुए जो सन् १८६१ ई० तक चलते रहे। इसके द्वारा कम्पनी के प्रशासित प्रदेशों में एक उच्च सत्ता की स्थापना हुई।"[1]

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष—उक्त कथन से यह समझ लेना भ्रम होगा कि रेग्यूलेटिंग एक्ट में दोषों का अभाव था। वास्तव में इसमें पर्याप्त दोष विद्यमान थे। इतिहासकार इसके दोषों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करते हैं। इस एक्ट में दोनों, गुण एवं दोषों का एक साथ रहना अनिवार्य था, क्योंकि यह एक्ट बहुत ही शीघ्रता से इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट द्वारा पारित किया गया था। यदि यह इतनी शीघ्रता से पारित न किया गया होता तो इसके द्वारा भीषण तथा गहन समस्याओं का समाधान किया जाना सम्भव था। इसके द्वारा मुख्य दोष निम्नलिखित थे—

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष

- (१) गवर्नर-जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण न होना।
- (२) गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के दोषपूर्ण सम्बन्ध।
- (३) गवर्नर-जनरल का सुप्रीम कोर्ट के आधीन होना।
- (४) सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार-क्षेत्र।
- (५) कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना।
- (६) पार्लियामेंट द्वारा की गई कुछ अनुपयुक्त नियुक्तियाँ।

(१) गवर्नर-जनरल का कौंसिल पर नियन्त्रण का न होना—यद्यपि इस एक्ट ने गवर्नर-जनरल को ब्रिटिश भारत के उच्चतम पदाधिकारी के पद पर आसीन किया था, किन्तु समस्त कार्य कौंसिल के बहुमत के आधार पर किया जाना अनिवार्य था। इस प्रकार गवर्नर-जनरल के अधिकार सीमित थे। भविष्य में इस प्रणाली के द्वारा अनेक दोष उत्पन्न हो गए।

---

[1] "The Regulating Act made a bold attempt at securing good Government in the Company's territory in India without the Crown, directly assuming the responsibility for the same......Its most praiseworthy feature was the setting up of the Supreme Court as a guarantor of good Government in Bengal for all. It introduced the thin edge of the wedge of direct adminstration by the Crown by insisting or securing timely information for the Company about its affairs in India, it prohibited private trade and acceptance of gift by the Company's servants. Its principle of collegiate authority in the Governor-General-in-Council remaind substantially unmodified till1861. It made an amateurist attempt at setting up one supreme authority for the Company's dominions in India."

—**Sri Ram Sharma: Constitutional History of India, p, 18.**

गवर्नर-जनरल किसी भी कार्य को शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करने में असमर्थ हो जाता था। कौंसिल के वाद-विवाद के कारण बहुत-सा समय व्यर्थ ही व्यतीत हो जाता था। इसके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल और कौंसिल के सदस्यों के सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे। अधिकांश: उसका निर्णय गवर्नर-जनरल के विरुद्ध होता था जिसके कारण स्थिति दिन-प्रतिदिन भयंकर और असन्तोषजनक होती चली गई।

(२) **गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के दोष-पूर्ण सम्बन्ध**—इस एक्ट के द्वारा मद्रास तथा बम्बई की प्रेसीडेन्सियों के गवर्नरों को गवर्नर-जनरल के अधीन किया गया। वे किसी देशी राज्य से युद्ध व सन्धि बिना गवर्नर-जनरन की अनुमति प्राप्त किए नहीं कर सकते थे। अतः उनकी स्वतन्त्र सत्ता का लोप हो गया। सम्मत्ति प्राप्त होने में प्राय. देर हो जाती थी, जिसके कारण उपयुक्त परिस्थिति पर कार्य नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं था कि गवर्नर-जनरल की सम्मति उनकी सम्मति के अनुरूप ही हो।

(३) **गवर्नर-जनरल का सुप्रीम कोर्ट के अधीन होना**—गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को सुप्रीम कोर्ट के अधीन कर दिया गया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल द्वारा पास किए हुए समस्त या अधिकांश नियम उस समय तक वैध नहीं माने जा सकते थे जब तक कि कोर्ट उन पर अपनी अनुमति प्रदान न कर दे।

(४) **सुप्रीम कोर्ट का अस्पष्ट अधिकार-क्षेत्र**-- इस एक्ट के द्वारा सुप्रीम कोर्ट का अधिकार-क्षेत्र अस्पष्ट था। इनके अधिकारों की व्याख्या पूर्णरूप से नहीं की गई थी। इसको इस अधिनियम द्वारा अङ्ग्रेजी प्रजा के मुकदमों के करने का अधिकार प्रदान किया गया था। अङ्ग्रेजों की प्रजा के अन्तर्गत अङ्ग्रेज और भारतीय दोनों सम्मिलित थे। इससे भविष्य में अनेकों दोष उत्पन्न हुए। यह स्पष्ट नहीं था कि सुप्रीम कोर्ट अङ्ग्रेजी अथवा भारतीय विधि के अनुसार निर्णय करेगी। इस एक्ट द्वारा यह भी अस्पष्ट था कि कम्पनी द्वारा स्थापित न्यायालयों और सुप्रीम कोर्ट के आपस में क्या सम्बन्ध रहेंगे।

(५) **कम्पनी के कर्मचारियों की आय बढ़ाने का प्रयत्न न करना**—इस एक्ट द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार पर नियन्त्रण किया गया, किन्तु उनकी आय की वृद्धि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, इसके कारण कम्पनी के छोटे कर्मचारियों के लिए आवश्यक हो गया कि वे अपनी आय के लिए अन्य साधनों की खोज करें, जिसके कारण भ्रष्टाचार तथा घूमखोरी बहुत बढ़ गई।

(६) **पार्लियामेंट द्वारा की गई कुछ अनुचित नियुक्तियां**—पार्लियामेंट द्वारा कुछ की गई नियुक्तियाँ अनुचित सिद्ध हुईं। पार्लियामेंट ने प्रथम चार परामर्शदाताओं की नियुक्ति की। **फ्रांसिस** तथा **क्लेवरिंग** को भारत की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान नहीं था। वे भारत में यह निश्चित धारणा लेकर आए थे, कि भारत का शासन पूर्णतया दोषों से भरा हुआ है। फ्रांसिस की यह धारणा थी कि **वारेन हेस्टिंग्ज** के उपरान्त वह ही गवर्नर-जनरल के पद पर आसीन किया जाएगा। इसलिए उसने आते ही वारेन हेस्टिंग्ज का विरोध करना तथा उसको बदनाम करना आरम्भ कर दिया।

उक्त आधारों पर हमको **प्रोफेसर रोबर्ट्स** के साथ सहमत होना पड़ेगा क्योंकि 'रेग्यूलेटिंग एक्ट एक अधूरा उपाय था, बहुत-सी बातों में तो यह बुरी तरह अस्पष्ट था। इसमें **बंगाल के नवाब की सत्ता** को जान-बूझकर नाम-मात्र को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया था और भारत में राजछत्र अथवा कम्पनी की सर्वोच्चता के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित बात नहीं कही गई थी।'[1] इस सम्बन्ध में इल्बर्ट का कथन है कि "१७७३ ई० के एक्ट की धाराएँ अस्पष्ट और दोषपूर्ण हैं, जहाँ तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल तथा उच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र का प्रश्न है तथा जहाँ तक बंगाल सरकार और कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के बीच सम्बन्ध का प्रश्न है।"

किन्तु वास्तव में इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिनियम के उद्देश्य उच्च थे, किन्तु यह अधिनियम उन व्यक्तियों द्वारा निर्मित किया गया था जिनको भारतीय परिस्थितियों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं था। ये लोग कम्पनी के अधिकारों को सीमित करना चाहते थे, किन्तु शक्ति-सन्तुलन के झंझटों में इतने फँस गए कि समस्त बातें अस्पष्ट रह गईं, जिसने प्रत्येक अंग को शिथिल बना दिया। इसी के कारण लगभग ६ वर्ष तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल में संघर्ष होता रहा जो प्रशासनिक इतिहास में अभूतपूर्व है।

वारेन हेस्टिंग्ज और उसकी कौंसिल—उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि पार्लियामेंट ने गवर्नर जनरल की कौंसिल के चार सदस्यों की नियुक्ति की। इनके नाम **फ्रांसिस, क्लेवरिंग, बारवेल** तथा मॉनसन थे। बारवेल भारत में ही था और अन्य तीनों परामर्शदाता १९ अक्टूबर सन् १७७४ ई० को भारत आए और 'औपचारिक रूप से २० तारीख से नया शासन आरम्भ हुआ।' इससे पूर्व कि हेस्टिंग्ज और उसकी कौंसिल के झगड़े का वर्णन किया जाए कुछ बातें फ्रांसिस (Francis) के सम्बन्ध में भी बतलाई जानी चाहिएं क्योंकि उसने ही इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग लिया था। परामर्शदाताओं **में फ्रांसिस सबसे योग्य था।** वह एक विद्वान, प्रसिद्ध लेखक तथा कुशल वक्ता था। उसने कम्पनी के शासन तथा उसके दोषों के बारे में पहले ही पर्याप्त सुन रक्खा था। अतः वह उनका मूलोच्छेदन करने के लिये उत्सुक था। परन्तु उसमें अनेक गुणों के विद्यमान होते हुए भी कुछ दोष थे। **वह बड़ा हठी तथा उग्र** स्वभाव का था। वह अपना विरोध सहन नहीं कर सकता था। **रोबर्ट्स** के शब्दों में फ्रांसिस कोई **साधारण व्यक्ति नहीं था।** इसलिए **हेस्टिंग्ज को असाधारण** विरोध का सामना **करना पड़ा। कौंसिल में अपने प्रधान का सामना करते हुए, फ्रांसिस** गवर्नर-जनरल द्वारा प्रस्तुत **किए जाने वाले प्रत्येक सुझाव की सूक्ष्म** एवं प्रतिशोधात्मक तर्क के साथ

---

[1] "The Regulating Act was a half-measure, and disastrously vague in many points. The titular authority of the Nawab of Bengal was left by implication intact, and no assertion was made of the sovereignty of the Crown or Company in India" —**Robert : History of British India, pp. 182-8**

आलोचना करता था।" उसने भारत आते ही क्लेवरिंग और मॉनसन को अपने पक्ष में कर लिया और अपनी अद्‍भुत भाषण-शक्ति के सहारे वह गवर्नर-जनरल हेस्टिग्ज के कामों की तीव्र आलोचना करने लगा। इसका एक कारण यह भी था कि फ्रांसिस की यह धारणा थी कि हेस्टिग्ज के उपरान्त वह गवर्नर-जनरल के पद पर आसीन होगा। इस धारणा ने विरोध की मात्रा को और भी तीव्रकर दिया।

विरोध का प्रमुख कारण—कौंसिल और हेस्टिग्ज के झगड़े का कारण सर्वप्रथम यह था कि कौंसिल के सदस्यों के भारत आगमन पर उनका जो स्वागत किया गया वह सन्तोषजनक नहीं था। इसी के आधार पर उन्होंने गवर्नर-जनरल की नीति तथा शासन-व्यवस्था की तीव्र आलोचना करनी आरम्भ की। सन् १७७४ से १७७६ ई० तक कौंसिल का बहुमत गवर्नर-जनरल के विरुद्ध था। **मॉनसन** की मृत्यु सितम्बर १७७६ में होने के कारण हेस्टिग्ज को अपना निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) के प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हो गया। सन् १७७७ ई० में क्लेवरिंग की मृत्यु हो गई और इसी वर्ष हेस्टिग्ज ने द्वन्द्व-युद्ध में फ्रांसिस को परास्त किया। इसके परिणामस्वरूप वह उसी वर्ष स्वदेश चला गया। इस समय के उपरान्त गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिग्ज की स्थिति दृढ़ हो गई।

अवध—कौंसिल ने सर्वप्रथम रुहेला युद्ध की तीव्र निन्दा की। उन्होंने **मिडिलटन** को लखनऊ से बुला लिया। कर्नल **चैम्पियन** को आदेश दिया गया कि वह अवध के नवाब से ४० लाख की माँग करे। अवध के नवाब ने कम्पनी की मरहठों को अपने देश से बाहर निकालने के बदले यह धन देने का वचन दिया था। **बेवेरिज** ने सत्य ही कहा है कि "कौंसिल ने घृणोत्पादक बताकर रुहेला युद्ध की तो निन्दा की, परन्तु उन्होंने उसके पारिश्रमिक के रूप में मिलने वाले धन से अपनी जेबों के भरने में अत्यन्त आतुरता दिखलाई।"[1] सन् १७७५ ई० में अवध के नवाब वजीर का देहान्त हो गया। उसके उत्तराधिकारी को एक नई सन्धि करने पर बाध्य किया गया। बनारस की सन्धि रद्द कर दी गई। इसके अनुसार नवाब द्वारा ब्रिटिश सेनाओं के पालन के लिए दी जाने वाली सहायता में वृद्धि कर दी गई और उसे बनारस जिले का पूर्णाधिकार कम्पनी को सौंप देने के लिए विवश किया गया। **हेस्टिग्ज ने इस सन्धि का बहुत विरोध किया,** किन्तु बहुमत द्वारा विरोध किए जाने पर **उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई।** उसने इस बात की ओर संकेत किया था कि यह पग कम्पनी और अवध की मित्रता में विरोध उत्पन्न करेगा।

नन्दकुमार को फांसी—कौंसिल और हेस्टिग्ज के पारस्परिक विरोध ने हेस्टिग्ज की स्थिति शोचनीय बना दी। स्थानीय सम्वाददाताओं द्वारा हेस्टिग्ज के विरुद्ध विश्वासघात करने के अनेक अभियोग चलाए गए। ग्यारह मार्च १७७५ ई० को नन्दकुमार ने हेस्टिग्ज पर अभियोग लगाया कि उसने मृतक नवाब मीरजाफर

---

[1] "The Rohilla war was an abomination, and yet their great anxiety was to pocket the wages of it."

—**H. Berveridge—A Comparative History of India, Voll. II p. 365.**

की विधवा पत्नी मुन्नी बेगम से साढ़े तीन लाख रुपया उसको अल्पवयस्क नवाब की संरक्षिका बनाने के उपलक्ष में वसूल किया। नन्दकुमार कुलीन ब्राह्मण था। उसने नवाबों के शासन में विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया था। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि हेस्टिंग्ज ने बंगाल के नवाब नायब मुहम्मद रजा खां के मुकदमे में नन्दकुमार से सहायता प्राप्त की थी और उसने उसको नायब नवाब के पद पर आसीन करने का वचन दिया था। बाद में हेस्टिंग्ज ने उसको कोई लाभ नहीं पहुँचाया और वह उससे बदला लेने को उद्यत हो गया। जब नन्दकुमार के आरोप का कौंसिल में विवाद हो रहा था तो हेस्टिंग्ज ने उसके सामने सफाई देने से बिल्कुल इंकार कर दिया। उसने कौंसिल भंग कर दी और वह स्वयं कमरे से बाहर चला आया। कौंसिल ने हेस्टिंग्ज को दोषी ठहराया और उसको रुपया वापस करने का आदेश दिया। कुछ दिनों उपरान्त हेस्टिंग्ज ने नन्दकुमार पर आरोप लगाया कि उसने हेस्टिंग्ज के विरुद्ध गवाही दिलवाने के लिए कमरुद्दीन को परेशान किया, किन्तु नन्दकुमार निर्दोष ठहराया गया। इसके कुछ दिन उपरान्त नन्दकुमार को जालसाजी के अपराध में बन्दी किया गया। इस सम्बन्ध में **प्रोफेसर रोबर्ट्स** का कथन है "कि इस गिरफ्तारी का नन्दकुमार द्वारा हेस्टिंग्ज पर लगाए गए अभियोगों अथवा हेस्टिंग्ज द्वारा नन्दकुमार पर लगाए षड़यन्त्र के अभियोग के साथ तनिक भी सम्बन्ध न था।" सर्वोच्च न्यायालय ने नन्दकुमार के मुकदमे पर विचार किया और उसको प्राण-दण्ड की सजा दी। ५ अगस्त सन् १७७५ ई० को वह फाँसी पर लटका दिया गया। हेस्टिंग्ज पर लगाए गए अभियोग-सम्बन्धी समस्त पत्र इंगलैण्ड भेज दिए गए, जहां उनको रद्द कर दिया गया।

इस सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा है कि नन्दकुमार की फांसी में हेस्टिंग्ज का हाथ था। उनका तर्क यह है कि हेस्टिंग्ज का मित्र इम्पी था जो उस न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश था, जिसने नन्दकुमार को प्राणदण्ड दिया। हेस्टिंग्ज ने मुन्नी बाई से डेढ़ लाख रुपया अवश्य प्राप्त किया था, किन्तु उसने उसको भेंट के नाम से सम्बोधित किया जो पहले गवर्नर भी इन अवस्थाओं में प्राप्त कर चुके थे। इस सम्बन्ध में हेस्टिंग्ज और इम्पी ने मिलकर नन्दकुमार को फाँसी पर लटकवाया, कोई प्रमाण नहीं मिलता। कौंसिल और सर्वोच्च न्यायालय में अधिकार सीमाओं को लेकर समय-समय पर झगड़ा होता रहा। इम्पी अन्य जजों में से केवल एक था। उन्होंने इम्पी की बात क्यों स्वीकार की ? इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि नन्दकुमार को अपनी सफाई देने का पूर्ण अवसर प्रदान नहीं किया गया। उसको कठोर दण्ड दिया गया। **जालसाजी के अपराध में फाँसी का दण्ड बहुत कठोर था, अधिक से अधिक उसको कारागार का दण्ड दिया जाना चाहिए था। जजों ने बन्दी के गवाहों से जिरह की जो कुछ कठोरतापूर्वक की गई थी।**

वारेन हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति

गत पृष्ठों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि यद्यपि मरहठों की शक्ति को पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण बड़ा आघात उठाना पड़ा, किन्तु

पेशवा माधवराव के नेतृत्व में मरहठों की शक्ति का पुनः विस्तार एवं विकास हुआ। मरहठों ने शाहआलम को दिल्ली के राज्यसिंहासन पर आसीन कर दिया था और अब वह अङ्गरेजों के संरक्षण से निकलकर मरहठों का आश्रित हो गया था। अङ्गरेजों ने उसको वार्षिक पेंशन देना बन्द कर दिया। कड़ा और इलाहाबाद के जिले जो अङ्गरेजों ने अवध के नवाब वजीर से लेकर शाहआलम को दे दिए थे, वे पुनः अवध के नवाब वजीर को ५० लाख रुपया लेकर दे दिए गए थे। हेस्टिंग्ज की हार्दिक इच्छा अवध को अपने तथा मरहठों के बीच का मध्यस्थ राज्य बनाना था, जिस कारण वह उसको अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। हेस्टिंग्ज और नवाब वजीर में एक सन्धि हुई थी जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ था कि युद्ध के समय दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(१) रुहेला-युद्ध (१७७३-७४)—इससे पूर्व कि रुहेला युद्ध का वर्णन किया जाए और हेस्टिंग्ज की नीति पर विचार किया जाए रुहेल-खण्ड के प्रदेश के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातों का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है।

हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति

(१) रुहेला युद्ध।
(२) हेस्टिंग्ज और चेतसिंह।
(३) हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें।

रुहेलखण्ड की स्थिति और उसका प्रारम्भिक इतिहास—रुहेलखण्ड दो-आब का एक उपजाऊ प्रदेश है। इसकी सीमा पूर्व में अवध के राज्य से पश्चिम में गंगा नदी तक विस्तृत थी। मुगलों के पतन के उपरान्त रुहेला अफगान सरदारों ने इस प्रदेश पर अधिकार कर अपनी शक्ति का विकास किया। हाफिस रहमत के नेतृत्व में रुहेलों ने बड़ी उन्नति की। वह बड़ा साहसी, वीर तथा योग्य व्यक्ति था। उसने १७६१ ई० में मरहठों के विरुद्ध अफगानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली की सहायता पानीपत के युद्ध में की थी। मरहठों की शक्ति क्षीण होने पर उसने अपने समीप के प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित किया। मरहठों ने अपनी शक्ति का संगठन कर उत्तरी भारत के प्रदेशों को अपने अधिकार में करना आरम्भ किया। सन् १७६९ ई० में उन्होंने इटावा तथा दो-आब के अन्य प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित किया। मरहठों के कारण रुहेले तथा अङ्गरेज़ दोनों ही भयभीत हुए। मरहठों ने रुहेलखण्ड तथा अवध के राज्य पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए जिससे दोनों को बड़ी चिन्ता हुई।

रुहेले तथा अवध के नवाब के बीच सन्धि—१७७० ई० में मरहठे रुहेलखण्ड और अवध की सीमाओं के आस-पास मण्डराने लगे। इस भय से अवध के नवाब और हाफिज रहमत खाँ ने एक बार तो पारस्परिक सुरक्षा के लिए, मरहठों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा तैयार करने का निश्चय किया और एक अन्य अवसर पर दोनों में से प्रत्येक नरेश ने मरहठों के साथ मिलकर एक दूसरे का सामना करने की सम्भावना पर विचार किया। इस प्रकार तीनों दल सावधान थे और उनमें से प्रत्येक दल यह जानता था कि बाकी दो दलों पर किसी भी प्रकार भरोसा नहीं किया

जा सकता। जून १७७२ ई० में **रुहेलों और अवध के नवाब वजीर के मध्य एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि यदि मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया तो नवाब वजीर रुहेलों की सहायता करेगा और रुहेले उसको ४० लाख रुपया देंगे।** इस सन्धि-पत्र पर सर राबर्ट बार्कर के भी हस्ताक्षर थे। उसके हस्ताक्षर करने का अर्थ था कि वह दोनों का गवाह था और उसकी उपस्थिति में यह सन्धि-पत्र तैयार हुआ था।

मरहठों का रुहेलखण्ड पर आक्रमण तथा शीघ्र ही वापिस जाना—सन् १७७३ ई० में मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया। रुहेलों ने अवध के नवाब वजीर तथा अंग्रेजों ने उनके आक्रमण को रोकने की तैयारी करना आरम्भ किया। **शत्रुओं की तैयारी देखकर मरहठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण नहीं किया।** मई के महीने में मरहठों की सेना दक्षिण की ओर चली गई, क्योंकि पेशवा माधवराव की मृत्यु के कारण पूना की राजनीति में गड़बड़ उत्पन्न हो गई थी।

रुहेलों पर आक्रमण—मरहठों के वापिस चले जाने के उपरान्त अवध के नवाब वजीर ने रुहेलों से उक्त सन्धि के अनुसार ४० लाख रुपये मांगे, किन्तु रुहेलों के सरदार हाफिज रहमत खाँ ने धन देने में आनाकानी की। इसी समय नवाब वजीर ने बनारस में हेस्टिंग्ज के सामने यह प्रस्ताव रखा कि धन की बड़ी राशि के बदले वह उसको एक सैन्य-दल उधार दे, जिसके द्वारा वह रुहेलों को सन्धि भंग करने का मजा चखा कर बहुत अधिक धन राशि प्राप्त करने में सफल हो। हेस्टिंग्ज धन के लालच में आ गया और उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। नवाब वजीर ने यह वायदा किया कि वह सैन्य-दल का समस्त व्यय उठाएगा तथा ४० लाख रुपया सैन्य-दल के बदले में कम्पनी को देगा। हेस्टिंग्ज जानता था कि इस प्रस्ताव के स्वीकार करने से आपत्तियों का उदय होना अनिवार्य था, किन्तु वह कुछ कारणों से इसको स्वीकार करने के लिए बाध्य हो गया। ये कारण निम्नलिखित थे—

(१) वह अवध के विस्तार को अपने लाभ के लिए आवश्यक समझता था।
(२) उसको धन की बड़ी आवश्यकता थी।
(३) वह नवाब वजीर को अपना पक्षपाती तथा समर्थक बनाना चाहता था।
(४) इसके द्वारा मरहठों की महत्वकांक्षाओं को आघात पहुँचा।

सन्धि होने के कुछ समय उपरान्त अवध के नवाब वजीर ने अंग्रेजों से सैन्य-सहायता की प्रार्थना की। अंग्रेजों ने **कर्नल चेम्पीयन** के नेतृत्व में एक अंग्रेजी सैन्य-दल नवाब की सहायता के लिए भेजा। अवध के नवाब वजीर तथा अंग्रेजों की सम्मिलित सेनाओं ने १७ अप्रैल १७७४ ई० को रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया। **२३ अप्रैल को रुहेलों की सेना के साथ इस सम्मिलित सेना का मीख कटरा नामक स्थान पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ।** रुहेलों ने युद्ध में असीम साहस तथा उत्साह का प्रदर्शन किया, किन्तु वे सम्मिलित सेना के हाथों परास्त हुए। उनके नेता हाफिज रहमत खां ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और वह युद्ध करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। इसमें लगभग २,००० सैनिक मारे गए और २०,००० रुहेलों को

अपना घर छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। उनके राज्य को अवध के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

अङ्गरेजों और नवाब के बीच सन्धि—युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों और नवाब वजीर ने फैजुल्ला खाँ नामक रुहेला सरदार से सन्धि की। उसको रामपुर का जिला दिया, किन्तु उसकी सैनिक शक्ति पर नियन्त्रण लगा दिया गया। वह ५,००० से अधिक मैनिक नहीं रख सकता था। उसने नवाब वजीर को सैनिक सहायता भी प्रदान करने का वचन दिया तथा वह किसी अन्य शवित से किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेगा।

हेस्टिंग्ज की रुहेला नीति पर एक दृष्टि—हेस्टिग्ज की रुहेला नीति की बड़ी आलोचना की गई तथा कुछ ने उसका समर्थन भी किया। इस नीति के द्वारा हेस्टिग्ज कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने में सफल हुआ और वह अवध को कम्पनी का मित्र बना सका, किन्तु हेस्टिग्ज का अवध की सहायता करना कहाँ तक न्यायसंगत था? रुहेलों का कम्पनी से कोई झगड़ा नहीं था; फिर क्यों हेस्टिग्ज ने कर्नल **चेम्पीयन** की अध्यक्षता में अवध की सहायता के लिए एक सैन्य-दल भेजा? उसकी नीति के कारण रुहेलों को बड़े दुःख का सामना करना पड़ा। प्रसिद्ध वक्ता **बर्क ने उसकी नीति की बड़ी तीव्र आलोचना इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में उस समय की जब हेस्टिंग्ज पर मुकदमा चलाया जा रहा था।** हाफिज रहमत उच्चकोटि का शान्तिप्रिय शासक था। वास्तव में रुहेला-युद्ध में हेस्टिग्ज का सहायता करने का कारण अवध के नवाब से धन प्राप्त करना था। कम्पनी को हर समय धन की आवश्यकता रहती थी और इसी से प्रभावित होकर हेस्टिग्ज ने नवाब की सहायता की थी। हेस्टिग्ज को रुहेलों और नवाब वजीर के झगड़ों में पडना उचित नहीं था। नवाब को ४० लाख रुपया रुहेलों से दिलवाने का उत्तरदायित्व अंग्रेजों पर नहीं था। **बार्कर** के हस्ताक्षर तो केवल इसलिए कराए गए थे कि उसके सामने सन्धि की शर्तें तय हुईं थीं। हेस्टिग्ज के इस कार्य का समर्थन किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता था। इस युद्ध के परिणामस्वरूप कम्पनी को १० लाख रुपए और हेस्टिग्ज को २ लाख रुपए मिले।

(२) **हेस्टिंग्ज और चेतसिंह**—मैसूर तथा मरहठा युद्ध के कारण कम्पनी की आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय हो गई थी। धन के अभाव के कारण कम्पनी का कार्य शिथिल होने लगा था। हेस्टिग्ज धन के अभाव के कारण बहुत परेशान था। उसने धन प्राप्त करने के उपायों की खोज करना आरम्भ किया। इस बार उसने बनारस के राजा चेतसिंह को अपना शिकार बनाया।

अपने पिता बलवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त चेतसिंह बनारस का राजा हुआ। पहले बनारस-राज्य पर अवध का अधिकार था, किन्तु सन् १७७५ ई० की फैजाबाद की सन्धि के अनुसार उम पर कम्पनी का अधिकार हो गया। वहाँ के राजा को जमींदारी, अमीनी तथा फौजदारी अधिकार प्राप्त थे। वह कम्पनी को १२½ लाख रुपया प्रतिवर्ष कर के रूप में दिया करता था। सन्धि द्वारा यह निश्चित हो

गया था कि इस धन के अतिरिक्त वह कम्पनी को धन की अन्य राशि नहीं देगा। जब हेस्टिंग्ज को धन की आवश्यकता का अनुभव हुआ तो उसका ध्यान चेतसिंह की ओर आकर्षित हुआ। उसने उससे कर के अतिरिक्त ५ लाख रुपए और माँगे। राजा ने धन दे दिया। अगले वर्ष उसने फिर राजा से ५ लाख रुपए माँगे। राजा ने कम्पनी को पाँच लाख रुपए तो दे दिए, किन्तु उसने कम्पनी की माँग का विरोध किया, क्योंकि कम्पनी की यह माँग सन्धि के विरुद्ध थी। **हेस्टिंग्ज राजा के इस व्यवहार से बड़ा नाराज हो गया। उसने राजा के पास एक अंग्रेजी सैन्य-दल भेजा और उसको उसका व्यय वहन करने का आदेश दिया।** उसका व्यय लगभग २०,००० रुपए था। सन् १७८० ई० में राजा को २,००० सैनिक भेजने को लिखा। राजा ने इसका विरोध किया, जिसके कारण सैनिकों की संख्या २,००० से १,००० कर दी गई। राजा के व्यवहार तथा विरोधी प्रवृत्ति के कारण हेस्टिंग्ज उससे अप्रसन्न हो गया। उसने राजा पर ५० लाख रुपया जुर्माना किया और शीघ्र ही वह ५,००० सैनिकों के साथ बनारस की ओर चल पड़ा। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर राजा चेतसिंह बड़ा घबराया। राजा चेतसिंह ने बक्सर में हेस्टिंग्ज से भेंट की और क्षमा माँगी, किन्तु हेस्टिंग्ज ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। शीघ्र ही हेस्टिंग्ज बनारस पहुँचा। राजा ने उससे भेंट करनी चाही, किन्तु हेस्टिंग्ज ने भेंट करने से साफ इंकार कर दिया। इसके उपरान्त उसने राजा पर आज्ञोल्लंघन तथा कुशासन का आरोप लगाया और जो उत्तर राजा ने इन आरोपों के विरुद्ध दिए उनको असन्तोषजनक कहकर ठुकरा दिया। हेस्टिंग्ज ने उसको बन्दी बनाए जाने की आज्ञा दी। हेस्टिंग्ज के इस व्यवहार से राजा की सेना में बड़ा असन्तोष फैल गया और उन्होंने अंग्रेजों को मारना आरम्भ कर दिया। राजा बनारस छोड़कर ललितपुर भाग गया। हेस्टिंग्ज स्वयं भागकर चुनार आया। वहाँ उसने सेना का संगठन कर चेतसिंह पर आक्रमण किया। उसने अंग्रेजी सेना का सामना किया, किन्तु हार गया। शीघ्र ही हेस्टिंग्ज बनारस पहुँचा और बड़ी कठोरता तथा निर्दयता के साथ उसने वहाँ आतंक फैला दिया। चेतसिंह को पदच्युत कर उसके स्थान पर उसके भतीजे को बनारस का राजा घोषित कर दिया गया। नगर का सैनिक प्रबन्ध **इब्राहीम खाँ** को सौंपा गया। इस प्रकार हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह के साथ व्यवहार किया और बड़ी ही उग्रनीति का अनुकरण किया।

हेस्टिंग्ज की राजा चेतसिंह सम्बन्धी नीति पर एक दृष्टि—हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह के साथ जो व्यवहार किया उसका किसी भी प्रकार समर्थन किया जाना सम्भव नहीं है। **हेस्टिंग्ज का व्यवहार बड़ा असन्तोषजनक** तथा अन्यायपूर्ण था, **जिसके कारण वह न केवल भारत में ही, वरन् इंगलैण्ड में भी बहुत बदनाम हुआ।** हेस्टिंग्ज ने राजा चेतसिंह से सन्धि के विरुद्ध धन माँगा। उसको उससे धन माँगने का कोई अधिकार ही नहीं था। राजा की कृपा थी कि उसने कम्पनी को आर्थिक तथा सैनिक दोनों प्रकार की सहायता प्रदान की, किन्तु जब उसने विरोध किया तो हेस्टिंग्ज ने उसके साथ बड़ी कठोर नीति अपनाई। हेस्टिंग्ज के जुर्माना करने पर

राजा ने बक्सर में उससे क्षमा माँगी, किन्तु हेस्टिंग्ज ने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया। इसके विपरीत उसने राजा को अपमानित करने के अभिप्राय से उसके ही सैनिकों तथा नागरिकों के सामने उसे बन्दी करने का असफल प्रयत्न किया। **हेस्टिंग्ज को इससे आर्थिक लाभ भी विशेष नहीं हुआ, क्योंकि उसके हाथ केवल २२ लाख** रुपया लगा। राजा चेतसिंह को पदच्युत कर उसके भतीजे को बनारस का राजा बनाया गया। उसके काल में बनारस की दुर्दशा होनी आरम्भ हो गई, जबकि चेतसिंह एक योग्य शासक था, उसके काल में राज्य की अवस्था ठीक थी। उस पर जो कुशासन का आरोप लगाया गया था, वह बिलकुल झूठा था। इस प्रकार हेस्टिंग्ज का व्यवहार राजा चेतसिंह के सम्बन्ध में बिलकुल उचित भी न था।

(३) हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें—बनारस के राजा चेतसिंह के धन से हेस्टिंग्ज की धन-पिपासा शान्त नहीं हुई। हेस्टिंग्ज का ध्यान इस बार अपने मित्र अवध के नवाब वजीर आसफउद्दौला की ओर आकर्षित हुआ। ऐसा समझा जाता था कि नवाब के पास अनन्त धन-राशि है, किन्तु वास्तविक दशा यह थी कि उसके पास भी धन का अभाव था, जिसके कारण वह बहुत दिनों से कम्पनी के पिछले कर नहीं दे पाया था। उसको कम्पनी को डेढ़ करोड़ रुपया देना था। हेस्टिंग्ज ने कई बार उससे रुपये की माँग की, किन्तु वह टालता रहा। शुजाउद्दौला की पत्नी तथा माता के पास पर्याप्त धन था जो उन्होंने उसकी मृत्यु के समय अपने अधिकार में कर लिया था। नवाब आसफउद्दौला उनसे बार-बार रुपया माँगता था। एक-आध बार तो उन्होंने रुपया दे दिया, किन्तु वे बार-बार रुपया नहीं देना चाहती थीं। उन्होंने कलकत्ता कौंसिल से प्रार्थना की कि वे नवाब वजीर को आदेश दें कि वह उनसे रुपया माँगकर उनको व्यर्थ में परेशान न करे। अंग्रेजों के हस्तक्षेप करने पर एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार बेगमों ने नवाब वजीर को ३० लाख रुपया दिया और नवाब वजीर ने यह वचन दिया कि वह फिर बेगमों से पुनः धन की माँग नहीं करेगा। सन् १७८१ ई० में आसफउद्दौला ने बेगमों से फिर रुपया माँगा, किन्तु उन्होंने रुपया देने से इन्कार कर दिया। इस पर आसफउद्दौला ने अंग्रेजों की सहायता से बेगमों से धन वसूल करने का विचार किया। वह चुनार में हेस्टिंग्ज से मिला और उसको आश्वासन दिलाया कि यदि अंग्रेज मुझे बेगमों की सम्पत्ति दिला दें तो मैं उनका ऋण शीघ्र भुगतान करने में समर्थ होऊंगा। हेस्टिंग्ज को धन की अत्यधिक आवश्यकता थी इसलिये वह शीघ्र ही नवाब वजीर की सहायता करने को तैयार हो गया।

हेस्टिंग्ज ने नवाब वजीर की सहायता के लिये एक अंग्रेजी सेना भी भेजीं। **सेना को भेजते समय गवर्नर-जनरल ने अपने एजेण्ट को आदेश दिया कि बेगमों का किसी प्रकार का लिहाज न किया जाए और तब तक उन पर दबाव डाला जाय जब तक खजाना अन्दर से बाहर न आ जाए।**

अंग्रेजी सेना की टुकड़ी फैजावाद गई, जहाँ बेगमें निवास करती थीं। उसने महलों के दरवाजे जबरदस्ती खुलवाए। बेगमों को कमरे में बन्द कर खजाने की

चाबियाँ देने पर बाध्य किया गया। जब बेगमों ने चाबी देना स्वीकार नहीं किया तो उनके दो सेवकों को बन्दी कर उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया तथा बेगमों के साथ भी अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया। बेगमों को बाध्य होकर झुकना पड़ा। उन्होंने एक लाख पौंड के जवाहिरात देकर अपनी जान छुड़ाई।

हेस्टिग्ज के कार्यों पर एक दृष्टि—हेस्टिग्ज का यह कार्य राजा चेतसिंह के कार्य से भी बढ़कर अन्यायपूर्ण था। हेस्टिग्ज का महिलाओं के साथ ऐसा निर्दय व्यवहार करना शोभनीय नहीं था; उसके इस कार्य से उसकी बहुत बदनामी हुई। हेस्टिग्ज ने अपने कार्य को न्याय-संगत सिद्ध करने के तर्क उपस्थित किए। प्रथम कि बेगमों की सम्पत्ति उनकी सम्पत्ति न होकर राज्य की सम्पत्ति थी तथा द्वितीय बेगमों ने चेतसिंह की सहायता की थी। बेगमों की सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति थी अथवा उनकी निजी सम्पत्ति थी, इसका निर्णय करने का अधिकार अंग्रेजों को नहीं था। इसके अतिरिक्त सन्धि द्वारा यह निश्चित हो चुका था कि भविष्य में नवाब वजीर उनसे धन की माँग नहीं करेगा। हेस्टिग्ज ने धन-पिपासा शान्त करने के लिए इस सन्धि का पालन न कर बेगमों के साथ विश्वासघात किया और अपने को कलंकित किया। हेस्टिग्ज का कहना कि बेगमों ने राजा चेतसिंह का साथ दिया था बिल्कुल बहाना-मात्र था। उनका (बेगमों का) दोष सिद्ध करने का जो मार्ग हेस्टिग्ज ने अपनाया वह दोषपूर्ण था। बेगमों को अपनी निष्पक्षता तथा निरपराधिता सिद्ध करने का अवसर भी नहीं दिया गया। सुप्रीम कोर्ट का निर्णय एक-पक्षीय था। उनकी चेतसिंह के साथ साजिश थी, इसको सिद्ध करने के लिए आवश्यक था कि उन पर नियमपूर्वक मुकदमा चलाया जाता और उनको अपनी सफाई देने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए था। जिस प्रकार से उन पर मुकदमा चलाया गया यह सिद्ध करता है कि हेस्टिग्ज स्वयं विश्वास नहीं करता था कि वे अपराधिनी हैं। वास्तव में वह धन की प्राप्ति के लालच के कारण इतना अन्धा हो गया था कि उसको उचित-अनुचित तक का ध्यान ही नहीं रहा[1]। डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, **'यह बर्बरता तथा अन्याय की पराकाष्टा थी। पुनः असहाय महिलाओं के घर को घेरना, उनके नौकरों को बन्दी बनाना, भूखा रखना तथा अन्य यातनाएँ देना सर्वथा अति कठोर थीं। हेस्टिग्ज के पक्ष का किसी भी दृष्टि से समर्थन नहीं किया जा सकता।"** एक अन्य आधुनिक लेखक के शब्दों में, **"हेस्टिग्ज के अन्य भक्त अंग्रेज लेखक उसको इस भयंकर अनीति के समर्थन में कुछ भी कहें इतिहास का लेखक यह कहे बिना नहीं रह सकता कि अंग्रेज गवर्नर-जनरल की आज्ञा से धन के लोभ के कारण अवध की बेगमों तथा उनके बूढ़े नौकरों पर**

---

[1] "The employment of personal severities, under the superintendence of British officers in order to extort money from women and eunuches is an ignoble kind of undertaking...to cancel the guarantee, to leave the Newab to deal with the princesses was injustificable, to push him on and actually assist in measures of coercion against women and eunuches was a conduct unworthy and indefensible,"
—Sir Alfred Lyall.

जो अत्याचार किए गए, उनकी संसार के अत्याचारियों द्वारा किए गए, अत्यन्त ते कारनामों में गिनती की जायगी ।"

हेस्टिंग्ज का वापस जाना— हेस्टिंग्ज अपनी नीति तथा कार्यों के कारण इंग्लैंड में बहुत बदनाम हो गया । सन् १७८५ ई० में वह त्याग-पत्र देकर इङ्गलैण्ड चला गया । वहाँ पहुँचने पर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया गया, किन्तु उसके ७ दिन बाद ही इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा अपने समय के सर्वोत्कृष्ट वक्ता **एडमण्ड बर्क** ने पार्लियामेंट में उसके विरुद्ध प्रस्ताव रखा । **फोक्स** और शैरिडन ने भी बर्क की सहायता की । सन् १७९५ ई० तक यह ऐतिहासिक मुकदमा चलता रहा, किन्तु अन्त में वह लगभग निर्दोष प्रमाणित किया गया ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) रेग्यूलेटिंग एक्ट की मुख्य धाराएँ क्या थीं ? उनके दोष बताओ ।

(२) आपके विचार में वारेन हेस्टिंग्ज कहाँ तक ब्रिटिश राज्य का संस्थापक कहा जा सकता है ?

(३) "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन-नीति सराहनीय है ।" इस कथन की विवेचना करो ।

(४) वारेन हेस्टिंग्ज की बाह्य नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।

(५) वारेन हेस्टिंग्ज ने बंगाल में किस तरह शासन-व्यवस्था की ? वर्णन कीजिए ।

(६) रुहेला-युद्ध के क्या कारण थे ? उसके लिए वारेन हेस्टिंग्ज कहाँ तक उत्तरदायी था ?

राजस्थान—

(१) 'रेग्यूलेटिंग एक्ट सब एक्टों में निकृष्ट था जो इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने भारत के लिए पास किया है ।' विवेचना करो ।

(२) क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज में तुमको कौन अच्छा लगता है ?

(३) क्लाइव द्वारा स्थापित बंगाल का दोहरा प्रबन्ध किस प्रकार समाप्त हुआ ? एक अच्छी शासन-व्यवस्था की स्थापना में हेस्टिंग्ज कहाँ तक सफल हुआ ?

(४) वारेन हेस्टिंग्ज की निम्न नीतियों की व्याख्या करो—

(क) रुहेला युद्ध तथा (ख) नन्दकुमार की फाँसी ।

(५) यह सत्य है कि नन्दकुमार को मारने के लिए हेस्टिंग्ज और इम्पी में कोई षडयन्त्र नहीं था ।

मध्य प्रदेश—

(१) वारेन हेस्टिंग्ज के गवर्नर-जनरल काल की विशद् विवेचना करो ।

(२) "रेग्यूलेटिंग एक्ट अधूरी विधि था ।" व्याख्या करो ।

(३) वारेन हेस्टिंग्ज के शासन-काल में अंग्रेजी सत्ता को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ? उसने उन्हें कैसे सुलझाया ?

(४) वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए ।

सागर विश्वविद्यालय—

(१) वारेन हेस्टिंग्ज की वैदेशिक नीति का विवरण दीजिए तथा बतलाइए कि वह कहाँ तक सफल रही।

राजस्थान विश्वविद्यालय—

1. "We now arm you with full powers," wrote the Company to Warren Hastings, "make a complete reformation." In the light of this describe the administration under Hastings between 1372 A. D. to 1786 A.D.

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) वारेन हेस्टिंग्ज की कठिनाइयों एवं सिद्धि का मूल्यांकन कीजिए।

(२) "वारेन हेस्टिंग्ज पर मुकदमा चलाने से लाभ ही हुआ, जिस व्यवस्था के अन्तर्गत हेस्टिंग्ज को शासन करना पड़ा था उसका इस अभियोग द्वारा स्पष्टीकरण हुआ।" बताइए कि इस व्यवस्था के मुख्य दोष क्या थे?

(३) वारेन हेस्टिंग्ज के समय में ब्रिटिश राज्य पर क्या-क्या विपत्तियां आईं? उसने उनका किस प्रकार सामना किया?

(४) निम्न पर टिप्पणी लिखो—

(i) रेग्यूलेटिंग एक्ट,
(ii) बनारस की सन्धि,
(iii) वारेन हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) रेग्यूलेटिंग एक्ट की मुख्य धाराओं का उल्लेख कीजिए और उनके कार्यान्वित होने में जो दोष प्रकट हुए उनकी व्याख्या कीजिए।

(२) वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासनिक सुधारों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) रेग्यूलेटिंग एक्ट पर एक टिप्पणी लिखो।

(२) 'यदि वारेन हेस्टिंग्ज न होता तो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य प्रस्थापित नहीं हो पाता।' विवेचना करो।

(३) गवर्नर जनरल के रूप में वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों की विवेचना कीजिए।

६ अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार (१७६५–१७९८)

गत अध्यायों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि अंग्रेजों ने सन् १७६० ई० में फ्रांसीसियों को बुरी तरह परास्त किया, जिसके कारण फ्रांसीसी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। **उनके समस्त उपनिवेश उनके हाथ से निकल गए और अंग्रेजों के प्रभुत्व की दक्षिण भारत में स्थापना हुई।** मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब स्वीकार कर लिया गया। निजाम फ्रांसीसियों के प्रभाव से मुक्त होकर बहुत कुछ अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया तथा उत्तरी सरकार में अंग्रेजों की शक्ति दृढ़ हो गई। परन्तु अंग्रेजों को दक्षिण में ऐसे दृढ़ शत्रु का सामना करना पड़ा जिसने अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने की प्रतिज्ञा कर कार्य करना आरम्भ किया। उसका नाम **हैदरअली** था, जिसने अपनी योग्यता के कारण मैसूर के राज्य को अपने अधिकार में किया। भारतीय इतिहास में हैदरअली का उत्कर्ष एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि अब अंग्रेजों को एक विशेष शक्तिशाली भारतीय नरेश का सामना करना पड़ा।

मैसूर-राज्य—इससे पूर्व हैदरअली के सम्बन्ध में कुछ वर्णन किया जाय यह उचित होगा कि मैसूर-राज्य के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला जाए। यह राज्य आरम्भ में विजयनगर राज्य का एक भाग था। विजयनगर राज्य का पतन १५६० ई० में हुआ जिसके पतन का वर्णन पुस्तक के प्रथम भाग में किया जा चुका है। इसके उपरान्त मैसूर में वोदेयरवंश के एक व्यक्ति ने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की जिसको मुगल-सम्राट औरंगजेब ने १७०४ ई० में मान्यता दी। **यह राज्य अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य तक स्वतन्त्र राज्य के रूप में कार्य करता रहा, किन्तु इसके उपरान्त निजाम ने उसको अपने अधिकार में किया।** इस समय से उसकी स्थिति खराब होने लगी, जिससे मरहठों को उस पर आक्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कई बार इस राज्य पर आक्रमण कर वहाँ से **'चौथ'** वसूल की, किन्तु शीघ्र ही मैसूर के दुर्दिनों का अन्त हुआ। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हैदरअली का उत्कर्ष हुआ, और उसने मैसूर राज्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया, जिससे मैसूर राज्य की गणना दक्षिण के शक्तिशाली राज्यों में की जाने लगी।

हैदरअली का प्रारम्भिक जीवन—हैदरअली का जन्म सन् १७२२ ई० में मैसूर राज्य के कोलर जिले में हुआ था। **हैदरअली का दादा मुहम्मद बहलोल फकीर था और उसका पिता फतहमुहम्मद मैसूर की सेना में एक फौजदार था।** वह भी अपने पिता के समान मैसूर की सेना में भर्ती हो गया। अपनी योग्यता तथा कार्य-कुशलता से वह मैसूर के प्रधान-मत्री नेजराज का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुआ, जो वास्तव में मैसूर राज्य में तानाशाह के रूप में शासन कर

रहा था और वहाँ का हिन्दू राजा केवल नाममात्र का शासक था। उसने उसको डिंडीगुल के दुर्ग का फौजदार घोषित किया। उसने फौजदार बनने पर दो कार्य किए जो उसकी अभिलाषा के प्रतीक तथा चतुराई के चिन्ह थे—(i) उसने अपनी अज्ञानता तथा निरक्षरता की कमी पूरा करने के उद्देश्य से खाण्डेराव नामक **एक ब्राह्मण को अपना सलाहकार नियुक्त किया।** खाण्डेराव न केवल एक शिक्षित व्यक्ति ही था, वरन् वह उच्च-कोटि का षड्यन्त्रकारी भी था। (ii) हैदरअली का दूसरा कार्य था कि उसने अपनी **सेना को फ्रांसीसी ढंग पर संगठित तथा सुसज्जित करने के अभिप्राय से फ्रांसीसियों के द्वारा सेना को सैनिक शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की।** ये दोनों ही कार्य ऐसे थे जिनसे मन्त्री नेजराज को सचेत हो जाना चाहिए था, किन्तु उसने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वह समझता रहा कि हैदरअली उसके लिए ही सब कुछ कर रहा है, किन्तु उसकी यह सबसे बड़ी भूल थी।

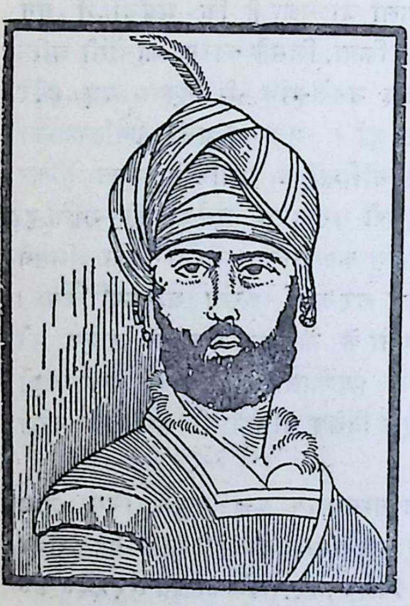

हैदरअली

नेजराज के विरुद्ध षड्यन्त्र—इसी समय खाण्डेराव के प्रयत्न से मन्त्री नेजराज के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा गया। उसने राजमाता को यह आश्वासन दिया कि वह हैदरअली की सहायता से नेजराज के आधिपत्य का अन्त करेगा और समस्त शासन की सत्ता राजा के सुपुर्द कर देगा जो इस समय नेजराज के बन्दी के रूप में था। शासन की समस्त सत्ता पर नेजराज का अधिकार था। राजमाता शीघ्र ही षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गई। हैदरअली ने अपनी सुसंगठित तथा सुसज्जित सेना से मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण किया। नेजराज को पदच्युत कर हैदरअली ने समस्त सत्ता को अपने अधिकार में किया। वह राजा का संरक्षक बन गया। जब खाण्डेराव ने इसका विरोध किया तो उसको एक लोहे के पिंजरे में बन्दी बना दिया गया। इस प्रकार राजा, मन्त्री और खाण्डेराव तीनों की छातियों पर पाँव रखकर हैदरअली ने अपने आपको मैसूर का राजा घोषित किया। एक वर्ष उपरान्त खाण्डेराव की मृत्यु बन्दीगृह में ही हो गई।

हैदरअली की कठिनाइयाँ तथा उनका निराकरण—हैदरअली यद्यपि षड्यन्त्र द्वारा मैसूर पर अधिकार करने में सफल हुआ, किन्तु उसके सामने कई कठिनाइयाँ थीं, जिनमें से प्रमुख निम्न थीं—(i) **मैसूर-राज्य का शत्रुओं से घिरा होना**—मैसूर राज्य चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। निजाम और मरहठे मैसूर राज्य पर अपनी आँख लगाए थे। (ii) **आन्तरिक कलह तथा संघर्ष**—समस्त राज

विद्रोह हो गए और अधिकारियों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने आरम्भ किए । (iii) सेना तथा **शासन की शोचनीय अवस्था**—सेना तथा शासन की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। हैदरअली उन कठिनाइयों से नहीं घबराया । **उसने बड़े साहस तथा धैर्य से अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया।** उसको उसके कार्यों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई । सर्वप्रथम उसने राज्य की आन्तरिक दशा को उन्नत करने का प्रयत्न किया। **उसने समस्त विद्रोहों का दमन कर विद्रोहियों को कठोर यातनाएँ दीं।** उसने विश्वासघाती पदाधिकारियों को उनके पदों से च्युत किया । इसके उपरान्त **उसने सैनिक शक्ति को सगठित करना आरम्भ किया और शासन को सुव्यवस्थित किया।**

हैदरअली का साम्राज्य-विस्तार

हैदरअली जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया जा चुका है, बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। अपनी स्थिति को मैसूर में दृढ़ करने के उपरान्त उसने साम्राज्य-विस्तार की योजना बनाई और उसको अपना कार्य पूरा करने के लिए शीघ्र ही स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ । उसकी मुख्य विजयें निम्नलिखित थीं —

हैदरअली का साम्राज्य-विस्तार

(१) बेदनूर विजय ।
(२) अन्य विजयें ।
(३) हैदरअली और मरहठे ।
(४) हैदरअली और अंग्रेज।

(१) **बेदनूर-विजय**— इसी समय जब हैदरअली साम्राज्य-विस्तार कर रहा था जो १७६३ ई० में बेदनूर के छोटे-से राज्य में उत्तराधिकारी के प्रश्न पर युद्ध आरम्भ हो गया। हैदरअली ने भी अंग्रेजों की नीति का अनुकरण कर दोनों प्रतिद्वन्द्वियों का अन्त कर दोनों को बन्दीगृह में डाल दिया और बेदनूर पर अधिकार कर लिया। उसने बेदनूर का नाम बदल कर हैदरअली रखा । इस विजय से हैदरअली को बड़ी प्रसन्नता हुई, जो स्वभाविक ही थी; क्योंकि यह उसकी प्रथम विजय थी। इस विजय के उपलक्ष में १५ दिनों तक बड़ी धूम-धाम के साथ उत्सव मनाया गया ।

(२) **अन्य विजयें**—इसी समय कनारा राज्य में भी उत्तराधिकारी के प्रश्न पर संघर्ष होने लगा । हैदरअली ने शीघ्र ही उस पर भी अधिकार कर लिया । इसके उपरान्त उसने मालाबार की ओर ध्यान दिया । उसने कालीकट, कोचीन और पालघाट के राजाओं को अपनी अधीनता में किया । कालीकट पर तो उसने अधिकार किया। उसने वगमहल, कोयम्बटूर को भी अपने अधिकार में किया ।

(३) **हैदरअली और मरहठे**—हैदरअली के उत्कर्ष से मरहठों में चिन्ता उत्पन्न हो गई। मरहठों ने पानीपत की पराजय के उपरान्त अपनी शक्ति का संगठन पेशवा माधवराव के योग्य नेतृत्व में कर लिया था। **सन् १७६५ ई० में माधोराव पेशवा ने मैसूर पर आक्रमण किया।** सन् १७७२ ई० तक मरहठों ने हैदरअली को चार बार परास्त किया। हैदरअली ने मरहठों को तीन लाख रुपया देने का वचन दिया था, किन्तु जब उससे रुपया माँगा गया तो उसने रुपया देने से इंकार कर दिया और मरहठों के विरुद्ध निजाम को सहायता प्रदान की और कर्नाटक की ओर भी अपना

विस्तार करना आरम्भ किया। निजाम से सन्धि होने के उपरान्त हैदरअली ने मरहठों की ओर ध्यान दिया, किन्तु कुछ विशेष कारणवश उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १७६० ई० में मरहठों ने हैदरअली को परास्त किया और उसको विवश होकर सन्धि करनी पड़ी। सन् १७६७ ई० में पेशवा ने उस पर पुन: आक्रमण किया, इस बार भी वह पराजित हुआ और उसने मरहठों से सन्धि की, किन्तु सन्धि स्थायी न रह सकी और मरहठों को पुन: हैदरअली पर आक्रमण करने के लिए विवश होना पड़ा। माधवराव का स्वास्थ्य खराब होने के कारण वह वापस चला आया। सन् १७७१ ई० में उसने पुन: कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया, किन्तु स्वास्थ्य के पुन: बिगड़ जाने के कारण वह फिर वापिस लौट आया। उसके सेनापति **त्र्यम्बकराव पेठे** ने हैदरअली को मार्च १७७१ ई० की मोती तालाब के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया। इसके पश्चात् मरहठों ने **श्रीरंगपट्टम** का घेरा डाला। अन्त में अप्रैल १७७२ ई० में सन्धि हो गई। इसके अनुसार हैदरअली ने मरहठों को १५ लाख रुपया नकद और ६ लाख रुपए के आभूषण दिए और १९ लाख रुपए तीन वार्षिक किस्तों में देने का वचन दिया। मरहठों ने कुछ दुर्गों पर भी अपना अधिकार जमाए रखा। युद्ध में हैदरअली परास्त हुआ और उसने ३२ लाख रुपया युद्ध-क्षति के रूप में तथा सवानूर तथा गूटी मरहठों को देने पड़े।

(४) हैदरअली और अंग्रेज— हैदरअली की दक्षिण में बढ़ती हुई शक्ति से अंग्रेज भी भयभीत होने लगे थे। मरहठे और निजाम तो उससे पहले से ही ईर्ष्या करते थे। इन तीनों शक्तियों ने हैदरअली की शक्ति को समाप्त करने के उद्देश्य से एक संघ का निर्माण किया। उसके राज्य पर मरहठों तथा निजाम ने अंग्रेजों की सहायता से आक्रमण किया। हैदरअली बड़ा भयभीत हुआ, किन्तु इस समय उसने बड़े साहस से काम लिया। **उसने शीघ्र ही मरहठों से एक सन्धि की, जिसके द्वारा उसने मरहठों को ५३ लाख रुपया देने का वचन दिया।** इसके पश्चात् उसने निजाम के आक्रमण की ओर ध्यान दिया। अप्रैल सन् १७६७ ई० में निजाम ने मैसूर पर आक्रमण किया, किन्तु कर्नाटक के नवाब के भाई महफूज खाँ के द्वारा निजाम हैदरअली की ओर आ गया और दोनों में एक सन्धि हो गई। इस प्रकार **हैदरअली ने मरहठों और निजाम को इस संघ से अलग कर दिया।** इसके साथ-साथ निजाम अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ हैदरअली से मिल गया। यह हैदरअली की बड़ी भारी विजय तथा कूटनीतिज्ञता का प्रतीक है। अब हैदरअली को केवल अंग्रेजों का सामना करना शेष रह गया था।

प्रथम मैसूर-युद्ध

हैदरअली ने मरहठों और निजाम से मुक्त होकर अपनी समस्त शक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध प्रयोग करने का निश्चय किया। अंग्रेजों ने भी पूर्ण शक्ति से हैदरअली और निजाम का सामना किया। सितम्बर १७६७ ई० में **स्मिथ (Smith)** के नेतृत्व में अंग्रेज इन दोनों की सम्मिलित सेनाओं को चङ्गामा घाट तथा त्रिनोमली स्थानों पर परास्त करने में सफल हुए। इस पराजय के कारण निजाम ने हैदरअली

का साथ छोड़ दिया और उसकी अंग्रेजों से सन्धि हो गई, जिसके अनुसार निजाम ने अपने पुराने वचनों की पूर्ति का आश्वासन दिया और उसने अंग्रेजों को हैदरअली के विरुद्ध सहायता करने का वचन भी दिया।[1] इस सन्धि से अंग्रेजों को कोई लाभ विशेष नहीं हुआ, वरन् इसके विपरीत वे हैदरअली के शत्रु बन गए। इसी समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने लिखा है कि **"तुमने हमको बड़ी कठिनाइयों तथा परेशानियों में उलझा दिया है और हमारी समझ में नहीं आता कि हम उसमें से कैसे निकलेंगे।"**[2] इस समय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की इच्छा भारत में साम्राज्य विस्तार करने की नहीं थी और वे उससे ही सन्तुष्ट थे जो उनको प्राप्त हो चुका था। (The Court of Directors observed, "It is not for the Company to take the part of umpires of Hindostan. If it had not been for the imprudent measures you have taken, the country powers would have formed a balance among themselves. We wish to see the Indian princes remain as a check upon one another without our interference.")

अंग्रेजों की पराजय—यद्यपि निजाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया, किन्तु वह उनसे हतोत्साहित नहीं हुआ और उसने बड़े साहस तथा उत्साह के साथ अंग्रेजों का सामना करना आरम्भ कर दिया। उसको निजाम पर बड़ा क्रोध आया। **उसने शीघ्र ही बम्बई की सेना को परास्त कर मगलौर नामक स्थान पर अधिकार** किया। अंग्रेजों को इस युद्ध में बड़ी क्षति उठानी पड़ी। **इसके उपरान्त उसने शीघ्र ही मार्च १७६९ ई० में मद्रास पर आक्रमण किया और उसको घेर लिया।**

अंग्रेज और हैदरअली में सन्धि—अंग्रेज भयभीत हो गए और दोनों में अप्रैल सन् १७६९ ई० को एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार हैदरअली और अंग्रेज दोनों ने एक दूसरे के विजित प्रदेश लौटा दिए तथा यह भी निश्चय हुआ कि दोनों एक दूसरे की सहायता किसी अन्य शक्ति के आक्रमण करने के अवसर पर करेंगे। **इस युद्ध तथा सन्धि से अंग्रेजो के मान और प्रतिष्टा को बड़ा आघात पहुँचा और हैदरअली की शक्ति का विकास होना आरम्भ हो गया।**[3]

---

[1] "Hyder was soon abandoned by his fickly ally, the Nizam, with whom the Madras Government tactlessly concluded an ill-advised treaty on the 23rd February, 1768. By this the Nizam confirmed his old treaty obligations in an irresponsible a manner as he had broken them, and declaring Hyder a "rebel and usurper," he agreed to assist the English and the Nawab of the Carnatic in chastising him.
—**An Advanced History of India, p. 683.**

[2] "The Court of Directors observed, "You have brought us into such a labyrinth of difficulties that we do not see how we shall be extricated from them."

[3] "In March 1769 he suddenly appeared like an avalanche before Madras and dictated his own terms. In April 1769 peace was made by which mutual restitution of conquests and aid in defensive wars were agreed upon. Haider's prestige rose very high and he returned to his capital in triumph."
—**Dr. Ishwari Prasad and S. K. Subedar : Modern India. p. 75.**

मैसूर पर मरहठों का आक्रमण—मरहठों और हैदरअली में भी अधिक दिनों तक सन्धि न रह सकी। मरहठों ने सन् १७७१ ई० में मैसूर-राज्य पर आक्रमण किया। हैदरअली को अंग्रेजों से सहायता नहीं मिली। इस समय हैदरअली की भी यह स्थिति नहीं थी कि वह अकेला मरहठों का सामना कर सकता। अतः जब वह **अंग्रेजों की सहायता से निराश हो गया तो उसने मरहठों को बहुत-सा धन (३६ लाख रुपया) दिया तथा वार्षिक कर (१४ लाख) देने का वचन दिया।** उसके कुछ राज्य पर मरहठों ने अधिकार भी किया। हैदरअली को अंग्रेजों पर वचन-भंग करने के कारण बड़ा क्रोध आया। इस समय से वह उनका कट्टर शत्रु बन गया और उसने इसका बदला लेने का निश्चय किया वह उपयुक्त और अवसर खोजने लगा।

द्वितीय मैसूर-युद्ध

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि अंग्रेजों के विश्वाघात के कारण हैदरअली उनका शत्रु हो गया और वह उनकी समाप्ति करने के अवसर की खोज में लग गया। **सन् १७७९ ई० में नाना फड़नवीस ने निजाम और हैदरअली को मिलाकर एक संघ का निर्माण किया।** अंग्रेजों ने अपनी नीति के कारण इन तीनों को अप्रसन्न कर दिया था। उन्होंने निजाम को उत्तरी सरकार का कर नहीं दिया और गंटूर पर हैदरअली के राज्य में होकर आक्रमण किया। हैदरअली ने इसका विरोध किया। इसी समय मरहठों का संघर्ष बम्बई सरकार से चल रहा था। सन् १७७८ ई० में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों का युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजों ने कुछ फ्रांसीसी वस्तियों पर शीघ्र अधिकार किया। इसमें **पाण्डेचेरी**, कारीकल और चन्द्रनगर थे। इसके पश्चात् उन्होंने **माही** पर जो हैदरअली के राज्य में स्थित था, आक्रमण करने का विचार किया। उन्होंने इसकी सूचना हैदरअली को दी। हैदरअली ने इसका विरोध किया, किन्तु अंग्रेजों ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। **सन् १७७९ ई० में अंग्रेजों ने माही पर आक्रमण किया और वे उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुए। अंग्रेजों के इस व्यवहार से हैदरअली बड़ा क्रोधित हुआ और उसको वह अवसर प्राप्त हो गया जिसकी वह खोज में था।** उसने मरहठों तथा निजाम से मिलकर युद्ध का शंख फूंक दिया।

हैदरअली का अर्काट पर आक्रमण—इस समय हैदरअली की शक्ति पर्याप्त संगठित थी। उसके पास ८०,००० सैनिक और १०० तोपें थीं। अंग्रेजों की दशा इस समय बड़ी शोचनीय थी। उनकी न आर्थिक स्थिति और न सैनिक स्थिति ही उन्नत थी। हैदरअली ने शीघ्र ही जुलाई सन् १७८० ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया। उसकी समस्त सेना तीन प्रमुख भागों में विभक्त थी। एक का नेतृत्व स्वयं हैदरअली, दूसरी का नेतृत्व उसका पुत्र टीपू और तीसरी का नेतृत्व उसका पुत्र करीम कर रहा था। अनेक गांवों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ वह कर्नाटक की राजधानी अर्काट पहुंचा, जिसका उसने घेरा डाल दिया। कर्नाटक का नवाब भागकर मद्रास पहुँचा। अंग्रेजों को जब यह समाचार विदित हुआ तो उन्होंने उसका सामना करने के लिए एक सेना **मुनरो** के तथा दूसरी सेना **बेली** के नेतृत्व में दो विभिन्न मार्गों से

भेजीं, किन्तु हैदरअली के वीर पुत्र टीपू ने इन दोनों सेनाओं को मिलने नहीं दिया। पिता और पुत्र ने मिलकर बेली की ४००० सैनिकों की अंग्रेजी सेना को घेर कर बुरी तरह परास्त किया। अंग्रेजों के सैकड़ों सैनिक युद्ध में काम आए। जब मुनरो को बेली की पराजय का समाचार विदित हुआ तो वह अपने सामान को एक तालाब को ट कर मद्रास भाग गया। इस समय अंग्रेजों का भाग्य गिर गया था,[1] किन्तु जब इसका समाचार बंगाल पहुँचा तो वारेन हेस्टिंग्ज ने सर आयर कूट को दक्षिण भेजा। पाठकों को याद होगा कि **सर आयर कूट** ने फ्रांसीसियों को **वांडेवाश** के युद्ध में सन् १७६० ई० में बुरी तरह परास्त किया था। यदि इस समय मरहठे चाहते तो वे सर आयर कूट को दक्षिण जाने के पूर्व रोक सकते थे, किन्तु हेस्टिंग्ज ने निजाम, महादजी सिंधिया और बरार के राजा भौंसले को अपनी ओर मिला लिया था।[2] **सर आयर कूट** निर्विरोध दक्षिण में हैदरअली का सामना करने के लिए तथा अंग्रेज-शक्ति की रक्षा करने के लिए पहुँचने में सफल हुआ। यह युद्ध चल ही रहा था कि अंग्रेजों और मरहठों में सन् १७८२ ई० में सालबाई की सन्धि हो गई जिससे मरहठे युद्ध से अलग हो गए।

सर आयर कूट के कार्य—सर आयर कूट ने मद्रास पहुँच कर हैदरअली की रोक-थाम करने का कार्य आरम्भ किया। वह मद्रास से कर्नाटक के तट पर पाण्डिचेरी के दक्षिण में कुण्डलूर पहुँचा। इसी समय एक फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा **ओबरे** के नेतृत्व में मद्रास के तट पर आया, जिसके कारण अंग्रेजी रसद का मार्ग रुक गया, जो समुद्र के मार्ग से आने वाली थी। हैदरअली ने स्थल मार्ग पर अधिकार किया। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर **सर आयर कूट** बड़े संकट में पड़ गया, किन्तु कुछ ही दिनों बाद फ्रांसीसी बेड़ा वहाँ से रवाना हो गया और सर आयर कूट को समुद्र से रसद मिलने लगी। इधर से निश्चिन्त होकर सर आयर कूट ने हैदरअली से युद्ध करना आरम्भ किया। **उसने चिदम्बरम् पर आक्रमण किया, किन्तु वह परास्त हुआ। इस विजय से हैदरअली का उत्साह बहुत बढ़ गया।** उसने शीघ्र ही **पोर्टोनोवो** पर आक्रमण किया। यहाँ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु हैदरअली हार गया। हैदरअली की सेना को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। इसके बाद **पोलीलोर** का युद्ध हुआ। यहाँ विजय निश्चित रूप से किसी भी दल की नहीं हुई। तृतीय युद्ध में हैदरअली पराजित हुआ। यह युद्ध **शोलिंगगढ़** नामक स्थान पर हुआ था।

युद्ध के मध्य हैदरअली की मृत्यु—यद्यपि हैदरअली परास्त हुआ, किन्तु अंग्रेज उसको कर्नाटक से निकालने तथा सन्धि करने के लिए बाध्य न कर सके।

---

[1] "The fortunes of English in India had fallen to their lowest water-mark."
—Sir Alfred Lyall.

[2] "By skillful diplomacy, by playing upon the conflicting interests of the allies, Hastings detached the Raja of Berar and sindhia from the coalition. He pacified the Nizam by the return of Guntur, suspended the currupt Madras Governor and took the initiative in his own hands."
—Dr. Ishwari Prasad & S. K. Subedar : History of Modern India, p. 88.

सन् १७८२ ई० के आरम्भ में एक फ्रांसीसी बेड़ा हिन्द महासागर में आया, जिसने अंग्रेजों को परास्त किया। एक योजना के अनुसार **बुसी** एक सेना के साथ भारत आने वाला था, किन्तु वह ठीक समय पर भारत न आ सका। अंग्रेजों ने तंजोर की रक्षा के लिये कर्नल **ब्राथवेंल** को २,००० सैनिकों के साथ भेजा। हैदरअली का पुत्र टीपू तंजोर का घेरा डाले पड़ा था। टीपू ने उसको बुरी तरह परास्त किया और उसको आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया। दूसरी ओर हैदरअली तेलीचोरी को घेरे पड़ा था, किन्तु अंग्रेज उसकी रक्षा करने में सफल हुए। इसी समय एक फ्रांसीसी बेड़ा **एडमिरल सफरन** के नेतृत्व में भारत आया। हैदरअली को पुनः आशा हुई। अब अंग्रेजों ने हैदरअली के राज्य मैसूर पर आक्रमण करना आरम्भ किया। **कर्नल हेम्बर स्टोन** ने अंग्रेजी सेना द्वारा पालघाट पर आक्रमण किया। टीपू ने उसका बड़ी वीरता से सामना किया और उसको परास्त किया। हैदरअली स्वयं अंग्रेजों का सामना करने लिए आ रहा था, किन्तु इसी बीच ६ दिसम्बर १७८२ ई० को उसकी असामयिक मृत्यु हो गई।

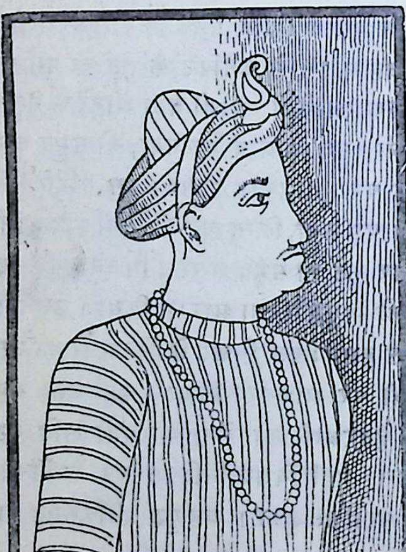

टीपू

टीपू का युद्ध संचालन—हैदरअली की मृत्यु के उपरान्त युद्ध का समस्त कार्य तथा संचालन टीपू ने अपने हाथ में लिया। सन् १७८२ ई० में उसने बेदनूर पर अधिकार किया। अंग्रेजों ने पश्चिम की ओर से उसके राज्य पर आक्रमण किया। टीपू को बाध्य होकर उधर जाना पड़ा। इसी बीच सन् १७८३ ई० में अंग्रेजी **कर्नल फुलर्टन** ने कोयम्बटूर पर अधिकार कर श्रीरंगपट्टम की ओर बढ़ना आरम्भ किया। दोनों दल युद्ध से ऊब गए थे और वे सन्धि करना चाहते थे। दोनों ही अपनी स्थिति के कारण बड़े परेशान हो गए थे। १७ मार्च सन् १७८४ ई० को दोनों में सन्धि हो गई। **यह सन्धि मंगलौर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।** इसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि दोनों एक दूसरे के विजित प्रदेश वापिस कर दें तथा युद्ध बन्दियों को मुक्त कर दें। वारेन हेस्टिंग्ज को सन्धि की ये शर्तें बिलकुल भी पसन्द नहीं आईं।[1]

हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन

भारतीय इतिहास में हैदरअली का स्थान सब दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। वह सर्वगुण-सम्पन्न था, जिसके आधार पर वह एक छोटे-से पद से मैसूर राज्य का स्वामी बनने में सफल हुआ।

---

[1] What a man is this Lord Macartney ! I yet believe that inspite of the peace, he will effect the loss of the Carnatic."
—Hastings

(१) **महान् शासक और सेनापति**—शासक और सेनापति के रूप में वह महान् था। उसने अपने राज्य में उचित व्यवस्था कर शान्ति स्थापित की। उसने अपनी सेना को पाश्चात्य ढंग से संगठित किया और जहाजी बेड़ा बनाने की ओर ध्यान दिया। इस कार्य में उसने फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्त की।

(२) **उच्चकोटि का कूटनीतिज्ञ**—वह उच्चकोटि का कूटनीतिज्ञ था। इसका प्रदर्शन उसने अपने जीवनकाल में कई बार किया। उसमें प्रतिशोध की भावना विशेष रूप से विद्यमान थी। वह अपने शत्रुओं के साथ कठोरता का व्यवहार करता था। उनको क्षमा करना वह नहीं जानता था।

(३) **बड़ा परिश्रमी**—वह बड़ा परिश्रमी था और दिन-रात वह अपने कार्य तथा उद्देश्य की प्राप्ति में व्यस्त रहता था।

(४) **गुणों के परखने की शक्ति**—वह मनुष्य के गुणों को परखने की अद्वितीय शक्ति रखता था। यह अयोग्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन प्रदान नहीं करता था।

(५) **सैनिक संगठन पर विशेष महत्व**—उसने सैनिक संगठन पर विशेष महत्व दिया। वह जानता था कि वह चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ है और वह उनका सामना करने में असमर्थ रहेगा जब तक कि वह अपने सैनिक संगठन को उच्चकोटि तक पहुंचाने में सफल न होगा। उसने फ्रांसीसियों को अपनी सेना मे भर्ती किया और उनके द्वारा उसने अपनी सेना का समस्त संगठन करवाया। सैनिकों को पश्चात्य ढंग पर शिक्षा दी जाती थी। वह सैनिकों की भर्ती में जाति, रंग आदि का भेदभाव नहीं करता था। उसने योग्यता को ही अपना आधार बनाया। कुछ विद्वानों ने उसकी पराजय का कारण उसकी सैनिक नीति ही बतलाई है, किन्तु इसमें सत्य का अभाव है। वास्तव में अपनी सैनिक शक्ति के द्वारा ही वह अंग्रेजों का सामना करने में सफल हुआ और कई युद्धों में उसको उनके विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई।

हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन

(१) महान् शासक और सेनापति।
(२) उच्च कोटि का कूटनीतिज्ञ।
(३) बड़ा परिश्रमी।
(४) गुणों के परखने की शक्ति।
(५) सैनिक संगठन पर विशेष महत्व।
(६) कई भाषाओं का ज्ञाता।
(७) विलक्षण स्मरण-शक्ति।
(८) न्यायप्रिय शासक।
(९) धार्मिक विषयों में उदारता।

(६) **कई भाषाओं का ज्ञाता**—यद्यपि वह साक्षर नहीं था, किन्तु उसको कई भाषाओं का ज्ञान था।

(७) **विलक्षण स्मरण-शक्ति**—उसकी स्मरण शक्ति बड़ी विलक्षण थी। छोटी-छोटी बातों तक को भी वह कभी नहीं भूलता था।

(८) **न्यायप्रिय शासक**—वह बड़ा न्यायप्रिय शासक था। उसने नियम

कठोर अवश्य थे, किन्तु इनके अभाव में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं थी। वह सबके साथ न्यायोचित व्यवहार करता था।

(९) **धार्मिक विषयों में उदारता**—उसकी धर्म में विशेष अभिरुचि नहीं थी, इसी कारण वह **धार्मिक विषयों में बड़ा उदार था।** वह एक साथ कई कार्य करने की क्षमता रखता था।

अंग्रेजों के विचार—कुछ अंग्रेजों ने उसके चरित्र को कलुषित करने का यत्न किया[1], किन्तु वास्तव में उसका चरित्र बड़ा उज्ज्वल था। यद्यपि उसमें कुछ दोष भी अवश्य विद्यमान थे, किन्तु उसके गुणों के सामने उनका कोई महत्व नहीं। उसके चरित्र के सम्बन्ध में **बौरिंग** का कथन है कि **"हैदरअली एक वीर, मौलिक तथा साहसी सेनापति, कुशल राजनीतिज्ञ तथा साधन-सम्पन्न व्यक्ति था। पराजय से भी वह कभी हतोत्साहित व निराश नहीं हुआ। वह दृढ़ प्रतिज्ञ था और सदा इस ओर प्रयत्नशील था। उसकी अंग्रेजों के प्रति नीति पूर्ण स्पष्ट थी, जिसका पालन उसने ईमानदारी के साथ किया। यद्यपि उसके कार्यों द्वारा लोगों में आतंक था, किन्तु उसका नाम मैसूर राज्य में आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है, चाहे वे उसकी प्रशंसा न करें। उसके अत्याचार को लोग भूल गए है, किन्तु उसकी वीरता तथा सफलता उनके हृदयों पर अंकित रहेगी।"**[2]

तृतीय मैसूर-युद्ध

मंगलौर की सन्धि अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी। दोनों एक दूसरे से पूर्व के समान शत्रुता रखते थे। अपनी-अपनी परिस्थितियों से बाध्य होकर दोनों ने एक-दूसरे से सन्धि की। इसके अनुसार ट्रावनकोर राज्य पर अंग्रेजों का संरक्षण स्थापित हो गया था। इसी समय डचों ने कोचीन राज्य के दो नगर ट्रावनकोर के राजा को बेच दिए। कोचीन राज्य मैसूर राज्य के संरक्षण में था। उसने ट्रावनकोर के राजा को आदेश दिया कि वे उन नगरों को कोचीन-राज्य को वापिस कर दें। उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। **टीपू ने १४ दिसम्बर सन् १७८९ ई० को ट्रावनकोर राज्य पर आक्रमण किया।** जब लार्ड कार्नवालिस ने भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन किया तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि स्थिति **बड़ी भयंकर हो गई है और मैसूर-राज्य से युद्ध करना अनिवार्य है**; यद्यपि पिट्स **इण्डिया एक्ट** द्वारा वह केवल सम्राट के लिए युद्ध कर सकता था। सन् १७८८ ई०

---

[1] "Haider was an absolutely unscruplous man, who had no religion, no moral and no compassion." —Dr V. Smith.

[2] "He was a bold, an original and an enterprising commander, skillful in tactics and fertile in resources, full of energy and never desponding in defeat. He was singularly faithful to his engagements and straight-forward in his policy towards the British. Notwithstanding the severity of his internal rule, and the terror which he inspired, his name is always mentioned in Mysore with respect if not with admiration. While the cruelties which he sometimes practised are forgotten, his prowess and success have an abiding place in the memory of the people." —Bowring.

में लार्ड कार्नवालिस ने निजाम से उत्तरी सरकार में गंथर का प्रदेश प्राप्त किया और उसको सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया। ७ जौलाई सन् १७८९ ई० में कार्नवालिस ने निजाम को एक पत्र लिखा जिसमें उससे कहा गया था कि दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे और उनका पारस्परिक सहयोग और सम्बन्ध दृढ़ हो जाने चाहिएँ। कार्नवालिस का यह कार्य अनुचित था। उसको इस प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि इसके द्वारा टीपू को असन्तोष होगा और टीपू और अंग्रेजों के मध्य युद्ध अवश्यसम्भावी हो जायेगा। टीपू को जब यह समाचार विदित हुआ तो उसको बड़ा क्रोध आया। अतः जनवरी सन् १७९० ई० को उसने मैसूर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। अंग्रेजों ने पहले ही निजाम और मरहठों को यह आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया था कि युद्ध की समाप्ति पर वे उनको विजित प्रदेशों का कुछ भाग प्रदान करेंगे। इसके कारण उन्होंने टीपू की सहायता नहीं की।

युद्ध की घटनाएँ—अंग्रेज **मेजर जनरल मेडोज** ने मैसूर पर आक्रमण किया, किन्तु वह सफल नहीं हो सका। इस बीच मरहठों ने **धारवार** पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। टीपू शीघ्र ही त्रिचनापली पहुँचा जहाँ उसने श्रीरंगम के टापू पर आक्रमण किया। उसकी इन सफलताओं के कारण कार्नवालिस बड़ा चिन्तित हुआ। उसने दिसम्बर १७९० ई० में सेना का नेतृत्व स्वयं अपने हाथों में लिया। वह बैंलोर पर अधिकार करने में सफल हुआ। टीपू ने उस पर अधिकार स्थापित करने के लिए उस पर आक्रमण किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई, यद्यपि मैसूर की सेना ने अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ युद्ध किया था। टीपू को बाध्य होकर वापिस लौटना पड़ा। इस युद्ध में दोनों पक्षों की बड़ी हानि हुई।

श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण—इस युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों ने शीघ्र ही देवली और बलीपुर के दुर्गों पर अधिकार किया और कार्नवालिस मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम की ओर चल पड़ा। निजाम और मरहठों की सेना भी अंग्रेजों के साथ थी। टीपू इस सेना के आगमन का समाचार सुनकर घबरा गया। उसने अंग्रेजों के सामने सन्धि का प्रस्ताव रखा, किन्तु अंग्रेजों ने इसको स्वीकार नहीं किया। उनका इस बार निश्चय था कि टीपू की शक्ति का पूर्णतया अन्त करना चाहिए। अंग्रेजों की सम्मिलित सेना ने नन्दी दुर्ग पर अधिकार कर शीघ्र ही श्रीरंगपट्टम को घेर लिया। मैसूर की सेना ने इनका बड़ी वीरता के साथ सामना किया; किन्तु गोलाबारी के अभाव के कारण उसने फिर सन्धि करने का प्रयत्न किया और कार्नवालिस अपनी शर्तों पर सन्धि करने के लिए तैयार हो गया। अन्त में दोनों में सन् १७९२ ई० में श्रीरंगपट्टम की सन्धि हुई। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि टीपू को अपना आधा राज्य अंग्रेजों को देना होगा तथा क्षति-पूर्ति के लिए वह ३ करोड़ २० लाख रुपये अंग्रेजों को देगा। उसको अपने दो पुत्र भी बन्धक के रूप में अंग्रेजों को देने पड़े।

इसके पश्चात् अंग्रेज, निजाम और मरहठों में विजित प्रदेशों का विभाजन होना आरम्भ हुआ। अंग्रेजों को बड़ा महल, सलेम, डिंडीगल और मालावार के प्रदेश प्राप्त हुए, मरहठों को कृष्णा और तुंगभद्रा के मध्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए तथा निजाम को कृष्णा और पन्ना नदी के मध्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए। कुर्ग का राजा अंग्रेजों के संरक्षण में आया; क्योंकि उसने युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की थी।

कार्नवालिस ने इस समय बड़ी ही योग्यता का परिचय दिया। इस समय ऐसी परिस्थिति थी कि मैसूर राज्य का विलीन किया जाना सम्भव था। उस समय कुछ सेनापतियों तथा राजनीतिज्ञों ने कार्नवालिस के सामने इस सम्बन्ध के प्रस्ताव भी रखे, किन्तु उसने यह कह कर टाल दिया कि वह इसको क्या करेगा। वास्तव में उसके ऐसा करने के कई कारण थे। **प्रथम,** तो उसका यह कार्य पिट के इण्डिया एक्ट का विरोधी होता। **दूसरे,** मैसूर राज्य पर अधिकार करने से यह सम्भव था कि मरहठे और निजाम उसके शत्रु बन जाते और अंग्रेजों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उद्यत हो जाते। उनकी सम्मिलित सेनाओं का सामना करने की शक्ति इस समय अङ्गरेज नहीं रखते थे। **तृतीय,** इस समय अङ्गरेजों की सेना वीमारी से ग्रस्त थी तथा फ्रांसीसियों और अङ्गरेजों का युद्ध चल रहा था। **चौथे,** कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स शान्ति चाहते थे और वे युद्ध को प्रोत्साहन नहीं दे रहे थे। **पाँचवें,** मैसूर राज्य पर अधिकार कर उसमें शासन-व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था।

अङ्गरेजों की सफलता के कारण—इस युद्ध में अंग्रेजों की सफलता उनके सैनिक संगठन अथवा कुशल सेनापतित्व के कारण नहीं हुई। वास्तव में उनकी सफलता का एक कारण निजाम और मरहठों का अंग्रेजों के साथ सम्मिलित होना था। यदि टीपू को केवल अंग्रेजों का सामना करना होता तो वह उनको पराजित करने में अवश्य सफल होता, किन्तु तीनों की सम्मिलित सेनाओं का सामना करने की शक्ति उसमें नहीं थी। इसके अतिरिक्त उसको फ्रांस आदि से भी किसी प्रकार की सहायता प्राप्त न हो पाई।

अंग्रेज और मरहठे

सन् १७७२ ई० में मरहठों के पेशवा **माधव राव** का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका भाई **नारायणराव पेशवा** की गद्दी पर आसीन हुआ। वह केवल ९ महीने तक ही शासन कर सका, क्योंकि राघोबा ने षड्यन्त्र रचकर ३० अगस्त को उसका वध किया और स्वयं पेशवा बन गया। कुछ समय उपरान्त **सखाराम** और **नाना फड़नवीस** ने उसका विरोध करना आरम्भ किया। उन्होंने मृतक पेशवा के पुत्र को राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया, जिससे राघोबा की स्थिति शोचनीय हो गई। उसका समर्थन किसी भी मरहठा सरदार ने नहीं किया। बाध्य होकर उसने अङ्गरेजों से सहायता प्राप्त करने के लिए बम्बई की सरकार से सूरत की सन्धि ७ मार्च सन् १७७५ ई० में की। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि वह अङ्गरेजों को सालसिट और बेसीन के द्वीप देगा और अङ्गरेज उसकी सहायता करेंगे। इस प्रकार अङ्गरेजों को कर्नाटक के समान

भारत के पश्चिम में भी राज्यसिंहासन प्राप्ति के संघर्ष में भाग लेने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया ।

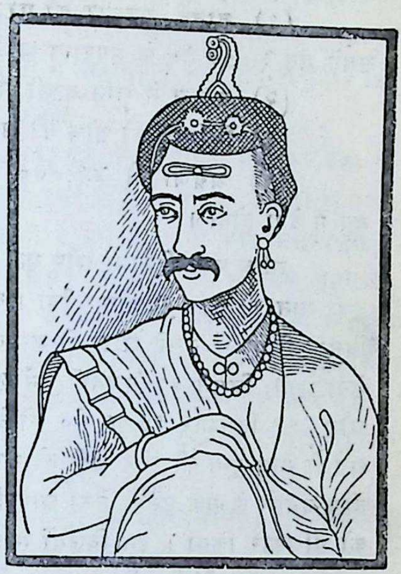
नाना फड़नवीस

पुरन्धर की सन्धि—जब इस सन्धि का समाचार गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज को प्राप्त हुआ तो **उसने इस सन्धि की बड़ी आलोचना की । वास्तव में हेस्टिंग्ज सूरत की सन्धि का विरोधी नहीं था, किन्तु कौंसिल के सदस्यों के कारण उसको भी विरोध करना पड़ा ।** बम्बई की सरकार ने रघुनाथ राव के साथ उसको गद्दी पर आसीन करने के लिए सेना भेजी । उस सेना और मरहठों की सेना के बीच अरस के मैदान में १८ मई सन् १७७५ ई० को युद्ध हुआ । इस प्रकार गवर्नर-जनरल की बिना अनुमति प्राप्त किए ही इस क्षेत्र में युद्ध आरम्भ हो गया । शीघ्र ही गवर्नर-जनरल की ओर से बम्बई सरकार को आदेश दिया गया कि वह अपनी सेना मरहठों के प्रदेश से वापस बुला ले, जो उन्होंने रघुनाथ राव (राघोबा) की सहायतार्थ भेजी थी । इसके उपरान्त **उपटन** नामक एक अङ्गरेज अफसर पूना भेजा गया कि वह पूना सरकार से एक नवीन सन्धि की व्यवस्था करे । उसने पूना सरकार से सन् १७७६ ई० में **पुरन्धर की सन्धि की ।** इसके अनुसार सूरत की सन्धि का अन्त हो गया और यह निश्चय हुआ कि अङ्गरेज रघुनाथ राव का साथ त्याग देंगे और मरहठे कम्पनी को सालसिट का द्वीप देंगे । मरहठे अङ्गरेजों को १२ लाख रुपये क्षति-पूर्ति के रूप में देंगे तथा राघोबा को ५,००० रुपये मासिक पेंशन के रूप में देंगे ।

प्रथम मरहठा युद्ध—बम्बई की सरकार ने सन्धि की शर्तों के विरुद्ध राघोबा को अपनी शरण में रखा और मरहठों ने भी इस सन्धि का परित्याग कर दिया । उसी समय पूना दरबार में एक फ्रांसीसी दूत आया और दोनों के मध्य एक व्यापारिक सन्धि हुई । उक्त दोनों सन्धियों के मसविदे इंगलैण्ड भेजे गए । **कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स** ने सूरत की सन्धि का अनुमोदन किया, क्योंकि उससे ही अङ्गरेजों को विशेष लाभ था । अतः अङ्गरेजों ने राघोबा के पक्ष का समर्थन किया, जिसके कारण अङ्गरेज सेना ने पूना की ओर बढ़ना आरम्भ किया । नाना फड़नवीस इसके लिए तैयार था । ९ जनवरी सन् १७७९ ई० को मरहठों ने अङ्गरेजी सेना को तेलगाँव नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया ।

बड़गाँव की सन्धि—अंग्रेजों को इस पराजय से बाध्य होकर बड़गाँव की

सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी अपमानजनक थी। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि—

(१) बम्बई सरकार को मरहठों के वे समस्त प्रदेश वापस करने होंगे जो उसने सन् १७७३ ई० के उपरान्त अपने अधिकार में कर लिए थे।

(२) बंगाल से आने वाली सेना को वापिस जाना होगा।

(३) सिंधिया को ब्रोच की मालगुजारी का कुछ भाग दिया जायगा, तथा

(४) अंग्रेजों को ४१,००० रुपया मरहठों को युद्ध की क्षति-पूर्ति के रूप में देना होगा।

सन्धि का परिणाम और युद्ध का आरम्भ— इस सन्धि से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा तथा मान को बड़ा आघात पहुँचा। वारेन हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि को रद्द करने का विचार किया।[1] उसने शीघ्र ही बंगाल से कर्नल गोडार्ड के नेतृत्व में एक शक्तिशा सेना भेजी, जिसने १५ फरवरी सन् १७८० ई० को अहमदनगर पर अधिकार कि और ११ दिसम्बर १७७९ ई० को बेसीन पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इ अंग्रेजी सेना पूना की ओर बढ़ी तो मरहठे उसको परास्त करने में सफल हुए। इ बीच बंगाल से एक दूसरी सेना आई जिसने ग्वालियर पर ३ अगस्त सन् १७८१ ई० को अधिकार किया। इन विजयों से अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

सालबाई की सन्धि—महादजी सिंधिया ने जो उत्तरी भारत को अ अधिकार में करना चाहता था, अंग्रेजों की इन विजयों को देखकर अपने व्यवहार में परिवर्तन किया और उसने अंग्रेजों से सन्धि की बातचीत आरम्भ की। उसने अंग्रे को यह आश्वासन दिया कि वह पूना दरबार से उनकी सन्धि मध्यस्थ बनकर क देगा। अंग्रेज भी सन्धि करना चाहते थे। उनको यह ज्ञात हो गया था कि हैदर और निजाम मरहठों की सहायता के लिए आ रहे हैं। उनको यह भी भय था कि कहीं फ्रांसीसी बेडा भी उनकी सहायता के लिए न आ जाए। सन् १७८२ ई० मरहठों और अंग्रेजों में सालबाई की सन्धि हुई। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अंग्रेजों का सालसट पर अधिकार रहेगा, अंग्रेज राघोबा को सहायता प्रदान न करेंगे, उसको २५,००० रुपये मासिक पेशन दी जायेगी, अंग्रेज उन समस्त प्रदेशों वापिस करेंगे जो उन्होंने इस समय तक जीते थे।

सन्धि के परिणाम—इस सन्धि के कारण अंग्रेजों की प्रतिष्ठा भारत में गई, यद्यपि कम्पनी को बहुत अधिक धन-जन व्यय करना पड़ा और आर्थिक दृष्टि उसको कोई लाभ नहीं हुआ और इसी कारण वारेन हेस्टिंग्ज को कम्पनी की आर्थि स्थिति को उन्नत करने के लिए अन्य उपायों की शरण लेनी पड़ी, जिसके कारण वहुत बदनाम हो गया। इस सन्धि का इतना लाभ अवश्य हुआ की उसकी मि मरहठों से २० वर्ष तक बनी रही और वे अन्य राज्यों की ओर ध्यान देने में

---

[1] "We have already disavowed the connection of Wadgaon. Wou God we could as easily efface the infamy which our national character sustained." —Hasti

हो सके।[1] परन्तु यह स्वीकार करना भूल होगी कि इसने भारत पर अंग्रेजों की प्रभुता स्थापित कर दी। इसके बाद महादजी सिंधिया ने अपनी शक्ति का विस्तार करना आरम्भ किया और वह भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लेने लगा।

हैदराबाद और अंग्रेज

निजामुल्मुल्क की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र निजामअली गद्दी पर बैठा। १२ नवम्बर सन् १७६६ ई० को उसने मरहठों तथा मैसूर से डरकर अंग्रेजों से एक सन्धि की। प्रथम मैसूर-युद्ध के समय में हैदरअली ने उसको अपनी ओर मिला लिया, किन्तु शीघ्र ही उसने सन् १७६७ ई० में पुनः अंग्रेजों से सन्धि की। इसके अनुसार अपनी निजाम को ९ लाख रुपये प्रतिवर्ष कर के रूप में देगी और निजाम उनको उत्तरी सरकार का प्रदेश देगा, किन्तु बाद में गन्टूर निजाम के भाई को दे दिया गया और कर ९ लाख से ७ लाख कर दिया गया। बाद में निजाम ने मरहठों और हैदर-अली से मित्रता स्थापित की, किन्तु हेस्टिंग्ज ने निजाम को गन्टूर का प्रदेश वापस कर अपनी ओर मिला लिया।

सन् १७८२ ई० में अंग्रेजों ने निजाम से गन्टूर का प्रदेश माँगा। सन् १७८८ ई० में उसने उस प्रदेश को अंग्रेजों को दिया और उसने अपने उन प्रदेशों को मैसूर राज्य से वापस लेने के कार्य में सहायता की प्रार्थना की जिन पर मैसूर राज्य ने अधिकार कर लिया था। सन् १७९० ई० को कार्नवालिस ने निजाम को अपनी ओर बना लिया, जिसके कारण वह टीपू के विरुद्ध उसकी सहायता करने को तैयार हुआ, तृतीय युद्ध में निजाम अंग्रेजों की ओर रहा और उसको कृष्णा तथा पन्ना नदी के राज्य के कुछ प्रदेश भी प्राप्त हुए। **सन् १७९५ ई० में मरहठों ने निजाम को खुर्दा नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया।** अंग्रेजों ने निजाम की कोई सहायता नहीं की, जिससे निजाम अंग्रेजों से द्वेष रखने लगा, किन्तु वह बाद में पुनः अंग्रेजों की ओर झुका, क्योंकि उसको हर समय मरहठों और टीपू के आक्रमण का भय बना रहता था।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) प्रथम महरठा युद्ध के क्या कारण थे? प्रमुख मरहठा सरदारों ने उसमें क्या भाग लिया?

(२) हैदरअली का जीवन-चरित्र लिखिए तथा उसकी विदेश-नीति की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

मध्य भारत—

(१) हैदरअली के राज्य-काल में मैसूर की उन्नति का वर्णन करो।

---

[1] "It gave them peace with the Marathas for twenty years and thus left them comparatively free to fight their enemies like Tipu and the French and to bring the Nizam and the Nawab of Oudh under their control."

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) सालबाई की सन्धि (१७८२) पर एक टिप्पणी लिखो।

(२) हैदरअली के जीवन का संक्षेप में वर्णन कीजिए और उसके कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) जिन घटनाओं के कारण प्रथम मरहठा युद्ध हुआ उनका उल्लेख कीजिए तथा सालबाई की सन्धि के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

(२) सैनिक शासन तथा राजनीतिज्ञ के रूप में मैसूर के हैदरअली की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) सालबाई की सन्धि पर एक टिप्पणी लिखो।

(२) सन् १७७५ ई० के १७६७ ई० तक के अंग्रेजों और मरहठों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।

सागर विश्वविद्यालय—

(१) अंग्रेजों को दक्षिण भारत से निकालने के लिए हैदरअली तथा टीपू सुल्तान के प्रयत्नों का उल्लेख करो और उनकी विफलता के कारण बतलाइए।

७ अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार १७९८—१८१८

१७९८ ई० में भारत की राजनीतिक स्थिति

वारेन हेस्टिंग्ज (१७८५) के चले जाने के उपरान्त लार्ड कार्नवालिस (१७८६-१७९३), और सर जॉन शोर (१७९३-१७९८) गवर्नर-जनरल के पद पर आसीन हुए। यह काल कम्पनी के इतिहास में अपेक्षाकृत शान्ति और सुधार का काल था। इसमें अंग्रेजों ने मैसूर-युद्ध के अतिरिक्त किसी अन्य युद्ध में भाग नहीं लिया। इसका कारण यह था कि इस समय के गवर्नर-जनरल **तटस्थता की नीति** (Policy of Nonintervention) में विश्वास करते थे और वे देशी नरेशों के पारस्परिक संघर्षों में किसी प्रकार का भाग नहीं लेना चाहते थे। इस नीति के अपनाने से देशी नरेशों विशेषत: मरहठे और मैसूर-राज्य आदि को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का अवसर प्राप्त हो गया था, किन्तु इसके साथ-साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि उनमें आन्तरिक कलह तथा संघर्षों के कारण विशेष शक्ति शेष न रह गई थी। (i) **निजाम राज्य**—निजाम यद्यपि अंग्रेजों की ओर आकर्षित था और उनसे मित्रता करने का पक्षपाती था, किन्तु सर जॉन शोर (Sir John Shore) की नीति के कारण वह उनसे क्षुब्ध हो गया था और उसने फ्रांसीसियों की सहायता से अपनी सेना का संगठन करना आरम्भ कर दिया था। (ii) **टीपू सुल्तान**—मैसूर का सुल्तान टीपू यद्यपि अंग्रेजों द्वारा मैसूर के तृतीय युद्ध में परास्त हो चुका था, किन्तु वह अंग्रेजों का कट्टर शत्रु बना रहा और अपनी प्रतिष्ठा की पुन: प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील था। उसने कुछ विदेशी राज्यों से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए गठबन्धन करना आरम्भ कर दिया था, किन्तु अंग्रेज उससे अब अधिक भयभीत नहीं थे और वे समझते थे कि मैसूर राज्य को परास्त करना विशेष कठिन कार्य नहीं है। (iii) **मरहठा जाति—इस काल में मरहठों की शक्ति का विकास होना आरम्भ हो गया था।** उन्होंने सन् १७९५ ई० में निजाम को खुर्दा के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया। माधवराव नारायण की मृत्यु के उपरान्त बाजीराव द्वितीय पेशवा बना। वह नाना फड़नवीस से प्रसन्न नहीं था, जिसके कारण मरहठा दरबार षड्यन्त्रों का अखाड़ा बन बन गया। बाजीराव द्वितीय मरहठा-संघ के सरदारों में पारस्परिक झगड़े तथा द्वेष व वैमनस्य के बीज बोता रहता था, जिससे वे सम्मिलित रूप से कार्य करने में असमर्थ होने लगे। **वास्तव में खुर्दा का युद्ध अन्तिम युद्ध था जब मरहठा सरदारों ने पेशवा की अधीनता में रहकर सम्मिलित रूप से कार्य किया।** बाजीराव द्वितीय के पेशवा हो जाने से नाना फड़नवीस का दल शिथिल हो गया और मरहठा-राजनीति में उसके प्रभाव का ह्रास होने लगा था। इसके अतिरिक्त इस समय तक मरहठों के योग्य नेताओं की मृत्यु हो गई थी, और उनके स्थान पर नवयुवकों का आगमन

हुआ जो पेशवा को अपने अधीन तथा उस पर प्रभुत्व स्थापित करने की ओर विशेष रूप से प्रयत्नशील थे। इस दृष्टि से इनमें बड़ा मनमुटाव तथा ईर्ष्या विद्यमान रहती थी। महादजी सिंधिया, मल्हारराव होल्कर तथा तुकोजी होल्कर की मृत्यु के उपरान्त दौलतराव सिंधिया और जसवन्तराव होल्कर के हाथ में शासन-सत्ता आयी, किन्तु उनमें योग्यता का सर्वथा अभाव था। **जब भारत की ऐसी डांवाडोल राजनीतिक परिस्थिति थी तभी २६ अप्रैल सन् १७९८ ई० में लार्ड वैलेजली गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया।** उसको भारतीय समस्या का बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का कमिश्नर होने के कारण पर्याप्त ज्ञान था। वह पूर्ण साम्राज्यवादी था तथा भारतीय नरेशों की वास्तविक स्थिति को भली-भाँति जानता था। उसने भारत की स्थिति को "अत्यन्त गम्भीर" कहा,[1] किन्तु उसने इसके साथ-साथ यह भी बतलाया कि वह विशेष "चिन्ताजनक" नहीं है।

वैलेजली की सहायक-सन्धि

वैलेजली ने इस "अत्यन्त गम्भीर परिस्थिति में कम्पनी के हितों की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझा और उसने अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा तथा उसके विकास के लिए **सहायक-सन्धि** को अपनाया, जिसके द्वारा वह भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव को विशेष रूप से दृढ़ करने में सफल हो पाया तथा जिसने देशी नरेशों को पंगु कर दिया। **इस सन्धि के स्वीकार करने पर कम्पनी जिस देशी नरेश को सैनिक सहायता देने का वचन देती थी उसके बदले में उस नरेश से निश्चित आर्थिक सहायता प्राप्त करता थी।** इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) इस सन्धि को स्वीकार करने वाला देशी राज्य कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार करेगा तथा बिना उसकी अनुमति प्राप्त किए वह किसी अन्य राज्य से युद्ध या सन्धि नहीं कर सकता।

(२) वह किसी अन्य योरोपियन को अपने राज्य में नौकरी पर नहीं रख सकता। किन्तु यदि वह ऐसा करना चाहता है तो उसको कम्पनी से पूर्व अनुमति प्राप्त करनी होगी।

(३) उसको अपने राज्य में अंग्रेजी फौज रखनी होगी जिसका सम्पूर्ण व्यय देशी नरेश को उठाना होगा। वह उसका व्यय धन अथवा अपने राज्य का कोई भाग देकर उठा सकता था।

(४) उसको अपने राज्य में एक अंग्रेज रेजिडेण्ट रखना होगा जिसके परामर्श से वह शासन करेगा।

---

[1] "An imperialist to the tips of his fingers and possessed of experience of Indian affairs as Commissioner of the Board of Control, Wellesley came to guide the destiny of the Company in India at a time when the political situation in this country was "extremely critical; as he himself said; and the Company was exposed to grave dangers, due largely to Shore's policy of neutrality."

—An advanced History of India, P. 699.

(५) उक्त धाराएँ स्वीकार करने वाले राज्य की कम्पनी बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा करेगी अर्थात् कम्पनी ने उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया।

अंग्रेजी सत्ता पर प्रभाव

सहायक-सन्धि के गुण—सहायक-सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई। इसके द्वारा अंग्रेजी राज्य की नींव दृढ़ हो गई और अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होने लगा। वैलेजली ने इस नीति के कारण ही अंग्रेज राष्ट्र तथा भारत में उनके साम्राज्य की महान् सेवा की। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि वारेन हेस्टिंग्ज के जिन कार्यों की कटु आलोचना इंगलैण्ड की संसद में की गई तथा उस पर महाभियोग चलाया गया, वैलेजली के उन्हीं कार्यों के समान कार्यों को आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया। इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

सहायक-सन्धि के गुण

(१) कम्पनी के साधनों में वृद्धि।
(२) सैनिक-व्यय में कमी।
(३) कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित।
(४) देशी राज्यों पर फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त।

(१) कम्पनी के साधनों में वृद्धि—इसके द्वारा कम्पनी के साधनों में बड़ी वृद्धि हुई, जिसके कारण वह भारत में सर्वोच्च सत्ता बन गई। उसका देशी-राज्यों की बाह्य नीति पर पूर्ण नियन्त्रण तथा अधिकार रहने लगा।

(२) सैनिक-व्यय में कमी—सैनिक-व्यय कम हो गया, क्योंकि जो सेना देशी नरेशों के राज्यों में रहती थी उसका सम्पूर्ण व्यय या प्रदेश का कुछ भाग देशी नरेशों को देना पड़ता था। इससे कम्पनी की आर्थिक स्थिति उन्नत हो गई।

(३) कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित—इस अवस्था के अन्तर्गत जिस सेना का निर्माण किया गया वह कम्पनी के राज्य के अन्तर्गत न रहकर देशी राज्यों में रहती थी, जिसके परिणाम-स्वरूप कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित हो गया। युद्ध कम्पनी के राज्य की सीमाओं में न होकर देशी राज्यों की सीमा में होने लगा, जिससे कम्पनी के राज्य में सुख और शान्ति रहने लगी।

(४) देशी राज्य पर फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त—इसके द्वारा देशी राज्यों पर से फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त होने लगा, क्योंकि देशी नरेशों को किसी यूरोपीय की नियुक्ति करने का अधिकार नहीं रहा।

सहायक-सन्धि के दोष—यद्यपि सहायक-सन्धि के कारण कम्पनी को विशेष लाभ पहुँचा, परन्तु देशी नरेशों तथा भारत की जनता के लिए यह विशेष हानिकारक सिद्ध हुई। इसके मुख्य दोष निम्नलिखित हैं—

(१) देशी नरेशों का पंगु होना—इसके द्वारा देशी नरेश पंगु बन गए। उनका अपने राज्य की बाह्य नीति पर कोई अधिकार नहीं रहा। वे न तो किसी से युद्ध कर सकते थे और न सन्धि ही।

सहायक-सन्धि के दोष

- (१) देशी नरेशों का पंगु होना।
- (२) आर्थिक हानि।
- (३) जनता को कष्ट।
- (४) देशी नरेशों का राज्य कार्य से उदासीन होना।

(२) **आर्थिक हानि**—कम्पनी की सेना के व्यय के लिए देशी नरेशों को बहुत अधिक धन देना पड़ता था जिसने उनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब कर दी।

(३) **जनता को कष्ट**—देशी नरेशों की आर्थिक अवस्था शोचनीय होने के कारण जनता को अधिक करों का भार उठाना पड़ा, जिससे जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

(४) **देशी नरेशों का राज्य-कार्य से उदासीन होना**—देशी नरेश निकम्मे तथा अयोग्य रहने लगे जिसके कारण उन्होंने उचित शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। **वे कम्पनी पर पूर्णतया निर्भर रहने लगे, क्योंकि कम्पनी ने उनको वचन दे दिया था कि वे उनकी वाह्य आक्रमण से रक्षा करेंगे।** वे शासन-कार्य से उदासीन होकर अपना समय भोग-विलास में व्यतीत करने लगे और कम्पनी को उनके राज्य हड़प करने का अवसर प्राप्त हो गया। आगे आने वाले शासकों ने देशी नरेशों की इस दुर्बलता का लाभ उठाया और अंग्रेजी साम्राज्य में उनके राज्यों को विलीन किया।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि सहायक-सन्धि की प्रथा नई नहीं थी और न यह वैलेजली के मस्तिष्क की उपज ही थी। इससे पूर्व भी **अंग्रेजों ने इसका प्रयोग अवध के साथ करना आरम्भ कर दिया था। डूप्ले ने भी इसके अनुसार कार्य किया। रानाडे** का कथन है कि "सहायक-सन्धि मरहठों द्वारा चलाई हुई सारदेशमुखी और चौथ का सुसंगठित रूप है। सारदेशमुखी और चौथ देने वाले प्रदेशों पर मरहठे आक्रमण नहीं करते थे और अन्य आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करते थे।" इतना होते हुए भी यह तो स्वीकार करना होगा कि लार्ड वैलेजली ने इसको अपनी भारतीय नीति का प्रधान अङ्ग बनाकर व्यापक रूप से प्रयोग किया।

वैलेजली और निजाम

दक्षिण के राज्यों में हैदराबाद का निजाम सबसे दुर्बल था तथा उसकी स्थिति विशेष असन्तोषजनक थी। उनको प्रत्येक समय मरहठों और मैसूर के राज्य का भय बना रहता था तथा उसकी आन्तरिक स्थिति भी दृढ़ नहीं थी, क्योंकि उसके राज्य में अधिकांश जनता हिन्दू थी। उसको इस परिस्थिति से बाध्य होकर किसी न किसी वाह्य शक्ति का सहारा अवश्य लेना पड़ता था। प्रारम्भ में उसने फ्रांसीसियों की शरण ली, किन्तु जब उसकी शक्ति का पतन होने लगा तो वह अङ्गरेजों की ओर आकृष्ट हुआ, किन्तु वह अन्य शक्तियों के भय के कारण निश्चित नीति का अनुकरण कभी भी नहीं कर सका। कभी यह मैसूर से तथा कभी मरहठों से मिल जाता था। तृतीय मैसूर युद्ध में वह अङ्गरेजों की ओर था। उसने उनको सक्रिय सहायता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप उसको मैसूर राज्य के कुछ प्रदेश प्राप्त हुए, किन्तु वह

ही समय पश्चात् कम्पनी की तटस्थ नीति के कारण उनका शत्रु बन गया, जब कम्पनी ने मरहठों के विरुद्ध उसकी सहायता नहीं की और खुर्दा के युद्ध (सन् १७९५ ई०) में उसको मरहठों द्वारा बुरी तरह परास्त होना पड़ा। इसके बाद उसने अपनी सेना का संगठन फ्रांसीसियों के द्वारा करवाना आरम्भ किया और अङ्गरेज सैनिकों को अपने यहाँ से निकाल दिया। इस समय फ्रांस की क्रान्ति का समय था जब नैपोलियन का आतंक यूरोप में छाया हुआ था। इस परिस्थिति को वैलेजली जैसा साम्राज्यवादी गवर्नर-जनरल किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता था। उसने शीघ्र ही निश्चय किया कि निजाम के राज्य से फ्रांसीसी प्रभाव का शीघ्र अन्त कर वहाँ पर अङ्गरेजी प्रभुत्व शीघ्र स्थापित किया जाए।

आलीजाह का विद्रोह—इसी समय वैलेजली को निजाम पर अपना अधिकार स्थापित करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया। निजाम के पुत्र आलीजाह ने सन् १७९७ ई० में अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। अंग्रेजों ने निजाम की आलीजाह के विद्रोह के विरुद्ध सहायता की। अङ्गरेजों ने निजाम के एक मन्त्री मीरआलम को अपनी ओर मिला लिया और उसके द्वारा उन्होंने निजाम से वार्ता आरम्भ की जिसके परिणामस्वरूप सन् १७९८ ई० में निजाम तथा अङ्गरेजों के मध्य एक सन्धि हुई।

सन्धि की शर्तें—इस सन्धि की मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) निजाम को अपने राज्य में ६ बटालियन स्थायी रूप से रखने होंगे। उनका २४ लाख रुपए वार्षिक व्यय निजाम को देना होगा।

(२) निजाम को फ्रांसीसी सेना अपने राज्य से अलग करनी होगी।

(३) अङ्गरेज, निजाम और मरहठों के बीच मध्यस्थ का काम करेंगे।

सन् १८०० ई० को अंग्रेजों और निजाम के बीच सन्धि—निजाम ने मैसूर के चतुर्थ युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की, जिसके उपलक्ष में उसको मैसूर राज्य का कुछ प्रदेश प्राप्त हुआ। १८०० ई० के अक्टूबर मास में अंग्रेजों और निजाम के बीच एक सन्धि हुई, जिसके द्वारा निजाम समता के स्तर से नीचे गिर कर अधीनता के स्तर पर आ गया। इस सन्धि के अनुसार निजाम के राज्य में अंग्रेजी सेना की वृद्धि हुई और निजाम ने इस सेना के व्यय के लिए अपने राज्य के वे प्रदेश अंग्रेजों को दे दिए जो उसको १७९२ और १७९८ के मैसूर युद्धों के उपरान्त प्राप्त हुए थे। इसके अतिरिक्त निजाम ने यह वचन दिया कि वह अंग्रेजों की सम्मति प्राप्त किए बिना किसी विदेशी सत्ता से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा। अंग्रेजों ने अन्य राज्यों के झगड़ों तथा संघर्षों का अन्त करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। सन् १८०३ ई० में निजामअली की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी सिकन्दरशाह ने पूर्व निजाम द्वारा अंग्रेजों के साथ हुई समस्त सन्धियों तथा शर्तों को दोहराया।

सन्धि का परिणाम—इस प्रकार इस सन्धि द्वारा निजाम ने सहायक-सन्धि स्वीकार की और वह अंग्रेजों का आश्रित हो गया। इसके निम्नलिखित परिणाम हुए—

सन्धि का परिणाम
(१) अंग्रेजों की स्थिति का दृढ़ होना।
(२) निजाम की शोचनीय आन्तरिक दशा।

(१) अंग्रेजों की स्थिति निजाम तथा मरहठों के विरुद्ध दृढ़ हो गई— निजाम-राज्य में स्थित सेना का प्रयोग शीघ्रता तथा सरलता से निजाम और मरहठों के विरुद्ध किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त अब यह भी सम्भावना समाप्त हो गई कि निजाम और मरहठे तथा निजाम और मैसूर मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रमण करेंगे।

(२) निजाम की शोचनीय आन्तरिक दशा—इस सन्धि के द्वारा यद्यपि निजाम की बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा का भार अंग्रेजों पर आ गया, किन्तु उसकी आन्तरिक स्थिति का सुधार न हो पाया। **आन्तरिक शासन शिथिल होता चला गया और वहाँ की स्थिति खराब होती चली गई।** वैलेजली के भाई आर्थर वैलजली ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है—'इस देश में कोई कानून नहीं है, कोई सरकार नहीं है। हथियारबन्द सेना की सुरक्षा के बिना कोई निवासी न खेती कर सकता है और न करेगा। पेशवा तथा निजाम के देशों की स्थिति का सामान्यत: यही चित्र है।'[1]

अंग्रेजों और निजाम के बीच व्यापारिक सन्धि—इसके उपरान्त १८०२ ई० में अंग्रेजों और निजाम के बीच एक व्यापारिक सन्धि हुई **जिसके अनुसार कम्पनी को अधिकार प्राप्त हुआ कि वह निजाम के राज्य में व्यापार करने के लिए आवश्यक सुधार कर सके।** सन् १८०३ ई० में नये निजाम सिकन्दरशाह ने समस्त सन्धियों को स्वीकार कर लिया। सन् १८२२ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज ने निजाम से एक सन्धि की जिसके अनुसार हैदराबाद की सीमाएँ निश्चित कर दी गईं और वह उस रकम से मुक्त कर दिया गया जो उसकी ओर पेशवा के वार्षिक करके मद्दे निकलती थी।

वैलेजली और मैसूर

निजाम के उपरान्त वैलेजली का ध्यान मैसूर राज्य की ओर आकर्षित हुआ। तृतीय मैसूर-युद्ध ने टीपू की शक्ति बहुत कम कर दी थी[2] और दोनों में सन्धि भी हो गई थी, किन्तु टीपू अंग्रेजों का शत्रु बना रहा और वह अपनी पराजय को भुला नहीं था। वह अंग्रेजों से अपनी पराजय का बदला लेना चाहता था। उसने **फ्रांसीसियों को अपनी सेना में भर्ती करना तथा उनके सहयोग से अपनी सेना का संगठन करना आरम्भ कर दिया था।** उसने आन्तरिक स्थिति को उन्नत करने का घोर प्रयत्न किया।[3] इसके उपरान्त उसने फ्रांस की सरकार से सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ किया, जिनका योरोप में अंग्रेजों से बड़ा संघर्ष चल रहा था। वह

---

[1] "In this country there is no law, no civil government – no inhabitant can or will remain to cultivate unless he is protected by an armed force stationed in his village. This is the outline of the state of the countries of the Peshwa and the Nizam."
—Arthur Wellesley.

[2] "We have effectively crippled our enemy, without making our friends too formidable."
—Cornwallis.

[3] "Instead of sinking under his misfortunes, he exerted all his activity

फ्रांस के जैकोबिन दल का सदस्य बन गया और उसने अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम में फ्रांसीसियों को "**प्रेम तथा सहयोग**" का आश्वासन देकर "**स्वतन्त्रता के वृक्ष**" का बीजारोपण करने की अनुमति प्रदान की। सन् १७९८ ई० में कुछ फ्रांसीसी टीपू की सहायता के अभिप्राय से मंगलौर आए। उसने काबुल, कुस्तुनतुनिया, अरब तथा मॉरीशस में भी अपने दूत भेजे और उसने प्रार्थना की कि वे उसको अंग्रेजों को भारत से निकालने में सहायता प्रदान करें।

वैलेजली का निश्चय—वैलेजली ने भारत आने पर परिस्थिति का शीघ्र ही अध्ययन कर लिया और वह इस निश्चय पर पहुँचा कि युद्ध अवश्यम्भावी है। उसने १२ अगस्त सन् १७९८ ई० के पत्र में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए—

"टीपू के राजदूतों के कार्य, जिसको उसने स्वयं पक्का किया तथा भारत में फ्रांसीसियों की सेना के आगमन से प्रकट होता है कि यह खुले व स्पष्ट शब्दों में युद्ध की चेतावनी है। इस युद्ध का उद्देश्य न तो राज्य-विस्तार है, न क्षति-पूर्ति है और न सुरक्षा ही है, वरन् इसका उद्देश्य भारत से ब्रिटिश-सरकार का पूर्णतया अन्त तथा विनाश है—स्थिति बड़ी भयकर है। इस प्रकार के अपमान तथा हानि का गलत अर्थ समझने का तात्पर्य होगा भय या दुर्बलता की भावना।"[1]

मैसूर का चौथा युद्ध

वैलेजली ने युद्ध की तैयारी करना आरम्भ किया। इससे पूर्व कि वह युद्ध की घोषणा करे उसने निजाम और मरहठों को अपनी ओर मिला लिया था कि कहीं वे टीपू के समर्थक बनकर अंग्रेजों का विरोध न करने लगें। उसने निजाम के साथ एक सन्धि की जिसका वर्णन उक्त पंक्तियों में किया जा चुका है। उसने मरहठों को यह कहकर अपनी ओर मिलाया कि विजय के उपरान्त उनको मैसूर के कुछ प्रदेश प्रदान किए जाएँगे।

अंग्रेजों का मैसूर पर आक्रमण—फरवरी सन् १७९९ ई० में अंग्रेजों की सेना ने टीपू ने विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। अंग्रेजों की सेना ने दो ओर से मैसूर पर आक्रमण किया। एक ओर की सेना का सेनापति **हैरिस था** और दूसरी ओर का गवर्नर-जनरल का भाई **आर्थर वैलेजली** था। **टीपू ने अंग्रेजी सेनाओं का बड़ी वीरता तथा अदम्य उत्साह से सामना किया, किन्तु सदासीर तथा मलवली नामक स्थानों पर वह परास्त**

---

to repair the ravages of war. He began to add to the fortifications of his capital—to remount his cavalry—to punish his refractory tributaries and to encourage the cultivation of his country, which was soon restored to its former prosperity."

—**Malcolm.**

[1] "The act of Tippo's ambassadors, ratified by himself and accompanied by the landing of a Frenchforce in his country, is a public, unqualified and unambiguous declaration of war aggravated by an avowal that the object of the war is neither expansion, reparation, nor security but the total destruction of the British, Government in India. To attempt to misundrstand an insult and injury of such a complexion would arouse a conciousness either of weakness or fear."

—**Minute of 12th August, 1798—Lord Wellesley.**

हुआ। इसके पश्चात अंग्रेजों ने टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टम का घेरा डाला। आपत्ति-काल में भी टीपू तनिक विचलित नहीं हुआ, वरन् उसने अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ अंग्रेजों का डटकर सामना किया, किन्तु अपनी राजधानी की रक्षा करते हुए वह वीरगति को प्राप्त हुआ। मैसूर पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इस प्रकार मैसूर में तैंतीस वर्ष पूर्व जिस मुस्लिम सत्ता का उदय हैदरअली के नेतृत्व में हुआ था उसका अन्त हो गया और उसके साथ-साथ मैसूर-आंग्ल संघर्ष भी समाप्त हुआ।

मैसूर राज्य का विभाजन— इस युद्ध में विजयी होने के बाद मैसूर का बंटवारा अंग्रेजों, निजाम और मरहठों में इस प्रकार हुआ—

(१) अंगेजों को कनारा, कोयम्बटूर, दारोपुरम् और श्रीरंगपट्टम के प्रदेश मिले।

(२) निजाम को गूटी, गुरुमकोण्ड और चित्तलदुर्ग के कुछ प्रदेश मिले।

(३) मरहठों को उत्तर-पश्चिम के प्रदेश दिए गए, किन्तु उन्होंने उनको लेने से इन्कार कर दिया। उन भागों को भी अंग्रेजों और निजाम ने आपस में बांट लिया।

(४) शेष मैसूर-राज्य पुराने हिन्दू-राजवंश के एक अल्प-व्यस्क बालक को दे दिया गया।

नए राजा से सन्धि—मैसूर राज्य का विभाजन कर अंग्रेजों ने नए राजा से एक सन्धि की जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) राज्य की सुरक्षा के लिए एक अंग्रेजी सेना रखनी होगी।

(२) उसके व्यय के लिए राजा को ७ लाख पैगोडा (दक्षिण भारत की प्रचलित मुद्रा) प्रतिवर्ष देनी होगी।

(३) आवश्यकता पड़ने पर उसको अंग्रेजों की सहायता करनी होगी।

(४) कुप्रबन्ध होने पर कम्पनी शासन में हस्तक्षेप कर सकती है तथा उसके राज्य पर भी अधिकार कर सकती है।

(५) राजा ने वचन दिया कि वह न तो किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकरी देगा और न किसी विदेशी शक्ति से पत्र-व्यवहार करेगा।

परिणाम—यद्यपि चौथा मैसूर-युद्ध अधिक काल तक नहीं चला, किन्तु यह एक निर्णायक युद्ध था। उसके परिणाम इस प्रकार हुए—

(i) यह युद्ध बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसके द्वारा अंग्रेजों के एक घोर शत्रु टीपू का अन्त हुआ।

(ii) मैसूर-राज्य छोटा कर दिया गया जिससे वह कभी भी इतना शक्तिशाली न बन सके कि वह अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा हो सके।

(iii) मैसूर की आर्थिक तथा सैनिक शक्ति पर भी अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

वास्तव में नये राजा से की गई सन्धि ने मैसूर राज्य को बिलकुल पंगु बना

दिया और वह पूर्णतया अंग्रेजों के शिकंजे में जकड़ा गया। **डीन हट्टन** ने सत्य ही कहा है कि सामाजिक, आर्थिक शान्ति स्थापना-सम्बन्धी व्यवस्था के दृष्टिकोण से क्लाइव के बाद मैसूर-विजय ब्रिटिश शक्ति की शानदार सफलता है।"[1] इस सम्बन्ध में स्वयं वैलेजली ने लिखा है कि "यह घटना वास्तव में चमत्कारपूर्ण यशस्वी और मेरी बड़ी से बड़ी आशापूर्ण सम्भावनाओं में वास्तविक रूप में अधिक लाभदायक है।"[2] इस सम्बन्ध में थोर्नटन का विचार है कि "मैसूर राज्य को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित न कर बुद्धिमतापूर्ण कार्य किया गया। ऐसी व्यवस्था कर (अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित कर) उसने कम बुद्धिमानी का काम नहीं किया।"[3]

वैलेजली के कार्य का मूल्यांकन—उसके इस कार्य की बड़ी प्रशंसा की गई। उसको मार्विवस ऑफ वैलेजली की उपाधि प्रदान की गई और जनरल हेरिस को बेरन के पद से सुशोभित किया गया। वास्तव में इससे अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। इसके कारण कम्पनी का अधिकार अरब सागर से बंगाल तक के प्रदेश में स्थापित हो गया। मैसूर राज्य के चारों ओर का प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इससे कम्पनी की राजनीतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उसके अधिकार में एक ऐसा राज्य आ गया जो धन-धान्यपूर्ण था तथा जिसका प्रयोग अन्य क्षेत्रों में किया जा सकता था।

टीपू का चरित्र और उसका मूल्यांकन

टीपू भारतीय इतिहास का एक महान् व्यक्ति था। वह अंग्रेज जाति का कट्टर शत्रु था और अपने पिता के समान वह भी उनको भारत से निकालने के लिए कटिबन्ध था। अंग्रेज उससे सदा भयभीत तथा सशंकित रहते थे। वे उसको सदा भय, शंका तथा घृणा की दृष्टि से देखते थे। इस भावना के अन्तर्गत उन्होंने उसके चरित्र का बड़ा कलुषित चित्रण किया है। **किर्क पैट्रिक** ने उसको निर्दयी तथा अत्याचारी शासक कहा है। "उसका दृष्टिकोण बड़ा कुंठित और बर्बर था। हैदरअली ने जिस राज्य को श्रम तथा शौर्य से स्थापित किया टीपू ने उसी राज्य को अपनी अदूरदर्शिता, अनीतिज्ञता के कारण समाप्त कर डाला।" इसके विपरीत कुछ निष्पक्ष अंग्रेजों ने टीपू के चरित्र का उचित रूप से चित्रण किया। उनके अनुसार, "टीपू का राज्य खूब घना बसा हुआ था, उसके उर्वर प्रदेशों में अच्छी खेती होती थी। मैसूर राज्य की सेना का अनुशासन तथा राजभक्ति प्रशंसनीय थी। यद्यपि टीपू कठोर तथा स्वेच्छाचारी शासक था तथापि वह अपनी प्रजा के दुःख-सुख का ध्यान रखता था। उसका राज्य सुख-सम्पन्न था, व्यापार की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही थी, बड़े नगरों की

---

[1] "As a military, financial and pacificatory settlement the conquest of Mysore was the mostbrilliant success of the British power since the day of Clive."
—**Dean Hutton.**

[2] "The event is indeed brilliant, glorious and substantialiy advantageous beyond my most sanguine expectations."
—**Wellesley.**

[3] "Mortington acted wisely not making Mysore ostensibly a British possession. He acted no less wisely in making it substantially so." —**Thornton.**

संख्या बढ़ रही थी और प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने व्यापारिक कार्यों को करती थी।"

टीपू के गुण—उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि (१) वह बर्बर, **निर्दयी तथा कठोर शासक नहीं था।** उसका व्यवहार उसकी प्रजा के साथ अच्छा था और वह सदा उनके हितों की ओर ध्यान देता था। उसका व्यवहार अपने शत्रुओं के प्रति अवश्य कठोर था, क्योंकि अङ्गरेज उसके शत्रु थे इसलिए उसका अङ्गरेजों के साथ कठोर व्यवहार था। वह उनका तनिक भी विश्वास नहीं करता था। (२) वह **वीर तथा उत्साही सैनिक था।** वह भयंकर परिस्थितियों में भी कभी विचलित नहीं होता था। (३) यद्यपि वह स्वयं इस्लाम धर्म का अनुयायी था, किन्तु हिन्दुओं **के साथ उसका व्यवहार सदा प्रशंसनीय रहा।** उसने बहुत-से मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने के लिए धन दिया तथा हिन्दुओं को उच्च-पदों पर आसीन किया। (४) वह **अंग्रेज कूटनीतिज्ञता से भली-भांति अवगत था** और उसने सदा अपने राज्य की उनसे रक्षा करने का प्रयत्न किया तथा उनको भारत मे निकालने के लिए वह जीवन-भर प्रयत्नशील रहा। (५) उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के अभिप्राय से विदेशी **शक्तियों की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की।** यदि समय पर उसको फ्रांस आदि से सहायता प्राप्त हो जाती तो अवश्य ही वह अपने उद्देश्यों में सफल हो जाता। अन्त मे अपने देश की रक्षा करने में उसने अपने जीवन का बलिदान ही कर दिया।

टीपू के गुण

(१) बर्बर, निर्दयी तथा कठोर शासक नहीं था।
(२) वीर तथा उत्साही सैनिक।
(३) हिन्दुओं के साथ प्रशंसनीय व्यवहार।
(४) अंग्रेज कूटनीति का ज्ञाता।
(५) विदेशी शक्तियों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न।

टीपू के दोष—यह स्वीकार करना होगा कि टीपू के कुछ दोष भी थे जिनके कारण वह सफल नहीं हो सका। वह अपने पिता के समान (१) **दूरदर्शी नहीं था और न उसमें उसके समान व्यावहारिक कौशल ही था।** (२) वह बड़ा **स्पष्ट वक्ता था।** वह अपनी योजनाओं को गुप्त नहीं रख सका। (३) उसने एक **ऐसी विदेशी शक्ति का सहारा** लिया जिसका प्रभाव भारत से प्रायः लुप्त हो चुका था। यदि वह मरहठों तथा निजाम को अपनी ओर मिलाकर सम्मिलित रूप से अङ्गरेजों की शक्ति तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होता तो सम्भवतः उसको सफलता प्राप्त हो जाती, किन्तु उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। नैपोलियन की मि पराजय ने उसकी समस्त योजना पर पानी फेर दिया। वास्तव में उस समय अंग्रेजों का भाग्य ऊँचा होने लगा था और भारतीयों का भाग्य खराब हो गया था, अन्यथा यदि तनिक भी राष्ट्रीयता की भावना का उदय उस समय हो जाता तो भारत का

टीपू के दोष

(१) दूरदर्शी तथा व्यावहारिक कौशल का अभाव।
(२) स्पष्ट वक्ता।
(३) विदेशी शक्ति का सहारा।

इतिहास ही पूर्णतया बदल जाता। **फिर भी, टीपू की गणना भारत की स्वतन्त्रता के पुजारी के रूप में करनी चाहिए।** उसने अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया।

वैलेजली और कर्नाटक—जिस समय वैलेजली गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया उस समय कर्नाटक में दोहरी शासन-व्यवस्था थी। वहाँ एक अंग्रेजी सेना रहती थी, जिसके व्यय के लिए कर्नाटक का नवाब कम्पनी को प्रतिवर्ष ३० लाख रुपया देता था। कम्पनी की ओर से कुछ जिलों में मालगुजारी वसूल की जाती थी। इस दोहरी शासन-व्यवस्था के कारण जनता को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। वैलेजली इस नीति से सन्तुष्ट नहीं था। उसने शीघ्र ही इस व्यवस्था का अन्त करने का निश्चय किया और उसको ऐसा करने का वहाना भी मिल गया। टीपू की पराजय के उपरान्त श्रीरंगपट्टम से कुछ ऐसे पत्र प्राप्त हुए जिनके आधार पर यह निश्चित हो गया कि टीपू और कर्नाटक के नवाब के मध्य कुछ पत्र व्यवहार हुआ जिसके द्वारा कर्नाटक का नवाब उस षड्यन्त्र में सम्मिलित था जिसे टीपू अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए कर रहा था। कर्नाटक का नवाब १५ जुलाई, सन् १८०१ ई० को मर गया। उसी समय वैलेजली ने घोषणा की कि नवाब ने टीपू के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित होकर अपने आपको जनता का शत्रु बनाया, जिससे उसका राज्य पर से अधिकार का अन्त हो गया। इस प्रकार वैलेजली ने कर्नाटक के नवाव के पुत्र को राज्यसिहासन से वंचित कर उसके भतीजे आजमुद्दौला को कर्नाटक का नवाब घोषित किया और शीघ्र ही उसके साथ एक सन्धि की, जिसके अनुसार शासन का समस्त अधिकार कम्पनी के हाथ में आ गया और नवाव को आय का पाँचवा भाग पेंशन के रूप में दिया जाने लगा।

इस प्रकार वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का कर्नाटक शिकार बना। **यद्यपि दोहरे प्रबन्ध का अन्त कर वैलेजली ने बहुत अच्छा किया, किन्तु जिस नीति का उसने अनुकरण किया वह निन्दनीय तथा आपत्तिनक थी, क्योंकि उसने वास्तविक गद्दी के उत्तराधिकारी को वंचित कर नवाब के भतीजे को नवाबी के पद पर आसीन किया।**

वैलेजली ने कर्नाटक से दोहरे-प्रबन्ध का अन्त कर कहा कि **'बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के उपरान्त यह सबसे उपयोगी तथा लाभप्रद कार्य था'**[1] कुछ अङ्गरेज इतिहासकारों ने उसके इस कार्य का समर्थन किया, किन्तु मिल ने उसके इस कार्य की आलोचना की। उसने यह सिद्ध किया कि 'कर्नाटक के नवाब ने कभी भी टीपू से अंग्रेजों के विरुद्ध पत्र-व्यवहार नहीं किया। कर्नाटक पर अधिकार करने के लिए यह वैलेजली का केवल एक भूठा बहाना था। यदि वैलेजली को कर्नाटक पर अधिकार करना था तो उसको अपना उद्देश्य स्पष्ट करना चाहिए था और सीधे उपायों से कर्नाटक पर अधिकार करना चाहिए था।'

---

[1] "Perhaps that most salutary and usefull measure which has been adopted since the acquistion of the diwany of Bengal." —Wellesley.

वैलेजली और तंजौर व सूरत—वैलेजली ने तंजौर और सूरत पर भी कम्पनी का अधिकार किया। तंजौर पर मरहठों का अधिकार था। जिस समय वैलेजली भारत आया तो तंजौर में उत्तराधिकारी-सम्बन्धी कार्य चल रहा था। उसने २५ अक्टूबर १७९९ ई० को वहाँ के राजा को सहायक-सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस सन्धि के अनुसार कम्पनी को तंजौर का शासनाधिकार प्राप्त हुआ। वहाँ के राजा को ४० लाख रुपए वार्षिक पेंशन देकर राज्य-कार्य से मुक्त कर दिया गया। सूरत के नवाब के साथ भी ऐसा ही किया गया। सन् १७५९ ई० से कम्पनी के अधिकार में सूरत की रक्षा करने का भार था और शासन के अधिकार वहाँ के नवाब के हाथ में थे। ८ जनवरी सन् १७९९ ई० को वहाँ के नवाब की मृत्यु हो गई। **वैलेजली ने मृतक नवाब के भाई को बाध्य किया कि वह समस्त अधिकार कम्पनी को प्रदान करे।** इस प्रकार वैलेजली ने जबरदस्ती सूरत को कम्पनी के आधीन किया। नवाब को १ लाख रुपया वार्षिक पेंशन के रूप में दिया जाने लगा। मिल ने वैलेजली के इस कार्य को **'सिंहासन निष्कासन का अत्यन्त नियम विरुद्ध कार्य'**[1] बतलाया तथा **बेवरिज ने "समस्त कार्यवाही को अत्याचार तथा अन्यायपूर्ण"**[2] कहा है।

वैलेजली और अवध—अवध की दशा अंग्रेजी हस्तक्षेप के कारण दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी। शासन में चारों ओर भ्रष्टाचार तथा अत्याचार का राज्य फैला हुआ था। वैलेजली की वक्र दृष्टि अवध पर पड़ी, जहाँ वह अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रयोग करना चाहता था, किन्तु ऐसा करने के लिए कोई बहाना अवश्य होना चाहिए था। पर्याप्त समय से अवध का नवाब अंग्रेजों का मित्र था और नियमपूर्वक अंग्रेजों को अवध में स्थित सेना का व्यय देता रहता था। वैलेजली ने यह बहाना किया कि भारत पर जमाँशाह के आक्रमण की आशंका है, इसलिए नवाब को अपनी सेना भंग कर अंग्रेजी दस्तों में वृद्धि करनी चाहिए, जिससे जमाँशाह के आक्रमण को सफलतापूर्वक रोका जा सके। नवाब इस बात के लिए तैयार नहीं हुआ, किन्तु जब वैलेजली द्वारा विशेष रूप से बाधित किया गया तो वह गद्दी का परित्याग करने के लिए तैयार हो गया। वैलेजली नवाब की इच्छा सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु शीघ्र ही उसको ज्ञान हो गया कि नवाब ने अपनी इच्छा बदल दी है तो उसको नवाब पर बड़ा क्रोध आया। उसने शीघ्र ही नवाब को आदेश दिया कि वह अंग्रेजी सेना में वृद्धि करे तथा उसके व्यय के लिए अधिक धन दे। नवाब ने ऐसा करने में आपत्ति प्रगट की, किन्तु वैलेजली ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अन्त में बाध्य होकर १८०१ ई० में नवाब ने अंग्रेजों के साथ सन्धि की।

१८०१ की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें निश्चित हुईं—

(१) अवध की सेना का विघटन कर दिया गया।

---

[1] "The most unceremonious act of dethronement which the English had yet performed, as the victim was the weakest and most obscure." —Mill.

[2] "The whole proceeding was characterised by tyranny and injustice." —Beveridge.

(२) उसको शासन तथा कर वसूल करने के लिए कुछ सेना रखने की अनुमति प्राप्त हुई।

(३) अंग्रेजी फौजी दस्तों की संख्या में वृद्धि की गई।

(४) उसके व्यय के लिए अवध का आधा राज्य अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। इस आधे राज्य में रुहेलखण्ड तथा दक्षिणी दोआब के प्रदेश थे।

(५) अंग्रेज रेजीडेण्ट को अवध के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

१८०१ की सन्धि का महत्व—यह सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी ही महत्व की सिद्ध हुई। इसके द्वारा अवध पर कम्पनी का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। उसके चारों ओर के प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गए। अवध में अंग्रेजी सेना के दस्तों में वृद्धि हो गई जिसके द्वारा कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा सुरक्षित हो गई। अवध की सेना के भंग हो जाने से नवाब शक्तिहीन हो गया और वह पूर्णतया कम्पनी के हाथ की कठपुतली-मात्र रह गया। **ओवेन** के शब्दों में, "इसके द्वारा हमारी सामरिक सीमा की परिशोधन तथा नवाब का प्रादेशिक पृथक्करण केवल बड़ी योजना के भाग ही नहीं थे, वरन् विशेषतः ऐसी संकटमय परिस्थिति में स्वतः इन कार्यों का बहुत अधिक महत्व था।" कुछ इतिहासकारों ने वैलेजली के इस कार्य की बड़ी निन्दा की। **सर एमफ्रेड लॉयल** ने उसकी आलोचना इन शब्दों में की—

"उसने (वैलेजली ने) कम्पनी के हित के सामने अपने अधीनस्थ की भावनाओं तथा स्वार्थों पर कोई ध्यान नहीं दिया और ऐसा करते समय उसने तनिक भी धैर्य, सहिष्णुता या उदारता का प्रदर्शन नहीं किया।"[1]

इस सन्धि से अवध की दशा पहले से भी अधिक दयनीय हो गई। नवाब निश्चिन्त होकर अपना समय आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यतीत करने लगा। चारों ओर भ्रष्टाचार घूसखोरी तथा अनाचार फैल गया। जनता को अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। कम्पनी ने शासन को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यदि इस अन्यायपूर्ण तथा निन्दनीय कार्य के उपरान्त कम्पनी इस ओर अपना ध्यान आकर्षित करती तो भी जनता में असन्तोष की भावना जागृत न होती और जनता को कुछ लाभ प्राप्त होता। अतः अवध को भी वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का शिकार बनना पड़ा।

वैलेजली और मरहठे

मरहठा-संघ की शोचनीय दशा—गत पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है कि जिस समय सन् १७९८ ई० में वैलेजली भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया उस समय मरहठों की दशा शोचनीय होनी आरम्भ हो गई थी। केन्द्रीय शक्ति का ह्रास

---

1. "Wellesley subordinated the feeling and interest of his ally to permanent consideration of British policy in a manner that showed very little patience, forbearance or generosity."
—**Sir Alfred Lyall.**

अयोग्य पेशवाओं तथा महत्वाकांक्षी सरदारों के कारण होना आरम्भ हो गया था। महत्वाकांक्षी मरहठा सरदारों ने अपने अलग-अलग राज्य स्थापित कर अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करना आरम्भ कर दिया था। उनमें पारस्परिक वैमनस्य तथा कलह दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था। **वे स्वयं पेशवा को अपने अधीन करने का प्रयत्न करते थे।** जिस समय तक कूटनीतिज्ञ नाना फडनवीस जीवित रहा उस समय तक वह मरहठों को एकता के सूत्र में बाँधने तथा अङ्गरेजी कूटनीति का कुचक्र रोकने में सफल हुआ, किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त मरहठों में कोई भी ऐसा योग्य व्यक्ति नहीं था जो अङ्गरेजी शक्ति का सामना करने में समर्थ होता।

पूना में अंग्रेजों का कुचक्र—वैलेजली ने भारत आगमन पर पूना स्थित अंग्रेज **रेजीडेण्ट कर्नल पामर** को आदेश दिया कि वह पूना और हैदराबाद के झगड़ों में गवर्नर को पंच बनाने के सम्बन्ध मे बातचीत आरम्भ करे। उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया। दूसरी ओर टीपू पर अन्तिम आक्रमण करने के पूर्व अंग्रेजों ने मरहठों को यह आशा दिलवाई थी कि मैसूर के पतन के उपरान्त विजित प्रदेशों का बँटवारा आपस में कर लिया जाएगा, किन्तु जब अंग्रेजों ने देखा कि विजय निश्चित है और मरहठे टीपू का साथ न देंगे; वे मरहठों की ओर से उदासीन हो गए। मरहठों ने भी ऐसी परिस्थिति देखकर विजित प्रदेशों का जो थोड़ा-सा भाग उनको मिल रहा था उसे लेने से साफ इन्कार कर दिया। इस प्रकार दोनों ओर मालिन्य उत्पन्न होने लगा। **अंग्रेजों ने इसके उपरान्त पूना की राजनीति में अपना कुचक्र** चलाना आरम्भ **कर दिया।** इस समय पेशवा पर दौलतराव सिंधिया का विशेष प्रभाव था। अंग्रेजों ने उसको अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में उन्होंने उसके शत्रुओं को प्रोत्साहन देकर उसका पक्ष निर्बल करने की चेष्टा की। दौलतराव भी इस समय आपत्तियों से घिरा हुआ था। जसवन्तराव होल्कर उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वी था, जो मालवा को रौंद रहा था, जिस पर सिंधिया का अधिकार था। दौलतराव को बाध्य होकर पूना से उत्तर की ओर जाना पड़ा। **मरहठों के दुर्भाग्य से इसी समय कूटनीतिज्ञ नाना फड़नवीस की मृत्यु हुई,** जि **लगभग ५५ वर्ष तक मरहठा-संघ की नौका का संचालन सफलतापूर्वक** किया था।[1]

पेशवा बाजीराव का अंग्रेजों की शरण में आना—नाना फड़नवीस की मृत्यु के उपरान्त पेशवा बाजीराव ने उन परिवारों से बदला लेना आरम्भ किया जिन्होंने उसके या उसके पिता के विरुद्ध कार्य किया था। उसने कुछ ऐसे व्यक्तियों को बन्दीगृह में भी डाल दिया। **बिठोजी होल्कर को हाथी के पाँव से बाँधकर पू के बाजारों में उस समय तक घसीटा गया जिस समय तक उसकी मृत्यु नहीं हुई।** इस अत्याचार ने मरहठा जगत् में सनसनी उत्पन्न कर दी। **जसवन्तराव होल्कर ने जब अपने भाई के वध का समाचार सुना तो वह आग-बबूला हो गया।** उसने पे पूना की शक्ति का अन्त करने का निश्चय किया और शीघ्र ही अपनी सेना लेकर

---

1. "With him departed all the wisdom and moderation of the Mar Government."

—Colonel Pal

ओर चल पड़ा । **उसने २५ अक्टूबर सन् १८०२ ई० को पेशवा और सिंधिया की सम्मिलित सेना को परास्त किया और पूना पर अधिकार कर लिया ।** पेशवा बाजीराव युद्धक्षेत्र से भागा और मांड के दुर्ग में पहुँचकर उसने अङ्गरेजों से शरण माँगी । अङ्गरेज तो इस अवसर की ताक में बैठे ही थे । शीघ्र ही वह जहाज द्वारा बेसीन लाया गया । **'उस जहाज में केवल बाजीराव का शरीर ही नहीं चला गया, वस्तुतः महाराष्ट्र की वह स्वाधीनता भी अंग्रेजों की नौका में लद गई, जिसकी स्थापना छत्रपति शिवाजी ने २०० वर्ष पहले की थी ।'**

बेसीन की सन्धि—यहाँ अङ्गरेजों और पेशवा के मध्य एक सन्धि हुई जो भारत के इतिहास में बेसीन की सन्धि के नाम से विख्यात है । इस सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) दोनों ने एक दूसरे को सैनिक सहायता देने का वचन दिया ।

(२) पेशवा ने अपने राज्य में अङ्गरेजी सेना रखना स्वीकार किया ।

(३) पेशवा ने वचन दिया कि उसके राज्य में कोई भी यूरोपीय अङ्गरेजों की आज्ञा के बिना नहीं रह सकेगा ।

(४) अंग्रेजी सेना के व्यय के लिए पेशवा ने अपने राज्य का कुछ भाग अङ्गरेजों को प्रदान किया जिसकी वार्षिक आय १६ लाख रुपये थी ।

(५) अङ्गरेज पेशवा और निजाम तथा पेशवा और गायकवाड़ के झगड़ों के बीच मध्यस्थ का कार्य करेंगे ।

(६) पेशवा किसी राज्य से अङ्गरेजों की अनुमति प्राप्त किए बिना सन्धि या युद्ध नहीं कर सकता था ।

बेसीन की सन्धि का महत्व—उक्त शर्तों का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि **यह सन्धि उस सन्धि का रूपान्तर है जो निजाम और अंग्रेजों के मध्य हुई थी ।** इसके द्वारा अङ्गरेजों का प्रभुत्व मरहठों के राज्य पर स्थापित हो गया और वह उनका पूर्ण आश्रित बन गया । पेशवा उस समय मरहठों का अध्यक्ष एवं मुगल सम्राट का वकील-उलमुतलक था । उसकी अधीनता का तात्पर्य सम्पूर्ण भारत की अधीनता थी । इस प्रकार से सैद्धान्तिक दृष्टि से अङ्गरेज सम्पूर्ण भारतवर्ष के स्वामी बन गए । डीन हट्टन के शब्दों में, "यह निःसन्देह एक ऐसा कदम था जिसने पश्चिमी भारत में अङ्गरेजी राज्य के आधार को बिलकुल बदल दिया । इसने एक ही क्षण में अङ्गरेजों का उत्तरदायित्व तिगुना कर दिया ।"[1] व्यावहारिक दृष्टि में इस सन्धि का कोई विशेष महत्व नहीं, क्योंकि पेशवा पूर्णतया अशक्त था । **अन्य मरहठा सरदारों ने इस सन्धि को स्वीकार नहीं किया ।** इस सन्धि के सम्बन्ध में लार्ड केसिलरे का कथन है कि "इसके द्वारा अङ्गरेजों को मरहठा साम्राज्य के

---

[1] "It was without question a step which changed entirely the footings on which we stood in Western India. It tribbled the English responsibilities in an instant."

—**Dean Hutton.**

निरन्तर झगड़ों व संघर्षों में पड़ना पड़ा।"[2] **वास्तव में अंग्रेजों** को मरहठों पर अधिकार करने के लिए अभी इन महत्वाकांक्षी सरदारों का दमन करना शेष था।

द्वितीय मरहठा-युद्ध

बेसीन की सन्धि के उपरान्त पेशवा बाजीराव अङ्गरेजी सेना के संरक्षण में १३ मई सन् १८०२ ई० को पूना पहुँचा। होल्कर इस समय पूना में था। जब उसने बाजीराव के आगमन का समाचार सुना तो वह उत्तर की ओर चला गया। दौलतराव **सिंधिया और भौंसले ने जब बेसीन की सन्धि का समाचार सुना तो उसको** बड़ा दुःख **हुआ और उन्होंने सम्मिलित रूप में कार्य करने का निश्चय किया।** वे अपनी सेना नर्मदा के दक्षिण प्रदेश में लिए पड़े थे। उन्होंने जसवन्तराव होल्कर से अपने कार्य में सहायता की प्रार्थना की, किन्तु उसने पारस्परिक वैमनस्य तथा ईर्ष्या के कारण उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इधर अङ्गरेजों ने सिंधिया और भौंसले से सन्धि करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनको निराशा हुई। वे नहीं चाहते थे कि अङ्गरेज हमारे झगड़ों के बीच मध्यस्थ का कार्य करें।

सिंधिया और भौंसले से युद्ध—पेशवा बाजीराव अङ्गरेजों की सहायता से पूना पर अधिकार करने में सफल हुआ, किन्तु शीघ्र ही वह अपनी नवीन दशा से ऊब गया। उसने गुप्त रीति द्वारा सिंधिया और भौंसले का समर्थन करना आरम्भ कर दिया। जब अङ्गरेजों को इस गुप्त मन्त्रणा का ज्ञान हुआ और सिंधिया और भौंसले ने अलग होने से इन्कार कर दिया तो वैंलेजली ने मरहठों की शक्ति का दमन करने का यह सुवर्ण अवसर समझ सिंधिया और भौंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अङ्गरेज युद्ध के लिए पहले से ही तैयार थे जब की मरहठा सरदार बिल्कुल भी तैयार नहीं थे। उन्होंने एक साथ ही उत्तर और दक्षिण भारत में युद्ध करना आरम्भ कर दिया। उत्तर की सेना का नेतृत्व **जरनल लेक** ने और दक्षिण की सेना का नेतृत्व आर्थर **वैंलेजली ने किया। आर्थर वैंलेजली ने शीघ्र ही अहमदनगर पर अधिकार कर सिंधिया और भौंसले की सम्मिलित सेनाओं को असाई नामक स्थान पर परास्त किया।** नवम्बर १८०३ को अङ्गरेजों ने फिर भौंसले को **अरगांव** नामक स्थान पर परास्त किया। उन्होंने ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार किया। बाध्य होकर भौंसले ने हथियार डाल दिए। अङ्गरेजों ने उससे दिसम्बर १८०३ ई० में देवगांव की सन्धि की। इसके परिणामस्वरूप दक्षिण के युद्ध का अन्त हुआ। उत्तर भारत में जनरल लेक को भी पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। अगस्त १८०३ ई० में उसने अलीगढ़ पर अधिकार किया और शीघ्र ही उसका दिल्ली पर अधिकार हो गया। मुगल-सम्राट शाहआलम अङ्गरेजों के संरक्षण में आ गया। अक्टूबर में अङ्गरेजों ने आगरे पर अधिकार किया। इसके उपरान्त अङ्गरेजों और सिंधिया के बीच लासवाड़ी नामक स्थान पर युद्ध हुआ। सिंधिया की सेना ने यद्यपि बड़ी वीरता तथा साहस से अङ्गरेजों का सामना किया, किन्तु उनको परास्त होना पड़ा। ३० दिसम्बर सन् १८०३ ई०

---

[2] "It (The Treaty of Bassein) tended to involve us (the British) in endless and complicated distraction in the Maratha Empire."
—Lord Castlereagh.

में अङ्गरेज और सिंधिया के मध्य **सुर्जी अर्जुनगाँव की सन्धि हुई**। इसके द्वारा अङ्गरेजों का सिंधिया और भौंसले दोनों से युद्ध का अन्त हुआ।

देवगांव की सन्धि—उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि अङ्गरेजों और भौंसले के मध्य दिसम्बर १८०३ ई० में देवगांव की सन्धि हुई। इसके अनुसार भौंसले ने अङ्गरेजों को कटक का प्रदेश दिया। इसके अतिरिक्त उसने अङ्गरेजों को वार्धा नदी के पश्चिम का समस्त प्रदेश भी दिया। भौंसले को अपने दरबार में एक अङ्गरेज रेजीडेण्ट रखना पड़ा। भविष्य में वह किसी योरोपीय व्यक्ति को अपने यहाँ नौकर नहीं रखेगा। आपस में यह भी निश्चय हुआ कि भौंसला, निजाम या पेशवा के बीच के झगड़ों में अङ्गरेज मध्यस्थ का कार्य करेंगे। इस प्रकार इस सन्धि से भौंसले पर अङ्गरेजों का आधिपत्य हो गया।

सुर्जी अर्जुनगांव की सन्धि—यह सन्धि १८०३ ई० को अङ्गरेजों और सिंधिया के मध्य हुई। इसके अनुसार सिंधिया ने गंगा और यमुना के मध्य का समस्त प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया। जयपुर, जोधपुर और गोहाद के उत्तर के प्रदेशों पर से सिंधिया के प्रभाव का अन्त कर दिया गया। पश्चिम में अंग्रेजों को सिंधिया ने अहमदनगर, भड़ौंच आदि प्रदेश दिए। सिंधिया को निजाम, पेशवा तथा मुगल-सम्राट पर से अपने प्रभाव का अन्त करना होगा। उसको अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रखना होगा तथा वह किसी यूरोपीयन को अपने यहाँ स्थान नहीं देगा। बाद में सिंधिया ने सहायक सन्धि को स्वीकार किया, जिनके अनुसार उसकी सीमा के समीप एक अंग्रेजी सेना रहेगी।

सन्धियों का प्रभाव—अंग्रेजों के इतिहास में इन सन्धियों का बड़ा महत्व है—(i) इनके द्वारा मरहठा-सरदारों की शक्ति बहुत कम हो गई। (ii) कम्पनी के राज्य का बड़ा विस्तार हुआ, (iii) उनके अधिकार में मुगल-सम्राट शाहआलम आ गया। (iv) मरहठों की सेना भंग कर दी गई। (v) जोधपुर, जयपुर आदि राजपूत राज्यों पर अंग्रेजों का प्रभाव जम गया और इन्होंने भी सहायक सन्धि को स्वीकार किया। (vi) निजाम और पेशवा पर भी अंग्रेजों का अधिकार दृढ़ हो गया। मुनरो के अनुसार इन सन्धियों द्वारा "हम पूर्णरूप से भारत के स्वामी बन गए हैं। यदि हम इसको सुदृढ़ करने के लिए उचित व्यवस्था की स्थापना करें, तो हमारी शक्ति का किसी भी प्रकार अन्त नहीं हो सकता।"[1] **वैलेजली की यह धारणा थी कि इन सन्धियों द्वारा शान्ति की स्थापना सम्भव है, किन्तु वास्तव में सन्धि की शर्तें इतनी कठोर थीं कि मरहठे अधिक समय तक उनका पालन नहीं कर सके और अंग्रेजों से असन्तुष्ट रहने लगे।**

होल्कर से युद्ध— सन्धियाँ कार्यान्वित भी न होने पाई थीं कि अंग्रेजों और मरहठा सरदार जसवन्तराव होल्कर में अप्रैल १८०४ ई० में युद्ध आरम्भ हो गया। उसने राजपूत राजाओं से चौथ माँगी। ये अङ्गरेजों के संरक्षण में आ गए थे।

---

[1] "We are now complete master of India, and nothing can shake our power, if we take proper measures confirm to it." —Munro.

होल्कर ने कर्नल मॉरिसन के नेतृत्व में अङ्गरेजी सेना को बुरी तरह परास्त किया। उसने भाग कर आगरे में शरण ली, होल्कर अपनी इस विजय से वड़ा उत्साहित हुआ। उसने शीघ्र ही दिल्ली पर आक्रमण किया, किन्तु लैंपिटनेण्ट कर्नल ओक्टर लोनी ने उसको सफल नहीं होने दिया। १३ नवम्बर १८०४ ई० को होल्कर की

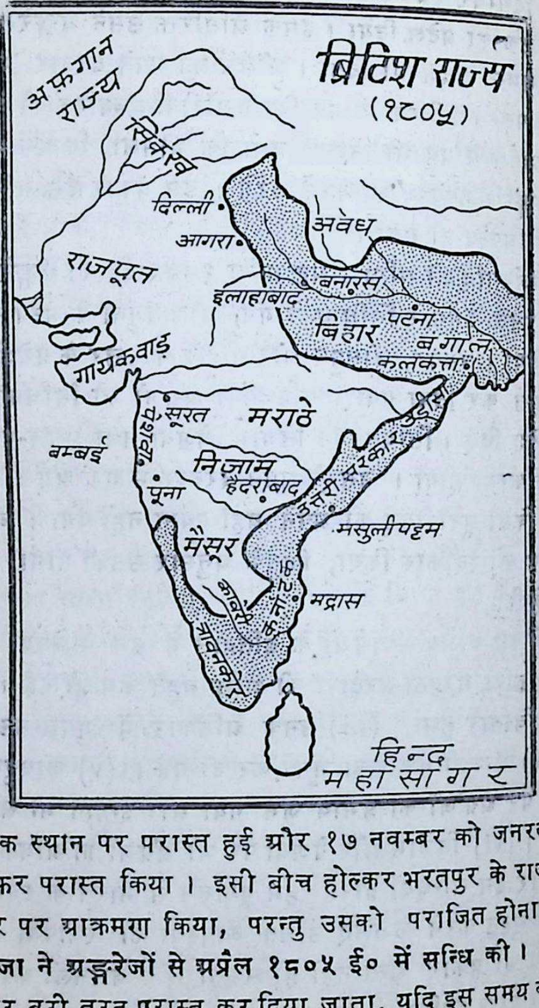
ब्रिटिश राज्य
(१८०५)
अफ़गान राज्य
सिक्ख
दिल्ली
आगरा
अवध
राजपूत
बनारस
इलाहाबाद
बिहार
पटना
बंगाल
कलकत्ता
गायकवाड़
सूरत
मराठे
पेशवा
बम्बई
निज़ाम
हैदराबाद
उत्तरी सरकार
उड़ीसा
पूना
मसुलीपट्टम
मैसूर
कावेरी
कर्नाटक
मद्रास
त्रावनकोर
हिन्द महासागर

सेना डोग नामक स्थान पर परास्त हुई और १७ नवम्बर को जनरल लेक ने होल्कर की सेना को फिर परास्त किया। इसी बीच होल्कर भरतपुर के राजा से मिल गया। लेक ने भरतपुर पर आक्रमण किया, परन्तु उसको पराजित होना पड़ा। अन्त में भरतपुर के राजा ने अङ्गरेजों से अप्रैल १८०५ ई० में सन्धि की। उधर होल्कर भी हारने लगा और बुरी तरह परास्त कर दिया जाता, यदि इस समय वैलेजली इङ्गलैंड वापिस नहीं चला गया होता।

वैलेजली का चरित्र एवं मूल्यांकन— भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य के निर्माताओं में वैलेजली को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वह ब्रिटिश-सत्ता को भारत में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करने के निश्चित उद्देश्य से भारत आया था, जिसमें उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। जिस समय वह भारत आया था गवर्नर-जनरलों की निरहस्तक्षेप की नीति के कारण कम्पनी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। दूसरी ओर फ्रांसीसियों के पुनः प्रभुत्व स्थापित करने का भी भय था। निजाम, टीपू, मरहठे जैसे शक्तिशाली राज्यों

से कम्पनी को अत्यन्त भय था, परन्तु जिस समय वह भारत से वापिस लौटा इन सब संकटों से कम्पनी को मुक्ति प्राप्त हो चुकी थी। निजाम तथा अन्य देशी नरेश सहायक-सन्धि में बद्ध किए जा चुके थे, टीपू का अन्त हो चुका था तथा मरहठा-संघ यद्यपि सर्वथा कुचला नहीं गया था, परन्तु उसका घातक विष समाप्त कर दिया जा चुका था। अनेक विजयों द्वारा कम्पनी के साम्राज्य का वैलेजली ने विस्तार करके कम्पनी को भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में परिणित कर दिया। वैलेजली महान् राजनीतिज्ञ तथा उच्च-कोटि का कूटनीतिज्ञ था। टीपू तथा मरहठों की शक्ति का सामना करने में उसने अपनी पूर्ण कुशलता का परिचय दिया। वह दूरदर्शी था तथा भारत की तत्कालीन परिस्थिति का उसको भली-भाँति ज्ञान था। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उसकी उग्र एवं अग्रगामी नीति के कारण भारतीयों को अत्यधिक हानि हुई तथा उसको अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा। भारतीय राज्यों का विनाश हो गया तथा उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर दिया गया, परन्तु अङ्गरेजों के दृष्टिकोण से वह महान् राजनीतिज्ञ ही माना जाएगा। उसने अपने देश की महान् सेवाएँ की। यद्यपि उसकी अग्रगामी नीति से भयभीत होकर कम्पनी के संचालकों ने उसे वापिस भी बुला लिया तथापि इस नीति से कम्पनी एवं ब्रिटिश साम्राज्य को स्थायी लाभ हुए तथा उसके उत्तराधिकारी गवर्नर-जरनलों ने भी उसकी सहायक-सन्धि की नीति का अनुकरण किया। उसकी सेवाओं के कारण उसकी गणना अङ्गरेजी साम्राज्य के निर्माताओं (Builders of Brititsh Empire) में की जाती है। उसके सम्बन्ध में (Smith) स्मिथ का कथन यह है कि "The Marquess of Wellesley is undoubted be entitled to a place in the front rank of the Governor-Generals by the side of Warren Hastings, Lord Hastings and Lord Dalhousie.........His policy was directed to two main objects. The first was the elevation of the British Government to the position of paramount power in India. The second object was the full utilisation of Indian strength so that it might play a proper part in resistance to the menace of Nepoleon's world-wide ambition, which avowdly aimed at the overthrow of British power in whole of India," अल्फ्रेड लायल (Alfred Lyall) ने उसके सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं—"Wellesley crushed in a single brief campaign the Sultan of Mysore, he disarmed and disbanded the formidable corpsed arms of 14000 sepoys under French officers that was maintained by the Nizam; he took possersion of the Carnatic, annexed half the dominions of Oudh Vizir, forced all the great military states into subjection or subsidiary alliance, and by completely breaking down the power of the Maratha confederacy, he removed the last important obstacle to the accomplishment of our undisputed supremacy......the avowed object of Lord Wellesley had been to enforce peace throughout India and to provide for the permanent security of the British possessions by imposing upon every native state the authoritative superiority of the British Government binding them down forcibly or through friendly engagement to subordinate relations with a paramount power and effectively forestalling any future attempts to challenge our exercise of arbitration or control".

लार्ड कार्नवालिस का पुनः गवर्नर-जनरल होकर भारत आना

लार्ड वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति के कारण कम्पनी का ऋण बहुत बढ़ गया तथा साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हुआ। साम्राज्य इतना विशाल हो गया था कि उसकी उचित व्यवस्था करना साधारण कार्य नहीं था। इसलिए कम्पनी के सचालकों ने वैलेजली को वापिस बुला लिया और उसके स्थान पर लार्ड कार्नवालिस को पुनः गवर्नर-जनरल नियुक्त किया। इस समय उसकी अवस्था ६७ वर्ष की थी। **उसने भारत आगमन पर सिंधिया तथा अन्य मरहठा-सरदारों से नए आधार पर सन्धि करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु वह अपना कार्य भी पूरा नहीं कर पाया था कि अक्टूबर १८०५ ई० में गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया।**

सर जॉर्ज बार्लो

लॉर्ड कार्नवालिस की मृत्यु के उपरान्त गवर्नर-जनरल की कौंसिल का वरिष्ठ सदस्य सर जॉर्ज बार्लो अस्थायी रूप से भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। उसने भी कार्नवालिस के समान तटस्थता की नीति को अपनाया। उसने सिंधिया के साथ नवम्बर १८०५ ई० को एक नवीन सन्धि की, जिसके अनुसार सिंधिया को ग्वालियर का दुर्ग तथा गोहाद वापिस कर दिए गए। अंग्रेजों और सिंधिया के राज्य की सीमा चम्बल नदी निश्चित हुई। अंग्रेजों ने सिंधिया के अधीनस्थ राज्यों-जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ पर से अपना संरक्षण समाप्त कर दिया। सिंधिया को ४ लाख रुपया प्रतिवर्ष पेंशन के रूप में दिया जाने लगा। इसके उपरान्त सर जार्ज बार्लो ने होल्कर के साथ भी एक सन्धि की। पाठकों को याद होगा कि जनरल लेक ने होल्कर को हरा दिया था। २५ दिसम्बर सन् १८०५ ई० को अंग्रेजों और होल्कर के बीच सन्धि हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि चम्बल नदी के उत्तर के प्रदेश पूना तथा बुन्देलखण्ड पर से होल्कर के अधिकार का अन्त हो गया। कम्पनी ने उसके दक्षिण के प्रदेश उसको वापिस कर दिए तथा कम्पनी ने वचन दि कि वह दक्षिण के प्रदेशों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी।

वैलोर का गदर—वैलोर के सेनापति ने वैलोर के सिपाहियों को आदे दिया कि उनको अपने सिरों पर एक नई प्रकार की पगड़ी धारण करनी होगी त वे अपने माथे पर तिलक नहीं लगाएँगे। सिपाहियों ने इस आज्ञा को अपने ध के विरुद्ध समझा। उनमें ऐसी भावना उत्पन्न हुई कि अङ्गरेज उनको धर्म च्युत क चाहते हैं और उनका यह कार्य उनको उनके धर्म से पद-दलित कर देगा।

भावना के अन्तर्गत जुलाई १८०७ ई० को सैनिकों ने विद्रोह कर दुर्ग पर अधिकार किया। बहुत से अङ्गरेजों का वध कर डाला गया। **कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि इस विद्रोह में टीपू के पुत्रों का विशेष हाथ था।** विद्रोह का दमन करने के लिए अर्काट से एक सेना भेजी गई जिसने विद्रोह का दमन शीघ्र ही कर डाला। विद्रोह का अन्त होने पर टीपू के पुत्र वैलोर से कलकत्ता भेज दिए गए।

लार्ड मिण्टो

सन् १८०७ ई० में लार्ड मिण्टों ने सर जॉर्ज बार्लो से गवर्नर-जनरल का कार्य-भार लिया। सर जार्ज वार्लो को मद्रास के गवर्नर के पद पर नियुक्त किया गया। भारत आगमन के पूर्व वह 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' का सदस्य रह चुका था। उसने उसी समय यह निश्चय कर लिया था कि वह तटस्थता की नीति के अनुसार कार्य करेगा। उसके शासन-काल में पर्याप्त शान्ति रही, कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ, किन्तु आवश्यकता के कारण कभी-कभी उसने भी उग्र नीति का अनुकरण किया।

भारत के राज्यों का वर्गीकरण— इस समय भारतवर्ष में तीन प्रकार के राज्य थे। **प्रथम श्रेणी** के अन्तर्गत निजाम, पेशवा, अवध, तथा मैसूर के राज्य थे। इन्होंने सहायक-सन्धि स्वीकार कर रखी थी और अपनी रक्षा के लिए कम्पनी को धन देते थे अथवा उसकी सेना का व्यय देते थे। **द्वितीय श्रेणी** के अन्तर्गत कोटा, बूंदी आदि छोटे राज्य थे जो अङ्गरेजों के संरक्षण में थे, किन्तु आत्म-रक्षा के लिए कम्पनी को धन नहीं देते थे। **तृतीय श्रेणी** के अन्तर्गत सिंधिया, भौंसले तथा होल्कर के वे राज्य थे जिनकी अङ्गरेजों से मित्रता थी। लार्ड मिण्टो ने प्रथम श्रेणी के राज्यों के साथ पूर्ववत् सम्बन्ध रखा अर्थात् वे उनके संरक्षण में पूर्ववत् बने रहे। तृतीय प्रकार के राज्यों से उसने मित्रता रखी, किन्तु वह सदा उनके कार्यों से सदा सचेत रहा।

बुन्देलखण्ड में शान्ति की स्थापना—इस समय बुन्देलखण्ड की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। वहाँ के छोटे राज्यों में बड़ा वैमनस्य फैला हुआ था और वे निरन्तर संघर्ष करते रहते थे। उन्होंने अङ्गरेजों के विरुद्ध भी षड्यन्त्र रचने का प्रयत्न किया, यद्यपि उन पर अङ्गरेजों का संरक्षण था। जब लार्ड मिण्टो को यह समाचार विदित हुआ तो उसने उनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय किया। उसने बुन्देलखण्ड में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना तथा राज्यों पर कम्पनी का आधिपत्य स्थापित करने के उद्देश्य से बुन्देलखण्ड में एक सेना भेजी जिसने शीघ्र ही अजमगढ़ तथा कालिंजर के दुर्गों पर अधिकार किया। इस प्रकार वह बुन्देलखण्ड के प्रदेश पर अङ्गरेजी प्रभाव जमाने में सफल हुआ।

ट्रावनकोर का विद्रोह— ट्रावनकोर के राजा ने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली थी जिसके कारण उस पर अङ्गरेजों का प्रभुत्व था। उसने अङ्गरेजों के चंगुल से निकलने का प्रयत्न किया। वहाँ के दीवान **बेलू तम्पी** के वहाँ के अङ्गरेज रेजीडेण्ट से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। इसके विपरीत अङ्गरेज वहाँ के आन्तरिक मामलों में भी विशेष हस्तक्षेप करने लगे थे, जिसके कारण दीवान का असन्तोष और भी बढ़ गया। उसने जनता से अङ्गरेजों के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रार्थना की। **जनता में विद्रोह**

की भावना उत्पन्न हुई और जनता ने रेजीडेण्ट के भवन पर आक्रमण किया। रेजीडेण्ट अपना भवन छोड़कर भाग गया, किन्तु अन्य बहुत-से अङ्गरेज मारे गए। शीघ्र ही विद्रोह का दमन करने के लिए एक सेना भेजी गई, जिसको विद्रोह के दमन में सफलता प्राप्त हुई। दीवान ने इस समाचार के मिलने पर आत्महत्या की। ट्रावनकोर और कोचीन राज्यों पर अङ्गरेजों ने अधिकार किया।

बाह्य नीति-- लार्ड मिण्टो की बाह्य नीति पर यूरोपीय परिस्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ा। इस समय यूरोप में नैपोलियन अपनी उच्चतम पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। उसने रूस के जार से मित्रता कर भारत पर आक्रमण करने की एक योजना का निर्माण किया था। अतः अंग्रेजों का ध्यान उत्तर-पश्चिम सीमा को सुदृढ़ करने की ओर आकर्षित हुआ। उसने पंजाब, सिन्ध, अफगानिस्तान और फारस के राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की।

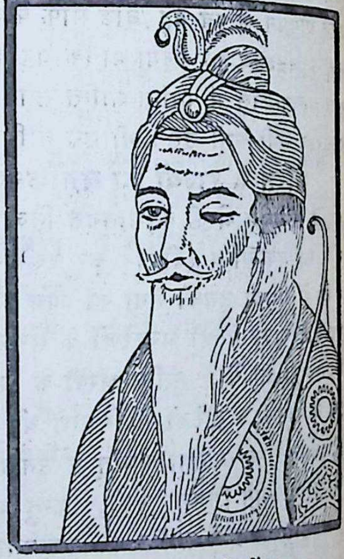

रणजीतसिंह

लार्ड मिण्टो और रणजीतसिंह-- जिस समय लार्ड मिण्टो भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया उस समय तक रणजीतसिंह पंजाब में अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। उसकी राजधानी लाहौर थी। सन् १८०४ ई० में होल्कर अङ्गरेजों से फतहगढ़ के युद्ध में परास्त होकर पंजाब आ गया था। उसने रणजीत सिंह से सन्धि करने का प्रस्ताव किया, किन्तु सलाहकारों के कहने में आकर वह होल्कर से सन्धि न कर सका, क्योंकि ऐसा करने से अङ्गरेजों और सिक्खों में संघर्ष होना अनिवार्य हो जाता। सन् १८०६ ई० में **रणजीतसिंह ने सतलज नदी को पार कर झींद और पटियाला दोनों राज्यों को अपने अधिकार में करने का निश्चय किया।** उसने शीघ्र ही इन दोनों राज्यों को अपने अधिकार में किया। इस प्रदेश के अन्य राज्यों ने अङ्गरेजों से संरक्षण की प्रार्थना की। ये राज्य अंग्रेजों और रणजीतसिंह के राज्य के मध्य में स्थित थे। अंग्रेज भी उनको अपने संरक्षण में करना चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने से ये राज्य अंग्रेज और रणजीतसिंह के राज्य में **मध्यस्थ राज्य** का कार्य कर सकते। इसके अतिरिक्त अङ्गरेजों को यह भी भय था कि इसी मार्ग से रूस का भारत पर आक्रमण सम्भव है। अतः वे पंजाव के राजा रणजीतसिंह को अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे और इनके साथ-साथ इन राज्यों पर संरक्षण भी स्थापित करना चाहते थे। इस कार्य को सम्पन्न करने के अभिप्राय से भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड मिण्टो ने दिल्ली के रेजीडेण्ट **सर चार्ल्स मेटकाफ** को रणजीतसिंह से बातचीत करने के लि

पंजाब जाने का आदेश दिया। रणजीतसिंह ने उससे स्पष्ट कहा कि वह उस समय ही अङ्ग्रेजों से सन्धि कर सकता है जब अङ्ग्रेज सतलज नदी के पूर्व के राज्यों पर उसका आधित्पय स्वीकार कर लें और उसको वचन दें कि वे उसके पूर्व के राज्यों के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे। रणजीतसिंह के इस प्रस्ताव ने लार्ड मिण्टो को असमञ्जस में डाल दिया, क्योंकि वह उसके राज्य की सीमा सतलज नदी तक निश्चित करना चाहता था और पूर्व के राज्यों को वह अंग्रेजों के संरक्षण में लाना चाहता था। उसने अब उग्र नीति का अवलम्बन लेकर एक सेना सतलज नदी के तट पर भेजी। रणजीतसिंह इस सेना के आगमन का समाचार सुनकर कुछ भयभीत हुआ। वह अङ्ग्रेजों से युद्ध करने का पक्षपाती नहीं था। अतः वह शीघ्र ही अङ्ग्रेजों से सन्धि करने के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार अङ्ग्रेज अपनी सैनिक शक्ति के बल पर रणजीतसिंह को सन्धि करने पर बाध्य करने में सफल हुए। अप्रैल सन् १८०९ ई० में अङ्ग्रेज और रणजीतसिंह के बीच **अमृतसर की सन्धि** हुई।

अमृतसर की सन्धि की शर्तें—इस सन्धि के अनुसार रणजीतसिंह और अङ्ग्रेजों में निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) सिक्खों के राज्य की सीमा सतलज नदी निश्चित हो गई।

(२) सतलज नदी के पूर्व के राज्यों पर अङ्ग्रेजों का संरक्षण स्थापित हो गया।

सन्धि की शर्तों द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि अङ्ग्रेजों की मनोकामना पूर्ण हुई। रणजीतसिंह ने अपने जीवन-काल में सन्धि की शर्तों का कभी उल्लंघन नहीं किया। उसने सतलज नदी के पूर्वी राज्यों को अपने प्रभाव-क्षेत्र के बाहर समझा।

लार्ड मिण्टो और फारस—लार्ड मिण्टो ने फारस के शाह को अपने पक्ष में करने का निश्चय किया। इस समय फारस का शाह फ्रांसीसियों का मित्र था और अंग्रेजों को भय था कि कहीं वह फ्रांस और रूस की सहायता से भारत पर आक्रमण न कर दे। अंग्रेज उसको अपना मित्र बनाना चाहते थे। फारस एक दूत भेजा गया, जिसने फारस के शाह से अंग्रेजों के साथ सन्धि करने की प्रार्थना की। १८०९ ई० में अंग्रेजों को फारस के शाह के साथ एक सन्धि हुई जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज आवश्यकता के समय फारस के शाह को सैनिक सहायता प्रदान करेंगे और फारस का शाह उसके बदले में अंग्रेजों के शत्रुओं को अपने राज्य से बाहर निकाल देगा तथा फ्रांस और रूस की सेनाओं को भारत पर आक्रमण करने के लिए अपने राज्य से मार्ग नहीं देगा।

लार्ड मिण्टो और अफगानिस्तान—इसी उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए १८०९ ई० में लार्ड मिण्टो ने **एलफिंस्टन** को काबुल के अमीर से बातचीत करने के लिए भेजा। वह वहाँ के **अमीर शाहशुजा** से सन्धि करने में सफल हुआ। यह सन्धि अधिक समय तक स्थायी न रह सकी, क्योंकि आन्तरिक संघर्ष के कारण शाहशुजा को अफगानिस्तान से भागना पड़ा।

लार्ड हेस्टिंग्ज

लार्ड मिण्टो के उपरान्त सन् १८१३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज भारत का गवर्नर-जनरल हुआ। उसने वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति की इगलैण्ड में बड़ी आलोचना की थी। वह तटस्थता की नीति का समर्थक था, किन्तु भारत आगमन पर भारत की परिस्थिति का अध्ययन कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उसको भी भारत में वैलेजली की नीति का ही अनुकरण करना होगा, क्योंकि जिन मरहठा सरदारों को वैलेजली ने परास्त किया था उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया था, क्योंकि वैलेजली के बाद के गवर्नर-जनरलों ने तटस्थता की नीति को अपनाया था, जिसके कारण उनको अपनी शक्ति के विस्तार का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो चुका था तथा वे अंग्रेजों की शक्ति का अन्त करने की ओर प्रयत्नशील थे। मध्य भारत में अराजकता फैल रही थी। विद्रोहियों के भय के कारण लोग बड़े दुःखी थे। उनकी सम्पत्ति, जीवन तथा धन पूर्णतया अरक्षित था। भारत के बाहर नैपाल और ब्रह्मा के राज्य अपनी शक्ति का संगठन कर रहे थे, जिनकी महत्वाकांक्षाओं के कारण अंग्रेजी राज्य को भय उत्पन्न होने लगा था।

भारत की राजनीतिक दशा—जिस समय लार्ड हेस्टिंग्ज सन् १८१३ ई० में भारत आया उस समय भारत की राजनैतिक दशा बड़ी शोचनीय थी।

(१) कम्पनी की स्थिति—कम्पनी का राज्य भारत में विशाल हो गया था। उत्तर में गंगा नदी के मुहाने से दिल्ली के पश्चिम में हिसार तक तथा पूर्व में गंगा नदी के मुहाने से कुमारी अन्तरीप तक कम्पनी का विस्तार था। वह देश की सबसे बड़ी शक्ति थी। कम्पनी का कर्त्तव्य हो गया था कि देश के अन्य भागों को अपने अधिकार में कर एकछत्र शासन की स्थापना करे। यदि वह ऐसा करने में सफल नहीं होती तो उसके राज्य को प्रत्येक समय संकट उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है।

(२) होल्कर का राज्य--जसवन्तराव होल्कर की मृत्यु सन् १८११ ई० में हो गई थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी मल्हारराव होल्कर राज्य का स्वामी बना। इस समय वह अल्पवयस्क था, जिसके कारण शासन की बागडोर उसकी माता तुलसीबाई के हाथ में आ गई। उसके ऊपर कुछ ऐसे लोगों का प्रभाव था जिनके कारण होल्कर की अवस्था शोचनीय हो गई। होल्कर की शक्तिपर **पठान अमीर खाँ** ने अधिकार कर लिया था। उसके राज्य में दो दल बन गए, जिसमें विशेष रूप से प्रतिद्वन्द्विता थी।

भारत की राजनीतिक दशा

(१) कम्पनी की स्थिति।
(२) होल्कर का राज्य।
(३) सिंधिया का राज्य।
(४) भौंसले की दशा।
(५) पिण्डारियों के अत्याचार।
(६) गोरखे।
(७) राजस्थान।

(३) **सिंधिया का राज्य**—दौलतराव सिंधिया की इस समय आर्थिक स्थिति अति शोचनीय थी। उसने धन प्राप्त करने के अभिप्राय से अपनी सेना को लूट-खसोट करने की पूर्ण छूट दे दी थी, जिसके कारण सैनिकों के अत्याचार से जनता की दशा बड़ी शोचनीय हो गई। राजपूताने के राज्यों पर अंग्रेजों का जो भी संरक्षण था वह समाप्त हो चुका था। उनके राज्यों में मरहठों ने मनमानी करनी आरम्भ कर दी।

(४) **भौंसले की दशा**—द्वितीय मरहठा-युद्ध में भौंसले को बड़ी क्षति उठानी पड़ी थी। अंग्रेज उसको अपने अधिकार में करना चाहते थे, जिसके कारण वह सदैव उनकी ओर से सशंकित रहता था।

(५) **पिंडारियों के अत्याचार**—पिंडारी वे सैनिक थे जिनका प्रयोग मरहठे सरदार अनियमित रूप से युद्ध के समय किया करते थे। वे शान्ति के समय खेती करते तथा युद्ध के समय शत्रुओं से युद्ध करते थे। ये वेतन के स्थान पर शत्रु के देश को लूटते थे। जब वैलेजली के उपरान्त कम्पनी ने तटस्थता की नीति को अपनाया तो मध्य भारत में उनके अत्याचारों के कारग देश में अराजकता उत्पन्न हो गई। इन्होंने लूट-मार करनी आरम्भ की, जिससे जनता को बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा।

(६) **गोरखे**—नैपाल में गोरखों ने अपनी शक्ति का पर्याप्त विस्तार कर लिया था, उन्होंने अनुभव किया कि अब अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए। अतः सन् १७९२ ई० में उनका तिब्बत पर आक्रमण हुआ, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपना ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया। इस समय तक उन्होंने अपने दक्षिणी देश के मैदान में कुछ जिलों पर अधिकार कर लिया था, जिन पर कम्पनी का अधिकार था।

(७) **राजस्थान**—राजस्थान के राजा मरहठों के समान शक्तिशाली नहीं थे। उनके राज्यों पर मरहठों के आक्रमण होते रहते थे। वैलेजली ने उनको कम्पनी के संरक्षण में ले लिया था, किन्तु बाद के गवर्नर-जनरल ने उसको फिर मरहठों के संरक्षण में छोड़ दिया। मरहठों तथा पिंडारियों ने फिर वहाँ लूट-मार मचा दी और उनकी दशा पूर्व के समान बन गई।

जैसा उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि लार्ड हेस्टिंग्ज वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति का विरोधी था, किन्तु भारत की दशा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर उसको भी वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति को स्वीकार करना पड़ा।

लार्ड हेस्टिंग्ज और गोरखे

लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत आगमन पर सर्वप्रथम गोरखों की ओर ध्यान दिया। गोरखों ने अपनी शक्ति का विकास तथा संगठन कर लिया था। उन्होंने सन् १८०१ ई० में गोरखपुर पर अधिकार कर लिया, जिसके कारण उनकी और अंग्रेजी राज्य की सीमा मिल गई। दोनों की सीमाएँ निश्चित न होने के कारण दोनों में पर्याप्त समय से झगड़ा चल रहा था। वे कभी-कभी कम्पनी के राज्य पर आक्रमण करते रहते थे। तटस्थता की नीति के कारण अंग्रेजों ने उनके विरुद्ध कोई बड़ा कदम नहीं

उठाया। गोरखों ने **बुतबल और शिवराज** पर आक्रमण किया। जब अंग्रेजों को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई तो उन्होंने इन दोनों प्रदेशों पर अपना अधिकार पुनःस्थापित कर लिया। गोरखों को अंग्रेजों का यह कार्य प्रिय न लगा। वे इन प्रदेशों पर अपना अधिकार समझते थे। उन्होंने इसको अङ्गरेजों की अनाधिकार चेष्ठा समझा। वे अङ्गरेजों से बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने सन् १८१४ ई० को **बुतबल** पर आक्रमण कर तीन थानों को जला डाला। अङ्गरेज उनके इन कार्य को सहन न कर सके। उन्होंने गोरखों के विरुद्ध युद्ध का शंख बजा दिया।

गोरखायुद्ध—लाड हेस्टिंग्ज ने गोरखा युद्ध की एक विस्तृत योजना का निर्माण स्वयं किया था और उसने उसके लिए पर्याप्त तयारियाँ की थीं। ३० हजार विशाल अङ्गरेजी सेना ने गोरखा राज्य पर आक्रमण किया। आरम्भ में अङ्गरेजी सेना को सफलता प्राप्त हुई, किन्तु बाद में अंग्रेजी सेना गोरखों के भीषण आक्रमण का सामना नहीं कर सकी और उसको युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा। जब अङ्गरेजों की इस पराजय का समाचार अन्य देशी राज्यों को प्राप्त हुआ तो उनमें भी अङ्गरेजों के विरुद्ध युद्ध करके उनको भारत से बाहर निकालने की भावना जागृत हुई। इसके लिए कुछ प्रयत्न भी किए गए, किन्तु वे कार्यान्वित नहीं हो पाए। अङ्गरेजों ने इस संकट का सामना करने के अभिप्राय से एक विशाल सेना का संगठन किया। अङ्गरेजों की ओर से नैपाल राज्य को परास्त करने के लिए **जनरल लोनी** ने भीषण आक्रमण किया। नैपाली सेनापति **अमरसिंह थापा** परास्त हुआ। अङ्गरेजों ने मालव नामक नैपाली दुर्ग पर अधिकार कर लिया। **बाध्य होकर मई, सन् १८१५ ई० को अमरसिंह ने आत्मसमर्पण किया।** अङ्गरेजों ने धन का लालच देकर नैपाली सिपाहियों को भी अपनी ओर मिला लिया। जब नैपाल राज्य ने यह समाचार सुना तो उन्होंने अङ्गरेजों से सन्धि की बातचीत चलानी आरम्भ की। **नवम्बर १८१५ ई०** में नैपाल राज्य और कम्पनी के बीच एक सन्धि हुई। यह सन्धि **संगोली को सन्धि** के नाम से विख्यात है।

संगोली की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं—

(१) नैपाली राज्य से अङ्गरेजों को कुमायूं और गढ़वाल के जिलों के साथ-साथ हिमालय पर्वत की तराई का एक विस्तृत प्रदेश प्राप्त हुआ।

(२) गोरखों को सिक्किम छोड़ना पड़ा।

(३) नैपाल राज्य की राजधानी काठमाँडू में एक अङ्गरेज रेजीडेण्ड रहेगा।

किन्तु यह सन्धि शीघ्र ही समाप्त कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि अङ्गरेजों ने पुनः नैपाल पर आक्रमण किया। उन्होंने गोरखों को मलवानुर नामक स्थान पर बुरी तरह परास्त किया। इस युद्ध में पराजित होने के कारण गोरखों का उत्साह समाप्त हो गया। उन्होंने संगोली की सन्धि की शर्तों को स्वीकार किया।

संगोली की सन्धि का महत्व—इस सन्धि का महत्व बहुत अधिक है। इससे अङ्गरेजों को बड़ा लाभ हुआ। **अङ्गरेजों के अधिकार में कुमायूं तथा गढ़वाल** व

तराई के प्रदेश आ गए। उनका नैनीताल, अलमोड़ा, शिमला तथा मसूरी के सुन्दर पर्वतीय प्रदेशों पर अधिकार हो गया। कम्पनी की उत्तरी-पश्चिमी सीमाएं हिमालय की शृङ्खलाओं तक विस्तृत हो गईं। नैपाल और सिक्ख अलग-अलग हो गए और उनके बीच का प्रदेश अङ्गरेजों के अधिकार में आ गया। उस समय से नैपाल राज्य की ओर से कोई भय नहीं रहा। गोरखों ने इस सन्धि का पूर्णतया पालन किया। कुछ समय उपरान्त अङ्गरेजों ने गोरखों को सन्तुष्ट करने के लिए तराई का प्रदेश उनको वापिस कर दिया। उनके सन्तुष्ट करने का यह कारण था कि अङ्गरेजों का मरहठों से युद्ध करना अवश्यम्भावी था और उनको भय था कि ऐसा नहीं हो जाए कि भविष्य के युद्ध में मरहठे और गोरखे सम्मिलित होकर उनके विरुद्ध कार्य करने लगें।

पिंडारियों का दमन

मध्य भारत में पिंडारियों ने अपनी शक्ति का बड़ा विस्तार कर लिया था। गोरखा युद्ध के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्ज का ध्यान इनके दमन की ओर आकर्षित हुआ। इनके मुख्य नेता चीतू, अमीर खाँ तथा करीम खाँ थे। इनके पास विशाल सेना थी। इनका मुख्य कार्य धन प्राप्त करना था। उनके कारण जनता को असीम कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि उनके कुछ राजनैतिक उद्देश्य भी थे। उनका मरहठों के साथ गठबन्धन था कि दोनों मिलकर अङ्गरेजी सत्ता का भारत से अन्त करेंगे। परन्तु अभी तक यह पूर्णरूप से निश्चित नहीं हो पाया है। अङ्गरेजों की तटस्थता की नीति के कारण उनको बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सन् १८१२ ई० में इन्होंने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया तथा सन् १८१५ ई० और सन् १८१६ ई० में निजाम के राज्य तथा उत्तरी सरकार के समीप के प्रदेशों पर भी आक्रमण किया। हेस्टिंग्ज ने इनके दमन के लिए एक विशाल योजना का निर्माण किया। उसने एक विशाल सेना संगठित की जिसको चार भागों में विभक्त किया गया। ऐसा करने का उद्देश्य यह था कि मरहठे और पिंडारी एक दूसरे से न मिल सकें। हेस्टिंग्ज ने उत्तरी सेना का नेतृत्व अपने हाथ में लिया तथा दक्षिण सेना का नेतृत्व **सर टॉमस हिसलाप** के हाथों में सौंपा। इस योजना से अङ्गरेजी सेना ने पिंडारियों को चारों ओर से घेर लिया और उन पर आक्रमण किया गया। पिंडारी अङ्गरेजी सेना का सामना नहीं कर सके। उनके बहुत-से सैनिक यूद्ध में काम आए। अमीर खाँ ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार की, जिसके उपलक्ष में उसको टोंक का राज्य मिला। करीम खाँ ने भी बाध्य होकर अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार की। उसको एक छोटी-सी जागीर प्रदान की गई। चीतू जंगल में भाग गया और ऐसा कहा जाता है कि उसको चीते ने खा लिया। इस प्रकार लार्ड हेस्टिंग्ज पिंडारियों का दमन करने में सफल हुआ।

हेस्टिंग्ज और मरहठे

उक्त समस्याओं से निवृत्त होकर लार्ड हेस्टिंग्ज का ध्यान मरहठों की ओर आकर्षित हुआ। भारत की परिस्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त वह समझ गया

था कि भारत में अङ्गरेजी सत्ता स्थायी रूप धारण करने में उस समय तक सफल नहीं हो सकेगी जिस समय तक मरहठों की शक्ति का पूर्णतया दमन नहीं कर दिया जाएगा। ऊपर बतलाया जा चुका है कि वैलेजली ने मरहठा सरदारों की शक्ति पर्याप्त कम कर दी थी, किन्तु बाद के गवर्नर-जनरलों की नीति के कारण उनको अपनी शक्ति का पुनः विस्तार तथा संगठित करने का अवसर प्राप्त हो गया था। मरहठा-सरदार अपनी स्थिति को सन्तोषजनक नहीं समझते थे और वे अंग्रेजों से एक बार लोहा लेने के लिए प्रयत्नशील थे। **उन्होंने आपसी मत-भेद को दूर कर सम्मिलित होने की ओर कदम उठाया, किन्तु उनको इस दिशा में पारस्परिक सघर्ष तथा स्पर्धा के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई।** अङ्गरेजों ने इसका लाभ उठाया और उनकी शक्ति का अलग-अलग अन्त करने का विचार किया। अङ्गरेजों के सौभाग्य से मरहठों में इस समय कोई भी ऐसा योग्य राजनीतिज्ञ न था जिसका नेतृत्व समस्त मरहठे सरदार स्वीकार कर लेते और जो बिखरी हुई मरहठा-शक्ति को संगठित करने में सफलता प्राप्त करता।

(१) **हेस्टिग्ज और भौंसले**—२२ मार्च १८१६ ई० राघोजी भौंसले की मृत्यु को हुई। उसके पश्चात् उसके पुत्र **परसोजी** के हाथ में शासन-सत्ता आई, किन्तु उसकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति के ठीक न होने के कारण **राघोजी** की विधवा पत्नी **बूकाबाई** और **अप्पा साहेब** में संरक्षण पद प्राप्त करने के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हेस्टिग्ज तो इस प्रकार के स्वर्ण अवसर की प्रतिक्षा में था ही। उसने इससे लाभ उठाने के अभिप्राय से अप्पा साहेब के पक्ष का समर्थन किया और उसने सहायता के उपलक्ष में सन्धि स्वीकार करने का वचन दिया। अङ्गरेज तो यह चाहते ही थे। उन्होंने अप्पा साहेब को संरक्षक के पद पर आसीन कर दिया। इस सन्धि से न केवल नागपुर राज्य की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई, वरन् मरहठा राज्य का एक स्तम्भ टूट कर गिर पड़ा। नागपुर में अङ्गरेजी राज्य की छावनियाँ पड़ जाने से सिंधिया और होल्कर के राज्य दक्षिण दिशा से घिर गए तथा पेशवा और सिंधिया राज्यों के बीच अङ्गरेजी सेना की दीवार खड़ी हो गई।

(२) **हेस्टिग्ज और पेशवा**—उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि पेशवा ने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली थी, किन्तु बाद में उसको बड़ा पश्चाताप होना आरम्भ हो गया था। वह अपनी दयनीय दशा से क्षुब्ध था और उससे मुक्त होना चाहता था। उसने अन्य मरहठा-सरदारों से भी गुप्त रूप से वार्ता करनी आरम्भ की। उसने अपनी शक्ति को संगठित करने का भी प्रयत्न किया। अङ्गरेज उसकी ओर से शंकित होने लगे। इस पेशवा पर उसके मन्त्री त्र्यम्बकराव का विशेष प्रभाव था। वह अङ्गरेजों का कट्टर शत्रु था और उनको भारत से निकालने की योजना बना रहा था। इसी समय पेशवा ने निजाम और गायकवाड़ से अपने अधिकारों के अनुसार धन की माँग की। गायकवाड़ की ओर से उसका मन्त्री गङ्गाधर शास्त्री पूना आया, किन्तु यहाँ उसका वध कर दिया गया। अभी तक यह पूर्ण रूप से निश्चित नहीं हो पाया कि उसके वध में पेशवा व उसके मन्त्री त्र्यम्बकराव का कहाँ तक हाथ था।

किन्तु अङ्गरेजों ने अपनी स्वार्थसिद्धि के अभिप्राय से पेशवा पर आरोप लगाया और त्र्यम्बकराव को बन्दी बना लिया, किन्तु वह किसी प्रकार बन्दीगृह से भाग निकला। अङ्गरेजों ने पेशवा पर आरोप लगाया कि त्र्यम्बकराव उसके ही षड्यन्त्र के द्वारा बन्दीगृह से भागने में सफल हुआ। अङ्गरेजों ने उसको पेशवा से माँगा, किन्तु उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि उसको त्र्यम्बकराव का पता नहीं है। अङ्गरेजों को उसके उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ। पूना में स्थित ब्रिटिश रेजीडेण्ट एलफिन्सटन ने पेशवा को युद्ध की धमकी दी। पेशवा ने इस संकटमय परिस्थिति से बाध्य होकर अङ्गरेजों से १३ जून, सन् १८१७ ई० को एक सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि पेशवा मरहठा-संघ का अध्यक्ष नहीं होगा। उसने वचन दिया कि किसी विदेशी सत्ता से वह किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं करेगा। उसने अपने राज्य का कुछ भाग, जिसकी आय ३४ लाख रुपया वार्षिक थी, अङ्गरेजों को दिया। उसने मालवा, बुन्देलखण्ड और मध्य भारत को कम्पनी के हवाले किया तथा ४ लाख रुपए वार्षिक पेंशन के बदले गायकवाड़ पर से अपने दावे उठाए। स्पष्ट है कि सन्धि पेशवा के प्राणान्त के समान थी और उससे यह आशा करनी भूल थी कि वह उसका सदैव पालन करेगा। इस प्रकार पेशवा ने बाध्य होकर अङ्गरेजों से सहायक-सन्धि की. किन्तु उसके मन का वैमनस्य समाप्त नहीं हुआ। वह अरेङ्गजों का कट्टर शत्रु बन गया। वह उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के अवसर की खोज में लग गया।

(३) **हेस्टिंग्ज और सिंधिया**—अब हेस्टिंग्ज का ध्यान सिंधिया की ओर आकर्षित हुआ जो हेस्टिंग्ज के शब्दों में 'सबसे अधिक शक्तिशाली था।' वैलेजली ने सिंधिया की शक्ति द्वितीय मरहठा-युद्ध के उपरान्त पर्याप्त कम कर दी थी, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों की तटस्थ नीति के कारण उसका राजस्थान के राजाओं पर पुनः संरक्षण स्थापित हो चुका था। इसी बीच उसने अपनी शक्ति को पर्याप्त रूप में संगठित कर लिया था। हेस्टिंग्ज ने उस सन्धि को परिवर्तित करने का विचार किया जो १८०५ ई० में सिंधिया और अङ्गरेजों के मध्य हुई थी। हेस्टिंग्ज ने सिंधिया पर आरोप लगाया कि उसने अङ्गरेजों के विरुद्ध पिंडारियों को सहायता प्रदान की। उसने सिंधिया से **हिंडिया** और **असीरगढ़** के दो दुर्गों की माँग की। उसी समय उसके पास यह भी समाचार भेजा गया कि उसका मालवा तथा राजस्थान के राजाओं का संरक्षण अधिकार समाप्त किया जा रहा है। जब सिंधिया इन सब बातों से अवगत हुआ तो वह बड़ा भयभीत हो गया और उसकी समझ में कुछ भी न आया कि वह इस भीषण परिस्थिति का सामना किस प्रकार करे। जब सिंधिया उत्तर देने का विचार कर रहा था तो उसी समय हेस्टिंग्ज एक विशाल सेना सहित उसके राज्य की सीमा पर आ डटा। अत: बाध्य होकर सिन्धिया ने अङ्गरेजों से ५ नवम्बर १८१७ ई० को सन्धि की जो इतिहास में **ग्वालियर की सन्धि के नाम** से विख्यात है। इसके अनुसार सिंधिया का राजपूत राजाओं पर संरक्षण का सदा के लिए अन्त हो गया तथा उसको यह वचन देना पड़ा कि वह पिंडारियों को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करेगा तथा उनको अपने राज्य में आश्रय भी नहीं देगा।

(४) **पेशवा से युद्ध**—पेशवा अङ्गरेजों से बदला लेने का बहाना खोज रहा था। पिंडारियों के युद्ध ने उसको वह अवसर प्रदान किया। पूना की गम्भीर परिस्थिति देखकर अङ्गरेज रेजीडेण्ट ने अपना दूतावास पूना से हटाकर किर्की नामक स्थान पर स्थापित किया। पेशवा ने उनके दूतावास को भस्मीभूत कर दिया। एलफिन्सटन किसी प्रकार अपनी जान बचाकर भागने में सफल हुआ। अङ्गरेजों ने अपनी सेना का संगठन किया और वे पेशवा की सेना को परास्त करने में सफल हुए। अङ्गरेजों का पूना पर अधिकार हो गया। पेशवा पूना से भाग गया। अङ्गरेजों ने उसका पीछा किया और कोरी गाँव नामक स्थान पर वह पुनः पराजित हुआ। पेशवा ने पुनः सेना का संगठन किया, किन्तु इस बार भी वह **अष्टी** नामक स्थान पर परास्त हुआ। इन पराजयों के कारण उसने आत्म-समर्पण कर दिया। उससे एक सन्धि की गई, जिसके अनुसार उसको ८ लाख रुपया वार्षिक पेंशन दी गई और उसको बिठूर में रहने का आदेश प्राप्त हुआ। इसके उपरान्त अङ्गरेजों ने सतारा की गद्दी पर शिवाजी के वंशज को आसीन किया और पेशवा के शेष राज्य को अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

(५) **भौंसले से युद्ध**—जब अप्पा साहेब को पेशवा के युद्ध तथा उसके कार्यों का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने भी अपनी शक्ति संगठित कर अङ्गरेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर अंग्रेजी दूतावास पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण उसने २६ नवम्बर सन् १८१७ ई० को किया। अंग्रेज तो पहले से ही तैयार थे। उन्होंने उसकी सेना को **सीताबल्दी** तथा **नागपुर** के युद्ध में बुरी तरह परास्त किया। अंग्रेजों ने अप्पा साहेब को नागपुर की गद्दी से उतार दिया और नर्मदा नदी के उत्तर का सम्पूर्ण भाग अपने राज्य में सम्मिलित किया। शेष राज्य पर अंग्रेजों ने राघोजी भौंसले के अल्प-वयस्क पोते को आसीन किया तथा एक अंग्रेज रेजीडेण्ट को उसका संरक्षक बनाया।

(६) **होल्कर से युद्ध**—होल्कर ने भी अपनी सेना को पेशवा के युद्ध तथा उसके कार्यों का समाचार पाते ही संगठित करना आरम्भ किया। यह पेशवा की सहायता करने के अभिप्राय से दक्षिण की ओर चल पड़ा, किन्तु मार्ग में ही उसको अंग्रेजी सेना का सामना करना पड़ा। २१ दिसम्बर १८१७ ई० को होल्कर और अङ्गरेजी सेना में महीदपुर नामक स्थान पर भी भीषण युद्ध हुआ। होल्कर पराजित हुआ। जनवरी १८१८ ई० को अङ्गरेजों और होल्कर के बीच एक सन्धि हुई। जिसके द्वारा होल्कर ने सहायक सन्धि करना स्वीकार किया। वह राज्य में अङ्गरेजी सेना रखने के लिए तैयार हो गया और उसने यह वचन दिया कि वह किसी अन्य शक्ति से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा। उसको अपने राज्य का कुछ भाग अङ्गरेजों को देना पड़ा।

(७) **सिंधिया**—उस समय तक सिंधिया ने युद्ध में कोई भाग नहीं लिया था, किन्तु अङ्गरेजों ने उसको भी एक नवीन सन्धि करने के लिए बाध्य किया। यह सन्धि सन् १८१८ ई० में हुई। इसके अनुसार अजमेर पर अङ्गरेजों का अधिकार

हो गया और उसने यह वचन दिया कि वह अपनी सीमाओं को पुनः निर्धारित करेगा। इस प्रकार उसकी शक्ति का अन्त हुआ।

(८) **गायकवाड़**—गायकवाड़ अङ्गरेजों का मित्र था। उसने भी सिंधिया के समान युद्ध में कोई भाग नहीं लिया था, किन्तु फिर भी अङ्गरेजों ने उससे भी एक नवीन सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार वह अपने राज्य में अङ्गरेजी सेना की संख्या बढाने के लिए तैयार हो गया।

तृतीय मरहठा युद्ध का महत्व—तृतीय मरहठा-युद्ध के कारण अङ्गरेजों ने समस्त मरहठा-सरदारों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। अब केवल सिन्ध और पंजाब के अतिरिक्त अङ्गरेजों का आधिपत्य समस्त भारतवर्ष पर स्थापित हुआ। अतः लार्ड हेस्टिंग्ज ने उस कार्य को पूर्ण किया जिसका आरम्भ वैलेजली ने अपने शासन-काल में किया था। लार्ड हेस्टिंग्ज ने मरहठों की शक्ति का अन्त करने में बड़ी योग्यता तथा कार्य-कुशलता का परिचय दिया। उसने इस सम्बन्ध में इस बात का विशेष प्रयत्न किया कि मरहठा-सरदार सम्मिलित रूप से कोई कार्य करने में समर्थ न हो सकें। वह अपने इस उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ और उसने समस्त मरहठा-सरदारों से अलग-अलग युद्ध कर उनसे अलग-अलग सन्धि कीं। पेशवा के पद का अन्त कर उसने मरहठा-संघ का अन्त कर दिया।

मरहठों के पतन के कारण

मुगल साम्राज्य का पतन होने पर मरहठों ने विशेष उन्नति की और उनकी सेनाओं ने समस्त भारतवर्ष पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। पर्याप्त समय तक उनका उत्कर्ष रहा और भारत में उनकी शक्ति का सामना करने का साहस किसी को भी नहीं था। समस्त देशी राज्य उनकी कृपा पर आश्रित थे। इसी समय भारत में अङ्गरेजों ने अन्य यूरोपीय शक्तियों का अन्त कर अपने साम्राज्य की स्थापना की। दोनों शक्तियों में भारत-साम्राज्य के लिए युद्ध होना अनिवार्य था। अङ्गरेज और मरहठों में तीन युद्ध हुए, जिनके कारण मरहठों की शक्ति का अन्त हुआ, और अङ्गरेजों के हाथ में भारत की राज्यश्री आ गई। अङ्गरेज भली प्रकार समझ गए थे, कि वे उस समय तक भारत के स्वामी नहीं बन सकते जब तक कि वे मरहठों की शक्ति का अन्त करने में सफल नहीं हो जाएँ। प्रथम ऐंग्लो-मरहठा युद्ध से कम्पनी को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, किन्तु दूसरे युद्ध के कारण मरहठों की शक्ति को पर्याप्त आघात पहुँचा, किन्तु उन्होंने फिर अपने आपको संगठित किया, तृतीय युद्ध में परास्त होकर उनकी शक्ति का अन्त हो गया और वे अङ्गरेजों के सामन्त मात्र रह गए। इस राज्य के पतन के अनेक कारण थे जिनमें मुख्य निम्न पंक्तियों में अंकित किए जाते हैं—

(१) **एकता का अभाव**—मरहठा साम्राज्य बड़ा विशाल था, जिस पर पूना से पेशवा के लिए समस्त साम्राज्य पर नियन्त्रण रखना असम्भव था। इसके कारण समस्त साम्राज्य पाँच भागों में विभक्त हो गया। प्रत्येक सरदार ने अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार दिया। जब तक योग्य पेशवा रहे उस समय तक इन सरदारों पर

उसका नियन्त्रण रहा, किन्तु उसकी शक्ति के दुर्बल होते ही उन्होंने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया। इन सरदारों में बड़ी ईर्ष्या तथा स्पर्धा थी। ये पूना की राजनीति को अपने नियन्त्रण में रखना चाहते थे, और एक दूसरे को नीचा दिखलाने के अभिप्राय से षड्यन्त्र रचा करने थे। इनके पारस्परिक संघर्षों के कारण ही पेशवा को अंग्रेजों की शरण में जाना पड़ा और उन्होंने उसको बेसीन की सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। वे सम्मिलित होकर युद्ध नहीं करते थे। द्वितीय ऐंग्लो-मरहठा युद्ध में कुछ समय तक होल्कर ने भाग नहीं लिया तथा तृतीय मरहठा-युद्ध में सिंधिया तथा गायकवाड़ युद्ध से अलग रहे। इस प्रकार मरहठा ऐक्य में अनैक्य उतपन्न हो गया था। उनमें न तो एक केन्द्रीय प्रशासन था, न एक सेना थी और न एक कोष था। सब ने अपने अलग-अलग राज्य स्थापित किए और अलग-अलग ही सन्धि तथा युद्ध किए, अङ्गरेजों ने इसका बहुत लाभ उठाया। उन्होंने अलग-अलग उनकी शक्ति का दमन कर डाला।

मरहठों के पतन के कारण

(१) एकता का अभाव।
(२) योग्य नेतृत्व का अभाव।
(३) उच्च आदर्शों का त्याग।
(४) शासन की दुर्बलता।
(५) सैन्य शासन की दुर्बलता।
(६) मरहठों की देशी राज्यों के प्रति नीति।
(७) आर्थिक कठिनाइयाँ।
(८) जागीरदारी प्रथा।
(९) भौगोलिक ज्ञान का अभाव।
(१०) सामुद्रिक शक्ति का अभाव।

(२) योग्य नेतृत्व का अभाव—मरहठों की पराजय में योग्य नेतृत्व के अभाव का भी बड़ा हाथ था। **द्वितीय ऐंग्लो-मरहठा युद्ध के पूर्व ही मरहठों के योग्य सरदारों की मृत्यु हो गई थी।** जसवन्तराव होल्कर, महादजी सिंधिया, अहिल्याबाई तथा पेशवा माधवराव की मृत्यु के उपरान्त कोई भी ऐसा नेता मरहठों में नहीं हुआ, जो उनको एकता के सूत्र में बाँधने में सफल होता। नाना फड़नवीस ने मरहठों की शक्ति की पुनः स्थापना करने का अवश्य प्रयत्न किया और उसको कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, किन्तु उसमें भी पर्याप्त दोष थे जिसके कारण पेशवा व मरहठा सरदार उसके आधिपत्य को अधिक समय तक स्वीकार नहीं कर सके और वे उसके विरुद्ध बराबर षड्यन्त्र रचते रहे। उसकी मृत्यु के उपरान्त मरहठा-सरदारों की सम्पूर्ण बुद्धि का अन्त हो गया। बाजीराव पेशवा अपने पद के सर्वथा अयोग्य था। उसमें कुछ व्यक्तिगत गुण विद्यमान थे, किन्तु वह अपने वंश का सबसे अयोग्य व्यक्ति था जो इस उच्च तथा महान् पद पर आसीन हुए। उसके मन्त्री तथा सलाहकार भी उच्च श्रेणी के नहीं थे। इसके विपरीत अङ्गरेजों के पास प्रतिभासम्पन्न नेता थे, जिनमें वैलेजली लार्ड हेस्टिंग्ज, जनरल लेक तथा आर्थर वैलेजली अधिक प्रमुख थे।

(३) उच्च आदर्शों का त्याग—मरहठों ने शिवाजी तथा प्रथम पेशवाओं के उच्च आदर्शों का परित्याग कर दिया। शिवाजी का **उच्च आदर्श** हिन्दू धर्म की रक्षा तथा मरहठों के राज्य की स्थापना करना था। प्रारम्भिक पेशवा हिन्दू पद

बादशाही के विचारों के समर्थक थे, किन्तु बालाजीबाजीराव के समय में मरहठों ने इन आदर्शों को त्याग दिया। उनका राजपूत राजाओं के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। उनके इस व्यवहार से तंग आकर वे उनके शत्रु बन गए। अतः उनसे सहायता पाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। **इसके विपरीत लूट-खसोट की नीति के कारण वे अपनी प्रजा को भी अपना नहीं बना सके।** प्रजा उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगी। मरहठों का चरित्र भी पतित हो गया था। उन्होंने आमोद-प्रमोद और भोग-विलास में अपना समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया था।

(४) **शासन की दुर्बलता**—मरहठों की पराजय में उनके शासन की दुर्बलता ने बड़ा योग दिया। शिवाजी ने अपने राज्य में उच्चकोटि की शासन-व्यवस्था की स्थापना कर जनता को सुखमय जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया, **किन्तु बाद में मरहठे शासन को सुव्यवस्थित करने की ओर से पूर्णतः उदासीन हो गए।** उनको हर समय धन प्राप्त करने की चिन्ता तथा धुन रहती थी। उन्होंने व्यापार तथा कृषि को उन्नत करने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और न ही जनता की जान तथा सम्पत्ति को सुरक्षित करने का प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मरहठों की आर्थिक स्थिति सदा शोचनीय रही और उनका राज्य लोकप्रिय नहीं बन सका।

(५) **सैन्य-शासन की दुर्बलता**—मरहठों की सैन्य-शासन की दुर्बलता ने भी उनकी पराजय में बड़ा योग दिया। **यद्यपि मरहठों के पास पर्याप्त सेना थी, किन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा व संचालन की ओर मरहठों ने विशेष ध्यान नहीं दिया।** इस सम्बन्ध में इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि उन्होंने अपनी सेना को फ्रांसीसियों के नियन्त्रण में रखकर उनको यूरोपीय ढंग पर संगठित करने का प्रयास किया था, किन्तु उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके साथ-साथ फ्रांसीसियों ने कई बार उनके साथ विश्वासघात किया, जिससे मरहठों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसके अतिरिक्त सब मरहठों ने गुरिल्ला युद्ध-व्यवस्था का परित्याग कर खुले मैदान में मैदान में युद्ध करना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार के युद्ध में वे अंग्रेजों के समान कुशल नहीं थे। मरहठों के पास न उतने अच्छे हथियार थे न कुशल सैनिक ही थे जितने कि अंग्रेजों के पास थे। मरहठों के पास अंग्रेजों की अपेक्षा तोपखाना भी कम था। उसका बनाना व चलाना भी उनको अंग्रेजों की अपेक्षा कम आता था। इस कार्य के लिए वे सदा विदेशियों पर निर्भर रहते थे, जिनकी स्वामी-भक्ति सदैव संदिग्ध रहती थी। इसके अतिरिक्त मरहठों की अपेक्षा अंग्रेज युद्ध नीति में अधिक पटु थे।

(६) **मरहठों की देशी राज्यों के प्रति नीति**—मरहठों के पतन में उनकी देशी राज्यों के प्रति नीति ने भी योग दिया। **उन्होंने उनसे सहयोग स्थापित करने की ओर प्रयत्न नहीं किया।** यदि मरहठों ने हैदरअली, टीपू व निजाम के समय पर सहायता की होती तो वे अंग्रेजों की शक्ति का अन्त करने में अवश्य सफल होते। इसके विपरीत मरहठों ने सदा उनका विरोध किया और उस समय शान्त भाव से परिस्थिति का अध्ययन किया जब उन राज्यों के विरुद्ध अंग्रेजों के कुचक्र चल रहे

थे। उनकी शक्ति के पतन से अंग्रेजों की शक्ति का विस्तार हुआ। इसके विपरीत अंग्रेजों ने मैसूर के पतन के पूर्व निजाम और मरहठों को अपनी ओर मिला लिया था। राजपूतों के प्रति भी उनकी नीति उचित नहीं थी। उनके व्यवहार के कारण राजपूतों ने मरहठों की अपेक्षा अंग्रेजों के संरक्षण में जाना अपने लिए अधिक हितकर समझा।

(७) **आर्थिक कठिनाइयाँ**—मरहठा राज्य की आर्थिक दशा अच्छी न थी, क्योंकि उसकी आय के साधन निश्चित नहीं थे। उनको व्यापार या कृषि द्वारा विशेष धन प्राप्त नहीं होता था। उनको चौथ और सारदेशमुखी पर निर्भर रहना पड़ता था, जिनकी प्राप्ति के लिए उनको युद्ध की शरण लेनी पड़ती थी। उन्होंने आर्थिक दशा को उन्नत करने के लिए तनिक भी ध्यान नहीं दिया, जिससे उनको हर समय धन की आवश्यकता का अनुभव करना पड़ता था। इसी कारण उनको लूट-मार की शरण लेनी पड़ती थी, जिसके कारण राज्य में अराजकता बनी रहती थी।

(८) **जागीरदारी प्रथा**—मरहठों में जागीरदारी प्रथा थी। शिवाजी ने इस व्यवस्था को उत्पन्न नहीं होने दिया, किन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त इस व्यवस्था का जन्म हुआ और वह मरहठा शासन का प्रधान अंग बन गई। इसके कारण ही उनके ऐक्य का अन्त हो गया और उसमें विशृङ्खलता उत्पन्न हो गई।

(९) **भौगोलिक ज्ञान का अभाव**—मरहठों को अपने प्रदेशों का भौगोलिक ज्ञान नहीं के बराबर था जिसके कारण उनको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

(१०) **सामुद्रिक शक्ति का अभाव**—मरहठों ने सामुद्रिक शक्ति के विस्तार की ओर भी ध्यान नहीं दिया। शिवाजी ने इस ओर अवश्य ध्यान दिया, किन्तु मरहठे इस ओर से पूर्ण उदासीन हो गए। अंग्रेजों की सामुद्रिक शक्ति बहुत दृढ़ थी जिसके कारण वे विदेशी सत्ताओं का अन्त करने में सफल हुए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) लार्ड वैलेजली के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति क्या थी ? उसने उसको किस प्रकार सम्भाला ?

(२) लार्ड वैलेजली की नीति और उसके महत्वपूर्ण कार्यों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

(३) मैसूर राज्य के पतन पर एक टिप्पणी लिखिए।

(४) मरहठा-संघ राज्य के पतन पर एक टिप्पणी लिखो।

(५) तृतीय मरहठा युद्ध के कारण और परिणाम बतलाइए।

(६) लार्ड वैलेजली की सहायक-सन्धि प्रथा से आप क्या समझते हैं ? इन सन्धियों का अंग्रेजी सत्ता और देशी शासकों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(७) नाना फड़नवीस पर एक टिप्पणी लिखो।

(८) लार्ड वैलेजली तथा लार्ड हेस्टिंग्ज की मरहठों के प्रति नीति की विवेचना कीजिए।

मध्य भारत—

(१) लार्ड वैलेजली की विदेश-नीति समझाइए और उसके परिणामों पर अपने विचार लिखिए।

(२) सहायक-सन्धि से आप क्या समझते हैं? उसने ब्रिटिश कम्पनी की भारत में सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में क्या सहायता की?

(३) लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन का वर्णन कीजिए। क्या उसको भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य का एक निर्माता कहना ठीक होगा?

(४) टीपू के राज्य-काल में मैसूर राज्य की अवनति का वर्णन करो।

(५) उन परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए जिनके द्वारा लार्ड वैलेजली को मरहठों से युद्ध करने को बाध्य होना पड़ा।

(६) वैलेजली की सहायक-प्रथा क्या थी? उसके लाभ और हानि समझाइए।

(७) 'लार्ड वैलेजली के शासन ने हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी साम्राज्य को हिन्दुस्तान के अङ्गरेजी साम्राज्य से बदल दिया।' स्पष्ट कीजिए।

(८) लार्ड हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन करो।

राजस्थान—

(१) लार्ड मिण्टो ने राजनीतिक मिशन (१८०७-१८१३) तक क्यों भेजे? उनके महत्व का वर्णन करो।

(२) लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल में अङ्गरेजों और मरहठों तथा राजपूतों के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

(३) कार्नवालिस, शोर और मिण्टो ने हस्तक्षेप न करने की नीति कहाँ तक अपनाई? बाद में इसका परित्याग क्यों किया गया?

(४) उन युद्धों का संक्षिप्त वर्णन करो जिनके द्वारा मैसूर के मुसलमानी राज्य का अन्त हुआ?

(५) उन परिस्थितियों का वर्णन करो जिनके कारण वैलेजली के उत्तराधिकारियों को अकर्मण्यता की नीति को अपनाना पड़ा।

(६) लार्ड वैलेजली की मरहठों के प्रति नीति का विश्लेषण करो। और इसका मूल्यांकन भी करो।

(७) पिंडारी कौन थे? उनका मध्य-भारत तथा राजस्थान के राजाओं पर क्या प्रभाव पड़ा?

(८) मरहठा-संघ के १७९५ के पश्चात् पतन के कारणों का वर्णन करो।

(९) 'अठारहवीं शताब्दीं के अन्तिम अर्धांश में मैसूर राज्य हैदर और टीपू के समय में अङ्गरेजों की बढ़ती हुई शक्ति के लिए एक बड़ा संकट था।' विवेचना करो।

मध्य प्रदेश—

(१) मरहठा-संघ के पतन के क्या कारण थे?

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) लार्ड वैलेजली की सहायक-सन्धि पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

(२) बेसीन की सन्धि पर एक टिप्पणी लिखो।

(३) हस्तक्षेप न करने की नीति पर एक टिप्पणी लिखो।

(४) सहायक-सन्धि प्रथा के ऐतिहासिक महत्व को समझाइए।

(५) लार्ड वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति की व्याख्या कीजिए।

(६) 'लार्ड हेस्टिंग्ज केवल एक महान् विजेता ही नहीं था, वरन् एक महान् शासक भी था।' समझाइए।

(७) उन परिस्थितियों का विश्लेषण कीजिए जिनके द्वारा लार्ड वैलेजली को मरहठों से युद्ध करने को बाध्य होना पड़ा।

(८) लार्ड हेस्टिंग्ज के समय मरहठा-संघ के परास्त होने का संक्षिप्त विवरण दीजिए, तथा उनके पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) लार्ड वैलेजली की सहायक-सन्धि की नीति के विषय में आप क्या जानते हैं? भारतीय राज्यों पर उनके प्रभावों का वर्णन कीजिए।

(२) मरहठा-साम्राज्य के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

(३) द्वितीय मरहठा-युद्ध के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।

(४) लार्ड हेस्टिंग्ज की नीति तथा सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

(५) लार्ड वैलेजली की नीति तथा सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

(६) टीपू सुल्तान का चरित्र-चित्रण कीजिए तथा उनके विनाश के कारण की मीमांसा कीजिए।

(७) लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में मरहठा-पिण्डरी युद्धों के कारण तथा परिणामों का वर्णन कीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) लार्ड वैलेजली की साम्राज्यवादी नीति की व्याख्या कीजिए।

(२) मॉरक्वीस ऑफ हेस्टिंग्ज की उपलब्धियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(३) सालबाई की सन्धि पर एक टिप्पणी लिखो।

(४) लार्ड मिण्टो ने अनेक देशों को जो कूटनीतिक मण्डल भेजे थे, उनका वर्णन कीजिए और उनका महत्व समझाइए।

(५) अंग्रेजों के हाथों मरहठों की पराजय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(६) सन् १७७५ ई० से सन् १८०३ ई० तक के अंग्रेजों और मरहठों के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

(७) लार्ड वैलेजली ने भारत में स्थित ब्रिटिश साम्राज्य को भारत के ब्रिटिश साम्राज्य में किस प्रकार परिणित किया?

तृतीय खण्ड

(१८१८ से अब तक)

1 अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार १८१८–१८५६

मरहठों तथा पिंडारियों के कारण राजस्थान तथा मध्य भारत की दशा अति शोचनीय हो रही थी। वहाँ अराजकता फैली हुई थी। अठारहवीं शताब्दी में राजस्थान का स्थान अत्यन्त अन्धकारपूर्ण था। पारस्परिक कलह, सामन्तवाद आदि के कारण वहाँ शान्ति की स्थापना नहीं हो सकी। अंग्रेजों से पूर्व वहाँ के राज्य मरहठों के संरक्षण में थे और उनके कारण होल्कर और सिंधिया में बड़ा वैमनस्य रहता था। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने इन राज्यों की ओर ध्यान नहीं दिया। वैलेजली के समय में अंग्रेजों ने जोधपुर और जयपुर के राज्यों को मरहठों के संरक्षण से अङ्गरेजों के संरक्षण में किया, किन्तु तटस्थता की नीति के कारण अङ्गरेज इन राज्यों से उदासीन हो गए और उन पर मरहठों का पुनः संरक्षण स्थापित हो गया जिसको अङ्गरेजों ने स्वीकार किया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने राजस्थान के राज्यों पर अंग्रेजी संरक्षण की स्थापना करने का निश्चय किया। उसने सन् १८१७ से १८२२ तक राजस्थान के विभिन्न राज्यों से अलग-अलग सन्धि कर उनको अपने संरक्षण में किया। इन सन्धियों द्वारा समस्त राजस्थान के राज्यों की सुरक्षा का भार अंग्रेजों के ऊपर आ गया और उनकी बाह्य नीति पर अग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद अङ्गरेजों की भोपाल, मालवा और बुन्देलखण्ड के राजाओं से इसी प्रकार की सन्धि स्थापित हो गई।

लार्ड हेस्टिंग्ज के कार्यों का मूल्यांकन

सन् १८२३ ई० में लार्ड हेस्टिंग्ज ने त्याग-पत्र दिया और वह भारत से चला गया। उसकी गणना भारत के उन गवर्नर-जनरलों में की जाती है जिन्होंने भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना की तथा उसको दृढ़ बनाया। उसने अपने कार्यों द्वारा उस कार्य को पूरा किया, जिसका आरम्भ क्लाइव ने किया था तथा जिस कार्य को वैलेजली ने आगे बढ़ाया था। वैलेजली अवध, निजाम, मैसूर, सूरत, तंजौर, कर्नाटक आदि प्रदेशों पर अंग्रेजी प्रभाव स्थापित करने में सफल हुआ। उसने मरहठों की शक्ति को कम किया, किन्तु वह उनका पूर्ण दमन नहीं कर पाया। हेस्टिंग्ज ने मरहठा शक्ति का पूर्णतया अन्त किया। उसने मध्य भारत तथा राजस्थान के राजपूती राज्यों पर अंग्रेजी प्रभाव की स्थापना की तथा पठानों और पिंडारियों का अन्त किया। उसने नैपाल से भी सन्धि की। इस प्रकार वह हिमालय से लेकर कुमारी-अन्तरीप तक और ब्रह्मपुत्र से लेकर सतलज नदी तक अङ्गरेजों के प्रभुत्व की स्थापना करने में सफल हुआ।[1] उसने राजा रणजीतसिंह से सन्धि की तथा गोरखों को

---

[1] "The British Government became the Paramount power over a dominion extending from the Himalayas to Cape Camorin and from the Sutlej to the Brahamputra."

—An Advanced History of India, p. 727.

अपना मित्र बनाया। उसके सम्बन्ध में **मिल** का कथन है कि ‘लार्ड हेस्टिग्ज का शासनकाल उस महान् व्यवस्था की समाप्ति है जिसकी स्थापना क्लाइव द्वारा की गई और जिसको वारेन हेस्टिग्ज तथा लार्ड वैलेजली ने पल्लवित किया।[1] उसके सम्बन्ध में **प्रोफेसर राबर्ट्स** का कथन है कि उसने महान् युद्ध किए, ऐसे युद्ध उससे पूर्व भारत में नहीं हुए थे। उसके काल में २८ युद्ध हुए और १२० दुर्गों पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ। इन सब में अंग्रेजों को एक बार भी पराजय का मुंह नहीं देखना पड़ा।[2]

जनवरी १८२३ ई० में लार्ड हेस्टिग्ज को **पामर एण्ड को०** के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा, जिसके कारण इंगलैण्ड में उसके विरुद्ध बड़ी सनसनी उत्पन्न हो गई थी। गत अध्यायों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि लार्ड हेस्टिग्ज ने साम्राज्यवादी नीति को अपनाकर भारत में अंग्रेजी राज्य का बड़ा विस्तार किया था। **उसके समय में कम्पनी के राज्य का विस्तार हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और सतलज से लेकर ब्रह्मा नदी तक हो गया था। अभी तक अंग्रेजों का ध्यान विशेष रूप से भारत राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत था, किन्तु जब उनके साम्राज्य का विस्तार पर्याप्त हो गया तो उनके सामने सीमा-सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनका समाधान किए बिना अंग्रेजी साम्राज्य का दृढ़ होना असम्भव था।** इस काल में अङ्गरेजों ने अपने भारत-स्थित साम्राज्य को दृढ़ करने के उद्देश्य से सिक्खों, सिंध, अफगानिस्तान व ब्रह्मा की ओर ध्यान दिया। इसके अतिरिक्त उनका उन व्यक्तियों से भी संघर्ष होना अनिवार्य था जिनमें अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के कारण असन्तोष की भावना जागृत हुई। इसी भावना के अन्तर्गत १८५७ ई० में विद्रोह हुआ। १८२३ तक अंग्रेजों को फ्रांस का भय नहीं रहा था, किन्तु उनके स्थान पर यूरोप में रूस का उदय होना आरम्भ हो गया था और उसने अपना विस्तार मध्य एशिया में करना आरम्भ कर दिया था। उनको हर समय यह भय बना रहता था कि न मालूम किस समय रूस का भारत पर आक्रमण हो जाए। इसी उद्देश्य से उनको अफगानिस्तान के अमीरों से युद्ध करना पड़ा, सिंध तथा पंजाब पर अधिकार करना पड़ा तथा बलूच व पठान जातियों का दमन करना पड़ा।[3] इन्हीं सब कारणों से अंग्रेजों ने शासन को संगठित किया, सिंध तथा पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया, पूर्वी तथा पश्चिमी राज्यों को अपने नियन्त्रण में करने का प्रयत्न किया और भारत के राजाओं को अपने पूर्ण अधिकार में किया।

---

[1] "The administration of Marquess of Hastings may be regarded as the completion of the great scheme of which Clive had laid the foundations and Warren Hastings and Wellesley has reared super structure." —Mill.

[2] "He carried through grandest strategical operations even undertaken in India, in the course of which twenty eight actions were fought and a hundred and twenty fortesses taken without a single reverse". —P. E. Roberts.

[3] As the expansion of our dominion carried us so much nearer to foriegn Asiatic countries, our rapid approach to the geographical limits of India proper discovered for us fresh complications and we are now on the brink of collision with new races." —Sir Afred Lyall.

उत्तरी-पूर्वी सीमा

लार्ड हेस्टिंग्ज के उपरान्त कलकत्ता कौंसिल का सीनियर सदस्य **जान एडम्स** गवर्नर-जनरल के पद पर नियुक्त हुआ। उसने सात मास तक शासन किया। उसमे लार्ड एमहर्स्ट ने अगस्त १८२३ ई० में कार्य-भार संभाला। इस समय तक कम्पनी के राज्य की सीमाएँ बर्मा राज्य की सीमाओं से मिल गई थीं और कम्पनी को उस ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया, क्योंकि बर्मा का राजा अपने राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर को करना चाहता था।

अंग्रेजों के बर्मा के साथ सम्बन्ध—सत्रहवीं शताब्दी से अंग्रेजों के बर्मा के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में कम्पनी के राज्य-विस्तार के कारण तथा चीनी-तिब्बत नस्ल की एक जाति का बर्मा पर अधिकार हो जाने से अंग्रेजों और बर्मा के राज्य में राजनीतिक सम्बन्ध की स्थापना होना अनिवार्य हो गया। अभी तक अंग्रेजों की और बर्मा राज्य की सीमाएँ निश्चित नहीं थीं जिसके कारण युद्ध का सदा भय बना रहता था। अंग्रेजी सरकार अन्य-क्षेत्रों में इतनी अधिक व्यस्त थी कि पारस्परिक झगड़ों तथा विवादों का अन्त करने के अभिप्राय से १७९५, १८०२, १८०३, १८०९ तथा १८११ में अंग्रेज राजदूत बर्मा दरबार भेजे गए। इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि बर्मा के राजा ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। दोनों के सम्बन्ध कटु होने लगे। **जब बर्मा के राजा ने कम्पनो से उन व्यक्तियों को माँगा जो बर्मा से भाग आए थे तथा जिन्होंने अंग्रेजी राज्य सें शरण ली थी तो कम्पनी ने उनको देने से साफ इंकार कर दिया।** इस घटना से बर्मा का राजा बड़ा अप्रसन्न हुआ और वह अंग्रेजों का शत्रु बन गया। जिस समय पिंडारियों का दमन करने में अंग्रेज व्यस्त थे उसी समय बर्मा के राजा ने लार्ड हेस्टिंग्ज को एक पत्र लिखा, **जिसमें उसने अंग्रेजों से चटगाँव, ढाका, मुर्शिदाबाद तथा कासिमबाजार के प्रदेश माँगे जो मध्य काल में अराकान के राजा को कर देते थे।** हेस्टिंग्ज ने उस पत्र को जाली कहकर बर्मा के राजा के पास वापिस भेज दिया। यह पत्र हेस्टिंग्ज को उस समय मिला था जिस समय वह पिंडारियों का दमन करने में सफल हो चुका था।

प्रथम बर्मा-युद्ध

तत्कालीन युद्ध का कारण—कुछ समय तक बर्मा के राजा ने अंग्रेजों से किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं किया। वह युद्ध की तैयारियाँ करने में संलग्न हो गया। सन् १८२१-१८२२ ई० में **उसने आसाम के राजा को परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।** आसाम के अधिकार में आ जाने से बर्मा और अंग्रेजी राज्य की सीमाएँ मिल गई। **बर्मा के राजा ने सन् १८२३ ई० में चटगाँव जिले के दक्षिण** में स्थित **शाहपुरी द्वीप पर** अधिकार किया। यहाँ से उन्होंने बंगाल पर आक्रमण करने की तैयारियाँ तथा योजनाएँ बनानी आरम्भ कर दीं। अंग्रेज बर्मा के राजा के इस कार्य को सहन नहीं कर सके; क्योंकि उस द्वीप की भौगोलिक स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। वहाँ से बंगाल पर आक्रमण किया जाना सम्भव था। इस पर **एमहर्स्ट ने** कुछ रक्षकों के साथ एक आयोग की नियुक्ति की। बर्मा वालों ने इनको भगा दिया।

इस पर लार्ड **एमहर्स्ट ने २४ फरवरी, १८२४ ई० को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।**

युद्ध की घटनाएँ—स्थल मार्ग से बर्मा पर आक्रमण उसकी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण करना असम्भव था। वह एक पहाड़ी प्रदेश है और वह जंगल और दलदलों से परिपूर्ण है। अतः अंग्रेजों ने जलमार्ग से बर्मा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उन्होंने बर्मा पर आक्रमण करने के लिए ११०० व्यक्तियों का एक सामुद्रिक बेड़ा जनरल केम्पबैल के नेतृत्व में रंगून पर आक्रमण करने के लिए भेजा। **इसी बीच अंग्रेजों ने बर्मा वालों को आसाम से भगा दिया किन्तु उन्होंने अंग्रेजों को चटगाँव की सीमा पर परास्त किया, जिसके कारण रंगून का अंग्रेजों का अभियान स्थगित नहीं हो सका।**

रंगून पर अंग्रेजों का अधिकार—११ मई, १८२४ ई० को अङ्ग्रेजों ने रंगून पर बिना किसी विरोध के अधिकार कर लिया। इस समय अंग्रेजों को वहाँ खाद्य-पदार्थों के अभाव तथा वर्षा की अधिकता के कारण बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उन्होंने अपने साहस का परित्याग नहीं किया, बर्मा के योग्य सेनापति महा बण्डूला ने अंङ्ग्रेजों से रंगून लेने के लिए उन पर आक्रमण किया, किन्तु अंग्रेजों ने उसको परास्त कर दिया।

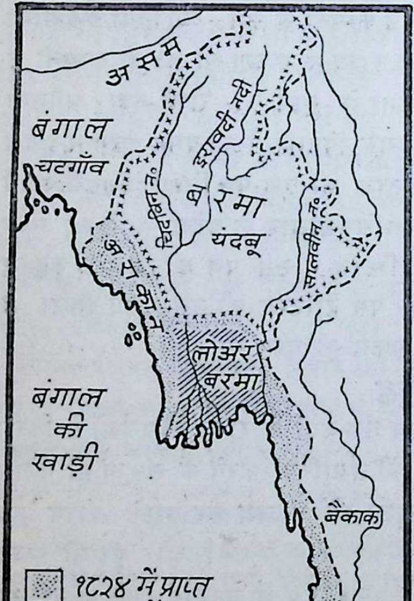

एक अन्य युद्ध में उसकी मृत्यु १८२५ के अप्रैल मास में हुई। शीघ्र ही २५ अप्रैल को कैम्पबैल ने दक्षिण बर्मा की राजधानी प्रोम पर अधिकार कर लिया। इस समय समझौते की वार्ता आरम्भ हुई, किन्तु वह सफल नहीं हो सकी और पुनः युद्ध आरम्भ हो गया। अंगेजों ने यांडबू पर अधिकार किया, यद्यपि वर्मा वालों ने उसकी प्रगति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। २४ फरवरी १८२६ ई० में अग्रेजों और वर्मा के राजा में यांडबू की सन्धि हुई, जिससे प्रथम बर्मा-युद्ध की समाप्ति हुई।

यांडबू की सन्धि—इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुई—

(१) बर्मा सरकार को एक करोड़ रुपये युद्ध क्षति-पूर्ति के लिए अंग्रेजों को देने पड़े।

(२) बर्मा-सरकार ने उनको अराकान तथा टिनासिरम के प्रदेश दिए।

(३) बर्मा-सरकार आसाम, कछार, जयन्तिया के प्रदेशों में किसी प्रकार

का हस्तक्षेप नहीं करेगी ।

(४) मणिपुर राज्य स्वतन्त्र राज्य माना गया ।

(५) बर्मा की राजधानी में एक अंग्रेज राजदूत तथा कलकत्ते में एक बर्मी राजदूत रहेगा ।

इस सन्धि के कुछ ही महीने उपरान्त अंग्रेजों और बर्मा-सरकार में एक व्यापारिक सन्धि हुई ।

यांडबू की सन्धि के परिणाम—यांडबू की सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई, जिसके मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) **बर्मा के समुद्रतट पर अंग्रेजों का अधिकार**—बर्मा के समुद्रतट पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया ।

(२) **आसाम, कछार और मणिपुर पर अंग्रेजों के प्रभाव का विस्तार**—आसाम, कछार और मणिपुर अंग्रेजों के प्रभाव-क्षेत्र में आ गए ।

(३) **अंग्रेजों की विशेष-क्षति**—परन्तु इस युद्ध में अंग्रेजों को बहुत अधिक धन तथा मनुष्यों की क्षति उठानी पड़ी और इसी कारण इस युद्ध को हूंस ने 'सत्यानाशी युद्ध' के नाम से सम्बोधित किया ।

(४) **भारत पर प्रभाव**—इस युद्ध का कुछ प्रभाव भारत पर भी पड़ा । भारत के कुछ व्यक्तियों की यह धारणा हो गई कि अंग्रेजों की शक्ति पतन की ओर अग्रसर होने लगी । इसी धारणा के अन्तर्गत दुर्जनशाल ने भरतपुर के राजा की मृत्यु के उपरान्त जो राजा का अल्पव्यस्क पुत्र अंग्रेजों द्वारा राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया था उसका विरोध किया ।

यांडबू की सन्धि के परिणाम

(१) बर्मा के समुद्रतट पर अङ्गरेजों का अधिकार ।
(२) आसाम, कछार और मणिपुर पर अङ्गरेजों के प्रभाव का विस्तार ।
(३) अङ्गरेजों की विशेष क्षति ।
(४) भारत पर प्रभाव ।

भरतपुर का घेरा—जब लार्ड एमहर्स्ट को यह समाचार विदित हुआ तो उसने प्रारम्भ में तो तटस्थ नीति अपनाई और किसी का पक्ष नहीं लिया, किन्तु जब दुर्जनशाल ने राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया तो अंग्रेजों ने उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया । **शीघ्र ही एक अग्रेजी सेना लार्ड काम्बरमिअर के नेतृत्व में भरतपुर भेजी गई, जिसने भरतपुर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में कर लिया ।** भरतपुर के राजा दुर्जनशाल को पदच्युत कर दिया गया और भरतपुर में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया । अंग्रेजी सेना ने भरतपुर को खूब लूटा, जिसके सम्बन्ध में **सर चार्ल्स मेटकाफ** ने लिखा है कि "हमने जो लूट-खसोट की वह बड़ी अपमानजनक है । जब तक मुझे लूट-खसोट करने वाले व्यक्तियों से छुटकारा प्राप्त नहीं होगा उस समय तक मैं नवयुवक राजा की सत्ता स्थापित नहीं कर सकूंगा, जिसकी रक्षा का आश्वासन हमने दिया है; परन्तु जिस समय से वह

(भरतपुर) हमारे हाथ में आया है हम अन्तिम तोले तक लूट-मार करते रहे।"[1]

बैरकपुर का सैनिक विद्रोह—लार्ड एमहर्स्ट के समय में बैरकपुर के सैनिकों ने विद्रोह किया, जिनका दमन अंग्रेजों ने बड़ी कठोरता से गोली चलाकर किया। कुछ लोगों को फांसी दी गई तथा कुछ से अमानुषिक कार्य करवाए गए।

द्वितीय बर्मा युद्ध

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि यांडबू की सन्धि के कारण अंग्रेजों को पर्याप्त लाभ हुआ था। उनके अधिकार में ब्रह्मा के विशेष प्रदेश आ गए थे। १८३७ ई० में ब्रह्मा के राज्यसिंहासन पर **थरावड़ी** आसीन हुआ था। उसने **यांडबू की सन्धि को मानने से इंकार कर दिया**। उसका यह कार्य ब्रह्मा के संविधान के अनुसार था, क्योंकि बर्मा के संविधान के अनुसार नए राजा द्वारा पुराने अधिकारों को स्वीकृति प्रदान करना अनिवार्य था।[2] अतः उत्तराधिकारी राजा को पुराने राजा की सन्धि मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि अंग्रेजों ने मेरे भाई को परास्त किया, किन्तु मुझको नहीं। यांडबू की सन्धि मानने के लिए मैं किसी भी दशा में बाध्य नहीं किया जा सकता हूँ, क्योंकि यह सन्धि मैंने नहीं की। मैं रेजीडेण्ट से एक साधारण व्यक्ति के समान भेंट करूँगा, किन्तु रेजीडेण्ट की हैसियत से नहीं। वे कब समझेंगे कि मैं केवल इंगलैण्ड के शाही राजदूत से ही भेंट कर सकता हूँ।"[3] इस विचार-धारा के अन्तर्गत अंग्रेज और बर्मावासियों में अच्छे सम्बन्धों का अधिक समय तक रहना असम्भव था। **इसके अतिरिक्त बर्मा का राजा अंगरेजी रेजीडेण्ट के साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं करता था और रंगून में बर्मा के गवर्नर का व्यवहार भी उन अंग्रेजों से अच्छा नहीं था जो यांडबू की सन्धि के उपरान्त रगून** में जाकर व्यापार करने लगे थे। सन् १८४० ई० में रेजीडेण्ट को वापिस बुला लिया गया। अंग्रेज व्यापारी रंगून में मनमानी करने लगे थे। वे हर समय ऐसा कार्य करने की चिन्ता में लगे रहते थे कि उनको कर या चुंगी नहीं देनी पड़े। बर्मा सरकार को उनके आचरण, कार्य, व्यवहार आदि से बाध्य होकर उनके विरुद्ध कठोर नीति अपनानी पड़ी। उन्होंने उन व्यक्तियों को पकड़कर दण्डित किया जिन्होंने राज्य की आज्ञाओं का उल्लंघन किया था। बर्मा की सरकार ने कम्पनी के पदाधिकारियों को रंगून में व्यापार करने वाले व्यक्तियों से अवगत कराया, किन्तु उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। बर्मा में रहने वाले अंग्रेजों ने बर्मा सरकार के

---

[1] "Our plundering here has been very disgraceful...until I can get rid of the prize agents, I cannot establish the sovereignty of the young Raja, whom we come professedly to protect but have been plundering to the last to since he fell into our hands."
—Sir Charles Metcalf.

[2] Within the Burmese Constitution whereby all existing rights lapsed at a new King's accession until he chose to confirm them."
—An Advanced History of India, p. 733.

[3] "The English beat my brother and not me. The treaty of Yandaboo is not binding on me, for I did not make it. I will meet the Resident as private individual but as a Resident never. When will they understand that I can only receive royal ambassadors from England ?"

विरुद्ध प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया और भारत-सरकार से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। **सन् १८५२ ई० में उन्होंने भारत-सरकार से सहायता की याचना की, जिसके आधार पर तत्कालीन भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी ने ब्रह्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।** वास्तव में लार्ड डलहोजी तो ब्रह्मा पर अंग्रेजी पताका फहराने के अवसर की खोज में ही था। वह साम्राज्यवादी नीति से पूर्णतया ओत-प्रोत था और वह बर्मा पर अधिकार करने के लिए इस अवसर से अच्छा अवसर नहीं पा सकता था। उसने शीघ्र ही बर्मा की सरकार से व्यापारियों की क्षति-पूर्ति प्राप्त करने के अभिप्राय से लैम्बर्ट नामक एक अंग्रेज अफसर को एक छोटे से जहाजी बेड़े के साथ जिममें केवल तीन जहाज थे रंगून भेजा। **इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि लार्ड डलहौजी अपनी शर्तों को अपनी तलवार की शक्ति के जोर पर मनवाना चाहता था न कि वह झगड़ों का अन्त वाद-विवाद या वार्ता द्वारा करवाना चाहता था।** २५ नवम्बर १८५२ ई० को लैम्बर्ट अपने जहाजी बेड़े के साथ रंगून पहुँचा। उसने रंगून पहुँचकर आवा के राजा को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर अनेक प्रकार के आरोपों का उल्लेख किया गया था और उसने रंगून के गवर्नर को पदच्युत करने की माँग की।

आवा के राजा द्वारा युद्ध टालने का प्रयत्न—अंग्रेजों के जहाजी वेड़े के रंगून आगमन पर तथा पत्र प्राप्त करते ही आवा का राजा भयभीत हो गया और वह समझ गया कि अंग्रेज युद्ध के लिए कटिबद्ध हैं। वह अंग्रेजों की कूटनीति से परिचित था और जानता था कि उसके देश पर संकट आने वाला है। **उसने युद्ध टालने का भरसक प्रयत्न किया और एक उच्च पदाधिकारी को लैम्बर्ट के पास भेजा, जिसने वचन दिया कि राजा उनकी सम्पूर्ण शर्तों को मानने को तैयार है।** उसने शीघ्र ही रंगून के गवर्नर को पदच्युत कर एक नया गवर्नर उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया।

युद्ध का आरम्भ—जब सन्धि की बातचीत चल रही थी तो लैम्बर्ट ने रंगून के गवर्नर से मिलने की इच्छा प्रकट की और कुछ अफसरों को गवर्नर के पास भेजा। गवर्नर उसके अशिष्टतापूर्ण व्यवहार से बड़ा दुःखी हुआ, जिसके कारण उसने लैम्बर्ट से मिलने को इंकार कर दिया। अंग्रेज इससे बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होने शीघ्र ही ब्रह्मा के जहाज यलोशिप को अपने अधिकार में किया। ब्रह्मा सरकार अंग्रेजों के इस व्यवहार को सहन नहीं कर सकी और उन्होंने अङ्ग्रेजी जहाजों पर गोलाबारी करनी आरम्भ कर दी। अङ्ग्रेजों ने भी उसका जवाब दिया, जिससे द्वितीय ब्रह्मा युद्ध का आरम्भ हो गया।

अङ्ग्रेजों ने रंगून का घेरा डाला। जब लार्ड डलहौजी को यह समाचार विदित हुआ तो उसने बर्मा सरकार के पास एक पत्र भेजा जिसमे क्षमा-प्रार्थना, क्षति-पूर्ति और १,००,००० पौंड के अर्थ-दण्ड की माँग की। ब्रह्मा की सरकार इतने कठोर दण्ड को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुई। उसने युद्ध की तैयारियाँ करनी आरम्भ कर दीं। जब अङ्ग्रेजों को कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ

तो उसने बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और **जनरल गाडविनको** एक विशाल सेना के साथ ब्रह्मा भेजा ।

ब्रह्मा पर अंग्रेजों का अधिकार—अप्रैल १८५२ ई० में अङ्गरेजी सेना जनरल गाडविन के नेतृत्व में रंगून पहुँची । उसने रंगून पहुँचते ही युद्ध करना आरम्भ कर दिया । रंगून पर अधिकार करने के उपरान्त अंग्रेजों ने **बेसीन** पर अधिकार किया। बर्मा की विजय के कार्य को शीघ्रतम समाप्त करने के हेतु लार्ड डलहौजी स्वयं रंगून गया । शीघ्र ही अंगरेजों ने प्रोम और पेगू को अपने अधिकार में किया । इस प्रकार अंगरेजों के अधिकार में बर्मा का समस्त दक्षिणी भाग आ गया। डलहौजी इसी प्रदेश को अपने अधिकर में करना चाहता था । वह उत्तर की ओर नहीं बढ़ा, यद्यपि कुछ व्यक्तियों ने उसको ऐसा करने के लिए कहा था । उसने युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी । डलहौजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि ब्रह्मा का राजा इन प्रदेशों को अंग्रेजों को दे दे, किन्तु ब्रह्मा का राजा इस प्रकार की सन्धि करने को तैयार नहीं हुआ । **अतएव शीघ्र ही लार्ड डलहौजी ने यह घोषणा कर दी कि दक्षिणी बर्मा का प्रदेश अङ्गरेजी साम्राज्य में सम्मिलित** कर लिया गया है । उसने विजित प्रदेशों का एक प्रान्त बनाकर रंगून को उसकी राजधानी बनाया ।

लार्ड डलहौजी की नीति की आलोचनात्मक व्याख्या—लार्ड डलहौजी ने जो **नीति ब्रह्मा के राजा के साथ अपनाई वह पूर्णतया अन्याय तथा असंगत थी।** वास्तव में वह इन प्रदेशों को अंग्रेजी-साम्राज्य में सम्मिलित करना चाहता था और वह केवल अवसर की खोज में था जो उसको शीघ्र ही मिल गया। उसने किसी भी समय इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि वह शान्ति द्वारा समस्त विवादों का अन्त करता और बर्मा के राजा की बातों को ध्यानपूर्वक सुनता । वहाँ के राजा तथा रंगून के गवर्नर ने तो अंग्रेजी व्यापारियों के कार्यों से वशीभूत होकर उनके साथ कठोर व्यवहार किया था, किन्तु उसने (डलहौजी) उस पत्र की ओर भी ध्यान नहीं दिया जो बर्मा के राजा ने उसको लिखा था। इस सम्बन्ध में **आरनोल्ड** का कथन है कि ब्रह्मा का द्वितीय युद्ध किसी भी दशा में न्यायोचित स्वीकार नहीं किया जा सकता है।[1]

अंग्रेज और अफगानिस्तान

भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्या सदा से ही बड़ी विकट तथा संकटमय रही है । इस ओर से सदा ही भारत पर आक्रमण होते रहे हैं और अंग्रेजों के काल में भी रूस का भय सदा अंग्रेजों को रहा । **भारत और अफगानिस्तान के मध्य में कुछ पहाड़ी जातियाँ निवास करती हैं जो बड़ी स्वतन्त्रताप्रिय हैं और जिन्होंने कभी भी किसी राज्य की अधीनता पूर्णतया स्वीकार नहीं की,** यद्यपि अफगानिस्तान **तथा भारत की ओर से इन प्रदेशों तथा जातियों को अधिकार में करने के उद्देश्य से अनेक बार आक्रमण किए गए ।** कोई भी भारतीय राज्य उस समय सुरक्षित नहीं समझा जा सकता था जब तक कि उसकी उत्तरी-पश्चिमी सीमा पूर्णतया सुरक्षित

---

[1] "The Second Burmese-War was neither just in its origin nor marked by strict equity in the conduct or issue."
—Arnold.

न हो। दिल्ली सल्तनत के काल में बलबल और अलाउद्दीन ने इसकी सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उस समय मंगोलों के आक्रमण भारत पर इसी ओर से हो रहे थे। जब इस काल के सुल्तान इस ओर से उदासीन हो गए तो उनको अपने साम्राज्य से हाथ धोना पड़ा। मुगलों ने भारत पर अपनी सत्ता दृढ़ करने के उपरान्त इस ओर विशेष ध्यान दिया। बाद के मुगल शासक भी इस ओर से उदासीन हो गए और भारत पर नादिरशाह और **अहमदशाह अब्दाली** के आक्रमण हुए, जिन्होंने मुगल-साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के द्वारा मरहठा शक्ति को भी बड़ा भारी आघात पहुँचा था। वास्तव में मरहठा-शक्ति का पतन पानीपत के तृतीय युद्ध (१७६१) से ही आरम्भ हो जाता है। जब अंग्रेजों का साम्राज्य सतलज नदी तक पहुँच गया तो कम्पनी को अफगानिस्तान के राज्य से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य हो गया। इस समय अंग्रेजों को रूस के आक्रमण का भय था जो मध्य एशिया में अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करता चला जा रहा था। अतः जब **लार्ड ऑकलैण्ड** भारत का गवर्नर-जनरल बन कर सन् १८३६ ई० में भारत आया तो उसने अफगानिस्तान की ओर विशेष ध्यान दिया। यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि जिस समय लार्ड वैलेजली भारत का गवर्नर-जनरल था उस समय अफगानिस्तान पर जमानशाह शासन कर रहा था जिसका अंग्रेजों के कट्टर शत्रु टीपू से भारत-आक्रमण के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हो रहा था। इसी समय बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सभापति **डण्डास** ने वैलेजली को सूचित किया था कि उस राजकुमार (जमानशाह) की गति-विधि की ओर ध्यान दे, क्योंकि अपनी प्रतिभा, सैनिक शक्ति तथा आर्थिक साधनों के कारण वह अंग्रेजों का विरोधी हो सकता है।" अंग्रेजों ने एक ओर तो अवध के साथ कठोर व्यवहार किया और उसको अपने नियन्त्रण में किया तथा दूसरी ओर अंग्रेजों ने फारस के शाह के पास दूत भेजे। जमानशाह की योजना इस प्रकार अंग्रेजों ने असफल कर दी। सन् १८०३ ई० में शाहशुजा अफगानिस्तान की गद्दी पर आसीन हुआ, किन्तु आन्तरिक कलहों के कारण सन् १८१६ ई० में उसको अफगानिस्तान से भागना पड़ा और उसने अंग्रेजों की शरण ली। अंग्रेजों ने उसकी पेंशन नियुक्त की। इसका कारण यह था कि वे भविष्य में उसका प्रयोग अफगानिस्तान के सम्बन्ध में कर सकें। कई अयोग्य शासकों के शासन के उपरान्त सन् १८२६ ई० में दोस्तमुहम्मद अफगानिस्तान की गद्दी पर आसीन हुआ। अयोग्य शासकों के काल में अफगानिस्तान की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई थी। पारस्परिक कलह तथा संघर्षों के कारण उसकी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा।

अंग्रेजों की दोस्तमुहम्मद के प्रति नीति—दोस्तमुहम्मद में पर्याप्त गुण विद्यमान थे। उसने अपनी शक्ति को दृढ़ करने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु वह अपने राज्य की आन्तरिक तथा बाह्य कठिनाइयों में इतना अधिक ग्रस्त हो गया कि उस पर काबू पाना उसके अधिकार से बाहर हो गया। सन् १८३२ ई० में शाहशुजा ने जो अंग्रेजों के संरक्षण में भारत में रहता था काबुल पर अधिकार करने का प्रयत्न

किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। इधर सिक्ख पूर्व में अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। रणजीतसिंह ने अटक पार कर पेशावर पर अपना अधिकार स्थापित किया। दोस्तमुहम्मद इस समय बड़ी कठिनाइयों में ग्रस्त था। दोस्तमुहम्मद ने जिस समय लार्ड ऑकलैण्ड भारत का गवर्नर-जनरल बन कर आया उसको एक का बधाई-पत्र लिखा और उससे सहायता की प्रार्थना की, किन्तु लार्ड ऑकलैण्ड ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और तटस्थता की नीति का अनुसरण करने का बहाना कर दिया।

रूस के आक्रमण का भय—जब सन् १८३७ ई० में फारम के शाह ने रूसी सहायता द्वारा हिरात पर अधिकार कर लिया तो लार्ड ऑकलैण्ड रूसी आक्रमण से बड़ा भयभीत हो गया और उसका ध्यान रूस की ओर आकर्षित हुआ। वह अब इस निश्चय पर पहुँचा कि रूस के आक्रमण के भय का अन्त करने के लिए अंग्रेजों को अफगानिस्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापिल करना आवश्यक है। जब अंग्रेजों और दोस्तमुहम्मद के मध्य सन्धि की वार्तालाप आरम्भ हुई तो दोस्तमुहम्मद ने उनसे कहा कि वह अंग्रेजों से मित्रता इस शर्त पर करने को तैयार है कि यदि अंग्रेज अपने मित्र राजा रणजीतसिंह से उसको पेशावर दिलवाने का वचन दें। लार्ड ऑकलैण्ड यह वचन देना नहीं चाहता था, क्योंकि इससे शक्तिशाली रणजीतसिंह अप्रसन्न होगा, जिसको अंग्रेज अप्रसन्न करना नहीं चाहते थे। इस प्रकार सन्धि की वार्ता का अन्त हुआ।

दोस्तमुहम्मद का रूस की ओर झुकाव—अंग्रेजों से सन्धि करने के प्रयास में असफल होने पर दोस्तमुहम्मद ने रूस की ओर हाथ बढ़ाया। रूस भी अफगास्तिान से मित्रता करना चाहता था, क्योंकि यह विचार था कि वह इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों को भयभीत करने में सफल होगा और वह यूरोपीय राजनीति में कुछ लाभ अंग्रेजों से प्राप्त कर सकेगा। शीघ्र ही उसने अफगानिस्तान से सन्धि की और उनका राजदूत कावुल पहुँच गया।

अंग्रेजों का दोस्त मुहम्मद से मित्रता करने का प्रयास—यहाँ यह बात भी वतलाना आवश्यक होगा कि जिस समय दोस्तमुहम्मद रूस और फारस से मित्रता की वातचीत कर रहा था और वह अंग्रेजों से साफ जवाब पा चुका था तो अंग्रेजों को वड़ी बेचैनी हो गई थी। उनको अपने साम्राज्य के लिए आपत्ति साफ दीखने लगी थी। ब्रिटिश पर-राष्ट्र मन्त्री पामस्टन ने भारत की सरकार को रूस की अफगानिस्तान में महत्वकांक्षाओं को रोकने का आदेश दिया। इसके अनुमार वर्नम नामक व्यक्ति को व्यापारिक मिशन पर अफगानिस्तान भेजा गया, किन्तु यह स्पष्ट था कि व्यापारिक मिशन एक वहाना-मात्र था, जबकि इस मिशन का वास्तविक उद्देश्य राजनीतिक था। वास्तव में दोस्तमुहम्मद की हार्दिक इच्छा अंग्रेजों से मित्रता करने की थी और बर्नस ने स्वयं लिखा है कि 'यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हम उसके साथ मिलकर कार्य नहीं कर सकते, परन्तु यह प्रतीत होता था, कि गवर्नर-जनरल इन-कौंसिल अयुक्तियुक्त रूप में इस योग्य शासक के विरुद्ध भर्त्सरित है। उन्होंने एक अशिष्ट

में उससे यह मांग की कि वह रूस से सम्बन्ध विच्छेद करले और इस कार्य का परिणाम होगा उससे हम उसकी रक्षा नहीं कर सकेंगे, परन्तु उन्होंने केवल इस का वचन दिया कि पेशावर की वापसी के लिए रणजीतसिंह से अच्छे सम्बन्धों लाभ उठाने का यत्न करेंगे। अंग्रेजों की इस नीति का प्रभाव यह हुआ कि उनका असफल हो गया और वह २६ अप्रैल सन् १८३८ ई० को काबुल से चल पड़ा।

त्रिदलीय सन्धि —जब लार्ड ऑकलैण्ड को यह समाचार विदित हुआ कि दोस्तमुहम्मद ने रूस के राजदूत का बड़ा भव्य स्वागत किया और रूस के साथ उसने सन्धि ती तो उसने रूस के प्रभाव का अन्त करने के उद्देश्य से एक अन्य महत्वपूर्ण र किया, जिसका परिणाम बड़ा घातक सिद्ध हुआ। लार्ड **आकलैण्ड** ने निश्चय या कि राणा रणजीतसिंह की सहायता से शाहशुजा को जो इस समय लुधियाना अंग्रेजों का पेंशन-भोगी था, दोस्तमुहम्मद के स्थान पर काबुल का अमीर बनाया ए। रणजीतसिंह ने सन्धि करने के अभिप्राय से **बर्नस** और **मैकनाटन** दोनों लाहौर गए। २६ जून १८३८ ई० को सिक्खों, शाहशुजा और अंग्रेजों के मध्य एक न्धि हुई। यह इतिहास में त्रिदलीय सन्धि के नाम से विख्यात है।

त्रिदलीय सन्धि की शर्तें—इस सन्धि की निम्नलिखित शर्तें हैं—

(१) दोस्तमुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को काबुल का अमीर बनाया जाए।

(१) शाहशुजा ने वचन दिया कि अफगानिस्तान पर अधिकार करने के परान्त वह अग्रेजों और रणजीतसिंह से सम्बन्ध रक्खेगा।

(३) वह उन दोनों की इच्छा के विरुद्ध किसी विदेशी शक्ति से सन्धि की चीत नहीं करेगा।

(४) उसने अफगानिस्तान में एक अंग्रेजी राजदूत रखने का भी वचन दिया।

(५) उसने हिरात की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया।

(६) उसने सिक्खों द्वारा जीते हुए प्रदेशों पर सिक्खों का अधिकार स्वीकार र लिया।

(७) रणजीतसिंह को शिकारपुर की क्षति-पूर्ति के लिए ५० लाख रुपया या गया।

अतः अंग्रेजों के लिए अफगानिस्तान पर आक्रमण करना अनिवार्य हो गया। फारस के शाह को त्रिदलीय सन्धि का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने हिरात का सितम्बर १८३८ ई० को उठा लिया। घेरा उठाने का अभिप्राय यह था कि गानिस्तान पर रूस के आक्रमण का भय समाप्त हो गया। परिस्थिति के परिन हो जाने पर लार्ड ऑकलैण्ड को अपनी नीति में अवश्य परिवर्तन कर लेना चाहिए , किन्तु उसने किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया और अपनी पूर्व निश्चित ति पर दृढ़ रहा। लार्ड ऑकलैण्ड ने १ अक्टूबर १८३८ को युद्ध की आवश्यकता जोर देते हुए एक घोषणा की जो निम्नलिखित है —

"इस घोषणा का उद्देश्य है कि अफगानिस्तान के पूर्वी प्रान्तों में एक शत्रुक्ति के स्थान पर मित्र-शक्ति की स्थापना हो और हमारी उत्तरी-पश्चिमी सीमा

पर आक्रमण की योजनाओं के विरुद्ध स्थायी दीवार की स्थापना हो।"[1]

प्रथम अफगान युद्ध—अङ्गरेज सेनापति **सर हेनरी फेन लार्ड** आकलैण्ड की अफगानिस्तान-सम्बन्धी नीति का विरोधी था। उसने आक्रमण का नेतृत्व करने से इन्कार कर दिया। इस पर लार्ड ऑकलैण्ड ने उसके स्थान पर सर जॉन कीन को आक्रमणकारिणी सेना का सेनापति नियुक्त किया। "सन्धि की सेना" फिरोजपुर में एकत्रित की गई। पहले यह योजना थी कि यह समस्त सेना पंजाब में को होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगी, किन्तु जब रणजीतसिंह ने अङ्गरेजी सेना को अपने प्रदेश से मार्ग देने से इन्कार कर दिया, तो यह निश्चय किया गया कि शाहशुजा **के पुत्र के साथ सिक्ख सेना अफगानिस्तान पर खैबर दर्रे द्वारा आक्रमण करेगी और अंग्रेजी सेना शाहशुजा के साथ सिन्ध नदी तथा सिन्ध प्रदेश पार कर** बोलन दर्रे से **अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगी।** अङ्गरेजी सेना का सिन्ध में होकर अफगानिस्तान पर आक्रमण करना उस सन्धि के विरुद्ध था जो अङ्गरेजों और सिन्ध के अमीरों के बीच हुई थी। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन से बाद में किया जाएगा। लार्ड ऑकलैंड ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। वह जानता था कि अमीरों में अङ्गरेजी सेना का सामना करने का साहस नहीं है और इसलिए उसने यह कार्य करने में तनिक भी सोच-विचार नहीं किया। अङ्गरेजी सेना ने शीघ्र ही भक्कर पर अधिकार किया। जब सिन्ध के अमीरों ने अङ्गरेजों के कार्य का विरोध किया तो अङ्गरेजों ने उनके व्यवहार को शत्रुतापूर्ण बतलाया और उनको दण्ड देने का निश्चय किया। उनसे कहा गया कि तुमने तीस वर्ष मे शाहशुजा को कर नहीं दिया और उनके [illegible] २५ लाख रुपया अदा करने की मांग रखी गई। उनसे यह भी कहा गया कि इस समय अङ्गरेजों पर आपत्ति आयी हुई है और वे किसी भी पूर्व सन्धि को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। अमीरों को बाध्य होकर अङ्गरेजों की समस्त शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं, किन्तु यह मानना होगा कि लार्ड ऑकलैण्ड का यह कार्य सर्वथा अन्यायसंगत था।

अफगानिस्तान पर अंग्रेजों का अधिकार—भक्कर पर अधिकार करने के उपरान्त अंग्रेजी सेना बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुए बोलन दर्रे को पार करने में सफल हुई। चारे की कमी के कारण बहुत-से पशुओं की मृत्यु हो गई और सैनिकों को असह्य कष्टों का सामना करना पड़ा। **२६ मार्च १८३९ ई० को अंग्रेजी सेना बोलन दर्रा पार कर क्वेटा पहुँची और अप्रैल के मास में** अंग्रेजों का कन्धार **पर अधिकार स्थापित हुआ।** अफगान सरदारों ने शाहशुजा का विरोध करने का निश्चय किया, क्योंकि वह अंग्रेजों की सहायता से अमीर बनना चाहता था और

---

[1] इस घोषणा के सम्बन्ध में हर्बर्ट एडवर्ड्स का कथन है कि 'The views and conduct of Dost Mohammad were misrepresented with a hardihood which a Russian statesman might have envied.' ट्रोटर के शब्दों में, गवर्नर जनरल के दोस्तमुहम्मद के सम्बन्ध में उद्धरण 'unprovoked attack upon our ancient ally for truthfulness with the wolf's complaint in the fable against the lamb' हैं।

उसने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता अंग्रेजों के हाथ बेच दी, किन्तु अंग्रेजों ने उन समस्त सरदारों को धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। इसके पश्चात् अंग्रेजी सेना ने जुलाई मास में गजनी पर अधिकार किया। जब दोस्तमुहम्मद को यह समाचार विदित हुआ तो उसने काबुल छोड़ दिया। अङ्गरेजी सेना गजनी पर अधिकार कर काबुल की ओर बढ़ी और शीघ्र ही ७ अगस्त १८३९ ई० को काबुल पर भी उनका अधिकार स्थापित हुआ। जनता शाहशुजा से घृणा करती थी, क्योंकि उसने अङ्गरेजों की सहायता से राज्य पर अधिकार प्राप्त किया था। इसीलिए उसका राजधानी में प्रवेश एक जनाजे के समान प्रतीत हुआ।[1] दोस्तमुहम्मद ने नवम्बर १८४० में अपने आपको अंग्रेजों को समर्पित कर दिया। वह बन्दी बनाकर कलकत्ता भेजा गया। "**अभियान में सफलता के कारण असैनिक तथा सैनिक अधिकारियों पर उपाधियों की बौछार कर दी गई। ऑकलैण्ड को अार्ल और सेनापति सर जॉन कीने को लार्ड और मैकनाटन को बैरन की उपाधियाँ दी गईं।**"

अफगानों के विद्रोह—अङ्गरेजों को इस अभियान में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। वे शुजा को अफगानिस्तान के राज्यसिंहासन पर आसीन करने में सफल हुए, जिससे उनकी नीति पूर्णतया सफल हुई। दोस्तमुहम्मद बन्दी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया। समस्त अफगानिस्तान अंग्रेजों के चरणों में लोटने लगा, किन्तु शाहशुजा लोकप्रिय शासक न बन सका, अफगान उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसके साथ इस अभियान के ध्येय की पूर्ति के उपरान्त ही नवम्बर १८३९ ई० को राजा रणजीतसिंह की मृत्यु हो गई, जिससे अङ्गरेजों को अफगानिस्तान में पूर्णतया सहायता की आशा थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त सिक्खों में फूट उत्पन्न हो गई, जिसके कारण अङ्गरेजों को अफगानिस्तान में अपनी सेना को सहायता पहुँचाना कठिन हो गया। इसी समय खीव में रूसी सेना को असफलता प्राप्त हुई। अङ्गरेजों ने एलफिन्सटन के नेतृत्व में शाहशुजा की सहायता के लिए एक अङ्गरेज सेना काबुल में रख छोड़ी थी। अफगानों में अङ्गरेजों के व्यवहार से असन्तोष की भावना जागृत होनी आरम्भ हो गई। वे समझ गए थे। कि शाहशुजा की सैनिक शक्ति पर बहुत अधिक धन व्यय हो रहा था, अङ्गरेज दुविधा में पड़ गए। वास्तव में इस समय अङ्गरेजों के लिए यह ही उचित था कि वह अपनी फौजें अफगानिस्तान से हटा लेते, किन्तु आकलैण्ड इसके लिए तैयार नहीं था, क्योंकि इसका अर्थ होता कि उसकी नीति असफल रही। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने मध्य मार्ग का अनुकरण किया। "यह निश्चय किया गया कि अफगानिस्तान में स्थित सेना को रहने दिया जाए और जितना सम्भव हो, पूर्वी अफगानिस्तान के सरदारों को सरकार द्वारा भारत के संचार-सम्बन्ध बनाए रखने के लिए जो वज़ीफा दिया जाता है, इसमें बचत की जाए।" इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सरदार अंग्रेजों की नीति से बहुत असन्तुष्ट हो गए और उन्होंने समस्त दर्रों पर अधिकार कर उनको अंग्रेजों के लिए बन्द कर दिया।

---

[1] "It was more like a funeral broceral procession than the entry o. a king into the capital of his restored dominions." —Kayee

अंग्रेजों की पराजय—समस्त अफगानिस्तान में दोस्तमुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ के नेतृत्व में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी और स्थिति दिन-प्रतिदिन भयंकर रूप धारण करती गई। सन् १८४१ ई० के शरद् काल में समस्त देश में विद्रोह होने लगे, किन्तु अंग्रेज पदाधिकारियों ने स्थिति की वास्तविकता को समझने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। नवम्बर मास में १०० अफगान विद्रोहियों ने अंग्रेजी राजदूत **बर्नस** के निवास-स्थान का घेरा डाला और उसका नृशंसता-पूर्ण वध कर दिया। एलफिन्सटन की सेना ने जो घटना-स्थल से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर थी, किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। **अंग्रेज सेनापतियों के पारस्परिक मत-भेद ने स्थिति को गम्भीर बना दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्रोह का दमन करने का तनिक भी प्रयास नहीं किया गया।** २३ नवम्बर १८४१ ई० को अफगानों ने मैकनाटन को **बमस नामक** स्थान पर परास्त किया। अपनी दयनीय परिस्थिति से बाध्य होकर मैकनाटन को दोस्तमुहम्मद के पुत्र अकबर खाँ से एक बड़ी ही अपमानजनक सन्धि ११ दिसम्बर १८४१ को करनी पड़ी।

सन्धि की शर्तें—इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ कि—

(१) अंग्रेज अफगानिस्तान खाली करें।

(२) दोस्तमुहम्मद को स्वतन्त्र करें।

(३) शाहशुजा को पेंशन लेकर अफगानिस्तान में रहने अथवा वहाँ से चले जाने की छूट होगी।

(४) अकबर खाँ को अपने संरक्षण में अंग्रेजी सेना को सीमा पार कराना होगा।

इसी समय **मैकनाटन** ने अन्य सरदारों से सन्धि की वार्ता चलाना आरम्भ किया, क्योंकि वह अकबर खाँ पर विश्वास नहीं करता था। मैकनाटन का अफगानों ने वध कर डाला। इस काण्ड के कारण सन्धि की शर्तों का पूर्ण होना असम्भव हो गया। जनवरी १८४२ ई० को अङ्गरेजी सेना ने अपना भण्डार तथा अस्त्र-शस्त्र अफगानों को समर्पित कर दिए। ६ जनवरी को १६,००० व्यक्तियों ने बिना अस्त्र-**शस्त्र के वापिस आना प्रारम्भ किया। जब यह सेना वापिस आ रही थी तो अफगानों ने इस सेना पर आक्रमण किया। इन १६,००० व्यक्तियों में केवल एक व्यक्ति डा० ब्रीडन शेष बचा और १२० वह शेष बचे जो अकबर खाँ के पास थे।** अफगानों का यह कार्य बड़ा बर्बरतापूर्ण था, किन्तु इस दुर्घटना का अधिक दोष अफगानों पर न होकर स्वयं अङ्गरेजों पर था, क्योंकि अङ्गरेजों ने समस्त अफगानिस्तान को अपनी सेनाओं से खाली नहीं किया था। केवल काबुल की सेनाएँ वापिस चलीं, किन्तु अन्य स्थानों की सेनाओं ने वापिस जाना स्वीकार नहीं किया, जिससे अफगानों को अङ्गरेजों पर अविश्वास हो गया और उन्होंने उत्तेजना में आकर उक्त काण्ड रच डाला।

लार्ड ऑकलैण्ड की प्रतिक्रिया—जब लार्ड ऑकलैण्ड को इस काण्ड की सूचना प्राप्त हुई तो वह निराश हुआ और एक दम घबरा गया। अफगानिस्तान में स्थिति

सेना की दशा भी शोचनीय हो गई । अफगानों ने जरनल नॉट को जो कन्धार घेर लिया । उसकी सहायता के अभिप्राय से जरनल इंगलैण्ड को भेजा गया, वह हकलजाई के युद्ध में परास्त हुआ । गजनी में पामर ने कुछ समय युद्ध के उपरान्त आत्मसमर्पण कर दिया । लार्ड ऑकलैण्ड ने अपनी भूलों पर पर्दा के अभिप्राय से एक वक्तव्य प्रकाशित किया । उसने अङ्गरेजों की प्रतिष्ठा पुनः करने के उद्देश्य से कुछ असफल प्रयत्न किए, किन्तु जब ये समस्त समाचार पहुँचे तो वह १८४२ ई० में वापिस बुला लिया गया और उसके स्थान पर एलिनबरा भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया ।[1]

लार्ड एलिनबरा (१८४२-१८४४)

लार्ड एलिनबरा ने भारत आते ही लार्ड ऑकलैण्ड की नीति का परित्याग अङ्गरेजी सेना अफगानिस्तान से वापिस बुलाने का निश्चय किया, किन्तु वह नों को उनके कार्य का दण्ड देना चाहता था । वह अफगानिस्तान की राजनीति हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था । इसके साथ-साथ वह अफगानिस्तान में अङ्गरेजों की शक्ति की धाक अवश्य जमाना चाहता था । **उसने शीघ्र ही नॉट तथा पोलक वापिस आने की आज्ञा दी और उनको यह भी आदेश दिया कि वापिस आते काबुल और गजनी पर अपना अधिकार अवश्य स्थापित करें ।** उसके आदेशा- जनरल नॉट ने कन्धार से और पोलक ने जलालाबाद से प्रस्थान किया । ने अकबर खां को **नेहजीन** नामक स्थान पर परास्त किया और वह १५ दिसम्बर काबुल में प्रवेश करने में सफल हुआ । उधर नॉट गजनी को नष्ट-भ्रष्ट कर काबुल ओर चल पड़ा । वह १७ दिसम्बर को काबुल पहुँचा । इस प्रकार अङ्गरेजों की ने काबुल में अपनी पताका फहराई । इसके उपरान्त अङ्गरेजी सेना ने काबुल में मार मचाना आरम्भ कर दिया । अङ्गरेजों ने काबुल के भवनों को नष्ट किया । के बाजार को लूटकर विध्वंस कर दिया गया । अङ्गरेजों ने इस प्रकार नियों से उनके द्वारा किए गए कार्यों का बदला लिया, किन्तु **उन्होंने जिस नीति अपनाया वह एक सभ्य तथा सुसंस्कृत जाति के लिए शोभनीय नहीं थी ।** अङ्गरेजी काबुल, गजनी आदि प्रदेशों में अव्यवस्था उत्पन्न कर भारत आयी । वे गजनी अपने साथ एक फाटक भी लाए जिसको वे सोमनाथ के मन्दिर का फाटक समझते जिसे महमूद गजनवी सोमनाथ पर आक्रमण के उपरान्त भारत से ले गया था, वह सोमनाथ का फाटक न होकर कहीं और का फाटक था ।

एलिनबरा की घोषणा—लार्ड एलिनबरा अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न । वह स्वयं वापिस आने वाली सेना का स्वागत करने के लिए फीरोजपुर गया, सेनाओं का बड़ा शानदार स्वागत किया गया । लार्ड एलिनबरा ने एक घोषणा जिसमें उसने लार्ड ऑकलैण्ड की अफगानिस्तान सम्बन्धी-नीति की कटु-आलोचना

---

[1] "He made some ill fated efforts to retrive British prestige, but was on compelled to leave his office, and lord Ellinborough (1842—1844) took rge of it on the 28th February, 1842".

—An Advanced History of India. p. 757.

की ओर कहा कि "गवर्नर-जनरल अफगानों के द्वारा किसी ऐसी सरकार को, पड़ौस के राज्यों के साथ शान्ति बनाए रखने की इच्छुक हो और उसके योग्य स्वेच्छा से स्वीकार करने को तैयार है।" इस घोषणा में यह भी कहा कि " विजयी सेनाएँ अफगानिस्तान से सोमनाथ के मन्दिर का द्वार ले आईं और पिटा महमूद का मकबरा गजनी के अवशेषों की ओर निहार रहा था। आठ सौ का बदला चुका दिया गया है।"[1]

एलिनबरा की यह घोषणा सर्वसाधारण व्यक्तियों को भी धोखे में नहीं सकी। वे शीघ्र ही वास्तविकता समझ गए कि अङ्गरेजों का अफगानिस्तान वापिस आना उनकी नीति की पराजय का उल्लेख करता है। अङ्गरेजों को मुहम्मद को मुक्त करना पड़ा जो बिना किसी विरोध के पुनः कावुल के राज्य पर आसीन हुआ। अङ्गरेजों की नीति पूर्णतया असफल रही।

अंग्रेजों की विफलता के कारण—प्रथम अफगान युद्ध में अङ्गरेजों विफलता के कई कारण थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(१) लोकप्रिय अमीर को च्युत करने का प्रयास—अंग्रेजों ने यह किया कि दोस्तमुहम्मद के स्थान पर शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर जाए। दोस्तमुहम्मद अफगानों लोकप्रिय शासक था, जबकि भगोड़ा था और जनता की दृष्टि में मान और प्रतिष्ठा बिलकुल भी नहीं उसने एक बार पूर्व भी अमीर बनने प्रयास किया था, किन्तु उसको जनता दोस्तमुहम्मद की अपेक्षा बहुत समर्थन प्राप्त हुआ। अंग्रेजों की यह दर्शिता थी, क्योंकि जन-मत के में किसी भा व्यक्ति का राज्य नहीं हो सकता। जनता ने जब अनुभव किया कि उसने अफगानिस्तान स्वतन्त्रता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के से अङ्गरेजों के हाथ बेच दी तो हृदय में उसके प्रति घृणा की जागृत हो गई।

अंग्रेजों की विफलता के कारण

(१) लोकप्रिय अमीर को च्युत करने का प्रयास।
(२) अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश होना।
(३) यातायात में कमी।
(४) अयोग्य तथा अदूरदर्शी पदाधिकारी।
(५) लार्ड ऑकलैण्ड का परिस्थिति को समझने का प्रयास न करना।
(६) अङ्गरेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना।

(२) अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश होना—अफगानिस्तान एक प्रदेश था। ऐसे प्रदेश में सैनिक कार्यवाही का सफल होना असम्भव था।

---

[1] "Our victorious army bears the gates of the temple of Somnath in triumph from Afghanistan and the despoiled tomb of Sultan Mahamod upon the ruins of Ghaznee. The insult of 800 years is avenged."
—Lord Ellinbor

(३) यातायात में कमी—अङ्गरेजों को यातायात की भी पर्याप्त कमी थी। ऐसा विचार था कि पंजाब के द्वारा उनको इसका अभाव नहीं होगा, किन्तु रणजीतसिंह की मृत्यु के कारण यह कठिनाई विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। इस कारण खाद्य-सामग्री तथा सेना की कमी हो गई।

(४) अयोग्य तथा अदूरदर्शी पदाधिकारी—जिन व्यक्तियों के हाथ में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व था वे सब अयोग्य तथा अदूरदर्शी थे। इसके अतिरिक्त उनमें पारस्परिक सहयोग का सर्वथा अभाव था। एलफिन्सटन यद्यपि वीर था, किन्तु अस्वस्थ्य होने के कारण कार्य करने में उदासीन रहा।

(५) लार्ड ऑकलैण्ड का परिस्थिति को समझने का प्रयास न करना—यह युद्ध अनिवार्य नहीं था। **यदि लार्ड ऑकलैण्ड परिस्थिति को समझने का प्रयास करता तो प्रथम अफगान युद्ध को टाला जाना सम्भव था।** वास्तव में दोस्तमुहम्मद रूस की अपेक्षा अंग्रेजों की ओर अधिक आकर्षित था। लार्ड ऑकलैण्ड ने अपनी अयोग्यता के कारण परिस्थिति को शोचनीय बना दिया। दोस्तमुहम्मद की शर्त केवल पेशवार प्राप्त करना थी। यह असम्भव था कि रणजीतसिंह को अप्रसन्न किए बिना वह पेशवार को दोस्तमुहम्मद को दिलाने में सफल हो सकते थे, किन्तु लार्ड ऑकलैण्ड ने भी इस शर्त को स्वीकार नहीं किया।

(६) अंग्रेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना—लार्ड ऑकलैण्ड के इस निर्णय ने कि अङ्गरेजी सेना अफगानिस्तान में रहे अफगानों में असन्तोष की भावना उत्पन्न कर दी। वास्तव में जब अंग्रेजों ने यह अनुभव कर लिया था कि शाहशुजा लोकप्रिय नहीं था तो उनको शाहशुजा के स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को अमीर बनाना चाहिए था जो लोकप्रिय होता और जिसको राज्य पर अधिकार स्थापित करने के लिए अंग्रेजी सेना की सहायता की आवश्यकता का अनुभव नहीं करना पड़ा।

प्रथम अफगान युद्ध का मूल्यांकन—लार्ड आकलैण्ड के शासन-काल की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना है जिसका उद्देश यह था कि रूसी प्रभाव का अफगानिस्तान से अन्त कर अंग्रेजी प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार किया जाए। रूस मध्य एशिया में अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने में संलग्न था। **उसके प्रभाव का अन्त करने के लिए यह अवश्य आवश्यक था कि अफगानिस्तान पर अंग्रेज अपने प्रभाव की स्थापना करें, किन्तु जिन साधनों तथा कार्यों द्वारा लार्ड ऑकलैण्ड ने इस उद्देश्य की पूर्ति करने का प्रयास किया उसको उचित तथा न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता।** इसी कारण इतिहासकारों ने लार्ड ऑकलैण्ड की अफगान नीति की कटु-आलोचना की है। अंग्रेजों को इस युद्ध से कोई भी लाभ नहीं हुआ, वरन् इसके विपरीत बड़ी हानि उठानी पड़ी, जिससे उनकी प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुँचा।

(१) अनावश्यक आक्रमण—अफगानिस्तान पर अंग्रेजों द्वारा आक्रमण करना पूर्णतया अनावश्यक था। यह आक्रमण न आवश्यक ही था और न नैतिक दृष्टि से ही उचित था। दोस्तमुहम्मद अंग्रेजों से मित्रता का पक्षपाती था। जिस समय लार्ड ऑकलैण्ड भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया दोस्तमुहम्मद ने उससे

सहायता की प्रार्थना की थी, किन्तु लार्ड ऑकलैण्ड ने तटस्थता की नीति का पीटकर उसकी प्रार्थना की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अतः दोस्तमुहम्मद अंग्रेजों की ओर से निराश होकर फारस और रूस की ओर झुका। उसने शायद कार्य इसलिए किया हो कि उसको अंग्रेजों की सहायता प्राप्त हो जाए और अंग्रेज अपने मित्र रणजीतसिंह से पेशावर उसको दिला दें। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों को अमीर की बाह्य नीति पर नियन्त्रण रखने का कोई अधिकार नहीं था। दोस्तमुहम्मद स्वतन्त्र शासक था। इस आधार पर वह स्वतन्त्र था कि वह अपने हितों की प्राप्ति के लिए किसी भी विदेशी शक्ति से मित्रता रख सकता था। यद्यपि फारस की सेनाओं ने हिरात के घेरे को सितम्बर १८३८ ई० में उठा लिया था, किन्तु फिर भी नवम्बर १८३८ ई० को लार्ड ऑकलैण्ड ने अंग्रेजी सेनाओं को अफगानिस्तान में घुसा दिया। यह उसकी भयंकर भूल थी। जब रूसी आक्रमण का भय समाप्त हो गया था तो उसको आक्रमण करने के स्थान पर दोस्तमुहम्मद को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना चाहिए था, किन्तु उसके स्थान पर भगोड़े शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर बनाकर लार्ड ऑकलैण्ड ने विपत्ति को स्वयं बुलाया। परिस्थिति से बाध्य होकर दोस्तमुहम्मद को मुक्त किया गया और वह पुनः अमीर बना। अंग्रेजों के व्यवहार से वह उनका शत्रु बन गया। इस प्रकार अफगान-युद्ध पूर्णतया असफल रहा। अंग्रेजों ने जो योजना अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए बनाई थी वह योजना भी "एक कुशल राजनीतिक की अपेक्षा पागल की नीति थी।"[1] अंग्रेजों के लिए आवश्यक था कि जब उनको यह ज्ञात हो गया कि जनता शाहशुजा को अमीर बनाना तथा अंग्रेजी सेना का अफगानिस्तान में रहना नहीं चाहती तो उनको चाहिए था कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को अमीर बनाते जो उनका मित्र भी रहता तथा अफगानों में लोकप्रिय भी होता। ऐसा करके उनको अपनी सेनाएँ शीघ्र ही अफगानिस्तान से हटा लेनी चाहिए थी, किन्तु लार्ड ऑकलैण्ड ने ऐसा न कर विनाश तथा आपत्ति को निमन्त्रण दिया।

(२) **कम्पनी की क्षति**—ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इस युद्ध में लगभग २० हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई और ५० लाख रू० व्यय हुआ। इतनी अधिक जन तथा धन की हानि होने पर अंग्रेजों को कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ; क्योंकि अङ्गरेजों का जो उद्देश्य था कि अफगानिस्तान को अपना मित्र बनाकर मध्य एशिया से रूसी प्रभाव का अन्त किया जाए, बिल्कुल भी प्राप्त नहीं हुआ। इसी बात को लेकर काई ने कहीं ही कहा है कि "इतिहास के पृष्ठों में इतनी विशाल असफलता का उल्लेख कहीं नहीं

प्रथम युद्ध का मूल्यांकन

(१) अनावश्यक आक्रमण।

(२) कम्पनी की क्षति।

---

[1] "The plan violated all the conditions of sound tragedy and was th
of a lunatic rather than of a sane statesman." —Smith

मिलता और न विश्व के इतिहास में इतना शानदार तथा प्रभावोत्पादक पाठ ही मिलता है।"[1] इस धन का समस्त भार भारतीय जनता को उठाना पड़ा।

लार्ड ऐलिनबरा की नीति पर एक दृष्टि—लार्ड ऐलिनबरा ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध में उचित नीति को नहीं अपनाया। यह सत्य है कि उसने अंग्रेजी फौजों को वापिस आने का आदेश दिया, किन्तु उसके साथ-साथ उसने यह भी आदेश दिया था कि वे गजनी, काबुल तथा कन्धार पर अधिकार करके ही वापिस आएँ। इस कार्य के करने में अंग्रेजी सेना ने इन प्रदेशों में अफगानों के साथ कठोर व्यवहार किया। अनेक गाँव जला दिए गए और काबुल का बाजार तोपों से उड़ा दिया गया। कुछ विद्वानों का कहना है कि **वह स्वय इन कार्यों के प्रति उत्तरदायी नहीं था, किन्तु वे** भूल जाते हैं कि **उसकी शिमला घोषणा ने अंग्रेजों के हृदय में प्रतिशोध की भावना** जागृत **कर दी थी।** उसने वापिस आयी हुई सेना का स्वयं फीरोजपुर पहुँचकर बड़ा भव्य स्वागत किया और कहा कि ८०० वर्ष के अपमान का बदला लिया गया है। इस घोषणा से लाभ की आशा नहीं थी, वरन् हानि की सम्भावना अधिक थी।[2] इतिहासकार **इन्स** इससे सहमत है "कि यह भारत में हुई समस्त ब्रिटिश-इतिहास की सबसे बड़ी भूल थी।"[3]

सिन्ध विजय

इससे पूर्व कि अंग्रेजों द्वारा किस प्रकार सिन्ध की विजय की गई यह बतलाना आवश्यक होगा कि अंग्रेजों का ध्यान सिन्ध प्रदेश की ओर पर्याप्त समय से आकर्षित था। **अफगान-युद्ध के कारण अंग्रेजों ने सिन्ध की विजय करना अपने लिए अत्यन्त आवश्यक समझा।** सिन्ध नदी की दक्षिण घाटी का प्रदेश सिन्ध प्रदेश कहलाता था। यह अहमदशाह दुर्रानी के साम्राज्य का एक प्रदेश था। अहमदशाह की शक्ति का पतन होने के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों का सिन्ध प्रदेश पर से अधिकार समाप्त हो गया। तालपुर-परिवार के अमीरों ने सिन्ध पर अपना अधिकार स्थापित किया। यह परिवार मूलतः बिलोचिस्तान का था। इनकी शक्ति के तीन केन्द्र हैदराबाद, खैरपुर और मीरपुर थे। ये तीनों स्वतन्त्र रूप से शासन करते थे। अङ्गरेजों ने इन तीनों को स्वतन्त्र मानकर तीनों से अलग-अलग सन्धियाँ की थी।

अंग्रेजों की अमीरों से सन्धियाँ—अंग्रेजों ने सिन्ध प्रदेश में सन् १७०८ ई० याटा नामक स्थान पर अपनी एक फैक्टरी की स्थापना की, किन्तु कुछ समय चात् फैक्टरी बन्द कर दी गई। उन्होंने सन् १८०९ ई० में फ्रांसीसी प्रभाव का

---

[1] "No failure so total and so overwhelming as this is recorded in the ages of history. No lesson so grand and impressive is to be found in all the nals of the world."

—Kayee.

[2] "The folly of the thing was past all denial. It was a folly of the most enseless kind, for it was calculated to please none and to offend many."

—Kayee.

[3] "The most unqualified blunder committed in the whole history of the ritish India."

—Innes.

अन्त करने के अभिप्राय से सिन्ध के अमीरों से एक सन्धि की। यह सन्धि १८२० ई० में दोहराई गई। **सन् १८३१ ई० में एलेक्जेण्डर बर्न्स ने सिन्ध नदी द्वारा लाहौर तक यात्रा की।** इस यात्रा का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को सिन्ध प्रदेश के व्यापारिक तथा राजनीतिक महत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया। अब केवल अंग्रेज उस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिए स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। पंजाब का राजा रणजीतसिंह सिन्ध प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु अंग्रेजों ने उसको ऐसा नहीं करने दिया। उसने सिन्ध के बँटवारे का प्रश्न अंग्रेजों के सामने रखा, किन्तु अंग्रेजों ने उसको स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे तो स्वयं सिन्ध को अपने अधिकार में करना चाहते थे। इस समय भारत का **गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिक था। उसने सिन्ध के अमीरों को बाध्य कर २० अप्रैल १८३२ ई० को एक सन्धि की, जिसके अनुसार अंग्रेजों को सिन्ध की नदी तथा सड़कों का प्रयोग व्यापारिक उद्देश्य से करने का अधिकार प्राप्त हो गया, किन्तु उनको सिन्ध प्रदेश में सेना व सेना का सामान रखने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ और यह निश्चय हुआ कि दोनों दल एक-दूसरे के प्रदेशों को लालचभरी दृष्टि से नहीं देखेंगे।** सन् १८३४ ई० में यह सन्धि पुनः दोहराई गई। २० अप्रैल १८३८ ई० को लार्ड ऑकलैण्ड ने सिन्ध के अमीरों के साथ एक सन्धि की थी और उनको बाध्य कर हैदराबाद में अंग्रेज रेजीडेण्ट रखने की अनुमति प्राप्त की।

सन्धि की अवहेलना—प्रथम अफगान-युद्ध के लिए जो सेनाएँ भेजी गईं वे सिन्ध प्रदेश में होकर गई थीं, क्योंकि राजा रणजीतसिंह ने उनका पंजाब से जाना स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार अंग्रेजों ने १८३२ ई० की सन्धि की अवहेलना की। लार्ड ऑकलैण्ड का यह व्यवहार पूर्णतया अन्यायसंगत था। अंग्रेजों ने उनसे कहा "कि उन्होंने पर्याप्त समय से शाहशुजा को कर नहीं दिया, यद्यपि वह शाहशुजा द्वारा सन् १८३३ ई० में इस कर के देने से मुक्त कर दिए गए थे। जब उन्होंने कर देने में आनाकानी की तो उनको यह धमकी दी गई कि हमारे पास उनको कुचलने और विनष्ट करने की शक्ति है और यदि हमारे साम्राज्य अथवा उसकी सीमा की अखण्डता तथा सुरक्षा के लिए इसकी तनिक-सी भी आवश्यकता का अनुभव किया जाएगा तो हम उसका प्रयोग करने के लिए तनिक भी हिचकिचाहट नहीं करेंगे।"[1] **बेचारे अमीरों के पास अब कोई अन्य साधन नहीं रहा और उन्होंने गवर्नर-जनरल की बातों को स्वीकार कर लिया।** फरवरी सन् १८३९ ई० में जब जनरल कीन सिन्ध प्रदेश में को अंग्रेजी सेना लेकर अफगानिस्तान के लिए जा रहा था तो अंग्रेज और सिन्ध के अमीरों के मध्य एक सन्धि हुई जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि—

---

1. "But they were given a warning to the effect that the British Government had the power to crush and annhilate them and......will not hesitate to call it into action, should it appear requisite however remotely for either the integrity or safety "of the Empire, or its frontiers."

—An Advanced History of India, P. 761.

(१) अंग्रेजों को सिन्ध के अमीर तीन लाख रुपया प्रतिवर्ष उस सेना के व्यय की पूर्ति के लिए देंगे जो सिन्ध में रखी जाएगी।

(२) सिन्ध पर अंग्रेजों का संरक्षण होगा।

लार्ड एलिनबरा की सिंध विजय—सिन्ध का दुर्भाग्य अभी समाप्त नहीं हुआ। अंग्रेजों की इच्छा थी कि **अफगानिस्तान की विफलता को सिन्ध की विजय द्वारा पूर्ण किया जाए। वे अब बहाना खोजने में लग गए।** शक्तिशाली को बहाना भी शीघ्र मिल जाता है। यहाँ भेड़िए और मेमने वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। अंग्रेजों ने सिन्ध के अमीरों पर झूठे आरोप लगाए, यद्यपि उन्होंने बड़ी निष्ठा के साथ अंग्रेजों की सहायता प्रदान की थी। अंग्रेजों ने सिन्ध के अमीरों से एक नई सन्धि करने के लिए सन् १८४२ ई० में **सर चार्ल्स नेपियर** को सिन्ध भेजा। लार्ड एलिनबरा ने उसको पर्याप्त सैनिक तथा राजनीतिक अधिकारों से सुशोभित कर सिन्ध भेजा था। उसके व्यवहार से **अमीर भयभीत हो गए और** बाध्य होकर उन्होंने अंग्रेजों से सन्धि की। इसके **अनुसार** यह निश्चय हुआ कि ३ लाख रुपए वार्षिक देने के स्थान पर सिन्ध के अमीर कम्पनी को सिन्ध का एक भाग प्रदान करेंगे, सिन्ध में चलने वाले जहाजों के लिए ईंधन का **प्रबन्ध** अमीर करेंगे। सिक्के ढालने का अधिकार अमीरों से छीन लिया गया। अंग्रेजों ने यह महत्वपूर्ण अधिकार अपने हाथ में ले लिया।

सन्धि की शर्तों पर अमीर हस्ताक्षर भी नहीं करने पाए थे कि **नेपियर** ने इमामगढ़ के दुर्ग पर अपना सैनिक बल दिखाने के अभिप्राय से आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया। बाद में यह दुर्ग उड़ा दिया गया। अमीरों ने **ऑउटरम** से हैदराबाद छोड़ देने को कहा जो सिन्ध में ब्रिटिश कमिश्नर के पद पर नियुक्त हुआ था। जब उसने उनकी बात मानने से इंकार कर दिया तो अमीरों ने अंग्रेजी रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध का आरम्भ—नेपियर को सिन्ध-विजय करने का स्वर्ण अवसर शीघ्र हाथ लगा। इस समाचार के मिलते ही उसने युद्ध की घोषणा कर दी। ११ फरवरी १८४३ ई० में **मियानी** के युद्ध में सिन्ध के अमीर परास्त हुए। हैदराबाद के युद्ध तथा अमरकोट के युद्धों में भी अंग्रेजों की विजय हुई। **इन पराजयों से सिन्ध के अमीरों का साहस तथा धैर्य टूट गया और उन्होंने आत्म-समर्पण किया।** सर चार्ल्स नेपियर ने शीघ्र ही गवर्नर-जनरल को सूचित किया कि उसने सिन्ध पर अधिकार कर लिया। गवर्नर-जनरल ने सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की घोषणा की। नेपियर सिन्ध का गवर्नर बना। उसको ७०,००० पौंड प्राप्त हुए **और ऑउटरम** को ३,००० पौंड मिले। उसने इस धन को लेने से इंकार कर दिया, यद्यपि उसकी आर्थिक स्थिति नेपियर की अपेक्षा खराब थी।

एलिनबरा की नीति पर विहंगम दृष्टि—लार्ड एलीनबरा तथा सर चार्ल्स नेपियर ने सिन्ध में जिस नीति को अपनाया उसकी इतिहासकारों ने बड़ी कटु आलोचना की। सिन्ध-विजय लूट अथवा डाके के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थी। इतिहासकार इन्स का कथन है कि "यदि अफगान घटना हमारे भारतीय इतिहास

में सबसे अधिक विनाशकारी है तो नैतिक दृष्टि से सिन्ध की घटना और भी अधिक लज्जानक है।"[1] इस सम्बन्ध में स्वयं नेपियर ने अपनी डायरी में लिखा है कि "हम लोगों को सिन्ध पर अधिकार स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं है, तो भी हम लोग उसको अपने अधिकार में अवश्य करेंगे और यह बहुत ही लाभदायक, उपयोगी और मानवीय ढंग की शैतानी होगी।"[2] इस काण्ड के विषय में **एलफिन्सटन** ने लार्ड एलिनबरा की तुलना उस क्रोधी व्यक्ति से की है जो गलियों में मार खाता फिरता है, किन्तु अपनी मार का बदला अपने घर में अपनी पत्नी को मार कर लेता है।[3]

सिन्ध पर अङ्गरेजी राज्य की स्थापना कर ली गई। नेपियर को वहाँ का गवर्नर पद प्रदान किया गया। उसने शासन को सुव्यवस्थित किया तथा उसने प्रशंसनीय उत्साह तथा योग्यता का पूर्ण परिचय दिया।

सिक्खों का उत्कर्ष और पतन

गत पृष्ठों में सिक्खों का कई स्थानों पर वर्णन किया गया है। पाठक भली प्रकार परिचित हैं कि सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना गुरु नानक ने की और मुगलों की नीति के कारण शान्तिमय सम्प्रदाय किस प्रकार सैनिक सम्प्रदाय बन गया और उसने अपना उत्थान एक सैनिक जाति के रूप में करना आरम्भ कर दिया। इनका मुगल बादशाह औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों से संघर्ष चलता रहा, किन्तु इन संघर्षों के कारण सिक्खों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

सिक्खों का उत्कर्ष—पानीपत के तृतीय युद्ध के पूर्व पंजाब पर मरहठों का अधिकार था। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से मरहठों की शक्ति तथा मुगलों की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा और पंजाब में अव्यवस्था की स्थापना हो गई। सिक्ख जाति ने इस अव्यवस्था का पूर्ण लाभ उठाकर सम्पूर्ण पंजाब को अपने अधिकार में किया। उन्होंने अफगान सेनापतियों को पंजाब का परित्याग करने पर बाध्य किया। समस्त पंजाब पर सिक्खों की १२ मिस्लों का अधिकार था। यह **एक संघ-शासन के समान था, किन्तु केन्द्रीय शक्ति बहुत दुर्बल थी** जिसके कारण **मिस्लें स्वतन्त्र रूप से शासन करने लगीं।** जब सामान्य शत्रु अफगानों की शक्ति का पूर्णतया अन्त हो गया तो इनमें पारस्परिक स्पर्धा तथा प्रतिद्वद्विता का युग आरम्भ हो गया जिसके कारण इनमें संघर्ष होना आरम्भ हो गया। इस समय सिक्खों में एक ऐसे व्यक्ति की विशेष आवश्यकता थी जो इन मिस्लों को अपने नियन्त्रण में कर केन्द्रीय शासन को सशक्त बनाकर राज्य-कार्य करे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम काल में रणजीतसिंह नामक साहसी, योग्य तथा महत्वकांक्षी पुरुष ने इस कार्य को

---

[1] "If the Afghan episode is the most disastrous in our Indian annals, that of Sindh seize morally even less excusable." —Innes.

[2] "We have no right to seize Sindh, yet we shall do so, and a very advantageous, useful human piece of rascality it will be." —Napier.

[3] "Coming after Afghanistan, it put one in mind of a bully who had been kicked in the streets and went home to beat his wife in revenge, it was the tale of Afghan storm." —Elphinstone.

अपने हाथ में लिया, जिसने समस्त छोटे-छोटे राज्यों की स्वतन्त्रता का अन्त कर पंजाब में सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की।

रणजीतसिंह का प्रारम्भिक जीवन—रणजीतसिंह का जन्म सन् १७८० ई० के नवम्बर के मास में हुआ था। उसके पिता का नाम महानसिंह था जो सुकरचकिया मिस्ल का नेता था। उसकी अवस्था केवल १२ वर्ष की थी जब उसके पिता का देहान्त सन् १७९२ ई० में गुजरात में हो गया। वह अपनी मिस्ल का नेता बन गया। उसने आस-पास के प्रदेशों को अपने अधिकार में करना आरम्भ किया। **सन् १७९८ ई० में अफगानिस्तान के अमीर जमांशाह ने पंजाब पर आक्रमण किया। उसने उसकी सहायता की, जिसके उपलक्ष में जमांशाह ने रणजीतसिंह को लाहौर की सूबेदारी के पद पर नियुक्त किया।** इससे उसके मान तथा प्रतिष्ठा को बड़ा योग प्राप्त हुआ। शीघ्र ही उसने अपना कार्य-क्रम निश्चित किया। **सन् १८०८ ई० में उसने अमृतसर पर अधिकार किया और सन् १८०९ ई० तक सतलज नदी के तट की कई मिस्लों पर अधिकार किया।** अब उसने महाराजाधिराज की पदवी से अपने को सुशोभित किया।

रणजीतसिंह और होल्कर—पाठकों को विदित होगा कि १८०५ ई० में लार्ड लेक ने होल्कर को परास्त किया। वह पंजाब की ओर भागा और रणजीतसिंह से अङ्गरेजों के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की, किन्तु रणजीतसिंह ने उसको किसी प्रकार की सहायता देना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि **वह जानता था कि होल्कर को सहायता देने का अर्थ होगा अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेना, जिसके लिए वह तैयार नहीं** था। होल्कर को उसके इस व्यवहार से बड़ी निराशा हुई। ऐसा कहा जाता है कि उसने ताना देते हुए रणजीतसिंह से कहा था कि अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी के प्रति आपका यही धर्म-पालन है, तो याद रखिए मेरे कुल में तो राज्य रह जाएगा, किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र ही अन्त होगा।' होल्कर की बात कुछ ही समय बाद सत्य हो गई।

अमृतसर की सन्धि—सतलज नदी के पश्चिम के प्रदेशों को अपने अधिकार में करने के उपरान्त रणजीतसिंह ने इस नदी के पूर्वी प्रदेशों को अपने अधिकार में करने की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। वह अभी तक उसके पार की सिक्ख मिस्लों पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका था। उसने उसको अपने अधिकार में लाने के लिए तीन बार आक्रमण किया। जब वह अपने उद्देश्य में सफल होने ही वाला था कि अङ्गरेजों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उसके रोकने का निश्चय किया, किन्तु वे उससे युद्ध करना नहीं चाहते थे। अतः लार्ड मिण्टों ने दिल्ली से मेटकाफ को लाहौर भेजा कि वह उसके साथ एक सन्धि की वार्ता चलाए। उसने उसको आदेश दिया था कि वह रणजीतसिंह से आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक सन्धि करने का प्रयत्न करे। **मेटकाफ** शीघ्र ही लाहौर पहुँचा और उसने रणजीतसिंह के सामने अपनी शर्तें रखीं। **रणजीतसिंह उसकी शर्तों के मानने को इस शर्त पर तैयार हुआ कि कम्पनी उसको सिक्ख राज्य का पूर्ण प्रभु स्वीकार करे।** शायद अंग्रेज उसकी

शर्त मान जाते यदि यूरोपीय स्थिति में परिवर्तन न हो जाता। अंग्रेजों को इस समय फ्रांसीसी आक्रमण का भय कम हो गया था, क्योंकि नैपोलियन स्पेन के युद्ध में बुरी तरह फंस गया था और अङ्गरेजों ने तुर्की के सुल्तान से अच्छे सम्बन्धों की स्थापना कर ली थी। अङ्गरेजों ने रणजीतसिंह को सन्धि करने पर बाध्य किया। सतलज के तट पर अङ्गरेजों ने अपनी सेना को भी एकत्रित कर लिया था। रणजीतसिंह के हृदय में यह भय उत्पन्न हो गया कि यदि वह अङ्गरेजों की शर्तों के अनुसार सन्धि करने को उद्यत नहीं होगा तो अङ्गरेज सतलज नदी के पार के सिक्खों का समर्थन कर उसके राज्य पर आक्रमण कर देंगे। अतः उसने २५ अप्रैल सन् १८०९ ई० में **अङ्गरेजों से अमृतसर की सन्धि की।**

सन्धि की शर्तें—इस सन्धि के अनुसार (i) रणजीतसिंह के राज्य की सीमा सतलज नदी निश्चित कर दी गई। सतलज तक के प्रदेशों पर अङ्गरेजों ने अपना अधिकार स्थापित किया तथा वहाँ के सिक्ख राज्यों से मित्रता की। (ii) अङ्गरेजों ने लुधियाना नामक स्थान पर अङ्गरेजी सेना रखनी आरम्भ कर दी। इस सेना के रखने का उद्देश्य यह था कि रणजीतसिंह किसी भी समय इस ओर आक्रमण न कर सके। रणजीतसिंह ने अपने जीवन-काल में इस सन्धि को भंग करने का कभी भी विचार नहीं किया। वह जीवन-पर्यन्त अङ्गरेजों का मित्र बना रहा।

रणजीतसिंह का साम्राज्य-विस्तार—रणजीतसिंह बड़ा महत्वाकांक्षी था। जब अमृतसर की सन्धि के परिणामस्वरूप वह अपने साम्राज्य का विस्तार सतलज के पार करने में असमर्थ हो गया तो उसने अपने साम्राज्य का विस्तार उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण की ओर करने का निश्चय किया। उसने अपनी सेना का दृढ़ संगठन किया और शीघ्र ही विजय कार्य में संलग्न हो गया। सन् १८१९ ई० में उसने **मुल्तान**, १८२१ ई० में **काश्मीर**, तथा १८२४ ई० में उसने सिन्धु नदी को पार कर **पेशावर** पर अधिकार किया। इन सब प्रदेशों को उसने अपने राज्य में सम्मिलित किया। **१८३७ ई० में काबुल के अमीर दोस्त-मुहम्मद ने जामरूद और शबकदर पर अधिकार करने का निश्चय किया, किन्तु अफगानों को परास्त होना पड़ा, यद्यपि रणजीतसिंह का प्रसिद्ध सेनापति हरीसिंह नलवा युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुआ।** उसकी इन विजयों के परिणामस्वरूप उसके साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया। पठान और अफगान उससे भयभीत रहने लगे। रणजीतसिंह सिन्ध पर भी अधिकार करने की योजना बना रहा था, किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति के कारण वह सिन्ध-विजय के कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सका। सन् १८३९ ई० में इस महान् व्यक्ति का देहान्त हो गया।

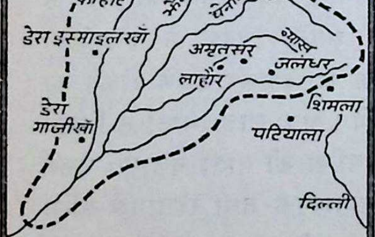

लार्ड विलियम बैंटिक ने रणजीतसिंह से भेंट की और मित्रता की सन्धि को दोहराया। लार्ड ऑकलैण्ड ने अफगान-युद्ध के पूर्व उससे एक सन्धि की। उसने अंग्रेजों की इस युद्ध में सहायता की।

शासन प्रबन्ध

रणजीतसिंह न केवल एक योग्य सेनापति तथा विजेता ही था, वरन् वह एक अच्छा शासन-प्रबन्धक भी था। उसने शासन-प्रबन्ध को उन्नत करने की भी ओर विशेष ध्यान दिया। उसने अपने समस्त राज्य को चार भागों में—लौहार, मुल्तान, काश्मीर और पेशावर में विभक्त किया। ये भाग प्रान्त कहलाते थे। प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तपति जो 'नाजिम' कहलाता था, नियुक्त था। इनकी नियुक्ति स्वयं रणजीतसिंह करता था। ये सैनिक तथा नागरिक दोनों के शासन-प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी थे। वह प्रजा के दुःख-सुख का पूर्ण ध्यान रखता था।

(१) **भूमि-व्यवस्था**—समस्त भूमि पर जमींदारों या सरदारों का अधिकार था। वे किसानों से लगान वसूल करते थे और राजकोष में निश्चित मालगुजारी जमा करते थे। किसानों से लगान के रूप में उपज का $\frac{१}{३}$ से $\frac{३}{५}$ भाग तक लिया जाता था। राज्य की आय के अन्य साधन भी थे। करदार लगान वसूल करते थे। उनकी सहायता के लिए मुकद्दम, पटवारी तथा कानूनगो होते थे। इनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था तथा वसूली का पाँचवा अंश भी दिया जाता था। इसी कारण ये बड़े प्रयत्न से समस्त लगान वसूल करते थे।

शासन-प्रबन्ध

(१) **भूमि-व्यवस्था।**
(२) **सैनिक-व्यवस्था।**
(३) **न्याय व्यवस्था।**

(२) **सैनिक-व्यवस्था**—रणजीतसिंह का शासन सैनिक था। उसने सेना के संगठन तथा उसको सुसज्जित बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। **उसने सैनिक संगठन तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार फ्रांसीसी सेनापतियों को सौंप दिया था।** उसकी सेना उच्च-कोटि की थी। उसके पास तोपखाना, घुड़सवार तथा पैदल सैनिक थे। सैनिकों को राजकोष से वेतन दिया जाता था। उसकी सेना में ४०,००० सैनिक तथा इतनी ही संख्या में घुड़सवार थे। अङ्गरेजों ने भी उसके सैनिक संगठन की बड़ी प्रशंसा की।

(३) **न्याय-व्यवस्था**—न्याय का सबसे बड़ा पदाधिकारी स्वयं सम्राट था। वह मुकदमों की अपील सूना करता था। दण्ड-विधान कठोर था। लोगों को प्राय: अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था। शहरों में कर्दार न्यायाधीश का कार्य करता था। ग्रामों में पंचायतें रीति-रिवाज और परम्परा के आधार पर निर्णय किया करती थीं।

रणजीतसिंह का चरित्र और उसका मूल्यांकन

रणजीतसिंह में पर्याप्त गुण विद्यमान थे, जिनके आधार पर वह विशाल सिक्ख साम्राज्य की स्थापना करने तथा उसको शक्तिशाली बनाने में सफल हुआ।

यद्यपि वह सुन्दर नहीं था, उसकी एक आँख चेचक में जाती रही थी तथा वह छोटे कद का था, किन्तु **उसका व्यक्तित्व बड़ा प्रतिभाशाली तथा आकर्षक था।** उसके चेहरे से तेज टपकता था, जिसका प्रभाव उन व्यक्तियों पर शीघ्र ही पड़ जाता था जो उसके सम्पर्क में आते थे। **वह उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ था।** उसमें **अदम्य उत्साह तथा साहस था।** वह राजनीति की **चालों से पूर्णतया** परिचित था। **उसका व्यवहार बड़ा सभ्य तथा सौम्य** होता था। उसकी **स्मरण-शक्ति** अद्भुत थी। वह **उच्च कोटि का संगठनकर्त्ता** तथा **सेनापति** था। युद्ध के अवसर पर उसकी आज्ञाएं बड़ी स्पष्ट होती थीं। उसका **सैनिकों के साथ सदा सद्व्यवहार** रहता था। इसी कारण वह सदा इनका प्रिय बना रहा। सैनिक उससे प्रेम करते थे और उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। वे उसको बड़ी श्रद्धा तथा स्नेह की दृष्टि से देखते थे। उसने सैनिक संगठन को उन्नत करने के लिए फ्रांसीसियों की सेवाएँ प्राप्त की। इस सेना के आधार पर ही वह साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ तथा उसने देश में सुख और शान्ति की स्थापना की। वह अपने हितों **की प्रधानता में** विश्वास रखता था। उसकी वृद्धि के लिए साधन तथा उपायों की ओर वह विशेष ध्यान नहीं देता था। **यद्यपि** वह सिक्ख धर्म का अनुयायी था, किन्तु उसकी धार्मिक नीति उदार थी। वह अन्य धर्मावलम्बियों के साथ अच्छा व्यवहार करता था। वह काल की गति को भली प्रकार समझता था और परिस्थितियों का लाभ उठाना जानता था। उसने अपनी शक्ति को अङ्गरेजों से कम समझ कर कभी भी युद्ध करने का विचार नहीं किया।

वह समस्त कार्य स्वयं देखता था। भारत के इतिहास में अपने विशिष्ट गुणों के कारण उसका स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। वह "**पंजाब केसरी**" के नाम से विख्यात है। "उसने पंजाब को उस अवस्था में पाया जब सिक्खों की मिस्ले आपस में युद्ध में संलग्न थीं, प्रदेश सरदारों की दलबन्दियों के शिकार थे, अफगान तथा मरहठे उन पर दबाव डाल रहे थे। ऐसी परिस्थिति में अपनी अद्वितीय प्रतिभा, असाधारण योग्यता, वीरता तथा बुद्धिमत्ता के कारण उसने पंजाब से अफगानों के पैर उखाड़ दिए तथा मिस्लों को जीतकर एक सुदृढ़ राष्ट्रीय राज्य की स्थापना की।"

रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त पंजाब—गत पंक्तियों में बतलाया जा चुका है कि राजा रणजीतसिंह की मृत्यु १८३९ ई० में हुई। पाठकों को याद होगा कि इस समय अंग्रेजों ने दोस्तमुहम्मद के विरुद्ध अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया था। **जिस समय तक रणजीतसिंह** जीवित रहा उस समय तक वह समस्त **सिक्ख जाति को तथा महत्वकांक्षी सरदारों को अपने वश** में रखने में सफल हुआ, किन्तु **उसकी मृत्यु होते ही सिक्ख सरदारों में अपने स्वार्थों** की प्राप्ति के **लिए संघर्ष होना आरम्भ हो गया।** उसके उत्तराधिकारियों में से कोई भी इतना योग्य नहीं था जितना कि वह था, कि वह उन सबको अपने नियन्त्रण में रख सकता। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि शक्ति प्राप्ति के लिए स्पर्धा आरम्भ हो गई और शासन शिथिल होने लगा।

युद्ध के कारण—रणजीतसिंह के तीन पुत्र थे—खड़गसिंह, शेरसिंह और नौनिहालसिंह। रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त खड़गसिंह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। उसने जम्मू के सरदार ध्यानसिंह को अपना मन्त्री नियुक्त किया, जिसने खड़गसिंह का मस्तिक खराब होने के कारण शासन की समस्त सत्ता पर अपना अधिकार किया। रणजीतसिंह के अन्य दो पुत्रों ने खड़गसिंह तथा ध्यानसिंह के विरुद्ध सन्धि की और इन दोनों ने मिलकर खड़गसिंह के एक समर्थक व्यक्ति चेतसिंह का वध कर डाला। इसी समय सन् १८४० ई० में खड़गसिंह मर गया तथा कुछ ही समय उपरान्त नौनिहालसिंह का भी देहान्त हो गया, जिसने खड़गसिंह के उपरान्त शासन-सत्ता को अपने अधिकार में कर लिया था। अब फिर सिक्खों में उत्तराधिकारी का प्रश्न उत्पन्न हो गया। बहुत वाद-विवाद व षड्यन्त्र आदि द्वारा यह निश्चय हुआ कि नौनिहालसिंह से उत्पन्न होने वाले पुत्र को राजसिंहासन पर आसीन किया जाए, माईचन्द्र को उसका संरक्षक नियुक्त किया जाए, ध्यानसिंह को वजीर तथा शेरसिंह को उसका प्रतिनिधि बनाया जाए। रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह ने इस योजना का विरोध किया। उसने सेना के एक भाग को अपनी ओर मिलाकर जनवरी १८४१ ई० में अपने आपको महाराजा घोषित किया। ध्यानसिंह तथा उसके पक्षपातियों ने शेरसिंह का विरोध किया। शेरसिंह ने अङ्गरेजों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने अफगानिस्तान से लौटी हुई सेना को मार्ग प्रदान किया, किन्तु इससे उसके विरोधी सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पहले जून १८४२ ई० में उसके समर्थक माईचन्द्र तथा सितम्बर १८४० ई० में शेरसिंह का वध कर डाला। बाद में इस दल के व्यक्तियों ने ध्यानसिंह का वध कर डाला। ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह ने सिक्खों के साथ एक अन्य सन्धि की, जिसके अनुसार शासन-कार्य का भार सदस्यों की एक कौंसिल के अधिकार में सौंपा गया और अङ्गरेज रेजीडेण्ट को उसका प्रधान घोषित कर उसने स्वयं वजीर-पद ग्रहण किया। धीरे-धीरे उसने अपनी शक्ति का विस्तार किया और विरोधी सरदारों का पतन किया। उसने 'खालसा' को अपनी ओर मिला लिया। उसने सिक्ख जाति में अङ्गरेजों के विरुद्ध भावना उत्पन्न की। दिसम्बर १८४४ ई० में हीरासिंह का वध किया गया और शासन पर रानी झिंडन और उसके भाई जवाहरसिंह तथा रानी के प्रेमी लालसिंह का अधिकार स्थापित हो गया। सन् १८४५ ई० में रानी के भाई जवाहरसिंह का वध कर दिया गया। अब लालसिंह वजीर बन गया।

इस समय खालसा की शक्ति का बड़ा विस्तार हुआ। प्रत्येक प्रतिद्वन्दी उसकी सहायता पर आश्रित था। सेना में उच्छृङ्खलता उत्पन्न हो गई थी और उस पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सरल कार्य नहीं था। इसके अतिरिक्त उनको यह भी भय था कि यदि सेना को किसी कार्य में व्यस्त नहीं किया जायगा तो सम्भव है कि यह राज्य में अशान्ति उत्पन्न कर दे और राज्य में लूट-मार आरम्भ हो जाए। इसके अतिरिक्त अंग्रेज भी बड़ी उत्सुकता से पंजाब की राजनीति का अध्ययन कर रहे थे। कुछ का तो यह कथन है कि इन षड्यन्त्रों में अङ्गरेजों का पर्याप्त हाथ था। वे सिक्ख राज्य को

अधिक शक्तिशाली नहीं देखना चाहते थे । अतः **जब सिक्ख नेताओं ने यह अनुभव किया कि सिक्ख सेना को पूर्ण नियन्त्रण में रखना असम्भव है तो उन्होंने सिक्ख सेना को सतलज नदी पार जाने का आदेश दिया । उनके ऐसा करने पर १३ दिसम्बर १८४५ में अङ्गरेजों ने युद्ध की घोषणा की जिससे प्रथम सिक्ख-युद्ध आरम्भ हो गया।**

प्रथम सिक्ख-युद्ध

युद्ध आरम्भ होने के पूर्व ही अङ्गरेजी सेना लुधियाने तथा फिरोजपुर में एकत्रित थी, जब सिक्ख सेना ने सतलज नदी के पूर्व सन्धि के प्रतिकूल पार किया। सिक्ख सेना ने शीघ्र ही फिरोजपुर नगर में प्रवेश किया, किन्तु वहाँ उसने अंग्रेजी सेना को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई । इसका कारण यह था कि सिक्खों के नेता अङ्गरेजों से मिल गए थे । उनका उद्देश्य अङ्गरेजों को परास्त करना नहीं था, वरन् उनकी इच्छा थी कि अङ्गरेज विजयी हों और खालसा की शक्ति कम हो तथा उनको अङ्गरेजों द्वारा विशेष सुविधाएँ प्राप्त हों । कितना दुःख का विषय है कि सिक्खों के सरदारों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपने देश तथा राष्ट्र का अहित करने का निश्चय किया । **सिक्खों की विशाल सेना के लिए फिरोजपुर की अंग्रेजी सेना को परास्त करना कठिन कार्य नहीं था, जिसकी संख्या केवल ७००० थी।** अङ्गरेजों और सिक्खों की प्रथम मुठभेड़ दिसम्बर सन् १८४५ ई० को **मुदकी** नामक स्थान पर हुई । सिक्ख सेना ने अदम्य उत्साह तथा साहस का परिचय दिया, किन्तु जब सिक्खों की विजय निश्चित थी उसी समय सिक्ख सरदार लालसिंह अङ्गरेजों से जा मिला, जिसका परिणाम यह हुआ कि सिक्ख सेना की पराजय हुई। सिक्ख सेना वापिस फिरोजपुर आयी । अङ्गरेजी सेना ने २१ दिसम्बर १८४५ ई० को उसका सामना किया । यद्यपि अङ्गरेजी सेना को सहायता प्राप्त हो गई थी, किन्तु सिक्खों पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । **फिरोजपुर** के युद्ध में सिक्खों ने अङ्गरेजों के छक्के छुड़ा दिए, किन्तु सिक्ख सरदार तेजसिंह अंग्रेजों से जा मिला । अतः सिक्खों को नेता के बिना ही युद्ध करना पड़ा । इस युद्ध में किसी की भी विजय अथवा पराजय नहीं हुई। लगभग एक मास तक कोई युद्ध नहीं हुआ । दोनों ओर से तैयारियाँ होनी आरम्भ हुईं । **तृतीय युद्ध जनवरी १८४६ ई० में अलीवाल नामक स्थान पर हुआ ।** इस युद्ध में सिक्खों का नेतृत्व रणछोर ने किया । यह युद्ध बड़ा भीषण हुआ, किन्तु सिक्ख परास्त हुए और उनके नेता **रणछोर** को मैदान छोड़कर भागना पड़ा । इसके पश्चात् अङ्गरेजों और सिक्खों में चौथी बार फरवरी १८४६ ई० में **सुबराव** नामक स्थान पर युद्ध हुआ । इस युद्ध में डोगरा सरदार गुलाबसिंह ने सिक्खों के साथ विश्वासघात कर अङ्गरेजों से गठबन्धन किया । उनकी सहायता के बदले में अङ्गरेजों ने उसको काश्मीर देने का वचन दिया । लालसिंह और तेजसिंह अंग्रेजों से पहले ही मिल चुके थे। ऐसा कहा जाता है कि लालसिंह ने तो सुबराव की सम्पूर्ण योजना से अंग्रेजों को युद्ध होने के पूर्व ही अवगत कर दिया था। सिक्ख सेना ने अदम्य उत्साह, वीरता तथा साहस से अङ्गरेजों का सामना किया, किन्तु उसकी वीरता अपने ही सरदारों के विश्वासघात के कारण पूर्णतया व्यर्थ हो गई।

इस युद्ध में सिक्खों की पूर्ण पराजय हुई, जिसने उनकी कमर तोड़ डाली। **अन्त में ६ मार्च १८४६ ई० को अंग्रेजों और सिक्खों में लाहौर की सन्धि हुई।**

लाहौर की सन्धि— लाहौर की सन्धि भारतीय इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण है। इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित हैं—

(१) सिक्खों को युद्ध-पूर्ति के लिए १ करोड़ रुपया देना होगा। इस समय राजकोष में केवल ५० हजार रुपए थे। अतः यह निश्चित हुआ कि शेष धन के बदले सिक्ख काश्मीर तथा व्यास और सतलज नदी का दोआब का प्रदेश देंगे।

(२) लालसिंह को राजा दिलीपसिंह का मन्त्री और रानी झिंडन को उसका संरक्षक बनाया गया।

(३) सिक्ख सेना की संख्या घटा दी गई।

(४) सिक्ख दरबार में किसी विदेशी को स्थान नहीं दिया जायगा।

(५) अङ्गरेजी सेना को पंजाब से आने-जाने का अधिकार होगा।

(६) लाहौर में एक वर्ष तक अङ्गरेजी सेना रहेगी।

(७) लाहौर दरबार में एक रेजीडेण्ट रहेगा।

सन्धि होने के उपरान्त कम्पनी ने काश्मीर प्रदेश ७५ हजार रुपए में गुलाबसिंह के हाथ बेच दिया। जब काश्मीर का राज्य अङ्गरेजों ने गुलाबसिंह को दिया तो लालसिंह तथा रानी झिंडन ने इसका विरोध किया। अङ्गरेजों को अपनी एक सेना काश्मीर भेजनी पड़ी और वहाँ के सिक्ख गवर्नर को बाध्य कर गुलाबसिंह को काश्मीर पर अधिकार दिलवाया। अङ्गरेजों ने लालसिंह और रानी झिंडन पर षड्यन्त्र का आरोप लगाकर उनको उनके पदों से च्युत कर दिया। अङ्गरेजों ने दिसम्बर १८४६ ई० में अजीतसिंह और लहनासिंह के विरुद्ध षड़यन्त्र रचा और उनका वध करवा दिया। उन्होंने दलीपसिंह को राज्यसिंहासन पर आसीन किया तथा उसकी माता को उसका संरक्षक बनाया गया। लाहौर में एक अङ्गरेजी सेना रहेगी जिसका सम्पूर्ण व्यय सिक्ख राज्य देगा। यह व्यय २ लाख रुपया निश्चित किया गया। इस सन्धि के द्वारा सिक्ख-राज्य पर अङ्गरेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। अतः सिक्खों की स्वतन्त्रता का अन्त हुआ।

यहाँ यह बतलाना आवश्यक होगा कि **युद्ध के उपरान्त कुछ अंग्रेज पदाधिकारियों की यह धारणा थी कि अंग्रेजों को समस्त पंजाब पर अधिकार स्थापित कर लेना चाहिए परन्तु, भारत का गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिज उससे सहमत नहीं हुआ, क्योंकि वह पंजाब को अपने अधिकार में करके व्यर्थ का झंझट लेना नहीं चाहता था।** इसके अतिरिक्त वह यह चाहता था कि अफगानिस्तान और ब्रिटिश साम्राज्य के मध्य एक हिन्दू राज्य रहे जिससे पश्चिम सीमा सुरक्षित रहे। वास्तव में उसका उद्देश्य सिक्खों की शक्ति को कम करना था, जिससे वे अङ्गरेजी-साम्राज्य को किसी प्रकार का आघात पहुँचाने में सफल न हो सकें।

द्वितीय सिक्ख-युद्ध

लार्ड हार्डिज द्वारा स्थापित पंजाब-व्यवस्था अधिक काल तक स्थायी न रह

सकी, क्योंकि इस व्यवस्था के द्वारा अङ्गरेजों ने सिक्खों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया था। **यह सत्य है कि सिक्ख सेना युद्ध में परास्त हुई, किन्तु सैनिक भली-भांति परिचित थे कि उनकी पराजय में उनके नेताओं का विश्वघात सम्मिलित था।** स्वतन्त्रता प्रेमी सिक्ख 'जिन्होंने पिछली लड़ाइयों में अपनी वीरता तथा बहादुरी का परिचय दिया था और जिनका पिछला इतिहास गौरवमय सफलताओं से भरा हुआ था, सीधी तरह अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों के कार्य से वीर सिक्ख जाति क्षुब्ध और क्रुद्ध थी ही कि इसी समय रानी झिंडन पर षड्यन्त्र लगाकर उसको लाहौर से चुनार दुर्ग में भेज दिया गया। **सिक्ख जाति इस घटना को सहन नहीं कर सकी और उसमें विद्रोह की भावना प्रज्वलित हुई।** इस समय एक अन्य घटना ने जो मुल्तान में मूलराज के साथ हुई, अग्नि में घी का कार्य किया। इस समय वहां मूलराज लाहौर दरबार की ओर से सूबेदारी का कार्य कर रहा था। वह बड़ा योग्य व्यक्ति था। उससे लाहौर दरबार ने एक करोड़ रुपया मांँगा, जिस धन को देने में वह असमर्थ था। बाद में वह धन घटाकर १८ लाख रुपया कर दिया गया। युद्ध के उपरान्त मूलराज से यह धन मांँगा गया, किन्तु उसने धन देने में टाल-मटोल की। लालसिंह सेना लेकर मुल्तान गया, किन्तु मूलराज ने लालसिंह को परास्त कर दिया। जब अङ्गरेजों के हाथ में पंजाब की सत्ता आयी तो मूलराज से यह धन मांगा गया। इस समय उससे २० लाख रुपया तथा राज्य का $\frac{१}{२}$ भाग मांँगा गया। इसका वार्षिक कर भी १२ लाख रुपए से १८ लाख रुपया कर दिया गया। अङ्गरेजों ने उसके स्थान पर खानसिंह को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिए दो अङ्गरेज पदाधिकारी भी भेजे गए। अङ्गरेजों को देखकर सिक्खों तथा अन्य व्यक्तियों में विद्रोह की भावना प्रज्वलित हुई। २० अप्रैल सन् १८४८ ई० को अङ्गरेज पदाधिकारियों का वध कर दिया गया।

इसी बीच लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया। वह साम्राज्यवादी नीति से ओत-प्रोत था। उसके हृदय में समस्त पंजाब पर अधिकार करने की भावना जागृत हुई। एक अङ्गरेज अफसर लेफ्टिनेण्ट एडवर्ड ने मुल्तान पर आक्रमण किया। अङ्गरेज सेना ने मूलराज को परास्त किया। इस कार्य के कारण समस्त पंजाब में विद्रोह होने लगे। अंग्रेजों ने सिक्खों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अङ्गरेजों ने शेरसिंह को अंग्रेजी सेना की सहायतार्थ मुल्तान भेजा, किन्तु वह वहाँ जाकर अपनी सेना सहित मूलराज से मिल गया। उन्होंने अफगानों को भी अपनी ओर मिलाकर उनको युद्ध में सहायता देने के लिए आमन्त्रित किया।

लार्ड डलहौजी ने १० अक्टूबर सन् १८४८ ई० को निम्न घोषणा के साथ युद्ध की दुन्दभी बजाई—

"सिक्ख राष्ट्र ने, बिना किसी पूर्व घटना के उदाहरण से प्रभावित हुई, लड़ाई की मांँग की है, महाशयों में शपथ लेकर कहता हूँ कि उनसे इसका प्रतिशोध लिया जाएगा।"[1]

इस प्रकार द्वितीय युद्ध का आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने कूटनीति की

शरण ली। उन्होंने मूलराज और शेरसिंह में मतभेद उत्पन्न करने के लिए जाली-पत्र भेजा। इस पत्र ने अपना कार्य किया। शेरसिंह के हृदय में मूलराज के विरुद्ध सन्देह उत्पन्न हो गया और उसने उसका साथ छोड़ दिया। इससे मूलराज की शक्ति बहुत कम हो गई। अङ्गरेज सेनापति गफ अपनी सेना को लेकर चल पड़ा। १६ नवम्बर, सन् १८४८ ई० को उसने रावी नदी को पार किया। सिक्ख सेना ने **रामनगर** नामक स्थान पर उसका सामना किया, किन्तु कोई भी दल विजयी न हो सका। इसके उपरान्त अङ्गरेजी सेना ने दिसम्बर के महिने में मुल्तान को घेर लिया। **मूलराज ने अंग्रेजी सेना का बड़े साहस तथा उत्साह से सामना किया, किन्तु उसके दुर्भाग्य से उसके तोपखाने में आग गई, जिससे उसकी शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। इस संकटमय परिस्थिति से बाध्य होकर मूलराज ने २२ जनवरी १८४९ ई० को अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण किया।** सिक्ख सेना ने **चिलियांवाला** नामक स्थान पर अंग्रेजों को १३ जनवरी १८४९ ई० को बुरी तरह परास्त किया, किन्तु मुल्तान पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो जाने के कारण सिक्खों का उत्साह मन्दपड़गया। सिक्खों और अङ्गरेजों में २१ फरवरी १८४९ ई० में **गुजरात** नामक स्थान पर युद्ध हुआ। सिक्खों ने बड़ी वीरता का परिचय दिया, किन्तु अंग्रेजों की तोपों की मार को सिक्ख सेना सहन न कर सकी और १३ मार्च को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार द्वितीय सिक्ख युद्ध का अन्त हुआ। **सिक्खों की समस्त आशाओं पर पानी फिर गया और लार्ड डलहौजी ने समस्त पंजाब को अंग्रेजी-साम्राज्य में मिला लिया।** दलीपसिंह को पाँच लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर इंगलैण्ड भेज दिया गया। वहाँ उसने ईसाई धर्म स्वीकार किया। मूलराज को प्राणदण्ड दिया गया। इस प्रकार अङ्गरेजों ने पंजाब राज्य को अङ्गरेजी राज्य में कूटनीति के आधार पर सम्मिलित किया।

सिक्खों की असफलता के कारण—सिक्ख जाति ने अङ्गरेजों का सामना बड़े उत्साह, साहस तथा वीरता से किया, किन्तु अन्त में उनको पराजित होना पड़ा। इस पराजय का सबसे बड़ा कारण यह था कि सरदारों में पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो गया और वे अपनी पूर्ण शक्ति से अंगरेजी सेना का सामना नहीं कर सके। इसके अतिरिक्त सिक्ख सेना अङ्गरेजों की तोपों का सामना नहीं कर सकी। सिक्ख सेना का संगठन भी उतना सुदृढ़ नहीं था जितना कि अङ्गरेजी सेना का था।

अन्य देशी राज्यों का अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया जाना

उक्त पंक्तियों में प्रकाश डाला जा चुका है कि अङ्गरेजों ने किस प्रकार सन् १८२३ ई० से १८५६ ई० तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अपने राज्य की सीमा निश्चित की। इस काल में अङ्गरेजों ने कुछ छोटे-छोटे राज्यों को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किया। अंग्रेजों ने इस कार्य में मुख्यतः दो उपायों की शरण ली। प्रथम राजनीतिक आधार पर कम्पनी ने छोटे-छोटे राज्यों को अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रथम शिकार बनाया। दूसरे, समस्त देश में बिना किसी प्रतिबन्ध के व्यापारिक प्रगति करना आरम्भ किया।

लार्ड विलियम बैंटिक—लार्ड विलियम बैंटिक सन् १८३३ ई० में भारत का गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया। लार्ड हेस्टिंग्ज और उसके बीच के गवर्नर-जनरलों के शासन-काल में इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ। लार्ड विलियम बैंटिक का शासन काल मुख्यत: आन्तरिक सुधारों के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु उसके समय में कुछ छोटे राज्य अङ्गरेजी राज्य में मिलाए गए। कम्पनी ने मैसूर राज्य को कुव्यवस्था का आरोप लगाकर अपने अधिकार में कर लिया था। यह व्यवस्था सन् १८८१ तक रही। उसके समय में कचार, जयन्तिया, कुर्ग के राज्य अङ्गरेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिए गए।

लार्ड ऑकलैण्ड—यद्यपि लार्ड ऑकलैण्ड के शासन की मुख्य घटना प्रथम अफगान युद्ध थी, किन्तु उनके समय में ही मद्रास का करौली राज्य अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित किया गया।

लार्ड एलिनबरा— उसके शासन-काल में ग्वालियर काण्ड हुआ। द्वितीय मरहठा युद्ध के उपरान्त ग्वालियर पर सिंधिया का आधिपत्य था। दौलतराव की मृत्यु के उपरान्त जनकोजी सिंधिया ग्वालियर का राजा बना। सन् १८४३ ई० में उसकी मृत्यु होने पर जयाजीराव को राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया। उसके संरक्षक होने के प्रश्न पर मरहठों में दो दल हो गए। इससे ग्वालियर की सेना ने शासन की समस्त सत्ता अपने अधिकार में कर ली। लार्ड एलिनबरा ने ग्वालियर में हस्तक्षेप करने के उद्‌देश्य से सेना भेजी। अङ्गरेजों ने ग्वालियर की सेना को दो स्थानों पर परास्त किया और ग्वालियर को अपने संरक्षण में ले लिया। अङ्गरेजों ने शासनभार एक संरक्षक समिति के हाथों में सौंप दिया। यह समिति अङ्गरेजी रेजीडेण्ट के अधीन थी। ग्वालियर राज्य की सेना कम कर दी गई और एक अङ्गरेजी सेना वहाँ रहने लगी। इस प्रकार ग्वालियर पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया, किन्तु वह अङ्गरेजी राज्य में नहीं मिलाया गया।

लार्ड डलहौजी—लार्ड एलिनबरा के उपरान्त लार्ड हार्डिज भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया। उसके शासन-काल की मुख्य घटना प्रथम सिक्ख-युद्ध थी। यद्यपि अङ्गरेज इस युद्ध में पूर्णतया विजयी हुए, किन्तु उसने सिक्ख राज्य को अङ्गरेजी-साम्राज्य में नहीं मिलाया और यह कार्य अपने उत्तराधिकारी लार्ड डलहौजी के लिए छोड़ गया। लार्ड डलहौजी सन् १८४८ ई० की जनवरी में भारत का गवर्नर-जनरल होकर आया। वह आठ वर्ष तक भारत का गवर्नर-जनरल रहा। उसका शासन-काल भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। उसके शासन-काल में द्वितीय ब्रह्मा-युद्ध (१८५२) तथा द्वितीय सिक्ख-युद्ध (१८४८–४९) बड़े महत्वपूर्ण हैं, जिनके कारण उसने बर्मा तथा पंजाब पर अधिकार किया। इससे सम्बन्धित अङ्गरेजों की नीति तथा कार्यों का गत पृष्ठों में वर्णन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उसने कुछ अन्य देशी राज्यों को अङ्गरेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया।

लार्ड डलहौजी का राज्य हड़पने का सिद्धान्त— लार्ड डलहौजी पूर्णतया साम्राज्यवादी था। वह छोटे-छोटे देशी राज्यों का अस्तित्व सदा के लिए मिटाकर

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में अङ्गरेजी साम्राज्य के विस्तार का पूर्ण पक्षपाती था। उसने एक नई नीति का अनुकरण कर देशी राज्यों को अङ्गरेजी राज्य में विलीन किया। उसकी यह नीति **'लैप्स के सिद्धान्त'** के नाम से विख्यात है। इस नीति का स्थूल रूप में यह अर्थ था कि कोई भी देशी नरेश ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी को गोद नहीं ले सकता। अंग्रेजों की स्वीकृति के बिना लिया हुआ पुत्र नरेश के राज्य का पुनः उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था। यह कोई नई नीति नहीं थी, जिसका प्रारम्भ लार्ड डलहौजी ने किया। सन् १८३४ ई० में ही डायरेक्टर्स की समिति ने निश्चय कर दिया था कि इस प्रकार की अनुमति 'नियम नहीं, वरन् अपवाद होगी और वह भारी दया और हर्ष प्रकट करने के अतिरिक्त कभी भी नहीं दी जाएगी।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि कम्पनी के संचालक गोद लेने के अधिकार को कम से कम देना चाहते थे और उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि ऐसी परिस्थिति के उत्पन्न होने पर देशी राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जाए, किन्तु लार्ड डलहौजी के गवर्नर-जनरल होने के पूर्व इस नीति को अपने साम्राज्य के विस्तार का दृढ़ आधार बनाकर कुछ छोटे देशी राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया गया। अंग्रेजों की यह नीति हिन्दू-धर्म विरोधी थी, हिन्दू-धर्म के शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक हिन्दू को गोद लेने का अधिकार प्राप्त है, यदि उसके अपना पुत्र न हो। इसलिए यह कहना उचित होगा कि लार्ड डलहौजी की इस नीति से हिन्दू समाज क्षुब्ध हो गया। हिन्दुओं की धार्मिक तथा सामाजिक भावना पर कुठाराघात किया गया।

भारतीय देशी राज्यों का विभाजन—लार्ड डलहौजी ने अपनी इस नीति को स्पष्ट करने के हेतु समस्त भारतीय देशी राज्यों को तीन भागों में विभक्त किया—(१) स्वतन्त्र राज्य, (२) कम्पनी के आश्रित राज्य तथा (३) कम्पनी के अधीन राज्य। प्रथम दो श्रेणियों के राज्यों के राजाओं को उसने गोद लेने का अधिकार प्रदान किया, किन्तु तृतीय श्रेणी के राजाओं को यह अधिकार प्रदान नहीं किया। डलहौजी का इस प्रकार देशी राज्यों का विभाजन उचित नहीं था, क्योंकि कोई भी देशी राज्य पूर्ण स्वतन्त्र नहीं था और द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी का विभाजन पूर्णतया अस्पष्ट था, क्योंकि आश्रित तथा अधीन राज्यों का कुछ भी अन्तर नहीं था। लार्ड डलहौजी ने अपनी इस नीति के अन्तर्गत निम्न राज्यों को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया—

(१) सतारा—सर्वप्रथम डलहौजी की इस नीति का शिकार सतारा राज्य हुआ। सन् १८४८ ई० में सतारा का राजा निःसन्तान मर गया। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने एक बालक को गोद लिया, किन्तु डलहौजी ने उस उत्तराधिकारी को यह कहकर अस्वीकार किया कि राजा ने उसकी स्वीकृति अंग्रेजों से प्राप्त नहीं की थी। उसने सतारा को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(२) नागपुर—नागपुर का राजा राघोजी था। उसके कोई पुत्र नहीं था। उसने पुत्र गोद लेने के लिए अंग्रेजों से स्वीकृति माँगी, किन्तु उसको अङ्गरेजों का कोई

उत्तर मिलने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही उसने अपनी पत्नी को यशवन्तराव को गोद लेने की सम्मिति दी थी। अतः उसकी पत्नी ने अपने मृतक पति के आदेशानुसार यशवन्तराव को गोद लिया और उसके सम्बन्ध में अङ्गरेजों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसने अङ्गरेजों से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया। लार्ड डलहौजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और शीघ्र ही नागपुर को अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

डलहौजी की अपहरण नीति के शिकार

(१) सतारा।
(२) नागपुर।
(३) झांसी।
(४) बरार तथा सिक्कम।
(५) अवध।
(६) अन्य राज्य।
(७) उपाधियों तथा पेंशनों का अन्त।

(३) झांसी—सन् १८५३ ई० में झांसी का राजा निःसन्तान मर गया। वहाँ की रानी ने एक पुत्र गोद लिया। अङ्गरेजों ने उसको स्वीकार नहीं किया और उन्होंने झांसी को अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(४) बरार तथा सिक्कम—लार्ड डलहौजी ने हैदराबाद से बरार प्रदेश छीन लिया। हैदराबाद के निजाम पर कम्पनी का धन बाकी था। जब निजाम ने वह धन नहीं दिया तो कम्पनी ने बरार प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया। डलहौजी ने सिक्कम राज्य को सन् १८५० ई० में अपने अधिकार में किया, क्योंकि उसने दो अङ्गरेज कारिन्दों को बन्दी कर लिया था।

(५) अवध का अङ्गरेजी राज्य में मिलाया जाना—लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति का अन्तिम शिकार अवध बना। जब अङ्गरेजों के अधिकार में पंजाब का प्रदेश आ गया तो अवध का महत्व समाप्त हो गया। लार्ड डलहौजी ने उसको अङ्गरेजी साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया। वह ऐसा करने के लिए बहाना ढूंढने लगा। इस समय फिर भेड़ और मेमने की कहावत चरितार्थ हुई। सन् १८४९ ई० में कर्नल **स्लीमेन** अवध में रेजीडेण्ट पद पर नियुक्त हुआ। वह लार्ड डलहौजी की नीति का पूर्ण समर्थक था। उसने अवध के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट तैयार की, **जिससे स्पष्ट हुआ कि नवाब का शासन बहुत खराब है।** सन् १८५४ ई० में कर्नल **आउट्रम** रेजीडेण्ट नियुक्त हुआ। उसने भी कर्नल स्लीमैन के विचारों का समर्थन किया। लार्ड डलहौजी ने रेजीडेण्ड को आदेश दिया कि नवाब से नई सन्धि कर अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जाए। नवाब वाजिदअलीशाह ने इस सन्धि को अस्वीकार किया। **इसकी शर्तें यह थीं कि नवाब को १२ लाख रुपए की पेंशन देकर अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में विलीन कर लिया जाए।** जब नवाब ने सन्धि करने से साफ इंकार कर दिया तो डलहौजी ने सेना की सहायता ली। उसने एक अंग्रेजी सेना अवध की राजधानी लखनऊ भेजी और इस प्रकार

सैनिक शक्ति के द्वारा अवध पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इस प्रकार डलहौजी ने अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया।

डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "वास्तव में लार्ड डलहौजी का यह कार्य अत्यन्त गर्हित था। अवध राज्य को हस्तगत करने के लिए उसने जिस अनीति और अत्याचार का प्रदर्शन किया उसकी समता समस्त इतिहास में बहुत कम मिलेगी। अवध का नवाब पूर्णरूप से अङ्गरेजों के प्रति स्वामीभक्त था। उसने उनकी धन-जन से सदैव सहायता की थी। इतना होते हुए भी असत्य एवं अर्द्ध-सत्य आरोप लगाकर जब लार्ड डलहौजी ने पूर्व निर्मित सन्धियों को भंगकर उनके राज्य को बलात् ब्रिटिश राज्य में मिला लिया तो कोई भी निष्पक्ष उसके उग्र एवं गर्हित कार्य का समर्थन नहीं कर सका। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवाब वाजिदअलीशाह का शासन-प्रबन्ध सराहनीय नहीं था, तथापि यदि जनमत लिया जाता तो अवध की प्रजा अङ्गरेजों की अपेक्षा अपने नवाब की छत्र-छाया में रहना अधिक पसन्द करती। परन्तु साम्राज्यवाद का प्रेत जनमत की अपेक्षा नहीं करता। वह अपने कार्य के औचित्य को तलवार की धार से प्रभावित करता है।"

(६) **अन्य राज्य**—उड़ीसा का संभलपुर, बाघट, उदयपुर और करौली को भी उसने अपने राज्य में सम्मिलित किया। किन्तु बाघट और उदयपुर उसके उत्तराधिकारी लार्ड केनिंग ने तथा करौली राज्य कम्पनी की संचालक समिति ने छोड़ दिए।

(७) **उपाधियों और पेंशनों का अन्त**—इन राज्यों के अतिरिक्त लार्ड डलहोजी उपाधियों तथा पेंशनों का अन्त कर डाला। पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु सन् १८५१ ई० में हुई। उसका नाना साहब दत्तक पुत्र था। उसकी वह पेंशन बन्द कर दी गई जो अङ्गरेज बाजीराव को देते थे। अर्काट के शासक का देहान्त होने पर उसके उत्तराधिकारी को उपाधियों से वंचित कर दिया गया। अर्काट का शासक केवल नाम-मात्र का शासक था। तंजौर के राजा के निःसन्तान मर जाने पर लार्ड डलहौजी ने राजा के पद का अन्त कर दिया।

अगले वर्ष ही जब सन् १८५७ ई० की क्रान्ति का दौर चला तो जनता ने अपने नवाबों पर किए हुए अन्याय तथा अत्याचार का बदला लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) भारतीय राज्यों के प्रति डलहौजी की नीति की सविस्तार व्याख्या कीजिए और उसके परिणाम बताइए।

(२) भारत और अफगानिस्तान के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।

(३) "लार्ड डलहौजी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

(४) अफगान-युद्ध के क्या कारण थे?

(५) रणजीतसिंह ने किस प्रकार अपना राज्य पंजाब में स्थापित किया?

(६) सिक्खों और अंग्रेजों के बीच संघर्ष होने के क्या कारण थे ? सिक्ख क्यों असफल रहे ?

मध्य प्रदेश—

(१) देशी राज्यों के सम्बन्ध में लार्ड डलहौजी की नीति के महत्वपूर्ण अंगों को संक्षेप में समझाइए ।

(२) सिन्ध की विजय पर प्रभाव डालने वाली प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कीजिए । क्या वह एक राजनीतिक आवश्यकता थी ?

(३) महाराजा रणजीतसिंह के चरित्र और उन्नति की आलोचना कीजिए।

(४) 'लार्ड डलहौजी सामरिक-व्यवस्था में महान् था, किन्तु शान्ति व्यवस्था में वह महानतर था ।' विवेचना करो ।

(५) लार्ड आकलैण्ड की अफगान-नीति की आलोचना कीजिए।

(६) लार्ड डलहौजी की भारतीय रियासतों के साथ जो नीति रही उसकी संक्षेप में व्याख्या करो ।

(७) 'सिन्ध की विजय एक अन्याय का कार्य था ।' व्याख्या कीजिए।

(८) 'कुछ विजेता थे, कुछ निर्माता थे, कुछ सुधारक थे; परन्तु डलहौजी सब था ।' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?

(९) लार्ड डलहौजी के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए ।

राजस्थान—

(१) अङ्गरेजों का अवध के नवाबों से १७५५ से १७६६ ई० तक के सम्बन्ध का वर्णन करो ।

(२) राजा रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त से पंजाब के अंग्रेजी राज्य में मिलाए जाने तक की दशा का वर्णन करो ।

(३) पिंडारियों के विषय में तुम जानते हो ? उनका भारतीय इतिहास में क्या भाग था ?

(४) राज्य हड़पने के सिद्धान्त से तुम क्या समझते हो ? वह क्रान्ति के लिए कहाँ तक उत्तरदायी है ?

(५) लार्ड हार्डिज के शासन-काल का वर्णन करो ।

(६) रणजीतसिंह के सैनिक तथा शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो ।

(७) रणजीतसिंह के शासन में सिक्खों के उत्कर्ष का वर्णन करो। उनके पतन के कारणों का वर्णन करो ।

सागर विश्वविद्यालय—

१. द्वितीय अङ्गरेज-सिक्ख युद्ध के कारणों और परिणामों का विश्लेषण कीजिए ।

२. लार्ड ऑकलैण्ड की अफगान-नीति की विवेचना कीजिए तथा उसकी असफलता के कारण बताइए ।

३. लार्ड डलहौजी की राज्य-संयोजक नीति की विवेचना कीजिए तथा उसके परिणाम बताइए ।

४. एक पूर्णसत्ताधारी राज्य के निर्माण तथा शासक के रूप में महाराजा रणजीतसिंह की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) सिन्ध के अमीरों के प्रति लार्ड एलिनबरा की नीति पर विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

(२) सिक्ख राज्य के पतन के कारणों को समझाकर लिखिए।

(३) "हम राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं।"—समझाइए कि लार्ड डलहौजी की भारतवर्ष में यह नीति कहाँ तक लक्ष्य के हेतु थी।

(४) रणजीतसिंह की मृत्यु के उपरान्त सिक्खों की शक्ति के आक्समिक ह्रास के कारण बताइए।

(५) सन् १७६५ से १८५६ ई० तक अवध के नवाब से अंग्रेजों के सम्बन्धों के इतिहास का वर्णन कीजिए।

(६) इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं कि प्रथम अफगान-युद्ध अज्ञानता में से उत्पन्न हुआ और घोर विपत्ति में समाप्त हुआ।

(७) 'साम्राज्य निर्माता तथा प्रशासक दोनों ही रूप में हमारे इतिहास में डलहौजी का अद्वितीय स्थान है।' विवेचना कीजिए।

(८) एक योग्य सेनानायक और योग्य शासक के रूप में राणा रणजीतसिंह की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

(९) लार्ड ऑकलैण्ड और लार्ड एलिनबरा की अफगान-नीति की विवेचना कीजिए।

(१०) "डलहौजी केवल राज्य विस्तारक ही नहीं, एक महान् सुधारक भी था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(११) प्रथम अफगान-युद्ध के कारणों और परिणामों की संक्षिप्त विवेचना करते हुए लार्ड ऑकलैण्ड की अफगान-नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

(१२) "लार्ड डलहौजी के कार्य-काल में कई भारतीय रियासतों को हानि करके अंग्रेजी-साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया गया।"—इस कथन की विवेचना हड़प-नीति के संदर्भ में कीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) सिन्ध के अमीरों के प्रति लार्ड एलिनबरा की नीति की विवेचना कीजिए।

(२) रणजीतसिंह की नीति व जीवनी का संक्षेप में वर्णन करते हुए उसकी शासन-प्रणाली का विवेचनात्मक वर्णन कीजिए।

(३) लार्ड डलहौजी की नीति के मुख्य उद्देश्यों की विवेचना कीजिए तथा आपके विचार से उसकी नीति १८५७ की क्रान्ति के लिए कहाँ तक उत्तरदायी थी?

(४) लार्ड आकलैण्ड की अफगान-नीति की व्याख्या कीजिए।

(५) वर्मा के सम्बन्ध में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

(६) "हमें सिन्ध को लेने का कोई अधिकार नहीं है। फिर भी हम ऐसा करेंगे, क्योंकि दुष्टपूर्ण होते हुए भी यह कार्य कल्याणकारी एवं हमारे लिए लाभदायक तथा उपयोगी होगा।"—नैपियर। क्या आप अंग्रेजों की सिन्ध विजय को इस कथन के अनुरूप मानते हैं।

(७) रणजीतसिंह के चरित्र तथा उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

(८) लार्ड डलहौजी की भारतीय राज्यों के प्रति नीति का वर्णन कीजिए। इसके क्या परिणाम हुए ?

२

१८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम

भारतीय इतिहास में सन् १८५७ ई० का सन् अपना विशेष स्थान रखता है, क्योंकि इस वर्ष भारत के निवासियों ने अङ्गरेजी शासन का अन्त करने के लिए घोर प्रयत्न किया। इस क्रान्ति की तुलना सन् १७८९ ई० की आरम्भ होने वाली फ्रांस की क्रान्ति तथा सन् १७७६ ई० में हुई अमेरिकन क्रान्ति से की जा सकती है, क्योंकि इन तीनों क्रान्तियों का उद्देश्य अपने देश से निरंकुश शासन की समाप्ति करना था। यद्यपि भारतीयों का यह प्रयास असफल रहा और विदेशी अपने प्रयत्न में सफल हुए; किन्तु इस असफलता के कारण इस क्रान्ति का महत्व कम नहीं हो जाता है। वास्तव में भारतीयों का यह प्रथम प्रयास था जब सम्मिलित रूप से भारतीयों ने विदेशी-सत्ता का अपनी पवित्र भूमि से अन्त करने का सशस्त्र प्रयत्न किया। इसी क्रान्ति के द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति हुई।

क्रान्ति का स्वरूप

सन् १८५७ ई० की भारतीय क्रान्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों तथा इतिहासकारों के मत एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। एक मत के विद्वानों की यह धारणा है कि यह क्रान्ति न होकर केवल सैनिक विद्रोह था। **प्रधानतः अंग्रेज विद्वानों, इतिहासकारों तथा पदाधिकारियों की यही धारणा है, किन्तु कुछ भारतीय आधुनिक इतिहासकारों ने जिनमें पण्डित नेहरू, वीर सावरकर, अशोक मेहता, श्री वृन्दावन लाल वर्मा अधिक विख्यात हैं, अपने सबल तर्कों के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि सन् १८५७ ई० की क्रान्ति राष्ट्रीय क्रान्ति थी और स्वतन्त्रता संग्राम था।** अङ्गरेज विद्वानों व विचारकों में भी कुछ मत-भेद अवश्य पाया जाता है। **सर जान लारेंस** के अनुसार, 'यह केवल एक सैनिक विद्रोह था जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका कोई सम्बन्ध किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से नहीं था, यद्यपि बाद में कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इससे लाभ उठाया।"[1] **सर जान सीले** के अनुसार सन् १८५७ ई० की क्रान्ति केवल 'सैनिक विद्रोह' वह भी पूर्णतया अराष्ट्रीय विद्रोह था, जिसका न कोई देशीय नेता था और न जिसको सम्पूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त था।"[2] इस

---

[1] "Sir John Lawrence held that the mutiny had its origin in the army and that its proximate cause was the cartidge affair and nothing else. It was not attributable to any antecedent conspiracy whatever, although it was afterwards taken advatage of by disaffected persors to compass their own ends."

—Quoted from History of Britsh India by Roberts, p 360.

[2] "The mutiny is a wholly unpatriotic Sepoy Mutiny with no native leadership and no popular support."

—Sir John Selley.

विचारधारा के बिलकुल विपरीत **सर जेम्स आउटरम** की धारणा है कि 'यह अङ्गरेजों के विरुद्ध मुसलमानों का षड्यन्त्र था जो हिन्दुओं की शिकायतों के बल पर लाभ उठाना चाहते थे।' कारतूस वाली घटना ने केवल "विद्रोह को समय के पूर्व भड़का दिया जबकि अभी वह भली-भाँति संगठित नहीं हुआ था और उसे लोकप्रिय राष्ट्र-विद्रोह का रूप देने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध भी नहीं किए गए थे।"[1] हम आउटरम **साहेब** से इस सम्बन्ध में सहमत नहीं है कि यह क्रान्ति मुसलमानों का षड्यन्त्र था, वरन् यह क्रान्ति हिन्दू और मुसलमानों का सम्मिलित प्रयास था और बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित करना एक पूर्व निर्मित योजना के अनुसार था। यह स्वीकार **करना होगा कि बहादुरशाह क्रान्ति का एक स्तम्भ था, यद्यपि उसने प्रारम्भ में कुछ शिथिलता का प्रदर्शन किया।** उसकी यह एक राजनैतिक चाल थी जिनमें वह अंग्रेजों को फाँसना चाहता था, क्योंकि मेरठ के सैनिकों की क्रान्ति निश्चित तिथि (३१ मई) के पूर्व ही कारतूस वाली घटना के कारण घटित हो गई थी। **इस क्रान्ति का प्रादुर्भाव सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ, किन्तु इसके पीछे अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए गए अत्याचार तथा अन्याय की कहानी छिपी हुई थी।** यह भी स्वीकार करना होगा कि कुछ जिलों में सैनिकों के पूर्व जनता अङ्गरेजी सत्ता का उल्लंघन करने के लिए उद्यत हो गई थी। अङ्गरेज इतिहासकार **रोबर्ट्स** ने भी इसको स्वीकार किया है। **पण्डित नेहरू** ने '**भारत की खोज**' में लिखा है कि "यह केवल एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। वह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इसने जन-विद्रोह और भारतीय स्वाधीनता के संग्राम का रूप धारण किया।"[2] आधुनिक भारतीय इतिहासकार **वीर सावरकर** तथा **अशोक मेहता** ने इसको "भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा प्रदान की है।" इसमें सैनिकों के साथ-साथ बहुत-से लोगों ने जो अङ्गरेजों से असन्तुष्ट थे, भाग लिया था। अधिकांश क्रान्तिकारियों का उद्देश्य अङ्गरेजों को भारत से मार भगाना था। मुगल सम्राट बहादुरशाह के द्वारा राजपूत राजाओं के नाम लिखित पत्र इस बात की पुष्टि करता है। उन्होंने लिखा था कि "मेरी हार्दिक इच्छा है कि भारत से फिरंगी निकाल दिए जाएँ और सारा भारत स्वतन्त्र हो जाय, किन्तु उसके लिए जो क्रान्ति की लड़ाई चल रही है वह तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि कोई योग्य पुरुष न हो जो क्रान्ति का नेतृत्व कर सके और देश की बिखरी हुई शक्तियों को सन्तुलित कर लोगों को एकत्रित करके, इस युद्ध

---

[1] "The view of Sir James Outram is almost the exact antithesis of this. He believed that it was the result of Muhammadan conspiracy making capital of Hindu grievances. The cartridge incident merely precipitated the Mutiny before it had been thoroughly organized and before adequate arrangements had been made for making the mutiny a first step to a popular insurrection."
—**Roberts : History of British India**, p. 360.

[2] "It was much more than a military mutiny, and it spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of Indian Independence."
—**Pt. Nehru Discovery of India.**

संचालन करे। मेरी कोई विशेष इच्छा अङ्गरेजों को भारत से निकाले जाने के भारत पर शासन करने की नहीं रही। यदि आप सभी देशी राजा शत्रु को देश बहार निकालने के लिए लोहा लें, तो मैं अपनी सारी शाही शक्ति और अधिकार नरेशों के किसी संघ के हाथ सुपुर्द कर देने को तैयार हूँ।" श्री वृंदावनलाल ने २ जून १९५७ को अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए जब हिन्दुस्तान टाइम्स संवाददाता ने उनसे भेंट की।

In an interview here, the learned historian, Mr. Brindaban Lal Verma, refuted the views expressed by Mr. R. C. Majumdar, his adderess to the History Congress at Agra that the mutiny as not a War of Independence.

Mr. Verma said that he was pained at the statement of the Indian Historian and quoted several English historians to prove that there was a national upsurge in 1857.

From Kayee and Mallison's *Indian Mutiny* he read out an xtract stating that a proclamation was posted in Delhi in the eginning of 1857, which read, 'Drive out the foreigners, O' all Hindustanis'. From *Sepoy War* by Holems, he quoted a letter om Lord Canning to Sir James Outram saying 'Loyalty could ist only with patriotism. Even those who had not suffered at ur hands were against foreign rule.' Kayee in *Sepoy War in dia* also write a lot about the native newspapers 'spreading sedi-ion all round.'

Questioned about Kunwar Singh of Jagdishpur, Mr. Verma eferred again to Kayee, where the historian writes that Kunwar ngh was intriguing and was in corespondence with Nana Sahib.

Kayee and Malison in *Indian Mutiny*, have actully paid a ibute to the people of Oudh for their freedom struggle, Mr. verma aid.

Taylor, Commissioner of Patna, in a letter writes 'We are solated from the hearts of the people...there is utter absence of e tie between the governed and the governors. The minds of the eople are in a very disaffected state... ..a secret society has been nctioning in Patna since 1852.'

From Calcutta to Punjab, writes Trevelyan in his *Kanpur arratives*, 'they exhibited dangerous *tamashas* and puppet shows festivals—their method of propangada.

'The secret organisation' writes Mallison, 'was growing at tremendous rate.'

Mr. Justice Mac-Carthy in *History of our Times*, writes, 'It as the rebellion of native races against English power,' Charles

Bells writes in *Indian Mutiny*, 'The Meerut Sepoys in a movement found a leader, a flag and a cause and the mutiny was transformed into a revolutionary war.'

There was wide spread hatred of British rule, as is evident from the account in Trevelyan's *Kanpur narratives*, 'The effect in rousing hatred was tremendous--bhistis refused water, ayas left service; bavarchis stood half-naked before mem sahibs."

Innes in *Sepoy Revolt* mentions detection of cypher and code letters, which suggests a high state of organization. 'The greased cartridge,' says Medley, 'was merely a match to explode the mine, which was prepared long since.'

All this evidence Mr. Verma said, proved beyond doubt that there was a War of Independence in 1857.

Regarding the alleged loyalty of Bahadur Shah and the Rani of Jhansi to the British, Mr. Verma said that they played a double game, necessities by diplomacy. Both the Rani of Jhansi and Bahadur Shah had full knowledge of the secret plan, as was evident from the details given in Kayee's book and Major Pinkey's (Commissioner of Jhansi) unpublished letters. Bahadur Shah's autographed letters quoted by Metcalfe, clearly indicates his knowledge of the plan. "I am willing", wrote Bahadur Shah, "to resign my imperial authority in the hands of a confederacy of native princes, who are chosen to exercise it, but expel the English from India."

इस प्रकार उक्त तर्कों के आधार यह स्पष्ट हो जाता है कि १८५७ की क्रान्ति भारतीयों का स्वतन्त्रता संग्राम था जो कलकत्ते से लेकर दिल्ली तक विस्तृत हो गई थी, जिसमें जनता ने, सेना ने तथा राजाओं ने अपना शक्तिभर सहयाग दिया। यद्यपि इस समय राष्ट्रीय भावना का पूर्णतया विकास नहीं हो पाया था, किन्तु इसमें कुछ राष्ट्रीय तत्व अवश्य विद्यमान थे।

१८५७ की क्रान्ति के कारण (1985, 83)

१८५७ ई० की क्रान्ति के विभिन्न कारण थे। यह सत्य है कि इस क्रान्ति का श्रीगणेश सैनिक विद्रोह के रूप में प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे कलकत्ता से लेकर दिल्ली तक के प्रदेशों में फैल गया, किन्तु इसके पीछे अनेक अन्य कारण भी थे जिन्होंने इसके विस्तार में शीघ्र सहयोग प्रदान किया और जनता ने सक्रिय भाग लेकर अङ्गरेजी सत्ता के विनाश करने का प्रयत्न किया। समस्त कारणों को पाँच प्रमुख भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) राजनीतिक कारण—भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना प्लासी के युद्ध के उपरान्त हुई जो सन् १७५७ ई० में हुआ था। (i) अङ्गरेजों की कुटिल साम्राज्यवादी नीति—इन सौ वर्षों में अङ्गरेजों ने बड़ी कुटिल नीति तथा तीव्र गति से साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण कर समस्त देशी राज्यों को पंगु बना दिया था

उनके राज्यों को अङ्गरेजी राज्य में विलीन कर लिया था। (ii) **भारतीय ाओं की वाह्य नीति पर प्रतिबन्ध**— जिन राज्यों को अङ्गरेजी राज्य में विलीन किया गया था उनके **राजाओं की वाह्य नीति** को अङ्गरेजों ने अपने पूर्ण नियन्त्रण र लिया था। अंग्रेजी रेजीडेण्टों को केवल वाह्य नीति पर अधिकार करके ही ोष नहीं हुआ था, उन्होंने देशी राज्यों की आन्तरिक नीति में भी हस्तक्षेप करना रम्भ कर दिया था। (iii) **सहायक-सन्धि**— सहायक-सन्धि द्वारा अंग्रेजों ने देशी ों में अंग्रेजी सेना की स्थापना की प्रथा को अपनाया। इस सेना का व्यय देशी ों को देना पड़ता था और जब वे उसका व्यय नहीं चुका सकते थे तो उनको े राज्य का कुछ भाग अंग्रेजों को देना पड़ता था, जहाँ की जनता का अंग्रेजों ा बहुत शोषण किया जाता था। उनमें विद्रोह तथा असन्तोष की भावना अंग्रेजी म्राज्य के प्रति उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी। (iv) **डलहौजी की साम्राज्यवादी ति—लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति** ने तो और भी उग्र रूप धारण किया। **ने राज्य हड़पने की नीति** द्वारा कुछ राज्यों को अङ्गरेजी राज्य में सम्मिलित किया। नमें झांसी व नागपुर विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त उसने **कुशासन के** ार पर भी कुछ राज्यों को हड़प लिया, जिसमें अवध विशेष उल्लेखनीय है जो सदा ङ्गरेजों का सहायक तथा समर्थक रहा। उसने **भारतीय नरेशों की पेंशनों तथा ाधियों का अन्त किया**, जिससे वे अंग्रेजों के विरोधी हो गए। **उसने मुगल सम्राट ादुरशाह के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किया।** अंग्रजों ने उसके पुत्र **जवांबख्श** के ान पर मिर्जा **ग्यास** को युवराज स्वीकार कर उसको एक नई सन्धि मानने के लिए ध्य किया। इसके कारण मुसलमानों में ही नहीं वरन् समस्त देश में असन्तोष का ातावरण उत्पन्न हो गया। **डलहौजी ने पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब ी पेंशन बन्द कर दी**, जिससे हिन्दुओं को ा आघात पहुँचा और वे अङ्गरेजों से न्तुष्ट हो गए। (v) **जमींदारों के रुद्ध नीति**—अंग्रेजों ने अपनी नीति से मींदार लोगों को अपने विरुद्ध कर िया। बहुत-से जमींदारों की जमीं-दारियां अंग्रेजों ने जब्त कर लीं। (vi) **च्च वर्ग के लोगों के विरुद्ध नीति** — म्पनी के कर्मचारियों का व्यवहार उच्च र्गों के लोगों के साथ भी अच्छा नहीं था। उनका उनके साथ अपमानजनक व्यवहार ा और उनको उच्च पदों पर आसीन नहीं किया जाता था।

१८५७ की क्रान्ति के कारण

(१) राजनीतिक।
(२) धार्मिक।
(३) आर्थिक।
(४) सामाजिक।
(५) सैनिक।

---

1. "Surely the nations of India must be less than men, if their eelings could not be moved under such circumstances in favour of the ictims of annexation and against annexer Surely, there was not a woman on such annexat ons did not tend to make our enemy, not a child when ey did not tend to train upon hatred to the Firangy rule." —Ludlow.

(२) धार्मिक कारण—१८५७ की क्रान्ति में धार्मिक कारणों ने भी पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। अङ्गरेजों ने भारत में ईसाई धर्म का भी प्रचार किया, यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी की धार्मिक नीति उदार थी। (i) **पादरियों द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार**—अङ्गरेजों के साथ-साथ बहुत से ईसाई पादरी भारत आए और उन्होंने भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया। इन पादरियों को अङ्गरेजों ने गुप्त रूप से सहायता दी। कम्पनी के संचालकों की भी यह नीति थी कि जिस प्रकार से सम्भव हो भारत में ईसाई धर्म का प्रचार किया जाए।[1] ईसाईयों को उच्च पदों पर आसीन किया जाता था तथा उनकी शिक्षा आदि की भी उचित व्यवस्था पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। इसके विपरीत हिन्दू और मुसलमानों के साथ कम्पनी के कर्मचारियों का व्यवहार अच्छा नहीं था। (ii) **हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की अवहेलना**—अङ्गरेजों ने हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को भी स्वीकार नहीं किया, जैसे गोद लेने की प्रथा, विवाह आदि। इसका प्रभाव यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमान जनता अंग्रेज सरकार को अपने धर्म का शत्रु समझने लगी। (iii) **कारतूस का प्रचलन**—इसी समय अङ्गरेजों ने एक कारतूस का प्रचलन किया जिसको चिकना करने के लिए गाय और सूअर की चर्बी का प्रयोग किया जाता था और जिसको बन्दूक में भरने से पूर्व मुंह से काटना पड़ता था। जब सेना को इस बात का ज्ञान हुआ तो उनको विश्वास हो गया कि कम्पनी उनके धर्म को भ्रष्ट करने का प्रयत्न कर रही है और इस भावना के अन्तर्गत उनमें अङ्गरेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होना अनिवार्य हो गया। (iv) **रेल और तार का प्रचलन**—यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि इसके अतिरिक्त रेल और तार के प्रचलन के कारण जनता में यह भावना जागृत हुई कि इनके द्वारा कम्पनी हमारे धर्म पर आघात पहुँचा रही है।

(३) आर्थिक कारण—कम्पनी की आर्थिक नीति के कारण भी भारतीय जनता में असन्तोष उत्पन्न होना आरम्भ हो गया था। अङ्गरेजों के आगमन तथा राज्य स्थापित करने के पूर्व भारत में अनेक राज्य स्थापित हुए और वे समाप्त भी हुए, किन्तु उनकी आर्थिक नीति का प्रभाव भारतीय जनता पर नहीं पड़ा, क्योंकि वे भारत से धन नहीं ले गए वरन् उन्होंने उसका प्रयोग भारत-भूमि पर ही किया। देशी नरेशों ने कृषकों तथा श्रमिकों की दशा को भी उन्नत करने का प्रयास किया, जिसके कारण उनको आर्थिक संकट का सामना विशेष रूप से नहीं करना पड़ा और भारत उनके शासन में समृद्धिशाली बना रहा, **किन्तु अंग्रेजों ने भारत का आर्थिक**

---

[1] ‘ has entrusted the extensive Empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should wave triumphant from one end of India to the other. Every one must exert all his strength that there may be no dilatoriness on any account in continuing in the country the grand work of making all India Christain.” Mangles, chairman of the Board of Directors of the East India Company. Quoted from Dr. Ishwari Prasad and S. K. Subedar. History of Modern India. p. 241.

क्षेत्र में भी उतना ही अधिक घोषण किया जितना कि राजनीतिक क्षेत्र में। इसका प्रधान कारण यह था कि अंग्रेजों का भारत-आगमन व्यापारिक उद्देश्य के अन्तर्गत हुआ था। वे भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आए थे न कि राज्य प्राप्ति के उद्देश्य से। उनके सौभाग्य से उसको भारत में ऐसी परिस्थितियां मिल गईं जिनके कारण वे अपना राज्य भारत में स्थापित करने में सफल हुए। उन्होंने भारत के साथ व्यापार करना आरम्भ किया और उसके द्वारा जो धन प्राप्त हुआ वह इंगलैण्ड जाने लगा। **कम्पनी का हित इसी में था कि भारत का समस्त व्यापार उनके हाथ में आ जाए, इसीलिए उन्होंने व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न किया।** आरम्भ में उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु जब उनके हाथ में शासन-सत्ता का आगमन हुआ तो परिस्थिति में परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। **उन्होंने हर सम्भव रूप से भारतीयों से धन वसूल करना आरम्भ कर दिया।** इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रांति होने के कारण भारत इंगलैण्ड में बने हुए माल की बिक्री का केन्द्र हो गया। भारत से कच्चा माल इंगलैण्ड जाने लगा और वहाँ से तैयार माल आने लगा। उनको किसी प्रकार की स्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ा। भारतीय व्यापारियों का व्यापार बन्द होने लगा और कम्पनी का व्यापार दिन-प्रतिदिन चमकने लगा। **इससे भारतीय उद्योग-धन्धों को बड़ी हानि उठानी पड़ी और वे प्रायः बन्द से हो गए, जिससे हजारों की संख्या में व्यक्ति बेकार हो गए।** इसका एक अप्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि भारत की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर रहने लगी, जिसकी उचित व्यवस्था तथा उन्नति करने के लिए कम्पनी ने किसी प्रकार का कदम नहीं उठाया। विभिन्न देशी राज्यों के अंग्रेजी राज्य में विलीन होने के कारण बहुत-से सैनिक तथा उच्च पदाधिकारी बेकार हो गए, जिनमें कम्पनी के विरुद्ध असन्तोष उत्पन्न हो गया। **कम्पनी ने बहुत-से पुराने जमादारों तथा ताल्लुकदारों को उनके अधिकारों से वंचित कर उनके गाँवों को अपने अधिकार में कर लिया।** भारतीय जनता अंग्रेजों की अपेक्षा उनके अधिकार में रहना अधिक अच्छा समझती थी। अत: जब इन जमीदारों तथा ताल्लुकेदारों ने कम्पनी के राज्य के विरुद्ध अस्त्रों का प्रयोग करना आरम्भ किया तो जनता ने सहर्ष उनका साथ दिया और क्रांति को तीव्रगति प्रदान की।

(४) **सामाजिक कारण**—अङ्गरेजों ने अपने साम्राज्य की स्थापना के उपरान्त भारतीय सामाजिक-व्यवस्था में भी हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। भारतीय सब कुछ शान्त भाव से सहन कर सकते थे, किन्तु उनको अपनी सामाजिक व्यवस्था बड़ी प्रिय थी, जिसके ऊपर किए गए आघातों को वे किसी भी दशा में सहन करने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। अतः जब कम्पनी ने इस ओर ध्यान न देकर उसमें पाश्चात्य ढंग का समावेश करना आरम्भ किया तो वे क्षुब्ध हो गए। (i) **अंग्रेजी शिक्षा का विरोध**—भारतीय जनता ने अङ्गरेजी शिक्षा का विरोध किया। उनकी धारणा थी कि अंग्रेजी के प्रचार से कम्पनी उनको ईसाई बनाना चाहती है। (ii) **अङ्गरेजी वस्तुओं का विरोध**—उन्होंने उन वस्तुओं के प्रचलन का भी विरोध किया जिनका आरम्भ अंग्रेजों ने भारत में किया था, क्योंकि वह उनको पाश्चात्य समझते

थे। (iii) **सामाजिक प्रथाओं पर प्रतिबन्ध**—कम्पनी ने सती-प्रथा, वाल-विवाह आदि का प्रचलन बन्द करने का प्रयत्न किया और उनको अवैध घोषित किया। जनता ने उनका विरोध किया। जब कम्पनी ने विधवा-विवाह को न्यायसंगत घोषित किया तो भी जनता ने उसका विरोध किया, क्योंकि वे यह समझते थे कि ये सब कार्य कम्पनी इसलिए कर रही है कि हम पाश्चात्य सिद्धान्तों को अपनाएं और अपनी भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को छोड़ दें। कट्टर हिन्दुओं ने इन सबका घोर विरोध किया। (iv) **अङ्गरेजों द्वारा पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति का प्रचलन**—अङ्गरेजों ने भारत में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी प्रचार किया। उनका भारतीय साहित्य तथा भाषाओं के प्रति भी उचित व्यवहार नहीं था। उन्होंने प्रोत्साहन के स्थान पर पाश्चात्य साहित्य और भाषा का प्रचलन किया; जिससे जनता में उसके विरुद्ध असन्तोष की भावना का उदय होने लगा।

(५) **सैनिक कारण**—अङ्गरेज को भारतीय सेना द्वारा भारत में राज्य की स्थापना करने में विशेष सहायता प्राप्त हुई थी। भारतीय सेना ने उसकी सेवा उत्तम रीति से की। अङ्गरेजों की नीति के कारण कुछ विशेष कारण उत्पन्न हो गए जिन के द्वारा सैनिकों में भी उनके प्रति असन्तोष जागृत होने लगा। यहाँ यह भी बतलाना उचित होगा कि १८५६ ई० में कम्पनी की समस्त सेना में दो लाख के करीब भारतीय सैनिक थे तथा ४० हजार के करीब अङ्गरेज सैनिक थे। इस प्रकार अंग्रेज सैनिकों की अपेक्षा भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी। (i) **भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार**—अंग्रेजों का भारतीय सैनिकों के साथ सद्व्यहार नहीं था। (ii) **अंग्रेज सैनिकों का अधिक वेतन**—अङ्गरेज सैनिक का वेतन भारतीय सैनिक की अपेक्षा बहुत अधिक था। (iii) **उच्च पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति**—उच्च पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति की जाती थी और भारतीय सैनिक उच्च पदों के योग्य नहीं समझे जाते थे। इन्हीं कारणों से भारतीय सैनिकों ने कभी कभी विद्रोह किया, किन्तु वह व्यापक रूप धारण न कर सका, जिस कारण अंग्रेज उनका सरलता तथा नृशंसता से दमन करने में सफल हुए। (iv) **भारतीय सैनिकों का तत्कालीन सैनिक नियमों का विरोध**—भारतीय सैनिक तत्कालीन सैनिक नियमों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि उनका आधार पाश्चात्य था। (v) **सेना का अनुशासन शिथिल होना**—सेना का अनुशासन शिथिल पड़ गया, क्योंकि उच्च सैनिक पदाधिकारी राजनीतिक पदों पर कार्य करने के लिए चले गए थे। (vi) **अंग्रेजी सेना की भारत में कमी**—बहुत-सी अंग्रेजी सेना भारत भूमि के वाहर योरोप, मध्य-एशिया, चीन आदि प्रदेशों में चली गई थी। भारत में उसकी संख्या कम हो गई थी। (vii) **देशी नरेशों का विरोध**—देशी नरेश भारतीय सेना में अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष तथा विद्रोह की भाबना का प्रचार बड़ी तेजी से कर रहे थे। (viii) **सर्विस इंटैलीजैंस एक्ट का विरोध** - सन् १८५६ ई० में लार्ड कैनिंग ने **"सरविस इंटैलिजैंस एक्ट"** की घोषणा की जिसके अनुसार सैनिकों को अनिवार्य रूप से देश के बहार जाना होगा, किन्तु भारतीय समुद्र पार जाना अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे। सैनिकों को विश्वास हो गया कि अंग्रेजों का यह कार्य

उनकी धार्मिक भावना पर कुठाराघात है। **(iv) नये प्रकार के कारतूस**—इसी समय उनको एक नए प्रकार के कारतूस दिए गए जिनका वर्णन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। इसने घी में अग्नि का काम किया। इसके सम्बन्ध में लार्ड रॉबर्ट्स का कथन है कि "खोजों के आधार पर यह निश्चित हो गया जिस चर्वी का प्रयोग इन कारतूसों को चिकना करने के लिए किया गया था यह ऐसी वस्तुओं (गाय और सुअर की चरबी) के द्वारा बनाई गई थी जो आपत्तिजनक थी और सैनिकों की धार्मिक प्रवृति की ओर से पूर्णतया उदासीनता दिखलाई गई।[1] विद्रोह की समस्त पृष्ठ-भूमि पहले से ही तैयार थी। इसने केवल एक चिंगारी का कार्य किया जिसके लगते ही क्रांति के रूप में विस्फोट हो गया।

क्रांति की पृष्ठ-भूमि तैयार करना

क्रांतिकारी नेता कई वर्षों से अंग्रेजी साम्राज्य के नष्ट करने के प्रयत्न में लगे हुए थे। उन्होंने समस्त देश की अशान्ति का लाभ उठाकर सशस्त्र क्रांति की योजना का निर्माण किया था। **क्रांति के नेताओं में नाना साहेब, तांतिया टोपे, झांसी की रानी बहादुरशाह, कुंवर सिंह आदि महान् व्यक्ति सम्मिलित थे।** उन्होंने ३१ मई १८५७ की तिथि क्रांति के लिये निश्चित की थी। पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसके दत्तक पुत्र नाना साहेब को वह पेशन नहीं दी गई जो अंग्रेज बाजीराव को देते थे। गत पृष्ठों में इसका वर्णन किया जा चुका है। इसी समय से नाना साहेब अंग्रेजों के कट्टर शत्रु बन गये थे। नाना साहेब बहुत तेजस्वी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। अंग्रेज लेखकों ने उनका बहुत ही जघन्य और भयानक चित्र अंकित किया है, किन्तु उनको भी स्वीकार करना पड़ा कि वे एक चतुर, पुरुषार्थी और संसार के व्यवहार में निपुण व्यक्ति थे। उनको सरकार का यह व्यवहार सहन न हुआ। **उन्होंने अजीमुल्ला नामक एक व्यक्ति को अपना वकील बनाकर अपनी शिकायत सुनाने के अभिप्राय से इंगलैण्ड भेजा।** वह वहाँ अपने कार्य में सफल तो नहीं हो सका, किन्तु उसने भ्रमण द्वारा योरोप की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। इंगलैण्ड में अजीमुल्ला खां की भेट रंग वापू से हुई जो सतारा के राजा का वकील बनकर इंगलैण्ड आया था। दोनों ने मिलकर सशस्त्र क्रांति की योजना का निर्माण किया। रंगबापू शीघ्र ही भारत वापिस आया, किन्तु अजीमुल्ला खां रूस, इटली, ट्रकी, मिस्र आदि देश होता हुआ भारत आया। यहाँ आकर उसने नाना साहेव के साथ क्रांति की योजना वनाने का निश्चय किया। **उस समय से नाना साहेब गुप्त रूप से भारत की असन्तुष्ट शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर देश व्यापी विद्रोह खड़ा करने के कार्य में संलग्न हो गए। नाना साहेब ने**

---

[1] "The recent researches of Mr. Forrest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridge was actually composed of the objectionable ingredients, cows' fats and laid and that incrediable disreged of the soldier's religious prejudices was displayed in the manufacture of these cartriges."

—Roberts Forty years in India.

दिल्ली, लखनऊ, मैसूर जैसे दूरस्थ प्रदेशों के उन व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया जो अंग्रेजी सरकार की नीति के शिकार बन चुके थे। १८५७ ई० के मार्च मास में उसने तीर्थ-यात्रा के नाम पर असन्तुष्ट प्रदेशों का भ्रमण किया। उसने अपने दूतों को प्रत्येक स्थान पर विद्रोह की पृष्ठ-भूमि तैयार करने के लिए भेजा। अप्रैल में नाना साहेब अपनी यात्रा से वापिस आ गए और मई के महिने में विस्फोटक हो गया।

क्रान्ति की योजना—योजना यह थी कि बहादुरशाह के नाम पर क्रान्ति की जायगी। क्रान्ति की तिथि ३१ मई १८५७ निश्चित की गई।[1] भारत को अंग्रेजों से मुक्त करने के उपरान्त बहादुरशाह को सम्राट के पद पर आसीन किया जाएगा। विद्रोह की रूप-रेखा पर विचार करने के उद्देश्य से दिल्ली स्थित लाल किले में गुप्त मंत्रणाएँ होने लगीं। योजना निश्चित हो जाने पर लगभग समस्त उत्तरी भारत के नरेशों ने उसमें सक्रिय भाग लेने की शपथ खाई। समस्त देश में गुप्तचरों का जाल बिछ गया और उन्होंने समस्त व्यक्तियों के पास जाकर उनसे क्रान्ति में भाग लेने का वचन लिया।[2] इस समय चारों ओर अंग्रेजों के विरुद्ध वातावरण तैयार किया गया। क्रान्तिकारियों को अपने इस कार्य में अपार सफलता प्राप्त हुई और यह इतना गुप्त रूप से सम्पन्न किया गया कि अंग्रेजों को इसका तनिक भी पता नहीं चला। नाना साहेब अजीमुल्ला के साथ अपनी तीर्थ-यात्रा में दिल्ली, लाहौर, अम्बाला आदि प्रदेशों में गए जो मार्च १८५७ में आरम्भ हुई और क्रान्तिकारियों को सब बातों से अवगत किया।

मंगल-पाण्डे काण्ड—मंगल-पाण्डे ने क्रान्ति के विस्तार में बड़ा सहयोग दिया। यह जाति का ब्राह्मण था। उसने अपने आपको विद्रोही घोषित किया और सैनिक बारकों में क्रान्ति का प्रचार करने लगा, जिसके कारण सैनिकों में उत्साह का संचार होना आरम्भ हो गया। मेजर हडसन ने उसको बन्दी करने की आज्ञा एक सैनिक को दी, किन्तु कोई भी उसको बन्दी करने के लिए आगे नहीं बढ़ा। एक गोरा अफसर आगे बढ़ा, मंगल-पाण्डे ने तुरन्त उसको अपनी गोली का निशाना बनाया। मंगल-पाण्डे को बन्दी करने के लिए एक अन्य अफसर आगे बढ़ा, परन्तु मंगल-पाण्डे ने उसको भी अपनी गोली का शिकार बनाया। अब कुछ अन्य अफसर आगे आए। २४वीं पल्टन के कर्नल ह्वीलर ने मंगल-पाण्डे को बन्दी करने की आज्ञा दी, परन्तु सैनिकों में से एक भी व्यक्ति अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ। अन्त में घायल अवस्था में

---

[1] "From the available evidence I am quite convinced that the 31st May 1857 had been decided on as the date for the simultaneous rising." J. C. Wilson: the judge of Moradabad. Quoted from Dr, Ishwari Prasad and S.K. Subedar History of Modern India, p. 245

[2] "For months, for years, indeed they (agents of Nana Sahib) had been spreading their net work of intrigue all over the country. From one native court to another, from one extremity to another of the great continent of India the agent of Nana Sahib had passed with overtures and invitations discreetly, perhaps mysteriously, worded to princes and chiefs of different races and religion" —Kaye.

मंगल-पाण्डे बन्दी किया गया। **उस पर मुकदमा चलाया गया और उसको फाँसी का दण्ड मिला।** उसको फाँसी देने के लिए अङ्ग्रेजों ने चार हत्यारे कलकत्ते से बुलवाए, क्योंकि उनको भारतीय सेना पर विश्वास नहीं रहा था। यह सूचना समस्त छावनियों में फैल गई। इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग एक महीने में देश की समस्त छावनियों में विद्रोही के भाव जागृत हो गई। यह घटना बैरकपुर में २९ मार्च १८५७ ई० को हुई थी। इस घटना के कारण सैनिकों में इतना अधिक उत्साह उत्पन्न हो गया कि उनके लिए ३१ मई तक ठहराना असम्भव हो गया।

मेरठ काण्ड—क्रान्ति का दूसरा विस्फोट मेरठ में हुआ। बैरकपुर की घटना का ज्ञान मेरठ के सैनिकों को प्राप्त हो चुका था। अप्रैल के अन्त तक वहाँ की छावनी में भी असन्तोष और क्रोध की भावना व्याप्त हो चुकी थी। सभी सिपाहियों के मन में अङ्ग्रेजी राज्य और अंग्रेजी अफसरों के प्रति घृणा के भाव प्रज्वलित हो गए थे। सैनिक विद्रोह के लिए तैयार बैठे हुए ही थे कि **कर्नल स्मिथ** ने २४ अप्रैल को अपने दस्ते के सिपाहियों को एकत्रित कर नए कारतूसों के प्रयोग करने की आज्ञा दी। उसके दस्ते में ९० सैनिक थे। उनमें से केवल पाँच ने उसकी आज्ञा का पालन किया और शेष ८५ ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया। बस फिर क्या था इन ८५ अपराधियों को १० वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। **इससे छावनी के अन्य सिपाहियों में विक्षोभ फैल गया। अंग्रेज अफसरों को उनको दण्डित करने की शक्ति नहीं थी।** उन्होंने ९ मई को छावनी की समस्त सेनाओं में एकत्रित किया और उनके सामने अपराधी सैनिकों का घोर अपमान किया गया। जब उनको हथकडी-बेड़ी पहनकर बन्दीगृह की ओर ले जाया गया तब उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध नारे लगाए। अन्य सैनिकों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा, किन्तु उस समय वे कुछ न कर पाए, किन्तु रात्रि के समय सैनिकों ने अपनी योजना बनाई। १० मई को रविवार था। अंग्रेज निश्चित थे, किन्तु उसी दिन सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और अंग्रेजों का वध करना आरम्भ किया। इसके पश्चात् उन्होंने जेल पर आक्रमण कर समस्त बन्दियों को मुक्त किया। जब रात हो गई तो सैनिकों ने दिल्ली चलो का नारा लगाया और शीघ्र ही समस्त सैनिकों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान करना आरम्भ कर दिया।

विद्रोहियों का दिल्ली पर अधिकार—११ मई के प्रातः-काल सैनिक दिल्ली पहुँच गए और उन्होंने वहाँ के सैनिकों को साथ देने के लिए ललकारा। सैनिक तो पहले ही तैयार थे। वे शीघ्र ही उनमें सम्मिलित हो गए और वहाँ जो भी अंग्रेज मिले वहाँ उनका वध कर डाला गया। अब सैनिक बारूदखाने पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़े तो अंग्रेज अफसरों ने उसमें आग लगा दी। यदि यह बारूदखाना सैनिकों को प्राप्त हो जाता तो क्रान्ति का नया दौर आरम्भ हो जाता और सम्भव था कि वे अपने उद्देश्य में सफल हो जाते। **इसके उपरान्त सैनिकों ने लालकिले में प्रवेश कर बहादुरशाह को सम्राट घोषित किया और नगर में उसका एक जलूस** निकाला गया। इस प्रकार दिल्ली पर सैनिकों का पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया।

दिल्ली के समीप के प्रदेशों में क्रान्ति—जब यह समाचार दिल्ली के समीप के प्रदेशों में फैल गया कि क्रान्तिकारियों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया है तो शीघ्र उनके आस-पास क्रान्ति का कार्य आरम्भ कर दिया गया। **अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी तथा रुहेलखण्ड (मुरादाबाद, बरेली) में भी अंग्रेजों का वध किया गया और खजाने पर क्रांतिकारियों का अधिकार स्थापित हो गया ।** इस प्रकार शीघ्र ही दिल्ली के आस-पास के समस्त प्रदेशों पर बहादुरशाह का हरा झण्डा फहराने लगा और वहाँ से अंग्रेजी राज्य का अन्त हो गया। साधारण जनता ने सैनिकों को हर प्रकार से सहायता प्रदान की, जिससे अंग्रेजी राज्य का शीघ्र ही अन्त हो गया।

अंग्रेजों की प्रतिक्रिया—जब अङ्गरेजों को उक्त समस्त समाचारों का ज्ञान हुआ तो वे बहुत भयभीत हुए, किन्तु उन्होंने इस क्रान्ति का दृढ़ता से दमन करने का निश्चय किया। **अङ्गरेजों को अपनी योजना निर्माण करने का कुछ समय भी मिल गया, क्योंकि अन्य प्रदेशों में ३१ मई को क्रान्ति का दौर आरम्भ हुआ।** यद्यपि समय कम था, किन्तु अङ्गरेजों ने उस बीच अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया। अङ्गरेजों के पास उत्तरी भारत में अङ्गरेजी सेना की कमी थी। उन्होंने मद्रास और बम्बई की सेनाएँ मंगा ली तथा चीन जाने वाली सेना को रोक लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ देशी राज्यों को अपनी ओर मिला लिया, जिन्होंने अंग्रेजों की पर्याप्त सहायता की। इस समय पंजाब की ओर विशेष ध्यान दिया गया, क्योंकि वहाँ पर तीन प्रकार के भय की आशंका थी—(१) सैनिकों में विद्रोह की भावना, (२) अफगान आक्रमण का भय तथा (३) सिक्खों का व्यवहार। अङ्गरेजों ने भारतीय सिपाहियों को सामयिक रूप से भंग कर दिया। जिन्होंने विद्रोह किए उनका तत्परता से दमन किया गया। दोस्तमुहम्मद ने पंजाब पर आक्रमण नहीं किया और उसने उन संधियों का पूर्णरूप से पालन किया जो उसने १८५५ और १८५७ में अङ्गरेजों से की थीं। सिक्ख सेना क्रान्ति से पूर्णतया उदासीन ही नहीं रही, वरन् अङ्गरेजों ने उनका प्रयोग क्रान्ति के दमन में किया। इसके अतिरिक्त सरकार ने अन्य अङ्गरेज पदाधिकारियों को विशेष अधिकार प्रदान किए, जिससे वे क्रांति का दमन करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हो गए। गोरखों ने भी अङ्गरेजों का साथ दिया, क्योंकि अवध की सहायता से अंग्रेज उन पर अधिकार करने में सफल हुए थे। अंग्रेजों ने क्रान्ति का दमन करने के लिए हर संभव उपाय की शरण ली। उन्होंने कुछ को **घूस तथा अन्य प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया जिसके** कारण क्रान्ति **का पक्ष निर्बल होने लगा।** "दमन कार्यों में अङ्गरेजों ने सारी शिष्टता, भद्रता एवं मनुष्यता का परित्याग कर दिया। उनकी पाशविक प्रवृति पूर्णरूप से जागृत हो गई। **जनरल नील और हैवलॉक** की सेनाओं के निर्मम कृत्यों को पढ़कर बरबस चंगेज खाँ, हलाकु की क्रूर गाथा का स्मरण हो आता है।

दिल्ली पर अङ्गरेजों का अधिकार—सर्व प्रथम अङ्गरेजों ने दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए प्रधान सेनापति एनसन गया। दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित करने

में पंजाब ने अंग्रेजों को विशेष रूप से सहायता प्रदान की। बहादुरशाह ने सिक्ख राज्यों को अपनी ओर मिलाने का घोर प्रयत्न किया, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। पंजाब के अधिकारियों ने कुत्सित प्रचार के कारण सिक्खोंमें मुसलमानों के प्रतिशोध की भावना कूट-कूट कर भर दी थी। एनसन सिक्खों तथा पंजाब से सेना लेकर अम्बाला से दिल्ली पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा, किन्तु वह अभी तक दिल्ली का आधा हिस्सा ही तय कर पाया था कि वह हैजे का शिकार हुआ। उसका स्थान सर हेनरी बर्नार्ड ने लिया। चार जून को मेरठ से आर्कडेल विल्सन अपनी सेना सहित उससे आ मिला। अब भीषण संग्राम आरम्भ हुआ। बहादुरशाह ने अंग्रेजों को कई बार युद्ध में परास्त किया, किन्तु वह अंग्रेजी सेना को छिन्न-भिन्न करने में सफल नहीं हुआ। अंग्रेजों ने दिल्ली से बाहर पहाड़ी पर अपनी छावनी डाल दी। इसी बीच दिल्ली में अव्यवस्था उत्पन्न होने लगी; परन्तु क्रांतिकारियों ने पुनः अपना संगठन किया। अंग्रेजों ने भी आक्रमण की योजना बनाकर चारों ओर से दिल्ली पर आक्रमण किया। क्रांतिकारियों ने बड़ी वीरता से अङ्गरेजी सेना का सामना किया, किन्तु वे उनके आक्रमण को न रोक सके। अङ्गरेजों ने काश्मीरी दरवाजे को उड़ा दिया। अङ्गरेज दिल्ली में प्रवेश करने में सफल हुए। अंग्रेजों ने बहादुरशाह और उसके पुत्रों को उसके सम्बन्धियों के विश्वासघात के कारण बन्दी कर लिया। उसके पुत्रों का वध कर दिया गया और उनके सिरों को काट कर बहादुरशाह के पास भेज दिया गया। बहादुरशाह बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया, जहां १८६३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

बनारस पर अधिकार—बनारस पर अधिकार करने के लिए जनरल नील अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। उसने शीघ्र ही बनारस पर अधिकार किया। वहाँ उसने क्रांतिकारियों के साथ बड़ा क्रूर तथा निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया। हजारों व्यक्तियों का वध कर डाला गया। गाँव के गाँव जला दिए गए। किसानों की फसलें काट डाली गईं। स्त्रियों और पुरुषों को मौत के घाट उतारा गया।[1]

इलाहाबाद—बनारस में अपनी पाशविक भावना का प्रदर्शन करने के उपरान्त जनरल नील ने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान किया। इलाहाबाद में भी सैनिकों ने विद्रोह किया था और जनता ने उनका साथ देकर बहादुरशाह की हरी पताका फहराई थी। क्रान्तिकारियों का नेतृत्व लियाकतअली नाम के एक मौलवी ने किया, जिसने ग्यारह दिन तक अंग्रेजों से संघर्ष किया, परन्तु भारतीय सिपाही किले पर अधिकार करने में असफल रहे, जिसकी रक्षा सिक्ख कर रहे थे। १७ जून को जनरल नील इलाहाबाद पहुँचा। उसने शीघ्र ही नगर पर अधिकार किया और जनता के साथ पाशविक व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। सैकड़ों व्यक्ति

---

[1] "Soldiers and civilians alike were holding bloody Assizes, slaying natives without any assize at all, regardless of sex or age. It is on record in papers sent home by the Governer-General in council that 'aged women and children are sacrificed as well as those guilty of rebllion." —Rayee.

चौक के नीम के पेड़ों की शाखाओं पर लटका दिए गए ।[1]

कानपुर—नाना साहेब ने कानपुर और उसके समीप के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था । २६ जून को उन्होंने कानपुर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया । नाना साहेब ने दुर्ग के अन्दर रहने वाले अंग्रेजों को यह आश्वासन दिया था कि उनके साथ सद्व्यवहार किया जायगा । उनको यह आदेश दिया गया कि वे नावों द्वारा नदी के पार चले जाएँ । जब वे नावों पर चढ़कर गंगा में पहुँच गए तो कुछ भारतीय सैनिक ने उन पर आक्रमण किया । बहुत से अंग्रेज मारे गए । नाना साहेब को इस घटना का समाचार उस समय विदित हुआ जब वह काण्ड समाप्त हो गया । उस समय उनको बड़ा दु:ख हुआ, किन्तु क्या किया जा सकता था । नाना साहेब ने पेशवा की उपाधि धारण की । **अंग्रेजों को जब कानपुर काण्ड का पता चला तो इलाहाबाद से**

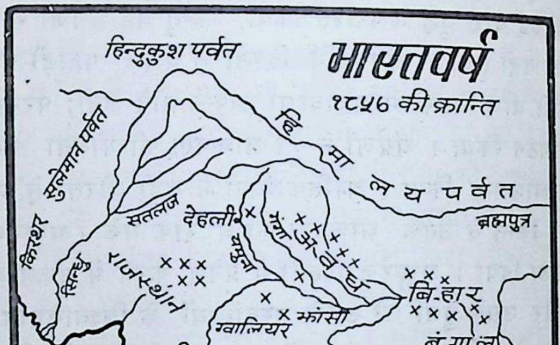
भारतवर्ष
१८५७ की क्रान्ति
हिन्दुकुश पर्वत
सुलेमान पर्वत
किरथर
हिमालय पर्वत
ब्रह्मपुत्र
सतलज
सिन्धु
राजस्थान
देहली
यमुना
गंगा
अवध
बिहार
बंगाल
ग्वालियर
झांसी
नर्मदा
ताप्ती
महानदी
गोदावरी
कृष्णा
कावेरी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

---

[1] "From the morning of the 18th June the round of hanging from tree tops and burning of villages began. Out of the seven Nine trees in the chowk of Allahabad from whose branches people were hanged, three yet remain as silent witnesses of Neill's atrocities, the calloas disregard of age or sex which Neille displayed was unimaginable writes Holmes in his Sepay War 'Old men had done us no harm, helpless women with suckling infornts at their breasts felt the weight of our vengeance no less than the vilest molefactors.

—Dr. Ishwari Prasad and S. K. Subader History of Modern India, p. 255

दो सेनाएँ जनरल हैवलॉक और जनरल रेनर्ड की अध्यक्षता में कानपुर भेजी गईं। मार्ग में इन सेनाओं ने जनता के साथ बड़ा पाशविक तथा अमानुषिक व्यवहार किया। अंग्रेजों ने फतहपुर पर अधिकार किया। वहाँ भी अंग्रेजों का जनता के साथ बुरा व्यवहार रहा। इसके उपरान्त सेनाएँ कानपुर की ओर बढ़ीं। नाना साहेब ने अंग्रेजी सेना का बड़ा डटकर सामना किया, किन्तु पराजित हुए। हैवलॉक १७ जुलाई को नगर में प्रविष्ट होने में सफल हुआ। नगर में लूट-मार मचाता हुआ वह लखनऊ की ओर चला गया। इधर नाना साहेब ने पुनः सेना का संगठन कर कानपुर पर आक्रमण किया। उन्होंने शीघ्र ही बिठूर को अपने अधिकार में किया। कानपुर की सेना की सहायता के लिए हैवलॉक लखनऊ से कानपुर आया। वह नाना साहेब की सैनिक कार्यवाही देखकर दंग रह गया और उसने कानपुर पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। उसने तुरन्त ही कलकत्ते से और सेना मंगवाने की व्यवस्था की। इसी समय तांत्या टोपे कानपुर की ओर आया। वह नाना साहेब का अत्यन्त योग्य विश्वास-पात्र सेनापति था। हैवलॉक से परास्त होने पर नाना साहेब फतहपुर चले गए थे और वहीं से वे कानपुर पर अधिकार करने की योजना बनाने लगे। तांत्या टोपे के नेतृत्व में नाना की सेना ने बिठूर पर पुनः अधिकार किया, किन्तु हैवलॉक ने १६ अगस्त को उसे भयानक युद्ध के उपरान्त परास्त किया। तांत्या टोपे शीघ्र ही ग्वालियर गया और वहाँ से सेना का संगठन कर उसने कल्पी पर अधिकार किया। नाना साहेब भी अपनी सेना लेकर उससे यहीं आ मिला। दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने कानपुर पर आक्रमण किया। अंग्रेज इस सम्मिलित सेना का सामना नहीं कर सके और कानपुर पर नाना साहेब का पुनः अधिकार स्थापित हो गया। जब यह समाचार लखनऊ पहुँचा तो **कैम्पबेल** ने कानपुर की ओर प्रस्थान किया। ३ दिन तक दोनों में बड़ा भीषण संघर्ष हुआ। अपनी पराजय को निश्चित समझ तांत्या टोपे काल्पी चला गया। अङ्गरेजों ने शीघ्र ही कानपुर पर अधिकार कर लिया।

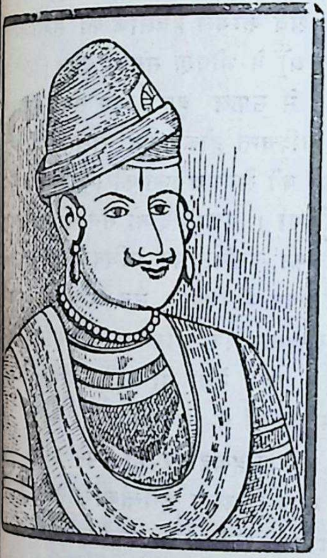

नाना साहेब

अवध—क्रांति का सबसे भीषण रूप अवध में था। वहाँ सेना तथा जनता दोनों में अपार उत्साह तथा साहस था। ३० मई की रात्रि को वहाँ क्रांति का कार्य आरम्भ हुआ। समस्त प्रदेश के जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों ने क्रांति में भाग लिया; जहाँ भी अङ्गरेज मिले उनका वध कर दिया गया और उनके भवनों को जलाकर नष्ट कर दिया गया। समस्त अवध पर से अंग्रेजों के अधिकार का अन्त कर

क्रान्तिकारियों ने उस पर अधिकार किया। अवध का रेजीडेण्ट सर हेनरी लारेंस बहुत ही योग्य तथा कर्मठ व्यक्ति था। वह प्रथम अंग्रेज था जिसको पूर्व से ही क्रान्ति का आभास हो रहा था। उसने अंग्रेजी रेजीडेन्सी की पहले से ही किलेबन्दी कर ली थी और जितने भी अङ्गरेज उसकी शरण में आए उसने उनको रेजीडेन्सी में स्थान प्रदान किया। क्रान्तिकारियों ने लखनऊ स्थित रेजीडेन्सी पर अधिकार करने का घोर प्रयत्न किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। अङ्गरेजों ने अब रेजीडेन्सी के उद्धार के लिए प्रयत्न करना आरम्भ किया। हैवलॉक एक विशाल सेना लेकर कानपुर से लखनऊ गया। वह २३ सितम्बर को आलमबाग पहुँचा, जहाँ क्रान्तिकारियों ने उसको बुरी तरह परास्त किया। वह रेजीडेन्सी की ओर गया, किन्तु क्रान्तिकारियों ने उसको परास्त कर दिया। **अब कैम्वेल हैवलॉक की सहायता के लिए लखनऊ की ओर चल पड़ा।** दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ। अन्त में अङ्गरेज रेजीडेन्सी से क्रान्तिकारियों को हटाने में सफल हुए। इस समय कैम्पबेल को कानपुर की ओर जाना पड़ा। वहाँ से निश्चिन्त होकर वह लखनऊ की ओर गया। **अंग्रेजों के सौभाग्य से इसी समय गोरखों की सेना अंग्रेजों की सहायता के लिए आ गई।** अङ्गरेजों ने लखनऊ पर आक्रमण किया। यद्यपि दोनों सेनाओं में भीषण संग्राम हुआ, किन्तु अंग्रेज विजयी हुए और उनका लखनऊ पर अधिकार हो गया।

अहमदशाह और नाना साहेब शाहजहाँपुर में मिले। उन दोनों ने सेनाओं का संगठन करना आरम्भ किया। कैम्पबेल लखनऊ पर अधिकार कर शाहजहाँपुर गया, किन्तु दोनों नेता वहाँ से बरेली चले गए। अन्य नेता भी वहाँ एकत्रित हो गए। कैम्पबेल ने बरेली की ओर प्रस्थान किया। अङ्गरेजों ने उसको अपने अधिकार में किया। इधर अहमदशाह ने बरेली से भाग कर शाहजहाँपुर को अपने अधिकार में किया। विवश होकर कैम्पबेल शाहजहाँपुर गया। अन्य क्रान्तिकारी नेता उसकी सहायता के लिए वहाँ गए। अहमदशाह भाग कर अवध गया जहाँ एक देशद्रोही ने उसका वध कर डाला। अवध में पुनः क्रान्ति ने भीषण रूप धारण कर लिया। किन्तु अंग्रेजों ने उनको परास्त कर जनता के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया। क्रान्तिकारी नेता अवध छोड़कर नैपाल की तराई की ओर भाग गए।

झांसी—झांसी की रानी अंग्रेजों की नीति से वड़ी क्रुद्ध थी। कुछ समय तक उसने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया, किन्तु बाद में उसने सेना का संगठन कर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। उसका दमन करने के लिए मार्च सन् १८५८ ई० को सर ह्यूरोज झांसी की ओर गया। रानी ने स्वय सेना का नेतृत्व किया।

---

1. "The English administriation in Oudh vanished like a dream and left not a wreck behind, The troops mutinied, the people threw off their allegiance. But there was no revenge, no cruelty. The brave and turbulent population with a few exceptions treated the fugitives of the ruling race with marked kindness and the high courtesy and chivalry of the people of Oudh was conspicious in their dealings with their fallen masters who in the days of their power had from the best of motives inflicted or many of them a grave wrong'. —Sir George Forrest

और अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए। रानी ने तांत्या टोपे को सहायता के लिए बुलाया। वह वीर सेनानी अपनी सेना लेकर सहायता के लिए चल पड़ा, किन्तु उसको सर ह्यू रोज ने परास्त कर दिया। रानी की दशा भी चिन्ताजनक हो गई। अंग्रेजों के वे बड़े वेग से हो रहे थे, जिनका सामना झांसी की सेना अदम्य उत्साह तथा साहस से कर रही थी। अब अंग्रेजों ने कूटनीति की शरण लेकर कुछ व्यक्तियों को अपनी ओर मिला लिया। उन्होंने दक्षिण का द्वार खोल दिया और अंग्रेजी सेना उस द्वार से झांसी में घुस गई। झांसी की सेना ने अङ्गरेजों का सामना किया। इसी समय दूसरा द्वार भी टूट गया और उस द्वार से भी अंग्रेज भीतर आ गए। रानी को बड़ी चिन्ता हुई, किन्तु उस वीरांगणा का साहस तथा उत्साह मन्द नहीं हुआ। अपने बच्चे को कमर में बांधकर वह अंग्रेजी सेना को चीरती हुई झांसी से बाहर निकलने में सफल हुई। वह तांत्या टोपे के पास काल्पी पहुँची। सर ह्यूरोज ने काल्पी की ओर प्रस्थान किया। अङ्गरेज विजयी हुए, किन्तु रानी लक्ष्मीबाई वहां से भी भागने में सफल हुई। लक्ष्मी बाई और तांत्या टोपे ने ग्वालियर पर आक्रमण कर उसको अपने अधिकार में किया सर ह्यू रोज ने ग्वालियर पर आक्रमण किया, किन्तु परास्त हुआ। अगले दिन पुनः दुर्ग पर आक्रमण किया गया। रानी अंग्रेजी सेना से घिर गई। रानी ने भागना ही ठीक कर समझा। वह भागी और अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। उसका घोड़ा एक नाले में गिर गया। अंग्रेजों ने उस पर आक्रमण कर उसको घायल कर दिया, किंतु इस अवस्था में भी उसने आक्रमणकारियों का वध कर दिया। कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। अग्रेजों ने भी इस वीर रमणी की वीरता, उत्साह तथा साहस की बड़ी प्रशंसा की है।

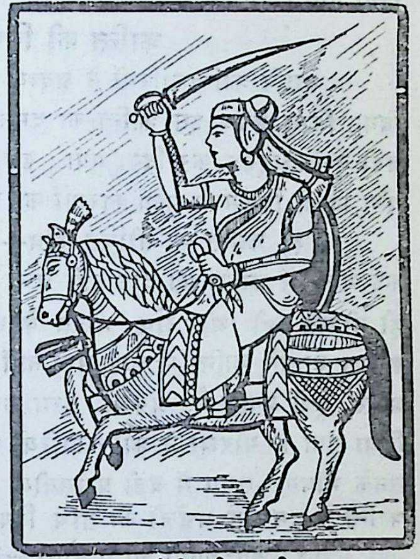
झांसी की रानी

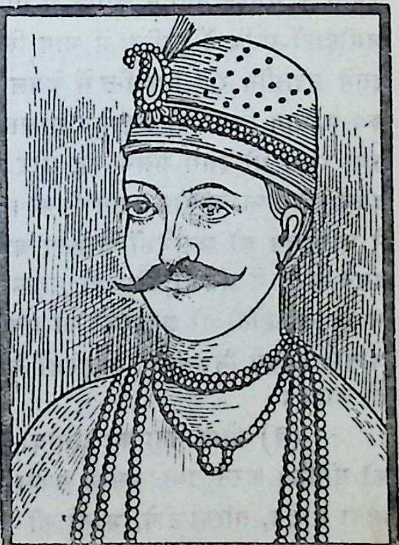
तांत्या टोपे

तांत्या टोपे का अन्त—केवल अब तांत्या टोपे ही शेष रहा था। यद्यपि उसकी अवस्था बड़ी हीन थी, क्योंकि न तो उसके पास धन था और न सेना ही थी ,किन्तु

उस वीर क्रान्तिकारी ने साहस का परित्याग नहीं किया। वह दक्षिण जाकर क्रान्ति की ज्वाला प्रचण्ड करना चाहता था। वह नागपुर गया, किन्तु वहाँ की जनता ने उसका साथ नहीं दिया। **अंग्रेजों ने नागपुर घेर लिया, किन्तु तांत्या टोपे उनको धोखे में डालकर उदयपुर पहुँच गया।** अंग्रेजों ने उसका वहाँ भी पीछा किया। वह वहाँ से भाग कर अलवर गया, जहाँ मानसिंह नामक एक सरदार के विश्वास-घात करने के कारण वह बन्दी बना लिया गया। **१८ अप्रैल को उसको मृत्यु दण्ड दिया गया।** इस प्रकार अपने कार्यों द्वारा उसका नाम सदा के लिए अमर हो गया।

क्रान्ति की विफलता के कारण

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने अदम्य उत्साह, वीरता, साहस एवं त्याग का परिचय दिया, किन्तु अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन करने में सफल हुए, और क्रान्ति का अन्त बड़ी नृशंसतापूर्वक कर दिया गया। इस क्रान्ति के असफल होने में बहुत-से कारणों ने योग दिया, जिनमें से मुख्य कारणों का निम्न पंक्तियों में उल्लेख किया जाएगा—

(१) क्रान्ति का सीमित क्षेत्र—क्रान्ति का क्षेत्र सीमित था, क्योंकि देश के कई भागों में क्रान्ति का दौर नहीं चला। **यह क्रान्ति दिल्ली से लेकर कलकत्ते तक ही सीमित रही और शेष भारत के लोग क्रान्ति से प्रभावित नहीं हुए, जिनके कारण उन्होंने क्रान्ति में कोई भाग नहीं लिया।** पंजाब, सिन्ध, राजस्थान, दक्षिण भारत, पूर्वी बंगाल में अंग्रेजी सत्ता का अन्त करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया। गोरखों ने क्रान्तिकारियों को सहयोग देने के स्थान पर अंग्रेजों को उनके भीषण समय में बड़ी प्रशंसनीय सहायता की और पंजाब के सिक्खों ने भी क्रान्ति के दमन में अंग्रेजों का साथ दिया।

(२) जन-क्रान्ति का न होना—यह क्रान्ति-जन क्रान्ति नहीं हो पाई, क्योंकि जनता के समस्त वर्गों ने क्रान्ति में भाग नहीं लिया। कुछ प्रदेशों में यद्यपि किसानों, जमींदारों आदि ने क्रान्ति में भाग लिया, किन्तु अधिक प्रदेशों में साधारण जनता इससे उदासीन रही। **क्रान्ति में केवल उन राजाओं, सरदारों तथा जमींदारों ने विशेष रूप से भाग लिया जो अङ्गरेज साम्राज्यवाद के शिकार हो चुके थे।** बहुत-से सरदार तथा राजा भी इससे अलग रहे और कुछ ने तो अंग्रेजों की सहायता कर क्रान्ति के दमन में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। इसी आधार पर **इन्स** का कथन है कि सिन्धिया **ने भारतवर्ष को अङ्गरेजों के लिए बचाया।** नैपाल की सेना ने अवध की क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों की बड़ी सहायता की। यदि ठीक समय पर नैपाल की सेना न आ गई होती तो अङ्गरेजों की अवध में और भी अधिक शोचनीय परिस्थिति हो जाती, जिससे निकलना अङ्गरेजों के लिए दुःसाध्य नहीं तो विशेष कठिन अवश्य हो जाता।

(३) योग्य नेता का अभाव—यद्यपि क्रान्ति के कई नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को संगठित करने तथा उसको सफल बनाने के लिए अकथनीय प्रयत्न किए, जिनमें नाना साहेब, तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, वाजिदअली शाह तथा उसकी बेगम विशेष प्रसिद्ध हैं, **किन्तु इनमें कोई भी ऐसा योग्य नेता न था** जो समस्त सेना

के लिए सर्वमान्य होता और जिसके इशारे पर जनता में अङ्गरेजों के विरुद्ध विद्रोहात्मक भावना फैल जाती और जो सैनिकों को यथासम्भव सहायता प्रदान करने का प्रयत्न करता। यह सर्वमान्य है कि नेताओं में विशिष्ट गुण अवश्य विद्यमान थे, किन्तु वे क्रान्ति को तथा क्रान्तिकारियों को एकता के सूत्र में बांधने में सफल नहीं हो सके। सिक्ख मुसलमानों की नीति के कारण उनसे सहयोग स्थापित नहीं कर सकते थे। मुसलमान हिन्दुओं के साथ वैमनस्य रखते थे। अतः सर्वमान्य नेता के अभाव में क्रान्ति असफल रही।

(४) केन्द्रीय योजना का अभाव—क्रान्तिकारियों में केन्द्रीय योजना का अभाव था तथा उनकी नीति स्पष्ट नहीं थी। **नीति के अस्पष्ट तथा अकेन्द्रीय होने के कारण क्रान्तिकारी नेताओं में एकता का सर्वथा अभाव था।** प्रत्येक की नीति अलग थी और प्रत्येक के समर्थक अपने ही नेता के अन्तर्गत कार्य करना चाहते थे। सब नेताओं के अपने-अपने स्वार्थ थे जिनकी पूर्ति के लिए वे प्रयत्नशील थे। इसके विपरीत अंग्रेजों की योजना बिल्कुल स्पष्ट थी और उनके पास योग्य और कर्मठ नेता थे जिन्होंने क्रान्ति को असफल करने में किसी भी बात की कसर नहीं छोड़ी और उन्होंने हर सम्भव साधन का प्रयोग किया।

क्रान्ति की विफलता के कारण

(१) **क्रान्ति का सीमित क्षेत्र।**
(२) **जन-क्रान्ति का न होना।**
(३) **योग्य नेता का अभाव।**
(४) **केन्द्रीय योजना का अभाव।**
(५) **साधनों का अभाव।**
(६) **अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन।**
(७) **अंग्रेजों की संतोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति।**
(८) **अराजकता का उत्पन्न होना।**

(५) साधनों का अभाव—क्रान्तिकारियों के पास साधनों का बहुत बड़ा अभाव था। (i) उनके पास **धन की बहुत कमी थी**, जिसके कारण सैनिकों के वेतन की उचित व्यवस्था नहीं हो पाई थी। (ii) उनके **अस्त्र-शस्त्र प्राचीन ढंग** के थे तथा उनके पास तोपखाना बहुत कम था। (iii) उनमें **योग्य तथा कर्मठ सेनापतियों का अभाव था।** (iv) उनको **समाचार भेजने तथा उनको प्राप्त करने में बड़ा समय लग जाता था** जिसके कारण शीघ्र आवश्यक स्थल पर पहुँचना कठिन रहता था। इसी कारण सबको अलग-अलग अपने सीमित क्षेत्रों में कार्य करना पड़ा और एक दूसरा एक दूसरे की सहायता बहुत कम कर सका।

(६) अंग्रेजों के पास पर्याप्त साधन—इसके विपरीत अंग्रेजों के पास पर्याप्त सेना थी जो आधुनिक अस्त्र-अस्त्र से सुसज्जित थी। उनके पास योग्य तथा कर्मठ सेनापति थे। आधुनिक आविष्कार रेल, तार आदि के कारण उनको समस्त समाचार शीघ्रता से प्राप्त हो जाते थे और वे आवश्यक कार्य शीघ्रातिशीघ्र कर सकते थे।

(७) अंग्रेजों की सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति—इस समय अंग्रेजों की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सन्तोषजनक थी, जिसके कारण वे क्रान्ति का कठोरतापूर्वक तथा अपने समस्त साधनों का प्रयोग कर दमन करने के कार्य में एकाग्रचित्त होकर

संलग्न हो गए। दोस्तमुहम्मद ने अफगानिस्तान से भारत पर आक्रमण नहीं किया। उसने पूर्व में की हुई सन्धियों का पूर्णरूप से पालन किया। क्रीमिया तथा चीन के युद्धों का अन्त हो चुका था तथा फारस को अंग्रेज परास्त कर चुके थे।

(८) अराजकता का उत्पन्न होना— क्रान्तिकारियों ने धन के अभाव में साधारण जनता को लूटना आरम्भ कर दिया, जिसके कारण क्रान्ति के क्षेत्रों में अराजकता उत्पन्न हो गई, जिसने जनता को क्रांति से शीघ्र ही उदासीन कर दिया। जेलों आदि के तोड़ने से बदमाश तथा गुण्डे व्यक्ति मुक्त हो गए जिनको अपने कार्य करने का खुला अवसर प्राप्त हुआ। इस अराजकता के उत्पन्न होने से अंग्रेजों को जनता का सहयोग प्राप्त हुआ। अंग्रेजी सेनापतियों ने क्रान्तिकारियों का इस कठोरता, निश्शृंसता तथा पाशविकता से दमन किया कि जनता में आतंक छा गया और वह बड़ी भयभीत हो गई।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) सन् १८५७ का स्वतन्त्र-विद्रोह क्या केवल डलहौजी की नीति का परिणाम था ?

(२) १८५७ की क्रान्ति के क्या कारण थे ? उनके परिणामों का उल्लेख कीजिए।

(३) १८५७ के विप्लव के क्या कारण थे ? क्या हम उसे स्वाधीनता संग्राम का प्रथम युद्ध कह सकते हैं ?

राजस्थान—

(१) क्या आपकी राय में १८५७ का गदर राष्ट्रीय-आन्दोलन था या सैनिक-विद्रोह ? कारण सहित लिखो। यह क्यों असफल रहा ?

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) "सन् १८५७ का सैनिक विद्रोह समय की बदलती हुई परिस्थितियों का परिणाम था।" क्या आप इससे सहमत हैं ?

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) १८५७ के महान् विप्लव के कारणों की विवेचना कीजिए। इसे जनता का युद्ध कहना कहाँ तक न्यायोचित है ?

(२) १८५७ की महान् क्रान्ति की असफलता के प्रमुख कारण क्या थे ?

(३) सन् १८५७ की महान् क्रांति के प्रमुख नेतागण तथा उन देशी राजाओं के विषय में संक्षेप में लिखिए जिन्होंने इसमें भाग लिया था।

(४) सन् १७५७ के महान् विद्रोह के कारणों का परीक्षण कीजिए। क्या यह सैनिक क्रांति थी अथवा राष्ट्रीय आन्दोलन ?

३

कम्पनी के अन्तर्गत भारत

सन् १८५७ ई० की क्रान्ति के उपरान्त जिस व्यवस्था का जन्म हुआ उसके अन्तर्गत कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया और उसके स्थान पर भारत की शासन-व्यवस्था पर इंगलैण्ड के सम्राट का आधिपत्य स्थापित हुआ। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उन समस्त बातों का अध्ययन कर लिया जाए जो कम्पनी के राज्य के अन्तर्गत भारत में हुईं। इस अध्ययन के अन्तर्गत निम्न शीर्षकों का अध्ययन किया जायगा—

(१) कम्पनी का केन्द्रीय प्रशासन

इलाहाबाद की सन्धि (१७६५) से पूर्व ईस्ट-इण्डिया कम्पनी केवल एक व्यापारिक संस्था थी और उसका मुख्य उद्देश्य भारत में व्यापार करना था, किन्तु इस सन्धि के उपरान्त उसके अधिकार में दीवानी वसूल करने का अधिकार आ गया, जिसके कारण कम्पनी की परिस्थिति में विशेष अन्तर उत्पन्न हुआ। कम्पनी के अधिकार में बंगाल का शासन आने के कारण नई समस्याएँ स्वतः उत्पन्न हो गईं; क्योंकि अब उसके हाथ में व्यापार और दीवानी के साथ-साथ शासन भी आ गया। दोहरे शासन-प्रबन्ध के कारण शासन-व्यवस्था उन्नत न हो पाई और विशेष गड़बड़ उत्पन्न हो गई। गत पृष्ठों में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जा चुका है। युद्धों के कारण कम्पनी की आर्थिक अवस्था दिन-प्रति-दिन बिगड़ने लगी। बहुत वाद-विवाद करने के उपरान्त सन् १७७१ ई० में कम्पनी की वास्तविक दशा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से ३१ सदस्यों की एक विशेष समिति तथा १३ सदस्यों की एक गुप्त समिति का निर्माण किया गया। इन दोनों समितियों की रिपोर्ट के आधार पर इंगलैंड की पार्लियामेंट ने सन् १७७३ ई० में दो एक्ट पास किए जिनके द्वारा कम्पनी के ऊपर इंगलैण्ड की पार्लियामेंट का नियन्त्रण स्थापित हो गया। प्रथम एक्ट के अनुसार कम्पनी को १४ लाख पौंड ४ प्रतिशत ब्याज के ऊपर देना निश्चित किया गया। दूसरा एक्ट जो रेग्यूलेटिंग एक्ट के नाम से विख्यात है विशेष महत्वपूर्ण है; क्योंकि इस एक्ट द्वारा कम्पनी के शासन की रूप-रेखा निश्चित की गई। यद्यपि इस एक्ट की धाराओं का विस्तृत

कम्पनी के अन्तर्गत भारत

(१) कम्पनी का केन्द्रीय प्रशासन।
(२) गवर्नर जनरलों द्वारा शासन-सम्बन्धी तथा अन्य सुधार।
(३) शिक्षा की प्रगति।
(४) लोक-कल्याण कार्य।
(५) नव-चेतना।
(६) आर्थिक दशा।

वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है, किन्तु क्रम को निभाने के अभिप्राय से इस एक्ट के विषय में कुछ शब्दों का कहना यहाँ भी आवश्यक प्रतीत होता है—

(i) **रेग्यूलेटिंग एक्ट**—इस एक्ट के द्वारा बंगाल प्रान्त का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल होगा, जिसके अन्तर्गत मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर होंगे। गवर्नर जनरल की सहायता के लिए ४ सदस्यों की एक समिति होगी। इसकी अवधि पाँच वर्ष निश्चित की गई। समस्त निर्णय बहुमत द्वारा होगा। गवर्नर जनरल इस समिति का अध्यक्ष होगा। उसको निर्णायक मत का अधिकार प्रदान किया गया। वह इसका प्रयोग केवल उसी समय कर सकता है जब दोनों पक्षों के मत समान हों। कलकत्ते में एक **सुप्रीम कोर्ट** की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधिपति तथा तीन अन्य न्यायाधिपति होंगे। यह एक्ट सन् १७७३ ई० से १७८४ ई० तक चालू रहा। इस एक्ट में पर्याप्त दोष विद्यमान थे, जिसके कारण यह वास्तविक दशा में कोई विशेष सुधार करने में पूर्णतया असमर्थ रहा। इसके दोषों का उल्लेख करते हुए सरकार और दत्त ने उचित ही कहा है कि ''इस एक्ट के द्वारा शासन-शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की अवहेलना की गई। उसने ऐसे गवर्नर-जनरल की नियुक्ति की जो अपनी समिति के कार्यों पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। इसके द्वारा ऐसी कार्यकारिणी की स्थापना हुई जो सुप्रीम कोर्ट के सामने असहाय थी तथा सुप्रीम कोर्ट ऐसी थी जिस पर देश की शान्ति तथा कल्याण का तनिक भी उत्तरदायित्व नहीं था।' एक आधुनिक इतिहासकार के अनुसार 'यह एक अधूरा अधिनियम था जिसमें बहुत-सी बातें अस्पष्ट थीं जो प्रथम मरहठा-युद्ध ने स्पष्ट कर दीं।' वास्तव में इस एक्ट के कारण स्थिति और भी भयंकर हो गई। वह उसी समय टूट गया जब उसको व्यवहार में लाना आरम्भ किया गया। **समिति के सदस्यों से हेस्टिंग्ज का संघर्ष आरम्भ हो गया जिसके कारण उचित शासन-व्यवस्था की स्थापना असम्भव हो गई।** उन्होंने गवर्नर-जनरल की नीति का घोर विरोध किया और समिति के सदस्यों का व्यवहार गवर्नर-जनरल के प्रति तनिक भी मैत्रीपूर्ण नहीं था।

कम्पनी का प्रशासन

(i) रेग्यूलेटिंग एक्ट।
(ii) पिट-का-इंडिया ऐक्ट।
(iii) सन् १७९३ ई० का चार्टर एक्ट।
(iv) सन् १८१३ ई० का चार्टर एक्ट।
(v) सन् १८३३ ई० का चार्टर एक्ट।
(iv) सन् १८५३ ई० का चार्टर एक्ट।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष दूर करने का असफल प्रयत्न—कुछ ही समय के उपरान्त यह स्पष्ट हो गया कि इस अधिनियम के दोषों के कारण शासन-व्यवस्था का उन्नत होना असम्भव है और यह अनुभव किया जाने लगा कि शीघ्र ही इन दोषों का अन्त कर दिया जाए। (i) **सन् १७७८ ई० का एक्ट**—सन् १७७८ ई० में एक एक्ट इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने पारित किया जिसके अनुसार सुप्रीम कोर्ट के अधिकार

सीमित कर दिए गए। **गवर्नर-जनरल और उसकी समिति को उसके नियन्त्रण से मुक्त** कर दिया गया। (ii) **सन् १७८१ का इण्डिया एक्ट**—सन् १७८१ ई० में एक अन्य विधेयक द्वारा कम्पनी के राजनीतिक तथा व्यापारिक क्षेत्र एक दूसरे से बिलकुल अलग कर देने की व्यवस्था तथा एक बोर्ड की स्थापना, जिसके अधीन कम्पनी का राजनीतिक शासन होगा, पारित करने का प्रयत्न किया गया। यह विधेयक हाउस ऑफ कामन्स ने तो पारित हो गया, किन्तु हाउस आफ लार्डस ने अस्वीकार कर दिया।

(ii) **पिट का इण्डिया एक्ट**—सन् १७८४ ई० में इङ्गलैंड की पार्लियामेंट ने एक अन्य अधिनियम पारित किया जो उस समय के इङ्गलैण्ड के प्रधानमन्त्री पिट के नाम से विख्यात हुआ। इसके द्वारा निम्न संशोधन किए गए—**(क) बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल की स्थापना**—इस अधिनियम के अनुसार कमिश्नरों की एक समिति की स्थापना की गई, जिसका नाम बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल रखा गया। इसमें चांसलर ऑफ एक्सचेकर, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और ४ प्रीवी कौंसिल के सदस्य होते थे। इनकी नियुक्ति इङ्गलैण्ड का सम्राट करता था। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स इनके पूर्णतया अधीन था और उसको इसी समिति के आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। **(ख) गवर्नर-जनरल की समिति के तीन सदस्य**— गवर्नर-जनरल की समिति के सदस्यों की संख्या ४ से ३ कर दी गई। इनके लिए निश्चय किया गया कि उच्च पदों पर कार्य करने वाले व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त किए जा सकते हैं। इस समिति का नियन्त्रण मद्रास तथा बम्बई की सरकार पर सुनिश्चित कर दिया गया। (ग) संचालकों के तीन सदस्यों की एक गुप्त समिति की स्थापना होगी जो समय-समय पर भारत सरकार को गोपनीय आदेश जारी करेगी। (घ) स्वामी-समिति को संचालन-समिति की कार्यवाही में परिवर्तन तथा संशोधन करने का अधिकार नहीं होगा। (ङ) मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों की सहायता के लिए एक तीन सदस्यों की समिति होगी। (च) सन्धि-विग्रह तथा लगान के सम्बन्ध में प्रान्तीय प्रेसीडेन्सी गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल के अधीन होगी। (छ) गवर्नर-जनरल संचालक समिति की स्वीकृति पर ही युद्ध अथवा सन्धि कर सकेंगे। सन् १७८६ ई० के एक पूरक अधिनियम द्वारा यह भी निश्चित कर दिया गया कि **गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की राय मानने अथवा न मानने का अधिकार है**। इस प्रकार समिति के सदस्यों के अधिकार कम कर गवर्नर-जनरल के अधिकार विस्तृत कर दिए गए। इस अधिनियम का महत्व यह है कि इसके द्वारा केन्द्रीकरण की नीति का प्रादुर्भाव भारत के शासन में आरम्भ होता है और कम्पनी पर पार्लियामेंट का अधिकार विस्तृत हो जाता है। लार्ड पामर्स्टन ने अपने सन् १८५८ ई० के एक भाषण में पिट का इण्डिया एक्ट के दोषों का वर्णन इस प्रकार किया है—

"The functions of Government and the responsibility have been directed between the Directors, the Board of Control and the Governor General in India, and among these authorities it is obvious that despatch and unity of purpose, can hardly exist.

Before a despatch upon the most important matter can go out to India has to oscillate between the Common Row and the India House......and that the adventures of a despatch between these two extreme point of the Metropolis are often as curious as those adventures of a Guinca which we have all read."

(iii) **सन् १७९३ ई० का चार्टर एक्ट**--पिट का इण्डिया एक्ट द्वारा जो भारत-सरकार की रूप-रेखा निश्चित की गई वह मूल रूप में सन् १८५७ ई० तक उसी प्रकार रही, यद्यपि समय-समय पर उसमें कुछ संशोधन होते रहे। सन् १७९३ ई० में एक चार्टर एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि—(क) बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के दो सदस्यों की नियुक्ति प्रीवी कौंसिल के बाहर से की जाए। (ख) बोर्ड का समस्त अधिकार उसके सभापति के हाथ में आ गया। (ग) गवर्नर जरनल का नियन्त्रण मद्रास तथा बम्बई की सरकारों पर और अधिक कर दिया गया। वह वहाँ जा सकता था और उनके शासन पर उसी प्रकार नियन्त्रण रख सकता था जिस प्रकार कि वह बंगाल के शासन पर रखता था।

(iv) **सन् १८१३ ई० का चार्टर एक्ट**—कम्पनी की आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्था की जाँच करने के अभिप्राय से एक समिति का निर्माण किया गया जिसकी रिपोर्ट के आधार पर इंगलैण्ड की पार्लियामेंट ने सन् १८१३ ई० का चार्टर एक्ट पारित किया। **इस अधिनियम के अनुसार कम्पनी का एकाधिकार चाय के व्यापार पर रह गया और अन्य वस्तुओं के व्यापार पर से उसके एकाधिकार का अन्त कर समस्त अंग्रेज जाति के लिए खोल दिया गया।** भारत के राज्य और राजस्व पर इंगलैंड के सम्राट की सत्ता स्थापित करते हुए कम्पनी को आगामी बीस वर्ष तक के लिए अधिकारी का पद प्रदान किया गया। अतः इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के प्रदेशों पर पार्लियामेंट की सत्ता स्थापित कर दी गई। यह भी निश्चित किया कि कम्पनी प्रतिवर्ष शिक्षा के प्रसार के लिए एक लाख रुपया व्यय करेगी।

(v) **सन् १८३३ का चार्टर एक्ट**—बीस वर्ष उपरान्त पार्लियामेंट ने एक अन्य चार्टर एक्ट पारित किया। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इस समय इंगलैण्ड पर उदार दल का शासन था, जिसके महान् व्यक्तियों के विचारों का प्रभाव इम एक्ट पर पड़ा।[1] (क) **इस अधिनियम द्वारा कम्पनी के समस्त व्यापारिक अधिकारों का अन्त हो गया।** अतः कम्पनी केवल एक राजनीतिक संख्या रह गई जिसमें उसका कार्य केवल शासन-प्रबन्ध ही करना रह गया। (ख) इस अधिनियम द्वारा **भारत का शासन इंगलैंड के राजा के ट्रस्टी के रूप में कम्पनी के पास बीस वर्ष तक छोड़ दिया गया।** इसका अर्थ यह है कि भारत का शासन इंगलैण्ड के राजा के

---

[1] "When whig and liberal principles were politically victorious, when Macaulay was Secretary to the Board of Control, and James Mill, the disciple of Bentham and admirer of his views on legislation and codification was examiner of correspondence of the India House"

—**Keith : Constitutional History of India, p., 131.**

अन्तर्गत था, किन्तु उसने बीस वर्ष तक के लिए वह शासन कम्पनी को धरोहर के रूप में प्रदान किया। (ग) **अब से बंगाल का गवर्नर-जनरल भारत का गवर्नर-जनरल** कहलाएगा किन्तु बंगाल का शासन उसी के हाथ में रहेगा। उस पर उसका पहले के समान ही नियन्त्रण रहेगा। (घ) उसकी कौंसिल के सदस्यों की संख्या ३ से ४ कर दी गई, बढ़ाया हुआ सदस्य **विधि सदस्य** होगा। इस पर **लार्ड मैकाले** नियुक्त किया गया। (ङ) **गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को समस्त भारत के लिए अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ।** (च) **मद्रास और बम्बई की कौंसिलों** में दो सदस्य **नियुक्त किए गए।** (छ) गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए बंगाल शासन के लिए एक डिप्टी गवर्नर होगा। (ज) बम्बई और मद्रास के गवर्नरों को अधिनियम बनाने के अधिकार से मुक्त कर दिया गया। (झ) यह भी निश्चय किया गया कि 'कोई भी भारतवासी अपने जन्म-स्थान, वंश-रंग आदि के कारण कम्पनी की नौकरी का अनाधिकारी नहीं समझा जाएगा। **यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इसके द्वारा भारतीयों को कम्पनी की नौकरियाँ प्राप्त करने का अधिकार प्रदान** किया गया, किन्तु **पर्याप्त समय** तक **इस ओर विशेष प्रगति नहीं हो पाई।**

सन् १८५३ का चार्टर एक्ट—इस समय तक इंग्लैण्ड की जनता का यह मत हो गया था कि कम्पनी के हाथ से भारत का शासन इंगलैण्ड के राजा को अपने अधिकार में ले लेना चाहिए, किन्तु कम्पनी के संचालक भारत के शासन पर अपना पूर्ववत् अधिकार स्थापित रखना चाहते थे। इस अधिनियम द्वारा दोनों मतों में एक समझौता-सा हो गया। यह निश्चय हुआ कि **कम्पनी भारत राज्य को उस समय तक धरोहर के रूप में संचालित करती रहेगी जब तक कि कोई दूसरा अधिनियम पार्लियामेण्ट द्वारा पारित नहीं किया जाए।** अब तक के समस्त अधिनियमों द्वारा कम्पनी को यह अधिकार बीस वर्ष तक की अवधि के लिए दिया जाया करता था। कम्पनी के संचालकों की संख्या २४ से १८ कर दी गई, जिनमें से ६ की नियुक्ति इंगलैण्ड का राजा करेगा। मीटिंग के लिए कोरम भी कम कर दिया गया। नौकरियों के लिए परीक्षा की व्यवस्था की गई। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्य अधिनियम बनाने के लिए १८ कर दिए गए। अब से उनके सदस्य इस प्रकार होंगे—गवर्नर-जनरल, प्रधान सेनापति, चार परिषद् के सदस्य, प्रत्येक प्रान्त का एक प्रतिनिधि, बंगाल का प्रधान न्यायाधिपति तथा एक उच्च न्यायालय का न्यायाधिपति। यह विधान-सभा के नाम से सम्बोधित की जा सकती है। **इसकी बैठकें खुली होने लगीं और उसकी कार्यवाही का प्रकाशन होने लगा।** संचालकों से कृपादान का अधिकार ले लिया गया और यह पार्लियामेण्ट बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के द्वारा बनाए हुए नियमों के अनुसार कार्यान्वित होने लगा। इस प्रकार १८५७ ई० की क्रान्ति के पूर्व ही कम्पनी की समस्त सत्ता पर बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के सभापति का नियन्त्रण स्थापित हो गया, जिससे शासन का भार इंगलैण्ड के सम्राट के हाथ में आ गया।

(२) गवर्नर-जनरलों द्वारा शासन-सम्बन्धी तथा अन्य सुधार

कुछ गवर्नर-जनरलों ने कम्पनी के शासन में आवश्यकतानुसार बहुत-से सुधार किए। इन गवर्नर-जनरलों में वारेन-हेस्टिंग्ज, लार्ड कार्नवालिस, लार्ड विलियम बैंटिंग विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं—

हेस्टिंग्ज के सुधार—अपनी कठिनाइयों तथा समस्याओं को भली प्रकार समझने के उपरान्त हेस्टिंग्ज ने सुधारों की ओर ध्यान दिया और एक विशद योजना का निर्माण किया। उसके सुधारों को पाठकों की सुविधा के लिए निम्न शीर्षकों में विभाजित किया गया है—

(1987, 83)

हेस्टिंग्ज के सुधार

- (क) द्वैध-शासन का अन्त।
- (ख) व्यापारिक सुधार।
- (ग) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार।
- (घ) न्याय-विभाग में सुधार।
- (ङ) अन्य सुधार।

(क) **द्वैध शासन का अन्त**—वास्तव में हेस्टिंग्ज द्वैध-शासन का अन्त करने के उद्देश्य से ही प्रधानतः बंगाल की गवर्नरी के पद पर नियुक्त किया गया था। द्वैध-शासन के कारण पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गए थे, जिनका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। उसने द्वैध-शासन की समाप्ति का आदेश जारी किया। इस कार्य को पूर्ण करने के अभिप्राय से उसने नायब नाजिम के पदों को समाप्त कर दिया। बंगाल में इस पद पर मुहम्मद रजा खाँ और बिहार में इस पद पर सिताब राय कार्य कर रहे थे। दोनों पर मुकदमा चलाया गया, किन्तु बाद में वे आदरपूर्वक छोड़ दिए गए। कम्पनी ने स्वयं अपने सेवकों द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों में मालगुजारी वसूल करवानी आरम्भ कर दी। इस प्रकार कम्पनी 'दीवान के रूप में' कार्य करने लगी। इसके उपरान्त भी भारतीय मालगुजारी वसूल करते थे। उनको पदच्युत कर उनके स्थान पर अंग्रेजों को नियुक्त किया गया। मालगुजारी वसूल करने के लिए एक रिवेन्यु बोर्ड की स्थापना की गई। सैद्धान्तिक रूप में शासन का समस्त उत्तरदायित्व नवाब पर था। उसने नवाब को शासन के उत्तरदायित्व से अलग कर दिया। वह कम्पनी का पेंशनर बना दिया गया और उसको १६ लाख रुपया वार्षिक पैंशन के रूप में दिया जाने लगा। पाठकों को याद होगा कि सन् १७६५ ई० की सन्धि के अनुमार कम्पनी नवाब को ५३ लाख रुपया देती थी, सन् १७६६ में वह ४१ लाख तथा सन् १७६९ ई० में वह धन ३२ लाख रुपया कर दिया गया, और अब वह धन १६ लाख रुपया कर दिया गया। नवाब के अल्पवयस्क होने के कारग मीरजाफर की विधवा पत्नि मुन्नी बाई उसकी संरक्षक नियुक्त की गई और नन्दकुमार के पुत्र गुरुदास को उसके प्रबन्धक के पद पर नियुक्त किया गया। मुन्नी बाई ने हेम्टिंग्ज को १½ लाख रुपया अपनी कृतज्ञता-प्रदर्शन करने के लिए दिया। उसने मितव्ययिता करने के लिए कुछ अनावश्यक वैतनिक पदों की समाप्ति कर दी। शासन की उचित व्यवस्था करने के उद्देश्य से कलकत्ता राजधानी बनाई गई तथा राजकोष कलकत्ता लाया गया।

(ख) व्यापारिक सुधार—बंगाल की व्यापारिक स्थिति कम्पनी के एकाधिकार के कारण बड़ी शोचनीय हो गई थी। छोटे व्यापारियों का व्यापार ठप्प हो गया था। कम्पनी के कर्मचारी व्यक्तिगत व्यापार में मग्न थे। वस्तुओं का मूल्य भ्रष्टाचार के कारण बहुत बढ़ गया था। हेस्टिंग्ज ने शीघ्र ही इस ओर ध्यान दिया और विभिन्न उपायों द्वारा उनको दूर किया। इससे कम्पनी को भी लाभ हुआ तथा छोटे-छोटे व्यापारियों को भी। इस दिशा में उसने पर्याप्त सुधार किए जिनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—

(१) चुंगी में कमी— हेस्टिंग्ज ने चुंगी की दर २½ प्रतिशत, नमक, पान, तम्बाकू और सुपारी के अतिरिक्त निश्चित कर दी। वह समस्त भारतीय तथा योरोपीय व्यापारियों के लिए समान हो गई। इससे पूर्व अंग्रेजों को बहुत-सी वस्तुओं पर चुंगी नहीं देनी पड़ती थी और भारतीय व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी। इसके कारण भारतीय व्यापारी अङ्गरेज व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। उनके माल का मूल्य अंग्रेज व्यापारियों के माल के मूल्य से अधिक रहता था। इस सुधार के कारण इस दोष का अन्त हुआ।

(२) दस्तक-प्रथा का अन्त—हेस्टिंग्ज ने दस्तक प्रथा की समाप्ति कर दी। इसके अनुसार चुंगी की आय सीधे कम्पनी को नहीं मिलती थी वरन् मध्यस्थों को मिलती थी और वे फिर बाद में कुछ कमी कर कम्पनी को देते थे। इसका लाभ यह हुआ कि अब से चुंगी की आय सीधे कम्पनी को प्राप्त होने लगी।

(३) चौकियों की समाप्ति—हेस्टिंग्ज ने चौकियों की समाप्ति की। इससे पूर्व जमींदारों ने विभिन्न स्थानों पर चौकियों की स्थापना कर दी थी। ये चौकियाँ व्यापारिक यातायात में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित करती थीं। इन चौकियों में भ्रष्टाचार था। हेस्टिंग्ज ने केवल कलकत्ता, हुगली, मुर्शिदाबाद, पटना और ढाका में ही चौकियाँ रहने दीं। इनकी समाप्ति से व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

व्यापारिक सुधार

(१) चुंगी में कमी।
(२) दस्तक-प्रथा का अन्त।
(३) चौकियों की समाप्ति।
(४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण।
(५) बैंक की स्थापना।
(६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त।
(७) दादनी का अन्त।
(८) व्यापारिक सन्धियाँ।

(४) नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण—नमक और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित किया गया। व्यापार ठेके पर उठाया गया जबकि अब तक भूमि ही ठेके पर उठाई जाती थी।

(५) बैंक की स्थापना—हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में एक बैंक की स्थापना की, जिससे व्यापारियों को पर्याप्त सहायता प्राप्त हो जाती थी। इससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(६) व्यक्तिगत व्यापार का अन्त—हेस्टिंग्ज ने व्यक्तिगत व्यापार का अन्त

करने के लिए उस पर कठोर प्रतिबन्ध लगाए। क्लाइव ने भी इस ओर प्रयत्न किया था, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई थी।

(७) **दादनी का अन्त**—हेस्टिंग्ज ने दादनी की प्रथा का अन्त किया। इसके अनुसार पहले कम्पनी के कर्मचारी कारीगरों को दादनी देकर उनका तैयार किया हुआ माल निश्चित दामों पर बेचने के लिए बाध्य करते थे। इसका प्रभाव भारतीय उद्योग-धन्धों पर बहुत बुरा पड़ रहा था। इस प्रथा की समाप्ति के उपरान्त व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की दशा उन्नत हुई।

(८) **व्यापारिक सन्धियाँ**– हेस्टिंग्ज ने व्यापार की वृद्धि के लिए मिश्र, तिब्बत तथा भूटान के राजाओं से व्यापारिक सन्धियाँ कीं, जिनके कारण व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने अवध के नवाब तथा बनारस के राजा से भी व्यापारिक सन्धियाँ कीं।

(ग) **मालगुजारी सम्बन्धी सुधार**—अंग्रेजों को मालगुजारी वसूल करने का ज्ञान प्राप्त नहीं था। जब उनके हाथ में दीवानी वसूल करने का अधिकार आया तो उन्होंने यह कार्य पुराने जमींदारों के हाथ में दे दिया। इनका व्यवहार बेचारे किसानों के साथ अच्छा नहीं था। वे मनमाना धन किसानों से वसूल करते थे और कम्पनी को निश्चित धन दे दिया करते थे। इनके अत्याचारों का अन्त करने के उद्देश्य से निरीक्षकों की नियुक्ति की गई, किन्तु उसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ। निरीक्षक अपने निजी व्यापार में फँस गए और अपने कर्त्तव्यों से उदासीन रहे। उसने इस विभाग का पुनसंगठन करने का निश्चय किया। उसने निम्नलिखित मुख्य सुधार किए—

मालगुजारी सम्बन्धी सुधार

(१) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध।
(२) राजस्व समिति की नियुक्ति।
(३) नवाब की पैंशन में कमी।
(४) शाहआलम की पैंशन बन्द।
(५) नई व्यवस्था।

(१) **भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध**– हेस्टिंग्ज ने ठेकेदारी की प्रथा का प्रचलन कराया। पुराने प्रबन्ध के अनुसार जमींदार तथा कानूनगो के पद पैतृक हो गए थे। हेस्टिंग्ज ने उन सबको अलग कर दिया। उसने एक कमेटी द्वारा भूमि-कर पिछले वर्षों के आधार पर पाँच वर्ष के लिए निश्चित किया। अधिकांश व्यक्तियों ने जब इस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया तो जमींदारियों का नीलाम पाँच वर्ष के लिए कर दिया गया और अधिक बोली बोलने वालों के नाम जमींदारी छोड़ दी गई। इसका घातक परिणाम हुआ। जमींदारों ने अत्याधिक धन कृषकों से वसूल करना आरम्भ कर दिया। जागीरों पर कलकत्ता के दलालों तथा गुमाश्तों का अधिकार हो गया। कभी-कभी वे भूमिकर चुकाए बिना ही भाग जाते थे। इस प्रथा से इस प्रकार कम्पनी और जनता को लाभ के बदले हानि हुई।

(२) **राजस्व समिति की नियुक्ति**—हेस्टिंग्ज ने एक राजस्व-समिति का निर्माण किया, जिसके हाथ में लगान के वसूल करने का कार्य सौंप दिया गया। इस समिति में कौंसिल के दो सदस्य और तीन उच्च पदाधिकारी थे। जिले का नियन्त्रण

करने के लिए एक अंग्रेज अफसर नियुक्त किया जो कलक्टर कहलाया। उसकी सहायता के लिए स्थानीय सहायक नियुक्त किए गए।

(३) **नवाब की पेंशन में कमी**—हेस्टिंग्ज ने आर्थिक व्यवस्था को उन्नत करने के लिए नवाब की पेंशन में कमी कर दी। उसको २२ लाख रुपया वार्षिक पेंशन मिलती थी। वह घटाकर १६ लाख कर दी गई।

(४) **शाहआलम की पेंशन बन्द**—शाहआलम को कम्पनी की ओर से २६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन मिलती थी। हेस्टिंग्ज ने उसकी पेंशन बन्द कर दी, क्योंकि अब वह उनके संरक्षण से निकलकर मरहठों के संरक्षण में आ गया था।

(५) **नई व्यवस्था**—कुछ समय उपरान्त उसने प्रान्तीय कौंसिल की स्थापना की। उसने तीन सूबों को ६ भागों में विभक्त कर दिया जो इस प्रकार थे—कलकत्ता, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, दीनाजपुर, ढाका तथा पटना। प्रत्येक के लिए एक प्रान्तीय कौंसिल नियुक्त की गई, जिसमें एक प्रमुख और चार कम्पनी के सदस्य होते थे। प्रत्येक विभाग में एक दीवान हिसाब-किताब के लिए होता था। सन् १७८१ ई० में उसने कुछ परिवर्तन किया, जिसके द्वारा प्रान्तीय कौंसिल और कलक्टर हटा दिए गए और उनके स्थान पर एक समिति का निर्माण किया गया जिसके चार सदस्य होते थे। इनको १० प्रतिशत कमीशन मिलता था और उस धन पर २० प्रतिशत मिलता था जो धन वे तुरन्त कलकत्ता भेजा करते थे।

(घ) **न्याय-सम्बन्धी सुधार**—हेस्टिंग्ज ने न्याय-सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में मुख्य सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) **न्यायालयों का संगठन**—हेस्टिंग्ज के समय से पूर्व जमींदारों को कुछ न्याय-सम्बन्धी अधिकार थे। उसने उनके अधिकारों का अन्त कर दिया। उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी (मुफस्सिल दीवानी अदालत) और एक फौजदारी न्यायालय की स्थापना की। दीवानी अदालत का अध्यक्ष कलक्टर होता था और फौजदारी अदालत का अध्यक्ष काजी या पण्डित होता था। यह कानून की व्यवस्था करता था तथा दण्ड देता था। इन पर भी कलक्टर का अधिकार था। हेस्टिंग्ज ने कलकत्ते में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की। इन अदालतों में जिले के न्यायालयों की अपीलें सुनी जाती थीं। सदर दीवानी अदालत में अध्यक्ष तथा कौंसिल के दो सदस्य होते थे तथा निजामत अदालत में एक मुख्य न्यायाधीश होता था।

(२) **विधियों का संकलन**—उसने हिन्दू और मुसलमानों के कानूनों का संकलन करवाया, जिससे पक्षपातहीन निर्णय किया जाना सम्भव हो गया।

(३) **दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र**—हेस्टिंग्ज ने दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र भी अलग-अलग कर दिए। दीवानी अदालत

न्याय-सम्बन्धी सुधार

(१) न्यायालयों का संगठन।
(२) विधियों का संकलन।
(३) दीवानी और फौजदारी अदालतों के कार्य-क्षेत्र।

के अन्तर्गत उत्तराधिकार, विवाह, जाति, ऋण, ब्याज आदि थे और फौजदारी अदालत के अन्तर्गत हत्या, डकैती, चोरी, जालसाजी, झगड़े आदि थे।

(ङ) अन्य सुधार—उक्त सुधारों के अतिरिक्त हेस्टिग्ज ने अन्य सुधार भी किए जिनका महत्व पर्याप्त है। उसने **पुलिस विभाग** का संगठन किया और प्रत्येक जिले की पुलिस के लिए एक स्वतन्त्र पदाधिकारी की नियुक्ति की। **अराजकता के दमन के** लिए उसने विशेष प्रयत्न किया। इस समय चोरों और डाकुओं ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। उसने आदेश दिया कि चोरों और डाकुओं को पकड़कर उनको उनके गाँवों में ही फांसी दी जाए। इधर कुछ सन्यासी आदि भी गड़बड़ मचा रहे थे। वास्तव में ये डाकू थे जो सन्यासी के वेश में जनता पर अत्याचार कर रहे थे। उनका भी दमन किया गया और इस कार्य में केप्टिन स्टीवार्ड ने बड़ा सहयोग दिया।

उक्त सुधारों के द्वारा दूषित स्थिति का अन्त करने की ओर कदम उठाया गया। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। हेस्टिग्ज तो कुछ अन्य सुधार और भी करना चाहता था, किन्तु उसको डाइरेक्टरों ने विशेष सहयोग नहीं दिया। उसने द्वैध शासन का अन्त कर समस्त क्षेत्रों में सुधार किए, जिससे कम्पनी की स्थिति बहुत दृढ़ हो गई। इसके अतिरिक्त इन सुधारों के द्वारा हेस्टिग्ज की योग्यता तथा कार्यक्षमता स्पष्ट प्रतीत होती है। **सर विलियम हण्टर** के शब्दों में, "वारेन हेस्टिग्ज ने उस नागरिक शासन-प्रणाली की भली-भाँति नींव डाली थी जिस पर कार्नवालिस ने एक विशाल भवन का निर्माण किया।"[1]

(1985 (96) **लार्ड कार्नवालिस के सुधार**—लार्ड कार्नवालिस के शासन-सम्बन्धी सुधार बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसने न्याय-विभाग और भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष प्रयत्न किया—

(i) न्याय-विभाग में सुधार—लार्ड कार्नवालिस ने न्याय के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किए। निजामत अदालत मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते लाई गई। इसमें अब गवर्नर-जनरल, सुप्रीम कौंसिल के सदस्य, प्रान्त का मुख्य काजी और दो मुफ्ती होते थे। उसने जिलों की अदालतों में भी सुधार किया। वहाँ की फौजदारी अदालतों को तोड़कर चार प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई जिसमें से तीन बंगाल में और एक बिहार में। कुछ समय उपरान्त मैजिस्ट्रेटों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे चोरी के छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला करें। उसका ध्यान दीवानी सुधारों की ओर भी आकर्षित हुआ। उसने रेवेन्यु कोर्टों का अन्त कर दिया। उसने कलक्टरों तथा बोर्ड ऑफ रेवेन्यु को न्यायालय के कार्यों से निवृत किया। जिलों में दीवानी अदालतों की स्थापना की गई। इनकी अपील सुनने के लिए पटना, ढाका, मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में प्रान्तीय अदालतों की स्थापना की गई। प्रत्येक प्रान्तीय

---

[1] "Warren Hastings well and firmly laid the foundations of the system of civil administration on which the superstructure was raised by Cornwallis.
—**Sir Willam Hunter. The Imperial Gazetter of India vol. 11, p. 486.**

ग्रदालत में तीन जज होते थे जो अंग्रेज हुग्रा करते थे। इनके निर्णय के विरुद्ध ग्रपील कलकत्ता स्थित सदर दीवानी अदालत में की जा सकती थी।

(ii) **लगान सम्बन्धी सुधार**—लार्ड कार्नवालिस ने लगान वसूल करने की उचित व्यवस्था की स्थापना की ग्रोर विशेष प्रयत्न किया। यह इसका सबसे महत्वपूर्ण सुधार था। यह स्थायी भूमि-व्यवस्था **इस्तमरारी बन्दोबस्त** के नाम से विख्यात है।

स्थायी भूमि-व्यवस्था (इस्तमरारी बन्दोबस्त)—वारेन हेस्टिंग्ज ने भूमि की मालगुजारी तथा लगान के लिए पंचवर्षीय प्रबन्ध की व्यवस्था की। इसके ग्रनुसार मालगुजारी ग्रधिक बोली बोलने वालों को ठेके पर पाँच वर्ष की ग्रवधि के लिए छोड़ दी जाती थी। इस व्यवस्था के दोष शीघ्र ही स्पष्ट दिखलाई देने लगे। नये जमींदारों ने किसानों का भरसक शोषण किया ग्रौर कृषि की उन्नति के लिए तनिक भी ध्यान नहीं दिया। सन् १७८४ ई० में पंचवर्षीय-व्यवस्था के स्थान पर एक वर्षीय व्यवस्था स्थापित की गई, किन्तु सन् १७८६ ई० में सर जान शोर द्वारा इसके स्थान पर दस वर्षीय व्यवस्था की स्थापना की गई। जब कार्नवालिस गर्वनर-जनरल बनकर ग्राया तो उस समय भारत में यही व्यवस्था प्रचलित थी। कार्नवालिस इस व्यवस्था से सहमत नहीं था। वह निश्चित मालगुजारी के ग्राधार पर स्थायी प्रबन्ध करना चाहता था, किन्तु उसके सहयोगी उसकी नीति के विरुद्ध थे। उन्होंने उसकी नीति का विरोध किया, ग्रन्त में, पर्याप्त वादविवाद के उपरान्त उसके सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया। उसने १७९३ ई० में बंगाल में स्थायी भूमि-व्यवस्था (इस्तमरारी बन्दोबस्त) की व्यवस्था की,[1] **जिसके ग्रनुसार निश्चित मालगुजारी पर भूमि जमींदारों को दे दी गई।** इस व्यवस्था से जमींदारों को बड़ा लाभ हुग्रा, समय के ग्रनुसार ग्रधिक भूमि पर खेती होने लगी ग्रौर उपज में बड़ी वृद्धि हुई, जिससे जमींदारों की ग्राय दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। वे किसानों से ग्रधिक उपज के ग्राधार पर ग्रधिक कर वसूल किया करते थे। **ग्रत: इस व्यवस्था से न तो कम्पनी को ही लाभ हुग्रा ग्रौर न किसानों को ही वरन् जमींदारों को ही लाभ पहुँचा।** किसानों के साथ जमींदारों का व्यवहार ग्रच्छा नहीं था। वे उनसे मनमाना लगान वसूल करते थे ग्रौर सरकार की ग्रोर से उनकी ग्रवस्था को उन्नत करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। इसके लिए न्यायालय (ग्रदालतें) ग्रवश्य थीं जिनके द्वारा किसान जमींदारों के ग्रत्याचारों के विरुद्ध न्याय प्राप्त कर सकता था, किन्तु उनकी व्यवस्था बहुत ही व्ययकारिणी तथा विलम्बकारिणी थी, जिससे साधारण किसान उनका लाभ उठाने में ग्रपने ग्रापको ग्रसमर्थ पाता था। जमींदार वर्ग सरकार का बड़ा पक्षपाती तथा समर्थक बन गया ग्रौर उसने अंग्रेजी सरकार की सत्ता स्थापित रखने में भरसक सहयोग प्रदान किया।

(iii) **व्यापार-सम्बन्धी सुधार**—व्यापार के क्षेत्र में भी कार्नवालिस ने कुछ सुधार किए। उसने कम्पनी के नौकरों को माल के लिए ठेके की प्रथा को बन्द कर दिया तथा कम्पनी के ऐजेण्ट बनाकर उनके द्वारा भारतीयों से माल खरीदने का प्रबन्ध कर दिया जिस पर उनको कमीशन मिलता था। भारतीय जुलाहों के लिए भी

कार्नवालिस ने सुधार किए। अभी तक जुलाहे कम्पनी के कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य किसी के हाथ कपड़ा नहीं बेच सकते थे, चाहे उन्हें कितनी ही हानि क्यों न हो; परन्तु कार्नवालिस ने यह व्यवस्था की कि जितना धन जुलाहों को पेशगी दिया जाएगा उसी के लिए वे कार्य करने को बाध्य होंगे। इससे जुलाहों की दशा में कुछ सुधार हुआ।

(iv) **शासन-सम्बन्धी सुधार**— कम्पनी का भ्रष्टाचार दूर करने के लिए कार्नवालिस ने कुछ शासन-सम्बन्धी सुधार भी किए। कम्पनी के कर्मचारी धन कमाने में लगे रहते थे तथा कर्त्तव्य की उपेक्षा करते थे। इन दोषों को दूर करने के लिए कम्पनी में सिफारशियों के स्थान पर योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की गई। कार्नवालिस को भारतीयों पर विश्वास नहीं था तथा उसने ५००० पौंड वार्षिक से अधिक वेतन वाले पदों पर यूरोपियनों को रखना आरम्भ किया। इस प्रकार उक्त पदों के द्वार भारतीयों के लिए बन्द कर दिए गए। रिश्वत तथा घूस को समाप्त करने के लिए उसने कम्पनी के कमंचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी, जिससे वे लोग ईमानदारी से कार्य कर सकें। कम्पनी की सेना में भी कार्नवालिस ने सुधार किए तथा अयोग्य व्यक्तियों के स्थान पर योग्य व्यक्तियों को भर्ती करने के लिए सैनिकों की भर्ती इंगलैण्ड से की जाने लगी तथा अङ्ग्रेजी सैनिकों की संख्या में वृद्धि की गई।

(1983, 5, 6)

लार्ड विलियम बैंटिक के सुधार— लार्ड विलियम बैंटिक १८२८ ई० में भारत का गर्वनर जनरल ~~नियुक्त किया गया~~। उसका जन्म १७७४ ई० में एक उच्च घराने में हुआ था। वह इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री डयूक ऑफ पोर्टलैण्ड का पुत्र था। उसका प्रारम्भिक जीवन सेना में व्यतीत हुआ तथा नैपोलियन तथा इंगलैण्ड के बीच होने वाले युद्धों में उसने भाग लिया था। सन् १८०३ ई० में वह मद्रास का गवंनर बनकर प्रथम बार भारत में आया तथा चार वर्ष उसने इस पद के भार को सम्भाला, किन्तु मद्रास में होने वाले वेलौर के विद्रोह ने उसे बदनाम कर दिया तथा ब्रिटिश सरकार ने उसे वापिस बुला लिया। १८१९ ई० में उसे पुन: मद्रास के गवर्नर के पद के लिए निमन्त्रण मिला, किन्तु उसने इस पद को ठुकरा दिया। अन्त में १८२८ ई० में लार्ड एमहस्ट के लौट जाने पर लार्ड बैंटिक भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया।

लार्ड विलियम बैंटिंग प्रारम्भ से ही उदार विचारों का पोषक था। यद्यपि उसके जीवन का पर्याप्त भाग सेना में व्यतीत हुआ था, किन्तु उसमें सैनिक प्रतिभा नहीं थी और न सेना के प्रति कोई आकर्षण था। वह सुधारों का पक्षपाती था तथा उदार विचारों वाला होने के कारण अंग्रेजों की उग्र एवं साम्राज्यवादी नीति का विरोधी था। वह इंगलैण्ड में होने वाले सुधार आन्दोलनों का पक्षपाती था तथा उसने उन आन्दोलनों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की थी। भारत में आने के पश्चात् उसे अपनी उदार नीति के प्रदर्शन का पूर्ण अवसर उपलब्ध हुआ, क्योंकि उससे पूर्व जितने भी गवर्नर जनरल आए थे उनमें से अधिकांश साम्राज्यादी नीति के पोषक थे तथा भारत को लूटने व देशी राज्यों को हड़पने में संलग्न रहे थे। भारतवासियों के प्रति किसी भी गवर्नर जनरल ने सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की

तथा ब्रिटिश सरकार की इस साम्राज्यवादी नीति का प्रभाव भारत पर बहुत बुरा पड़ा था। यद्यपि इस समय भारत का एक बहुत बड़ा भाग अङ्गरेजी राज्य का अंग बन चुका था, किन्तु उसमें सुव्यवस्था एवं सुसंगठन की अत्यन्त आवश्यकता थी। यह युग भारत के अन्धकार का युग था। भारतीय संस्कृति का इस समय पतन हो चुका था तथा नवयुग का बीजारोपण हो रहा था। भारत का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पतन हो चुका था तथा इस समय **राजा राममोहन राय** के समान महान् सुधारक उत्पन्न हो रहे थे, जिनकी इच्छा थी कि भारत का आधुनीकरण किया जाए। इस समय भारतवर्ष मध्य युग को छोड़कर नवीन युग में प्रविष्ट हो रहा था तथा भारत को ऐसे शासक की आवश्यकता थी जो भारतीयों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावना रखता हो, जो सच्चे हृदय से उनका शासक हो तथा जो भारतीयों की दुर्दशा की ओर अभिमुख होकर उसको दूर करने का प्रयास करे। सौभाग्यवश लार्ड विलियम बैंटिक उन परिस्थितियों के अनुकूल ही सिद्ध हुआ। वह पहला गवर्नर जनरल था जिसने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार का कार्य भारत में लूट-मार करना ही नहीं है, वरन् यहाँ पर एक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली राज्य स्थापित करने के लिए भारतीयों के प्रति सहानुभूति रखना नितान्त आवश्यक है; तथा इसी भावना से वशीभूत होकर उसने भारत में सुधारों का युग प्रारम्भ किया तथा कोई भी क्षेत्र उसके सुधारों से वंचित न रह सका। उसकी सुधारवादी प्रतिभा के लिए भारत हमेशा उसका ऋणी रहेगा। उसके सुधारों को सुविधा के लिए ६ भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) आर्थिक (२) सामाजिक (३) शासन-सम्बन्धी (४) शिक्षा-सम्बन्धी (५) सार्वजनिक (६) वैधानिक।

(१) आर्थिक सुधार—जिस समय लार्ड विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया उस समय कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उसके पूर्व के गवर्नर जनरलों (लार्ड एमहर्स्ट एवं लार्ड हेटिंग्स) की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप कम्पनी की आर्थिक दशा डाँवाडोल हो रही थी, क्योंकि युद्धों में अपार धन व्यय हो गया था। इस समय कम्पनी का व्यय आय से लगभग एक करोड़ रु० अधिक था तथा कम्पनी का कोष रिक्त हो चुका था। इस शोचनीय अवस्था को सुधारने का उपाय केवल यही था कि कम्पनी की आय में वृद्धि की जाए तथा निरर्थक व्यय को कम अथवा समाप्त किया जाए। लार्ड विलियम बैंटिक ने इसी नीति का अनुकरण करके कम्पनी की आर्थिक दशा को सुधारा तथा उसके सुधारों के परिणामस्वरूप कम्पनी को डेढ़ करोड़ रुपये वार्षिक बचत होने लगी तथा इसकी आर्थिक स्थिति दृढ़ हो गई।

(i) अधिक वेतन में कमी—ब्रिटिश कर्मचारियों को कम्पनी अत्यधिक वेतन देती थी। विलियम बैंटिक ने उनके वेतन में कमी की तथा उच्च पदों को छोड़कर निम्न पदों पर भारतीयों को आसीन किया, जिनको अङ्गरेजों की अपेक्षा बहुत कम वेतन दिया जाता था। इस प्रकार कम्पनी को पर्याप्त आर्थिक बचत हुई।

विलियम बैंटिक के सुधार

(१) आर्थिक सुधार।

(i) अधिक वेतन में कमी।
(ii) भत्ते में कमी।
(iii) अदालतों में कमी।
(iv) लगान में सुधार।
(v) कर-मुक्त भूमि का अपहरण।
(vi) अफीम के निर्यात पर नियन्त्रण।

(ii) भत्ते में कमी—सर्वप्रथम विलियम बैंटिक ने कर्मचारियों को मिलने वाले भत्तों में कमी की। पहले यह नियम असैनिक कर्मचारियों पर लागू हुआ तथा बाद में सैनिकों के भत्ते में भी कटौती कर दी गई। पहले ये भत्ते कर्मचारियों को भारतीय राज्यों से मिला करते थे, जिनमें कम्पनी को कोई हानि नहीं थी, किन्तु राज्यों की समाप्ति पर कम्पनी ने भत्ते देने प्रारम्भ किए, जिससे दुहरा व्यय होता था, अतः इस व्यर्थ के खर्चे को कम किया गया। यद्यपि इस कटौती से कर्मचारियों में बड़ा असन्तोष फैला, किन्तु भत्तों की कटौती से कम्पनी को २०,००० पौंड वार्षिक की बचत होने लगी।

(iii) अदालतों में कमी—लार्ड कार्नवालिस ने दौरे एवं अपील की अदालतों का निर्माण किया था जिनका कार्य था देश के आन्तरिक भागों में जाकर न्याय करना। उन अदालतों में कम्पनी का बहुत धन व्यर्थ नष्ट होता था तथा देशवासियों को भी इन अदालतों से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होती थी, क्योंकि कर्मचारी लोग ग्रामों में जाकर न्याय करने के स्थान पर ग्रामवासियों के साथ अत्यन्त दुर्व्यवहार करते थे। लार्ड बैंटिक ने उन अदालतों को समाप्त कर दिया तथा कम्पनी का काफी धन नष्ट होने से बचा लिया।

(iv) लगान में सुधार—बैंटिक ने आगरा प्रान्त में लगान-व्यवस्था को सुधारा, जिससे कृषकों की दशा में भी सुधार हुआ और सरकार की आय में वृद्धि हुई।

(v) कर मुक्त भूमि का अपहरण—अङ्ग्रेज़ों के आने से पूर्व भारतीय शासकों ने बहुत-सी भूमि का कर माफ कर रखा था तथा उस भूमि से राज्य को कोई नहीं होती थी। यह भूमि प्रायः मन्दिरों, साधु-सन्तों एवं फकीरों को दी जाती तथा धर्मार्थ दान की गई थी, किन्तु विलियम बैंटिक ने इस प्रकार की कर-मुक्त भूमि का अपहरण कर लिया तथा सारी भूमि पर कर लगा दिया गया। इस प्रकार राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई।

(vi) अफीम के निर्यात पर नियन्त्रण—उस समय मध्य भारत में अफीम उत्पादन अधिक मात्रा में होता था तथा वहाँ से अफीम चीन देश को भेजी जाती अफीम का व्यापार व्यक्तिगत था। अफीम मध्यभारत से करांची ले जायी तथा वहाँ से विदेशों को भेजी जाती थी। इस प्रकार का लाभ सिन्ध के अमीरों होता था। लार्ड विलियम बैंटिक ने करांची के स्थान पर बम्बई से अफीम का प्रारम्भ करा दिया, जिससे व्यापार का लाभ सिन्ध के अमीरों के स्थान पर को मिलने लगा तथा कम्पनी की आय में वृद्धि हुई। इस प्रकार विलियम बैंटिक

आर्थिक नीति पूर्णतया सफल रही तथा कम्पनी का बजट, जो घाटे में चल रहा था अब उसमें बचत होने लगी।

(२) **सामाजिक सुधार**—लार्ड विलियम बैंटिक एक महान् सुधारक था। वह प्रथम गवर्नर जनरल था जिसने भारतीय समाज के दोषों को दूर करने का प्रयास किया। उससे पूर्व गवर्नर जनरल भारत के सामाजिक झगड़ों में पड़ने से हिचकिचाते थे, क्योंकि उनको भय था कि सामाजिक दोषों को दूर करने में कहीं भारतीय क्रुद्ध होकर क्रान्ति न कर दें, किन्तु विलियम बैंटिक ने सद्भावना से प्रेरित होकर भारतीय समाज में उत्पन्न अनेक कुरीतियों के विरुद्ध नियम बनाए।

(i) **शिशु-हत्या का निषेध**—राजपूतों में यह प्रथा प्रचलित थी कि कन्या का जन्म होते ही उसे नदी अथवा समुद्र में फेंक दिया जाता था अथवा उसका गला घोंट कर मार डाला जाता था। इस कुप्रथा के विरुद्ध भी लार्ड विलियम बैंटिक ने **बंगाल रेग्युलेशन एक्ट** बनाया तथा शिशु-हत्या का निषेध कर दिया गया।

(ii) **सती-प्रथा का अन्त**—यह सबसे महान् सुधार था जो बैंटिक द्वारा सम्पन्न हुआ। मध्ययुगीन भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों में सती-प्रथा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। इस प्रथा के द्वारा कोई भी स्त्री अपने पति की मृत्यु होने पर उसके शव के साथ जीवित जला दी जाती थी। सम्भवतः मुसलमानों के आगमन के पश्चात् यह प्रथा लगभग अनिवार्य ही हो गई थी; क्योंकि पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्री का कोई रक्षक नहीं होता था तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए राजपूत स्त्रियाँ हँसते-हँसते अपना जीवन बलिदान कर देती थीं। मुस्लिम शासकों में सम्राट अकबर ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई थी तथा इस अमानुषिक कृत्य को रोकने का प्रयास किया था, किन्तु उसे पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। बहुत-से अंग्रेज गवर्नर जनरल भी इस नारी हत्या को अनुचित समझते थे, किन्तु विद्रोह के भय से वे लोग चुप रहे। इस समय सती-प्रथा का अत्यन्त उग्ररूप प्रचलित थी। बहुधा पुरुष कई-कई विवाह कर लिया करते थे तथा मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए वृद्ध व्यक्ति भी सात-आठ वर्ष की कन्याओं को पत्नी बना लेते थे। उनकी मृत्यु होते ही छोटी-छोटी बालिकाओं को पतिव्रत-धर्म का निर्वाह करने के लिए अग्नि में जला दिया जाता था। जलती हुई स्त्रियों की चीख न सुनी जा सके इसलिए बहुत-से ढोल-नगाड़े इत्यादि बजवा दिए जाते थे। बंगाल में इस कुप्रथा का अधिक जोर था तथा इसमें सुधार करने के लिए वहाँ के महान् सुधारक तथा आधुनिक भारत के जनक राजा राममोहन राय ने अत्यधिक प्रयास किया। उनके प्रयास से प्रोत्साहित होकर लार्ड विलियम बैंटिंग भी उनकी सहायता के लिए तैयार हो गया। अपने कर्मचारियों के आश्वासन देने पर, कि भारत में इस प्रथा को बहुत-से व्यक्ति अनुचित मानते हैं और इसका अन्त होना चाहिए, उसने १८२९ ई० में सती-प्रथा के विरुद्ध नियम पास कर दिया। इससे पूर्व सती-प्रथा का विरोध अनेक व्यक्तियों ने किया, किन्तु इस प्रथा को अनियमित एवं दण्डनीय घोषित करने का साहस किसी ने भी नहीं किया था। सन् १८३३ ई० में यह विधि बना

दी गई कि सती-प्रथा अवैधानिक है, अतः इसके सम्पन्न करने वालों को सरकार की ओर से दण्ड दिया जायगा। प्रारम्भ में कट्टर धर्मानुयायियों ने इस विधि का विरोध किया तथा इसको अपने धर्म पर आक्षेप समझा, किन्तु धीरे-धीरे सती-प्रथा भारत से समाप्त हो गई तथा भारतीय स्त्रियों को इस अमानुषिक मूक बलिदान से छुटकारा मिला।

(२) सामाजिक सुधार

- (i) शिशु-हत्या का निषेध।
- (ii) सती-प्रथा का अन्त।
- (iii) नर-बलि का निषेध।
- (iv) ठगों का अन्त।
- (v) प्रेस की स्वतन्त्रता।
- (vi) ईसाई धर्म को प्रोत्साहन।

(iii) नर-बलि का निषेध—भारत के कुछ भागों में नर बलि की प्रथा थी। जंगली एवं असभ्य लोग कभी-कभी व्यक्ति को पकड़ ले जाते थे और देवी के सम्मुख उसकी बलि चढ़ा देते थे। एक बार एक अङ्ग्रेज को ये लोग पकड़कर ले गए तथा उसकी भेट चढ़ा दी; इससे क्रुद्ध होकर विलियम बैंटिक ने इस कुप्रथा का निषेध किया तथा उसके विरुद्ध नियम बना दिया।

(iv) ठगों का अन्त—भारत में ठगों का अत्यन्त बाहुल्य था। जिस समय लार्ड विलियम बैंटिक भारत आया उस समय उत्तरी भाग को ठगों ने आक्रान्त कर रखा था। इनके गिरोह होते थे तथा इनमें अत्यधिक संगठन था। ये लोग जंगलों में घूमते रहते थे तथा यदि कोई व्यक्ति दिखाई दे जाता था तो उसे बहकाकर ले जाते थे और उसका गला घोंट कर उसकी हत्या कर डालते थे। ठग काली के उपासक होते थे तथा नर-हत्या उनके लिए साधारण बात थी। इस समय ठगों की संख्या भी बहुत थी तथा उनका दमन करना आसान कार्य न था, किन्तु बैंटिक ने उस कार्य का भार **कर्नल स्लीमैन** नामक योग्य व्यक्ति को सौंपा। कर्नल स्लीमैन ने सर्व प्रथम ठगों के आवश्यक भेदों का पता लगाया तथा उनके निवास-स्थानों से परिचित होकर उसने सेना के द्वारा ठगों को चारों ओर से घेर लिया और उन्हें आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया। हजारों की संख्या में ठगों को पकड़कर कारावास में डाल दिया गया तथा उनके प्रमुख नेताओं को प्राणदण्ड दे दिया गया। इस प्रकार उत्तरी भारत को ठगों के भय से मुक्त करके बैंटिग ने समाज का महान् कल्याण किया। ठगों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया जिससे वे लोग बड़े होकर अपनी आजीविका उपार्जित करने में समर्थ हो सकें।

(v) प्रेस की स्वतन्त्रता—लार्ड विलियम ने प्रेस से प्रतिबन्ध हटाकर प्रेस की स्वतन्त्रता घोषित की। इस प्रकार उसकी उदारवादी नीति के कारण सरकारी कर्मचारियों को भी अपने विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

(vi) ईसाई धर्म को प्रोत्साहन—उदार विचारों का पोषक होते हुए भी लार्ड विलियम बैंटिक ईसाई धर्म का प्रथम समर्थक था तथा उसने राज्य की ओर से ईसाई धर्म के प्रचारकों की बहुत सहायता की। उसने यह भी नियम बनाया कि जो हिन्दु अथवा मुसलमान ईसाई बन जायेंगे उनको कम्पनी में पद देने में प्राथमिक

हो जायगी। इसके अतिरिक्त हिन्दु विधि के अनुसार जो हिन्दु ईसाई बन जाता था वह पैतृक सम्पति से वंचित कर दिया जाता था। इसलिए बहुत-से हिन्दु ईसाई बनने से हिचकिचाते थे, किन्तु विलियम बैंटिक ने यह नियम बनाया कि उत्तराधिकार के नियम लोगों को वही लागू होंगे जो ईसाई धर्म को अपनाते समय हिन्दु-धर्म के अनुयायियों को लागू होंगे। इससे ईसाई धर्म के प्रसार में अत्यधिक वृद्धि हुई; क्योंकि ईसाई मत ग्रहण करके भी अब कोई व्यक्ति उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था।

(३) **शासन-सम्बन्धी-सुधार**—लार्ड कार्नवालिस के पश्चात् अन्य किसी गवर्नर जनरल ने शासन-सम्बन्धी सुधारों की ओर ध्यान नहीं दिया था। कार्नवालिस के पश्चात् भारत में ब्रिटिश राज्य की महान् वृद्धि हुई तथा सुधारों के अभाव में शासन में अनेक दोष दृष्टिगोचर होने लगे। इस समय शासन-व्यवस्था को सुधारने की नितान्त आवश्यकता थी। लार्ड विलियम बैंटिक का ध्यान इस ओर गया तथा उसने प्रचलित शासन-व्यवस्था में अनेक सुधार किए।

(३) शासन-सम्बन्धी सुधार

- (i) आगरे में लगान-व्यवस्था सम्बन्धी सुधार।
- (ii) आगरे में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना।
- (iii) दौरे की अदालतों का अन्त।
- (iv) सदर दीवानी व सदर निजामत अदालतों का आरम्भ।
- (v) फौजदारी अधिकारों का हस्तान्तरण।
- (vi) नवीन पदाधिकारियों की नियुक्ति।

(i) **आगरे में लगान-व्यवस्था-सम्बन्धी सुधार**—अवध के नवाब तथा सिन्धिया के राज्य के कुछ प्रदेश छीन-कर आगरा का प्रान्त निर्मित किया गया था, जो उन दिनों उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त के नाम से सम्बोधित किया जाता था। यह प्रान्त वेलेजली ने कम्पनी के राज्य में सम्मिलित किया था तथा वह यहाँ पर भी बंगाल के भूमि-प्रबन्ध को लागू करना चाहता था, किन्तु कर्मचारियों के विरोध के कारण उसने वहाँ पर पंचवर्षीय बन्दोबस्त स्थापित किया। इस प्रबन्ध से कृषकों की दशा निरन्तर अधोगति की ओर अग्रसर होती गई तथा जमीदारों ने उन पर अकथनीय अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिए। बैंटिक ने इन अत्याचारों का अन्त करने के लिए तथा कृषकों की दशा सुधारने के लिए भूमि-प्रबन्ध का भार **रॉबर्ट बर्ड** को सौंपा। तीस वर्ष के लिए योजना लागू की गयी तथा सम्पूर्ण भूमि की पैमायश करवा कर मानचित्र इत्यादि बनवा लिए गए और उपज के आधार पर कर निश्चित किए गए। इस व्यवस्था से कृषकों की स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुए, किन्तु यह व्यवस्था पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं थी; क्योंकि इससे कृषकों को विशेष लाभ नहीं हो सका।

(ii) **आगरा में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना**—सर्व प्रथम रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा सर्वोच्च न्यायालय कलकत्ता में स्थापित किया गया था, किन्तु अंग्रेजी राज्य के पश्चिम की ओर विस्तृत होने पर यह अनुमान होने लगा कि पश्चिमी प्रदेशों से

कलकत्ता बहुत दूर पड़ता है तथा अपील के लिए वहाँ जाने में लोगों को पर्याप्त कठिनाई उठानी पड़ती है। अत: पश्चिम में आगरा प्रान्त में सुप्रीम कोर्ट स्थापित की गयी। इससे पश्चिमी प्रदेशों के निवासियों को पर्याप्त सुविधा हो गई।

(iii) **दौरें की अदालतों का अन्त**—कार्नवालिस द्वारा स्थापित दौरे तथा अपील की ६ प्रान्तीत अदालत तथा प्रान्तीय बोर्ड ऑफ रेवेन्यु की समाप्ति कर दी गयी; क्योंकि ये अदालतें निरर्थक थीं तथा इन पर कम्पनी का पर्याप्त धन व्यय हो जाता था।

(iv) **सदर-दीवानी तथा सदर-निजामत की अदालत की स्थापना**—लार्ड बैंटिक ने प्रयाग में सदर-दीवानी तथा सदर-निजामत अदालत की स्थापना की।

(v) **फौजदारी अधिकारों का हस्तान्तरण**—पहले फौजदारी के अधिकारी सेशन्स जज होते थे। अब ये अधिकार सिविल जज को दे दिए गए तथा उसे सिविल जज के स्थान पर डिस्ट्रिक्ट जज की संज्ञा दी गई। उसकी सहायता के लिए सब जजों की नियुक्ति की गई। न्याय के क्षेत्र में अंग्रेजों के स्थान पर भारतीयों की नियुक्ति की जाने लगी। सर्वोच्च पदों के अतिरिक्त निम्न पदों का द्वार भारतीयों के लिए खोल दिया गया। इससे पूर्व भारतीय डिप्टी कलक्टर के पद पर आसीन नहीं किए जाते थे, किन्तु विलियम बैंटिक ने भारतीयों को न्याय के क्षेत्र में पद देने प्रारम्भ कर दिए। दण्ड-व्यवस्था में भी बैंटिक ने सुधार किए। उसने कशाघात अर्थात् कोड़े मारने के दण्ड का अन्त कर दिया।

(vi) **नवीन पदाधिकारियों की नियुक्ति**—विलियम बैंटिक ने कई जिलाधीशों के पदों से ऊपर कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था चालू की तथा उनको प्रान्तीय अदालतों एवं पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के कार्य सौंप दिए। इसके अतिरिक्त अपने अधीन जिलाधीशों, जजों एवं मैजिस्ट्रेटों के निरीक्षण का भार भी कमिश्नर पर होता या।

इन सुधारों के द्वारा बेंटिक ने न्याय व्यवस्था के दोषों को दूर किया। उससे पूर्व न्याय-व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। न्यायालय कम थे तथा मुकदमों की वृद्धि के कारण न्याय में बहुत समय लग जाता था। अपराधों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी तथा साधारण स्थिति के व्यक्ति न्याय से वंचित रह जाते थे, किन्तु बैंटिक के उपरोक्त सुधारों के परिणामस्वरूप न्याय-व्यवस्था सुचारू रूप से चलने लगी तथा न्याय जनसाधारण के लिए सुलभ हो गया।

(४) **शिक्षा-सम्बन्धी सुधार**—अशिक्षित भारतीय जनता को शिक्षित बनाने का प्रथम प्रयास ब्रिटिश सरकार द्वारा १८१३ ई० में किया गया। इस वर्ष भारतीयों की शिक्षा के लिए एक लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय करना निश्चित किया गया। यद्यपि यह धन शिक्षा प्रसार के लिए बहुत कम था, किन्तु तब भी भारतीयों को शिक्षित बनाने के लिए यह कदम सराहनीय अवश्य था, जबकि यह रुपया प्रत्येक वर्ष एकत्रित होता रहा और १८३३ ई० तक शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं की जा सकी। इसका कारण यह था कि सरकार इस विषय पर एकमत नहीं

थी कि भारतीयों को किस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए। कुछ लोगों का मत था कि भारतीयों को शिक्षा भारतीय भाषाओं में दी जानी चाहिए और कुछ लोग चाहते थे कि इस धन के द्वारा अंग्रेजी भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए। राजा राममोहन राय जो इस समय भारत के सर्वश्रेष्ठ नेता थे, वे अंग्रेजी भाषा के पक्षपाती थे तथा उन्होंने १८१६ ई० में कलकत्ते में एक हिन्दू कॉलिज की स्थापना भी कराई थी, जहाँ अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। किन्तु डा० विलसन आदि कुछ अंग्रेजों की यह इच्छा थी कि संस्कृत, बंगला अथवा हिन्दी भाषा के माध्यम से भारतीयों को शिक्षित बनाया जाए। अन्त में यह समस्या लार्ड विलियम बैंटिक के सम्मुख भी उपस्थित हुई, क्योंकि वह शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने को उत्सुक था। इसका समाधान करने के लिए एक कमेटी का निर्माण किया गया जिसका अध्यक्ष लार्ड मैकॉले था। लार्ड मैकॉले अंग्रेजी भाषा का पक्षपाती था तथा उसने कई पत्र इस विषय में ब्रिटिश सरकार को भी लिखे कि भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रसार करने में उसका वास्तविक ध्येय क्या था। वह चाहता था कि अंग्रेजी सभ्यता एवं शिक्षा द्वारा भारत की भूमि पर एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया जाए जो शरीर से भारतीय हो लेकिन मस्तिष्क से अंग्रेज हो "He wanted to create European minds on Indian soil" लार्ड मैकॉले जानता था कि भारत एक विशाल देश है तथा इंगलैण्ड की जनसंख्या इतनी अधिक नहीं है कि समस्त सरकारी पदों का भार वे सम्भाल सकें। अत: भारत के निवासियों को निम्न पदों पर रखना अनिवार्य है। इन भारतीयों को इस प्रकार शिक्षित किया जाए कि वे लोग अंग्रेजी सभ्यता को अपनी सभ्यता से अच्छा समझें तथा अंग्रेजों के प्रति सर्वदा स्वामीभक्त रहें। वे लोग अपनी प्रत्येक वस्तुओं से घृणा करें तथा प्रत्येक ब्रिटिश वस्तु तथा रीति-रिवाज आदि इनके आदर्श रहें। इससे ब्रिटिश सरकार को अनेक लाभ होंगे। सर्वप्रथम इस शिक्षित वर्ग पर विश्वास करके शासन के निम्न पदों का भार इस वर्ग पर छोड़ा जा सकेगा। द्वितीय अंग्रेजों के व्यापार में वृद्धि होगी; क्योंकि यह वर्ग उसी वस्तु का प्रयोग करेगा जिसका निर्माण इंगलैण्ड में हुआ हो। इसके अतिरिक्त भारतीयों को कम वेतन पर भी रखा जा सकता था, जिससे कम्पनी के शासन में मितव्ययिता की सम्भावना थी। इन्हीं कारणों को सम्मुख रखते हुए लार्ड मैकॉले की कमेटी ने १८३५ में यह प्रस्ताव पास कर दिया कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा। इस प्रस्ताव को लार्ड विलियम बैंटिक पसन्द नहीं करता था, किन्तु कमेटी के बहुमत के सम्मुख उसे सर झुकाना पड़ा और यह प्रस्ताव सरकार द्वारा स्वीकृत कर लिया गया। तब से अग्रेजी माध्यम के द्वारा भारतीयों को शिक्षित किया जाने लगा तथा इसी उद्देश्य के लिए भारत के प्रसिद्ध नगरों में हाई स्कूलों की स्थापना की गई। कलकत्ते में एक मैडिकल कालिज खोला गया तथा आगरे में भी एक कालिज स्थापित किया गया। कुछ और कालिज भी खोले गए तथा शिक्षा द्वारा भारतीयों को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से घृणा करना सिखाया जाने लगा। मैकॉले की यह योजना सफल रही तथा भारतीय अपनी प्रत्येक वस्तु को घृणा की

दृष्टि देखने लगे। भारतीय समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया—एक शिक्षित वर्ग तथा दूसरा अशिक्षित वर्ग। शिक्षित वर्ग अपने भारतीय अशिक्षित वर्ग के साथ पशु-तुल्य व्यवहार करता था तथा अंग्रेज उसके आदर्श थे। शिक्षित वर्ग ने खान-पान, रहन-सहन वेश-भूषा प्रत्येक बात में अंग्रेजों का अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया। इससे अंग्रेजों के व्यापार में भी आशातीत उन्नति हुई।

यद्यपि मैकॉले की यह योजना कुछ समय तक बिल्कुल सफल होती प्रतीत हुई और इस प्रकार मैकॉले ने भारतीयों को काफी क्षति पहुँचाई, किन्तु कुछ समय के पश्चात् इसी शिक्षा पद्धति ने भारतीयों को जागृत करने में अत्यधिक सहयोग दिया। यद्यपि प्रारम्भ में भारतीय अपने देश, सभ्यता एवं संस्कृति से घृणा करने लगे तथा कुछ धनी लोगों ने इंगलैण्ड में जाकर शिक्षा प्रारम्भ की, किन्तु वहाँ के स्वतन्त्र वातावरण तथा वहाँ की राष्ट्रीयता की भावनाएँ देखकर उनमें से कुछ व्यक्तियों के हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावनाएँ जागृत हुई। अंग्रेजी साहित्य जो राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत-प्रोत है भारतीयों में राष्ट्र-प्रेम जागृत करता रहा तथा इन जागृत व्यक्तियों ने अपने देश की परतन्त्रता की बेड़ियाँ काटने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ किया। भारतीयों के मानसिक विकास में यह शिक्षा-पद्धति अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई। अंग्रेजी भाषा के अध्ययन एवं ज्ञान से विश्व के अन्य भागों में भारत के सम्पर्क बढ़े तथा भारतीय अपनी शताब्दियों की अज्ञान निद्रा को त्यागकर जागृत हुए। प्रत्येक क्षेत्र में भारत की इतनी उन्नति तथा भारत के पुनरुत्थान का श्रेय अंग्रेजी भाषा के अध्ययन को दिया जा सकता है। यद्यपि इस शिक्षा का प्रसार अंग्रेजों ने अपने हित के लिए प्रारम्भ किया था, किन्तु अन्त में इसी शिक्षा के प्रसार से भारतीयों को अकथनीय लाभ पहुँचा तथा भारत में आधुनिक युग के जन्म का श्रेय अधिकांशतः इस शिक्षा-सम्बन्धी सुधार को ही दिया जा सकता है।

(५) सार्वजनिक सुधार—बैंटिक ने अनेक प्रजा हितकारी कार्य सम्पन्न किए—(i) भारत एक कृषि-प्रधान देश था, किन्तु सिंचाई के लिए कृषक वर्ग को अधिकतर प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता था। सिंचाई के लिए यहाँ पर नहरों आदि की समुचित व्यवस्था नहीं थी। विलियम बैंटिक ने सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण कराया। आगरा प्रान्त की सिंचाई के लिए नहरों की व्यवस्था की गई। (ii) उसने सड़कों का पुनर्निर्माण कराया। कलकत्ता एवं दिल्ली को मिलाने वाली ग्राण्ड ट्रङ्क रोड उसी के काल में निर्मित की गई। इंगलैण्ड तथा भारत के मध्य आवागमन के लिए उसने सुगम साधन उपलब्ध किए, जिससे दो महीने की यात्रा एक महीने में ही सम्पन्न की जा सके।

(५) सार्वजनिक सुधार
(i) कृषि-सम्बन्धी।
(ii) यातायात सम्बन्धी।

(६) वैधानिक सुधार—रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारत के व्यापार का ठेका बीस वर्ष के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंपा था। तब से

निरन्तर प्रत्येक २० वर्ष के उपरान्त इस ठेके की नई सनद लेनी पड़ती थी। सन् १७३३ ई० में रेग्यूलेटिंग एक्ट के पश्चात् सन् १७९३ ई० तथा सन् १८१३ ई० में कम्पनी ने यह सनदें प्राप्त की थीं। सन् १८३३ ई० में पुनः इस सनद को प्रदान करने के लिए एक चार्टर पास किया गया। इस समय इंगलैण्ड में सुधारों का युग प्रारम्भ हो चुका था। सुधारवादी एवं उदारवादी दल का इस समय बाहुल्य था तथा ये लोग भारत के व्यापार के लिए अंग्रेजों पर लगे प्रतिबन्धों के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। १८३३ ई० के नवीन चार्टर में उनकी कुछ मांगे पूर्ण करने का प्रयास किया गया। इस चार्टर के द्वारा निम्नलिखित परिवर्तन किए गए—

(i) कम्पनी को भारत के व्यापार तथा राजनीतिक अधिकार का ठेका बीस वर्षों से अधिक के लिए बढ़ा दिया गया। अब तक भारतीय साम्राज्य का प्रमुख ब्रिटिश अधिकारी 'बंगाल का गवर्नर जनरल' कहलाता था। इस चार्टर के द्वारा वह भारत का गवर्नर जनरल कहलाने लगा। इस चार्टर के द्वारा कम्पनी का भारतीय व्यापार पर एकाधिकार का अन्त कर दिया गया। १८१३ ई० के चार्टर के द्वारा ही भारत और चीन के मध्य चाय के व्यापार के अतिरिक्त व्यापार पर से कम्पनी का एकाधिकार भी समाप्त हो गया। अंग्रेज व्यापारी तथा धर्म-प्रचारक इस चार्टर के द्वारा स्वन्तत्र रूप से लाइसेंस लिए बिना ही ब्रिटिश भारत के किसी भी भाग में बस सकते थे।

(ii) अब तक कम्पनी के राज्य में तीन प्रेसीडेन्सियाँ थीं। इस चार्टर के द्वारा आगरा की चौथी प्रेसीडेन्सी स्थापित की गई।

(६) वैधानिक सुधार

- **(i) कम्पनी की बीस वर्ष की सनद प्राप्ति।**
- **(ii) नई प्रेसीडेन्सी का निर्माण।**
- **(iii) केन्द्रीयकरण।**
- **(iv) गवर्नर जनरल की कौंसिल में वृद्धि।**

(iii) ब्रिटिश भारत के प्रान्तीय गवनरों से कानून बनाने के अधिकार ले लिए गए। प्रत्येक प्रकार के व्यय के लिए उन्हें केन्द्रीय सरकार से सहमति लेनी पड़ती थी।

(iv) रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल की परामर्शदात्री सभा में तीन सदस्य हुआ करते थे। १८३३ ई० के चार्टर द्वारा एक चौथा सदस्य 'लॉ मेम्बर' और जोड़ दिया गया। इस पद को सर्व-प्रथम लार्ड मैकॉले ने सुशोभित किया था। अभी तक गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल के द्वारा पास किए गए नियम रेग्यूलेशन कहलाते थे, किन्तु इस विधि-सदस्य की वृद्धि होने से वे एक्ट कहलाने लगे, अर्थात् भारत सरकार को पूर्ण रूप से भारत के लिए नियम बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया। यद्यपि यह प्रतिबन्ध अवश्य था कि ये विधि ब्रिटिश पार्लियामेंट के द्वारा बनाई गई विधियों के विरुद्ध न हों; तथापि इस चार्टर के द्वारा भारत की विधि बनाने वाली सभा का बीजारोपण होता है।

(v) इस चार्टर की एक धारा के अनुसार दास-प्रथा का विरोध किया गया तथा भारत से दास-प्रथा को हटाने का प्रयास किया गया।

इस प्रकार लार्ड विलियम बैंटिक का सात वर्ष का शासन-काल भारत में 'सुधारों का काल' के नाम से विख्यात है। लार्ड बैंटिक ने भारतीयों के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रदर्शित करके भारत की अव्यवस्थित दशा को सुधारने का प्रयास किया। इसलिए भारत के सुधारक गवर्नर जनरलों में उसको स्थान प्राप्त है। वह सम्भवतः प्रथम गवर्नर जनरल था जिसने यह समझा कि अङ्गरेजों की साम्राज्य-वृद्धि के साथ-साथ यहाँ की प्रजा की भलाई भी ध्यान में रखनी चाहिए। वरन् साम्राज्य विस्तार से भी अधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य भारत की जनता की भलाई है। लार्ड मैकॉले ने उसके विषय में कहा है कि उसने "पूर्वीय निरंकुशता में ब्रिटिश स्वतन्त्रता के भाव समाविष्ट कर दिए थे।" भारत के आधुनिकरण का वास्तविक श्रेय हम इसी गवर्नर जनरल को दे सकते हैं।

विलियम बैंटिक का चरित्र एवं मूल्यांकन—वारेन हेस्टिंग्स से लेकर अनेक गवर्नर जनरल भारत आए, किन्तु शायद ही किसी ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की हो जितनी विलियम बैंटिक ने। विलियम बैंटिक प्रथम गवर्नर जनरल था जिसने वह अनुभव किया कि ब्रिटिश साम्राज्य की नींव न केवल शक्ति पर वरन् भारतीय जनता की सदिच्छा एवं सद्भावना पर रखी जानी चाहिए। भारतीय समाज की कुरीतियों को दूर करने का उसी ने सर्वप्रथम प्रयास किया। उसने यह समझा कि अङ्गरेजों का कार्य केवल लूट-मार ही नहीं, वरन् शासित जनता का ध्यान रखना भी है। भारतीयों के प्रति वास्तविक सहानुभूति रखते हुए उनके लिए उच्च पदों का द्वार खोलने वाला यही गवर्नर जनरल था। यद्यपि उसके कुछ सुधारों ने उसकी लोकप्रियता पर भी आघात पहुँचाया, क्योंकि संशकित भारतीय अङ्गरेजों के प्रत्येक कार्य को सन्देह की दृष्टि से देखते थे, किन्तु इस बात की परवाह किए बिना उसने सच्चे हृदय से भारतीय जनता को सुधारने का प्रयास किया। लार्ड बैंटिक ईमानदार, दयालु एवं उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति था। इंगलैण्ड में होने वाले सुधार आन्दोलन से वह पर्याप्त प्रभावित था तथा उदार दलीय होने के कारण भारत में उसने उदारता की नीति का अनुसरण किया। वह विशाल हृदय का था तथा उसका राजनैतिक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उसने शासक तथा शासित वर्ग के बीच की भंयकर खाई को कम करने का प्रयास किया तथा भारतीयों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार को कम किया। उसने भारतीयों की सुख-सुविधा के लिए भाप द्वारा गमनागमन के साधनों में सुविधा उत्पन्न की तथा शिमला, दार्जिलिंग आदि पहाड़ी स्थानों की उन्नति पर ध्यान दिया।

चूँकि बैंटिक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ नहीं था इसलिए ही अपने काल में देशी राज्यों में होने वाले गृह-युद्धों एवं कुशासन से उसने पूर्ण लाभ नहीं उठाया। यदि उसके स्थान पर कोई साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल होता तो वह कम्पनी के राज्य में वृद्धि कर सकता था, किन्तु तटस्थता की नीति का अनुयायी

होने पर भी मैसूर, कुर्ग एवं जैन्तिया के मामले में उसकी निश्चित नीति थी। सिन्ध के अमीरों से मैत्री स्थापित करने का श्रेय बैंटिक को ही प्राप्त है। वह पंजाब के शक्तिशाली सम्राट से भी मैत्री स्थापित करने में सफल रहा, किन्तु लार्ड बैंटिक की ख्याति उसकी कूटनीति के कारण नहीं, वरन् उसके कुशल शासक होने के कारण है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी कोई भी क्षेत्र उसके सुधारों से वंचित नहीं रह पाया तथा प्रत्येक क्षेत्र ने उसके सुधारवादी स्पर्श का अनुभव किया। उसने **मिल्टन** के इस कथन को सत्य सिद्ध कर दिया कि शान्ति-कालीन विजय युद्धकालीन विजय से अधिक महत्वपूर्ण एवं स्थायी होती है। उसने रिक्तकोष की पूर्ति की, सरकारी नौकरियों में सुधार किया सती-प्रथा, बाल्यहत्या-प्रथा तथा मानव-बलि-प्रथा के समान सामाजिक कुरीतियों का अन्त किया, स्कूल, कालिजों की स्थापना कराई तथा जन-हितकारी कार्यों को सम्पन्न किया। इन अमर कार्यों के द्वारा बैंटिक ने भारत में नवयुग का सूत्रपात्र किया तथा ब्रिटिश साम्राज्य को वास्तविक साम्राज्य का रूप दिया। उसने यह आदर्श रखा कि शासकों का कार्य केवल लूट-मार ही नहीं, वरन् जनता की भलाई करना भी है। यद्यपि उसके कार्य-काल की आलोचना करते हुए मेजर वसु ने अपनी पुस्तक **"राइज ऑफ क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया"** में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उसके काल में वास्तव में भारतीयों के लिए अनेक हानियाँ हुई। किन्तु मेजर वसु का यह एकांगी मत था जो सत्य नहीं माना जा सकता। यद्यपि बैंटिक के कुछ सुधारों के द्वारा भारतीयों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी (विशेषकर उसके शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों के द्वारा), किन्तु इस कारण उसकी सद्भावना पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। लार्ड बैंटिक वास्तव में एक सुधारवादी गवर्नर जनरल था तथा इस प्रकार के गवर्नर जनरलों में उसका स्थान सर्वोपरि है।

लार्ड डलहौजी

लार्ड डलहौजी की गणना भारत के चार प्रमुख साम्राज्यवादी गवर्नर जनरलों में की जाती है। वह १८४८ ई० से १८५६ ई० तक भारत में गवर्नर जनरल के पद पर आसीन रहा तथा इस अवधि में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को उसने सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बना दिया। लार्ड डलहौजी का जन्म १८१२ ई० में एक उच्च घराने में हुआ था। केवल ३६ वर्ष की अल्पायु में उसे भारत के गवर्नर जनरल का महत्वपूर्ण पद प्रदान किया गया। इसी से उसकी योग्यता का अनुमान किया जा सकता है। उससे पूर्व इतनी अल्पायु में कोई भी व्यक्ति इतना उच्च पद प्राप्त नहीं कर सका था। लार्ड डलहौजी के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने वालों में परस्पर विरोध है। कुछ विद्वानों की धारणा में वह महान् शासक, महान विजेता तथा ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने वाला व्यक्ति था, किन्तु भारतीयों के प्रति उसका व्यवहार सर्वथा अमानुषिक था। वह भारतवासियों के प्रति सहानुभूति के स्थान पर घृणा की भावना रखता था तथा प्रत्येक भारतीय वस्तु से उसे अरुचि थी। वह देशी राज्यों को रूढ़िवादिता के कूड़े की टोकरी कहता था। अपनी शक्ति

पर उसे पूर्ण विश्वास था और वह बलपूर्वक उसके प्रयोग के द्वारा कम्पनी के साम्राज्य में वृद्धि करना चाहता था। उसके विषय में सर जॉन काले ने लिखा है कि "डलहौजी कल्पनाहीन व्यक्ति था। वह दूसरों की दृष्टि से नहीं देख सकता था, अथवा वह दूसरों के मस्तिष्क से नहीं सोच सकता था अथवा दूसरों के हृदय का अनुभव नहीं कर पाता था।" इसीलिए भारतीय राज्यों के प्रति उसकी नीति अनुदार, कठोर, असहिष्णु एवं निर्दयतापूर्ण थी। उसने बलपूर्वक अनेक राज्यों का अपहरण किया तथा कम्पनी के साम्राज्य में वृद्धि की। वास्तव में वह जिस समय भारत में आया था उस समय तक ब्रिटिश साम्राज्य की नींव भारत में पूर्णतया स्थापित हो चुकी थी। देशी नरेश विलासप्रिय एवं शक्तिहीन थे। उनके चंगुल से सत्ता को छीन कर डलहौजी भारत को एक संगठन में बांध देना चाहता था, किन्तु यह कार्य उसने इतनी निर्दयतापूर्ण ढंग से किया कि भारत उसका विरोधी हो गया तथा उसके लौटते ही उनका विरोध क्रान्ति के रूप में प्रस्फुटित हो उठा। किन्तु फिर भी डलहौजी ने भारत के लिए अनेक कल्याणकारी कार्य किए। यद्यपि उन सभी कार्यों अथवा सुधारों को उस समय भारतवासियों ने संदिग्ध दृष्टि से देखा, किन्तु वास्तव में कुछ समय पश्चात् उन सुधारों की उपयोगिता का पता चला। डलहौजी के कार्य दीर्घव्यापी थे, तथा उसने भारत के नव-निर्माण में महान् योगदान दिया। यह कथन सर्वथा उपयुक्त ही है कि डलहौजी एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था तथा उसने साम्राज्य विस्तार, देश का निर्माण तथा सुधार सभी कार्यों को अत्यन्त योग्यतापूर्वक सम्पादित किया। अन्य किसी गवर्नर जनरल में एक साथ इन सब गुणों का मिश्रण दृष्टिगोचर नहीं होता। सर्वप्रथम हम उसके सुधारों पर दृष्टिपात करते हैं—

(1983)

लार्ड डलहौजी के सुधार—डलहौजी के सुधारों का मुख्य उद्देश्य केन्द्र की सत्ता को दृढ़ बनाना था। वह गवर्नर जनरल में सम्पूर्ण सत्ता को केन्द्रीभूत करना चाहता था। उसने अनेक राज्यों का अपहरण करके एक विशाल साम्राज्य निर्मित कर लिया था। अतः उसके पुनसंगठन की नितान्त आवश्यकता थी। अतः उसने अनेक सुधार किए।

(१) सेना में सुधार—डलहौजी से पूर्व सेना का प्रमुख केन्द्र बंगाल था। किन्तु पंजाब के ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित हो जाने के कारण उत्तरी-पश्चिम प्रदेशों की रक्षा करना भी अंग्रेजों के लिए अनिवार्य हो गया। फलतः पश्चिम में भी सेना का केन्द्र बनाया गया तथा मेरठ में अंग्रेजों के तोपखाने को स्थापित कर दिया गया। शिमला में सेना की छावनियाँ बनाई गईं, जहाँ पर गवर्नर जनरल अपनी कौंसिल के साथ रहता था, जिससे सेना से उसका निकट सम्पर्क स्थापित रह सके। साम्राज्यवादी नीति के अनुसरण के लिए सेना की नितान्त आवश्यकता थी, तथा विशाल सेना में भारतीयों को पद देना अनिवार्य था, किन्तु डलहौजी को भारतीयों पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। उनका विचार था कि यदि भारतीय सेना अधिक संख्या में हो गई तो वह विद्रोह न कर दें, अतः उसने गोरखों की एक पृथक्

सेना बनाई तथा भारतीय सैनिकों को एक स्थान पर न रखकर विभिन्न भागों में वितरित कर दिया। डलहौजी ने तो ब्रिटिश सरकार से यह अनुरोध भी किया था कि भारत में अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ा दी जाए, किन्तु उसका यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

(२) रेल, डाक और तार विभाग की स्थापना— रेलवे व्यवस्था को प्रारम्भ करने का श्रेय डलहौजी को ही है। उसने सर्वप्रथम यातायात के साधनों की सुविधा की ओर ध्यान दिया। उसने ग्राण्ड ट्रंक रोड का निर्माण कराया तथा रेल एवं तारों की व्यवस्था की। यद्यपि इस व्यवस्था के स्थापन में भी अंग्रेजों का हित ही उसका लक्ष्य था, क्योंकि अंग्रेज कम्पनियों को उसने रेल तथा तार निर्मित करने के लिए बड़े-बड़े ठेके दिए तथा इससे कम्पनियों को अत्यधिक लाभ हुआ, किन्तु कालान्तर में इस व्यवस्था से भारतवासियों को अनेक सुविधाएँ हुई। सर्वप्रथम रेल-व्यवस्था बम्बई में स्थापित की गई। तार की स्थापना भी सर्वप्रथम डलहौजी के काल में ही हुई। इन व्यवस्थाओं से अंग्रेज शासकों को अत्यन्त लाभ हुआ तथा क्रान्ति के समय यह स्पष्ट अनुभव किया गया, कि सेना के आवागमन एवं यातायात के लिए इन सुविधाओं का होना नितान्त आवश्यक है। क्रान्ति के पश्चात् भारत के विभिन्न भागों में रेल और तार की व्यवस्था की गई।

लार्ड डलहौजी के सुधार

(१) सेना मेंसुधार।
(२) रेल, डाक और तार विभाग की स्थापना।
(३) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार।
(४) सार्वजनिक कार्य विभाग की स्थापना।
(५) व्यावसायिक सुधार।
(६) वैधानिक सुधार (नवीन चार्टर)।

डाक व्यवस्था को सुधारने का श्रेय भी डलहौजी को ही दिया जाता है। उसने **पेनी पोस्टेज प्रथा** को भारत में लागू किया, जिसके द्वारा दो पैसे के टिकट के द्वारा भारत के किसी भी भाग में समाचार भेजा जा सकता था। इस व्यवस्था से भारतवासियों को अत्यन्त लाभ हुआ तथा अपने दूरस्थ सम्बन्धियों के समाचार वे लोग सुगमतापूर्वक तथा अल्प-व्यय में ही मंगवा सकते थे।

(३) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार—लार्ड विलियम बैंटिंक ने १८३५ ई० में शिक्षा सुधार का युग प्रारम्भ किया था, किन्तु उसके पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी गवर्नर जनरल ने रुचि नहीं दिखाई तथा शिक्षा के सुधार का कोई प्रयास नहीं हुआ। लार्ड डलहौजी के समय में शिक्षा में सुधार करने के लिए **सर चार्ल्स वुड** के नेतृत्व में एक कमीशन नियुक्त किया गया, जिसकी रिपोर्ट १८५४ ई० में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार किए गए। सर्वप्रथम तीनों प्रेसीडेंसी में एक-एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई, जिसका कार्य परीक्षा लेना था। इण्टर तथा डिग्री कक्षाओं के लिए कालिजों की व्यवस्था

की गई, तथा प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए अनेक स्कूल खोले गए। तथा प्राथमिक शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा होती थी। शिक्षा के निरीक्षण के लिए प्रत्येक प्रान्त में एक डायरेक्टर जनरल की नियुक्ति की गई। डलहौजी के काल में स्त्री-शिक्षा के लिए भी कुछ संस्थाएँ निर्मित की गईं।

(४) सार्वजनिक-कार्य विभाग की स्थापना—डलहौजी का एक नितान्त महत्वपूर्ण सुधार सार्वजनिक-कार्य विभाग की स्थापना करना है। उसके पूर्व सार्वजनिक कार्य सेना के बोर्ड के द्वारा होता था, किन्तु इसको समाप्त करके डलहौजी ने सार्वजनिक निर्माण के लिए एक स्वतन्त्र विभाग निर्मित किया, जिसका प्रधान चीफ इन्जीनियर होता था। उसकी सहायता के लिए अनेक पदाधिकारी होते थे। रुड़की तथा तीनों प्रेसीडेन्सियों में इन्जीनियरिंग की रक्षा के लिए कालिज खोले गए तथा इस विभाग के अधीन नहरों, सड़कों एवं पुलों का निर्माण-कार्य सौंपा गया। गंगा की नहर तथा ग्राण्ड ट्रंक रोड के निर्माण का कार्य डलहौजी के काल में ही शुरू हो गया था। तत्पश्चात् इस विभाग ने भारत के लिए अपनी वहुमूल्य सेवाएं अर्पित की हैं तथा कृषकों की सुविधा के लिए असंख्य नहरों का निर्माण, प्रमुख नगरों को मिलाने वाली पक्की सड़कों का निर्माण, तथा प्रमुख नदियों पर पुलों का निर्माण इस विभाग द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं।

(५) व्यावसायिक सुधार—डलहौजी ने स्वतन्त्र व्यापार-प्रणाली को अपनाया तथा भारत का व्यापार सबके लिए खोल दिया गया। व्यापार के क्षेत्र में अंग्रेजों का लाभ ही कम्पनी का उद्देश्य था। उसने दीपगृहों की उन्नति कराई तथा बन्दरगाहों को विस्तृत एवं विशाल करवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के समुद्र-तट का सम्पूर्ण व्यापार अंग्रेज पूंजीपतियों के हाथ में चला गया। भारत के व्यवसाय नष्ट हो गए तथा अत्यन्त वेगपूर्वक भारत में विदेशी माल आने लगा, जिससे भारत का आर्थिक शोषण हुआ और भारतीयों की आर्थिक दशा निरन्तर शोचनीय होती गई।

डलहौजी के सभी सुधार अङ्गरेजों के हित के लिए हुए। लार्ड विलियम बैंटिक के समान उसे भारतीयों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी तथा सुधार करने का उसका वास्तविक उद्देश्य अङ्गरेजों को तथा ब्रिटिश कम्पनियों को लाभ पहुँचाना था। यद्यपि उसके कुछ सुधारों के द्वारा कालान्तर में भारतीयों को भी पर्याप्त लाभ पहुँचा, किन्तु लाभ पहुँचाने का डलहौजी का उद्देश्य कदापि न था। फिर भी उसके काल में अनेक सुधार सम्पन्न किए गए।

नवीन चार्टर एक्ट—१८५३ ई० में २० वर्ष पूर्ण हो जाने पर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने पुनः एक नवीन चार्टर कम्पनी के लिए निर्मित किया। इस समय कुछ लोग चाहते थे कि कम्पनी को समाप्त करके पार्लियामेंट को भारत की सत्ता अपने हाथ में ले लेनी चाहिए, क्योंकि इस समय तक भारत में साम्राज्य का विस्तार अत्यन्त विशाल हो चुका था, परन्तु कुछ लोग कम्पनी को बनाए रखना चाहते थे। अतः मध्यम मार्ग का अनुसरण करके नवीन चार्टर के द्वारा निम्नलिखित संशोधन किए गए—

(i) इस बार २० वर्ष की अवधि हटाकर यह नियम बनाया गया कि कम्पनी को भारत को शासन तब तक चलाने का अधिकार है जब तक पार्लियामेंट यह अधिकार अपने हाथ में न ले लें। कम्पनी पर पार्लियामेंट का प्रभुत्व अधिक बढ़ गया।

(ii) कम्पनी के डायरेक्टरों की संख्या २४ से घटाकर १८ कर दी गई। इनमें से ६ डायरेक्टर्स सम्राट द्वारा मनोनीत होते थे। कम्पनी के कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार संचालकों से छीन लिया गया। उसके लिए परीक्षा पास करना अनिवार्य था।

(iii) बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अध्यक्ष को मन्त्रिमण्डल का सदस्य बना दिया गया तथा उसके अधिकारों में वृद्धि की गई।

(iv) एक व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल में ३ सदस्य और बढ़ा दिए गए जो प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि, सेनापति तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश होते थे।

(v) बंगाल का शासन गवर्नर-जनरल से लेकर एक पृथक लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को सौंप दिया गया।

(३) शिक्षा की प्रगति

प्रारम्भ में कम्पनी की ओर से शिक्षा की प्रगति की ओर ध्यान नहीं दिया गया, जिसके कारण भारत इस दिशा में पिछड़ने लगा। देशी राजाओं तथा नरेशों की सत्ता का अन्त होने के कारण विद्वानों तथा साहित्यकारों के प्रश्रय का अन्त हो गया। इसके लिए कम्पनी का पूर्ण उत्तरदायित्व था। वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने शासन काल में कलकत्ते में एक मदरसे की स्थापना की जिसमें अरबी और फारसी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। कम्पनी की उदासीनता का कारण यह था कि इङ्गलैण्ड में भी यह काम राज्य की ओर से नहीं किया जाता था, वरन् पादरी किया करते थे। **१८१३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया था कि कम्पनी एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा की प्रगति के लिए दिया करेगी।** अतः इस दिशा में इस एक्ट का महत्व बहुत अधिक है, किन्तु कई वर्षों तक इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। भारत में अङ्गरेजी शिक्षा का प्रारम्भ सर्व प्रथम ईसाई पादरियों द्वारा हुआ, क्योंकि उनका विश्वास था कि अङ्गरेजी शिक्षा का अध्ययन कर भारतीय स्वतः ईसाई धर्म की ओर प्रभावित होंगे और उनको अपने आप ही उनके कार्य में मनोनीत सफलता प्राप्त होगी। **उनकी देखा-देखी राजा-राम मोहन राय आदि उदार तथा समझदार व्यक्तियों ने १८१६ ई० में कलकत्ते में एक हिन्दू कालिज की स्थापना की।** उनकी धारणा यह थी कि पाश्चात्य शिक्षा का अध्ययन कर भारतीयों का ज्ञान विकसित होगा। **१८३५ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक ने यह घोषणा कर दी कि शिक्षा अङ्गरेजी माध्यम द्वारा दी जाएगी।** उसकी धारणा यह थी कि इस प्रकार उनको अङ्गरेजी पढ़े-लिखे भारतीय मिल जाएँगे और सरकार का व्यय कम हो जाएगा। **१८३६ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक ने विलियम आदम को बंगाल में शिक्षा की दशा जानने के लिए नियुक्त किया।** पादरियों द्वारा कछ अन्य स्थानों पर स्कूल

और कालिजों की स्थापना की गई। **सन् १८४४ ई० में लार्ड हार्डिज ने घोषित किया कि सरकारी नौकरियों में अङ्गरेजी जानने वाले व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखा जाएगा।** इसके कारण भारतीयों का ध्यान अङ्गरेजी शिक्षा के अध्ययन की ओर विशेष रूप से हुआ। **इसी समय ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने भी अङ्गरेजी शिक्षा के प्रचार में बड़ा सहयोग प्रदान किया।** लार्ड डलहौजी ने भी इस ओर कार्य किया। 'उनका यह कार्य भारत हितैषिता के विचार से न हुआ था। वह अपने कतिपय सुकार्यों की चमक में अपने शासन-काल के बहुसंख्यक काले कारनामों को छिपाना चाहता था।' **सन् १८५४ ई० में चार्ल्स बुड ने एक बहुत व्यापक शिक्षा-निर्देश-पत्र भारत-सरकार के पास भेजा।** वुड की योजना के अनुसार तीनों प्रेसीडेन्सियों और पश्चिमोत्तर प्रान्तों एवं पंजाब में सर्वजन शिक्षा-विभाग तथा समूचे ब्रिटिश भारत में क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना का विधान किया गया, जिसमें शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषा थी। इसके साथ-साथ उसमें ऐसी भी व्यवस्था की गई थी कि सरकार गैर-सरकारी शिक्षक-संस्थाओं को भी आर्थिक सहायता प्रदान करें। **उसमें यह भी आदेश दिया गया कि सरकार लन्दन विश्वविद्यालय के समान कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालयों की स्थापना करे।** इसी के अनुसार कलकत्ते में सर्वप्रथम सन् १८५७ ई० में एक विश्वविद्यालय की स्थापना हुई।

(४) लोक-कल्याण कार्य

प्रारम्भ में कम्पनी ने लोक-कल्याण कार्यों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, किन्तु बाद में उसने इस ओर ध्यान दिया। उसने भवनों के निर्माण, पुराने भवनों की मरम्मत तथा कुछ सड़कों की मरम्मत तथा नई सड़कों का निर्माण करना आरम्भ किया, जिनका सैनिक दृष्टि से महत्व था। लार्ड हेस्टिंग्ज ने एक पुरानी नहर की मरम्मत करवाई, जिसके कारण देहली के आस-पास के प्रदेशों में सिंचाई की सुव्यवस्था हुई। लार्ड विलियम बैंटिक ने ग्राण्ड ट्रङ्क सड़क की मरम्मत करवाई और लार्ड डलहौजी ने भी उस सड़क की ओर ध्यान दिया। रेल-पथ की योजना को कार्यान्वित करना लार्ड हार्डिज के समय में प्रारम्भ हुआ। उसने गंगा नदी से निकलने वाली गग-नहर की योजना का भी निर्माण करवाया। लार्ड डलहौजी ने लोक-कल्याण कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने १८५४ ई० में **सार्वजनिक निर्माण विभाग** की स्थापना की। अब तक निर्माण कार्य सैनिक विभाग के अन्तर्गत था। उसने बम्बई और मद्रास में भी इसी प्रकार का एक विभाग खोला। उसका प्रधान इंजीनियर तथा अन्य अफसर इङ्गलैण्ड से बुलाए गए। उसने डाकखाने विभाग की व्यवस्था को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उसने टिकट-व्यवस्था आरम्भ की और उनकी दर निश्चित कर दी गई। उसके काल में गंग नहर तथा बारी दोआब नहर का निर्माण हुआ। उसके समय में रेल चली तथा समाचार भेजने के लिए तार की व्यवस्था हुई। वास्तव में उसके सुधारों द्वारा भारत में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके कारण भारतीयों को विशेष सुविधाएँ प्राप्त हुईं। वास्तव में शासन का कोई भी क्षेत्र ऐसा न था जिसमें उसने

अपने अदम्य उत्साह, योग्यता, तथा साहस का परिचय नहीं दिया। उसने बहुत अधिक कार्य किया, जिसके कारण उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और इङ्गलैण्ड पहुँचने के कुछ ही काल उपरान्त सन् १८६० ई० में वह मृत्यु का ग्रास बन गया।

(५) नव-चेतना

कम्पनी के विभिन्न पदाधिकारियों के प्रयत्नों द्वारा भारत में उसका राज्य बहुत शीघ्र बढ़ता चला गया। कम्पनी ने इस काल में भारत की दशा को उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, जिसके कारण जनता की अवस्था बहुत शोचनीय होनी आरम्भ हो गई। कम्पनी के कर्मचारियों का ध्यान विशेष रूप से अपने साम्राज्य के विस्तार में लगा हुआ था। जब भारतवासियों की दुर्दशा अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई तो कुछ ऐसे व्यक्तियों का जन्म हुआ जिन्होंने भारतीयों को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया और कारणों का मनन करना आरम्भ किया, जिनके द्वारा उनको उन्नत किया जाना सम्भव था। सर्व प्रथम अङ्गरेजों की साम्राज्यवादी नीति का नग्न नृत्य बंगाल में हुआ और वहाँ की जनता को लोभ में फँसे हुए अङ्गरेजों का शिकार बनना पड़ा। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी सर्व प्रथम बंगाल में होनी आरम्भ हुई। वहाँ के समाचार-पत्रों ने सरकार की विभिन्न नीतियों की आलोचना करनी आरम्भ की, किन्तु वे समस्त भारत की जनता को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाए। इसका प्रमुख कारण यह था कि यातायात के साधन सुलभ नहीं थे। इस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो भारत की उन्नति किसी एक निर्दिष्ट क्षेत्र में नहीं वरन् समस्त क्षेत्रों में करने का प्रयास करता। राजा राममोहन राय ने इस कमी को पूरा किया और अपना समस्त जीवन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू को उन्नत करने में व्यतीत किया।

राजा राममोहन राय—आपका जन्म सन् १७७४ ई० में बंगाल के एक छोटे से गाँव राधानगर में हुआ था। आपने संस्कृत, फारसी, अरबी, बंगला तथा अंग्रेजी भाषाओं का खूब अध्ययन किया। इसके उपरान्त आपने ईस्ट इण्डिया कम्पनी में नौकरी की। इन्होंने हिन्दू तथा ईसाई धर्म का भी अध्ययन किया था। ४० वर्ष की आयु में आपने नौकरी छोड़ दी और समाज-सेवा के कार्य में रत हो गए। आप पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति से विशेष रूप से प्रभावित थे। आपने १८१५ ई० में भारतीय सभा तथा १८१९ ई० में यूनिटेरियन समिति की स्थापना आध्यात्मिक ज्ञान तथा हिन्दू धर्म में सुधार करने के उद्देश्य से की। १८२८ ई० में आपने ब्रह्म-समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय समाज से जाति-पाँति, रूढ़िवादिता तथा अन्य दोषों का अन्त करना था। उन्होंने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न किया और ब्रह्म-समाज के समर्थकों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। उनके अकथनीय प्रयत्नों के कारण सती-प्रथा का अन्त हुआ। उनके कार्य राजनैतिक क्षेत्र में भी बड़े सराहनीय हैं। उन्होंने वैधानिक रीति से राजनैतिक आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की और इसी उद्देश्य से १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। वे समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता में विश्वास

करते थे। उसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में एक अनुरोध-पत्र (Petition) प्रस्तुत किया। वे इंगलैण्ड भी गए और वहाँ जाकर उदार व्यक्तियों से भेंट की, जिनसे वहाँ के राजनीतिज्ञ बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने किसानों की अवस्था को भी उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि किसानों का लगान भी निश्चित कर दिया जाए, जिससे जमीदार उनसे अधिक लगान वसूल नहीं कर सकें। उन्होंने कार्यों के विभाजन तथा प्राक्कथन की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित करवाया। वास्तव में उन्होंने भारतीय समाज की बड़ी सेवा की। इनके द्वारा स्थापित ब्रह्म-समाज द्वारा ही भारत में नव-चेतना की भावना जागृत हुई, जिसने कालान्तर में राष्ट्रीय भावना का स्थान लिया।[1]

अन्य—राजा राममोहन राय के अतिरिक्त महाराष्ट्र में **बाल शास्त्री** तथा **गोपालहरि** दो महानुभावों का जन्म हुआ, जिनके प्रयत्न के कारण महाराष्ट्र में नव-चेतना का प्रचार हुआ। बाल शास्त्री संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेंच तथा लेटिन भाषा के विद्वान थे। उन्होंने पाश्चात्य ज्ञान तथा विज्ञान का पर्याप्त अध्ययन किया। वे भी समाज सुधार और शिक्षा के प्रचार को भारतीयों की उन्नति के लिए विशेष महत्वपूर्ण तथा आवश्यक समझते थे। **उन्होंने कुछ समाचार-पत्रों का प्रकाशन भी करवाया।** इनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में देश-सेवा की भावना का उदय हुआ। गोपालहरि बाजीराव द्वितीय के सेनापति बापू गोखले की सेवा में रह चुके थे। उनमें देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधार परम आवश्यक समझते थे। उनकी धारणा थी कि भारतीयों को विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इससे अंग्रेजों के व्यापार पर आघात लगेगा।

(६) **आर्थिक दशा**—भारत की आर्थिक दशा पर्याप्त उन्नत थी। उसका वाह्य देशों से पर्याप्त व्यापार था जिनके कारण साधारण जनता समृद्धिशाली थी। भारत के उद्योग-धन्धों के उन्नत होने के कारण भूमि पर अधिक भार नहीं था। सब ओर सुख और शान्ति व्याप्त थी किन्तु **अंग्रेजों ने भारत में आकर अपने व्यापार की वृद्धि के कारण भारतीय उद्योग-धन्धों पर कुठाराघात करना आरम्भ किया।** अंग्रेज भारत से कच्चा माल इंगलैण्ड ले जाने लगे और तैयार माल विदेशों से माल आने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत से तैयार माल विदेशों में जाना बन्द हो गया। **कम्पनी की ओर से किसानों की दशा को उन्नत करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया।** बंगाल में इस्तमरारी बन्दोबस्त के कारण किसानों की दशा बहुत शोचनीय हो गई। कम्पनी ने लगान की दर निश्चित नहीं की।

---

[1] "Raja Ram Mohan Roy presents a most instructive and inspiring study for the new India of which he is the type and pioneer...He embodies the new spirit......its freedom of enquiry; its thurst for science; its large human sympathy; its pure and sifted duties, along with its reverent but not uncritical regard for the past and present...disinclination towards revolt."

जमींदार उनसे अत्यधिक वसूल करते थे । **अतः उनके ऋण का बोझ बढ़ने लगा,** जिसने उनकी कमर तोड़ दी । जमींदारों का किसानों के साथ अमानुषिक व्यवहार था । लगान न देने पर उसको जमींदार बड़ी कठिन सजाएं दिया करते थे । वे अपनी दृष्टि में ही अपने आपको पतित समझने लगे । इस प्रकार कम्पनी के शासन-काल में भारत की आर्थिक स्थिति बड़ी ही असन्तोषजनक थी ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) लार्ड विलियम बैंटिक के सुधारों का वर्णन कीजिए और यह भी बतलाइए कि उन्होंने ब्रिटिश राज्य को कैसे दृढ़ किया ?

(२) लार्ड कार्नवालिस ने कम्पनी की शासन-व्यवस्था में क्या-क्या सुधार किए ?

(३) "लार्ड डलहौजी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक है ।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

(४) इस्तमरारी बन्दोबस्त अथवा स्थायी-भूमिकर प्रबन्ध के क्या कारण थे ? उसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ।

(५) लार्ड कार्नवालिस ने भूमिकर-व्यवस्था एवं न्याय-व्यवस्था में जो सुधार किए उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए ।

(६) लार्ड डलहौजी के प्रशासकीय सुधारों का वर्णन कीजिए ।

मध्य भारत—

(१) लार्ड कार्नवालिस के शासकीय सुधारों का वर्णन कीजिए । उसके कार्यों का स्थायी मूल्य क्या था ?

(२) लार्ड विलियम बैंटिक के राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों का वर्णन कीजिए ।

(३) 'बंगाल का स्थायी वन्दोबस्त एक ऐसा अभाग्यपूर्ण सुधार था जिसके द्वारा देश का नाश हुआ ।" विवेचना करो ।

(४) "लार्ड विलियम बैंटिक ने हिन्दुस्तान को शान्ति के वरदार प्रदान किए ।" विवेचना करो ।

राजस्थान—

(१) कार्नवालिस के शासन-सम्बन्धी सुधारों का वर्णन करो और उनकी तुलना वारेन हेस्टिंग्ज के सुधारों से करो ।

(२) इङ्गलैण्ड की पार्लियामेंट ने किस प्रकार ईस्ट-इण्डिया कम्पनी पर नियन्त्रण की स्थापना की ?

(३) "लार्ड विलियम बैंटिक ने भारत को शान्ति प्रदान की ।" विवेचना करो ।

जीवाजी विश्वविद्यालय--

(१) "लार्ड विलियम बैंटिक ने भारत में बुद्धिमानी, ईमानदारी व उदारता से शासन किया।"—मैकाले।

उपरोक्त कथन को ध्यान में रखते हुए लार्ड विलियम बैंटिक के सुधारों पर प्रकाश डालिए।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) १८३३ ई० के चार्टर एक्ट के द्वारा किए गए परिवर्तनों का मूल्यांकन कीजिए।

(२) लार्ड विलियम बैंटिक द्वारा किए सामाजिक सुधारों का विवरण दीजिए।

(३) लार्ड विलियम बैंटिक का आगमन सुधारों के नवीन युग के समारम्भ का द्योतक है। विवेचना कीजिए।

(४) डलहौजी केवल राज्य-विस्तारक ही नहीं एक महान् सुधारक भी था। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(५) आप बंगाल की स्थायी भूमि-व्यवस्था से क्या समझते हैं? उसके लाभ-हानियों के बारे में लिखिए।

सागर विश्वविद्यालय—

(१) लार्ड कार्नवालिस के आन्तरिक शासन का संक्षिप्त विवरण कीजिए तथा इसके परिणामों का परीक्षण कीजिए।

(२) राजा राममोहन राय के कार्यों का विवरण दीजिए तथा इतिहास में उनके स्थान का मूल्यांकन कीजिए।

गोरखपुर विश्वविद्यालय—

(१) डलहौजी के प्रशासनिक सुधारों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

(२) पिट्स इण्डिया एक्ट की प्रमुख धाराओं का विश्लेषण कीजिए, तथा उसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

(३) बंगाल के स्थायी भूमिकर-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए तथा उसके परिणामों की व्याख्या कीजिये।

४

क्रान्ति के उपरान्त नई व्यवस्था

अंग्रेज भारतीय क्रान्ति का दमन करने में सफल हुए, यद्यपि उनको विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप इंगलैण्ड में उन व्यक्तियों का विशेष प्रभाव स्थापित हो गया जो कम्पनी के शासन का अन्त कर भारतीय साम्राज्य पर इंगलैंड के सम्राट का आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे। उनको अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए इससे अधिक स्वर्ण अवसर और कौन-सा हो सकता था। इंगलैण्ड के पदाधिकारियों ने कम्पनी के शासन का अन्त करने का निश्चय किया। उसको पार्लियामेंट ने नया आज्ञा-पत्र प्रदान नहीं किया। **पार्लियामेंट ने सन् १८५८ ई० में एक एक्ट पारित कर भारत के शासन पर से कम्पनी के अधिकार का अन्त कर इंगलैण्ड की पार्लियामेंट को शासन का अधिकार प्रदान किया।** इस एक्ट में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि भविष्य में भारत का शासन इंगलैण्ड की सम्राज्ञी विक्टोरिया के नाम से होगा।

१८५८ का अधिनियम— इस अधिनियम के द्वारा (i) बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल और कोर्ट ऑफ सदस्य डाइरेक्टर्स का अन्त कर दिया गया और (ii) एक भारत-सचिव की नियुक्ति की गई जो इंगलैण्ड के मन्त्रि-मण्डल का सदस्य होता था। उसके ऊपर भारतीय शासन का समस्त भार सौंप दिया गया। वह अपने कार्यों के लिए इंगलैण्ड की पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होगा। (iii) उसकी सहायता के लिए १५ सदस्यों की समिति होगी जिसका नाम इण्डिया कौंसिल होगा। इसमें से ७ सदस्यों की नियुक्ति इगलैण्ड की पार्लियामेंट तथा शेष ७ सदस्यों की नियुक्ति कम्पनी के डाइरेक्टरों द्वारा की जाएगी। सदस्य केवल वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों तथा अपनी नियुक्ति के पूर्व १० वर्ष से अधिक भारत से बाहर न रह चुके हों। इसका अर्थ यह हुआ कि इस कौंसिल के सदस्यों को भारत की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होना अनिवार्य था। इस कौंसिल का सदस्य ऐसा भी व्यक्ति नहीं हो सकता था जो इंगलैण्ड की पार्लियमेंट का सदस्य हो।

इस अधिनियम ने भारत सचिव को विशेष अधिकारों से सुशोभित किया। **वह इण्डिया कौंसिल का अध्यक्ष होगा और उसको कौंसिल के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार होगा।** उसको वे समस्त पत्र-व्यवहार कौंसिल के सामने रखने होंगे जो उसके और भारत के गवर्नर-जनरल के मध्य होते रहे हैं। भारत सचिव को प्रति वर्ष भारतीय शासन की रिपोर्ट पार्लियामेंट के सामने प्रस्तुत करनी होगी। गवर्नर-जरनल और प्रेसीडेंसियों के गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट को प्राप्त होगा। लेफ्टीनेण्ट गवर्नरों की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर-जनरल

को प्रदान किया गया। भारतवर्ष की समस्त जल तथा थल सेना पर इंगलैण्ड के सम्राट का अधिकार होगा।

महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र

महारानी विक्टोरिया के नाम से एक घोषणा-पत्र तैयार किया गया जिसमें महारानी ने भारतीय जनता को विश्वास दिलाया कि अंग्रेजी सरकार सदैव भारतीयों के हितों का ध्यान रखेगी। **वह उनके धार्मिक विश्वासों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी तथा धर्म और जाति के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव किसी भी व्यक्ति के साथ नहीं किया जाएगा।** सम्राट उन समस्त संधियों का सम्मान-पूर्वक आदर करेगा जो कम्पनी के शासन-काल में देशी राज्यों से समय-समय पर की गईं थी। उसने राजाओं के गोद लेने के अधिकार को न्यायसंगत घोषित किया और यह भी घोषणा की गई कि अब से अंग्रेज भारत-भूमि में अपना राज्य विस्तार करने की ओर कोई कदम नहीं उठाएँगे। इसके द्वारा भारतीयों की शंकाओं का समाधान हो गया। यह घोषणा-पत्र लार्ड केनिंग ने १ नवम्बर १८५८ ई० को इलाहाबाद में पढ़कर सुनाया जिसमें लगभग समस्त राजा, महाराजाओं ने भाग लिया था। इस घोषणा-पत्र के कुछ शब्दों को यहाँ उल्लिखित करना पाठकों के लिए हितकर होगा।

"हम देशी नवाबों के लिए यह घोषित करते हैं कि जो सन्धियाँ एवं प्रतिज्ञाएँ प्रतिष्ठित ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा उनके साथ सम्पन्न की गई हैं, हम उनको स्वीकार करते हैं। उनको अक्षरशः निभाए जाने की आशा करते हैं।"

"और हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन चाहे वे किसी भी जाति अथवा धर्म के क्यों न हों, हमारे कार्यालय और सरकारी नौकरियों के उन समस्त पदों पर नियुक्त किए जाएँ जिनका कार्य वे अपनी शिक्षा, चतुराई तथा सत्यता के साथ उचित रूप से करने योग्य हों।"

"हम इस बात को जानते हैं और सम्मान करते हैं कि भारतवासी अपनी मातृभूमि को कितना प्रेम करते हैं। हम राज्य की आवश्यकतानुसार उनके भूमि-सम्बन्धी समस्त अधिकारों की रक्षा करेंगे।"

"ईश्वर की कृपा से जब देश में पुनः शान्ति की स्थापना हो जाएगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि देश में उद्योगों की शान्तिपूर्वक उन्नति की जाएगी, प्रजा को लाभ पहुँचाने वाले कार्य किए जाएँगे और ऐसा शासन-प्रबन्ध किया जाएगा जिससे देश के समस्त व्यक्तियों को लाभ हो। उन्हीं की उन्नति में हमारी शक्ति है उन्हीं की तृप्ति में हमारा कल्याण है और उनकी कृतज्ञता ही हमारा सर्वश्रेष्ठ पारितोषिक है।"[1]

---

[1] "We hereby announce to the native princes of India that all treaties and engagements made with them by or under the authority of the Honourable East India Company are by us accepted, and will be scrupulously maintained and we look for the like observance on their part.

घोषणा के भावों में संदेह नहीं किया जा सकता और उनको अत्यन्त मर्यादित एवं सुन्दर भाषा में प्रगट किया गया। घोषणा का भारत में आशातीत स्वागत हुआ और भारतीयों के हृदय में ब्रिटिश-सम्राट के प्रति आज्ञाकारिता तथा श्रद्धा के भाव हिलोरे लेने लगे। इसका एकमात्र दोष यह था कि उसके अन्तर्गत जो भी प्रतिज्ञाएँ की गई थीं वे कभी भी कार्यान्वित नहीं हो पाईं।

अंग्रेजी सिपाहियों का विद्रोह—जब इस घोषणा-पत्र का प्रचार समस्त देश में किया जा रहा था तो उसी समय अंग्रेजी सैनिकों ने विद्रोह किया। वे कम्पनी की अधीनता छोड़कर सम्राट की अधीनता को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। उन्होंने सरकार के सामने अतिरिक्त वेतन की मांग की। भारत के तत्कालीन वाइसराय कैनिंग ने उनके प्रति दृढ़ नीति का अनुसरण कर बहुत-से सैनिकों तथा अफसरों को उनके पद से हटा दिया। इस प्रकार इस विद्रोह को शान्त किया गया।

सेना का संगठन—क्रान्ति का दमन करने के उपरान्त पदाधिकारियों का ध्यान सेना का संगठन करने की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि भारत रक्षा केवल उस समय सम्भव है जब भारत में पर्याप्त अंग्रेजी सेना हो। उन्होंने २:१ के अनुपात में भारतीय तथा अंग्रेजी सेना की संख्या निश्चित की। इसके अनुसार भारतीय सैनिकों की संख्या कम कर दी गई और अंग्रेजी सैनिकों को संख्या में वृद्धि की गई। १८६१ ई० में भारत में ब्रिटिश सेना की संख्या घटाकर ७६ हजार कर दी गई और स्थानीय सेना १२०,००० रह गई। भारतीयों के हाथ से तोपखाना लेकर अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया गया।

आर्थिक सुधार—इस समय आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी, क्योंकि क्रान्ति के दमन में बहुत अधिक धन व्यय हो चुका था। लार्ड केनिंग ने सरकार की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर ध्यान दिया। विलसन नामक कुशल अर्थनीतिज्ञ भारत आया, जिसने आर्थिक सुधार करने से लिए निम्न सुझाव रखे—

(१) ५०० रु० से अधिक की आय पर आय-कर लगाना।

"And it is our further will that, so far as may be, our subjects of whatever race or cread, be freely and impartially admitted to offices in our service, the duties of which they may be qualified by their education, ability and integrity, duty to discharge."

"We know and respect the feelings of attachment with which the natives of India regard the lands inherited by them from their ancestors, and we desire to protect them in all rights connected therewith subject to the equitable demands of the state, we will that, generally in framing and administering the law due regard to be paid to the ancient rights, usages and customs of India."

"When by the blessing of Providence, internal tranquility shall be restored, it is our earnest desire to stimulate the peaceful industry of India, to promote works of public utility and improvements, and to administer its government for the benefit of all our subjects resident therein. In their prosper will be our strength, in their contentment our securify, and in their gratitude our best reward."

(२) व्यापार एवं व्यवसाय पर लाइसेंस कर लगाना।

(३) भारतीय तम्बाकू पर कर लगाना।

इसके अतिरिक्त उसने आयात-कर और निर्यात-कर लगाने की व्यवस्था भी की। आयात-कर १० प्रतिशत और निर्यात-कर ४ प्रतिशत निश्चत किया गया। नमक कर में वृद्धि हुई।

इन सुधारों के कारण सरकार की आय में बड़ी वृद्धि हुई। इसके उपरान्त उसने सरकारी व्यय को कम करने की व्यवस्था की। उसने सैनिक तथा नागरिक दोनों विभागों के व्यय में पर्याप्त कमी की। इसके द्वारा सरकार की आर्थिक स्थिति बड़ी सन्तोषजनक हो गई।

लार्ड केनिंग के अन्य सुधार—लार्ड केनिंग ने अन्य सुधारों की ओर ध्यान दिया। उसने निम्न प्रमुख सुधार किए—

(i) उसने शिक्षा का प्रचार करने का प्रयत्न किया, किन्तु धनाभाव के कारण उसके प्रयत्नों को विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी। १८५७ ई० में लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए।

(ii) उसके समय में हाई-कोर्ट एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में हाई-कोर्ट की स्थापना की गई। सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतों का अन्त कर दिया गया।

(iii) किसानों का अधिकार मारूसी कर दिया गया जो बारह वर्ष से किसी भूमि को जोत रहे थे।

(iv) जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकार सीमित कर दिए गए।

(v) उसके समय में ई० आई० आर० और जी० आई० पी० रेलवे लाइनों का विस्तार किया गया।

(vi) ग्राण्ड-ट्रङ्क रोड का पुनरुद्धार किया गया।

सन् १८६२ ई० में अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाने के कारण उसने त्याग-पत्र दिया और वह इंगलैण्ड वापिस चला गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

सागर विश्वविद्यालय—

१. सन् १८५७ ई० की महारानी की विज्ञप्ति का विश्लेषण कीजिए तथा इसके महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

इलाहबाद विश्वविद्यालय—

१. सन् १८५७ ई० के विद्रोह के परिणामस्वरूप भारत सरकार की शासन नीति में किए गए परिवर्तनों का विवेचन कीजिए।

२. "सन् १८५८ ई० की महारानी की उद्घोषणा में भारत के प्रति गई नीति के बीज विद्यमान थे।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

५ अंगरेजों की सीमान्त नीति १८५७–१९४७

अंग्रेजों की सीमान्त नीति का वास्तविक रूप में उस समय आरम्भ होता है जिस समय से अंग्रेजों ने सिन्ध और पंजाब को अपने अधिकार में कर लिया। पाठकों को स्मरण होगा कि **अंग्रेजों का अधिकार सिन्ध पर १८४३ ई० में तथा पंजाब पर १८४९ ई० में स्थापित हो गया था।** इन विजयों के परिणामस्वरूप अंग्रेजी साम्राज्य की सीमा उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान-राज्य की सीमाओं के साथ ही थी, अतः यह स्वाभाविक था कि अब अङ्गरेज अफगानिस्तान राज्य कि ओर अधिक आकृष्ट हों। **अङ्गरेजों ने सदा से इस बात का विशेष रूप से प्रयत्न किया कि अफगानिस्तान राज्य पर उनके अतिरिक्त किसी अन्य विदेशी राज्य का कोई प्रभाव स्थापित न हो।** इस समय तक अङ्गरेजों को फ्रांसीसी आक्रमण का भय इस दिशा से पूर्णतया समाप्त हो गया था, किन्तु उसका स्थान योरुप की राजनीति में रूस ने ले लिया था, जो मध्य एशिया में दिन-प्रतिदिन अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने में संलग्न था। अतः अब अङ्गरेजों को फ्रांस के स्थान पर रूस के आक्रमण का भय उत्पन्न हो गया। जैसे-जैसे इस आक्रमण का भय बढ़ता गया वैसे-वैसे ही अङ्गरेजों की नीति अफगानिस्तान के प्रति दृढ़ तथा कठोर होती गयी। **पंजाब पर अङ्गरेजों का अधिकार हो जाने से अङ्गरेजी राजनीतिज्ञों के सामने एक समस्या और उत्पन्न हुई कि पहाड़ी प्रदेशों में निवास करने वाली अर्द्ध सभ्य जातियों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जाए।** वास्तव में ये जातियाँ सैद्धान्तिक रूप में अफगानिस्तान के आधीन थीं, किन्तु व्यावहारिक रूप से ये पूर्णतया स्वतन्त्र थीं। ये जातियाँ बड़े गौरव के साथ कहा करती थीं "कि हमने कभी भी किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की है।" अङ्गरेजों ने इन अर्द्ध सभ्य जातियों के छुटपुट आक्रमणों से सीमान्त प्रदेश में रहने वाले निवासियों की रक्षा करने का प्रयास किया, किन्तु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। जब उनके आक्रमणों का विस्तार तथा वेग बढ़ गया तो अंग्रेजों को बाध्य होकर उन पहाड़ी प्रदेशों पर आक्रमण करना पड़ा और उन्होंने इन जातियों का दमन किया, किन्तु इससे भी सीमान्त प्रदेश में शान्ति की स्थापना न हो सकी, जिसके कारण अङ्गरेजों को उस ओर से बड़ा सतर्क रहना पड़ा। **लार्ड कैनिंग और एलगिन** के समय में पंजाब का गवर्नर **सर जॉन लारेंस** था। उसको सीमान्त प्रदेशों का बहुत अधिक अनुभव था।

लार्ड कैनिंग के पश्चात् भारत का वाइसराय लार्ड एलगिन नियुक्त हुआ, किन्तु वह अधिक काल तक शासन न कर सका। **नियुक्ति के एक वर्ष पश्चात् ही पंजाब में धर्मशाला नामक स्थान पर उनका देहान्त हो गया।** उसकी मृत्यु के उपरान्त ही पंजाब का **गवर्नर सर जॉन लारेंस** जो इस समय **इण्डिया कौंसिल** का सदस्य

था भारत का वायसराय नियुक्त हुआ। उसकी नियुक्ति का प्रमुख आधार यही था कि वह उत्तरी-पश्चिमी सीमा की वास्तविकता से पूर्णतया परिचित था, जहाँ कि कबाइल जातियाँ अपना संगठन कर सीमान्त प्रदेशों में भय उत्पन्न कर रही थीं। उन्होंने अपना संगठन पेशावर के उत्तर और सिन्धु नदी के पश्चिम में सिताना नामक स्थान में कर लिया था। यह बस्ती वहावी नामक धर्मान्ध मुसलमानों की बस्ती थी। पटना में उनका फौजी भरती केन्द्र तथा एजेन्सी थी। उनका प्रभाव गुप्त रूप से समस्त भारत में फैला हुआ था। उनके विरुद्ध १८५६ और १८५८ ई० में आक्रमण किए गए थे। १८६१ ई० में वे मल्का में पुनः संगठित हुए और १८६३ ई० में उन्होंने पंजाब के लिए बड़ा भारी भय उत्पन्न कर दिया। अङ्गरेजों ने एक विशाल सेना के साथ उन पर आक्रमण कर किया। कबाइलियों ने अङ्गरेजी सेना का अम्बेला नामक दर्रे में सामना किया और तीन सप्ताह तक अङ्गरेजी सेना आगे नहीं बढ़ सकी। अन्त में अङ्गरेजी सेना सफल हुई और उसने मल्का को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अंग्रेज और अफगानिस्तान

इससे पूर्व कि लार्ड लारेंस की अफगानिस्तान-राज्य के प्रति नीति की समीक्षा की जाए यह अधिक उचित होगा कि यह बतला दिया जाए कि इस समय अङ्गरेज और अफगानिस्तान-राज्य के सम्बन्ध किस प्रकार के थे। पाठकों को स्मरण होगा कि अङ्गरेजों ने प्रथम अफगान-युद्ध में सफल होने के उपरान्त बाध्य होकर दोस्त-मुहम्मद को पुनः अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया। उसने जीवनपर्यंत अङ्गरेजों से मैत्री-व्यवहार रखा। १८५५ ई० में अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद और भारत-सरकार के मध्य एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि अङ्गरेज अफगानिस्तान की आन्तरिक नीति में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा अमीर अङ्गरेजों के शत्रुओं तथा मित्रों को अपना शत्रु तथा मित्र समझेगा।[1] उसने भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय अङ्गरेजों के प्रति पूर्ण भक्ति का परिचय दिया और भारत पर आक्रमण नहीं किया, यद्यपि इसकी सम्भावना बहुत अधिक थी। गत पृष्ठों में इस विषय पर प्रकाश डाला जा चुका है कि यदि इस समय अफगानिस्तान की ओर से आक्रमण हो जाता तो अङ्गरेजों की परिस्थिति बहुत गम्भीर हो जाती। **सर जॉन लारेंस** ने तो इस समय भारत-सरकार को यह आदेश भी दिया था कि 'हमको अमीर को पेशावर दे देना चाहिए, जिससे अमीर उनका दोस्त बना रहे', किन्तु केनिंग उसकी इस बात से सहमत नहीं हुआ। उसने लारेंस को पेशावर को अपने अधिकार में रखने की आज्ञा दी।

लार्ड लारेंस की अफगानिस्तान-सम्बन्धी नीति—लार्ड लारेंस दृढ़ संकल्प वाला तथा योग्य और समझदार व्यक्ति था। पश्चिमी सीमा की समस्या के सम्बन्ध में लार्ड

---

[1] "By this treaty the Indian Govenment undertook not to violate the territory of the Amir, and the latter agreed to be 'the friend of the friends and enemy of the enemies of the Honourable East India Company'."

—An advanced History of India p., 830.

लारेंस का अपना अलग एक निश्चित मत था कि शान्तिपूर्ण उपायों से अफगानिस्तान में बिना हस्तक्षेप किए उसके अमीरों को अपना मित्र बनाया जाए, जबकि अग्रगामी नीति के समर्थकों का कथन था कि अफगानिस्तान पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया जाए और उस देश की वाह्य नीति पर अङ्ग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो। रूस के आक्रमण के सम्बन्ध में लार्ड लारेंस का यह मत था कि रूस और इंगलैण्ड के बीच सन्धि द्वारा दोनों राज्यों के प्रभाव-क्षेत्रों का विभाजन कर दिया जाए, जिससे आगे कोई भी अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने के लिए अपना कदम न उठाए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह रूस की मध्य एशिया में बढ़ती हुई शक्ति से उदासीन नहीं था, वरन् उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर वह सन्धि द्वारा प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में था। उसके सामने एक अन्य समस्या पंजाब और सिन्ध के पश्चिमी प्रदेशों में रहने वाली विभिन्न अर्द्ध सभ्य जातियों की थी, जिनके अधिकार में समस्त प्रसिद्ध दर्रे थे, जो भारत को अफगानिस्तान से मिलाते थे। इनके सम्बन्ध में **अग्रगामी नीति** यह थी कि भारत-सरकार इन पर अपना अधिकार स्थापित कर ले और इन जातियों का इतना दमन कर दिया जाए कि वे कभी सर उठाने योग्य न रहें। क्वेटा पर अधिकार करने का प्रस्ताव सिन्ध के शासकों द्वारा आया, किन्तु उसने उसको स्वीकार नहीं किया। लार्ड लारेंस की नीति इन जातियों के सम्बन्ध में यह थी कि उनकी आन्तरिक व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाए, उनको सभ्य बनाने की चेष्टा की जाए और जब वे आक्रमण करें तो उन पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। अतः उसने तीनों पहलुओं का समाधान शान्तिमय उपायों द्वारा करना उचित समझा। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने उसकी तटस्थता की नीति को **महान् अकर्मण्यता** की नीति की संज्ञा प्रदान कि, किन्तु उसको अथवा उसकी नीति को अकर्मण्यता की संज्ञा प्रदान करना उस महान् व्यक्ति के साथ अन्याय करना है। वास्तव में वह तटस्थता की नीति का समर्थक तथा पालन करने वाला उसी समय तक था जब तक कि अफगानिस्तान का अमीर फारस या रूस के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर है, परन्तु यदि वह उसके प्रभाव-क्षेत्र में आ जाए तो लारेंस कभी भी इस नीति का पालन करने के लिए उद्यत न होता जैसा स्वयं उसने कहा है कि **हिरात के फारस के अधिकार में चले जाने की सम्भावना पर हम अफगानिस्तान के अमीर की भरसक सहायता फारस के विरुद्ध करेंगे।** १८६८ ई० में उसने शेरअली को आर्थिक सहायता इसी उद्देश्य से दी कि वह अपने राज्य के आन्तरिक संघर्षों का अन्त कर अपनी शक्ति को दृढ़ तथा संगठित कर फारस और रूस से मुकाबला करने में समर्थ हो सके और उसके साथ-साथ अङ्ग्रेजों का मित्र बना रहे। वास्तव में उसकी इच्छा अफगानिस्तान को सशक्त बनाने की थी न कि शक्तिहीन करने की जो किसी भी समय रूस अथवा फारस के सामने घुटने टेक दे।

अफगानिस्तान में उत्तराधिकारी युद्ध—सन् १८६३ ई० में अफगानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद की मृत्यु ८० वर्ष की आयु में हुई। **शीघ्र ही अफगानिस्तान में उसके सोलह पुत्रों के बीच उत्तराधिकारी-युद्ध आरम्भ हो गया।** शेरअली को दोस्तमुहम्मद अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गया था, किन्तु इससे कोई लाभ नहीं

हुआ। शेरअली ने प्रारम्भ में काबुल की गद्दी पर अधिकार किया और तीन वर्ष तक अमीर बना रहा। उसके प्रतिद्वन्द्वियों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। शेरअली ने भारत-सरकार से सहायता की प्रार्थना की। उस समय **सर जॉन लारेंस** भारत का वाइसराय था। उसने शेरअली को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की और घोषित कर दिया कि हम अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कुछ समय पश्चात् शेरअली की स्थिति खराब हो गई। **सन् १८६६ ई० में शेरअली काबुल तथा १८६७ ई० में कन्दहार से भगाने पर बाध्य हुआ।** अफजल खाँ ने अपने आपको अमीर घोषित किया, किन्तु उसका उसी वर्ष देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु पर उसका भाई आजम खाँ अमीर के पद पर आसीन हुआ, परन्तु शेरअली ने १८६८ ई० में कन्दहार और १८६९ ई० में काबुल पर अधिकार कर लिया। अजीम ईरान भाग गया और अफजल खाँ के पुत्र अब्दुर्रहमान ने ताशकन्द में शरण ली और रूस का पेंशन भोगी बन गया। इस प्रकार **अफगानिस्तान का गृह-युद्ध समाप्त हुआ और शेरअली अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन करने में सफल हुआ।**

सर जॉन लारेंस की नीति—सर जॉन लारेंस ने युद्ध में किसी भी उत्तराधिकारी को किसी भी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की। उसने पूर्णतया अपनी सुनिश्चित तटस्थता की नीति का पालन किया। १८६४ ई० में उसने शेरअली को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया, किन्तु जब १८६६ ई० में अफजल खाँ ने काबुल पर अधिकार किया और शेरअली के अधिकार में हिरात और कन्दहार थे तो उसने अफजल खाँ को काबुल का शासक और शेरअली को कन्दहार और हिरात का शासक स्वीकार किया। जब शेरअली ने समस्त अफगानिस्तान को अपने अधिकार में कर लिया तो लारेंस ने उसको अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार किया और उसके पास ६,००० पौंड तथा ३५,००० हथियार उपहार स्वरूप भेजे।

लारेंस की नीति की समीक्षा—लारेंस ने अफगानिस्तान के प्रति जिस नीति को अपनाया वह वास्तव में बहुत ही उचित थी। यह सत्य है कि कुछ समय तक **शेरअली का व्यवहार अंग्रेजों के प्रति अच्छा नहीं रहा,** किन्तु बाद में जब लारेंस ने **उसको अमीर स्वीकार कर धन और अस्त्र उपहार-स्वरूप भेंट किए तो वह अंग्रेजों की ओर अवश्य आकर्षित हो गया।** यदि लारेंस युद्ध के मध्य में किसी भी पक्ष की सहायता करता तो दूसरे पक्ष के लोग उसके विरुद्ध हो जाते और सम्भव था कि इस बार के हस्तक्षेप का परिणाम भी वही होता जो प्रथम अफगान-युद्ध का परिणाम हुआ था। अफगान उस व्यक्ति को अपना अमीर मानने के लिए तैयार किसी भी दशा में नहीं होते जो अंग्रेजों की सहायता के बल पर अफगानिस्तान का अमीर बनने में सफल होता। यह भी सम्भव था कि फिर अन्य प्रतिद्वन्द्वी रूस की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते और युद्ध अफगान युद्ध न रहकर आंग्ल-रूस युद्ध का रूप धारण कर लेता। **लारेंस की नीति** के आलोचकों का कथन है कि उसने अपनी नीति का पूर्णतया पालन नहीं किया; क्योंकि बाद में उसने शेरअली को सहायता

अवश्य लगाया गया कि वह इस हत्या-काण्ड के प्रति उदासीन रहा । वह वन्दी बना कर मेरठ भेज दिया गया ।

अब्दुर्रहमान का अमीर बनना—भारत सरकार के सामने विशेष परिस्थिति उत्पन्न हुई । अफगानिस्तान में विद्रोह की भावना प्रज्वलित हो गई और वहाँ का कोई शासक नहीं था जिससे सन्धि की जाए । काबुल के चारों ओर भयंकर युद्ध हुआ । रॉबर्टस् को विवश होकर काबुल और बालाहिसार का दुर्ग त्यागना पड़ा । जब वह शेरपुर में प्रश्रय ले रहा था तो वहाँ उसको कबाइलियों ने घेर लिया । स्टीवार्ट की अध्यक्षता में कन्धार से सेना विद्रोहियों को अहमदखेन नामक स्थान पर परास्त करती हुई काबुल आयी जहाँ उसकी सेना **रॉबर्टस्** की सेना से मिली और उसको शान्ति प्राप्त हुई । इसी समय जब अंग्रेजी सेना भीषण परिस्थिति में थी कि शेर-अली का भतीजा और अफजल खाँ का पुत्र एकाएक उत्तरी सीमा पर प्रगट हुआ । **लार्ड लिटन ने उसको अमीर बनाने का निश्चय किया, किन्तु अपने निश्चय को पूर्ण करने के पूर्व ही उसने १८८० ई० में त्याग-पत्र दे दिया ; क्योंकि इंगलैण्ड के साधारण निर्वाचन में अनुदार दल पराजित हो गया और उदार दल के हाथ में शासन की सत्ता आ गई । अब ग्लेडसटन** इंगलैण्ड का प्रधानमन्त्री और **लार्ड हार्टिगटन** भारत-सचिव बना । लार्ड लिटन के स्थान पर लार्ड रिपन को वाइसराय बनाकर भारत भेजा गया । लार्ड हार्टिगटन ने अपनी नीति निम्न शब्दों में प्रकट की—

"जितना सम्भव हो सके युद्ध के पहले की स्थिति उत्पन्न की जाए ।"

लार्ड रिपन की नीति—लार्ड रिपन ने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में लार्ड लिटन की नीति स्वीकार कर अब्दुर्रहमान को औपचारिक रूप में काबुल का अमीर स्वीकार किया । 'उसकी मान्यता के सम्बन्ध में केवल एक ही शर्त रखी गई कि अमीर अंग्रजों को छोड़कर किसी विदेशी राष्ट्र से राजनीतिक सम्बन्ध न रखेगा और पीशिन तथा सिबी के जिले अंग्रेजों के पास रहेंगे ।

नई समस्या—अब्दुर्रहमान काबुल का अमीर घोषित किया गया । हिरात पर इस समय शेरअली के पुत्र अयूब खाँ का आधिपत्य था । सन्धि होने के शीघ्र ही उपरान्त अयूब खाँ ने कन्दहार पर आक्रमण किया । उसने जनरल बरोज को माईवन्द नामक स्थान पर परास्त किया । अंग्रेजी सेना ने उसकी सेना का उस समय तक सामना किया जब तक उनका एक सिपाही भी जीवित रहा । उसने शीघ्र ही कन्दहार पर आक्रमण किया । अंग्रेजी सेना काबुल से **लार्ड रॉबर्टस्** के नेतृत्व में ३१३ मील की यात्रा करती हुई २० दिन में कन्दहार पहुँची । उसने अय्यूब खाँ को परास्त किया । अंग्रेजी सेना ने काबुल छोड़ दिया और कुछ समय उपरान्त कन्धार से अंग्रेजी सेना वापिस चल पड़ी । कन्धार अमीर को दे दिया गया, यद्यपि उग्रगामी नीति के समर्थकों ने इसका बड़ा विरोध किया था । ब्रिटिश सेनाओं के काबुल तथा कन्दहार से प्रस्थान करने के शीघ्र ही उपरान्त अय्यूब खाँ ने पुनः कन्दहार पर आक्रमण किया । वह उसको अपने अधिकार में करने में सफल हुआ । अब्दुर्रहमान

ने कन्धार पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। उसने अय्यूब खाँ को परास्त किया जिससे कन्धार पर उसका अधिकार स्थापित हो गया।

लार्ड लिटन तथा लार्ड रिपन की नीति की समीक्षा—लार्ड लिटन ने अफगानिस्तान के सम्बन्ध में लार्ड लारेंस द्वारा प्रतिपादित तटस्थता की नीति का परित्याग किया। वास्तव में प्रारम्भ में उसने जिस नीति का अनुकरण किया वह इंगलैण्ड की सरकार के अनुकूल थी और उसका उसको सदैव समर्थन प्राप्त होता रहा, किन्तु बाद में उसने जिस नीति का अनुकरण किया उसमें उसको इङ्गलैण्ड की सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि घटना-चक्र इतनी तीव्र गति से चला कि इङ्गलैण्ड की सरकार उसके कार्यों में विशेष हस्तक्षेप नहीं कर सकी। **अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि द्वितीय अफगान-युद्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व लार्ड लिटन पर है।** लार्ड रिपन की नीति के कारण अफगानिस्तान की समस्या का समाधान हुआ। अब्दुर्रहमान अपने जीवन भर अङ्गरेजों का मित्र बना रहा। यदि अङ्गरेज कन्धार पर अपना अधिकार बनाए रखते तो इस समस्या का समाधान असम्भव था। अंग्रेजों को पीशिन तथा सिबी के प्रदेश प्राप्त हुए जिससे बिलोचिस्तान की एजेन्सी का निर्माण हुआ जिसका हेडक्वाटर क्वेटा रखा गया। इससे कलाट, लसबेयला तथा अन्य बिलोची जातियों पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। इससे रूस की महत्वाकांक्षाओं को बड़ा आघात पहुँचा और अफगानिस्तान की वाह्य नीति अंग्रेजों के नियन्त्रण में हो गई।

लार्ड डफरिन की अफगान नीति—सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन त्याग-पत्र देकर चला गया और उसके स्थान पर लार्ड डफरिन भारत का वाइसराय नियुक्त हुआ। लार्ड रिपन के समय में रूस मध्य एशिया में बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। १८८१ ई० में रूसियों ने तक्की तुर्कमानों को परास्त कर उनके प्रदेश पर अधिकार किया। सन् १८८४ ई० में उन्होंने मर्व को अपने अधिकार में किया। यह प्रदेश अफगानिस्तान की सीमा से केवल ड़ेढ़ सौ मील की दूरी पर था। इङ्गलैण्ड में इस स्थान को सदा महत्व दिया गया और रूस के हाथ में चले जाने पर व्यापक रोष फैल गया। ब्रिटिश सरकार बड़ी चिंतित हुई और लार्ड रिपन के समय में निश्चय हुआ कि रूसी और अंग्रेजों के एक सम्मिलित सम्मेलन द्वारा अफगानिस्तान की उत्तरी-पश्चिमी सीमा निश्चित कर दी जाए। इसी समय लार्ड डफरिन भारत का वाइसराय बन कर आया। जब सीमा-आयोग के वार्तालाप में रोष प्रगट किया जाने लगा और वे किसी निर्णय विशेष पर नहीं पहुँचे तो रूसियों ने पंचदेह पर आक्रमण कर उस पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। पंचदेह अफगान राज्य में था और मर्व से सौ मील दक्षिण में स्थित था। इस समय भारत का वाइसराय डफरिन और अदुर्रहमान रावलपिंडी में थे। पंचदेह के आक्रमण का समाचार पाते ही अंग्रेजों ने क्वेटा में अपनी सेना का संगठन करना आरम्भ किया। वाइसराय ने अमीर से पूछा कि क्या अंग्रेज सेना को पंचदेह की रक्षा के लिए कूंच करने का आदेश दिया जाए, किन्तु अब्दुर्रहमान ने उसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह किसी भी मूल्य पर

रूस और अंग्रेज युद्ध अफगानिस्तान में नहीं होने देना चाहता था; क्योंकि इससे अफगानिस्तान युद्ध-स्थल बन जाता और उसको विशेष हानि उठानी पड़ती। अन्त में रूस और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित हुई जिसके अनुसार पंचदेह पर रूस का अधिकार रहा और जुलफिकार दर्रे पर अफगानों का अधिकार स्वीकार किया गया। इस प्रकार रूस-आंग्ल युद्ध रुक गया। अन्त में सन् १८८७ ई० में रूस और अफगानिस्तान की सीमा अंकित कर दी गई।

लार्ड लैंसडाउन की अफगान नीति—लार्ड लैंसडाउन अग्रगामी नीति का समर्थक था। वह अर्द्ध सभ्य जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था और उनके प्रदेशों को वह भारत से रेल, सड़कों आदि के द्वारा जोड़ना चाहता था जिससे उन प्रदेशों में शीघ्रातिशीघ्र सैनिक कार्यवाही की जा सके। **रूस पामीर की ओर बढ़ रहा था। अतः वाइसराय ने गिलगिट और चितराल को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाकर एजन्सियों की स्थापना करना आरम्भ किया।** उसने चमन तक रेल-पथ बनाने का निश्चय किया। इन्हीं सब कारणों से अफगानिस्तान का अमीर अब्दुर्रहमान अंग्रेजों से सशंकित रहने लगा। उसने अंग्रेजों की इस नीति का बड़ा विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप वाइसराय ने यह निश्चय किया कि **जनरल** रॉबर्ट्स को अफगानिस्तान भेजा जाए और वह अमीर से मिलकर भारत और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित करे। **अमीर रॉबर्ट्स को अफगानिस्तान नहीं आने देना चाहता था, क्योंकि उसके आने से अफगानों में विद्रोह के भाव जागृत हो जाएँगे, क्योंकि द्वितीय अफगान-युद्ध में उसने अफगानिस्तान में सक्रिय भाग लिया था।** अतः कुछ समय उपरान्त यह निश्चय हुआ कि वाइसराय का परराष्ट्र सचिव **डयूरंड** अफगानिस्तान आकर सीमा-सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय करे। सन् १८९२ ई० में वह अफगानिस्तान पहुँचा। दोनों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अमीर ने पठानी जातियों पर अपने अधिकार का त्याग किया और उन पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इस प्रकार अंग्रेजों का अधिकार चमन, वजीरिस्तान, अफ्रीदी प्रदेश, खुर्रम, स्वात आदि प्रदेशों पर हो गया। इस प्रकार भारत और अफगानिस्तान की सीमा निश्चित हुई। यह सीमा **डयूरेण्ड सीमा** के नाम से विख्यात हुई। अमीर ने अंग्रेजों को पेशावर से चितराल तक रेल-पथ बनाने की भी अनुमति प्रदान की।

लार्ड एलगिन की अफगान नीति—लार्ड लेन्सडाउन के उपरान्त लार्ड एलगिन द्वितीय सन् १८९४ ई० में भारत का वाइसराय बनकर आया। वह भी लार्ड लेन्सडाउन के समान उग्रगामी नीति का समर्थक था। **उसने उन प्रदेशों में अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जो डयूरेण्ड सीमा द्वारा अंग्रेजों के अधिकार में आए थे।** रूस के भय के कारण उसने चितराल पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। **गिलगिट से चितराल पर अधिकार करने के लिए एक सेना भेजी गई, किन्तु चितरालियों ने उसको घेर लिया।** अङ्गरेजी सेना की रक्षा के लिए मालाकन्द और गिलगिट से पुनः सेना भेजी गई, जिन्होंने अंग्रेजी

सेना की रक्षा कर चितराल को अपने अधिकार में किया और वहाँ के मेहतर (राजा) से सन्धि की। **अंग्रेजों ने अन्य पठानी जातियों को भी अपने नियन्त्रण में रखने के अभिप्राय से कई प्रदेशों में अपनी एजेंसियाँ स्थापित कर सैनिक छावनियों की स्थापना की।** इस उग्र नीति के कारण समस्त पहाड़ी प्रदेशों में अङ्गरेजों के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई। कुछ लोगों की यह धारणा है कि इस विद्रोह में अमीर अब्दुर्रहमान का भी हाथ था, किन्तु निश्चित रूप से यह धारणा स्वीकार नहीं की जा सकती। इस विद्रोहात्मक भावना को अधिक प्रज्वलित करने में इन प्रदेशों के फकीरों का विशेष हाथ था जिनके आदेशों का पालन करना वहाँ के निवासी अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। **सन् १८९७ ई० में समस्त पठानी प्रदेशों में एक साथ विद्रोह आरम्भ हुआ।** अङ्गरेज बड़ी कठिनता से इन विद्रोहों का दमन करने में सफल हुए, किन्तु वे उनकी स्वतन्त्रता-प्रिय भावना का दमन नहीं कर सके। अंग्रेजों ने इन जातियों के दमन में बड़ी कठोर नीति का व्यवहार किया और उन्होंने उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया।

लार्ड कर्जन की नीति—लार्ड एलगिन द्वितीय के उपरान्त लार्ड कर्जन भारत का वाइसराय बनकर सन् १८९९ ई० में आया। भारत आते ही उसका ध्यान पठानों के प्रदेशों की ओर आकर्षित हुआ, जहाँ अभी दो वर्ष पूर्व ही बड़ा भारी विद्रोह अङ्गरेजों की उग्र नीति के कारण हुआ था। **प्रारम्भ में कर्जन उग्र नीति का समर्थक था और लोगों को यह आशा थी कि वह उनके साथ कठोरता का व्यवहार कर उनका पूर्ण दमन करने की चेष्टा में संलग्न हो जाएगा और वहाँ सैनिक कार्यवाही कर अंग्रेजी सत्ता का आतंक स्थापित करने का प्रयत्न करेगा।** उसने जब वास्तविक परिस्थिति का अध्ययन भली प्रकार किया तो उसको अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। उसने इन प्रदेशों के सम्बन्ध में मध्यम मार्ग का अनुकरण किया। **उसने न तो लार्ड लारेंस की नीति को अपनाया और न अपने पूर्व के वाइसरायों की क्रियात्मक नीति का सहारा लिया।** उसने धीरे-धीरे इन प्रदेशों से अङ्गरेजी सेना को हटाया तथा उनके स्थान पर कबीलों की सेनाएँ संगठित कर उनको अङ्गरेज अफसरों के अधिकार में रखा। उनके ऊपर ही उन प्रदेशों में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। उसने सड़कों तथा रेलवे लाइन बनाने की व्यवस्था की। उसने शस्त्रों के आयात पर भी इस प्रदेश में कठोर प्रतिबन्ध लगाया। उसने कबाईली-क्षेत्रों के बाहर कुछ छावनियों की स्थापना की। **उसने पठानों को आश्वासन दिया कि उनकी स्वतन्त्रता का अन्त नहीं किया जायगा, किन्तु यदि वे भारत पर आक्रमण करेंगे तो उनके साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया जायगा।** इसके उपरान्त लार्ड कर्जन ने १९०१ ई० में एक चीफ कमिश्नर के **अधीन पश्चिम सीमांत प्रदेश** की स्थापना की। उसने चीफ कमीश्नर को पंजाब के अधिकार से मुक्त कर केन्द्रीय सरकार के अधीन किया। इस प्रकार इस समस्त प्रदेश का सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार से हो गया। लार्ड कर्जन के कार्यों के कारण

प्रदेश में शान्ति की स्थापना हो गई और पर्याप्त समय तक वहाँ कोई भीषण विद्रोह नहीं हुआ ।

लार्ड कर्जन की अफगान नीति—अफगानिस्तान के अमीर अब्दुर्रहमान का देहान्त १९०१ ई० में हुआ । उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र हबीबुल्ला राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ । उस पर रूस, जर्मनी तथा आस्ट्रिया अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे । लार्ड कर्जन को यह भय उत्पन्न हो गया कि हीं नया अमीर इनसे अपना सम्बन्ध स्थापित न कर ले । अतः शीघ्र ही उसने उस ओर ध्यान दिया और हबीबुल्ला के साथ एक सन्धि करने का प्रस्ताव रखा, किन्तु अमीर ने सन्धि करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । दोनों में नोमालिन्य इतना अधिक बढ़ गया कि अमीर ने अंग्रेजों से आर्थिक सहायता लेना न्द कर दिया । तीन वर्ष तक दोनों के सम्बन्ध खराब रहे । लार्ड कर्जन अफगानिस्तान के अमीर के प्रति क्रियात्मक कार्यवाही करना चाहता था, किन्तु गृह-सरकार के हस्तक्षेप के कारण उसको शान्त रहना पड़ा । **अन्त में १९०५ ई० में ारत-सरकार और हबीबुल्ला के बीच एक समझौता हुआ जिसमें उसने उन समस्त र्तों को स्वीकार किया जो उसके पिता अब्दुर्रहमान ने स्वीकार की थीं ।** इस प्रकार ुनः अफगानिस्तान अंग्रेजों के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया ।

आंग्ल-रूसी समझौता—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में योरुप में र्मनी की शक्ति का उत्थान होना आरम्भ हो गया था । बीसवीं शताब्दी के ारम्भ में उसने अपनी शक्ति को संगठित किया और वह इङ्गलैण्ड के प्रतिद्वन्दी के प में विश्व-क्षेत्र में उतर आया । फ्रांस और रूस की १८९३ ई० में सन्धि हो गई ी। सन् १९०५ ई० में इङ्गलैण्ड और फ्रांस में सन्धि हुई । फ्रांस के प्रयत्न से ङ्लैण्ड और रूस में १९०७ ई० में सन्धि हुई । ये समस्त सन्धियाँ इसलिए हुईं इस समय जर्मनी अपने साम्राज्य तथा प्रभाव-क्षेत्र के विकसित करने में संलग्न ा। उसने टर्की को अपने प्रभाव-क्षेत्र में करने के उपरान्त मध्य एशिया में क्षेप करना आरम्भ कर दिया था । १९०७ ई० के समझौतों के अनुसार रूस ने ीकार कर लिया कि अफगानिस्तान उसके प्रभाव-क्षेत्र से बाहर है तथा वह गानिस्तान से अपना सम्बन्ध अंग्रेजों द्वारा स्थापित करेगा । यह भी निश्चय हुआ अमीर की स्वीकृति पर अंग्रेज और रूसी व्यापारी अफगानिस्तान से व्यापार कर ते हैं, किन्तु अफगानिस्तान के अमीर हबीबुल्ला ने इसको स्वीकार नहीं किया ।

तृतीय अफगान-युद्ध—अमीर हबीबुल्ला ने अपने पिता अब्दुर्रहमान की नीति अनुकरण करते हुए अंग्रेजों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार किया । वह अपने अफगानिस्तान को पाश्चात्य देशों के समान संगठित करना चाहता था, जिसके रण कट्टर-पन्थी अफगानों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर १९१९ ई० के फरवरी में उसका वध कर दिया । उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र **अमानुल्ला** गानिस्तान के राज्य-सिंहासन पर आसीन हुआ । **वह अपने देश को अंग्रेजों के ाव-क्षेत्र से मुक्त करना चाहता था । अतः उसने अपने पिता तथा दादा की नीति**

का परित्याग कर भारत की सीमा पर १९१९ ई० में आक्रमण किया। शीघ्र ही वजीरिस्तान आदि प्रदेशों के पठानों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया। अंग्रेज इसे सहन नहीं कर सके और उन्होंने अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अंग्रेजों ने वायुयानों से जलालाबाद और काबुल पर आक्रमण किया तथा बोलन और खैबर दर्रे की ओर से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। अमानुल्ला अंग्रेजी आक्रमण से भयभीत हो गया। अगस्त १९१९ ई० में युद्ध बन्द हो गया और सन्धि की शर्तें निश्चित हो गईं। यह सन्धि २२ नवम्बर १९२१ ई० को और भी दृढ़ कर दी गई। अंग्रेजों ने अब अपना हित इसी में समझा कि अफगानिस्तान को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाए, क्योंकि यह रूस की साम्यवादी सरकार के प्रभाव-क्षेत्र में आने लगा था। अतः इस सन्धि के उपरान्त अफगानिस्तान की विदेशी नीति पर से अङ्ग्रेजों के प्रभाव का अन्त हो गया और वह पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न देश बन गया।

अफगानिस्तान में विद्रोह— उक्त पंक्तियों में बतलाया गया है कि अमानुल्ला पर रूसी प्रभाव बढ़ रहा था जिसके कारण उसने अपने देश को पाश्चात्य देशों के समान संगठित कर उसका आधुनिकरण करना आरम्भ किया। अफगान उसकी नीति का पूर्ण समर्थन नहीं कर पाए। उन्होंने उसकी नीति का विरोध किया। **बच्चा सक्का** नामक एक साहसी सैनिक ने विद्रोहियों का नेतृत्व किया। अमानुल्ला उसका सामना नहीं कर सका। वह अफगानिस्तान का परित्याग का १९२९ ई० में योरोप भाग गया। शासन सत्ता पर बच्चा सक्का का अधिकार हो गया। यह अधिकार अल्पकालीन रहा। शीघ्र ही अमानुल्ला के सेनापति नादिर खां ने बच्चा सक्का का वध कर शासन पर अपना अधिकार स्थापित किया और देश का आधुनिकरण धीरे-धीरे करना आरम्भ कर दिया।

भारत और ईरान

फ्रांस के प्रभाव को रोकना— अठारहवीं शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों को फ्रांसीसी आक्रमण का सदा भय बना रहता था। मैसूर के राजा टीपू का उनसे पत्र-व्यवहार था। वह अफगानिस्तान के अमीर जमानशाह को भी भारत-आक्रमण का निमन्त्रण दे रहा था। अंग्रेजों ने इस भय के कारण अपना ध्यान ईरान की ओर आकर्षित किया। वे फारस की खाड़ी और मध्य पूर्व में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। सन् १७९९ ई० में गवर्नर-जरनल लार्ड वैलेजली ने अपना दूत ईरान भेजा, जिसका उद्देश्य था कि वह ईरान के शाह **अमीर जमानशाह** पर दबाव डाले कि वह भारत पर आक्रमण न करे। १८०१ ई० में अंग्रेजों और ईरान के शाह में व्यापारिक सन्धियां हुईं जिनके द्वारा यह निश्चय हुआ कि अंग्रेज और भारतीय व्यापारी ईरान में बिना कर दिए निवास कर सकते हैं। उनको कुछ अन्य व्यापारिक सुविधाएं भी प्राप्त हुईं। इन सबका कारण यह था कि वहाँ फ्रांस का प्रभाव न बढ़ने पाए।

रूस के प्रभाव को रोकना— उन्नीसवीं शताब्दी में रूस ने मध्य एशिया में

पना प्रभाव तथा साम्राज्य का विस्तार करने की योजना का निर्माण किया। स की प्रगति के कारण ईरान को बड़ी हानि उठानी पड़ी, किन्तु अंग्रेजों ने ईरान को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की। अतः ईरान ने अपना ध्यान फ्रांस की ओर आकर्षित किया, किन्तु वह भी उसको कोई सहायता नहीं दे सका; क्योंकि १८०७ ई० में फ्रांस और रूस में सन्धि हो गई थी। अब अंग्रेजों को बड़ा भय हुआ। १८०८ ई० में लार्ड मिंटो ने कैप्टिन मैलकाम को ईरान भेजा, किन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८०९ ई० में ब्रिटिश राजदूत सर हरफोर्ड जोन्स ने ईरान से एक सन्धि की। १८१४ ई० में एक अन्य सन्धि हुई जो **गुलिस्तां की सन्धि** के नाम से विख्यात है। इस सन्धि द्वारा निश्चिय हुआ कि ईरान में उन सेनाओं को प्रवेश नहीं करने दिया जाएगा जो अंग्रेजों के विरुद्ध हों। अंग्रेज और अफगानों में युद्ध होने पर ईरान अफगानिस्तान पर आक्रमण करेगा तथा ईरान और अफगानिस्तान में युद्ध होने पर अंग्रेज तटस्थ रहेंगे। १८२६ ई० तक ईरान और अंग्रेजों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।

रूस-ईरान युद्ध—१८२७ ई० में रूस और ईरान के मध्य युद्ध हुआ। ईरान ने अंग्रेजों की सहायता की प्रार्थना की, किन्तु अंग्रेजों ने उसको किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की। ईरान युद्ध में परास्त हुआ और १८२८ ई० में वह तुर्कोमांची की सन्धि करने पर वाध्य हुआ। इस सन्धि से ईरान पर रूसी प्रभाव स्थापित हो गया।

सन् १८५६ ई० में ईरान ने अफगानिस्तान के हिरात प्रदेश पर आक्रमण किया। अंग्रेजों ने अमीर दोस्तमुहम्मद को सहायता प्रदान की, जिसके कारण हिरात पर अफगानों का अधिकार हो गया।

ईरान-अंग्रेज सन्धि—१८५७ ई० में ईरान के साथ अंग्रेजों की सन्धि हो गई, जिसके कारण कटुता का अन्त हुआ। अब से ईरान तथा फारस की खाड़ी पर अंग्रेजों का एकाधिकार स्थापित हो गया। ईरान पूर्णतया अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गया। फारस की खाड़ी का महत्व भारत-स्थित अंग्रेजी साम्राज्य के लिए बहुत अधिक था। अन्य योरोपीय राष्ट्र भी फारस की खाड़ी पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे और वे अङ्गरेजों के एकधिकार का अन्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। १८९८ ई० में फ्रांस ने ओमन के सुल्तान से बन्दरमिस्ता ले लिया। अङ्गरेजों को यह असह्य था। उन्होंने ओमन के सुल्तान का दुर्ग उड़ा दिया और उसको धमकी दी। १९०० ई० में रूस ने भी फारस की खाड़ी में अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु अङ्गरेजों ने उसको भी सफल नहीं होने दिया। १९०३ ई० में भारत का वाइसराय लार्ड कर्जन स्वयं फारस की खाड़ी गया, जिससे वह ब्रिटिश हितों की रक्षा करने तथा अपने विरोधियों के प्रयत्नों को असफल बनाने में सफल हो सके। अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए उसने कई उपायों का सहारा लिया: सर हेनरी मैकमोहन के नेतृत्व में सिस्तान में दूत-मण्डली भेजी गई, व्यापारिक अड्डों में दूतावास स्थापित किए गए, क्वेटा से पश्चिम में ९३ मील तक

रेलवे लाइन बनाई गई, मुस्की से लेकर सीमा-प्रान्त में रोवन किले तक सड़क बनाई गई तथा डाकखानों, तारघरों की व्यवस्था की गई।

इंगलैण्ड और रूस का समझौता—सन् १९०७ ई० में इंगलैण्ड और रूस में ईरान के प्रश्न को लेकर एक समझौता हुआ। इसके द्वारा यह निश्चय हुआ कि उत्तर में रूस का तथा दक्षिण में इंगलैण्ड का प्रभाव-क्षेत्र होगा और उसका मध्य भाग तटस्थ-क्षेत्र माना गया।

१९१९ ई० का समझौता—प्रथम-युद्ध के उपरान्त १९१९ ई० में अङ्गरेजों और ईरान के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अङ्गरेजों ने ईरान की स्वतन्त्रता तथा अखण्डता को स्वीकार किया।

१९२१ ई० में फारस के शाह ने १९१९ ई० के समझौते का अन्त कर अपने राज्य का आधुनिकीकरण करना आरम्भ कर दिया। उस समय से लेकर अङ्गरेजों का फारस के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा।

उत्तरी-पूर्वी सीमा

अब तक हमने अङ्गरेजों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त नीति का अध्ययन किया, अब हम भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमान्त नीति का अध्ययन करेंगे। इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्न का वर्णन किया जाएगा—

(१) अङ्गरेज और तिब्बत,
(२) अङ्गरेज और भूटान,
(३) अङ्गरेज और नैपाल, और
(४) अङ्गरेज और ब्रह्मा।

(१) अंग्रेज और तिब्बत—अङ्गरेजी शासन की स्थापना करने के उपरान्त अङ्गरेजों ने तिब्बत प्रदेश की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। सन् १७७४-७५ में वारेन हेस्टिग्ज ने व्यापारिक सुविधाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से एक शिष्ट-मण्डल तिब्बत भेजा, किन्तु इस शिष्ट-मण्डल को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके उपरान्त पर्याप्त समय तक तिब्बत का अङ्गरेजों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रहा। १८८७ ई० में तिब्बत ने सिक्कम राज्य पर आक्रमण किया। यह राज्य इस समय तक अङ्गरेजों के संरक्षण में आ गया था। तिब्बत को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८९० ई० में अङ्गरेजों और चीनियों में एक सन्धि हुई, जिसके अनुसार व्यापारिक सुविधाओं के लिए एक संयुक्त कमीशन की नियुक्ति की गई, जिसके द्वारा १८९३ ई० में तिब्बत-सिक्कम सीमा पर यांटुग नामक स्थान पर एक व्यापारिक केन्द्र खोला गया, किन्तु इसका कोई फल नहीं निकला।

लार्ड कर्जन और तिब्बत—लार्ड कर्जन के भारत का वाइसराय होने के उपरान्त भारत सरकार ने तिब्बत की ओर विशेष ध्यान दिया। इससे पूर्व भारत सरकार और तिब्बत का कोई विशेष सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था। इसी समय तिब्बत में एक ऐसी घटना हुई जिसने भारत-सरकार का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। दलाई लामा पर रूस का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। १९०१ ई०

यह समाचार फैला कि तिब्बत के सम्बन्ध में रूस और चीन के मध्य एक सन्धि हुई है, जिसके द्वारा तिब्बत पर रूस का अधिकार स्थापित हो गया। अङ्गरेज भला इस बात को सहन कर सकते थे कि रूस का प्रभाव उसकी उत्तरी-पूर्वी सीमा पर विकसित हो। अतः लार्ड कर्जन ने कर्नल यंगहसबैंड की अध्यक्षता में कुछ सैनिकों के साथ एक दूत-मण्डल तिब्बत भेजा। यद्यपि तिब्बतवासियों ने उस दूत-मण्डल का विरोध किया, किन्तु उसने उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। १९०४ ई० में यह दूत-मण्डल तिब्बत की राजधानी लासा पहुँचा। इस दूत-मण्डल द्वारा एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार निम्न बातें तय हुईं—

(क) तिब्बतियों ने ग्यानसे, शारकोट और यांतुग में अङ्गरेजों को व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का अधिकार दिया।

(ख) अङ्गरेजों को सिक्कम और भूटान का भू-भाग प्राप्त हुआ।

(ग) ग्यानसे में एक ब्रिटिश ट्रेड-एजेण्ट रहेगा, जिसको लासा जाने का अधिकार होगा तथा,

(घ) तिब्बत पर चीन का अधिकार होगा।

तिब्बत पर चीनी आक्रमण—चीन ने तिब्बत में अपनी सत्ता को दृढ़ करने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण किया। तिब्बत चीन का सामना नहीं कर सका। दलाई लामा को बाध्य होकर दार्जिलिंग में अङ्गरेजों की शरण में आना पड़ा। भारत सरकार ने चीन की इस नीति का विरोध किया। १९१२ ई० में तिब्बत पर से चीनी प्रभुत्व का अन्त हो गया और भारत सरकार का प्रभुत्व उस पर स्थापित हो गया। दिन-प्रतिदिन दोनों देशों में मैत्री सम्बन्ध बढ़ते रहे।

(२) **अंग्रेज और भूटान**—भूटान एक पहाड़ी प्रदेश है जो हिमालय पर्वत की तलहटी में स्थित है। यह सदा स्वतन्त्र रहा है, किन्तु कभी-कभी तिब्बत तथा नेपाल की ओर से इस पर अधिकार करने के प्रयत्न किए गए। भूटान से अङ्गरेजों का सम्पर्क १७९२ ई० से आरम्भ होता है। वहाँ दो शिष्ट-मण्डल विभिन्न समयों में भेजे गए, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। १७९२ ई० में नैपाल ने भूटान पर आक्रमण किया। भूटान के लोगों ने अङ्गरेजी सीमा पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। १८३८ ई० में अङ्गरेजों की ओर से एक आयोग भूटान भेजा गया, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इसके उपरान्त १८६४ ई० में एक शिष्ट-मण्डल भेजा गया, किन्तु उन्होंने बलपूर्वक उस शिष्ट-मण्डल को एक सन्धि करने पर बाध्य किया, जिसके अनुसार आसाम से भूटान जाने वाले रास्तों पर भूटानियों का अधिकार हो गया। शीघ्र ही भारत सरकार ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध में अङ्गरेज विजयी हुए और १८६६ ई० में **सिवपुला की सन्धि** हुई जिसके द्वारा निश्चय हुआ कि—

(१) भूटानियों ने भारत से तिब्बत आने के समस्त मार्ग अङ्गरेज़ों को दे दिए।

(२) १८० मील लम्बा तथा २० मील चौड़ा भू-भाग अंग्रेजों को प्राप्त हुआ।

(३) भारत-सरकार भूटान को ५०,००० रुपये वार्षिक दिया करेगी।

इस सन्धि के अनुसार शांन्ति की स्थापना हुई । १९१० ई० में इस सन्धि में कुछ आवश्यक परिवर्तन किए गए । इन परिवर्तनों से भूटान की वाह्य नीति पर अङ्गरेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया तथा भूटान-राज्य की धन-राशि में वृद्धि कर दी गई । यह सन्धि स्थायी रही ।

अंग्रेज और नैपाल—गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि १८१६ ई० मे संगोली की सन्धि द्वारा भारत सरकार और नैपाल के राज्य के मध्य एक समझौता हो गया था और उसके उपरान्त भारत-सरकार और नैपाल के बीच एक मैत्रीपूर्ण व्यवहार रहा । १८५७ ई० की क्रान्ति में अङ्गरेजों को नैपाल राज्य से बड़ी सहायता प्राप्त हुई । क्रान्ति के दमन के लिए नैपाल से एक सेना भी आई थी, जिसने क्रान्ति के दमन-कार्य में अङ्गरेजों की बड़ी सहायता की । अङ्गरेज इनकी सहायता से प्रसन्न होकर नैपाल-राज्य को दस लाख रुपये की वार्षिक सहायता प्रदान करने लगे । १९२३ ई० में भारत-सरकार और नैपाल-राज्य के बीच एक सन्धि हुई, जिसने मित्रता को और भी दृढ़ कर दिया । द्वितीय विश्व-युद्ध के उपरान्त अङ्गरेज नैपाल-राज्य को २० लाख रुपये वार्षिक देने लगे ।

(४) **अंग्रेज और बर्मा**—गत पृष्ठों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि द्वितीय बर्मा युद्ध के उपरान्त अङ्गरेजों के अधिकार में दक्षिण बर्मा का प्रदेश आ गया था । अङ्गरेजों की साम्राज्य लिप्सा का अन्त अभी नहीं हो पाया था । वे तो समस्त बर्मा पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे और उसके लिए अवसर की खोज में थे ।

तृतीय बर्मा-युद्ध—१८५३ ई० में चिंडन अपने भाई पैगन को गद्दी से उतार कर बर्मा का राजा बना । वह् एक योग्य शासक था । उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह दक्षिण बर्मा पर से अङ्गरेजों के प्रभुत्व का अन्त करे । उसके समय में ही अंग्रेजों से उसके सम्बन्ध खराब होने लगे । उसके बाद थीबा बर्मा का राजा हुआ । वह अयोग्य शासक था और वह बर्मा में शान्ति की स्थापना नहीं कर सका । इसका शासन शिथिल था, किन्तु वह अङ्गरेजों को घृणा की दृष्टि से देखता था । अङ्गरेजों को उत्तरी बर्मा में कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त थीं, जिनका वह अन्त करना चाहता था । उसने अन्य योरोपीय शक्तियों के साथ सन्धि-वार्ता चलाई, जिसको अङ्गरेज सहन न कर सके । उसने फ्रांस के साथ १८६३ ई० में एक सन्धि की, जिसमे अङ्गरेज चौकन्ने हो गए । धीरे-धीरे दोनों के सम्बन्ध कटु होने लगे । भारत के वाइसराय ने उसके सामने कुछ मांगे रखीं, जिनको मानने से उसने साफ इंकार कर दिया । अङ्गरेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी । अङ्गरेजों ने शीघ्र ही मांडले पर अधिकार कर लिया । थीबा ने आत्म समर्पण किया । १८८६ ई० की पहली जनवरी को उत्तरी बर्मा को अङ्गरेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया । इस प्रकार समस्त बर्मा पर अङ्गरेजों का आधिपत्य स्थापित हुआ ।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) उन्नीसवीं शताब्दी में भारत और अफगानिस्तान के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए। अफगान मामलों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप करना कहाँ तक उचित था ?

(२) द्वितीय अफगान-युद्ध के कारण और परिणाम बताइए।

(३) अंग्रेजी सरकार की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त-नीति पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो।

मध्य भारत—

(१) लार्ड लारेंस द्वारा अपनायी हुई मास्टरली इनएक्टिविटी की नीति का वर्णन कीजिए। इसके परिणाम बताइए।

(२) लार्ड कर्जन की सीमा-विषयक नीति की विवेचना कीजिए और सिद्ध कीजिए कि विशेषकों-विरोधी मतों के मध्य में वह एक समझपूर्ण समझौता था।

(३) उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहने वाली अफगान जातियों के प्रति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार की नीति का वर्णन करो।

राजस्थान—

(१) क्या लार्ड लिटन की अफगान-नीति का समर्थन किया जा सकता है ? संक्षेप में ब्रिटिश सरकार और अफगानिस्तान के सम्बन्धों का वर्णन करो, जिनके कारण द्वितीय अफगान-युद्ध हुआ।

(२) लार्ड कर्जन को किन वाह्य समस्याओं का सामना करना पड़ा ? उसके निराकरण करने में उसकी सहायता का वर्णन करो।

(३) बर्मा किस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित किया गया ?

(४) उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त-नीति की व्याख्या कीजिए।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) १९वीं शताब्दी में भारतीय ब्रिटिश-सरकार की पश्चिमोत्तर सीमान्त-नीति का सिंहावलोकन कीजिए।

(२) लार्ड कर्जन की उत्तर-पश्चिमी सीमा-विषयक नीति की विवेचना कीजिए तथा सिद्ध कीजिए कि विशेषज्ञों के विरुद्ध मतों के मध्य वह एक समझपूर्ण समझौता था।

(३) १८५२ के बर्मा-युद्ध पर एक टिप्पणी लिखो।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) १९वीं शताब्दी में ब्रिटिश भारत की पश्चिमोत्तर सीमा-सम्बन्धी नीति का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

(२) लार्ड लारेंस तथा लार्ड मेयो की अफगानिस्तान के प्रति महान् अकर्मण्यता की नीति क्या थी ?

६

संवैधानिक विकास [१८५८–१९४७ तक]

सन् १८५८ ई० के अधिनियम तथा महारानी विक्टोरिया की घोषणा द्वारा क्रान्ति के उपरान्त नई व्यवस्था को जन्म दिया गया। इसका उल्लेख गत अध्यायों में किया जा चुका है। **१८५३ ई० के चार्टर एक्ट के द्वारा भारत में संसदीय व्यवस्था की स्थापना कर दी गई थी।** विधि-निर्माण करने के लिए गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका में ६ सदस्य और सम्मिलित कर दिए गए थे। इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसकी सदस्यता किसी भारतीय को प्राप्त नहीं थी। इस दोष का अनुभव बहुत-से व्यक्तियों को क्रान्ति के अवसर पर हुआ। इसी कारण कुछ क्षेत्रों में यह धारणा बलवती हो गई थी कि सिपाही विद्रोह का प्रमुख कारण शासक तथा शासितों में घनिष्ट सम्पर्क का अभाव था और देश की व्यवस्थापिका सभा में भारतीयों की अनुपस्थिति थी।'[1] कुछ भारतीयों और अङ्गरेज नीतिज्ञों की भी यही धारणा थी। इसके अभाव में भारतीयों को अपना दृष्टिकोण भारत-सरकार के सामने व्यक्त करने का अवसर प्राप्त नहीं होता था। **सर सैयद अहमद खाँ सदृश अनेक शिक्षित भारतीयों की यह धारणा थी कि यदि भारतीयों को विधान-मण्डल में स्थान प्राप्त होता तो भारतीय १८५७ ई० की भूल कदापि न करते।** इसके अतिरिक्त १८५३ ई० के अधिनियम द्वारा जिस विधान-मण्डल का निर्माण किया गया उसने कार्यपालिका के कार्यों की आलोचना करना आरम्भ कर दिया और अपने आपको भारत-सचिव या कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स से मुक्त समझना आरम्भ किया, जिसका अर्थ यह हुआ कि वह अपने आपको स्वतन्त्र विधान-मण्डल समझने लगा। बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड विधान-मण्डल के स्वतन्त्र आचरण को सहन नहीं कर सका, किन्तु भारत का गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी विधान-मण्डल के कार्य से तथा उसके रुख से परेशान नहीं हुआ। लार्ड केनिंग ने सर चार्ल्स वुड का समर्थन किया। अतः यह निश्चय किया गया कि विधान-मण्डल के अधिकार केवल अधिनियम बनाने का ही कार्य करें। इसी समय यह भावना जोर पकड़ रही थी कि विधानाधिकार का केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण किया जाए। मद्रास और बम्बई के गवर्नरों को अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके इस अधिकार के छिन जाने से वे बड़े खिन्न थे और साथ ही साथ उनको कुछ

---

[1] "The terrible events of the Mutiny brought home to men's minds the dangers arising from the entire exclusion of Indians from associations with the legislature of the country."

[2] "Sir Charles Wood said, ''I do not look upon it as some of the young Indians do as the nucleus and beginning of a constitutional parliament in India.'

असुविधा उत्पन्न हो गई थी। अतः क्रान्ति के उपरान्त शीघ्र ही इन दोनों दोषों को दूर करने की ओर ध्यान दिया गया।

सन् १८६१ का इण्डियन कौंसिल्स अधिनियम

सन् १८६१ ई० में कौंसिल अधिनियम द्वारा प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं का आयोजन किया गया। शीघ्र ही मद्रास और बम्बई में व्यवस्थापिका सभाएँ निर्मित की गईं। सन् १८६२ ई० में बंगाल में, १८८६ में उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रदेश तथा १८९७ ई० में पंजाब में इनका निर्माण हुआ। इसके सदस्यों की संख्या ४ से ८ तक निश्चित की गई, जिनमें से आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना अनिवार्य था। इनकी नियुक्ति प्रान्त का गवर्नर करता था। इनको प्रान्त-सम्बन्धी विषयों पर विचार करने तथा अधिनियम बनाने का अधिकार था। **ये उन विषयों पर अधिनियम नहीं बना सकते थे जिनके लिए सम्पूर्ण भारत के लिए एक नीति का होना आवश्यक था।** ये सभाएँ गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त किए बिना कोई विधेयक पास नहीं कर सकती थीं। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा बनाए हुए अधिनियम को अस्वीकृत कर दे। अधिनियम में ऐसा लिखित नहीं था कि भारतीयों को सदस्य बनाया जाये, किन्तु कार्य-रूप में कुछ भारतीयों को इनका सदस्य अवश्य बनाया गया। गवर्नर-जनरल की परिषद् में एक वित्त सदस्य को बढ़ा दिया गया। गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह विधि बनाने के प्रयोजन के लिए अपनी परिषद् में कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जिनमें से आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर-जनरल दो वर्ष के लिए कर सकता था। इनके अधिकार बहुत सीमित थे। उनका प्रश्न पूछने तथा सरकार की नीति निर्धारित करने से कोई सम्बन्ध नहीं था। प्रत्येक विषय को सभा में प्रस्तावित करने के पूर्व गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य था। इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को आपत्-काल में अध्यादेश जारी करने की एक नई शक्ति प्राप्त हुई। ये अध्यादेश ६ महिने तक रह सकते थे, यदि ब्रिटिश सम्राट उनको रद्द न कर दे अथवा व्यवस्थापिका सभा उसके स्थान पर किसी अन्य अधिनियम का निर्माण नहीं कर दे। उसकी अवधि काल में प्रत्येक व्यक्ति को इसका पालन साधारण विधि के अनुसार करना होगा।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि **वास्तव में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएँ गवर्नर-जनरल और गवर्नर की कार्यकारिणी का ही रूपान्तर थीं।** अन्तर केवल इतना ही था कि कुछ थोड़े-से भारतीय सदस्य इनके लिए नियुक्त कर लिए जाते थे, जिनको विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस अधिनियम से भारत-सरकार में विभाग-पद्धति का आरम्भ हुआ। लार्ड **कैनिंग** ने अपने अधिकारों को विभागों में विभाजित कर दिया, जिसके द्वारा प्रशासन की प्रत्येक शाखा का एक सरकारी अध्यक्ष तथा सरकार में उसका प्रवक्ता होता था। वह अपने विभाग में प्रशासन तथा संरक्षण के लिए उत्तरदायी था।

१८९२ का इण्डिया कौंसिल्स अधिनियम

१८६१ के कौंसिल अधिनियम द्वारा भारतीयों को तनिक भी सन्तोष नहीं हुआ। १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना भारत में हुई। अपने प्रथम अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने निम्न प्रस्ताव पास किया—

"राष्ट्रीय महासभा की राय है कि केन्द्रीय और स्थानीय व्यवस्थापिका सभाओं में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या को बढ़ाकर उनका सुधार और विस्तार और उत्तरी-पश्चिम प्रान्त और अवध तथा पंजाब में भी इसी प्रकार की व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना करना अति आवश्यक है। इस सभा की राय में सम्पूर्ण बजट भी इस व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया जाना चाहिए और इसके सदस्यों को प्रशासन के समस्त विभागों के विषय में व्यवस्थापिका सभा से प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए।"

सन् १८८९ ई० में ब्रिटिश संसद का सदस्य **सर चार्ल्स ब्रेडलो** भारत आया। वह राष्ट्रीय महासभा के पांचवे सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। उसने ब्रिटिश संसद में एक विधेयक उपस्थित किया। बाद में ब्रिटिश सरकार ने बाध्य होकर एक अन्य अधिनियम पास किया जो १८९२ ई० का इण्डिया कौंसिल अधिनियम के नाम से विख्यात हुआ, जिसमें सर चार्ल्स ब्रेडलो की मांगे आंशिक रूप से स्वीकार की गईं।

इस अधिनियम द्वारा भारतीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या १६ कर दी गई, जिसमें से दस सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। प्रान्तों में भी गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। इनकी नियुक्ति केन्द्र में गवर्नर-जनरल और प्रान्तों में गवर्नर विभिन्न संस्थाओं के आधार पर करने लगे। गवर्नर जनरल पाँच सदस्यों की नियुक्ति कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स की सिफारिश पर, और अन्य पाँच की नियुक्ति मद्रास, बम्बई, बंगाल तथा सीमा-प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के गैर सरकारी संस्थाओं की सिफारिश पर करेगा। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सदस्यों की नियुक्ति स्थानीय संस्थाओं द्वारा की जायेगी। सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि हुई। **इनको वार्षिक बजट पर बहस करने का अधिकार प्राप्त हुआ, परन्तु वह उस पर न मत दे सकती थी और न उससे सम्बन्धित किसी विषय पर मत मांग कर सकती थी।**

इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति का आरम्भ हुआ। सदस्यों को सरकार की नीति पर स्वतन्त्र रूप से वाद-विवाद करने का अधिकार प्राप्त हुआ, तथा उनको सार्वजनिक हित के विषयों में प्रश्न पूछने का अधिकार मिला। अतः यह स्वीकार करना होगा कि यह अधिनियम पिछले अधिनियमों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील था जिसके कारण उसका संवैधानिक महत्व बहुत अधिक है।

सन् १९०९ का इण्डिया कौंसिल अधिनियम

१८९२ ई० के अधिनियम से भारतीयों को संतोष नहीं हुआ। भारत-सरकार पर भारत-सचिव का पूर्ण नियन्त्रण था। लार्ड कर्जन जैसा गवर्नर-जनरल भी उनके सामने झुक गया। लार्ड कर्जन की नीति के कारण देश में बड़ा असंतोष फैल गया। भारत में बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में एक उग्रदल का निर्माण कांग्रेस में हुआ,

जिसने सरकार की नीति का घोर विरोध किया। गोपाल कृष्ण गोखले ने सरकार से अपील की कि जनता को संतुष्ट करने का प्रयत्न करे। वे स्वयं इंगलैण्ड गए और उन्होंने भारत-सचिव मार्ले से भेंट कर उनको यह सुझाव दिया कि भारत में नए राजनीतिक सुधारों का समय आ गया है। सन् १९०६ ई० में मार्ले ने भारत के वाइसराय लार्ड मिण्टो को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि भारत को नए राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता है। भारत-मन्त्री और भारत सरकार में प्रस्तावित सुधारों के स्वरूप एवं उनके क्षेत्र के विषय में तीन वर्ष तक पत्र-व्यवहार चलता रहा और अन्त में सन् १९०९ में ब्रिटिश संसद ने १९०९ का इण्डिया कौंसिल अधिनियम पारित किया। ये सुधार मिण्टो-मार्ले सुधारों के नाम से भी विख्यात हैं।

भारत-सरकार अधिनियम की मुख्य बातें—सन १९०९ ई० के भारत-सरकार अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

(१) **विधान-सभाओं में तीन प्रकार के सदस्य**—इस अधिनियम द्वारा गवर्नर-जनरल की व्यवस्थापिका सभा तथा प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं में तीन प्रकार के सदस्यों की व्यवस्था की गई। इनमें कुछ तो सरकारी, कुछ गैर-सरकारी और कुछ निर्वाचित सदस्य होंगे।

(२) **गवर्नर-जनरल की व्यवस्थापिका सभा का संगठन**—गवर्नर-जनरल की व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या ६९ होगी, जिनमें से २७ सदस्य निर्वाचित थे, २८ सदस्य सरकारी थे जिनको गवर्नर-जनरल मनोनीत करता था, ९ अपने अधिकार से सदस्य थे तथा शेष ५ सदस्यों को गवर्नर-जनरल मनोनीत करता था, जिनका गैर-सरकारी होना आवश्यक था। २७ सदस्यों में से ९ सदस्यों का निर्वाचन प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के गैर-सरकारी सदस्य करते थे तथा शेष १८ सदस्यों का का निर्वाचन जमींदार-संघ, व्यापारिक-संघ आदि करते थे। निर्वाचन में जनता को भाग लेने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त इसमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या से मनोनीत सदस्यों की संख्या की अपेक्षाकृत अधिक थी।

(३) **प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का संगठन**—इस अधिनियम ने प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं का भी विस्तार किया। बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रान्त और मद्रास की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ५० और अन्य प्रान्तों में उनकी अधिकतम संख्या ३० निश्चित की गई। गवर्नर की कार्यकारिणी समिति के सदस्य प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य अपने पद के कारण होंगे। इन सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सदस्यों में से कुछ निर्वाचित, कुछ गवर्नर द्वारा मनोनीत सरकारी सदस्य तथा कुछ मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य होंगे। इनमें सरकारी सदस्यों की अपेक्षा गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक होगी। निर्वाचित सदस्यों का निर्वाचन नगर-पालिकाओं, जिला-मण्डलों, विश्वविद्यालय, व्यापार संघ, जमींदार संघ आदि करेंगे। प्रान्तों में भी प्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रणाली को नहीं अपनाया गया था।

(४) **साम्प्रदायिक और वर्ग भेदों के आधार पर निर्वाचन**—इस अधिनियम ने साम्प्रदायिक और वर्ग भेदों के आधार पर निर्वाचन की व्यवस्था की। मुसलमानों

को विशेष अधिकार प्रदान किए गए। वे सामान्य निर्वाचन में भी मत दे सकते थे तथा उसके साथ-साथ उनको पृथक् रूप से भी मत देने के अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार मुसलमानों को दोहरा मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

मुसलमानों के लिए व्यवस्थापिका सभाओं में कुछ स्थान निश्चित करने की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में ५, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा की प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में ४, बगाल मे ५ और मद्रास व आसाम में २ स्थान सुरक्षित रखे गए। इस अधिनियम के अनुसार तीन प्रकार के निर्वाचन समूहों की व्यवस्था इस प्रकार की गई—

(१) **साधारण निर्वाचक-गण**—इसके अन्तर्गत प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के वे गैर-सरकारी सदस्य जो भारतीय व्यवस्थापिका सभा के लिए सदस्यों का निर्वाचन करते थे, सम्मिलित थे या नगरपालिकाओं व जिला मण्डलों के वे गैर-सरकारी सदस्य सम्मिलित थे जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के लिए सदस्यों निर्वाचन करते थे।

(२) **मुसलमानों के पृथक् निर्वाचक-गण**—मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचक-गण था।

(३) **विशेष-वर्ग-निर्वाचक-गण**—इनमें जमींदार, विश्वविद्यालय, व्यापार संघ सम्मिलित थे।

(४) **व्यवस्थापिका सभाओं के कार्यों तथा अधिकारों में वृद्धि**—इसके द्वारा व्यवस्थापिका सभा के कार्यों तथा अधिकारों में विस्तार किया गया जो इस प्रकार थे—

(i) **बजट**—सदस्यों को बजट पर वाद-विवाद करने का अधिकार प्राप्त हुआ, किन्तु कुछ सीमाओं तक। उनको उसकी मदों पर वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं था, किन्तु वे उस पर वाद-विवाद कर सकते थे। सैनिक तथा अनेक प्रकार के व्यय पर उनको वाद-विवाद का अधिकार भी प्राप्त नहीं था।

(ii) **सार्वजनिक विषयों से सम्बन्धित प्रस्तावों के प्रस्तुत करने का अधिकार**—इन सभाओं के सदस्यों को सार्वजनिक विषयों से सम्वन्धित प्रस्तावों के प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हुआ। ये प्रस्ताव सुझावों के समान थे, क्योंकि यदि कोई प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा द्वारा स्वीकृत भी हो जाए तब भी उसको उसी समय लागू किया जाएगा जब कार्यकारिणी उससे सहमत हो। विधान-सभा का अध्यक्ष किसी भी प्रस्ताव को प्रस्तावित किए जाने से रोक सकता था।

(iii) **प्रश्न और पूरक प्रश्न**—सदस्यों को प्रश्न तथा पूरक प्रश्न के पूछने का अधिकार प्रदान किया गया, किन्तु यह अधिकार भी सीमित था। सदस्य कार्यकारिणी को किसी प्रश्न के उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते थे।

(iv) **भारत-मन्त्री की कौंसिल और गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति में भारतीयों की नियुक्ति**—इसके द्वारा यह भी व्यवस्था की गई कि भारत-मन्त्री की कौंसिल और गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति में भारतीयों की नियुक्ति की

गए। नौकरशाही ने इस उपबन्ध का घोर विरोध किया, परन्तु लार्ड मिण्टो ने नका ध्यान नहीं किया। उनका ऐसा करने के दो कारण थे—

(क) उनको यह सम्भावना थी कि यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो भारत आन्दोलन तीव्र गति से आरम्भ हो जाएगा।

(ख) इसका दूसरा कारण यह था कि उसको ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने सर्व-म्मति से पास किया था।

प्रथम महायुद्ध (१९१४—१९१८)

१९०९ के एक्ट से भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ, यहां तक कि उदार दल सदस्य भी अङ्गरेजों से असन्तुष्ट हो गए। राष्ट्रीय महासभा ने इसका विरोध क्या। धीरे-धीरे भावना अधिक प्रबल हो गई। इसी समय बालगंगाधर तिलक ने षोषित किया कि 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।' १९०९ के अधिनियम को कार्यान्वित हुए अधिक समय भी नहीं हो पाया था कि योरोप में प्रथम महायुद्ध (१९१४—१९१८) की चिंगारी भभक उठी। सबका ध्यान उस ओर आकृष्ट हो या। भारतीय जनता ने भी अंग्रेजों की हृदय से सहायता की, किन्तु राष्ट्रीय न्दोलन चलता रहा। भारतीयों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से १९१७ ई० की ० अगस्त को भारत मन्त्री मांटेग्यू ने ब्रिटिश लोक-सभा में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जो इस प्रकार है—

"सम्राट की सरकार की नीति जिससे भारत-सरकार पूर्णरूप से सहमत है ह है कि भारतीयों को प्रशासन के प्रत्येक विभाग में अत्यधिक स्थान प्रदान किए जाएं, जिससे भारतवासियों का सम्पर्क उत्तरोतर बढ़ता जाए तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अंग के रूप में भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए स्वशासित संस्थाओं की स्थापना की जाए। इस नीति का उत्थान तथा प्रगति धीरे-धीरे हो जाएगी और भारत तथा ब्रिटिश सरकार ही यह निर्णय करेगी कि अब और कितना ग्रसर होना चाहिए।[1]

अपनी घोषणा को कार्यरूप देने के उद्देश्य से भारतीय नेताओं और भारत-रकार के कर्मचारियों की सलाह से एक सुधार योजना का निर्माण करने के अभि-प्राय से श्री मांटेग्यू नवम्बर सन् १९१७ ई० में भारत आए और अगामी वर्ष तक वे भारत में रहे। अपने भारत में उदार तथा उग्र और मुस्लिम लोग के नेताओं से भेंट की। उन्होंने एक योजना का निर्माण किया, जिसके आधार पर सन् १९१९ ई० का भारत सरकार अधिनियम का निर्माण हुआ।

---

2. "The policy of His Majesty's Government, with which the Government of India are in full accord, is that of increasing association of Indians in every branch of the administration and the gradual development of self-Governing institution with a view to the progressive realisation of responsible Government in India as an integral part of the British Empire. The progress in their policy can only be achieved by successive stages. The British Government of India must be the judge of the time and measure of each advance.

—Lord Monst gue.

१९१९ का भारत-सरकार अधिनियम

इस अधिनियम के द्वारा भारतीय शासन-व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इनका प्रभाव न केवल भारत स्थित सरकार पर पड़ा, वरन् इंगलैण्ड स्थित शासन संस्थाओं को भी उसने प्रभावित किया। इस अधिनियम ने केन्द्रीय धारासभा के गठन, कार्यों और शक्तियों में अनेक सारगर्भित परिवर्तन किए, इन्हें विस्तृत किया, इनमें जनता के प्रतिनिधियों की संख्या में विस्तार किया तथा इसको सरकार को प्रभावित करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए, किन्तु इसके और कार्यपालिका के सम्बन्धों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया गया। इसने कार्यपालिका की बनावट और उसके स्वरूप में भी आवश्यक परिवर्तन किए। इस एक्ट का अध्ययन निम्न-शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा—

एक्ट के अध्ययन के शीर्षक

- (१) गृह सरकार।
- (२) केन्द्रीय सरकार।
- (३) प्रान्तीय सरकार।

(१) गृह सरकार—इस अधिनियम के अनुसार भारत-मन्त्री की इण्डिया-कौंसिल की संख्या आठ से बारह निश्चित हुई, जिनमें से आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में निवास कर चुके हों। बारह सदस्यों में से तीन का भारतीय होना आवश्यक था। इनकी अवधि पाँच वर्ष निश्चित की गई। भारतमन्त्री का वेतन इंगलैण्ड के राजकोष से दिया जाएगा। इस अधिनियम ने एक भारतीय उच्च आयुक्त की व्यवस्था की, जिसके अधिकार में भारतमन्त्री के कुछ कार्य सौंपे गए। भारतमन्त्री के शासन-सम्बन्धी अधिकारों को कम कर दिया गया, जिससे उसका भारतीय शासन में हस्तक्षेप कम हो गया। जिन विषयों पर गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करेगा उनके ऊपर से भारतमन्त्री का नियन्त्रण हटा दिया गया। उसका केन्द्रीय सरकार पर से भी कुछ नियन्त्रण कम कर दिया गया। इतना होने पर भी भारत-सरकार पर उसका तथा ब्रिटिश सरकार का पर्याप्त नियन्त्रण बना रहा।

(२) केन्द्रीय सरकार—इस अधिनियम द्वारा भारत सरकार में विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। केन्द्रीय शासन में **द्विभवनीय व्यवस्थापिका सभा** की स्थापना हुई, जिनमें से प्रथम भवन का नाम **भारतीय विधान सभा** और द्वितीय भवन का नाम **राज्य परिषद्** रखा गया। **भारतीय विधान सभा में सदस्यों** की संख्या १४४ निश्चित की गई, जिनमें से १०३ सदस्य निर्वाचित तथा शेष ३३ सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किए जाते थे। राज्य-परिषद् के सदस्यों की संख्या ६० थी, जिनमें से २७ गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किए जाते थे और शेष ३३ सदस्यों का निर्वाचन होता था। इन सभाओं में अधिनियम-सम्बन्धी अधिकारों में वृद्धि हुई, किन्तु अब भी केन्द्रीय कार्यकारिणी उसके प्रति उत्तरदायी नहीं थी। गवर्नर-जनरल के अधिकार पूर्ववत् रहे। वह सम्पूर्ण शासन का केन्द्र था। वह अपनी कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका सभा की इच्छाओं की अवहेलना करने का अधिकार रखता था। वह दोनों सदनों द्वारा पास किए हुए विधेयकों को अस्वीकार कर सकता था। उसको अध्यादेश

ताने का अधिकार भी प्राप्त था। उसकी कार्यकारिणी में तीन भारतीय सदस्यों का होना आवश्यक था। कुल सदस्यों की संख्या आठ निश्चित की गई थी। उसकी लाह मानना अथवा न मानना उसकी अपनी निजी इच्छा पर निर्भर था। वे उसको किसी भी प्रकार अपनी सलाह मनवाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते थे। वास्तव में वे उसके सेवक-मात्र थे। ये इस प्रकार थे—

(i) गवर्नर-जनरल,
(ii) कमाण्डर-इन-चीफ,
(iii) अर्थ या वित्त सदस्य,
(iv) व्यापारिक सदस्य,
(v) विधि सदस्य,
(vi) श्रम तथा उद्योग सदस्य,
(vii) यातायात सदस्य, और
(viii) शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि आदि विषयों का सदस्य।

(३) **प्रान्तीय सरकार**—इस अधिनियम द्वारा प्रान्तीय सरकार में भी बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों में वृद्धि की गई। **निश्चित सदस्यों में से ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचन द्वारा तथा शेष ३० प्रतिशत सदस्य, गवर्नर द्वारा मनोनीत किए जाते थे।** इस सभा की अवधि तीन वर्ष निश्चित हुई। इनको अपने सथापति के निर्वाचन करने का अधिकार प्राप्त था। प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की गई। समस्त प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया, जिनमें से एक सुरक्षित और दूसरे हस्तांतरित विषय कहलाए। सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी कार्यकारिणी द्वारा और हस्तान्तरित विषयों का शासन मन्त्रि-परिषद् की सलाह से करेगा। मन्त्रि-परिषद् अपने समस्त कार्यों के लिए व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। मन्त्री साधारणतया: व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होगा, किन्तु गवर्नर को अधिकार था कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्री पद पर आसीन कर सकता है जो उसका सदस्य नहीं हो, किन्तु उसको छः मास के अन्तर्गत व्यवस्थापिका सभा का सदस्य होना आवश्यक था, अन्यथा उसको अपना पद रिक्त करना होगा। व्यवस्थापिका सभा के अधिकारों मे वृद्धि की गई, किन्तु गवर्नर के विशेषाधिकार के सामने उसके समस्त अधिकारों का तनिक भी महत्व नहीं था। वह इस अधिकार द्वारा उसके पारित विधेयकों को अस्वीकार कर सकता था। उसको कार्यकारिणी की सलाह मानने अथवा न मानने का भी अधिकार था। वह अध्यादेश बना सकता था।

कांग्रेस की प्रक्रिया

उग्र विचार धारा—उग्रवादियों का प्रभाव इस समय देश में विशेष रूप से विद्यमान था और उदारवादियों का प्रभुत्व तथा प्रभाव दिन-प्रतिदिन कम हो रहा था। १९१७ ई० के कलकत्ते अधिवेशन में उदारवादी सम्मिलित नहीं हुए। इस अधिवेशन की अध्यक्ष **श्रीमती ऐनी बेसेंट** थीं। **जुलाई १९१८ ई० में माण्ट-फोर्ड**

सुधार योजना के प्रकाशन से गरम और नरम दलों में परस्पर मत-भेद बढ़ गया, जिसने कांग्रेस की राजनीतिक पराजयता का पुनः अन्त कर डाला। दोनों दलों के बीच इन सुधारों के प्रति मौलिक विभिन्नता थी। उग्रवादी इनको पूर्णतया असन्तोषजनक समझते थे और वे उनको उस समय तक मानने के लिए तैयार नहीं थे जिस समय तक उनमें भारी परिवर्तन न कर दिया जाए। **श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कहा कि "ऐसे सुधारों का देना इङ्गलैण्ड के अनुदार दृष्टिकोण का सूचक था और इनको स्वीकार करना भारत के लिए अपमानजनक था।" तिलक ने उनको असन्तोषप्रद ही नहीं वरन् निराशजनक** भी कहा। उग्रवादी समाचार-पत्रों ने इस योजना की कटु आलोचना की। होमरूल आन्दोलन को इस सुधार-योजना से पर्याप्त आशा थी, किन्तु उस पर तुषारापात हुआ। उग्रवादी विह्वल हो गए।

उदारवादी विचार धारा—इसके विपरीत नरम दल वालों ने जिन्हें मान्टेग्यू के उद्देश्य की सत्यता में पूर्ण विश्वास था और जिनका मान्टेग्यू के साथ उनके इङ्गलैण्ड प्रस्थान करने के पूर्व एक प्रकार का समझौता-सा हो गया था इन सुधारों को **उस समय की स्थिति में एक आगे की ओर कदम समझा और** उन्हें पर्याप्त प्रगतिशील एवं सन्तोषजनक माना। उनकी राय में देश के हित में उनका स्वीकार किया जाना ही उचित था, परन्तु साथ ही वे यह भी चाहते थे कि **इनके केन्द्र-सम्बन्धी प्रस्तावों को बदलवाने के भी प्रयत्न जारी रहें।** उन्हें भय था कि उग्रदल और योरोपीयनों के परस्पर विरोधी विचारों के पाटों में पिसकर कहीं समूची योजना ही समाप्त न हो जाए। देश के एंग्लो-इण्डियन समाचार-पत्र इस योजना को क्रान्तिकारी समझते थे। **इस प्रकार इस योजना द्वारा भारतीय राजनीतिक क्षितिज में एक तनाव का वातावरण उत्पन्न हो गया।**

उदारवादियों द्वारा राष्ट्रीय उदार-संघ की स्थापना—सन् १९१८ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में उदारवादियों को आमन्त्रित किया गया, किन्तु वे उसमें सम्मिलित नहीं हुए। यह अधिवेशन बम्बई में हुआ था और इस विशेष अधिवेशन के कराने का उद्देश्य माण्ट-फोर्ड योजना पर विचार करना था। उदारवादी जानते थे कि उग्रवादी इस योजना का खुलकर विरोध करेंगे और यदि वे भी उसमें सम्मिलित हो गए तो **इङ्गलैण्ड की सरकार को यह अवसर प्राप्त हो** जाएगा कि वह उनको **पूर्णतया स्थगित कर दे। अतः उन्होंने यह निश्चय किया कि** उसका समर्थन किया **जाए, क्योंकि कुछ न मिलने से कुछ मिलना अवश्य हितकर है।** उनकी इस नीति के **कारण फिर से खाई की स्थापना हुई।** सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उदारवादियों का संगठन करना आरम्भ किया और उन्होंने शीघ्र ही **राष्ट्रीय उदार-संघ** की स्थापना की।

उग्रवादियों की प्रतिक्रिया—उग्रवादी नेताओं की हार्दिक इच्छा थी कि कांग्रेस में एकता रहे। वे उदारवादियों को अपनी ओर मिलाना चाहते थे और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने माण्ट-फोर्ड योजना की कटु आलोचना बम्बई के विशेष अधिवेशन में नहीं की, जहाँ उनका पूर्ण प्रभुत्व था। इसी बात को लेकर उन्होंने निम्न प्रस्ताव पास किया—

"यह कांग्रेस माण्ट-फोर्ड योजना के इस सिद्धान्त से पूर्णतया असहमत है कि उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास के पूर्व प्रान्तों में कदम उठाए जाने चाहिएं और जब तक प्रान्तों में किए जाने वाले परिवर्तनों के प्रभाव स्पष्ट न हो जाएँ, भारत सरकार का आवश्यक विषयों पर अधिकार निर्विवाद रहे। कांग्रेस का मत है कि प्रान्तों और केन्द्र दोनों में साथ-साथ सुधार कार्यान्वित करने वांच्छनीय हैं।"

उदारवादियों का व्यवहार—उदारवादियों ने अपना एक सम्मेलन नवम्बर मास में बम्बई में किया। सुधारों का स्वागत करते हुए उन्होंने एक प्रस्ताव में स्पष्ट किया कि **ये सुधार आधुनिक परिस्थिति में प्रान्त और केन्द्र दोनों के लिए प्रगतिसूचक हैं तथा जो कदम प्रान्तों में उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास की ओर उठाया गया है** बड़ा महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि माण्ट-फोर्ड सुधार भारत-मंत्री की २० अगस्त १९१७ की घोषणा के अनुसार हैं और ये उसको पूरी तरह निभाते हैं।

भारत-सरकार अधिनियम का कार्यान्वित होना—२५ दिसम्बर १९१९ ई० को इंगलैण्ड की संसद ने इस सुधार योजना को अधिनियम का रूप प्रदान किया। १९२० ई० में नव निर्वाचन हुआ और उदारवादियों ने इन निर्वाचनों में भाग लिया। १९२१ के प्रारम्भ में नई धारा सभाओं ने अपना कार्य करना आरम्भ हुआ। इसी समय विशेष परिस्थितियों के कारण महात्मा गांधी ने अपना **प्रथम असहयोग आन्दोलन** आरम्भ किया।

भारतीय जनता को इस अधिनियम से संतोष नहीं हुआ, क्योंकि वे बहुत अधिक राजनीतिक सुधारों की आशा करते थे। समस्त देश में असन्तोष की लहर फैल गई और उन्होंने सरकार की नीति तथा इन सुधारों की तीव्र आलोचना करना आरम्भ कर दिया। ८ नवम्बर १९२७ ई० को अंग्रेजी सरकार ने **साइमन कमीशन** की नियुक्ति की घोषणा की, जिसने सरकार के सामने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और १९३० ई० में यह रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

भारत-सरकार अधिनियम १९३५

अंग्रेजों ने तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन किया। उसके वाद-विवादों तथा विचार-विमर्श के आधार पर ब्रिटिश सरकार की ओर से एक श्वेत-पत्र तैयार किया गया, जिसके अन्तर्गत शासन-सुधार की एक योजना थी। भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में सन् १९३२ ई० में इस श्वेत-पत्र पर अपने विचार प्रकट करने के लिए एक समिति का निर्माण हुआ जिसने २२ नवम्बर सन् १९३४ ई० को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को प्रस्ताव का रूप देकर भारत-मन्त्री ने ब्रिटिश संसद में प्रस्तावित किया। लोक-सभा की स्वीकृति के उपरान्त यह लार्ड सभा में प्रस्तावित किया गया, जहां कुछ संशोधनों के उपरान्त वह स्वीकृत हुआ, जिसको लोक-सभा ने स्वीकार किया। २ अगस्त १९३५ ई० को ब्रिटिश सम्राट ने उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए। यह अधिनियम ही १९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम के नाम से विख्यात है।

भारत सरकार अधिनियम की विशेषताएँ—यह अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियमों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा भारत की शासन-व्यवस्था में विशेष परिवर्तन हुए। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) **केन्द्र में संघ-शासन की स्थापना**—यह प्रथम अधिनियम था जिसने भारत में संघ-शासन की स्थापना करने का आयोजन किया, जिसमें समस्त ब्रिटिश प्रान्त और देशी राज्य सम्मिलित किए गए।

(२) **केन्द्र में द्वैध-शासन**—इस अधिनियम द्वारा केन्द्र में द्वैध-शासन की स्थापना का आयोजन किया गया।

(३) **प्रान्तों में स्वायत-शासन**—इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों को स्वायत-शासन का अधिकार प्रदान किया गया।

(४) **कार्यकारिणी को नए अधिकार**—इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय एवं प्रान्तीय कार्यकारिणी को विभिन्न नए अधिकारों से सुशोभित किया गया।

१९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम की विशेषताएँ

(१) केन्द्र में संघ-शासन की स्थापना।
(२) केन्द्र में द्वैध-शासन।
(३) प्रान्तों में स्वायत-शासन।
(४) कार्यकारिणी को नए अधिकार।

१९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत गृह-शासन—इस अधिनियम द्वारा गृह-शासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। मुख्य परिवर्तन निम्नलिखित थे—

(i) जिन विषयों में गवर्नर अपने मंत्रियों की सलाह से कार्य करता था उन पर से भारत-मंत्री का नियन्त्रण पूर्ण रूप से हट गया।

(ii) भारत-मंत्री को सरकार की ओर से इंगलैण्ड से उधार लेने, अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारियों की नियुक्ति करने, और उनके वेतन, भत्ते आदि के निश्चित करने और उसकी रक्षा के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ।

(iii) वह ब्रिटिश-सम्राट का सलाहाकार होने के नाते समय-समय पर गवर्नर-जनरल तथा प्रान्तों में गवर्नर को आदेश दे सकता था।

(iv) इसके द्वारा **इण्डिया कौंसिल** का अन्त हो गया और उसके स्थान पर भारतमंत्री के परामर्शदाताओं की नियुक्ति का आयोजन किया गया।

१९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन—केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत इस अधिनियम ने जो परिवर्तन करने की व्यवस्था की वे इस प्रकार हैं—

(i) द्विभवनीय व्यवस्थापिका सभा—इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार के लिए **द्विभवनीय व्यवस्थापिका** सभा का आयोजन किया गया। इनमें से एक का नाम **राज्य-परिषद्** और दूसरी का नाम **संघ-सभा** रखा गया। राज्य-परिषद् के सदस्यों की संख्या २३० निश्चित की गई, जिनमें से १५३ सदस्य ब्रिटिश भारत (प्रान्तों) के और १०४ सदस्य देशी राज्यों की ओर से होंगे। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि निर्वाचन द्वारा और देशी राज्यों के प्रतिनिधि देशी राजाओं द्वारा मनोनीत किए जाएंगे। संघ-स

में ३२५ सदस्य होंगे जिनमें से २५० ब्रिटिश भारत (प्रान्तों) के और १२५ राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर और देशी राज्यों के प्रतिनिधि देशी राज्यों द्वारा नियुक्त किए जायेंगे।

(ii) **संघीय विषयों का सुरक्षित तथा हस्तान्तरित विषयों में विभाजन—** **समस्त संघीय विषयों को सुरक्षित और हस्तान्तरित विषय में विभाजित कर दिया गया।** इस प्रकार केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना हुई। हस्तान्तरित विषयों पर गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारिणी का अधिकार था। मन्त्रियों का कार्य गवर्नर-जनरल को उसके कार्यों में सलाह तथा सहायता प्रदान करता था। वे न तो कोई नीति निर्धारित कर सकते थे और न स्वतन्त्रतापूर्वक कोई कार्य कर सकते थे। **प्रोफेसर के० टी० शाह** के शब्दों में "नये संविधान के अनुसार संघीय मन्त्रियों की स्थिति ऐसे आभूषणों जैसी है जिनका कोई उपयोग नहीं है; वे जनता के प्रतिनिधि भी माने जाते हैं, किन्तु वे कभी भी उसकी भलाई करने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं, उनका उत्तरदायित्व बिना किसी शक्ति के है; उनका पद बिना किसी अधिकार तथा वास्तविक प्रभाव के है।" इस प्रकार इस अधिनियम ने उसी प्रकार का द्वैध शासन स्थापित किया जिस प्रकार का द्वैध शासन १९१९ के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रान्तों में प्रचलित किया गया था और जिसके विरुद्ध भारतीय जनमत अपने विचार पहले ही प्रगट कर चुका था।

(iii) **गवर्नर-जनरल को बहुत अधिक अधिकार प्रदान करना—**इस अधिनियम ने **गवर्नर-जनरल को बहुत अधिक अधिकारों से सुशोभित किया था।** उसके अधिकारों के सामने संघीय व्यस्थापिका सभा के अधिकार शून्य के समान थे। गवर्नर-जनरल को विधायनी, वैत्तिक एवं प्रशासन-सम्ब्रन्धी विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह **अध्यादेश** भी बना सकता था। **वित्त-सम्बन्धी विधेयक** बिना गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त किए संघीय व्यवस्थापिका-सभा में प्रस्तावित नहीं किए जा सकते थे। उसको व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन बुलाने, उसको भंग करने तथा उसकी अवधि में वृद्धि करने का अधिकार प्राप्त था।

१९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय शासन—इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय शासन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। प्रान्तों में **स्वायत्त-शासन** की स्थापना की गई। गवर्नर का सीधा सम्बन्ध गृह-सरकार से नहीं रहा। प्रान्तीय गवर्नर को निम्न प्रकार के तीन अधिकार प्राप्त थे—

(i) **विवेक के अनुसार—**कुछ विषयों में वह अपने विवेक के अनुसार कार्य कर सकता था।

(ii) **व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार—**कुछ विषयों में वह अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता था। ऐसे विषयों में उसको अपने मन्त्रियों से सलाह एवं परामर्श लेना आवश्यक था, किन्तु उनकी सलाह मानना अथवा न मानना उसकी अपनी निजी इच्छा पर पूर्णतया निर्भर था।

(iii) **मन्त्रियों की सलाह—**कुछ विषयों में वह अपने मन्त्रियों की सलाह से कार्य करता था। इस क्षेत्र में ही केवल **उत्तरदायी शासन** की स्थापना की गई थी।

गवर्नर को विशेष अधिकार—गवर्नर-जनरल के समान प्रान्तों के गवर्नरों को (i) अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्राप्त था। (ii) वह वैधानिक संकट के समय प्रान्त का सम्पूर्ण शासन अपने अधिकार में कर सकता था और (iii) उसको सलाहकारों द्वारा शासन-संचालन का अधिकार प्राप्त था। (iv) उसको निषेधाधिकार भी प्रदान किया गया था। (v) वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन आमन्त्रित कर सकता था तथा उसकी अवधि घटा और बढ़ा सकता था। (vi) इसको उसे भंग करने का भी अधिकार प्राप्त था। (vii) वह संयुक्त अधिवेशन आमन्त्रित कर सकता था, जब प्रान्त के दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाए।

राज्यों की व्यवस्थापिका सभा—कुछ प्रान्तों में दो सदनों का तथा कुछ प्रान्तों में एक सदन का आयोजन किया गया। उत्तर प्रदेश के लिए दो सदनों की व्यवस्था की गई। प्रथम सदन का नाम विधान सभा और द्वितीय सदन का नाम विधान परिषद् रखा गया। विधान सभा के समस्त सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे किन्तु विधान परिषद् के कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा मनोनीत किए जाते थे। सदस्यों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया जाता था। विभिन्न प्रान्तों में सदस्यों की संख्या प्रान्तों की जन-संख्या के आधार पर निश्चित की गई। मतदाताओं और सदस्यों, की योग्ताएँ घटा दी गईं और व्यवस्थापिका सभा के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई। वार्षिक आय-व्यय के ब्योरे में काँट-छाँट करने का अधिकार सदस्यों को प्राप्त था, किन्तु गवर्नर अपने विशेष अधिकारों द्वारा उस कमी की पूर्ति कर सकता था। सदस्यों के अधिकार-क्षेत्र में भी वृद्धि कर दी गई। उनको सरकार की नीति की आलोचना तथा पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार था। मन्त्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिए विधान सभा के प्रति उत्तरदायी था। इतना सब कुछ होते हुए भी गवर्नर पर व्यवस्थापिका सभा का कोई नियन्त्रण नहीं था।

द्वितीय महायुद्ध—इसके उपरान्त भारत के राजनैतिक क्षितिज में बड़ी महत्वपूर्ण हलचलें हुईं, जिनका वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जाएगा। प्रान्तों में १९३५ ई० का अधिनियम कार्यान्वित किया गया, किन्तु द्वितीय महायुद्ध के कारण वह भी असफल हो गया। इसके उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ योजनाएं रखीं। भारत में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ। अन्त में ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ने का निश्चय किया। इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी १९४७ को लोकसभा में एक वक्तव्य दिया जिनमें उन्होंने कहा—

"ब्रिटिश सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि वह जून १९४८ तक भारत पर से अपनी शासन-सत्ता का अन्त कर देगी।"

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम १९४७

भारत के वाइसराय लार्ड माउण्टबेटन ने एक योजना का निर्माण किया, जिसको अधिनियम का रूप प्रदान करने के अभिप्राय से ४ जुलाई १९४७ को उसको विधेयक के रूप में इंगलैण्ड की लोकसभा में प्रस्तावित किया गया। दोनों सदनों द्वारा

पारित होने के उपरान्त अगस्त १९४७ ई० को इंगलैण्ड के सम्राट ने उस पर अपने हस्ताक्षर करके अपनी सम्मति प्रगट की। यह अधिनियम भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम १९४७ ई० के नाम से विख्यात है। इस अधिनियम का बहुत अधिक महत्व है, क्योंकि इसके द्वारा भारत स्वतन्त्र हुआ और उस पर से अंग्रेजों के शासन का अन्त हो गया। इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं—

(१) १५ अगस्त १९४७ से भारत का विभाजन पाकिस्तान तथा भारत में होकर उनको औपनिवेशिक अधिकार प्रदान किए जाते हैं।

(२) १५ अगस्त १९४७ ई० के उपरान्त ब्रिटिश सरकार का इन पर किसी भी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा। प्रत्येक को अपने मामलों का निर्णय करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(३) इन उपनिवेशों को यह अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार **ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल** में सम्मिलित रह सकते हैं अथवा नहीं।

(४) जिस समय तक दोनों उपनिवेशों का संविधान तैयार न हो उस समय तक इनकी संविधान-सभा को विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। इस प्रकार संविधान-सभा को व्यवस्थापिका सभा के अधिकार प्राप्त हुए जो १९३५ ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधान-मण्डल को प्राप्त थे।

(५) ब्रिटिश सम्राट दोनों उपनिवेशों के लिए अलग-अलग वाइसराय नियुक्त करेंगे, किन्तु यदि दोनों उपनिवेशों की व्यवस्थापिका सभाएँ एक ही वाइसराय रखना चाहें तो वह भी सम्भव है।

(६) सम्राट का प्रान्तों तथा सीधे राज्यों से कोई सम्बन्ध न होगा।

(७) देशी राज्यों पर से **ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता** का अन्त किया गया।

(८) यह निश्चय किया गया कि जिस समय तक नवीन संविधान का निर्माण नहीं होता है उस समय तक इनका तथा प्रान्तों का शासन १९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम के अनुसार होगा, किन्तु इस अधिनियम में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिए गए। भारत के वाइसराय तथा प्रान्तों के गवर्नरों के विशेष अधिकारों का अन्त कर दिया गया और उनको वैधानिक शासक का रूप प्रदान किया गया। उनको अपने मन्त्रिमण्डल के परामर्श से कार्य करना होगा और मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे।

(९) भारतमन्त्री तथा इण्डिया कौंसिल का अन्त कर दिया गया। उसके कार्य कामनवैल्थ सचिव को प्रदान किए गए।

(१०) ब्रिटिश सम्राट की उपाधियों में से 'भारत सम्राट' की उपाधि का अन्त करने का निश्चय किया गया।

इस प्रकार इस अधिनियम द्वारा भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की और भारत से अंग्रेजी शासन-सत्ता का अन्त हुआ। इस घटना का महत्व न केवल भारतीय इतिहास में, वरन् विश्व के इतिहास में है; क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने एशिया का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और वह विश्व में शान्ति के अग्रदूत के रूप

में आया, जिसने विश्व को अहिंसा, सत्य और शान्ति के पाठ की शिक्षा प्रदान की।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) १९१९ ई० के भारत-सरकार विधान के विशेष अंग क्या थे ? भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस ने इन्हें क्यों स्वीकार नहीं किया ?

(२) १९१९ तथा १९३५ के वैधानिक सुधारों की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दीजिए ।

मध्य भारत—

(१) सन् १८६१ से १९३५ तक केन्द्रीय विधान-सभा की प्रगति का वर्णन कीजिए ।

(२) सन् १८६१ से १९१९ तक केन्द्रीय विधान-सभा के विकास का वर्णन करो ।

सागर विश्वविद्यालय—

(१) सन् १९३५ के एक्ट (विधि) द्वारा भारत में प्रान्तीय सरकारों के रूप में क्या परिवर्तन हुआ ?

(२) सन् १९१९ के भारत-सरकार के एक्ट के प्रमुख अंगों का विवेचन कीजिए तथा उसकी मुख्य त्रुटियों का निर्देशन कीजिए ।

(३) सन् १९३५ के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के प्रमुख अंगों का विवेचन कीजिए तथा उसकी त्रुटियां बताइए ।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) सन् १९१९ के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा किए गए परिवर्तनों का परीक्षण करते हुए बतलाइए कि इन परिवर्तनों से भारतीय राजनीतिक आकांक्षाओं का समाधान क्यों नहीं हो सका ?

(२) मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा स्थापित दोहरे शासन-प्रबन्ध के दोष बतलाते हुए उनकी विवेचना कीजिए । इन दोषों को कैसे दूर किया गया ?

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) १९१९ के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

(२) १९०९ के एक्ट के प्रमुख स्थलों का विश्लेषण कीजिए और बतलाइए कि इसने हमारे देश की एकता में कहाँ तक विघ्न डाला ?

(३) "१९३५ के एक्ट ने भारत में प्रान्तीय सरकार के स्वरूप तथा आकार को अत्यधिक बदल दिया।" विवेचना कीजिए ।

(४) "१९०९ के सुधार भारतीय राजनीतिक समस्या का कोई हल प्रस्तुत न कर सके और न कर ही सकते थे ।" विवेचना कीजिए ।

(४) सन् १९१९ के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार द्वारा किए गए परिवर्तनों का परीक्षण करते हुए बतलाइए कि इन परिवर्तनों से भारतीय राजनीतिक आकांक्षाओं का समाधान क्यों नहीं हो सका ?

७

राष्ट्रीय आन्दोलन

गत अध्यायों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि अङ्गरेजों ने किस प्रकार भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की और धीरे-धीरे उसको दृढ़ बनाते चले गए। इसके साथ-साथ भारत में ऐसी भावना का भी उदय होना आरम्भ हुआ जो भारत को अङ्गरेजी शासन से मुक्त करने की ओर प्रयत्नशील थी। १८५७ ई० के पूर्व कुछ देशी राजाओं द्वारा ही शक्ति के आधार पर इस ओर चेष्टा की गई थी। इनमें हैदरअली तथा उसका पुत्र टीपू, मरहठे तथा उनके अन्य सरदार सम्मिलित थे, किन्तु वे अङ्गरेजों की सैनिक शक्ति तथा पारस्परिक असहयोग और अविश्वास के कारण अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त नहीं कर सके और अङ्गरेज उनकी शक्ति का दमन करने में सफल हुए। अन्त में १८५७ ई० की क्रांति हुई जिसमें राजाओं, नवाबों तथा सरदारों के साथ सेना तथा जनता ने अङ्गरेजों को भारत से बाहर निकालने का प्रयत्न किया, किन्तु अङ्गरेज उसका भी दमन करने में सफल हुए, किन्तु इसके द्वारा जो स्वतन्त्रता प्राप्त करने की भावना भारतीयों में जागृत हुई उसका अङ्गरेज अन्त करने में सफल नहीं हुए। अङ्गरेजों के विभिन्न कार्यों द्वारा भारत में राष्ट्रीयता का शनैः शनैः विकास होना आरम्भ हुआ, भारत में राजनीतिक जागृति हुई, जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता का संघर्ष हुआ और अन्त में भारत से अङ्गरेजी सत्ता का अन्त हुआ। इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि १८५७ ई० के पूर्व राजाओं, नवाबों तथा सरदारों ने उसका विरोध किया, किन्तु बाद में साधारण जनता की ओर से आन्दोलन की चिंगारियाँ उठीं और उसने आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसके कारण आन्दोलन जन-साधारण का बन गया और वह दिन-प्रतिदिन तीव्र होता चला गया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्व—राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्पत्ति जिसने भारतीय जागृति में बड़ा योग दिया है और जो अन्त में स्वराज्य का कारण बनी, देश के वर्तमान जीवन को समझने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की मांग और उसकी प्राप्ति की कहानी बड़ी ही रुचिकर है। आधुनिक इतिहास में यह सबसे प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण घटना है। सन् १८८५ ई० में कांग्रेस के जन्म के पूर्व देश में कोई विशेष राजनीतिक जीवन नहीं था। राष्ट्रीयता की भावना में हृदय को आन्दोलित कर देने की शक्ति उत्पन्न न थी और कोई भी स्वराज्य अथवा जनप्रिय सरकार की स्थापना का विचार भी नहीं करता था। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत लोग प्रसन्न दिखाई पड़ते थे। किसी विदेशी सत्ता के आधीन रहने में मान-हानि तथा मनमाने शासन के विरोध की भावना का नितान्त अभाव था। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने देशवासियों का ध्यान राष्ट्र की एकता

तथा विदेशी सत्ता के अधीन रहने में राष्ट्रीय आत्म-सम्मान की हानि की ओर आकर्षित किया। इसने ही लोगों को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रेरित किया और अन्त में उसे प्राप्त कर ही चैन लिया। जाति तथा धर्म का विचार परित्याग कर सभी भारतीय एक ही पुन्य उद्देश्य से प्रेरित थे।

राष्ट्रीय जागृति के कारण

/1986/

राष्ट्रीय आन्दोलन के अध्ययन से पूर्व राष्ट्रीय जागृति के कारणों को भली प्रकार समझना बहुत आवश्यक है। मुख्य कारण निम्न हैं—

राष्ट्रीय जागृति के कारण

(१) धार्मिक जागृति।

(२) पाश्चात्य शिक्षा।

(३) आर्थिक कारण।

(४) राजनीतिक कारण।

(५) लार्ड लिटन के शासन-काल की घटनाएँ।

(६) इल्बर्ट बिल प्रतिरोध।

(१) **धार्मिक जागृति**—जनता में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने में गत शताब्दियों में हुए धार्मिक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है और इन्होंने ही सन् १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना को सम्भव बनाया। इनमें सबसे प्रमुख हिन्दुओं की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना है। इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि राजा राममोहन राय के जन्म से पूर्व देश में घटित घटनाओं के बीच किसी भी प्रकार का राजनीतिक राष्ट्रीय-आन्दोलन सम्भव नहीं था। किसी भी राजनीतिक चेतना के आरम्भ होने से पूर्व यह आवश्यक था कि एक वाह्य रूप से दृष्टिपात होने वाली उच्चतर सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव को विनष्ट किया जाए तथा लोगों का स्वयं अपने और अपनी गौरवपूर्ण परम्परा में विश्वास जागृत हो। **राजा राममोहन राय** भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने भारतीयों में अपनी गौरवपूर्ण परम्परा में विश्वास जागृत करने की ओर पग उठाया। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने लोगों के हृदय में स्वातन्त्र्य-प्रेम, देश-प्रेम तथा भारतीय वस्तुओं के प्रति प्रेम का संचार किया। वे ही प्रथम भारतीय थे जिन्होंने यह नारा लगाया कि **'भारत भारतीयों के लिए है'**। उत्तर भारत की जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने में आर्य-समाज का इतना महत्वपूर्ण हाथ था कि यह संस्था विदेशी सरकार की आँखों में अनेक वर्षों तक खटकती रही। **'प्रार्थना-समाज'** द्वारा बम्बई प्रेसीडेन्सी में सामाजिक तथा धार्मिक सुधार कार्य किया गया, जिसका राजनीतिक क्षेत्र पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। अपने देश-वासियों के सामने उनके गौरवपूर्ण अतीत का प्रदर्शन तथा उनकी उच्चतर सभ्यता की महिमा वर्णित करके दक्षिण में **थ्योसोफिकल सोसाइटी** ने राष्ट्रीय भावना को बड़ा बल प्रदान किया। **स्वामी रामकृष्ण परमहंस** और उनके प्रसिद्ध शिष्य स्वामी **विवेकानन्द** ने जिन्हें लोगों द्वारा अपनी प्राचीन परमपरा में गौरव तथा अभिमान जागृत करने के कारण **'भारत में देश-भक्त संघ'** के नाम से ठीक ही सम्बोधित किया जाता है, उन्होंने अन्य धार्मिक सुधारकों से कम कार्य नहीं किया। इस प्रकार यह

स्पष्ट है कि धार्मिक सुधारकों का कार्य तथा उनके द्वारा उत्पन्न की हुई धार्मिक चेतना भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में बड़ी सहायक रही। यूरोपीय विद्वानों का कार्य भी इस दिशा में कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके भी कार्यों का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। इनमें **मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, राथ, मैसून** आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये विद्वान भारत की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उन्होंने शिक्षित भारतीयों तथा पश्चिमी पाठकों के सामने प्राचीन भारत के गौरव तथा उनकी महानता प्रदर्शित की और भारतीयों के मन में अपनी तत्कालीन दशा और स्थिति के प्रति असन्तोष उत्पन्न किया।

(२) **पाश्चात्य शिक्षा**—पाश्चात्य विचार-धारा एवं साहित्य ने भी भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने में बड़ा योग दिया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचारकों का उद्देश्य वास्तव में इस भावना का अन्त करना था, जैसा कि लार्ड मैकॉले के पत्र द्वारा स्पष्ट होता है। उसका पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा का प्रचार करने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्ण रूप से लोप हो जाए और भारतवासी अपने अतीत की सभ्यता तथा संस्थाओं से उदासीन हो जाएँ[1], किन्तु इसका एक दूसरा परिणाम निकला। **यह अभिशाप भारत के लिए ईश्वरीय देन सिद्ध हुआ।** अंग्रेजी भाषा द्वारा भारतवासियों को पारस्परिक विचार विनिमय करने का एक साधन प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप भारतवासी एक दूसरे के अत्यन्त निकट सम्पर्क में आए। इसके ही कारण भारतीय सर्वोत्तम अंग्रेजी विचारों के सम्पर्क में आए। उनको **मिल्टन, बर्क, मिल, मैकॉले हरबर्ट, और स्पेंसर** आदि अन्य विचारकों की कृतियों तथा रचनाओं का ज्ञान प्राप्त हुआ जिनके द्वारा उनमें स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय तथा स्वराज्य की जीवन-दायिनी भावनाओं का विकास हुआ। उनके संकीर्ण विचारों में परिवर्तन होने लगा और उनके स्थान पर उनका दृष्टिकोण व्यापक हो गया। यह कहना **अतिश्योक्ति न होगा कि पिछली शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में यदि अंग्रेज सत्ताधिकारियों ने पूर्वी शिक्षा के स्थान पर पाश्चात्य शिक्षा पर बल नहीं दिया होता तो स्वराज्य तथा राष्ट्रीयता की भावना का इतनी अधिक शीघ्रता से प्रसार भारतीयों में नहीं हुआ होता।**

पाश्चात्य विज्ञान ने यातायात के साधनों में आश्चर्यजनक उन्नति की, जिसके द्वारा भारतीयों को पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त बहुत-से भारतीय शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से विदेश गए। वे **वहाँ की स्वतन्त्रता, समानता तथा मातृभाव से बहुत अधिक प्रभावित हुए।** उनको वहाँ की संस्थाओं के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया और उन्होंने भारत में भी उसी प्रकार

---

[1] "When Macauley...imposed the system...his object was not to create Indian national consciousness, but to destroy it down to the very deepest roots of its being...His object was to train up a stratum of decite executants of the English wills cut off from every time of watch with their people."

—**R. Palm Dutt : India To-day, p., 283.**

का वातावरण स्थापित करने की चेष्टा की। इसके अलावा भारतीयों का अंग्रेजों से सम्पर्क बढ़ा और दोनों पर एक दूसरे के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इसके कारण इङ्गलैण्ड में भी कुछ ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए जो भारवासियों को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। भारतवासियों को अपनी दासत्व दशा पर क्षोभ उत्पन्न होने लगा और वे अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिए प्रयत्नशील बन गए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में "हमको इङ्गलैण्ड का परिचय उसके गौरवपूर्ण इतिहास द्वारा प्राप्त हुआ। इससे हमारे नवयुवकों में एक नवीन स्फूर्ति तथा प्रेरणा का जन्म हुआ। अंग्रेज लेखकों की रचनाएँ जिनका अध्ययन भारतीयों ने किया जो मानव-प्रेम, न्याय तथा स्वतन्त्रता की भावना से परिपूर्ण हैं हमें क्रांति-युग से आगे बढ़ने वाली एक महान् साहित्यिक परम्परा का ज्ञान हुआ। वर्ड्सवर्थ की मानव स्वतन्त्रता-सम्बन्धी कविताओं में हमको इस शक्ति का आभास हुआ। यौवन के उन्माद में लिखी हुई शैली की कुछ अप्रौढ़ रचनाओं में हमें भव्यता की भावना प्राप्त हुई। उसने पुरोहितों के अन्याय तथा सभी प्रकार की स्वेच्छाचारिता का वीरता के साथ कष्ट सहन करके विरोध करने का आदेश दिया। इन्होंने हमारे युवकों की कल्पनाओं को उत्तेजित किया। हमें यह विश्वास हो गया कि यदि हम विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह भी करेंगे तो भी हमें पश्चिम का सहयोग प्राप्त होगा। हमने अनुभव किया कि इङ्गलैण्ड भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रश्न में हमारे साथ है।"[1]

(३) आर्थिक कारण—ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने जिस आर्थिक नीति को अपनाया वह देश में असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। इस नीति के द्वारा भारत का भयंकर आर्थिक शोषण हुआ। इन्होंने भारत के समस्त कुटीर उद्योग-धन्धों का विनाश और सम्पूर्ण व्यापार का अपने आधिपत्य में किया, जिससे भारतीय जनता दिन-प्रतिदिन निर्धन होती चली गई और उनके सामने भुखमरी का नग्न नृत्य होने लगा। भारत का समस्त धन विभिन्न उपायों तथा साधनों द्वारा इंगलैण्ड जाने लगा। इसी बीच अंग्रेजों ने स्वतन्त्र-व्यापार की नीति को अपनाया। इसके द्वारा गिरते हुए उद्योगों को बड़ा गहरा आघात पहुंचा। शिक्षित वर्ग के सामने बेकारी की समस्या उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त शासन की **अत्यन्त खर्चीली प्रणाली तथा औपनिवेशिक युद्धों में सरकार द्वारा व्यय किए धन ने**

---

[1] "we had come to know England through her glorious literature which had brought a new inspiration into our young livies. The English authors, whose books and poems we studied, were full of love of humanity, justices and freedom. This great literary tradition has come down to us from the revolution period. We felt its power in Wordsworth's sonnets about'human liberty. We gilorified in it even the immature prodution of Shelley written in the enthusiasm of youth when he declared agaist the tyranny priest-craft and preached the overthrough of all despotism through the power of suffering bravely ended. All this fired our youthful imaginations. We believed with all our simple faith that even if we rebelled against foreign rule, we should have the sympathy of the West. We felt that England was on our side in wishing to gain our freedom."

—Rabindra Nath Tagore

भी अधिक बर्बादी का वावारण उत्पन कर दिया। इन सब कारणों के साथ-कृषकों की दशा को भी उन्नत करने की ओर सरकार का ध्यान विशेष रूप से र्षित न हो पाया। इस प्रकार चारों ओर हा-हाकार मचने लगा। इसके कारण समस्त वर्ग के लोगों में अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष और क्षोभ बढ़ने लगा और वे अंग्रेजी सत्ता के कट्टर विरोधी बन गए।

(४) राजनीतिक कारण—पिछली शताब्दी के अन्तिम चरणों में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं, जिसके कारण १८८५ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्था-ना हुई। **एक वर्ष के कठिन परिश्रम के उपरान्त १८३९ ई० में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आई० सी० एस० की परीक्षा पास की, किन्तु किसी टैकनिकल गलती के कारण उनको स्वीकार नहीं किया गया।** इससे भारत में और विशेषतः बंगाल में लोगों के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। समाचार-पत्रों द्वारा सरकार की तीव्र निन्दा की गई। **क्वीन्स बैंच डिवीजन** ने इस मामले की जाँच की, जिसका निर्णय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पक्ष में हुआ। वे भारत आए और १८७१ ई० के नवम्बर मास में उनकी नियुक्ति एसिस्टेण्ट मजिस्ट्रेट के पद पर हुई, किन्तु दो वर्ष के उपरान्त ही उन पर कुछ अभियोग लगाकर उनको नौकरी से अलग कर दिया। वे फिर इङ्गलैण्ड गए और अब की बार बैरिस्टर होकर आए। भारत आने पर उन्होंने **इण्डियन एसोसियेशन** नामक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य शिक्षित मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करना था। **इस संस्था की स्थापना १८७६ ई० में हुई और शीघ्र ही शिक्षित वर्ग में लोकप्रिय बन गयी।** इसी समय आई० सी० एस० में सम्मिलित होने की आयु २१ वर्ष से उन्नीस वर्ष कर दी गई और इस प्रकार उन्होंने इस परीक्षा में भारतीय विद्यार्थियों का बैठना लगभग असम्भव कर दिया। इस प्रतिक्रियावादी कार्य द्वारा इस नवीन संस्था को उससे कुछ आदर्शों की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ। 'उनकी ओर से एक राष्ट्रीय आन्दोलन करने का निर्णय किया गया। **२४ मार्च १८७७ ई० को कलकत्ते में इस संस्था द्वारा एक सार्वजनिक विशाल सभा का आयोजन किया गया।** इसके बाद ही सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने भारत के विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण किया और बड़े-बड़े नगरों में सभाएँ कीं। उन्होंने विभिन्न स्थानों पर राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना की। **इस प्रकार भारत में राजनीतिक संस्थाओं का एक जाल बिछ गया और इसके साथ-साथ सामूहिक प्रयत्न तथा कार्य की भी नींव पड़ी।** स्वयं सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के शब्दों में 'जाति, भाषा, सामाजिक तथा धार्मिक संस्था के विषय में हममें चाहे जो अन्तर हो, किन्तु राजनीतिक उद्देश्यों के लिए भारत के लोग एक होकर सम्मिलित रूप से प्रयत्न कर सकते हैं।"

(५) लार्ड लिटन के शासन-काल की घटनाएँ—इसके अतिरिक्त लार्ड लिटन के शासन-काल में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने इण्डियन एसोसिएशन को राष्ट्रव्यापी विरोध तथा आन्दोलन करने का अवसर प्रदान किया। लार्ड लिटन ने इङ्गलैण्ड की रानी विक्टोरिया के भारत की सम्राज्ञी होने के अवसर पर दिल्ली में एक दरबार की व्यवस्था की। यह दरबार १८८७ ई० में ऐसे समय पर हुआ जब देश के कुछ

भागों पर भीषण अकाल की विभीषिका घूर रही थी। कलकत्ते के एक पत्रकार ने यह लिखा कि 'जब रोम अग्नि शिखाओं के बीच था, नीरो वीणा बजा रहा था।' फिर भी दरबार परोक्ष रूप से एक वरदान ही सिद्ध हुआ। इस समय सुरेन्द्र नाथ बनर्जी दरबार में एक पत्र-प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। वहाँ उनके मन में यह आया कि 'यदि एक स्वेच्छाचारी वाइसराय की प्रसंशा के लिए देश के राजाओं तथा धनिक व्यक्तियों को एकत्रित होने के लिए बाध्य किया जा सकता है तो देशवासियों को न्यायसंगत ढङ्ग से स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए क्यों नहीं संगठित किया जा सकता है।'[1]

(क) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट—१८७८ ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट जैसे घृणास्पद अधिनियमों को पास किया गया। लार्ड लिटन की सरकार प्रेस की शक्ति की उन्नति से घबरा उठी और १३ मार्च १८७८ को भारत-मंत्री के पास तार भेजकर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाने की अनुमति माँगी। दूसरे ही दिन वाइसराय को अनुमति प्राप्त हो गई और उसके प्राप्त होने के दो घण्टे के अन्दर वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट पास हो गया। **इस एक्ट के द्वारा समस्त देश में और विशेषतः बंगाल में विरोध उत्पन्न हो गया।** इसके विरोध में कलकत्ते में एक विशाल सभा हुई। अन्त में वाध्य होकर चार वर्ष उपरान्त लार्ड लिटन के उत्तराधिकारी वाइसराय लार्ड रिपन ने इस एक्ट को रद्द कर दिया।

(ख) आर्म्स एक्ट—आर्म्स एक्ट जनता के दमन करने का दूसरा साधन था। राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से इसको रद्द कराने का बार-बार प्रयत्न किया गया, किन्तु यह विधि अब भी प्रचलित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। **इस एक्ट के अनुसार बिना लाइसैंस के हथियार रखना, लेकर चलना या उनका व्यापार करना अपराध है।** इस एक्ट के विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति को किसी न किसी रूप में जुर्माना देना पड़ता है। इस एक्ट का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसने जातीय भेद की उत्पत्ति की थी। यूरोपियन, एंग्लो-इण्डियन तथा कुछ सरकारी पदाधिकारी इसके नियमों से मुक्त थे। इस एक्ट ने सारे राष्ट्र को पंगु बना दिया और वह वाह्य आक्रमण को रोकने तथा विदेशी सत्ता का अन्त करने में असमर्थ हो गया।

(ग) अफगानिस्तान पर आक्रमण—देश को बर्बाद करने वाले लार्ड लिटन ने एक मूर्खतापूर्ण कार्य यह किया कि उसने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। जिसमें बहुत अधिक व्यय हुआ और उसका कोई लाभप्रद परिणाम नहीं निकला।

(घ) रूई के निर्यात पर से कर का उठाना—लंकाशायर की संतुष्टि के लिए रूई के निर्यात पर से कर उठा लेना भी इन्हीं मूर्खतापूर्ण कार्यों के अन्तर्गत

---

[1] "If the princes and nobles in the land could be forced to form a pegeant for the glorification of an Victory, why could not the people be gathered together to unite themselves to restrain, by constitutional means and methods, the spirits of automatic rule."

—A. C. Majumdar: Indian National Revolution, pp. 32–33.

सम्मिलित है। इन तथा कुछ अन्य कार्यों के कारण लार्ड लिटन के शासन-काल की अन्तिम स्थिति क्रान्ति की सीमा पर पहुँच चुकी थी।

(६) **इलबर्ट बिल प्रतिरोध**—उस समय के विद्यमान नियमों व विधियों के अनुसार प्रेसीडेंसी नगरों के बाहर रहने वाले यूरोपियनों का मुकदमा यूरोपियन जजों, न्यायाधीशों या दण्डाधीशों को ही करने का अधिकार था। भारतीय न्यायाधीशों को चाहे उनका पद कुछ भी हो, इनका मुकदमा करने का अधिकार नहीं था, यद्यपि उनके अधीन कार्य करने वाले योरोपियन न्यायाधीश ऐसा कर सकते थे। यह बात वास्तव में बड़ी ही अनुचित थी। **एक भारतीय आई० सी० एस० के प्रतिनिधित्व करने पर लार्ड रिपन की सरकार ने इस पर विचार किया और तत्कालीन विधि-सदस्य सर इलबर्ट ने १७७५ ई० में विधानमण्डल में इससे सम्बन्धित एक प्रस्ताव प्रस्तावित किया, जिसके द्वारा भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियनों के मुकदमे सुनने का अधिकार दिया और इस प्रकार न्याय से जातीय तथा वर्ण-भेद का अन्त करने का प्रयास किया, किन्तु सरकारी तथा गैर-सरकारी यूरोपियनों ने इस बिल का इतना तीव्र विरोध किया कि सरकार को बाध्य होकर इसे वापिस लेना पड़ा।** यूरोपियनों ने एक रक्षा-संघ की स्थापना की जिसका केन्द्र कलकत्ते में था और उसकी शाखाएँ देश के विभिन्न भागों में स्थापित की गईं। इसके साथ-साथ उन्होंने व्यय के लिए डेढ़ लाख रुपया भी एकत्रित किया। **अंग्रेज जाति के इस व्यवहार ने यह स्पष्ट कर दिया कि जहाँ शासन करने वाली जाति के हित तथा स्वार्थ निहित हों वहाँ न्याय की आशा नहीं की जा सकती।** भारतीयों को अङ्गरेजों से घृणा होने लगी।

अंग्रेजों के आन्दोलन का प्रभाव—इस विवाद के द्वारा जो आन्दोलन यूरोपियनों द्वारा किया गया और उनको अपने उद्देश्य में जो आशातीत सफलता प्राप्त हुई उससे भारतीयों को स्पष्ट दिखलाई देने लगा कि उस शासन से न्याय की आशा करना मूर्खता है जिसमें शासन करने वाली जाति के स्वार्थ तथा विशेषाधिकारों की सुरक्षा की जाती है। **ए० सी० मजूमदार** के शब्दों में उन्होंने 'यह भी अनुभव किया कि यदि राजनैतिक प्रगति वांछनीय है तो केवल एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही सम्भव है। इस सभा का सम्बन्ध विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से ही होना चाहिए।'[1] इसी भावना के अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों में राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना की गई और इनके ही प्रयत्नों द्वारा राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई।

भारतीयों की प्रतिक्रिया—उक्त भावना के अन्तर्गत बंगाल की इण्डियन एसोसिएशन ने सन् १८८३ ई० में कलकत्ते में एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें बंगाल प्रान्त के अनेक मान्य तथा शिक्षित व्यक्तियों ने भाग लिया। सम्मेलन का वातावरण बड़ा उत्साहपूर्ण था। **श्री मजूमदार** के शब्दों में ''सम्मेलन

---

[1] "They further felt that if political advancement were to be achieved, it could only be by the organisation of a national assembly wholly devoted to wider politics than hitherto pursued in the different provinces independently of each other."

—**A. C. Majumdar ; Indian National Evolution, pp., 39.**

का दृश्य अद्वितीय था। उस सम्मेलन का तीन दिनों के उत्साह और लगन का चित्र आज भी मेरे सामने है। जब सम्मेलन समाप्त हुआ तो प्रत्येक व्यक्ति में, जो वहाँ उपस्थित था, एक नई स्फूर्ति व नई रोशनी विद्यमान थी।" सम्मेलन में सुरेन्द्रनाथ **बनर्जी** से यह प्रार्थना की गई कि वे देश-सेवा के कार्य के लिए तत्पर हों। सन् १८८४ ई० में बंगाल में नेशनल लीग की स्थापना की गई, जिसने एक ऐसा कार्य-क्रम अपनाया जो कांग्रेस के कार्य-क्रम से मिलता हुआ था। सन् १८८४ ई० में मद्रास में एक प्रान्तीय सम्मेलन हुआ जिसमें मद्रास महाजन सभा की स्थापना हुई। जनवरी १८८५ ई० में **'बोम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेसन'** की स्थापना की गई, जिसमें वहाँ के महान् नेताओं ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। दिसम्बर सन् १८८४ ई० में थियोसोफिकल सोसाइटी के ऊदयार अधिवेशन के उपरान्त १७ व्यक्ति जो देश के विभिन्न भागों से आए हुए थे **दीवान बहादुर रघुनाथराव** के निवास-स्थान पर एकत्रित हुए। **श्रीमती ऐनीबेसेण्ट** के शब्दों में उनका उद्देश्य था "देश के सभी राजनीतिज्ञों को एकत्रित करने का उपाय तथा ढंग पर विचार करना तथा देश की वर्तमान सरकार के उपायों तथा साधनों में सुधार करने के लिए एक राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भ करना जो भविष्य में देश को स्वराज्य की ओर ले जाने में सफल हो सके।" उन्होंने अपने को एक छोटी समिति में आबद्ध करने का निश्चय किया जिसमें विभिन्न नगरों के लोग स्वयं अपनी-अपनी जगह कार्य करके अन्य लोगों पर अपना प्रभाव डालते और साथ-साथ आगामी विचार-विनिमय के लिए वे एकत्रित भी हो सकें।"[1]

राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके कार्य

इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना हो ही गई थी। इसकी ओर से १८८३ ई० में कलकत्ते में एक 'राष्ट्रीय सम्मेलन' की आयोजना की गई। बंगाल प्रान्त के अनेक मान्य व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। इस सम्मेलन में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी से यह प्रार्थना की गई कि वे देश-सेवा के काय के लिए तत्पर हों। इस सम्मेलन ने एक ऐसा कार्य-क्रम अपनाया जो दो वर्ष बाद कांग्रेस द्वारा अपनाए कार्य-क्रम से बहुत कुछ मिलता है। तीन दिन के अधिवेशन में इसके कार्यों में जो उत्साह तथा व्यग्रता रही वही कांग्रेस का एक सर्वमान्य गुण बन गया। १८८४ ई० में मद्रास में एक प्रान्तीय सम्मेलन हुआ, बम्बई में भी जनवरी १८८५ ई० में **'बोम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन'** की स्थापना हुई, जिनमें वदरुद्दीन तैयबजी, फिरोजशाह मेहता, वे० दी० तैलंग तथा दिनशा, रायुल जी वाचा जैसे व्यक्तियों ने भाग लिया। इस सम्बन्ध में यह भी वर्णन करना आवश्यक है कि दिसम्बर १८८४ ई० में थियोसोफिकल सोसाइटी के ऊदयार-अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त, देश के सभी भागों का प्रतिनित्व करने वाले सत्रह प्रमुख व्यक्ति मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के मकान पर एक दूसरे से मिले। उनका उद्देश्य था कि देश के सभी राजनीतिज्ञों को एकत्रित करने

---

[1] "To form themselves into a group of provisional committee, men from different towns to win others, each in his own place, and to meet later for further consultation."

—**Annie Basent ; How India wrought for freedom, p. 1.**

का उपाय तथा ढंग पर विचार करना तथा देश की वर्तमान सरकार के उपायों तथा साधनों में सुधार करने के लिए एक राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भ करना जो भविष्य में देश को स्वराज्य की ओर ले जाने में सफल हो सके। उन्होंने अपने को एक छोटी समिति में संगठित करने का निश्चय किया, जिसमें विभिन्न नगरों के लोग स्वयं अपनी-अपनी जगह कार्य करके अन्य लोगों पर अपना प्रभाव डालते और साथ-साथ आगामी विचार-विनिमय के लिए वे एकत्रित भी हो सकें।

कांग्रेस का जन्म—जब विभिन्न प्रान्तों में उपर्युक्त संघों की स्थापना हो रही थी प्रेस देश की जनता से एक उद्देश्य से प्रेरित होकर एक रंग-मंच पर संगठित होने का अनुरोध कर रहा था तो **श्री ए० ओ० ह्यूम** ने, जो एक **सेवा-निवृत नागरिक** थे, कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उनसे देश सेवा के कार्य करने की प्रार्थना की। इस अपील का बड़ा प्रभाव पड़ा जिसके परिणाम-स्वरूप १८८४ ई० के अन्त में **इण्डियन नेशनल यूनियन** की स्थापना हुई। इस यूनियन ने १८८५ ई० में बड़े दिन की छुट्टियों के अवसर पर पूना में देश के विभिन्न भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा करने का निश्चय किया। इस सम्मेलन के दो उद्देश्य थे—

(१) सच्चे देशवासियों के पारस्परिक सम्पर्क में वृद्धि करना, तथा

(२) आगे आने वाले वर्ष के लिए राजनीतिक कार्यों की रूप-रेखा निश्चित करना।

श्री ह्यूम को इसे संगठित करने तथा सम्बन्धित सभी बातें करने का कार्य सौंपा गया। सम्मेलन आरम्भ होने के कुछ दिन पूर्व ही पूना में हैंजे का प्रकोप फैला, इस कारण सम्मेलन पूना के स्थान पर बम्बई में किया गया। सम्मेलन के प्रतिनिधि १८८५ की २७ दिसम्बर को बम्बई पहुंचे और दूसरे ही दिन सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हो गई। सम्मेलन का नाम इण्डियन नेशनल कांग्रेस रखा गया।

कांग्रेस की विशेषताएँ--जैसा कांग्रेस के नाम से स्पष्ट है **यह एक राष्ट्रीय संस्था है, जातिगत, साम्प्रदायिक तथा किसी विशिष्ट दल की नहीं**। यह राष्ट्रीय है, क्योंकि यह सभी हितों तथा दलों के प्रतिनिधित्व एवं भारतीय राष्ट्र की ओर से बोलने का दावा करती है। यह एक ऐसी संस्था है जो सामूहिक रूप से सबका प्रतिनिधित्व करती है। इसकी विशेषता के विकास में अनेक बातों का योग रहा है। कोई भी अकेला वर्ग या प्रान्त इस संस्था पर अपना अधिकार रखने का दावा नहीं कर सकता। १८८५ ई० में इसके जन्म के उपरान्त विभिन्न जातियों तथा देश के सभी भागों के निवासियों ने इसके उस स्वरूप के निर्माण में सहायता पहुँचाई है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाई, यूरोपियनों तथा आंग्ल-भारतीयों तक ने इसके विकास में सहायता प्रदान की। देश से प्रेम रखने वाले तथा उसके लिए कार्य करने एवं कष्ट सहने वाले सभी स्त्री-पुरुष इसके सदस्य बन सकते हैं, इसमें जाति-पाँति, वर्ण, धर्म आदि का कोई बन्धन नहीं है। **जिन व्यक्तियों ने इसकी कल्पना की तथा इसकी उत्पत्ति करने का प्रयत्न किया वे विभिन्न जातियों के तथा देश के विभिन्न प्रान्तों के निवासी थे, परन्तु उनका दृष्टिकोण व्यापक था। वह अखिल भारतीय**

था। कांग्रेस ने अपने इस अखिल भारतीय दृष्टिकोण को न कभी छोड़ा है और न कभी एक क्षण के लिए भुलाया है। पिछली अर्द्ध-शताब्दी में जिन समस्याओं का इसको सामना करना पड़ा है उसने इनको इसी भारतीय दृष्टिकोण से देखा तथा समाधान किया है। इन समस्याओं के निराकरण में अविभाज्य भारत के कल्याण की भावना ने ही इसका पथ-प्रदर्शन किया है। **इसने अपने निर्णय को सामुदायिक, वर्गहित या प्रान्तीयता की भावना से आच्छादित नहीं होने दिया है।** इसके वार्षिक अधिवेशनों का स्थान सदैव बदलता रहा है और यह स्थान चाहे जहाँ भी रहा हो देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया है और इसकी राष्ट्रीय विशेषताओं तथा दृष्टिकोण को सदा बनाए रखा है। इसका प्रारम्भ एक मध्य वर्ग की संस्था के रूप में हुआ, परन्तु कुछ समय उपरान्त ग्रामीण क्षेत्रों तथा मजदूर-वर्ग के प्रतिनिधि भी इसमें भाग लेने लगे। इसके अधिवेशनों को नगरों से हटाकर गाँव में करने के विचारों को १९३७ ई० में कार्य-रूप में परिणित किया गया और इस प्रकार देश की विस्तृत सीमा से घिरे सात लाख गाँवों की मूक तथा अर्द्ध-भूखी जनता का भी प्रतिनिधित्व करने का भी इसे अवसर मिला। जो इसको हिन्दुओं या पूंजीपतियों, जमींदारों या किसानों की संस्था मानते हैं, उनके विचारों का कोई वास्तविक आधार नहीं है। यह सत्य है कि कुछ विशिष्ट व्यक्ति तथा उन व्यक्तियों द्वारा संचालित संस्थाएं कांग्रेस को सारे देश का प्रतिनिधित्व करने का गौरव प्रदान नहीं करतीं, परन्तु इससे कांग्रेस के दावे की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। कांग्रेस ने केवल सेवा-अधिकार द्वारा ही सारे भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने का दावा किया है।

कांग्रेस के उद्देश्य

यद्यपि पिछली अर्द्ध शताब्दी के अपने ऐतिहासिक जीवन में इसके राष्ट्रीय आकार में कोई अन्तर नहीं पड़ा है, फिर भी इसके उद्देश्य समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं। साध्य के परिवर्तन के साथ-साथ साधनों में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। प्रारम्भ में इसकी मांगें विनम्र थीं। राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों पर जनता के विचारों का संगठन तथा वैधानिक रूप से भारतीयों की कठिनाइयों व असुविधाओं को दूर कराने के अतिरिक्त इसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं था। श्री **उमेश चन्द्र बनर्जी** ने, जो १८८५ ई० के कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सदस्य थे, अपने भाषण में कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्य व्यक्त किए—

कांग्रेस के उद्देश्य

(१) **देशवासियों में पारस्परिक सम्पर्क की स्थापना।**
(२) **राष्ट्रीय भावनाओं का विकास।**
(३) **सामाजिक समस्याओं पर प्रभावित लेख लिखना।**
(४) **राजनीतिक जन-हित के कार्यों पर विचार करना।**

(१) **देशवासियों में पारस्परिक सम्पर्क की स्थापना**— साम्राज्य के विभिन्न भागों में फैले सच्चे देशवासियों का पारस्परिक सम्पर्क तथा प्रगाढ़ मैत्री करना।

(२) **राष्ट्रीय भावनाओं का विकास**—व्यक्तिगत मित्रता तथा मेल-मिलाप

द्वारा देशवासियों के मध्य जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता की संकीर्ण भावना का विनाश तथा राष्ट्रीय एकता की उन भावनाओं का विकास तथा संगठन जिनकी उत्पत्ति सर्वप्रिय लार्ड रिपन के चिरस्मरणीय शासन-काल में हुई थी।

(३) **सामाजिक समस्याओं पर प्रभावित लेख लिखना**—समय की कुछ अधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक सामाजिक समस्याओं पर शिक्षित भारतीय वर्ग के विचारों पर प्रामाणिक लेख लिखना।

(४) **राजनीतिक जन-हित के कार्यों पर विचार करना**—उन उपायों पर विचार करना जिनके अनुसार आगामी बारह मास तक देश के राजनीतिज्ञ जन-हित के कार्य किए जाएँ।

अपने जीवन के प्रारम्भिक कुछ वर्षों तक कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के प्रस्तावों का निरीक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि वह विनम्र भाषा में देश के शासन में थोड़ा-बहुत सुधार चाहती थी। व्यवस्थापिका-सभा में सुधार करना इसका एक मुख्य उद्देश्य था। १८९० ई० में कांग्रेस की ओर से एक प्रतिनिधि-मण्डल इंगलैण्ड गया, जिसका उद्देश्य कांग्रेस के विचारों का प्रतिनिधित्व तथा उसकी इच्छानुसार देश के राजनीतिक सुधारों का अंग्रेजी जनता के सामने स्पष्टीकरण करना था। इस वर्ष के प्रस्ताव में कांग्रेस ने विधान-मण्डलों का लोकतन्त्रात्मक ढंग पर पुनर्निर्माण करने पर बल दिया था। इसका कारण यह था कि अभी कांग्रेस का बाल्यकाल था और उसमें आत्मनिर्भरता तथा दूसरों पर अपना प्रभाव जमाने की शक्ति नहीं थी। वाम पक्ष के उदय तथा प्रभाव के उपरान्त ही उसमें इस शक्ति तथा विश्वास का जन्म हुआ। इसके बाद उसने प्रार्थना करने की नीति का परित्याग किया और वह 'स्वराज्य' को अपना अधिकार समझने लगी। **सन् १९०६ ई० के पूर्व कांग्रेस के रंग-मंच से 'स्वराज्य' शब्द का नारा नहीं लगाया गया था, परन्तु अब दादा भाई नौरोजी ने सभापति के पद से भाषण करते हुए कहा, "कांग्रेस का उद्देश्य युनाइटेड किंगडम तथा उपनिवेशों के समान ही स्वशासन या स्वराज्य प्राप्त करना है।"** किन्तु इस घोषणा के करने से कांग्रेस की कार्य-प्रणाली में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं हुआ। ब्रिटिश राष्ट्र की सत्यता, न्याय तथा ईमानदारी पर इसका विश्वास बना रहा और यह आशा करती रही कि भारतीयों की इच्छाओं तथा देश की परिस्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होने पर अंग्रेज-सरकार समय की पुकार के अनुसार आचरण करेगी, देश में जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं की स्थापना होगी और भारतीय हितों के अनुसार यहाँ की जनता को स्वशासन के अधिकार प्राप्त होंगे। दादा भाई की प्रसिद्ध घोषणा के बहुत समय उपरान्त तक यह आशा बनी रही, **किन्तु महात्मा गांधी के कांग्रेस में प्रवेश करने तथा अमृतसर की दुःखद घटना के उपरान्त कांग्रेस को अपनी विचार-धारा तथा उपायों में परिवर्तन करना पड़ा।** उसने सरकार के समक्ष अपनी माँगों को प्रस्तुत करने का पुराना उपाय त्याग दिया और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने बल पर खड़ा होना सीखा। इसने एक देश-व्यापी संगठन बनाया, जनता में राजनीतिक प्रचार करना आरम्भ

किया और सक्रिय विरोध के अनेक प्रदर्शन किए। **कुछ समय पश्चात् उसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता हो गया और उसकी प्राप्ति का उपाय अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा हुआ।** अतः इस प्रकार कांग्रेस के साध्य तथा साधनों में महत्वपूर्ण तथा मौलिक परिवर्तन हुए।

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास

उपयुक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास कांग्रेस के विकास के बहुत निकट है। कांग्रेस का इतिहास निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

प्रथम युग—कांग्रेस के इतिहास में यह युग १८८५ से १९०७ तक रहा। १८८५ ई० में कांग्रेस का जन्म हुआ और १९०७ ई० के सूरत अधिवेशन के उपरान्त कांग्रेस में दो दल हो गए और उग्रदल वालों ने कांग्रेस से अपने आप को अलग कर लिया। कांग्रेस में उस समय के समस्त भारतीय सम्मिलित थे, केवल सर सैयद अहमद खाँ इससे अलग रहे, क्योंकि वे राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर रहना अधिक हितकर समझते थे। उस समय वह वास्तव मे एक राष्ट्रीय संगठन था। इस सम्बन्ध में यह आज की कांग्रेस से भिन्न थी, क्योंकि इधर इसकी सदस्यता में उदार विचारों वाले, मुस्लिम लीगी, हिन्दू सभाई तथा अन्य साम्प्रदायिक संस्थाओं के व्यक्ति सम्मिलित रहे हैं, परन्तु इस तथ्य के कारण भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने तथा उसकी ओर से बोलने के अधिकार में कोई कमी नहीं पड़ी। लोकमान्य तिलक तथा कुछ लोगों के अतिरिक्त कांग्रेस के नेता देश की साधारण जनता के सम्पर्क में नहीं थे। वह केवल शिक्षित वर्ग तथा मध्यम वर्ग की मांगें तथा आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती थी। **१८९० ई० में कांग्रेस का एक प्रतिनिधि-मण्डल इंगलैण्ड गया जिसका उद्देश्य ब्रिटिश जनमत को अपने अनुकूल बनाना और कौंसिल में सुधार करने के लिए उनकी सहायता प्राप्त करना था।** इस प्रतिनिधि-मण्डल के साथ-साथ इंगलैण्ड में कार्य करने के लिए पाँच अङ्गरेजों की एक समिति नियुक्त की गई। जनता के साधारण ज्ञान के लिए इस समिति ने छोटी-छोटी पत्रिकाओं का वितरण किया तथा बड़े-बड़े नगरों में सभाएँ कीं। 'इण्डिया' नामक एक पत्र का भी प्रकाशन किया गया जिसने सरकार तथा जनता को इस देश से सम्बन्ध रखने वाली बातों से अवगत कराया।

उग्रवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव—सरकार की नीति के कारण कांग्रेस के अन्तर्गत उग्रवादी विचार धारा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके समर्थक श्री बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्र पाल थे। इसी नवीन दल के कारण सूरत की प्रसिद्ध फूट हुई। इस दल को कांग्रेस से १९०७ से १९१५ तक अलग रहना पड़ा। कांग्रेस के साध्य तथा साधनों को भली प्रकार समझने के लिए उन घटनाओं का अध्ययन आवश्यक है जिन्होंने एक नवीन कार्यक्रम के साथ इस दल को जन्म दिया। ये घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) **युवक दल का अविश्वास**—१८९२ के अधिनियम के पारित होने के उपरान्त कांग्रेस को सफलता प्राप्त नहीं हुई। १९०७ ई० तक यह केवल प्रस्ताव पास

करती रही, किन्तु इसका कोई प्रभाव इंगलैण्ड की सरकार पर विशेष रूप से नहीं पड़ा, इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस के युवक सदस्य व्यग्र हो उठे। उन्होंने **प्रस्ताव पास करने के ढंग पर जिसको वे भीख माँगने का ढंग कहकर सम्बोधित करते थे, अविश्वास प्रगट करना आरम्भ किया।** इनकी श्रद्धा ब्रिटिश न्याय तथा कर्त्तव्य-निष्ठा से उठ गई। विधान-मण्डलों में भी किए गए सुधारों से लोगों को संतोष नहीं हुआ, जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा विधान-मण्डलों में प्राप्त सफलता की न्यूनता से देश में बड़ी निराशा फैली।

उग्रवादी विचार-धारा

(१) युवक दल का अविश्वास।
(२) अकाल तथा प्लेग-सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति।
(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य।
(४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति।
(५) बंगाल-विभाजन।
(६) कांग्रेस के प्रतिनिधि-मण्डल से मिलने से इन्कार।
(७) विदेशी घटनाएँ।

(२) अकाल तथा प्लेग सम्बन्धी अंग्रेजों की नीति—सन् १८९६–९७ ई० में एक बड़ा भारी अकाल पड़ा। जिसका प्रभाव ७०,००० वर्ग मील और दो करोड़ भारतीयों पर पड़ा। सरकार का सहायता-कार्य बड़ा ही असंतोषप्रद था। सभी कार्य धीरे-धीरे तथा अव्यवस्थित रूप से हुआ। इसके साथ-साथ प्लेग का भी प्रकोप हुआ, जिसके कारण बम्बई प्रेसीडेन्सी के पश्चिमी भाग में बड़ी हलचल मच गई। इस महामारी का सामना करने के लिए बम्बई सरकार ने जो उपाय अपनाए उनके कारण भी जनता में असंतोष की लहर फैली। इनमें सबसे बड़ा अवगुण यह था कि समस्त कार्य सरकारी पदाधिकारियों पर छोड़ दिया गया जो सब विदेशी थे। उन्होंने उत्साह, लगन तथा स्वार्थहीनता से काम नहीं किया। लाखों व्यक्तियों का भूख तथा प्लेग से मरना देशवासियों को बाध्य होकर देखना पड़ा।

(३) महाराष्ट्र में दमन-कार्य—पूना के प्लेग कमिशनर तथा श्री रैण्ड के विरुद्ध लोगों की भावना इतनी उग्र हुई और समाचार-पत्रों की विशेषतः, **लोकमान्य तिलक द्वारा सम्पादित 'केसरी' की आलोचना इतनी प्रखर थी कि दंगा आरम्भ हो गया और एक भावुक नवयुवक ने श्री रैण्ड तथा उसके साथी लेपिटनेण्ट अर्स्ट को गोली से मार दिया।** इस पर सरकार द्वारा महाराष्ट्र में दमन-कार्य किया गया। तिलक पर रैण्ड तथा अर्स्ट की हत्या का अभियोग लगाया गया। उनको प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति प्रदान नहीं की गई। इस घटना पर मद्रास के 'हिन्दू' नामक समाचार-पत्र की टिप्पणी बड़ी ही महत्वपूर्ण तथा उद्धृत करने योग्य है। उसने लिखा कि—

"लोगों को अपनी असहाय दशा तथा राजनीतिक परतन्त्रता की याद दिलाने वाली पिछली चालीस वर्षों में बम्बई सरकार की काली करतूतों से बढ़कर कोई घटना नहीं हुई।"

(४) लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियात्मक नीति—उक्त घटनाओं से महत्वपूर्ण

लार्ड कर्जन की सरकार की प्रतिक्रियात्मक नीति थी। उसका सप्तवर्षीय शासन-काल **'मिशन, ओमिशन तथा कमिशन'** से भरपूर था। ब्रिटिश साम्राज्यवादिता के इस दूत ने जागृत भारत की समस्त आकांक्षाओं तथा महत्वाकांक्षाओं को पैरों तले रौंद डाला। उसकी सीमा-नीति तथा तिब्बत को प्रतिनिधि-मण्डल भेजने की बड़ी प्रखर आलोचना हुई। सन् १९०४ ई० का 'ऑफिशियल सीकरेट एक्ट' 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' तथा 'इण्डियन यूनिवर्सिटीज एक्ट' युग की पुकार के विरोधी थे और इसीलिए इनकी व्यापक आलोचना हुई। इनके अतिरिक्त उसने भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य बतलाया और शिक्षित वर्ग पर बेईमानी का दोष आरोपित किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए—

"इसमें संदेह नहीं कि पूर्व में आदर पाने से कहीं पहले सत्य को पश्चिम में बहुत उच्च स्थान मिला था। पूर्व में तो धूर्तता तथा कूटनीति-सम्बन्धी चालकी का सदैव आदर हुआ है।"

भारतीय चरित्र के सम्बन्ध में लार्ड कर्जन के इस अन्यायपूर्ण तथा झूठे कथन का बड़ा विरोध किया गया और भारतीय पत्रों ने इन आरोपों तथा झूठे तथ्यों का करारा उत्तर प्रकाशित किया।[1]

(५) बंगाल विभाजन—इतना ही नहीं उसके युग का सबसे महत्वपूर्ण तथा निकृष्ट कार्य बंगाल विभाजन था, जिसने उसको बंगाल की जनता की इच्छा के विरुद्ध लादा। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारण: यह विश्वास था कि प्रान्त के विभाजन का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का दमन तथा वहां के हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालना था। **श्री ए० सी० मजूमदार** के अनुसार "लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल का दौरा किया। मुसलमानों की बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया और उनको यह समझाया कि बंगाल का विभाजन करने में उसका उद्देश्य शासन-भार कम करना ही नहीं, अपितु एक मुसलमानी प्रान्त का निर्माण करना भी था, जहां इस्लाम तथा उसके अनुयायी प्रभावशाली बने रहें।"

बंगाल निवासियों ने इस अपमान को सहन न करने का निश्चय किया। उन्होंने सरकार द्वारा दी गई चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने इसके विरु एक विशाल आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने ब्रिटिश माल के बहिष्कार का व्रत लिया। लोगों को यह प्रतिज्ञा करने का आदेश दिया गया कि जब तक विभाजन का अन्त नहीं किया जाता उस समय तक कोई ब्रिटिश सामान का क्रय न करे। इस प्रतिज्ञा का एक अन्य उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश जनता द्वारा भारतीय विषयों की उपेक्षा तक वर्तमान सरकार का जनमत की ओर ध्यान देने का विरोध।

---

[1] "Curzon propounded the provocative thesis that the ideal of truth is largely a western conception, while in the East, craftiness and diplomatic wile have always been held in high repute."

—**K. R. Bombwell : Indian Politics and Government. p.. 76.**

इस आन्दोलन को बड़ी सफलता प्राप्त हुई, जिसके कारण नौकरशाही के छक्के छूट गए, यद्यपि इनके द्वारा आन्दोलन को असफल बनाने की पूर्ण कोशिश की गई थी। सरकार की दमन नीति के कारण बंगाल में एक आतंकवादी दल का जन्म हुआ। उन्होंने सरकार की दमन-नीति का उत्तर हिंसात्मक कार्यों द्वारा दिया। इस प्रकार भारत के राजनीतिक शितिक्ष पर एक नवीन विचारधारा तथा दृष्टिकोण का जन्म हुआ।

(६) **कांग्रेस के प्रतिनिधि-मण्डल से मिलने से इन्कार**—१९०४ ई० के कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसका उद्देश्य शिक्षा तथा कलकत्ता कारपोरेशन के सहकारीकरण के प्रयत्नों का विरोध था। उस वर्ष के सभापति **सर हेनरी कॉटन** की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि-मण्डल वाइसराय के पास भेजने का निश्चय किया गया। **लार्ड कर्जन ने इस प्रतिनिधि-मण्डल से मिलना अस्वीकार किया।** कांग्रेस ने इसमें अपना अपमान समझा और उसने गोपालकृष्ण गोखले और लाला लाजपतराय को इङ्गलैण्ड भेजा। वहाँ से लौटने पर लाला लाजपतराय ने देशवासियों को वतलाया कि अंग्रेज जनतन्त्र अपने कार्यों में इतना संलग्न है कि यह भारत के लिए कुछ नहीं कर सकता और इसके अतिरिक्त ब्रिटिश पत्र भारतीय आकांक्षाओं को प्राथमिकता देना नहीं चाहते। इङ्गलैण्ड में अपनी मांगों के ऊपर ध्यान दिलवाना बड़ा कठिन है। वहाँ आंग्ल-भारतीयों का प्रभाव तथा उनकी साख इतनी अधिक है कि इङ्गलैण्ड में संगठित किया हुआ कांग्रेस का विरोध उसकी तुलना में हल्का पड़ेगा। संक्षेप में, लाला लाजपतराय ने अपने देशवासियों को अपने पैरों पर खड़े होने तथा अपने ही प्रयत्नों पर भरोसा रखने का आदेश दिया।

(७) **विदेशी घटनाएँ**- भारत के बाहर भी इस समय कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने नई पीढ़ी के दृष्टिकोण को प्रभावित किया। ब्रिटिश उपनिवेशों, विशेषत: दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के प्रति बड़ा अपमानपूर्ण व्यवहार हो रहा था। **एबीसीनिया की सेनाओं ने इटली की सेनाओं को १८९३ ई० में परास्त किया तथा रूसी सेना को जापानी सेना से १९०५ ई० में परास्त होना पड़ा।** इन घटनाओं तथा अन्य देशों में हुए आन्दोलनों ने भारतीय युवकों को बड़ा प्रभावित किया और वे विचार करने लगे 'क्या हम भी भविष्य में ग्रेट ब्रिटेन को चुनौती देने योग्य नहीं हो सकते ?

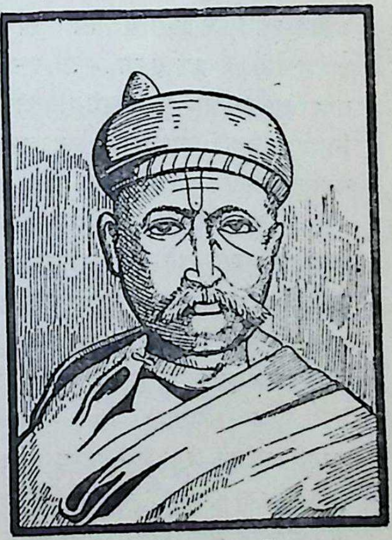

लोकमान्य तिलक

उग्र-दल—उपर्युक्त घटना द्वारा कांग्रेस के अन्तर्गत एक नया दल पनपने लगा और उन्होंने कांग्रेस की भिक्षावृत्ति का डटकर विरोध किया। लोकमान्य तिलक ने

नारा लगाया कि स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। वास्तव में दोनों दलों में साधन का अन्तर था साध्य का नहीं। इस नवीन दल का जन्म १९०५ ई० में हुआ जब उसने कांग्रेस मंच पर ही अपने उद्घाटन के सम्बन्ध में एक सभा का आयोजन किया। यह दल कांग्रेस के अन्तर्गत १९०७ ई० तक रहा। सूरत अधिवेशन के अवसर पर दोनों दलों की शक्ति के बीच पारस्पारिक होड़ लगी। उसमें उदार दल की विजय हुई और दूसरा दल कांग्रेस से अलग हो गया।

कांग्रेस का विधान—सूरत कांग्रेस ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के लिए एक विधान तथा उसकी सभाओं के नियमों तथा उपनियमों के निर्माण-कार्य के लिए लगभग सौ प्रसिद्ध व्यक्तियों की इलाहाबाद में एक समिति का आयोजन किया, जिसने एक विधान तथा नियमों की तालिका प्रस्तुत की। उसके अनुसार "इण्डियन नेशनल कांग्रेस का उद्देश्य भारतवासियों के लिए उस प्रकार की सरकार प्राप्त करना है जैसे ब्रिटिश साम्राज्य के स्वयं-शासित उपनिवेशों में है। साथ ही साथ वह साम्राज्य के अधिकारों तथा उत्तरदायित्व में उन्हीं की भाँति भारत को भी भाग दिलाना चाहती है। इन ध्येयों की प्रगति का प्रयत्न वैधानिक उपायों, शासन की वर्तमान प्रणाली में धीरे-धीरे सुधार, राष्ट्रीय एकता तथा जन-सेवा की भावना के विकास तथा देश की बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक तथा औद्योगिक देन के संगठन द्वारा हो।"

नए विधान का परिणाम—नये विधान ने उन समस्त देशवासियों को कांग्रेस से अलग कर दिया जो कार्य करने के अधिक साहसपूर्ण, स्फूर्तिमय तथा प्रभावशाली ढंग के पक्षपाती थे। उसने उस बहिष्कार तथा निष्क्रिय प्रतिरोध पर भी ध्यान नहीं दिया जिस पर लोकमान्य तिलक तथा उसके साथियों ने बल दिया था। इस प्रकार इसने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नरम दल को एक नवीन स्फूर्ति व शक्ति प्रदान की। कुछ समय में ही इस दल का कांग्रेस पर अधिकार हो गया। तिलक तथा लाजपतराय जैसे उग्र विचारवादियों को बन्दी-गृहों में डालकर तथा देश-निर्वासन देकर सरकार ने नरम दल वालों को उनके कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की।

क्रान्तिकारी आन्दोलन—इस युग में क्रान्तिकारी आन्लोदन भी प्रारम्भ हुआ, जिसके प्रारम्भ होने के कारण वे ही थे जिन्होंने उग्रवादी दल को जन्म दिया। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीयता के विकास में कोई विशेष महत्वपूर्ण भाग भी नहीं लिया। इसका वर्णन संक्षिप्त रूप में किया जायगा। क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म महाराष्ट्र में हुआ, किन्तु शीघ्र ही इसका प्रभाव तथा प्रचार बंगाल में आरम्भ हो गया। लार्ड कर्जन के बंगाल-विभाजन तथा स्वदेशी आन्दोलन द्वारा आन्दोलन को बड़ा बल प्राप्त हुआ। सरकार की दमन-नीति के कारण इस आन्दोलन ने बड़ा उग्र रूप धारण किया। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता बंगाल में अरविन्द कुमार घोष तथा स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई भूपेन्द्र दत्त थे। उन्होंने युगान्तर तथा 'संध्या' नामक **समाचार-पत्रों द्वारा क्रान्तिकारी आन्दोलन** का प्रचार किया। सरकार ने इनका दमन बड़ी शीघ्रता से किया, जिसके कारण क्रान्तिकारियों की कई

गुप्त समितियों का निर्माण हुआ और उन्होंने राजनीतिक हत्याएँ तथा डकैतियां डालनी आरम्भ कर दीं। सन् १९०७ ई० में क्रान्तिकारियों ने मिदनापुर के समीप उप-गवर्नर की रेलगाड़ी को बम द्वारा ध्वंस करने का प्रयत्न किया। फरीदपुर के जिला मजिस्ट्रेट को गोली द्वारा घायल किया गया। ऐसी घटना मुज्जफ्फरनगर में भी हुई, क्रान्तिकारियों ने किंग्सफोर्ट जज का वध करने के लिए उसके बंगले से आती हुई एक गाड़ी पर बम फैंका। गाड़ी में श्री किंग्सफोर्ड के स्थान पर दो महिलाएँ थीं। क्रान्तिकारियों का नेता खुदीराम बन्दी बना लिया गया और उसको प्राण-दण्ड मिला। भारतीयों पर इस नवयुवक के बलिदान का बड़ा प्रभाव हुआ। क्रान्तिकारियों ने कलकत्ते में एक बड़े षडयन्त्र की तैयारी की, किन्तु सरकार को इसका पता लग गया, क्रान्तिकारी बन्दी बना लिए गए। यह षड्यन्त्र 'अलीपुर षड्यन्त्र केस' के नाम से विख्यात है। दो नवयुवकों को प्राण-दण्ड और एक को काले-पानी की सजा मिली। बाद में क्रान्तिकारियों ने सरकारी वकील आशुतोष विश्वास को गोली से मार डाला।

विदेशों में क्रान्तिकारी दल—क्रान्तिकारी अपने आपको भारत की सीमा तक संकुचित नहीं रख सके। उन्होंने लन्दन में भी अपने केन्द्रों की स्थापना की। भारत में क्रान्तिकारियों ने नासिक के मजिस्ट्रेट का वध किया तथा भारत के वाइसराय लार्ड मिण्टो तथा उसकी पत्नि के ऊपर बम फैंके, किन्तु बम के न फटने के कारण वे बच गए। कुछ ऐसे भी क्रान्तिकारी थे जो भारत के बाहर रहकर अंग्रेजों के शत्रुओं से सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में थे, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई।

सरकार की दमन नीति—क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण भारत सरकार सहम गई थी। उसने नरम दल वाले, मुसलमान तथा जमींदारों को अपना कृपापात्र बनाने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर सरकार ने राजनीतिक उग्रवादिता तथा क्रान्तिकारी कार्यों का शक्ति से दमन करना आरम्भ कर दिया। लाला लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह और लोकमान्य तिलक को वन्दी बनाकर माण्डले भेज दिया गया। सभा, समाचार-पत्रों तथा संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने नए दमनकारी एक्टों का निर्माण किया और उनको बड़ी कठोरता के साथ लागू किया गया। इस प्रकार सन् १९०६ से १९१० ई० तक एक ओर अपूर्ण क्रान्तिकारी कार्यों की भरमार रही और दूसरी ओर उनका वैसा ही भयंकर दमन हुआ। भारत-सरकार ने दो अधिनियम बनाए जिनमें से एक सन् १९०७ ई० का सिडिशस मीटिंग्स एक्ट और दूसरा सन् १९०८ ई० का समाचार-पत्र अधिनियम था। प्रथम अधिनियम द्वारा स्थानीय अधिकारियों को अधिकार प्राप्त हुआ कि वे किसी भी भाषा में बोलने पर प्रतिबन्ध तथा राजनीतिक सभाओं के करने पर प्रतिबन्ध लगा सकते थे। द्वितीय अधिनियम द्वारा जिलाधीश को मुद्रणालय पर अधिकार करने या नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त हुआ। सन् १९०८ ई० में एक दूसरा अधिनियम पारित हुआ जो **क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट एक्ट** के नाम से विख्यात है। इसके द्वारा क्रान्तिकारी कार्यों के करने वालों पर एक विशेष प्रकार का मुकदमा

चलाने का निश्चय किया गया और सरकार को किसी भी समुदाय को अवैध घोषित करने का अधिकार मिला। जनता द्वारा सरकार की दमन-नीति का घोर विरोध किया गया।

इन विधियों को बहुत कठोरता से लागू किया गया। स्वयं भारत-मन्त्री लार्ड मार्ले ने 'उनको वीभत्स, अत्यन्त उग्र और अनुचित' की संज्ञा प्रदान की। उन्होंने १४ दिसम्बर १९०८ ई० को वाइसराय लार्ड मिण्टो को लिखा कि 'राजद्रोह और अन्य अपराधों के सम्बन्ध में जो दिल दहलाने वाले दण्ड दिए जा रहे हैं, उनके कारण मैं अत्यन्त चिन्तित और चकित हूँ।......हम व्यवस्था चाहते हैं, किन्तु व्यवस्था लाने के लिए घोर कठोरता से सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। उसका परिणाम ही उल्टा होगा और लोग बम का सहारा लेंगे।'

एक ओर तो भारत सरकार क्रान्तिकारियों तथा उग्रवादिता का दमन करने में कठोरता से संलग्न थी, दूसरी ओर इंगलैण्ड की संसद ने १९०९ का अधिनियम पास किया, जिसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहा पर्याप्त होगा कि भारतवासियों को इस अधिनियम द्वारा जो अधिकार प्राप्त हुए उनसे जनता को सन्तुष्टि नहीं हो पाई। इन सुधारों का सबसे बड़ा दोष यह था कि इनके द्वारा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया, जिसने हमारी राष्ट्रीय उन्नति में भयंकर रोड़ा अटकाया है। इस सम्बन्ध में १९०९ ई० में हुए कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया—

"धार्मिक आधार पर अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों के निर्माण का विरोध करना कांग्रेस अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझती है और उसको इसका दुःख है कि अधिनियम के उपबन्धों का निर्माण उस उदार भावना से नहीं हुआ जिससे लार्ड मार्ले की पिछले वर्ष की सुधार योजनाएँ प्रेरित थीं।" वास्तव में इस कार्य द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारत के राजनीतिक जीवन में यह विष-वृक्ष बो दिया जो साम्प्रदायिकता के विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग में बहुत काल तक अड़ंगा बना रहा और जो देश के विभाजन का कारण बना। इस अधिनियम के सम्बन्ध में स्वयं लार्ड मार्ले ने कहा था कि 'यदि उसे इस बात की तनिक भी आशंका होती कि जिन परिवर्तनों की उसने सिफारिश की है उनका यह परिणाम होगा तो वह कभी भी ऐसा कार्य न करता।

मुस्लिम साम्प्रदायिकता— क्रान्तिकारी आन्दोलन की सरगर्मी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण अङ्गरेज बड़े भयभीत हुए और उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट डालने के अभिप्राय से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का विष बोया। कांग्रेस के प्रारम्भिक इतिहास से स्पष्ट है कि इस संस्था को मुसलमानों का हिन्दुओं के समान पूर्ण समर्थन प्राप्त था। अंग्रेजों ने मुस्लिम समाज में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया जो कांग्रेस को हिन्दुओं के संस्था के नाम से पुकारने लगा और सोचने लगा कि वह अपने हितों की रक्षा अङ्गरेजों से मित्रता करके ही कर सकता है। १८५७ ई० के उपरान्त अङ्गरेजों की दमन-नीति के शिकार हिन्दुओं की

मुसलमान अधिक हुए। अतः सरकार ने उनको अपनी ओर मिलाने के लिए अपनी नीति में परिवर्तन करना आरम्भ किया। अङ्गरेज अपनी कूटनीति में पूर्ण सफल हुए। सर सैयद अहमद खाँ पर अङ्गरेजों का बड़ा प्रभाव पड़ा था और मुस्लिम समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मोहमडन एंग्लो ओरिएण्टल कालिज के प्रिंसिपल श्री बेक के प्रभाव में आकर सर सैयद अहमद खाँ की यह धारणा बन गई कि मुसलमानों को अङ्गरेजों की मित्रता से अधिक लाभ प्राप्त होगा। उनके प्रचार का मुसलमानों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे कांग्रेस से अलग होने लगे। १९०६ ई० में लार्ड मिण्टो के इशारे पर मुसलमानों के एक शिष्ट मण्डल ने शिमला में वाइसराय से पृथक निर्वाचन की मांग मुसलमानों के लिए की। उसने उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया, जिनके द्वारा मुसलमान अङ्गरेजी राज्य के भक्त बन गए। ३० दिसम्बर १९०६ ई० को ढाका में एक मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन का आयोजन हुआ। वहाँ मुस्लिम लीग की स्थापना की गई। इस प्रकार भारत सरकार का संरक्षण प्राप्त कर,मुसलमानों ने मुस्लिम लीग की स्थापना की। यह राजभक्त संस्था थी और यह अङ्गरेजों की उंगलियों पर नाचती थी। लार्ड मिण्टो के प्रयत्नों से १९०९ के अधिनियम में साम्प्रदायिक-प्रतिनिधि-व्यवस्था-सिद्धान्त को स्वीकार किया गया, यद्यपि भारत-मन्त्री लार्ड मार्ले स्वयं इस पक्ष का विरोधी था।

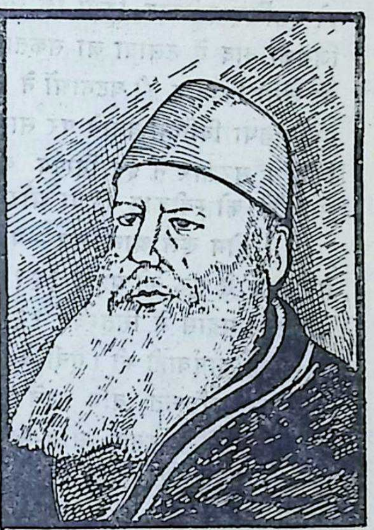

सर सैयद अहमद खाँ

दूसरा युग—१९०८ से १९१५ तक कांग्रेस के कार्यों में कुछ बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इस समय नरम दल वाले राजनीतिज्ञों का देश में प्रभाव था और उग्र दल उससे बिल्कुल अलग हो गया था। क्रान्तिकारियों का दमन बड़े जोरों से किया गया, जिसके कारण उनका उत्साह मन्द हो गया था। कांग्रेस प्रस्तावों द्वारा अपनी मांग रखती रही, १९११ ई० में सम्राट के भारत आगमन पर कांग्रेस ने स्वामीभक्ति का बड़ा प्रदर्शन किया, किन्तु उसको अपने उद्देश्यों की सफलता में कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। सम्राट ने बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया, जिसके ऊपर कांग्रेस ने असीम कृतज्ञता प्रगट की। १९१४ ई० में श्रीमती ऐनी बेसेण्ट कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। इसी वर्ष लोकमान्य तिलक जेल से छूटकर आए थे।

कांग्रेस लीग समझौता—१९१६ ई० में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन हुआ जो इस संस्था के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिवेशनों में गिना जाता है। इसका कारण यह है कि सूरत की फूट के उपरान्त नरम दल वालों ने सम्मिलित रूप से इस सम्मेलन में भाग लिया और कांग्रेस का कार्य तीव्र गति से चलने लगा। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मैत्रीपूर्ण भावना का

उदय होना। मुस्लिम लीग का अधिवेशन भी लखनऊ में हुआ था। इन दोनों को एक दूसरे के समीप लाने में श्री मुहम्मद अली जिन्ना का विशेष हाथ था। पारस्परिक वाद-विवाद के उपरान्त कांग्रेस-लीग योजना का निर्माण हुआ, जिसको दोनों ने स्वीकार किया। यह समझौता साधारणतः **लखनऊ पैक्ट** के नाम से विख्यात है। दोनों संस्थाओं में मेल तथा सहयोग की स्थापना के लिए कांग्रेस को बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ी। इसको अलग-अलग साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को राष्ट्रीयता तथा लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ा। वास्तव में कांग्रेस ने इस सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार किया कि उसको विश्वास था कि वह एक अस्थायी प्रबन्ध था जिसको बाद में टलाया जा सकता था। परन्तु यह विश्वास बालू की भीत के समान था जैसा कि बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया। कांग्रेस ने अल्प-संख्यकों को अधिक स्थान तथा विधियाँ बनाने पर साम्प्रदायिक निषेधाधिकार के भी सिद्धान्त को स्वीकार किया। सरकार ने इस निर्णय को स्वीकार नहीं किया। उसने केवल साम्प्रदायिक समझौते को स्वीकार किया और उसे १९१९ के सुधारों में सम्मिलित किया।

होम रूल आन्दोलन—यहाँ उन दो होम रूल लीगों का वर्णन करना आवश्यक है जिएमें से एक को अप्रेल १९१६ में लोकमान्य तिलक ने पूना में और दूसरी को ऐनी बेसेण्ट ने मद्रास में सितम्बर १९१६ में आरम्भ किया था। सरकार ने दोनों नेताओं के विरुद्ध कार्यवाही की। ऐनी बेसेण्ट को नजरबन्द कर दिया और तिलक को २०,००० रुपये का व्यक्तिगत बांड भरने तथा १०,००० रुपये की दो जमानतें जमा करने की आज्ञा दी गई। इसके साथ-साथ उनको एक वर्ष तक अपना आचार अच्छा रखने का भी आदेश दिया गया। बम्बई हाई कोर्ट में अपील करने पर ये आज्ञाएं रद्द कर दी गई।

मिस्टर माण्टेग्यू की घोषणा—१९१७ का वर्ष प्रथम महायुद्ध के बीच मि राष्ट्रों के लिए बड़ा ही संकटमय था। इसी वर्ष भारत में भी राजनीतिक हलच अपनी चरम सीमा पर पहुँची। स्थिति की मांग स्वीकार करके ब्रिटिश सरकार ने अपनी भारत-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करने का निश्चय किया। २० अगस्त १९१ को भारत मन्त्री मिस्टर माण्टेग्यू ने हाउस ऑफ कामन्स में एक महत्वपूर्ण घोष की जो इस प्रकार है—

'सम्राट की सरकारी नीति, जिससे भारत सरकार भी पूर्णतया सहमत है यह है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का अधिक से अधिक सहयोग प्रा किया जाए और उसके साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य के एक अभिन्न अंग के रू भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए स्वयं-शासित संस्थाओं का धीरे-धी विकास किया जाए।' वे स्वयं भारत आए और उन्होंने देश का भ्रमण किया। उन्हों एक रिपोर्ट तैयार की जिनके आधार पर १९१९ ई० का भारत-सरकार अधिनियम निर्माण हुआ।

तीसरा युग—१९१८ ई० की जुलाई में माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड योजन प्रकाशन ने कांग्रेस की राजनीतिक एकता का अन्त कर दिया। दस वर्षों के वि

के उपरान्त गरम और नरम दल के नेता फिर अलग-अलग हो गए। गरम दल वालों ने इसको अस्वीकार किया। उदार दल के नेताओं के साथ माण्टेग्यू का एक समझौता हो गया था और उसको उसकी सत्यता तथा न्यायप्रियता पर भरोसा था, इसलिए इन्होंने योजनाओं को प्रगतिशील एवं सन्तोषजनक बतलाया, यद्यपि इसको और अधिक उन्नत करने के लिए इन्होंने कुछ सुझाव भी दिए। नरम दल वालों ने अपना एक अलग राष्ट्रीय संगठन बनाने का निश्चय किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कलकत्ता में 'नेशनल लिबरल लीग' की स्थापना की। उग्रवादियों ने पहले तो सुधारों का बड़ा तीव्र विरोध किया, किन्तु बाद में नरम दल वालों को कांग्रेस में सम्मिलित रखने के अभिप्राय से अपना विरोध कम कर दिया। १९१८ ई० के अगस्त के अन्तिम दिनों में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ, जिसमें उन्होंने समझौता करने के अभिप्राय से एक प्रस्ताव पास किया। नरम दल के नेताओं ने अपना एक सम्मेलन कर एक प्रस्ताव द्वारा योजनाओं का स्वागत किया और उनको भारत के लिए उपयोगी बतलाया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कांग्रेस पर उग्र दल का प्रभुत्व स्थापित हो गया। कांग्रेस के दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर एक नया उत्साह दृष्टिगोचर हुआ तथा उसके प्रस्तावों के ढंग में एक विशेष परिवर्तन आ गया।

चौथा युग—इस युग में कांग्रेस के उद्देश्यों में विशेष परिवर्तन हुआ। अब उसने **औपनिवेशिक स्वराज्य** के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य अपना उद्देश्य घोषित किया। सन् १९३० तक उसका एकमात्र यही उद्देश्य रहा। उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इङ्गलैण्ड की संसद के सामने अपनी माँगें रखने के स्थान पर प्रत्यक्ष कार्यवाही की प्रणाली को अपनाया। अंग्रेजों के सौजन्य तथा न्याय की भावना पर विश्वास रखने के बदले उसने स्वतन्त्रता को बलपूर्वक प्राप्त करने की अपनी शक्ति पर जोर देना आरम्भ कर दिया।

गांधी जी का प्रादुर्भाव—इसी समय महात्मा गांधी का राष्ट्रीय नेता के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। उक्त आधारभूत परिवर्तनों का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर था। परन्तु यह स्मरण रहे कि अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ में उनको गरम दल का अनुयायी नहीं कहा जा सकता है। दक्षिणी अफ्रीका का सत्याग्रह-संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त करके जब वे भारत लौटे तो उन्होंने गोखले को अपना राजनीतिक गुरु बनाना निश्चय किया। गोखले ने उनसे किसी भी प्रत्यक्ष राजनीतिक कार्य में एक वर्ष तक हाथ न डालने की प्रतिज्ञा करवाई और उनको अपना समय घटनाओं से परिचय प्राप्त करने में व्यतीत करने का आदेश दिया। **इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी जी वाम पंथी नेता के स्थान पर नरम प्रकृति के व्यक्ति थे।** यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उन्हीं के प्रभाव के कारण १९१९ ई० में होने वाले कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के प्रस्ताव में शान्ति एवं संयम की भावना का समावेश हुआ, यद्यपि अमृतसर के जलियांवाले बाग में स्त्री, पुरुष तथा बच्चों की निर्मम हत्या, उसी वर्ष के अप्रैल में जनरल डायर द्वारा नगर निवासियों पर की गई कठोरता

तथा पंजाब में मार्शल लॉ के विरुद्ध भारतीयों में बड़ा क्षोभ तथा असन्तोष व्याप्त था। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-योजनाओं के निराशजनक और अनुपयुक्त होने पर भी उत्तरदायी सरकार की शीघ्र स्थापना के लिए कांग्रेस ने उसको स्वीकार कर लिया। ऐसे गम्भीर तथा उदारवादी नेता को भी असहयोग तथा सविनय अवज्ञा-आन्दोलन चलाना पड़ा तथा औपनिवेशिक पद की माँग के स्थान पर कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य बनाना पड़ा। यह भारत-सरकार की काली करतूतों की दुःखद आलोचना ही नहीं, वरन् समय के प्रवाह में एक परिवर्तन का चिन्ह भी है।

महात्मा गांधी का सहयोगी से असहयोगी होना—पंजाब में हुए अत्याचारों के प्रति भारत तथा ग्रेटब्रिटेन की सरकार के रुख तथा जनरल डायर पर हाउस आफ लार्डस में हुई बहस ने महात्मा गांधी की आँखें खोल दीं और वे सहयोगी से असहयोगी बन गए। सन् १९१७ ई० में महायुद्ध की समाप्ति के पूर्व ही भारत-सरकार ने रौलट समिति नियुक्त की जिसका कार्य देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बन्धित षड़यंत्रों की जाँच करना था और उनके अन्त करने के लिए सरकार को उपयुक्त सुझाव तथा उपाय सुझाना था। इस कमेटी ने सन् १९१८ ई० की जनवरी में अपना कार्य प्रारम्भ किया और उसी वर्ष के अप्रैल के मध्य में अपनी रिपोर्ट दे दी। उसने दो प्रकार की विधियाँ बनाने की सलाह दी। इस परामर्श के आधार पर भारत-सरकार ने दो विधेयक तैयार किए और निर्वाचित तथा गैर-सरकारी सदस्यों का विरोध होते हुए भी उनको पास करा दिया। इनके द्वारा आंतकवादी जन-आन्दोलनों को कुचलने के लिए बहुत अधिक अधिकार दिए गए। राईट आनरेबिल श्री श्रीनिवास शास्त्री जैसे उदारवादी नेता ने भी लोगों की भावना के विरुद्ध ऐसे कड़े अधिनियमों के भयानक परिणामों के सम्बन्ध में सरकार को चेतावनी दी। कदाचित् किसी भी घटना ने कांग्रेस की नीति तथा व्यवहार में इतना परिवर्तन नहीं किया जितना सारे राष्ट्र के विरोध करने पर भी रौलट विधेयकों की सरकार द्वारा स्वीकृति ने। भारत-सरकार के इस कठोर व्यवहार से महात्मा गांधी बड़े चिन्तित हुए। उनके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनके विरोध में समस्त देश के अन्तर्गत एक विशेष दिन सर्वव्यापी हड़ताल का आयोजन किया जाए और वह दिन उपवास और ईश्वर प्रार्थना में व्यतीत किया जाए। सन् १९१९ मार्च की ३० तारीख इस कार्य के लिए निश्चित की गई, किन्तु यह बाद में बदल कर छः अप्रैल कर दी गई। कुछ नगरों में ३० मार्च को ही हड़ताल कर दी गई। दिल्ली में पुलिस ने एक ऐसी भीड़ पर गोली भी चलाई जो एकत्रित होकर रेलवे जलपान-गृहों को बन्द करवा रही थी। छः अप्रैल को हड़ताल के उपरान्त गांधी जी ने कुछ स्थानीय नेताओं की प्रार्थना पर दिल्ली जाना स्वीकार किया, किन्तु पलवल नामक स्थान पर उनको बन्दी किए जाने का समाचार दावाग्नि के समान फैल गया और कुछ स्थानों पर उत्पात हो गया। सरकार ने शीघ्र ही उनको मुक्त कर दिया और शान्ति की स्थापना हुई। सर माइकल ओडायर द्वारा शासित पंजाब में कुछ जनप्रिय नेताओं के बन्दी करने तथा निहत्थी जनता पर गोली चलाने के कारण लाहौर और अमृतसर में बड़ी

सनसनी फैली। अमृतसर की घटनाएँ दिल दहलाने वाली थीं।

इन घटनाओं का पता चलने पर लोगों में बड़ा क्षोभ फैला और उन्होंने इस अपमान तथा अमानुषिक कार्यों के उत्तरदायी लोगों को दण्ड देने की मांग की। इन घटनाओं की जांच के लिए सरकार द्वारा एक समिति का निर्माण किया गया। किन्तु इसका कार्य प्रारम्भ होने से पूर्व ही सरकार ने अपराधी अफसरों के हितार्थ एक इन्डेम्निटी बिल पास किया जिससे उनको मुक्ति मिल गई। इस समिति की रिपोर्ट ने घटनाओं पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया। इससे देश का क्रोध और भी बढ़ गया। सरकार ने माईकल ओडायर के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की और केवल जनरल डायर को 'निर्णय की भूल' के लिए उत्तरदायी बनाकर नौकरी से हटा दिया। इन कार्यों से यह स्पष्ट हो गया कि इंगलैण्ड तथा भारत सरकार को और पंजाब की भयंकर भूलों के लिए कोई पश्चाताप नहीं है। गांधी जी को इससे बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने को इस सरकार से हर प्रकार से अलग कर देने का निश्चय किया। उन्होंने एक योजन बानाई और राष्ट्र को उस समय तक असहयोग करने का आदेश दिया जिस समय तक पंजाब की भूलों में सुधार न कर दिया जाए। लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन सितम्बर १९२० के पहले सप्ताह में हुआ। इसी अधिवेशन के अवसर पर गांधी जी ने अपनी योजना लोगों के सामने रखी। इस अधिवेशन के अवसर पर विभिन्न प्रान्तों के मुसलमान भी अधिक संख्या में एकत्रित हुए थे। उन्होंने आन्दोलन में अपना सहयोग देने का निश्चय किया।

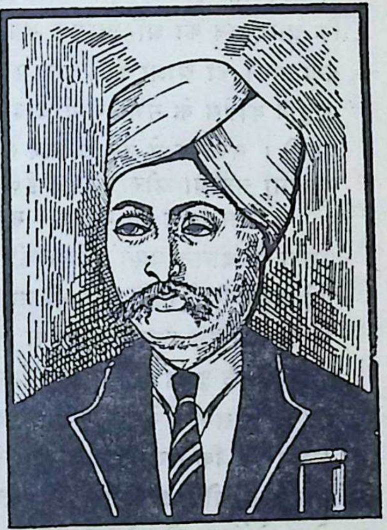
लाला लाजपत राय

१९२१ का असहयोग आन्दोलन—इसके बाद कांग्रेस के इतिहास में एक नया युग आरम्भ होता है। महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव ने राजनीतिक विरोध के स्थापित तथा पुराने ढंग के लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया। दिसम्बर १९२० में कांग्रेस नागपुर अधिवेशन में यह प्रस्ताव और भी पक्का हो गया। देशबन्धु चितरञ्जनदास तथा लाला लाजपतराय ने कलकत्ते में असहयोग के प्रस्ताव का विरोध किया था, परन्तु नागपुर में वे उनके समर्थक बन गए। आन्दोलन में भाग लेने के कारण २० हजार व्यक्तियों ने सहर्ष जेल के कष्टों को सहन किया। सैंकड़ों व्यक्तियों ने अपनी उपाधियां त्याग दीं और इसके कई गुना लोगों ने वकालत करना छोड़ दिया। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल तथा कॉलिज त्याग दिए और देश भर में अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना हो गयी। अलीगढ़ का राष्ट्रीय मुस्लिम विश्व-

विद्यालय, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ तथा तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ के के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । **१९२१ के पूरे वर्ष तक आन्दोलन** जितनी सफलता **के साथ आगे बढ़ा इतनी सफलता की आशा इसके पक्के समर्थकों** को भी नहीं थी। बारदोली ताल्लुके में महात्मा जी बन्दी-कर आन्दोलन संगठित कर रहे थे। इ सब कार्यों से ब्रिटिश सरकार की नींव हिल उठी और स्वराज्य प्रत्यक्ष दिखलाई दे लगा । परन्तु इसी मनोवैज्ञानिक अवसर पर मालाबार में मोपला दंगा प्रारम्भ हो गया, जिसमें हिन्दुओं पर बहुत अधिक अत्याचार हुआ । इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता को बड़ा आघात पहुँचा । यह एकता ही उस वर्ष के अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रमुख स्तम्भ था । **वेल्स के राजकुमार** के आगमन पर बम्बई में बड़ी गड़बड़ हुई। इससे भी बुरी बात यह हुई कि उन्मत जनता ने **चौरा-चौरी** की चौकी में आग लगा दी और वहाँ पुलिस के अनेक सिपाहियों की हत्या कर दी। महात्मा गांधी ने देखा कि आन्दोलन का अहिंसात्मक रूप समाप्त हो गया है, इसलिए उन्होंने इसे तुरन्त बन्द करने की आज्ञा दी । इस पर उनके निकट अनुयायियों को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कांग्रेस के सभी कार्य बन्द कर दिए, जिनसे जेल जाने की आवश्यकता पड़ती । सरकार ने इस अवसर से लाभ उठाकर गांधी जी को बन्दी कर उन प मुकदमा चलाया और १९२२ ई० में उनको छः वर्ष का कारागार दिया।

आन्दोलन का महत्व—महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाला असहयोग का पहला आन्दोलन अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहा । ब्रिटिश सरकार हि **गई, परन्तु गिरी नहीं, फिर भी आन्दोलन पूर्णतया निष्फल नहीं रहा।** इसने राजनीति विरोध को उस स्तर तक पहुँचा दिया जिसकी पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी । इसके द्वारा कांग्रेस आन्दोलन जनता का आन्दोलन बन गया तथा स्वराज्य का संदेश समाज के निम्न स्तर तक पहुँच गया । नौकरशाही ने पहली बार अ भव किया कि नरम दल के राजनीतिज्ञों की शुभेच्छाओं का कितना मूल्य है। इ उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए अपना पूरा प्रयत्न लगा दिया और माण्टे चेम्सफोर्ट सुधारों को इस रूप में लागू किया जैसा पूर्व में उससे आशा नहीं की ज सकती थी । इस सम्बन्ध में सुभाषचन्द्र बोस का कथन है कि "१९२१ के वर्ष देश को निःसन्देह एक सुव्यवस्थित पार्टी-संगठन प्रदान किया; इससे पूर्व कांग्रेस ए वैधानिक दल था और वह मुख्यतः बात करने वाली संस्था थी । महात्मा जी इनको एक नया विधान ही नहीं दिया, अपितु उसे एक क्रान्तिकारी संगठन में प वर्तित कर दिया । देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक जैसे नारे लगाए ज लगे और एक जैसी नीति और एक जैसी विचार-धारा सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगी अंग्रेजी भाषा का महत्व जाता रहा और कांग्रेस ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के में स्वीकार किया । खादी सब कांग्रेसियों की नियमित पोशाक बन गई।"

कांग्रेस में स्वराज्य दल की स्थापना—अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन वाह्य असफलता से कांग्रेस के कुछ नेताओं ने नई विधान सभाओं के बहिष्कार नीति का विरोध करना आरम्भ किया । कांग्रेस के अन्तर्गत ही श्री० सी० आर०

तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कौंसिल प्रवेश पार्टी की स्थापना की। हकीम अजमल खाँ और विट्ठल भाई पटेल का भी इस दल को सहयोग प्राप्त हुआ। यह दल 'स्वराज्य दल' के नाम से विख्यात हुआ। **इस दल का उद्देश्य सुधारों को कार्यान्वित न करके सरकार के कार्यों में रोड़े अटकाना था।** इस प्रकार ब्रिटिश सरकार को राष्ट्र की मांगें स्वीकार करने के लिए विवश कर देना था। गांधी जी के अनुयायियों ने कौंसिल प्रवेश का विरोध किया। ये लोग अपरिवर्तनवादी कहलाए। डाक्टर अन्सारी तथा श्री राजगोपालाचार्य इनमें प्रमुख थे १९२२ ई० **के कांग्रेस से गया अधिवेशन में कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी प्रस्ताव अस्वीकृति हुआ, किन्तु दिल्ली के विशेष अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। १९२४ में विधान-मण्डलों के लिए दूसरी बार निर्वाचन हुआ। प्रथम निर्वाचन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की ओर से खड़े स्वराज्य दल की अनेक प्रान्तों में विजय हुई। बंगाल तथा मध्य प्रान्त में स्वराज्य दल के लोग पर्याप्त संख्या में सफल हुए।** स्वराज्य पार्टी के उम्मीदवारों ने बंगाल में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एस० आर० दास, सर नीलरतन सरकार आदि बड़े प्रतिष्ठित व योग्य व्यक्तियों को निर्वाचन में परास्त किया। केन्द्रीय विधान सभा में भी इसको अत्याधिक सफलता प्राप्त हुई। **उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि संविधान का चलना असम्भव हो गया, किन्तु उनकी अड़ंगेबाजी की चालों से नौकरशाही डिग न सकी।** केन्द्रीय विधान सभा में भी स्वराज्य दल कुछ अधिक कार्य नहीं कर सका। केन्द्रीय ऐसेम्बली में भारत के लिए संविधान बनाने के उद्देश्य से एक गोलमेज सम्मेलन की मांग की गई, जिसको लार्ड रीडिंग की सरकार ने अस्वीकृत कर दिया। सरकार ने इस पर इतना अवश्य किया कि सर **अलेक्जेंडर मुडीमैन** की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण १९१९ के सुधारों के परिणाम पर रिपोर्ट देने के उद्देश्य से किया, जिसकी रिपोर्ट को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। ९२६ ई० में पुनः निर्वाचन हुआ। श्री सी० आर० दास की मृत्यु के उपरान्त स्वराज्य दल को बड़ा आघात पहुँचा। इसके सदस्य कम निर्वाचित हुए। उनको बाध्य होकर कांग्रेस के पुराने कार्य-क्रम को अपनाना पड़ा। इस पुराने कार्य-क्रम का उद्देश्य तैयारी करते रहना और आवश्यकता पड़ने पर बहुत अधिक संख्या में सविनय अवज्ञा करना था।

साइमन कमीशन—कांग्रेस का कार्य शिथिल पड़ गया था। आन्दोलन स्थगित हो ही चुका था। स्वराज्य दल का भी प्रायः अतः हो गया था। उसी समय स्वयं ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को एक देशव्यापी आन्दोलन करने का सुयोग प्रदान किया। इङ्गलैण्ड की सरकार ने **सर जौन साइमन** की अध्यक्षता में एक रायल कमीशन की नियुक्ति की कि वह इङ्गलैंड की संसद के सामने १९१९ के अधिनियम के कार्यों की जाँच करके एक रिपोर्ट पेश करे। यह कमीशन २ फरवरी १९२८ ई० को बम्बई पहुँचा। **इस कमीशन का स्वागत हड़ताल द्वारा किया गया। यह कमीशन जहाँ कहीं भी जाता वहीं हड़ताल होती, काले झण्डों का प्रदर्शन होता और साइमन लौट जाओ का नारा लगाया जाता।** केवल मद्रास की जास्टिस

पार्टी तथा मुस्लिम संस्थाओं ने इनका स्वागत किया। साइमन कमीशन के बहिष्कार ने देश में बड़ी उथल-पुथल मचा दी। ब्रिटिश सरकार ने आंतक तथा बलात्कार करना आरम्भ किया। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर लाठी का प्रहार किया। लाला लाजपतराय पर लाहौर में लाठियों और डण्डों की बौछार की गई, जब उनकी अध्यक्षता में लाहौर में एक जलूस निकाला जा रहा था। घातक हमले के कारण उनकी मृत्यु हो गई। पुलिस के इस अमानुषिक व्यवहार से लोगों में बड़ा क्षोभ फैला और इसलिए कुछ आतंकवादी घटनाएँ घटीं।

नेहरू रिपोर्ट—भारत-मन्त्री लार्ड बर्किनहेड ने भारतीय नेताओं को सर्वमान्य विधान बनाने तथा उसको इङ्गलैण्ड की संसद् के सामने रखने की चुनौती दी, जिसको भारत के राजनीतिक नेताओं ने स्वीकार किया। तुरन्त ही पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में विधान-निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया और उसने एक रिपोर्ट तैयार की जो नेहरू रिपोर्ट के नाम से विख्यात है। इसमें भारत के लिए औपनिवेशिक आधार पर एक विधान तैयार किया। १९१९ के कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन ने इस रिपोर्ट पर विचार किया। इस अधिवेशन में भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य के चाहन वालों और औपनिवेशिक पद के समर्थकों के बीच खूब वाद-विवाद हुआ। पहले दल के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाष चन्द बोस और दूसरे दल के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू थे जो इस अधिवेशन के सभापति थे। महात्मा गांधी ने दोनों दलों में मेल कराने के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तावित किया, जिसको कांग्रेस ने स्वीकार किया। इसके सम्बन्ध में डाक्टर जकरिया का कथन है कि नेहरू रिपोर्ट को विस्तारपूर्वक पढ़ा जाना आवश्यक है, क्योंकि यह प्रत्येक विषय पर जिसका उसमें उल्लेख किया गया है और सामान्य व्यावहारिक बुद्धि से जो न अपने को सैद्धान्तिक कल्पनाओं में खोती है और न निरर्थक बातों का आश्रय लेती है परिपूर्ण है।[1] प्रस्ताव इस प्रकार था—

सर्व दलीय समिति की रिपोर्ट द्वारा प्रस्तुत किए हुए विधान पर विचार करने के उपरान्त कांग्रेस उसका स्वागत करती है, क्योंकि भारत की राजनीति तथा साम्प्रदायिक समस्याओं के हल करने के लिए यह एक महान् देन है। कांग्रेस इस समिति को सुझावों के एक मत होने के लिए धन्यवाद देती है। मद्रास-कांग्रेस के अवसर पर पास किए हुए पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव को ही मानने के साथ-साथ कांग्रेस कमेटी द्वारा निर्मित विधान को राजनीतिक प्रगति में एक महान् कदम के रू में स्वीकार करती है; विशेषतः इसलिए कि देश के प्रमुख दलों के बीच वह सबसे अधिक समझौते का प्रतिनिधित्व करती है।

---

[1] "The Nehru Report deserves to be used and studied in all its details, as it sheds light on every subject it touches and displays a practical common sense, which never loses itself in doctrinaire utopias, but which equally spurns to shelter itself behind the enunciation of mere palititudes."

—Dr, Jacharias : Renascent India, pp., 251-252.

"यदि यह विधान दिसम्बर १९२९ या उससे पूर्व स्वीकार नहीं किया जाता है कांग्रेस उसे मानने के लिए बाध्य नहीं रहेगी और यह भी घोषित किया जाता है यदि इंगलैण्ड की संसद इस तिथि तक इस विधान को स्वीकार नहीं करती है तो ग्रेस अहिंसात्मक असहयोग फिर आरम्भ कर देगी, जिसके अनुसार देश शासन को या अन्य किसी प्रकार की सहायता देना बन्द कर देगा।"

पूर्ण स्वराज्य— भारत के वाइसराय लार्ड इरविन जून में विचार-विमर्श इंगलैण्ड गए। वहाँ से वापिस आने पर उन्होंने ३१ अक्टूबर को एक घोषणा की पर कांग्रेस ने विचार-विमर्श करना आरम्भ किया। कांग्रेस की घोषणा पर कार की ओर से कोई वक्तव्य प्रकाशित नहीं हुआ। **कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन ाने से पूर्व महात्मा गांधी तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू ने वाइसराय से भेंट ना उचित समझा, जिससे उनकी घोबणा का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाए, किन्तु इसराय लार्ड इरविन दोनों महान् नेताओं को सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके।** : दोनों बड़े नेता खाली हाथ लौहार पहुँचे। इन परिस्थितियों के बीच पूर्ण स्वय को अपना उद्देश्य घोषित करने के अतिरिक्त और कोई चारा कांग्रेस के पास रह गया था। **कांग्रेस ने पूण स्वराज्य की प्राप्ति अपना उदेद्दश्य घोषित किया।** : इस प्रकार स्वराज्य प्राप्ति के लिए दूसरे महान् राष्ट्रीय आदोलन की पृष्ट-भूमि निर्माण किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन—कांग्रेस ने अपनी कार्य समिति को यह आदेश दिया था कि यदि वह आवश्यक समझें तो वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ सकती है। २ मार्च १९६० ई० को महात्मा गांधी ने लार्ड इरविन के नाम एक हासिक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने साबरमती आश्रम के अपने कुछ साथियों के य नमक विधि तोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने की सूचना दी। २ मार्च को महात्मा गांधी डाण्डी में नमक कानून तोड़ने के लिए अहमदाबाद से पड़े। उनके साथ ७५ आश्रमवासी थे। जगह-जगह मार्ग में रुककर उन्होंने ना सन्देश जनता को सुनाया। गांधी जी की डाण्डी यात्रा बहुत प्रसिद्ध हो गई र इस यात्रा से सम्बन्धित दृश्य इतने भव्य, जोशीले तथा प्रभावशाली थे कि का वर्णन नहीं किया जा सकता है। **बाम्बे क्रानिकल** ने डाण्डी-कूँच के सम्बन्ध में खा कि "मानव जाति के इतिहास में देश-प्रेम की लहर उतनी तीव्र कभी भी नहीं ी थी, जितनी इस महान् अवसर पर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में ह घटना एक महान् आन्दोलन के प्रारम्भ के रूप में प्रसिद्ध हुई।"

महात्मा जी ५ अप्रैल को डाण्डी पहुँचे, मार्ग में समस्त लोगों ने उनका नदार स्वागत किया, और उन्होंने नमक कानून भंग किया। इसके उपरान्त समस्त में नमक कानून तोड़ने की धूम-मच गई। महात्मा गांधी के बन्दी होने पर ग्रेस की कार्य-समिति ने शराब की दुकानों तथा विदेशी वस्त्रों के विक्रय पर प्रति-ध, जंगल सम्बन्धी कानूनों की अस्वीकृति तथा कर न देने की नीति को नाया। आन्दोलन का दमन करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कठोर दमन की

नीति का सहारा लिया। भारत सरकार ने बहुत-से अध्यादेश पास किए, जिससे कारण यह समय अध्यादेश का समय बन गया। इसके द्वारा बहुत से लोगों को बन्दी बनाया गया तथा जुर्माने किए गए। पुलिस ने जनता पर गोलियां चलाईं जिनके कारण सैंकड़ों मृत्यु भी हुईं, किन्तु इन पाशाविक उपायों के सामने भारत नत-मस्तक नहीं हुआ और वह पहले से भी अधिक शक्तिशाली होता गया।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन—गोलमेज सम्मेलन का पहला अधिवेशन १२ नवम्बर १६३० ई० को लन्दन नगर में आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। इसके मुख्य नेता बन्दीगृहों में बन्द थे। कांग्रेस की ओर से इसमें उसका कोई भी प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुआ। इसको **बेलसफोर्ड** ने इस प्रकार व्यक्त किया "सेंट जेम्स महल में भारतीय नरेश, हरिजन, सिक्ख, मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, जमींदारों, मजदूर-संघों और वाणिज्य-संधों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे, किन्तु भारत-माता वहाँ उपस्थित नहीं थी।"[1] यह अधिवेशन १६ जनवरी १६३१ ई० को समाप्त हुआ। इसमें भारतीयों की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखकर संघ-शासन का सिद्धान्त सबसे उपयुक्त समझा गया। प्रान्तीय क्षेत्र में संसदीय सरकार तथा कुछ आरक्षण और संरक्षण के साथ केन्द्र में द्वैध शासन का सिद्धान्त निश्चित किया गया।

गांधी इरविन पैक्ट—प्रथम गोलमेज द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों पर विचार करने के लिए कांग्रेस के नेताओं को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया। वे १६ फरवरी १६३१ ई० को मुक्त हुए। महात्मा गांधी ने भारत के वाइसराय के साथ एक समझौता किया, जो **गांधी-इरविन समझौते** के नाम से विख्यात है। इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि **इस समझौते के परिणाम-स्वरुप कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया और उसने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने का निश्चय किया।** इससे कांग्रेस की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और सविनय अवज्ञा आन्दोलन की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण सारे राष्ट्र का नैतिक उत्थान हुआ। दुःख इस बात का है कि पण्डित मोतीलाल नेहरु की, जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भाग लिया था, समझौते होने के पूर्व ही मृत्यु हो गई थी।

इंगलैण्ड में साधारण निर्वाचन—इसी समय इंगलैण्ड में साधारण निर्वाचन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अनुदार दल के हाथ में शासन-सत्ता आयी। लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगटन भारत के वाइसराय नियुक्त हुए। इसके कारण दोनों देशों की परिस्थितिओं में बड़ा अन्तर उत्पन्न हो गया। कांग्रेस की यह शिकायत थी कि सरकारी अधिकारी गांधी-इरविन समझौते की शर्तों का पालन नहीं करते

---

[1] "In St. Jame's palace there did assemble princes and untouchables, Sikhs, Muslims, Hindus and Christians, and spokesmen of landowners, trade unions and chamber of commerce, but Mother India was not there." —Bailsford

परिस्थितियों की विषमता तथा सफलता की आशा न होते हुए भी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने के कारण महात्मा गांधी २९ अगस्त १९३१ ई० को इंगलैण्ड के लिए चल पड़े ।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन—द्वितीय गोलमेज सम्मेलन १४ सितम्बर से १ दिसम्बर १९३१ ई० तक हुआ। इस सम्मेलन में जो प्रवाह प्रथम सम्मेलन में था, नहीं रहा। ब्रिटिश प्रतिनिधियों के रुख तथा व्यवहार में एकदम परिवर्तन हो गया। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में गांधी जी ने सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लिया ।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता—सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य इंगलैण्ड तथा भारत के बीच संघर्ष का निपटारा और भारत की वैधानिक समस्या का हल निकालना था, किन्तु मार्ग में साम्प्रदायिक समस्या उत्पन्न हो गई। इस समस्या को ब्रिटिश प्रतिनिधियों की ओर से प्रधानता दी गई। इसका हल असम्भव हो गया। सरकार ने इस समस्या का निराकरण साम्प्रदायिक निर्णय के रूप में किया जो कुछ दलों के एकदम अनुकूल था और कुछ के एकदम प्रतिकूल। दिल्ली के पारस्परिक समझौते को ही स्थायी समझौते का रूप देने के लिए महात्मा गांधी जी इंगलैण्ड गए थे, किन्तु वे असफल रहे। महात्मा जी ने भारत के लिए प्रस्थान किया।

तृतीय अहिंसात्मक प्रतिरोध—महात्मा गांधी ने इङ्गलैण्ड में जो कुछ भी देखा और अनुभव किया उससे उनकी यह धारणा बन गई कि ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस के रास्ते भिन्न हैं। जब वे २८ दिसम्बर १९३१ ई० को बम्बई में उतरे तो उनको लार्ड वैलिंगटन की सरकार द्वारा उपस्थित की हुई एक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा। बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में सरकार की दमन नीति चल रही थी। महात्मा गांधी से मिलने बम्बई जाते समय खान अब्दुल गफ्फार खां पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा शेरवानी को बन्दी किया गया। स्थिति पर विचार करने तथा कठिनाइयों के मध्य एक रास्ता निकालने के ध्येय से महात्मा गांधी ने भारत के वाइसराय से भेंट करनी चाही, किन्तु भेंट होने पर सरकार ने अपमानपूर्ण शर्तें लाद दीं। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस समिति ने एक लम्बा प्रस्ताव पास किया, जिसमें राष्ट्र को सविनय अवज्ञा आन्दोलन उस समय तक चालू रखने का आदेश दिया, जब तक उनकी मांगों का सरकार कोई उपयुक्त उत्तर न दे। इन मांगों के उत्तर में अनेक अध्यादेश लागू किए गए। महात्मा गांधी, कांग्रेस समिति के सदस्य तथा अन्य लोगों को बन्दीगृहों में डाल दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अन्त करने के लिए भारत सरकार ने कई नई चालों का प्रयोग किया। कांग्रेस समितियाँ अवैध घोषित कर दी गईं और नेताओं को बन्दी कर लिया गया। कांग्रेस भवनों तथा कार्यालयों पर सरकार ने अधिकार किया और उनकी सम्पत्ति पर भी आधिपत्य स्थापित किया। डाकघरों तथा तारघरों का प्रयोग कांग्रेस के लिए रोक दिया गया और प्रेस पर विशेष प्रतिबन्ध लगाए गए। जनता को विशेष कष्टों का सामना करना पड़ा। उसने हिंसात्मक उपायों का प्रयोग नहीं किया, यद्यपि सरकार का उनके साथ अमानुषिक व्यवहार था। कांग्रेस का अधिवेशन अपने

स्वाभाविक रूप में करने की सरकार ने आज्ञा प्रदान नहीं की, इसलिए १९३२ ई० तथा १९३३ ई० के कांग्रेस अधिवेशन क्रमशः दिल्ली तथा कलकत्ते में हुए। इस **तीसरे मोर्चे में लोगों ने जितना कष्ट उठाया वे पिछले सभी आन्दोलनों से अधिक था।** अनुमान किया जाता है कि लगभग एक लाख व्यक्तियों ने बन्दीगृह की यातनाएं सहन कीं। लोगों को व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक जुर्माना देना पड़ा। कभी-कभी तो इनकी संख्या हजारों-लाखों में होती थी। एक ओर था अत्याचार तथा पाशविकता का व्यंग्यात्मक कठोर अट्टहास और दूसरी ओर त्याग और कष्ट-सहन की चरम-सीमा।

साम्प्रदायिक निर्णय—जब भारत में अहिंसात्मक प्रतिरोध चल रहा था तो १७ अगस्त १९३२ ई० को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने साम्प्रदायिक समस्या पर अपने निर्णय की घोषणा की, जिसके अनुसार अछूतों को स्वर्ण हिन्दुओं से पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की। कांग्रेस ने इस साम्प्रदायिक निर्णय को अस्वीकार किया। **महात्मा गांधी ने जो इस समय यर्वदा जेल में थे आमरण अनशन आरम्भ किया। उनके ऐसा करने से देश में खलबली मच गई, फलस्वरूप पूना समझौता हुआ, जिसके द्वारा अछूतों के लिए कुछ स्थान दोहरे निर्वाचन की व्यवस्था के साथ सुरक्षित कर दिए गए, परन्तु उनको साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के आधार पर पृथक नहीं किया गया।** इसी से १९३३ में गांधी जी को २१ दिन के उपवास की प्रेरणा हुई। अपनी तथा अपने साथियों की शुद्धता तथा हरिजनों की भलाई के कार्य में सतत् सतर्कता और जागरुकता के लिए ही गांधी जी ने यह उपवास किया। उपवास ८ मई को प्रारम्भ हुआ और उसी दिन महात्मा जी बिना किसी शर्त के जेल से मुक्त कर दिए गए।

गांधी जी ने कांग्रेस सभापति को सविनय अवज्ञा आन्दोलन ६ सप्ताह तक स्थगित करने की सलाह दी और भारत-सरकार से राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करने की प्रार्थना की। इसके फलस्वरूप आन्दोलन तीन महीने के लिए स्थगित कर दिया गया, किन्तु सरकार ने महात्मा गांधी की प्रार्थना की अवज्ञा कर राजनीतिक बंदियों को मुक्त नहीं किया। २४ जुलाई को गांधी जी ने कांग्रेस के सभापति को सामूहिक आन्दोलन के स्थान पर व्यक्तिगत आन्दोलन करने की सलाह दी। उन्होंने स्वयं अपना साबरमती आश्रम बन्द कर दिया और खैरा जिले के रास नामक गांव में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करने का निश्चय किया। उन्होंने अन्य लोगों को भी ऐसा ही करने का आदेश दिया। वे बन्दी कर लिए गए और एक वर्ष के लिए यर्वदा जेल में डाल दिए गए। २३ अगस्त को स्वास्थ्य-सम्बन्धी कारणों में वे छोड़ दिए गए। बाद में उन्होंने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्द करने का आदेश दिया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन—गोलमेज सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन १७ नवम्बर से २४ दिसम्बर तक हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। पहले की भाँति भारत से केवल सरकार के विश्वस्त व्यक्तियों को आमन्त्रित किया

या, यहां तक कि हिन्दू महासभा द्वारा चुने गए सदस्यों तथा लिबरल फिडरेशन के अध्यक्ष को भी नहीं बुलाया गया। सम्मेलन ने तीन प्रमुख समस्याओं पर विचार किया जो इस प्रकार थीं—

(१) संरक्षण,

(२) वे शर्तें जिनके अनुसार भारतीय देशी राज्य संघ के अन्तर्गत सम्मिलित होगा, तथा

(३) अविष्ट अधिकारों का विभाजन।

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि-मण्डल ने विधान में एक अधिकार-पत्र भी सम्मिलित करना चाहा, किन्तु ब्रिटिश अधिकारियों ने इसे अस्वीकार कर दिया।

अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त सरकार ने **एक श्वेत-पत्र** के रूप में अपनी योजनाएँ प्रकाशित कीं। ये योजनाएँ भारतीय जनता की मांगों की अपेक्षा बहुत कम थीं। नरम दल को भी इससे सन्तोष नहीं हुआ। जिन अधिकारों की प्राप्ति एक देश को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में परिणत कर सकती है वे समस्त अधिकार वाइसराय को प्रदान किए गए। संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी ने उनमें कुछ और भी कमी कर दी। इसकी आलोचना करते हुए **सी० वाई० चिन्तामणि** ने कहा है "ये प्रस्ताव इतने प्रतिगामी थे कि भारत के प्रत्येक प्रगतिशील लोकमत के लिए सर्वथा अस्वीकार्य थे।"[1] अन्त में १९३५ का भारत-सरकार अधिनियम बना, जिसका वर्णन गत अध्याय में किया जा चुका है।

१९३७ का निर्वाचन और उसके उपरान्त—१९३५ के भारत-सरकार अधिनियम के अन्तर्गत १९३७ में प्रान्तीय विधान-सभाओं के लिए निर्वाचन हुआ। कांग्रेस ने इस निर्वाचन में भाग लेने का निश्चय किया। देश के मान्य नेताओं को कांग्रेस की विजय में पूर्ण आशा थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू में जोश तथा उत्साह का संचार हुआ और स्वराज्य का सन्देश भारत के कोने-कोने में फैल गया। भारतीय जनता ने निर्वाचन में विशेष दिलचस्पी ली। कांग्रेस को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। ग्यारह प्रान्तों में से आठ प्रान्तों में कांग्रेस दल का बहुमत था। दो प्रान्तों में कांग्रेस का सबसे बड़ा दल था, किन्तु उसका पूर्ण बहुमत नहीं था, बंगाल तथा पंजाब में यह दल कमजोर था।

निर्वाचन में विजयी होने पर नवीन विधान को भंग करने के लिए कांग्रेस के नेताओं में बड़ा वाद-विवाद हुआ। कुछ नेता पद-स्वीकार करने और सरकार के अन्दर रहकर युद्ध के पक्ष में थे और कुछ कांग्रेस को पद-स्वीकृति की सलाह न देकर उससे बाहर ही रहना चाहते थे। महात्मा गांधी ने दोनों दलों में एक समझौता करवाया और कांग्रेस को पद स्वीकार करने का परामर्श दिया, यदि दिन-प्रतिदिन के शासन में राज्यों के गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग न करें। कांग्रेस ने भारत-सरकार से इस प्रकार का आश्वासन मांगा, किन्तु कई महिनों के उपरान्त

---

[1] "The proposals on the white paper were so reactionary as to be utterly unacceptable to any section of progressive Indian opinion."

—**C. Y. Chintamani** : Indian Politics Since the Mutiny, p. 185

भारत-सरकार ने कांग्रेस की माँगें परोक्ष रूप में स्वीकार कर लीं। इसके फलस्वरूप ग्यारह प्रान्तों में से आठ प्रान्तों में कांग्रेस ने अपने मन्त्रि-मण्डल बनाकर शासन की सत्ता को अपने हाथ में ले लिया। सिन्ध के मन्त्रि-मण्डल में भी कांग्रेस का हाथ था। इच्छा होने पर वह बंगाल में भी महत्वपूर्ण भाग ले सकती थी। पंजाब में कांग्रेस की उपेक्षा अवश्य हुई। शासन चलाना कांग्रेस के लिए एक नया अनुभव था, किन्तु उसने यह कार्य अच्छी तरह निभाया। १९३९ ई० के अन्त में कांग्रेस के मन्त्रि-मण्डल एकाएक समाप्त हो गए। द्वितीय महायुद्ध में सहयोग के प्रश्न को लेकर कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिए।

द्वितीय महायुद्ध और उसके उपरान्त—भारतीयों की इच्छा जाने बिना इंगलैण्ड की सरकार ने भारत को युद्ध की अग्नि में झौंक दिया। भारतीय सेनाएँ विदेशों में युद्ध करने के लिए भेज दी गईं। कांग्रेस ने इसका विरोध किया और यह घोषित किया कि युद्ध अथवा शान्ति के सम्बन्ध में कोई भी विदेशी सत्ता अपना निर्णय भारत पर नहीं लाद सकती। कांग्रेस ने अपने सदस्यों को केन्द्रीय विधान-सभा से हटा लिया। बाद में उसने ब्रिटिश सरकार से युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने को कहा और उसके प्रयत्नों में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया, यदि युद्ध का उद्देश्य लोकतन्त्र तथा लोकतन्त्र पर आधारित व्यवस्था की रक्षा करना हो। परन्तु यदि युद्ध साम्राज्यवादी उद्देश्यों से प्रेरित हो तो इसने उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करने की घोषणा की। १९३९ के सितम्बर के मध्य में कांग्रेस कार्य-समिति ने अपने लम्बे, तथा गौरवपूर्ण प्रस्ताव में अपनी मांगें स्पष्ट कीं।

कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों का त्याग-पत्र—ब्रिटिश सरकार ने अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा नहीं की। एक बार ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री ने यह घोषणा की कि उनका तत्कालीन उद्देश्य स्वरक्षा है। एक अन्य मन्त्री ने घोषित किया कि ब्रिटेन का उद्देश्य युद्ध में विजयी होना है। **श्री (सर) विन्सटन चर्चिल** ने अपने बाद के एक वक्तव्य में स्पष्ट किया कि **एटलाण्टिक घोषणा** भारत पर लागू होगी और यह भी होगा कि वे सम्राट के प्रधान-मन्त्री इसलिए नहीं बने कि वे साम्राज्य का अन्त कर डालें। ये बातें सिद्ध करती हैं कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में नहीं थी, जिसको भारतीय अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते थे तथा जिसकी प्राप्ति के लिए भारत के सैकड़ों सपूतों ने अपनी जान की बाजी लगाई तथा हजारों पुत्रों व पुत्रियों ने हर प्रकार के कष्टों तथा दुखों का सामना किया। वाइसराय महोदय ने एक पूर्वगामी वाइसराय की एक घोषणा उद्धृत की, जिसमें यह कहा गया कि 'भारतीय प्रगति का मुख्य उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति था'। कांग्रेस की इस माँग पर कि ब्रिटेन अपने लोकतन्त्र-प्रेम को सक्रिय रूप में प्रकाशित करे वाइसराय **ने एक मंत्रणा-मण्डल** बनाने का निश्चय किया। १७ अक्टूबर १९३९ को प्रकाशित एक श्वेत-पत्र में सरकार ने अपनी भारत-सम्बन्धी नीति स्पष्ट की। कांग्रेस को इससे सन्तोष नहीं हुआ। इन परिस्थितियों से बाध्य होकर कांग्रेस ने मन्त्रि-मण्डलों को त्याग-पत्र देने का आदेश दिया। उन्होंने आदेश पाते ही त्याग-पत्र दे डाले।

गवर्नरों का शासन— गवर्नरों ने अल्प-संख्यकों की सरकार बनाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् संविधान की ९३वीं धारा के अनुसार विधान को स्थगित कर दिया। हाई कोर्ट के अधिकारों के अतिरिक्त प्रांतीय गवर्नरों ने समस्त अधिकार अपने हाथों में ले लिए। कुछ समय उपरान्त दो या तीन प्रान्तों में से विधान को स्थगित करने की घोषणा उठा ली गई, और कम से कम दिखाने के लिए विधान पुनः कार्यान्वित किया गया। शेष प्रान्तों में गवर्नरों ने सलाहकारों की सहायता से शासन चलाना प्रारम्भ किया।

कांग्रेस मंत्रियों के त्याग-पत्र देने के लगभग एक वर्ष तक कोई विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। वर्ष के लगभग बीच में एक महत्वपूर्ण घटना अवश्य हुई। नार्वे, स्वीडन, बेल्जियम तथा फ्रांस के पतन से प्रभावित होकर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की कार्य समिति को एक प्रस्ताव पास करने के लिए प्रेरित किया, जिसके अनुसार ब्रिटिश को युद्ध-कालीन सहायता की घोषणा इस शर्त पर कि गई कि भारत सरकार को भारतवामियों के समक्ष उत्तरदायी बनाया जाए। दूसरे शब्दों में कांग्रेस ने यह माँग की कि भारत सरकार १९१९ के अधिनियम के अनुसार बने, विधान-मण्डल (इसके सरकारी तथा मनोनीत सदस्यों के अतिरिक्त) के प्रति कानून में नहीं तो व्यवहार में उत्तरादायी हो। यह स्मरण रहे कि पूना अधिवेशन में पास किया यह प्रस्ताव कांग्रेन के शान्ति तथा अहिंसात्मक सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ता था, फिर भी उसने सरकार के प्रति उदारता का व्यवहार किया और प्रस्ताव को पास किया। स्टेट्समैन जैमे समाचार-पत्र ने भी इस व्यवहार में कोई अव्यावहारिक तथा संकटमय चीज का अनुभव नहीं किया। सरकार ने कांग्रेस की उदारता का उत्तर अगस्त योजना के रूप में दिया। इस योजना से वाइसराय को अपनी कार्यपालिका में कुछ भारतीयों को आमन्त्रित करने तथा एक युद्ध-सलाहकार समिति जिसमें भारतीय राज्य तथा राष्ट्रीय जीवन के हितों के भी प्रतिनिधि रहेंगे, नियुक्ति करने का अधिकार दिया। इस योजना से औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने की प्रतिज्ञा को दोहराया गया और इस बात पर भी जोर दिया गया कि 'सम्राट की सरकार की यह उत्कृष्ट इच्छा है कि युद्ध के पश्चात् राष्ट्रीय जीवन के प्रधान तत्वों के प्रतिनिधियों की एक समिति बना ली जाए, जिसका कार्य नए विधान की रूप-रेखा का निर्माण करना होगा। इसके अतिरिक्त सरकार अपनी शक्ति के अनुसार सभी उपयुक्त विषयों के निर्णय में भी शीघ्रता करेगी। योजना का प्रथम भाग जिसमें भारतीयों के कार्यपालिका में सम्मिलित

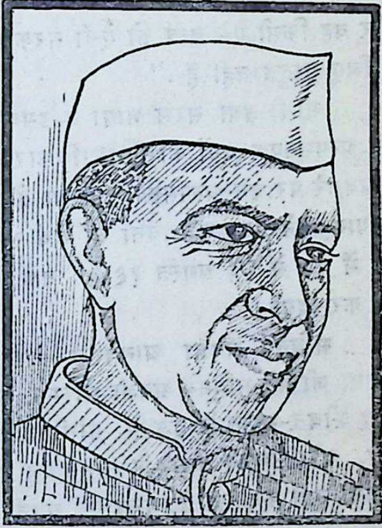

जवाहरलाल नेहरू

करने की बात कही गई थी, कांग्रेस को कुछ सीमा तक लाभप्रद थी, किन्तु यह शक्ति की उस वास्तविक प्राप्ति की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण थी जिसकी कांग्रेस निरन्तर मांग कर रही थी। उसके दूसरे भाग का अर्थ या तो विधान-परिषद् की स्थापना या एक दूसरा गोलमेज सम्मेलन होता। पहले अर्थ से कांग्रेस को सन्तोष हो सकता था, किन्तु दूसरे से कदाचित् नहीं। परन्तु कांग्रेस ने अगस्त योजना को इसलिए अस्वीकार नहीं किया कि वह समय की मांग के प्रतिकूल थी, वरन् इसका कारण निम्नलिखित शब्दों में छिपा हुआ व्यंग्य था—

"यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत की मुख्य शान्ति के लिए वह (ब्रिटिश सरकार) अपने उत्तरदायित्व को ऐसी सरकार के हाथ में नहीं देना चाहती जिसको भारत के राष्ट्रीय जीवन के बड़े शक्तिशाली तत्व स्वीकार नहीं करते हों और वह किसी ऐसे तत्व को ऐसी सरकार की सत्ता मानने के लिए विवश भी करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं।"

सीधी तथा सरल भाषा में इसका अर्थ यह है कि मुसलमान तथा दलित वर्ग जैसे अल्पसंख्यक वर्गों को निषेधाधिकार दे दिया गया। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर इन अल्पसंख्यकों तथा ग्रेट-ब्रिटेन के अनुदार दल के मध्य गठ-बन्धन की याद आने पर इस भावना का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। कांग्रेस की कार्यसमिति ने वर्धा में १८ से २३ अगस्त १९४० तक विचार किया और अन्त में उसको अस्वीकार कर दिया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन—इस योजना के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप महात्मा जी को सविनय अवज्ञा आरम्भ करने का अधिकार दिया गया। धुरी राष्ट्रों विरुद्ध जीवन-मरण के युद्ध में गांधी जी ने ब्रिटेन को द्वेषवश परेशान नहीं करना चाहा, और उन्होंने संसार के सामने यह घोषित किया कि भारत स्वेच्छा से ब्रिटेन की सहायता नहीं कर रहा है, वरन् वह अपनी स्वतन्त्रता का इच्छुक है। उन्होंने सविनय अवज्ञा को अपने द्वारा चुने हुए कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रखा। उनकी आज्ञा के के अनुसार कांग्रेस के सभी प्रान्तीय तथा स्थानीय नेताओं, विधान-मण्डलों के सदस्यों, जिलों तथा नगरों की कांग्रेस कमेटियों के सभापतियों तथा सदस्यों ने लड़ाई के विरुद्ध भाषण देकर जेल जाना आरम्भ कर दिया। स्वतन्त्र भाषण का उपयोग करने के कारण १२,००० व्यक्ति जेल भेज दिए गए।

समझौता न होना—जब यह महत्वपूर्ण सविनय अवज्ञा आन्दोलन चल ही रहा था, तो वाइसराय ने अपनी कार्यपालिका समिति विस्तृत की और एक युद्ध **सलाहकार मण्डल** की भी स्थापना की। भारतीय सदस्यों ने जिनका अब कार्यपालिका में बहुमत था सविनय अवज्ञा आन्दोलन बन्दियों को १९४१ के दिसम्बर में मुक्त करवाया। कांग्रेस ने कुछ शर्तों के साथ भारत की सुरक्षा में भी भाग लेना चाहा। इस प्रकार उसने अन्य समझौते के लिए भी रास्ता खुला रखा, किन्तु सरकार अपनी समस्त योजना से आगे न बढ़ी, इसलिए उसके और कांग्रेस के मध्य खाई बन गई।

क्रिप्स मिशन और उसके बाद—सिंगापुर, मलाया तथा रंगून का जापानियों पतन और बर्मा की निश्चित पराजय ने सम्राट की सरकार को इस बात की श्यकता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया कि वह भारत को जापानी का सामना करने के लिए सन्तुष्ट करे। इसलिए उसने भारत में **सर स्ट्रेफोर्ड** को भारत की संवैधानिक समस्याओं के निराकरण के लिए भेजा। सर स्ट्रेफोर्ड मिशन असफल रहा, क्योंकि कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक दलों ने उसके द्वारा की गई योजना को स्वीकार नहीं किया।

इस योजना की असफलता ने परिस्थिति को और भी अधिक भयंकर या। सरकार और कांग्रेस के बीच की खाई पूर्व से अधिक विशाल हो गई। ार द्वारा कांग्रेस की माँग अस्वीकार किया जाना महात्मा गांधी को बहुत बुरा ; उन्होंने एक विचारधारा का निर्माण किया जिसे बाद में **'भारत छोड़ो'** का दिया गया। उन्होंने अंग्रेजों को भारत से केवल भारत के हित के लिए ही नहीं अपने हित के लिए भी चले जाने का आदेश दिया। उन्होंने 'हरिजन' द्वारा विचार स्वतन्त्र रूप से प्रगट किए, किन्तु उनकी विचारधारा का सरकार पर प्रभाव नहीं पड़ा। वह कांग्रेस को कुचलने के लिए अपना संगठन दृढ़तर बनाती । जुलाई के मध्य में कांग्रेस कार्यसमिति ने गांधी जी के विचारों का स्पष्टी- किया। यहाँ 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और उस पर अपनी स्वीकृति करने के लिए बम्बई में अगले महीने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक । **८ अगस्त १९४२ ई० को इस अधिवेशन में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और वासियों को तैयार रहने का आदेश दिया गया। महात्मा गांधी ने अपने भाषण लोगों को 'करो या मरो' संग्राम के लिए आह्वान किया।**

भारत छोड़ो आन्दोलन—यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि कांग्रेस ने में सविनय अवज्ञा आरम्भ नहीं किया था, वरन् उसने केवल एक प्रस्ताव करके लोगों को यह आदेश दिया था, कि ब्रिटिश सरकार द्वारा राष्ट्रीय मांगों स्वीकार किए जाने पर वे सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दें। इस बात पर विश्वास जाता है कि समस्या के शान्तिपूर्ण हल के लिए गांधी जी ने वाइसराय से -विनिमय करना चाहा था, किन्तु उनकी यह इच्छा कार्य-रूप में परिणत हो सकी, क्योंकि सरकार का इस स्थिति के प्रति दूसरा ही दृष्टिकोण था और विश्वास करके कि कांग्रेस एक सर्वव्यापी हिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ करने की में है, उसने दृढ़ तथा शीघ्रतापूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया। **इसीलिए के सन्नाटे में महात्मा जी तथा कार्यसमिति के अन्य सदस्यों को बन्दी कर किसी स्थान को भेज दिया गया।** प्रान्तीय तथा स्थानीय नेताओं की देश भर में तारी की गई। सरकार के इस दुर्व्यवहार से सारे देश में अहिंसा की अग्नि उठी। जनता लोकप्रिय नेताओं के बन्दी किए जाने पर क्रोध से उन्मत्त हो । उसने रेल, तार तथा राजकीय भवनों आदि को नष्ट-भ्रष्ट करना आरम्भ या। यद्यपि कांग्रेस के सविनय अवज्ञा कार्यक्रम में इसके लिए कोई स्थान

नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि **जनता में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए एक आन्तरिक उत्साह उमड़ रहा था और वे परतन्त्रता का अन्त करने के लिए व्याकुल हो उठे।** सरकार का दमन-चक्र तीव्र गति से चलने लगा। जनता के पास न हथियार थे और न नेताओं का पथ-प्रदर्शन। असहाय जनता सरकार के सामने न टिक सकी। इस आन्दोलन में लगभग समस्त राजनीतिक दलों और देश-भक्तों ने भाग लिया, किन्तु **साम्यवादी दल** और **मुस्लिम लीग** ने विद्रोह का विरोध ही नहीं किया, वरन् सरकार को पूर्णरूपेण सहायता प्रदान की।

आन्दोलन का दमन—सरकार की दमन नीति के कारण आन्दोलन कुचल दिया गया। महात्मा गांधी ने २१ दिन का उपवास अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के तथा हिंसात्मक नीति को प्रश्रय देने के आक्षेप का विरोध करने के लिए किया। वे अपनी इस कड़ी परीक्षा में सफल हो गए, यद्यपि कई बार उनकी दशा चिन्ताजनक हो गई थी। सरकार की नीति के विरोध में **श्री होमी मोदी, श्री अणे** तथा श्री **सरकार** ने वाइसराय की कार्यपालिका से त्याग-पत्र दिया। इसी समय महात्मा गांधी के सर्वप्रिय सहयोगी **महादेव देसाई** तथा गांधी जी की धर्मपत्नी कस्तूरबा गांधी का स्वर्गवास हुआ। गांधी जी भी जेल में बीमार पड़ गए और मई १९४४ ई० में अस्वस्थता के कारण छोड़ दिए गए।

जेल से मुक्त होकर गांधी जी ने राजनीतिक समस्या का निराकरण करने का प्रयत्न किया, किन्तु सरकार की दृढ़ नीति के कारण परिस्थिति पूर्ववत् ही रही और उसमें किसी प्रकार का सुधार न हो पाया। इसी बीच श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना तथा उनकी मुस्लिम लीग से पाकिस्तान के प्रश्न पर समझौता करने का प्रयास किया, किन्तु उनको अपने प्रयास में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन—१९४५ की गर्मियों में भारत के वाइसराय लार्ड वेवल लन्दन गए और उन्होंने ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों से खूब विचार-विमर्श किया। वहां से वापिस आने पर उन्होंने देश की राजनीतिक विकट परिस्थिति का अन्त करने तथा उसे स्वराज्य की ओर बढ़ाने के उद्देश्य से भारतीय नेताओं के सामने सम्राट की सरकार की योजना रखी, किन्तु मुस्लिम लीग की हठधर्मी के कारण शिमला सम्मेलन सफल नहीं हो सका। मुस्लिम लीग राष्ट्रीय मुसलमान को कार्यकारिणी में स्थान देने के पक्ष में नहीं थी, जब कि कांग्रेस दो राष्ट्रीय मुसलमानों को कार्यकारिणी में सम्मिलित करने के पक्ष में थी।

शिमला सम्मेलन के **उपरान्त**—देश की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने तथा राजनीतिक समस्या के निराकरण करने के उपायों को समझने के लिए पहले तथा दूसरी अगस्त **१९४५** को लार्ड वेविल ने प्रान्तीय गवर्नरों की सभा का आयोजन किया। इसी बीच इंगलैण्ड में साधारण निर्वाचन हुआ, जिनमें मजदूर-दल विजयी हुआ। श्री चर्चिल के स्थान पर श्री एटली ने प्रधान-मन्त्री के पद को ग्रहण किया। सितम्बर १९४५ में भारत में भी निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में अनेक अड़चनों के होते हुए भी कांग्रेस ने भाग लिया।

निर्वाचन के परिणाम—कांग्रेस ने अपने घोषणा-पत्र में ८ अगस्त १९४२ के सिद्ध प्रस्ताव को इन शब्दों में केन्द्र-बिन्दु बना दिया—

"अपनी ८ अगस्त १९४२ की माँग पर कांग्रेस आज भी आरूढ़ है। इसी माँग ा युद्ध घोषणा के आधार पर कांग्रेस अगामी निर्वाचन का सामना कर रही है।"

कांग्रेस ने इस १९४५ के साधारण निर्वाचन में साधारण क्षेत्रों में पूर्ण विजय ाप्त की। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान-मण्डलों में इसके बहुत-से उम्मीदवार र्विरोध निर्वाचित हो गए और जहाँ कहीं भी उनका विरोध कियागया वहीं विरोधियों ो परास्त होना पड़ा। मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रों में दूसरी ही दशा रही। हिन्दुओं की धिक संख्या वाले प्रान्तों में उत्तर-प्रदेश तथा कुछ सीमा तक आसाम के अतिरिक्त ांग्रेस द्वारा खड़े किए हुए सभी मुसलमान उम्मीदवारों को पराजित होना पड़ा। सलमानों की अधिक संख्या वाले चार प्रान्तों में से दो प्रान्त पंजाब तथा बंगाल में ुस्लिम लीग को महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। सिन्ध में लीग को मुसलमानों की सीटों में अधिकांश सीटें मिलीं और कांग्रेस का पक्ष लेने वाले दलों का वहाँ अल्पमत रहा। श्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में कांग्रेस को बहुसंख्यक स्थान प्राप्त हुए यद्यपि १९३७ के र्वाचन की अपेक्षा लीग को इस बार अधिक सफलता मिली। दूसरे शब्दों में यह हा जा सकता है कि निर्वाचन में कांग्रेस तथा लीग दोनों ही देश के शक्तिशाली ाजनीतिक दल सिद्ध हुए। कांग्रेस इस बात का दावा कर सकती थी कि उसके ारत छोड़ो आन्दोलन' को जनता का समर्थन प्राप्त था, क्योंकि उसको एक करोड़ ० लाख मत प्राप्त हुए। उसी समान मुस्लिम लीग भी यह कह सकती थी कि ारतीय मुसलमानों के बहुसंख्यक भाग का उसमें विश्वास था; क्योंकि उसको १५ ाख वोट प्राप्त हुए जो मुसलमान वोटों की पूर्ण संख्या के ७५ प्रतिशत थे। राष्ट्रीय ा अन्य गैर लीगी मुसलमानों को ५ लाख या कुल वोटों के २५ प्रतिशत से कुछ धिक वोट मिले। फिर भी उनको मुस्लिम सीटों की आनुपातिक संख्या न मिली। प्रैल १९४६ में जब मन्त्रि-मण्डल बने तो हिन्दुओं की बहुसंख्या वाले समस्त प्रान्तों था पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में कांग्रेस को शक्ति मिली और मुस्लिम लीग ने बंगाल था सिन्ध में सरकार का निर्माण किया। पंजाब में कांग्रेस, अकालियों तथा 'यूनि-निस्टों' ने संयुक्त मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया और इस प्रकार अकेले सबसे बड़ी ी पार्टी मुस्लिम लीग से इनकी सम्मिलित संख्या बहुत बढ़ गई।

एटली की घोषणा—कांग्रेस भारतीय राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन की ीक्षा कर रही थी; क्योंकि उसको यह आशा थी कि इंगलैण्ड की सरकार सितम्बर ९४५ की वाइसराय की घोषणा के अनुसार कोई निश्चित कदम अवश्य ठाएगी। इसी बीच १५ मार्च १९४६ को इङ्गलैण्ड के **प्रधानमन्त्री** एटली ने हाऊस क कॉमन्स में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जिसमें उन्होंने भारत के स्वातन्त्र्य-अधि-ार को स्वीकृत किया और अपनी सरकार का यह निश्चय भी प्रगट किया कि वह ारतीयों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति में पूर्ण सहायक होगी और बहुसंख्यक लोगों की उन्नति ा ध्यान रखकर वह अल्पसंख्यक लोगों को **निषेधाधिकार** प्रदान न करेगी।

कैबिनेट मिशन-- इङ्गलैण्ड के प्रधानमन्त्री श्री एटली ने यह भी घोषणा की थी कि ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के तीन उच्च सदस्यों का भारत मन्त्री लार्ड पेथिक लारेंस, व्यापार बोर्ड के प्रेसिडेण्ट सर स्ट्रैफोर्ड क्रिप्स तथा फर्स्ट लॉर्ड ऑफ दी ऐडमिरेलटी श्री ए० बी० अलेग्जण्डर—एक दल भारतीय जनता के नेताओं से भारत के विधान के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने भारत जाएगा। इन नेताओं ने भारत आकर विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं से भेंट की। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता न होने के कारण मिशन के सदस्यों ने भारतीय नेताओं के सम्मुख एक योजना रखी। उसकी योजना को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग दोनों ने अस्वीकार किया।

राष्ट्रीय सरकार की स्थापना—लगभग चार महीने तक भारत में रहने के उपरान्त केबिनेट मिशन के सदस्य इङ्गलैण्ड वापिस चले गए। उनको अपने प्रयत्नों में कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। कांग्रेस ने १६ मई की लम्बी योजना को स्वीकार किया, परन्तु १६ जून की **तत्कालीन योजना** को अस्वीकार किया। **उसने संविधान-सभा** में सम्मिलित होने का निश्चय किया, किन्तु आन्तरिक सरकार में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि लार्ड वेविल की शर्तें उसकी राय के अनुसार हिन्दुओं तथा अल्प-संख्यकों के प्रति अन्यायपूर्ण थी। मुस्लिम लीग ने इस का बड़ा प्रयत्न किया कि कांग्रेस की अनुपस्थिति में ही सरकार की स्थापना हो जाए, किन्तु वाइसराय इस बात से सहमत नहीं हुआ। २२ जून को वाइसराय ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अध्यक्षों को एक योजना भेजी। लीग ने आन्तरिक-सरकार में भाग लेना अस्वीकार किया और दूसरी ओर कांग्रेस ने योजनाएँ स्वीकार की और अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का निश्चय किया। २४ अगस्त १९४६ को वाइसराय ने अन्तरिम सरकार के निर्माण का निश्चय किया जिसमें लीग सम्मिलित नहीं हुई। उसने १६ अगस्त को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाने का निश्चय किया। उसकी यह कार्यवाही कांग्रेस के समान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न होकर हिन्दुओं के विरुद्ध थी। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच खुल्लम-खुला लड़ाई प्रारम्भ कर दी। अगस्त १९४६ में कलकत्ते में चार दिन तक होने वाला भंयकर रक्तपात, उसी वर्ष के अक्टूबर में नोवाखली के हिन्दुओं पर होने वाले असाधारण अमानुषिक कार्य, बिहार के हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों से भयंकर बदला लेने तथा पंजाब में देश के विभाजन से पूर्व और बाद में होने वाले अत्याचारों के लिए यही प्रत्यक्ष कार्यवाही उत्तरदायी है।

अन्तरिम सरकार में लीग का पदार्पण—लार्ड वेविल मुस्लिम लीग की ओर से निराश नहीं हुए। उन्होंने लीग को उसका प्रस्ताव वापिस लेने, अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने तथा संविधान-सभा में पूरा भाग लेने के लिए प्रयत्न चालू रखा। उसको अपने उद्देश्य में आंशिक सफलता मिली। लीग ने सरकार में सम्मिलित होने का निश्चय किया, परन्तु उसने अपने उस प्रस्ताव को वापिस नहीं लिया जिसमें केबिनेट मिशन की लम्बी योजना अस्वीकृत की थी। २६ अक्टूबर १९४६ को

बनने वाली नई अन्तरिम सरकार में लीग के पाँच सदस्य सम्मिलित हुए, किन्तु मुस्लिम लीग का पदार्पण करने का कारण साम्प्रदायिक भावना को उत्साहित करना तथा कांग्रेस द्वारा किए गए कार्यों में रोड़ा अटकाना था।

लन्दन सम्मेलन—इन परिस्थितियों में लार्ड वेविल ने केबिनेट से विचार-विमर्श किया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री ने वाइसराय, पंडित नेहरू, सरदार पटेल, श्री जिन्ना तथा श्री लियाकतअली खाँ को लन्दन में एक सम्मेलन के लिए आमन्त्रित किया। कांग्रेस-नेता लन्दन जाने के लिए इच्छुक नहीं थे, क्योंकि वे जानते थे कि सम्मेलन में उन्हीं बातों पर विचार होगा जिन पर केबिनेट मिशन के जाने से लेकर अब तक हुआ था और इन बातों में कोई परिवर्तन करने का अर्थ होगा लीग की कट्टरता, उसकी ऐंठ तथा हिंसात्मक प्रवृति के समक्ष सिर झुकाना। कुछ समय के उपरान्त कांग्रेस ने सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया, किन्तु लन्दन सम्मेलन कांग्रेस तथा लीग में कोई समझौता नहीं करा सका, फिर भी उसने भी जिन्ना का पर्याप्त पक्ष लिया।

लन्दन सम्मेलन पर कांग्रेस की प्रतिक्रिया—कांग्रेस कार्यसमिति तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने ६ दिसम्बर की घोषणा पर विचार किया और यह निश्चय किया कि विभिन्न अर्थ लगाने के कारण जो कठिनाई उत्पन्न हो गई है उसको दूर करने के उद्देश्य से कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के वर्गों के सम्बन्ध में लगाए गए अर्थ के अनुसार कार्य करने की राय देती है, परन्तु यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी प्रान्त के साथ जबरदस्ती न होगी और न पंजाब में सिक्ख हितों की उपेक्षा की जायगी।

संविधान-सभा—संविधान-सभा की प्रथम बैठक ९ अगस्त १९४६ को हुई। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की बैठक टाल देने की दलील स्वीकार नहीं की, क्योंकि यह लीग का अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए एक बहाना-मात्र था। लीग के सदस्य अनुपस्थित रहे। स्थायी अध्यक्ष का निर्वाचन होने तक डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा सभा के सभापति चुने गए। संविधान-सभा ने भारत के लिए नव-संविधान बनाने का कार्य आरम्भ किया। यहाँ यह बतला देना अनुपयुक्त न होगा कि देश का पिछले पचास वर्षों से मार्ग-प्रदर्शन करने वाले नेता-पंडित नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, श्री राजगोपालाचार्य, आचार्य कृपलानी तथा पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त संविधान-सभा के कार्य में संलग्न थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो संविधान-सभा से सदस्य नहीं थे। शान्ति का यह अग्रदूत उस समय नौआखली तथा विहार में साम्प्रदायिक एकता तथा मानवता के प्रसार में संलग्न था।

२० फरवरी की घोषणा—भारत की समस्त राजनीतिक बातों पर सर्वांगण ढंग से विचार करके इङ्गलैण्ड के प्रधान-मन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी १९४७ को हाउस ऑफ कामन्स में एक घोषणा की, जिसमें भारतीय जनता को शक्ति हस्तांतरिक करने का निश्चय करने की अन्तिम तिथि सन् १९४८ निश्चित की गई। उसमें यह भी

कहा गया कि लार्ड वेविल के स्थान पर लार्ड माउण्टवेटन भारत के वाइसराय नियुक्त किए जाएँगे।

३ जून की घोषणा—२३ मार्च को लार्ड माउण्टबेटन ने भारत के वाइसराय के पद की शपथ ग्रहण की। १८ मई को वे सम्राट की सरकार से विचार-विमर्श करने के लिए इंगलैण्ड गए। वे दो जून को भारत लौटे और ३ जून को उन्होंने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें एक या दो सरकारों को सत्ता हस्तांतरित करने का निश्चय किया गया। यह घोषणा बड़ी महत्वपूर्ण थी। इसके अनुसार भारत का दो भागों में विभाजन निश्चय हो गया। परिस्थितियों से विवश होकर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को **कटा-फटा पाकिस्तान** प्राप्त करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम—भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक ब्रिटिश संसद ने सर्वसम्मत्ति तथा बड़ी शीघ्रता से पास किया। यह शीघ्रता समस्त अंग्रेजी इतिहास में बे-मिसाल है। इसी अधिनियम के अनुसार १५ अगस्त १९४७ ई० की रात के बारह बजे भारत तथा पाकिस्तान दो स्वतन्त्र उपनिवेशों का निर्माण हुआ।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में साम्प्रदायिक दंगे हुए और पाकिस्तान में निवास करने वाले हिन्दुओं को अपना घर-बार त्यागकर भारत की भूमि में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। संविधान-सभा ने संविधान बनाने का कार्य २६ जनवरी १९४९ ई० को समाप्त किया जो २६ जनवरी १९५० ई० से लागू हुआ। इसके अनुसार भारत एक सार्वभौम स्वतन्त्र गणतन्त्र घोषित किया गया। देशरत्न **डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद** इसके प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

उत्तर प्रदेश—

(१) १९२० ई० से भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का क्रमानुसार उल्लेख कीजिए। संक्षेप में बताइए कि महात्मा गांधी और नेता सुभाषचन्द्र बोस का स्वराज्य प्राप्ति में क्या भाग था।

(२) राष्ट्र के निर्माण में महात्मा गांधी का क्या भाग था ?

(३) १९४७ ई० में भारत का विभाजन किन परिस्थितियों के कार हुआ ?

(४) महात्मा गांधी ने कांग्रेस की नीति और कार्यप्रणाली में क्या- परिवर्तन किए ?

(५) सन् १९४२ के महात्मा गांधी द्वारा संस्थापित "भारत छोड़ो" आन्दोल के कारणों का वर्णन कीजिए और उसके परिणामों का उल्लेख कीजिए।

(६) सन् १९४० से १९४७ तक की हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति वर्णन कीजिए। महात्मा गांधी ने उसमें क्या भाग लिया था ?

(७) असहयोग आन्दोलन के कारणों का वर्णन करो और भारतीय राष्ट्री के विकास में उसके महत्व का उल्लेख कीजिए ?

(८) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर टिप्पणी लिखो।

(९) १९२० ई० से १९४७ ई० के बीच भारत की राष्ट्रीय चेतना का संक्षिप्त विवरण कीजिए।

(१०) भारत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास में महात्मा गांधी का क्या योगदान है ?

मध्य भारत—

(१) १८५७ से १९४७ तक भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति में सहायक विभिन्न बातों को बतलाइए।

(२) भारत छोड़ो आन्दोलन पर एक टिप्पणी लिखो।

(३) "बंगाल का विभाजन करना लार्ड कर्जन की एक बहुत बड़ी भूल थी ?" क्या आप इससे सहमत हैं ? ऐसा करने के कारणों और प्रभावों का वर्णन करो।

(४) भारत की स्वतन्त्रता में महात्मा गांधी का क्या हाथ रहा ?

(५) स्वराज्य पार्टी पर एक टिप्पणी लिखो।

(६) "भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन के उत्थान में सहायक परिस्थितियाँ बहुत समय से कार्य कर रही हैं।" उनको समझाओ और उनका विवेचन करो।

(७) बंग-भंग, स्वराज्य दल और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस पर टिप्पणी लिखो।

(८) उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन को जन्म देने वाले विभिन्न कारणों को लिखो।

(९) हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता दिलाने में महात्मा गांधी के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

राजस्थान—

(१) सन् १८८४ से १९१९ ई० तक भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन के इतिहास का वर्णन करो और उसका सरकार से क्या सम्बन्ध रहा, लिखो।

(२) राष्ट्रीयता के विकास के कारणों का उल्लेख करो और १८८५ से १९१४ ई० तक के इतिहास का वर्णन करो।

(३) १९२० से १९३२ तक के सत्याग्रह-आन्दोलन के इतिहास का वर्णन करो। वह क्यों असफल रहा ?

(४) स्वतन्त्रता-आन्दोलन में निम्न नेताओं ने क्या सहयोग प्रदान किया—
सुभाषचन्द्र बोस, सावरकर और लोकमान्य तिलक ?

(५) १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन तथा पण्डित मदनमोहन मालवीय पर एक टिप्पणी लिखो।

(६) १९३५ से १९४७ तक के स्वतन्त्रता-आन्दोलन का वर्णन करो।

(७) १९०५ से १९३५ तक के राष्ट्रीय आन्दोलन का वर्णन करो।

(८) १९३९ से १९४७ तक की उन परिस्थितियों का वर्णन करो जिनके द्वारा १९४७ ई० में भारत स्वतन्त्र हुआ ?

सागर विश्वविद्यालय—

(१) १८८५ से १९३० तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास पर विचार कीजिए।

(२) उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में राष्ट्रीयता की उत्पत्ति तथा विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए उसकी १९१९ तक की प्रमुख गतिविधियाँ बतलाइए।

(२) बालगंगाधर तिलक पर एक टिप्पणी लिखो।

(३) १९२० से लेकर १९४२ तक की राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियों का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

(४) आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं कि अङ्गरेजी का प्रारम्भ स्वतन्त्रता के लिए लघुमार्ग सिद्ध हुआ ?

(५) स्वतन्त्रता-संघर्ष में स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू की सेवाओं का मूल्यांकन कीजिए।

(६) भारत के आधुनिक सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों को भारतीय राष्ट्रीयता जागृति करने में कितना श्रेय है ?

(७) "भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान में सहायक परिस्थितियाँ बहुत समय से कार्य कर रही थीं।" समझाइए तथा विवेचना कीजिए।

(८) क्या परिस्थितियाँ थीं कि जिसके कारण १९४२ का "भारत छोड़ो" आन्दोलन हुआ ? कहाँ तक यह आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति और देश के विभाजन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ ?

(९) भारत की राजनीतिक जागृति में महात्मा गांधी की क्या देन है ? महात्मा गांधी के नेतृत्व में सन् १९२० से १९४७ तक हुई भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की कहानी संक्षेप में लिखिए।

(१०) गोपालकृष्ण गोखले, बालगगांधर तिलक, सुभाषचन्द्र बोस के सम्बन्ध में टिप्पणी लिखो।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) उन कारणों की विवेचना कीजिए जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

(२) बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल में राजनीति में किन तत्वों ने उग्रवाद को जन्म दिया ?

८

शासन-सम्बन्धी सुधार

शासन-सम्बन्धी सुधारों की पृष्ठभूमि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में निर्धारित हो चुकी थी। १८५७ ई० के उपरान्त जब शासन-भार इंगलैण्ड की संसद के अधीन आ गया, और कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया गया तो शासन-सम्बन्धी सुधारों की ओर शासकों का ध्यान आकर्षित हुआ। कुछ गवर्नर-जनरलों ने शासन को उन्नत करने तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने के अभिप्राय से बहुत से सुधार किए। उनमें से मुख्य निम्नांकित हैं—

(१) लार्ड केनिंग

(क) सेना का संगठन—क्रान्ति का दमन करने के उपरान्त लार्ड केनिंग का ध्यान सेना का संगठन करने की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि भारत की रक्षा उस समय ही सम्भव है जब भारत में अंग्रेजी सेना की संख्या भारतीय सेना की संख्या की अपेक्षा पर्याप्त हो। उन्होंने २ : १ के अनुपात में भारतीय तथा अंग्रेजी सेना की संख्या निश्चित की। इसके अनुसार भारतीय सेना की संख्या कम कर दी गई और अंग्रेजी सेना की संख्या में वृद्धि की गई। १८६१ ई० में भारत में ब्रिटिश सेना की संख्या ७६,००० कर दी गई और भारतीय सेना घटाकर १२,०,००० रह गई। भारतीयों के हाथ से तोपखाना लेकर अंग्रजों के अधिकार में दिया गया।

(ख) आर्थिक सुधार—क्रान्ति के दमन में बहुत अधिक धन व्यय हो जाने के कारण सरकार की आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई थी। लार्ड केनिंग ने सरकार की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर शीघ्र ध्यान दिया। विलसन नाम का कुशल अर्थनीतिज्ञ भारत आया, जिसने आर्थिक स्थिति में सुधार करने के निम्न तीन सुझाव रखे—

(i) ५०० रु० से अधिक की आय पर आय-कर लगाना।
(ii) व्यापार एवं व्यवसाय पर **लाइसेंस** कर लगाना, तथा
(iii) भारतीय तम्बाकू पर कर लगाना।

इसके अतिरिक्त उसने आयात कर और निर्यात कर लगाने की व्यवस्था की। आयात कर १० प्रतिशत और निर्यात कर ४ प्रतिशत निश्चित किया गया। **नमक** कर में भी वृद्धि की गई।

इन सुधारों के कारण सरकार की आय में बड़ी वृद्धि हुई। इसके उपरान्त उसने सरकारी व्यय को कम करने की व्यवस्था की। उसने सैनिक तथा असैनिक या नागरिक दोनों विभागों के व्यय में पर्याप्त कमी की। इसके द्वारा सरकार की आर्थिक स्थिति बड़ी सन्तोषजनक हो गई।

(ग) **अन्य सुधार**—लार्ड केनिंग ने अन्य सुधारों की ओर भी ध्यान दिया जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(i) **शिक्षा का प्रचार**—उसने शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार करने का प्रयत्न किया, किन्तु धनाभाव के कारण उसके प्रयत्नों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८५७ ई० में लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में वश्वविद्यालय स्थापित किए गए।

(ii) **हाई कोर्ट एक्ट**—उसके समय में हाई कोर्ट एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हाई कोर्ट की स्थापना की गई। सुप्रीम कोट और सदर अदालतों का अन्त कर दिया गया।

(iii) **किसानों के अधिकारों को सुरक्षित करना**—उन किसानों के अधिकारों को मारुसी कर दिया गया जो बारह वर्ष से किसी भूमि को जोत रहे थे।

(iv) **जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों को सीमित करना**—जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों को सीमित कर दिया गया।

(v) **रेलवे लाइनों का विस्तार**—लार्ड केनिंग के समय में ई० आई० आर० और जी० आई० पी० रेलवे लाइनों का विस्तार किया गया।

(vi) **ग्रॉड-ट्रंक रोड का पुर्नरुद्धार**—उसके समय में ग्रॉड-ट्रंक रोड़ का पुर्नरुद्धार किया गया।

(vii) **पुलिस-विभाग का संगठन**—सन् १८६१ ई० के एक एक्ट द्वारा पुलिस विभाग का संगठन किया गया। प्रत्येक प्रान्त में एक पुलिस-विभाग की स्थापना एक प्रान्तीय इन्सपेक्टर-जनरल के निरीक्षण में की गई। प्रत्येक जिले में एक पुलिस अधीक्षक की नियुक्ति की गई।

(२) लार्ड मियो

लार्ड मियो ने वित्त सुधारों की ओर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि उसको सरकार की आर्थिक-व्यवस्था को उन्नत करना था। उसके मुख्य सुधार निम्नलिखित हैं—

(क) **नमक कर में वृद्धि**—उन प्रान्तों में नमक कर बढ़ाया गया जहाँ अब तक बहुत थोड़ा था।

(ख) **आय-कर की दर में वृद्धि**—इसने आय-कर में वृद्धि की। पहले आय-कर की दर १ प्रतिशत थी। पहले उसने २½ प्रतिशत और बाद में तीन प्रतिशत कर दी।

(ग) **प्रान्तों को निश्चित वार्षिक अनुदान देना**—प्रान्तों को निश्चित वार्षिक अनुदान देने का निश्चय किया गया। यह राशि प्रत्येक पाँच वर्ष बाद घटाई-बढ़ाई जा सकती थी। इसके साथ-साथ उनको इस धन-राशि को कुछ निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत व्यय करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वे एक विभाग में से बचाया हुआ धन दूसरे विभाग में लाभपूर्ण ढङ्ग से व्यय कर सकते थे।

इन सुधारों का लाभ यह हुआ कि लार्ड लारेंस के समय का घाटा अगले चार वर्षों में बचत में परिवर्तित हो गया।

(घ) **जनगणना**—लार्ड मियो के समय में भारतीय जनता की प्रथम बार जनगणना की व्यवस्था की गई।

(ङ) **कृषि और व्यापार विभाग की स्थापना**—उसने कृषि और व्यापार की उन्नति के लिए कृषि और व्यापार विभाग की स्थापना की।

(३) लार्ड लिटन

लार्ड लिटन का शासन-काल महान् सुधारों के कारण प्रसिद्ध है। उसके शासन-काल में निम्न प्रमुख सुधार हुए—

(क) **नमक कर**—नमक-कर आय का एक प्रमुख साधन था। यह विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न दरों में लागू था। इस कारण नमक का आयात चोरी द्वारा किया जाता था। इसको रोकने के लिए कटक से दक्षिण में महानदी तक २५०० मील की दूरी में चुंगी की चौकियाँ स्थापित की गईं। इसके अतिरिक्त उसने उसकी दर में इतनी कमी कर दी कि एक प्रान्त से नमक दूसरे प्रान्त में ले जाने में कोई लाभ नहीं रहा। उसने समस्त चुंगी चौकियों का अन्त कर दिया।

(ख) **मुक्त व्यापार की ओर प्रगति**—१८७८ ई० में टैरिफ में से देश के अन्दर की चुंगियों पर लगने वाला चीनी शुल्क हटा दिया और २१ वस्तुओं पर से आयात शुल्क भी समाप्त कर दिया गया। सन् १८७९ ई० में मोटे घटिया कपड़े पर से आयात शुल्क समाप्त कर दिया गया। इसके लिए वाइसराय को अपनी कौंसिल के बहुमत के विरुद्ध कार्य करने के लिए अपने वैधानिक अधिकार को प्रयोग में लाना पड़ा।

(ग) **कृषि की उन्नति**—कृषि की उन्नति के लिए १८७९ ई० में लार्ड लिटन की सरकार ने दक्षिण-भारत एग्रीकल्चरल रिलीफ एक्ट पास किया, जिसके द्वारा साहूकार के किसान की भूमि पर ऋणार्थ रोक के अधिकार की समाप्ति हुई।

(घ) **असैनिक सेवा का नियम**—सन् १८७९ में असैनिक सेवा का नियम बनाया गया।

(ङ) **वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट**—लार्ड लिटन की सरकार प्रेस की शक्ति की उन्नति से घबरा गई और १३ मार्च १८७८ ई० को उसने भारत सचिव के पास तार भेजकर प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाने की अनुमति मांगी। दूसरे ही दिन अनुमति प्राप्त हो गई और उसके प्राप्त होने के दो ही घंटों के अन्दर वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास हो गया। इस एक्ट के द्वारा मजिस्ट्रेटों और कलक्टरों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि किसी भी पत्र-सम्पादक से अङ्गरेजी में यह शर्तनामा लिखवा लें कि वह अपने पत्र में कोई ऐसी बात नहीं लिखेगा जिससे सरकार के विरुद्ध उत्तेजना अथवा असन्तोष और विभिन्न जाति तथा धर्मों के लोगों में घृणा का प्रचार हो, अन्यथा उसके लिए वह सरकारी अधिकारियों के समक्ष प्रमाण उपस्थित करेगा। इस एक्ट के द्वारा समस्त देश में और विशेषत: बंगाल में विरोध उत्पन्न हो गया। इसके विरोध में कलकत्ते में एक

विशाल सभा हुई । अन्त में बाध्य होकर लार्ड लिटन के उत्तराधिकारी लार्ड रिपन ने इस एक्ट को चार वर्ष उपरान्त रद्द कर दिया ।

(४) लार्ड रिपन

लार्ड रिपन उदार विचारों का था । वह लार्ड विलियम बैंटिक के समान राजनीतिक और सामाजिक सुधारों में अभिरुचि रखता था । 'वह शान्ति, हस्तक्षेप न करने और स्वायत्त शासन के गुणों में विश्वास रखता था और ग्लैडस्टन-युग का सच्चा उदारपंथी था ।' वह भारत सरकार को और अधिक उदार बनाने की दिशा में कार्य करने का निश्चय कर चुका था । उसके समस्त सुधारों को निम्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) **आयात-निर्यात कर और राजस्व**—उसने आयात-निर्यात कर और राजस्व के सम्बन्ध में निम्न महत्वपूर्ण सुधार किए—

(i) **आयात शुल्क की समाप्ति**—सन् १८८२ ई० में टैरिफ में से मूल्य के अनुसार पाँच प्रतिशत आयात-शुल्क समाप्त कर दिया गया । अब केवल नमक, शराब तथा गोला, बारूद और शस्त्रों पर शुल्क रह गया ।

(ii) **नमक कर कम करना**—सन् १८८२ ई० में समस्त भारत में नमक-कर कम कर दिया गया ।

(iii) **लगान के स्थायी बन्दोबस्त का अन्त**—सन् १८८३ ई० में लार्ड रिपन ने लगान के स्थायी बन्दोबस्त चालू करने की योजना का अन्त कर दिया ।

(ख) **शासन का विकेन्द्रीकरण और वित्त नियन्त्रण**—इस शीर्षक के अन्तर्गत जितने सुधार कार्यान्वित किए गए वे विशेष महत्वपूर्ण हैं । उनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

(i) **स्थानीय स्वशासन की प्रगति**—यद्यपि स्थानीय स्वशासन की ओर कदम पहले ही उठाया जा चुका था, किन्तु १८८२ ई० में लार्ड रिपन की सरकार ने इस ओर जो पग उठाया, वह विशिष्ट महत्वपूर्ण है । अब से गाँवों की ओर भी ध्यान दिया गया । उसके एक प्रस्ताव ने नगरपालिकाओं का सम्पूर्ण रूप बदल दिया । उसने ग्राम पंचायतों तथा जिला बोर्डों की ओर भी ध्यान दिया । इनके द्वारा अपने ही कार्यों में लोगों को अधिक तथा वास्तविक प्रबन्ध और देख-भाल का अवसर दिया गया ।

(ग) **समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता**—लार्ड रिपन ने लार्ड लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को समाप्त कर सब समाचार-पत्रों को सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में समान स्वतन्त्रा प्रदान की ।

(घ) **शिक्षा**—लार्ड रिपन ने शिक्षा के प्रसार के लिए भी प्रयत्न किया। सन् १८८२ ई० में **सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर** की अध्यक्षता में २० सदस्यों के एक शिक्षा-आयोग की नियुक्ति की गई, जो उसके अध्यक्ष के नाम पर ही हण्टर कमीशन के नाम से विख्यात हुआ । इसकी नियुक्ति का उद्देश्य शिक्षा-सम्बन्धी दोषों का अन्त करना तथा शिक्षा-पद्धति में सुधार करना था । इसने सिफारिश की

प्राथमिक शिक्षा को लोकल बोर्ड और म्युनिसिपैलिटियों के सुपुर्द किया जाए और शिक्षण संस्थाओं पर से सरकारी नियन्त्रण का अन्त किया जाए। उन्होंने स्त्रियों तथा दलित वर्ग की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करने की भी सिफारिश की। इस प्रकार लार्ड रिपन के शासन-काल में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई।

(५) लार्ड कर्जन (1985, 83)

लार्ड कर्जन का शासन-काल भारतीय शासन-सुधारों के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखता है। शासन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था जिसमें उसने सुधार करने की आवश्यकता का अनुभव न किया हो। उसने अनेक विभागों का सूक्ष्म परीक्षण किया, जिसके लिए उसने एक कमेटी की नियुक्ति की, बाद में उसकी रिपोर्ट की सिफारिशों को ध्यान में रखकर नियम बनाए गए। उसके प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) **कृषि की अवस्था को उन्नत करना**—सर्वप्रथम लार्ड कर्जन का ध्यान कृषि की अवस्था को उन्नत करने की ओर आकर्षित हुआ। अब तक सरकार का ध्यान केवल लगान तथा मालगुजारी की ओर था। उसने कृषि को उन्नत करने के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया था। इस सम्बन्ध में उसके मुख्य सुधार इस प्रकार हैं—

(i) **सस्पेंशन और रैमीशन प्रस्ताव**—उसने सस्पेंशन और रैमीशन प्रस्ताव पास किया। इसके अनुसार जिलाधीशों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वे अकाल और अनावृष्टि के समय लगान की माफी कर सकते थे।

(ii) **पंजाब भूमि हस्तांतरण अधिनियम**—सन् १९०० ई० में लार्ड कर्जन ने पंजाब भूमि हस्तांतरण अधिनियम पास किया। इसके अनुसार किसान को उत्तराधिकार में प्राप्त हुई भूमि को डिग्री की वसूली के लिए बेचा नहीं जा सकता था। इससे किसान साहूकारों द्वारा बेदखली किए जाने से बच गए। वह सरकार की अनुमति प्राप्त किए बिना २० वर्ष से अधिक उनकी भूमि को बन्धन में नहीं रख सकता था।

(iii) **कृषि-बैंक तथा सहकारी समितियों की स्थापना**—किसानों की आर्थिक अवस्था शोचनीय होने के कारण उनको गाँव तथा शहर के महाजनों से अधिक ब्याज पर धन लेना पड़ता था, जिसका भुगतान करना उनके लिए असम्भव था, लार्ड कर्जन ने उनकी आर्थिक अवस्था को उन्नत करने के लिए कृषि-बैंक और सहकारी समितियों की स्थापना की तथा उनके लिए १९०४ ई० में एक अधिनियम पास किया। किसान इनसे कम सूद पर ऋण ले सकता था।

(iv) **कृषि-अन्वेषण संस्था**—लार्ड कर्जन ने पूना में एक कृषि-अन्वेषण संस्था की स्थापना की, जिसके द्वारा वैज्ञानिक ढंग से खेती का कार्य आरम्भ किया जा सके।

(v) **सिंचाई की व्यवस्था को उन्नत करना**—सिंचाई की व्यवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय से सन् १९०१ ई० में लार्ड कर्जन ने एक कमीशन नियुक्त किया। उसकी रिपोर्ट के आधार पर एक विस्टन-योजना का निर्माण किया गया, जिसमें २०

वर्षों के लिए ४४ करोड़ रुपए का व्यय किया जाना था। नदियों से नहरें निकालने का कार्य आरम्भ होने लगा।

(ख) प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा—लार्ड कर्जन ने प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों तथा चिन्हों की रक्षा के लिए एक नए विभाग का निर्माण किया, जिसका नाम पुरातत्व विभाग रखा गया। इस विभाग ने सराहनीय कार्य कर भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास को जीवित व जागृत रखने का पर्याप्त प्रयत्न किया है। इस विभाग की ओर से बहुत-सी घटनाओं व शिलालेखों की खोज हुई है, जिसने ऐतिहासिक ज्ञान की वृद्धि की है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण खोज सिन्धु-घाटी की सभ्यता है।

(ग) रेलवे-विभाग—पब्लिक वर्क्स विभाग के नियन्त्रण में रेलवे का काय सम्पन्न किया जाता था। इस व्यवस्था के अत्यन्त दोषपूर्ण होने के कारण १९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने रेलवे का प्रबन्ध इस विभाग से लेकर तीन सदस्यों का एक रेलवे बोर्ड बनाया।

(घ) शासन का केन्द्रीकरण—लार्ड कर्जन शासन के केन्द्रीकरण में विश्वास करता था। वह प्रान्तीय गवर्नरों के अधिकारों को सीमित करना चाहता था, किन्तु उसको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु फिर भी उसने अन्य विभागों की अधिकांश सत्ता पर केन्द्र का नियन्त्रण स्थापित किया।

(ङ) पुलिस—सन् १९०२ ई० में इस विभाग की जाँच के लिए सर एड्ण्ड्र फ्रेजर की अध्यक्षता में एक कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने इस विभाग की जोरदार निन्दा की। "इसमें कार्यकुशलता का सर्वथा अभाव है, शिक्षण और संगठन दोषपूर्ण है और यह अपूर्ण रूप से निरीक्षित और साधारणतया दमन और भ्रष्टाचारपूर्ण ख्याल किया जाता है।" सन् १९०५ ई० में इस विभाग में सुधार करने आरम्भ किए गए, किन्तु फिर भी वह दोषपूर्ण ही रहा।

(च) शिक्षा—शिक्षा के क्षेत्र में भी लार्ड कर्जन के केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया। वह देश की समस्त शिक्षा को सरकारी नियन्त्रण के अन्तर्गत लाना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने एक योजना का निर्माण किया और उस पर विचार-विमर्श करने के लिए सन् १९०१ ई० में शिमला में एक सम्मेलन का आयोजन किया। सन् १९०२ ई० में उसने एक यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त किया, जिसमें केवल एक भारतीय (सैयद हुसेन बिलग्रामी) थे और शेष सदस्य अङ्गरेज थे। बाद में जनता के विरोध पर एक अन्य भारतीय गुरुदास बनर्जी की नियुक्ति की गई। कमीशन की रिपोर्ट का प्रकाशन १९०२ ई० में हुआ। इसके आधार पर १९०४ ई० में यूनिवर्सिटी एक्ट पास किया गया, यद्यपि जनता की ओर से रिपोर्ट की कटु आलोचना की गई। इस एक्ट के अनुसार विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता को बहुत कम कर दिया गया। सीनेट तथा सिंडीकेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी गई और उनके अधिकार सीमित कर दिए गए। कालिजों को विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत सम्मिलित करने के नियम कठोर कर दिए गए। इसका विशेष विरोध किया गया। प्राथमिक

शिक्षा के प्रसार के लिए २,३०,००० पौण्ड स्वीकृत किए गए। उसने अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की। औद्योगिक तथा स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष जोर दिया।

(छ) स्थानीय संस्थाएँ—लार्ड कर्जन ने स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण अत्यधिक स्थापित करने का प्रयत्न किया। सन् १९०० ई० में उसने कलकत्ता म्युनिसिपल अधिनियम पास किया, जिसके द्वारा कलकत्ते के निगम में अङ्गरेज सदस्यों का बहुमत हो गया और भारतीय सदस्यों का अल्पमत रह गया, किन्तु लार्ड कर्जन ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

(ज) बंगाल-विच्छेद—सन् १९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने बंगाल को पूर्वी और पश्चिमी बंगाल में विभाजित किया। इसके विरोध में बंगाल की जनता ने अपना मत प्रगट किया, किन्तु लार्ड कर्जन उससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों का साधारणतः यह विश्वास था कि प्रान्त के विभाजन के उद्देश्य बंगाल की बढ़ती राष्ट्रीयता का दमन तथा वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालना था। अन्त में सात वर्ष के उपरान्त सन् १९१२ ई० में बंगाल विच्छेद का अन्त किया गया।

न्याय-सम्बन्धी सुधार

पहले ही बतलाया जा चुका है कि कम्पनी को जब १७६५ ई० में बंगाल तथा बिहार की दीवनी प्राप्त हुई तो उसको न्याय की व्यवस्था करने का भी अधिकार मुगल-सम्राट की ओर से प्राप्त हुआ। **वारेन हेस्टिंग्ज** ने इस ओर विशेष ध्यान देकर कई महत्वपूर्ण सुधार किए। उसके समय में प्रत्येक जिले में एक दीवानी तथा फौजदारी न्यायालय की स्थापना की गई तथा कलकत्ते में एक दीवानी अदालत तथा सदर निजामत अदालत की स्थापना की गई। १७७३ ई० में बंगाल में एक प्रधान न्यायालय की स्थापना हुई। जब **कार्नवालिस** भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया तो उसने भी कई न्याय-सम्बन्धी सुधार किए। उसने अंग्रेजी राज्य को ३६ जिलों के स्थान पर २३ जिलों में विभाजित किया। उसने दीवानी के मुकदमों के न्याय के लिए श्रेणीबद्ध न्यायालयों की व्यवस्था की। सदर दीवानी अदालत सबसे उच्च न्यायालय माना गया, जिसमें गवर्नर-जनरल और कलकत्ता कौंसिल के सदस्य, काजी-उल-कज्जात, दो मुफ्ती और दो पण्डित होते थे। प्रान्तीय नगरों में प्रान्तीय न्यायालय थे, जिनको मुख्यतः अपील सुनने का अधिकार था, किन्तु कुछ विषयों से सम्बन्धित प्राथमिक मुकदमे भी इनमें सुने जा सकते थे। प्रत्येक प्रान्तीय न्यायालय में तीन यूरोपियन जज होते थे। इनके अतिरिक्त एक काजी, एक मुफ्ती और एक पण्डित भी उनके सहायतार्थ होते थे। इनके अन्तर्गत जिले के न्यायालय थे और बड़े-बड़े नगरों में नगर-न्यायालय थे। यूरोपियन तथा ब्रिटिश प्रजा कलकत्ते में स्थित सुप्रीम कोर्ट के अन्तर्गत थी। कार्नवालिस ने सदर निजामत अदालत मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ते में स्थापित की और वह फौजदारी न्याय की सबसे बड़ी अदालत थी। इसका सभापति गवर्नर-जनरल होता था। छोटे फौजदारी मुकदमों के निर्णय के लिए १७९३ ई० में चार नए न्यायालय स्थापित किए गए, जिनको सरकिट कोर्ट कहते थे।

१८०१ ई० में **लार्ड वैलेजली** ने अपील के दोनों न्यायालयों में कुछ परिवर्तन किए। अब गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्यों के अतिरिक्त तीन या उससे अधिक न्यायाधीश नियुक्त किए जाने लगे। **लार्ड विलियम बैंटिक** के समय में प्रान्तीय न्यायालयों को भंग कर उनके कार्य न्यायाधीशों को प्रदान किए गए। कलक्टर को मजिस्ट्रेट के अधिकार प्रदान किए गए। अतः अब उसके अधिकार में शासन सम्बन्धी तथा न्याय-सम्बन्धी दोनों अधिकार आ गए। उसके समय में विधि का संग्रह भी किया गया, जिसमें बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों ने विशेष महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। १८३३ ई० में गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक विधि-सदस्य और सम्मिलित कर दिया गया। विधि के संग्रह के लिए एक आयोग का निर्माण किया गया, जिसके प्रयत्नों से भारतीय-दण्ड विधान निर्मित किया गया। १८६१ ई० के आयोग द्वारा सिविल प्रोसिजर तथा क्रिमिनल प्रोसिजर निर्मित हुआ। १८६१ ई० में इण्डियन हाई कोर्ट एक्ट पारित हुआ, जिसके अनुसार प्रान्तों में हाई-कोर्ट की स्थापना की गई और सुप्रीम कोर्ट तथा अदालत कोर्ट समाप्त कर दी गई। सन् १९११ ई० में दूसरा हाई कोर्ट एक्ट पास हुआ जिसके द्वारा न्यायाधीशों की संख्या १३ से २० कर दी गई। १९३५ ई० के अधिनियम के द्वारा भारत में एक संघ-न्यायालय की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और ६ से अधिक न्यायाधीशों की व्यवस्था की गई। इस न्यायालय को विशेष अधिकार प्राप्त थे।

पुलिस और जेल-सम्बन्धी सुधार

पुलिस व्यवस्था—अंग्रेजी राज्य में शासन और सुव्यवस्था की स्थापना करने के लिए भी अंग्रेजों ने प्रबन्ध किया; क्योंकि इसके अभाव में व्यापार करना असम्भव था जो कम्पनी का मुख्य उद्देश्य था। **वारेन हेस्टिंग्ज** ने इस कार्य के लिए फौजदारों, थानेदारों की व्यवस्था की, किन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। **लार्ड कार्नवालिस** ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उसने हेस्टिंग्ज द्वारा स्थापित व्यवस्था का अन्त किया। उसने जिलाधीशों को आदेश दिया कि वे अपने जिलों में थानों का निर्माण करें। प्रत्येक थाने में एक दारोगा होगा, जिसकी नियुक्ति जिलाधीश करेगा। जमींदारों को समस्त अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उनके समस्त अधिकार जिलाधीश को दे दिए गए। दारोगा को चुराई हुई वस्तु का पता लगाने पर उसके मूल्य का १० प्रतिशत कमीशन के रूप में मिलेगा तथा डाकू का पता लगाने पर सरकार की ओर से १० रुपया दिया जाएगा। पुलिस के व्यय के लिए शहरों तथा बाजारों की दुकानों तथा गोदामों पर कुछ कर लगा दिया गया। बाद में यह व्यवस्था बड़ी खर्चीली सिद्ध हुई और इसके स्थान पर जमींदारों को पुनः अधिकार १८०७ ई० में प्रदान किए गए, किन्तु १८१४ ई० में उनका फिर अन्त कर दिया गया। अन्त में क्रान्ति के उपरान्त पुलिस-विभाग का पुनः सगठन किया गया। १८६० ई० में एक आयोग का निर्माण किया गया जिसकी सिफारिशों के आधार पर १८६१ ई० में पुलिस एक्ट पास हुआ। प्रत्येक प्रान्त में एक इन्सपेक्टर जनरल की नियुक्ति की गई और इस विभाग के समस्त कर्मचारी उसके अधीन कर दिए

ए। १९०२ ई० में पुनः एक आयोग की स्थापना की गई जिसकी सिफारिशों पर पुलिस-विभाग का पुनः संगठन किया गया। १९०४ ई० में गुप्तचर विभाग की स्थापना की गई। इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक जिले में एक इन्सपेक्टर जनरल होता था, जिसके अधीन कई डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल होते थे जो अपने सर्किल के इन्चार्ज थे। प्रत्येक जिले में एक पुलिस अधीक्षक होता था और उसके अन्तर्गत जिले के समस्त थाने होते थे। प्रत्येक थाने में एक पुलिस इन्सपेक्टर, सब इन्सपेक्टर तथा कुछ सिपाही होते थे। देहातों में चौकीदार होते थे।

जेल-व्यवस्था—आरम्भ में जेल-व्यवस्था अंग्रेजी जेल-व्यवस्था के समान अस्वास्थ्यकर, अवनत और अपराधों को रोकने में अंग्रेजी जेल-व्यवस्था के समान थी। इस ओर लार्ड मैकॉले का ध्यान आकर्षित हुआ, जिसके कहने पर एक जेल-कमीशन की नियुक्ति १८३६ ई० में की गई। १८३८ ई० में उसने अपनी रिपोर्ट सरकार को दी, किन्तु उसने जेल-व्यवस्था की उन्नति के विषय में कोई मुख्य सिफारिश नहीं की। इसके उपरान्त १८६६ ई० और १८६७ ई० में पुनः दो आयोग नियुक्त हुए। १८८९ ई० में भारत सरकार की ओर से दो अधिकारी इस कार्य के लिए नियुक्त किए गए, जिन्होंने इस व्यवस्था को उन्नत करने की सिफारिश की। फिर १८९२ ई० में एक कमीशन की नियुक्ति की गई। इसके आधार पर १८९४ ई० में जेल अधिनियम पारित हुआ, जिसके अनुसार जेल-व्यवस्था का संगठन किया गया। यह विषय प्रान्तों को दिया गया। १९१९ ई० में फिर एक कमेटी की नियुक्ति की गई, जिसके अनुसार जेलों में कुछ सुधार किए गए।

सैनिक शासन

वर्तमान भारतीय सेना का इतिहास १७४८ ई० से आरम्भ होता है जब मद्रास में भारतीय सिपाहियों के एक दस्ते का संगठन मेजर स्टिगर लारेंस ने किया। इसके बाद सैनिकों की संख्या में वृद्धि हुई और उसका संगठन किया गया, किन्तु उनमें अनुशासन का पर्याप्त अभाव था। क्लाइव ने १७६५ ई० में तथा १७९६ ई० में और १८२४ ई० में सेना का संगठन करने का प्रयत्न किया। बंगाल आर्मी के अन्तर्गत १८ रेजीमेण्ट थीं। १८५७ ई० के उपरान्त इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। समस्त सेना को तीन भागों में विभाजित किया गया—(१) बंगाल की सेना, (२) मद्रास की सेना तथा (३) बम्बई की सेना। इसके उपरान्त एक कमीशन की नियुक्ति की गई जिसने देशी रेजीमेण्टों के निर्माण करने की सिफारिश की। १८७९ ई० में सेना में कुछ सुधार किए गए। १८९५ ई० में चार कमांडों की नियुक्ति हुई—(१) पंजाब (२) बंगाल (३) मद्रास और (४) बम्बई। १८९१ में तीनों प्रेसीडेन्सियों के स्टाफ-कोर को सम्मिलित कर इण्डियन स्टाफ-कोर का निर्माण हुआ। १९०३ ई० में इसका नाम भारतीय सेना रखा गया। लार्ड किचनर ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उसने नए सिरे से सेना का संगठन किया। उसने तीन कमांड उत्तरी-कमांड, पूर्वी कमांड तथा पश्चिमी कमांड बनाए। १९०७ ई० में कमांड के स्थान पर भारतीय सेना उत्तरी और दक्षिणी भाग में विभक्त की गई।

प्रत्येक क्षेत्र का एक अध्यक्ष होता था। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त सेना के पुनः संगठन की ओर ध्यान दिया गया। १९३० ई० में चार कमांड बनाए गए और प्रत्येक कमांड एक कमाण्डिग अफसर के अधिकार में कर दिया गया। सन् १९३८ ई० में पश्चिमी कमांड का अन्त कर दिया गया। इसी वर्ष चेटफील्ड कमेटी का निर्माण हुआ, जिसने इसके संगठन के लिए विशेष सिफारिशें कीं। भारतीय सेना का प्रधान कमांडर-इन चीफ होता था जो वाइसराय की कौंसिल का रक्षा सदस्य था। उसका समस्त भारतीय सीमा पर पूर्ण नियन्त्रण रहता था।

आर्थिक नीति

सन् १८३३ ई० में भारत-सरकार की आर्थिक नीति का केन्द्रीकरण होना आरम्भ हुआ। १८३३ ई० के चार्टर एक्ट द्वारा प्रान्तीय सरकारों को कर लगाने तथा अपनी निजी इच्छा से धन के व्यय करने का अधिकार नहीं रहा, जिसके परिणामस्वरूप प्रान्तीय सरकारों का संगठन बहुत कुछ सीमा तक केन्द्रीय सरकार के समान हो गया और वे केन्द्रीय सरकार पर अधिक निर्भर रहने लगी। सन् १८७० ई० में लार्ड मेयो के शासन-काल में जेल, पुलिस, रजिस्ट्रेशन, शिक्षा, सड़कें आदि कुछ विभागों का व्यय प्रान्तीय सरकार के हाथ में दे दिया गया। उनको केन्द्रीय सरकार से प्रति वर्ष एक निश्चित धन-राशि प्राप्त हो जाती थी, जिसका व्यय विभिन्न भागों में करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को प्राप्त था। धन की कमी के कारण प्रान्तीय सरकार इस दिशा में विशेष कार्य करने में असमर्थ रही। सन् १८७७ ई० में भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के अधिकार में मालगुजारी, चुङ्गी आदि वसूल करने का कार्य दिया और उसके उपलक्ष में भारत सरकार उनको कुछ धन ब्याज के रूप में दिया करती थी। सन् १८८२ ई० में लार्ड रिपन ने एक नई व्यवस्था पांच वर्ष के लिए प्रारम्भ की, जिसके अनुसा प्रान्तीय सरकारों को मिलने वाली आर्थिक व्यवस्था समाप्त कर दी गई। समस्त आर्थिक साधन तीन श्रेणियों में साम्राज्य-सम्बन्धी, प्रान्तीय-सम्बन्धी तथा उभयनिष्ट विभक्त कर दिए गए। साम्राज्य-सम्बन्धी साधनों की आय केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होती थी। प्रान्तीय-सम्बन्धी साधनों की आय प्रान्तों को प्राप्त होती थी। अभयनिष्ठ श्रेणी के अन्तर्गत आने वाली समस्त साधनों द्वारा प्राप्त आय दोनों सरकारों में विभक्त कर दी जाती थी। प्रान्तीय सरकार को मालगुजारी का एक अंश भी दिया गया।

नौकरियों का भारतीयकरण—१८५७ की क्रान्ति के पूर्व तथा कुछ समय उपरान्त तक उच्च पदों पर अंग्रेजों की ही नियुक्ति हुआ करती थी। यद्यपि महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में यह घोषित किया था कि भारतीयां को उच्च पदों पर आसीन किया जायगा, किन्तु इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया। सन् १८६१ ई० के एक्ट के अनुसार सम्पूर्ण उच्च पद कवेनैण्टेड सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए खोल दिए गए। इसकी परीक्षा प्रतिवर्ष इङ्गलैण्ड में होती थी। इस परीक्षा में सम्मिलित होने का अधिकार भारतीयों को भी प्राप्त था। प्रारम्भ में परीक्षार्थियों की आयु २१ और १८७१ ई० में १८ वर्ष निश्चित हुई। इसके कारण

भारतीय इसमें पद प्राप्त करने में प्राय-असफल रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीयों के लिए केवल निम्न पद ही शेष रहे। सरकार की इस नीति का विरोध भारतीय ने करना आरम्भ किया।

सन् १८७० ई० में इङ्गलैण्ड की सरकार ने एक एक्ट द्वारा वाइसराय को यह अधिकार प्रदान किया कि वह भारतीयों को आवश्यकतानुसार सिविल सर्विस में भर्ती कर सकता है और उनके लिए इङ्गलैण्ड की परीक्षा पास करना आवश्यक न होगा, किन्तु वाइसराय ने इस एक्ट का विशेष रूप से पालन नहीं किया। १८७९ ई० में एक एक्ट पास किया, जिसके अनुसार कुछ उच्च वर्ग के भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त करने का अधिकार वाइसराय को प्राप्त हुआ, किन्तु इङ्गलैण्ड की परीक्षा में सम्मिलित होने की आयु २१ वर्ष से कम करके १९ वर्ष निश्चित कर दी गई। इस एक्ट के विरोध में भारतीयों ने अपनी आवाज उठाई, जिसके कारण देश में उत्तेजना फैल गई। लार्ड डफरिन ने समस्त परिस्थिति को भली प्रकार समझने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की, जिसमें समस्त पदों को तीन श्रेणियों—साम्राज्य-सम्बन्धी, प्रान्तीय तथा आश्रित में विभक्त किए। उच्च पद साम्राज्य श्रेणी के अन्तर्गत थे जो केवल अङ्गरेजों के लिए थे। प्रान्तीय तथा आश्रित पदों पर भारतीयों की नियुक्ति भी की जाने लगीं, परन्तु उनमें भी विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध थे। सिविल सर्विस की परीक्षा की आयु २३ वर्ष कर दी गई। इस एक्ट से भी भारतीयों को सन्तोष नहीं हुआ। सन् १८९३ ई० में इङ्गलैण्ड की सरकार ने एक एक्ट पास किया, जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि सिविल सर्विस परीक्षा के केन्द्र भारत में स्थापित होने चाहिएँ। १९२० ई० तक भारतीयों को इसमें बहुत कम स्थान प्राप्त थे। भारतीयों की तीव्र माँग के अनुसार १९२३ ई० में **ली कमीशन** की नियुक्ति की गई, जिसने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि साम्राज्य-सम्बन्धी सेवाओं में भारतीयों को पूर्व से अधिक स्थान प्राप्त होने चाहिए और उनका अनुपात निश्चित होना चाहिए। इसकी रिपोर्ट के अनुसार भारतीयों का इन सेवाओं में अनुपात निश्चित कर दिया गया। सन् १९२४ ई० में एक सार्वजनिक सेवा-आयोग की नियुक्ति की गई।

१९३५ के एक्ट ने भारतीय सेवाओं को निम्न दो भागों में विभक्त किया—

(१) रक्षा-सम्बन्धी सेवाएँ और

(२) असैनिक सेवाएँ।

असैनिक सेवाओं को तीन भागों में विभक्त किया गया—

(क) अखिल भारतीय सेवाएँ,

(ख) केन्द्रीय सेवाएँ तथा

(ग) प्रान्तीय सेवाएँ।

प्रथम श्रेणी की असैनिक सेवाओं पर भारत-मन्त्री, द्वितीय श्रेणी की असैनिक सेवाओं पर वाइसराय तथा तृतीय श्रेणी की असैनिक सेवाओं पर प्रान्त के गवर्नरों का अधिकार था।

१९४७ के उपरान्त सरकारी सेवाओं का भारतीयकरण कर दिया गया। अब समस्त सेवाएँ भारत सरकार के अन्तर्गत हैं। नवीन संविधान ने कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ लोक-सेवाओं से सम्बन्धित उसी सामान्य योजना तथा वर्गीकरण को स्वीकार कर लिया है जैसा ब्रिटिश शासन-काल में था। अब लोक सेवाएँ रक्षा-सम्बन्धी सेवाएँ एवं नागरिक सेवाओं में विभक्त है। रक्षा-सम्बन्धी सेवाओं पर भारत के राष्ट्रपति का अधिकार हैं। इस पर लोक-सेवा-आयोग का नियन्त्रण नहीं है। नागरिक सेवाएँ पूर्ववत् तीन भागों में, किन्तु नामों में संशोधन कर विभक्त हैं—(१) अखिल भारतीय सेवाएँ (२) संघ-सेवाएँ और (३) राज्य सेवाएँ। समस्त नागरिक सेवाओं में भर्ती लोक-सेवा आयोग द्वारा होती है। संघ का अपना अलग एक आयोग है और लगभग प्रत्येक राज्य का अपना एक अलग आयोग।

स्थानीय स्वशासन--उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल में अङ्गरेजी सरकार ने मद्रास, बम्बई और कलकत्ते में अंग्रेजी प्रथा के अनुसार निगम स्थापित किए। सन् १८४२ ई० में इन संस्थाओं की स्थापना बंगाल के अन्य नगरों में की गई, किन्तु उनको कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। वास्तव में इन संस्थाओं का विकास सन् १८७० ई० से आरम्भ होता है जब उन संस्थाओं में निर्वाचित सदस्यों को स्थान प्राप्त होने लगे। राज्य की ओर से इनको कुछ अधिकार भी प्रदान किए गए। इस समय तक इन संस्थाओं का विकास केवल नगर-क्षेत्रों तक सीमित था और गाँवों की ओर से सरकार पूर्णतया उदासीन थी। इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य भारत के वाइसराय लार्ड रिपन के शासन-काल में आरम्भ हुआ। इसीलिए इस समय से (१८८२) स्थानीय संस्थाओं की स्थापना मानी जाती है। उसके एक प्रस्ताव ने नगरपालिकाओं का सम्पूर्ण रूप बदल दिया। उसने ग्राम-पंचायतों तथा जिला बोर्डों की ओर ध्यान दिया। इस समय तक गाँव के प्रबन्ध की ओर किसी प्रकार का ध्यान नहीं दिया जाता था। इसी के शासन-काल में जिला बोर्डों की स्थापना हुई और उनको कुछ साधारण अधिकार भी प्रदान किए गए।

लार्ड रिपन के प्रस्ताव से प्रकाशित होने के थोड़े ही समय उपरान्त समस्त प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित हुए, किन्तु कुछ विशेष कारणों से इन संस्थाओं को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि इसके द्वारा भारतीयों को शासन कार्य में भाग लेने के लिए अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

१९१९ का भारत सरकार अधिनियम—स्थानीय स्वशासन का प्रश्न भारत सरकार ने १९१५ ई० में उठाया जब कि उसने इस विषय का एक प्रस्ताव पास किया, किन्तु यह कार्यान्वित भी न हो पाया था कि १९१९ ई० का भारत-सरकार अधिनियम पारित हो गया। इसके अनुसार स्वायत्त-शासन हस्तांतरित विषय बना दिया गया और यह विभाग प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल के एक सदस्य के अधिकार में आ गया। इन पर सरकारी हस्तक्षेप कम कर दिया गया, और जनता को अत्यधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ तथा मताधिकार का विस्तार किया गया और निर्वाचित सदस्यों का बहुमत

हो गया। इसमें यह भी उल्लिखित था कि कम से कम तीन-चौथाई स्थान निर्वाचन द्वारा तथा दस परामर्श देने के लिए गिने-चुने सरकारी कर्मचारी मनोनीत किए जाएँगे, परन्तु इन दस को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। दूसरे इसका अध्यक्ष सरकारी पदाधिकारी के अतिरिक्त निर्वाचित सदस्य होना चाहिए। तीसरे इन संस्थाओं को अपने क्षेत्रों में कर लगाने के अधिकार प्राप्त हुए और चौथे, बजट के सम्बन्ध में उनको अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

स्वतन्त्रता के उपरान्त—१९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम द्वारा स्वायत्त शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया, किन्तु भारत के स्वतन्त्र होने पर राष्ट्रीय सरकारों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और इन संस्थाओं को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश में १९४७ में पंचायत राज्य-अधिनियम और १९५० के डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्ड एक्ट के द्वारा गाँव तथा नगर के निवासियों को स्वशासन के अधिक अधिकार प्राप्त हुए।

प्रेस—प्रारम्भ में प्रेस के ऊपर सरकार का कोई प्रतिबन्ध न था, किन्तु जब समाचार-पत्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी और वे सरकार की नीति की कटु आलोचना करने लगे तो सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना आरम्भ किया। १८७० ई० के **पेनल कोड** का जब नवीन संस्करण हुआ तो समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता को कम कर दिया गया। १८७२ ई० में लार्ड डफरिन ने 'सोम प्रकाश' नामक एक बंगाली समाचार-पत्र को कड़ी चेतावनी दी, क्योंकि उसने सरकार की नीति की कटु आलोचना की थी। सन् १८७५ ई० में भारत-सचिव लार्ड सैलिसबरी ने भारत सरकार का ध्यान कुछ समाचार-पत्रों की ओर आकर्षित करते हुए कहा कि इस प्रकार के पत्र अङ्गरेजी राज्य के विरुद्ध हैं और उनकी ओर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए। लार्ड लिटन ने सन् १८७८ ई० में **वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट** पास किया, जिसके कारण प्रादेशिक भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी गई। इस एक्ट के द्वारा समस्त देश में और विशेषत: बंगाल में विरोध उत्पन्न कर दिया गया। इसके विरोध में कलकत्ते में एक विशाल सभा हुई। इस एक्ट के अन्तर्गत मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दिया गया कि वह आवश्यकता के उत्पन्न होने पर प्रकाशक और मुद्रक दोनों से **जमानत** जमा करा सकता है अथवा लिखित रूप से उनसे वचन ले सकता है कि वे किसी भी प्रकार के विद्रोहात्मक विषय पर समाचार का प्रकाशन नहीं करेंगे अथवा प्रकाशन के पूर्व अपने समाचार के **प्रूफ सेंसर ऑफिसर** को दिखाए और उसकी स्वीकृति प्राप्त होने पर ही उसका प्रकाशन किया जा सकता था। लार्ड रिपन के समय में यह एक्ट जनता ने विरोध का ध्यान रखकर समाप्त कर दिया गया। इसके उपरान्त समाचार पत्रों ने राष्ट्रीयता की भावना को जनता में प्रोत्साहित करना आरम्भ कर दिया। समय-समय पर प्रतिबन्ध लगाए गए, उनके कार्यालयों की छान-बीन की गई और उनका प्रकाशन बन्द कर दिया गया, किन्तु ये केवल विशेष अवसरों पर ही हुआ करते थे।

भूमि-व्यवस्था—गत अध्यायों में उल्लिखित किया जा चुका है कि बंगा लार्ड कार्नवालिस द्वारा इस्तमरारी बन्दोबस्त की व्यवस्था की गई। सन् १७९ में बनारस में और १८०२ ई० में मद्रास के कुछ जिलों में यह व्यवस्था प्रचलि गई; किन्तु यह व्यवस्था मद्रास में असफल हो गई और वहाँ पर सर टामस की अध्यक्षता में रैयतवाड़ी प्रथा का आरम्भ हुआ। बम्बई में कुछ समय उप इसी व्यवस्था को कार्यान्वित किया गया। अवध में ताल्लुकेदारी प्रथा आरम्भ तथा उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों में इसी व्यवस्था का प्रचलन किया गया। पंजा गाँव के मालिकों के साथ बन्दोबस्त किया गया। मध्य प्रांत में १८६१ ई० के उप मालगुजारी बन्दोबस्त किया गया, जिसके अनुसार लगान वसूल करने का कार्य मालगुजारों को ठेके पर दिया गया और सरकार ने उनके स्वामित्व को स्वी किया। धीरे-धीरे किसानों में चेतना का आरम्भ हुआ और सरकार को बाध्य किसानों के अधिकारों को जमींदारों से संरक्षित करना पड़ा। १९१९ के उप भूमि राजस्व प्रान्तीय विषय घोषित किया गया, किन्तु वह संरक्षित विषय जिसके कारण प्रान्त के गवर्नर का इस पर विशेष नियन्त्रण था। १९३७ उपरान्त कांग्रेस मन्त्रि मण्डलों ने किसानों के हितों की ओर विशेष ध्यान दि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जमींदारी-प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया और किसानों का सम्बन्ध सीधा राज्य सरकार से हो गया है।

रेल-यातायात—भारत में १८५३ ई० में रेल-यातायात प्रारम्भ हु यह व्यक्तिगत कम्पनी के नियन्त्रण में था और रेल-मार्ग उनकी सम्पत्ति थी। इण्डिया कम्पनी व्यापार की वृद्धि के लिए रेल-यातायात आरम्भ करना चाहती किन्तु वह समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी। इसी कारण सर ने यह कार्य व्यक्तिगत कम्पनियों को दिया और उनकी लगी हुई सम्पत्ति ५ प्रतिशत लाभ निश्चित कर दिया। सन् १८५३ ई० में जी० आई० पी० रे कम्पनी ने बम्बई और थाना के मध्य देश की सर्वप्रथम रेलवे लाइन खोली। १८५४ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ३७ मील कलकत्ते से दूर तक रेलवे लाइन स्थापना की। १८५६ ई० में मद्रास से अर्काट तक रेलवे लाइन बिछा दी ग दिन-प्रतिदिन इसका विकास होता चला गया और समस्त भारत में रेलवे लाइनों जाल बिछ गया। इसका लाभ यह हुआ कि अंग्रेजों के व्यापार में वृद्धि हुई। इनके द्वारा इङ्गलैण्ड का बना हुआ माल भारत के आन्तरिक भागों के पहुँचाने में स हुए और भारत से कच्चा माल बन्दरगाहों तक आसानी से ले जा सके। इ परिणाम यह हुआ कि भारतीय उद्योग-धन्धों को बड़ा आघात पहुँचा। वे अंग्रेजों प्रतिद्वन्द्विता के सामने न टिक सके। कृषि के भार में वृद्धि हुई। जनता नि होनी आरम्भ हो गयी, किन्तु इससे कुछ लाभ भी अवश्य हुआ। भारतवासी ए दूसरे के निकट आने लगे, जिससे भारत की राष्ट्रीय एकता का उदय होना आर हुआ। दुर्भिक्ष आदि के दिनों में सहायता सरलतापूर्व प्रदान की जानी सम्भव गई। सन् १८८० ई० के उपरान्त भारत-सरकार ने व्यक्तिगत कम्पनियों को समा

करने की नीति अपनाई और कुछ पर उसने अपना अधिकार स्थापित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त समस्त रेलवे लाइनों तथा रेल यातायात पर भारत-सरकार का अधिकार हो गया। इस समय से अधिकारियों ने यात्रियों की सुविधा की ओर भी ध्यान दिया और दिन-प्रतिदिन इसके क्षेत्रफल में विस्तार हो रहा है। भारत में रेल के इंजनों का निर्माण होना भी आरम्भ हो गया है।

डाक, तार और टेलीफोन—उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में डाक-व्यवस्था उन्नत नहीं थी। डाक ले जाने वाले एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल जाते थे, कहीं-कहीं घोड़ा-गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। वर्षा-काल में डाक एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना प्राय: असम्भव-सा हो जाता था। इसके बाद प्रत्येक प्रेसीडेन्सी ने अपनी-अपनी डाक-व्यवस्था को पृथक किया। जब यातायात के साधन उन्नत होने लगे तो डाक-व्यवस्था भी स्वत: उन्नत होने लगी। समस्त देश में डाक-घरों पर केन्द्र का नियन्त्रण स्थापित हो गया। डाक की दर आधा आना निश्चित की गई। बाद में डाकघरों में पार्सल, वी० पी० और मनिआर्डर की व्यवस्था भी हो गई। दिन-प्रतिदिन डाकखानों की संख्या में वृद्धि होने लगी। अभी भी इस दिशा में पर्याप्त काम करने की आवश्यकता है। गाँवों आदि में डाक पहुँचाने में पर्याप्त समय लग जाता है। वहाँ की जनता डाकखानों की सुविधा का उपभोग करने में असमर्थ रहती है।

तार व्यवस्था का आरम्भ लार्ड डलहोजी के शासन-काल में १८५४ ई० में हुआ। उस वर्ष कलकत्ते से आगरे तक टेलीग्राम की लाइन स्थापित की गई। फिर इसका विस्तार हो गया, किन्तु अभी भी इस दिशा में और अधिक कार्य होना आवश्यक है। प्रत्येक डाकखाने में तार-घर अवश्य होना चाहिए। गाँव की जनता को अभी भी इस दशा में पर्याप्त असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

टेलीफोन, डाक और टेलीग्राम की स्थापना के बहुत बाद में आया। इसके रखने में पर्याप्त व्यय करना पड़ता है,। जिसे भारतीय साधारणत: सहन नहीं कर सकते। इसका अधिकांश प्रयोग सरकारी विभागों, उद्योगपतियों तथा व्यापारियों तक ही सीमित है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। गाँव की जनता अभी भी. इसका प्रयोग नहीं कर सकती है। यह व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक डाकखानों में टेलीफोन हो और उसका मूल्य कम कर देना चाहिए, जिससे कि अधिक अधिक लोग इसका लाभ उठा सकें।

महत्वपूर्ण प्रश्न

त्तर प्रदेश —

(१) स्थानीय स्वशासन से आप क्या समझते हैं? अंग्रेजों के शासन-काल उसके विकास में क्या प्रगति हुई?

(२) लार्ड कर्जन के कार्य-काल के शासन-सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

(३) 'लार्ड कर्जन दूरदर्शी राजनीतिक नहीं था।' इस कथन को सामने रख-कर उसकी नीति एवं सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

(४) लार्ड कर्जन की प्रशासकीय नीति की आलोचना कीजिए।

(५) लार्ड रिपन के वाइसराय काल का वृतांत लिखिए।

मध्य प्रदेश—

(१) भारतीय स्थानीय स्वशासन-व्यवस्था के विकास के इतिहास पर संक्षे में प्रकाश डालिए।

राजस्थान –

(१) भारत में स्थानीय स्वशासन-व्यवस्था का वर्णन करो।

विक्रम विश्वविद्यालय—

(१) रिपन की शासन-नीति तथा सुधारों की समीक्षा कीजिए।

(२) लार्ड कर्जन की प्रशासकीय नीतियों का वर्णन कीजिए।

(३) वाइसराय के रूप में लार्ड रिपन की लोकप्रियता के क्या कारण थे

(४) 'लार्ड कर्जन की सरकार न अच्छी थी न बुरी।' लार्ड कर्जन के प्रमुख कार्यों के आधार पर उपरोक्त टिप्पणी का महत्व स्प कीजिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय—

(१) लार्ड रिपन के सुधारों का स्थानीय स्वराज्य पर विशेष प्रभाव डा हुए संक्षिप्त परिचय दीजिए।

(२) लार्ड कर्जन के आन्तरिक प्रशासन पर विशेषतः बंग-विभाजन पर प्रक डालिए।

जीवाजी विश्वविद्यालय

कता पर संदेह होने लगा। कुछ समय उपरान्त उनकी बहन तथा उनके चाचा जी मृत्यु ने उनको जीवन की सार्थकता पर विचार करने के लिये बाध्य किया। इनके ाता-पिता ने विचार किया कि उनके अव्यवस्थित मस्तिष्क तथा दुखित हृदय के ये विवाह औषधि का कार्य करेगा, इसलिए उन्होंने उनका विवाह करने का निश्चय किया। अपने पिता के ऐसे विचार देखकर आपने बीस वर्ष की अवस्था में घर-बार ा परित्याग कर दिया। पन्द्रह वर्षों तक वे धार्मिक सत्य की खोज में अविश्रान्त रिश्रम करते रहे। उन्होंने पहले एक ब्रह्मचारी का वेष धारण किया तथा उसके ान ही जीवन यतीत करना आरम्भ किया, फिर वे वेदान्त में दीक्षित हुए। योगियों ी खोज में इधर-उधर घूमते रहे और अन्त में मथुरा में आकर स्वामी विरजानन्द ि शिष्य के रूप में उन्होंने अध्ययन-कार्य आरम्भ किया। उन्होंने उनसे तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने के लिये समस्त भारत भ्रमण किया। इनके व्यक्तित्व तथा उपदेशों का प्रभाव जनता पर बहुत पड़ा। ाँच वर्ष में ही हजारों व्यक्ति इनके अनुयायी बन गये। इनका बहुत बार मुसलमानों तथा ईसाइयों से शास्त्रार्थ हुआ। आपकी तत्कालीन धार्मिक सुधारकों से भेंट हुई, किन्तु आप इनसे मिलकर कार्य नहीं कर सके। इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रह्म समाज पर तो ईसाई धर्म का विशेष प्रभाव था और थियोसोफिकल सोसाइटी से स्वामी जी का ईश्वर के रूप के विषय में मत-भेद हो गया था। सन् १८८३ ई० में जमेर में इनका देहान्त हो गया।

स्वामी दयानन्द की देन—स्वामी दयानन्द केवल सत्य की खोज करने वाले हीं, वरन् एक महान् देशभक्त भी थे। **वे अपनो मातृ-भूमि के लिये अनेक सुनहरे स्वप्न देखते थे। उनके मस्तिष्क में एक ऐसे भारत की कल्पना थी जिसमें अन्ध-विश्वास, इच्छा विरुद्ध वैधव्य तथा मूर्ति-पूजा न हो; जिसके निवासी केवल एक ईश्वर की पूजा में विश्वास करते हों, जो संगठित हों, जो स्वतन्त्र हों तथा जो उसके प्राचीन वैभव को फिर से लौटा सकें।** उन्होंने बतलाया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन प्रचलित मिथ्या विश्वासों का निवारण तथा शिक्षित नवयुवकों पर से पश्चिमी प्रभाव का आवरण हटाना है। इस कार्य के लिए उन्होंने वेदों के प्रचार को पना माध्यम बनाया उन्होंने अपने देशवासियो को मानव जाति के इस सर्वप्रथम ास्त्र को अपना पथप्रदर्शक बनाने का आदेश दिया और इस प्रकार हिन्दू-धर्म को नवीनता प्रदान की। उन्होंने यह शिक्षा दी कि वेद ईश्वर की वाणी है, इसलिये त्रुटियों से परे हैं। **वे धार्मिक नहीं अपितु वैज्ञानिक शास्त्रों के भी स्रोत हैं।** उन्होंने ेदों के अर्थ का एक नया ढंग निकाला, उनका अनुवाद किया तथा उन पर भाष्य लिखा। उन्होंने इस बात की चेष्टा की कि वेदों का अध्ययन करने तथा उनसे लाभ उठाने का मार्ग सभी के लिये खुला रहना चाहिए। **उन्होंने अछूतों आदि सभी मनुष्यों के लिये वेदाध्ययन करने तथा उनसे लाभ उठाने का मार्ग सभी के लिये खोल दिया जो ब्राह्मणों की धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध विद्रोह था।** उन्होंने यह भी सिद्ध किया

कि मूर्ति पूजा तथा विभिन्न देवी देवताओं की पूजा का वेदों में विधान नहीं है। उन्होंने जातियों तथा उपजातियों को वेदों की शिक्षा के विपरीत बतलाया। वेदों में तो केवल गुण तथा चरित्र के आधार पर समाज के चार वर्णों में विभाजन की व्यवस्था है। **स्त्रियों की दयनीय दशा ने भी उनकी दयालु आत्मा को स्पर्श किया।** उन्होंने उनकी दशा को उन्नत करने के लिये बड़ा प्रयत्न किया और यह प्रदर्शित किया कि बालविवाह, इच्छा-विरुद्ध वैधव्य और स्त्रियों की हेय दशा वैदिक धर्म के विरुद्ध है। वेदों की कल्पना के अनुसार वयस्क स्त्री तथा पुरुष के बीच का वैवाहिक सम्बन्ध एक धार्मिक बन्धन है। वेद स्त्री के जीवन को प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष का दैनिक सहायिका के रूप में मानता है। **अछूतों के सम्बन्ध में भी स्वामी जी ने कम साहस का परिचय नहीं दिया।** उनके स्वत्वों तथा अधिकारों का उनसे बढ़कर कोई समर्थक नहीं हुआ। उन्होंने आर्य समाज का द्वार उनके लिए खोल दिया और उनको हिन्दू समाज का सम्मानित सदस्य बना दिया।

आर्य समाज की स्थापना—भारत का उद्धार करने के लिये स्वामी जी द्वारा १८७५ ई० में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की गई। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने लाहौर में इसकी एक शाखा की स्थापना की जो उसके कार्य का केन्द्र बन गई। आज समस्त भारत में आर्य समाज की शाखाओं का जाल बिछा हुआ है। इतना ही नहीं वरन् भारत के बाहर भी जहाँ भारतीय निवास करते हैं इसकी शाखायें हैं। आर्य समाज ने धर्मोपदेशकों को बाहर भेजने तथा गैर-हिन्दुओं को भी हिन्दू धर्म में सम्मिलित कर लेने की प्राचीन प्रणाली को पुनर्जीवित किया है। जिन्हें यह मिथ्या समझता है उन विश्वासों के प्रति अपने कट्टर दृष्टिकोण तथा दूसरों को अपने धर्म में दीक्षित करने वाले अपने कार्यों के कारण आर्य-समाज को कभी-कभी भी कहा गया है।

आर्य समाज का मूल्यांकन—आर्य समाज को भारत में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। इसने विशेषत: सिन्ध-गंगा के मैदान में जन-आन्दोलन का रूप धारण किया। जो भी व्यक्ति इससे प्रभावित हुए हैं उनमें एकता, उत्साह तथा जीवन का संचार हुआ। लोगों ने अपनी अकर्मण्यता तथा जीवन के मूल की दुर्बल भावनाओं को निकाल फेंका है। उनका स्वयं अपने में तथा धर्म में विश्वास दृढ़तर हो गया है। इसके द्वारा अपने विश्वास की रक्षा के लिये एक आर्य समाजी जीवन प्रदान किया गया तथा अन्य धर्मावलम्बियों की चुनौती स्वीकार करने के लिये यह सदैव कटिबद्ध रहता है। समाज की स्थापना के पूर्व साधारण हिन्दू अपने धर्म की निन्दा तथा बुराई को सहन कर लिया करता था, किन्तु आर्य समाज ने उसको एक नवीन तेज तथा स्फूर्ति प्रदान की।

आर्य समाज के कार्य

आर्य समाज के कार्यों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायेगा :—

१. बाल विवाह का विरोध
२. [illegible] का विरोध
३. सती प्रथा का

(१) **धार्मिक कार्य**—धर्म के क्षेत्र में आर्य-समाज की प्रमुख सफलता हिन्दू धर्म को एक नया स्वरूप देने में है। यह हिन्दुओं के पुराण आदि को अपने धार्मिक विश्वास की श्रोत पुस्तकें मानने के लिये मना करता है तथा वेदों को ही उसकी आधार-शिला बनाने का आदेश देता है। इस प्रकार उसने हिन्दू धर्म को उस समस्त मिथ्या विश्वासों से मुक्त करने कैं प्रशंसनीय कार्य किया है जो उसके पतनकाल में उसमें प्रविष्ट हो गये थे। वह अनेक देवी-देवताओं में विश्वास, मूर्तिपूजा, छूआछूत, इच्छा-विरुद्ध वैधव्य, बाल-विवाह परम्परागत जाति व्यवस्था तथा उन समस्त कुरीतियों तथा विश्वासों की भर्त्सना करता है जो विकृत हिन्दू समाज में उत्पन्न हो गये थे, इस दृष्टि से इसमें और ब्रह्म समाज में समानता है। लेकिन ब्रह्म समाज जहां पुराणादि शास्त्रों का विरोध तर्क के आधार पर करता है, वहां आर्य-समाज वेदों की शरण लेता है और इन ग्रन्थों का वेदों में कोई वर्णन न होने की बात करता है। सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं का निराकरण करने का वह ढंग अधिक भारतीय है और इसलिये आर्य-समाज ब्रह्म समाज की अपेक्षा जनता में अधिक प्रचलित हुआ। आर्य समाज के निम्नलिखित दस प्रमुख नियम हैं :—

आर्य समाज के कार्य

(१) धार्मिक कार्य।
(२) सामाजिक कार्य।
(३) अछूतों का उद्धार।
(४) शिक्षा-सम्बन्धी कार्य।
(५) राजनीतिक कार्य।

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या द्वारा जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द है—वह शाश्वत ज्ञान, मूर्त तथा आनन्दकारी है। वह निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायरूप, दयालु, आजन्मा, अनादि, अनन्त अमर, अभय, सब का रक्षक, सब का स्वामी, सृष्टि की उत्पत्ति का कारण तथा उसका पालन करने वाला है।

(३) वेद ही सत्य-ज्ञान के आदि–स्त्रोत हैं, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना, आर्यों का परम कर्त्तव्य है।

(४) सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने के लिये सदा प्रस्तुत रहना चाहिए।

(५) समस्त कार्य सत्य और असत्य का विचार कर करने चाहिए।

(६) 'समाज' का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है।

(७) पारस्परिक सम्बन्ध का आधार प्रेम, न्याय और धर्म होना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होनी चाहिए।

(९) प्रत्येक मानव को अपनी भलाई से ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए वरन् सब की भलाई में अपनी भलाई समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम में स्वतन्त्र होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त आर्य समाज कर्म-काँड, पूर्वजन्म, निर्वाण अर्थात् मोक्ष की कल्पना करता है। आर्य समाज भक्तों तथा ईश्वर के मध्य किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं मानता। यह पुजारी वर्ग में विश्वास नहीं करता।

सामाजिक कार्य——आर्य समाज के कार्य-क्रम में सामाजिक सुधारों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। 'समाज' ने परम्परागत जाति-व्यवस्था का विरोध किया। उसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रीय वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों का विभाजन गुण तथा कर्म के आधार पर होना चाहिये, जन्म के आधार पर नहीं। यह वेदों में वर्णित वर्ण-व्यवस्था को पुनर्जीवित करना चाहता है। इस क्षेत्र में आर्य समाज को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई, आर्य-समाज के सदस्यों की एक बड़ी संख्या भी जाति-पाँति के बन्धनों में उतनी ही बंधी है जितने अन्य हिन्दू। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि हिन्दू-मस्तिष्क से जाति-व्यवस्था शिथिल होती जा रही है जिसका कुछ श्रेय आर्य-समाज को प्राप्त है। 'समाज' बाल तथा बेमेल विवाह को भी बुरा मानता है। इसने लड़कों के विवाह की आयु कम से कम बाईस तथा लड़कियों की सोलह वर्ष निश्चित की है। विधवा विवाह तथा स्त्रियों की साधारण दशा में उन्नति के लिए भी पर्याप्त सराहनीय कार्य आर्य-समाज ने किया है। विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाजों तथा अन्य सामाजिक दोषों के निराकरण की ओर भी इसका ध्यान आकर्षित हुआ।

(३) **अछूतों का उद्धार**——लेकिन आर्य समाज के सामाजिक सुधारों में अछूतों का उद्धार ही प्रमुख है। यह घोषणा करके कि किसी व्यक्ति का सामाजिक स्थान कर्म पर निर्भर है, जन्म पर नहीं, इसने अस्पृश्यता को कड़ा आघात पहुंचाया। सन् १९०८ ई० में दलित जातियों के उद्धार के लिए एक सक्रिय आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। वर्तमान समय में दयानन्द दलित उद्धार-मंडल इस दिशा में सक्रिय काम कर रहा है। ईसाई मिशनरियों के सेवा कार्यों से प्रभावित होकर, आर्य समाज ही प्रथम शुद्ध भारतीय संस्था है जिसने अनाथालयों तथा विधवाश्रमों की स्थापना की। अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में सेवा-कार्य के लिये गैर-सरकारी रूप से आन्दोलन प्रारम्भ करने वाली यह पहली गैर-ईसाई संस्था थी। आज देश भर में आर्य समाज के सदस्यों द्वारा संगठित तथा चलाई जाने वाली सामाजिक सेवा-संस्थाओं का एक जाल सा बिछा हुआ है।

(४) **शिक्षा सम्बन्धी कार्य**—देश में आर्य-समाज एक शिक्षण संस्था है। किसी भी अन्य संगठन के हाथ में इतनी शिक्षण-संस्थायें नहीं हैं जितनी कि इसके। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में अनेकों डी० ए० वी० कालिज तथा स्कूल हैं जहाँ विद्यार्थियों को आधुनिक शिक्षा दी जाती है। सन् १८८६ ई० में महर्षि स्वामी दयानन्द के स्मारक के रूप में लाहौर में एक शिक्षण-संस्था की स्थापना की गई। दलित वर्गों के लिये विशेष रूप से चलने वाले दिन-स्कूल तथा रात्रि-पाठशालायें हैं। इसकी ओर से

५ - राजनैतिक कार्य - लाजपतराय, श्रद्धानन्द आदि

कन्याओं की शिक्षा की ओर भी समुचित ध्यान दिया गया। लगभग सभी बड़े-बड़े नगरों में कन्या पाठशालायें हैं जिनमें जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय प्रमुख है। काँगड़ी (हरिद्वार) के प्रसिद्ध गुरुकुल का भी उल्लेख आवश्यक है जहां बच्चे सात वर्ष की अवस्था में भर्ती किये जाते हैं और पच्चीस वर्ष की अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करते हैं। 'समाज' ने हिन्दी के पक्ष में भी बड़ा प्रचार किया। पंजाब में हिन्दी भाषा की रक्षा के लिये 'समाज' की ओर से आन्दोलन किया गया जिसमें इसको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। उसी के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा के जानकारों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई।

(५) **राजनीतिक कार्य**—आर्य-समाज मुख्यत: हिन्दू सुधार-आन्दोलन ही था राजनीतिक संगठन नहीं। लेकिन राष्ट्र की राजनीतिक चेतना में इसका विशेष हाथ रहा है। यह मातृ-भूमि के प्रति गौरव-भक्ति तथा अपने में आत्म-निर्भरता की भावना उत्पन्न करता है और साथ ही साथ दृढ़ चरित्र तथा स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम जागृत करता है। इसके सदस्यों में किसी प्रकार की हीनता की भावना नहीं देखी जाती। इन कारणों से यदि यह विदेशी सरकार की दृष्टि में खटकता रहा तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द जी ने ही पहले पहल स्वदेशी-मंत्र की दीक्षा दी और पश्चिमी विचारों तथा आदर्शों के प्रति अन्ध-विश्वास के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। कांग्रेस के राष्ट्र-निर्माण के कार्य-क्रम के बहुत से अंगों की प्रेरणा का श्रेय आर्य-समाज को प्राप्त है। इसने राष्ट्र को स्वर्गीय लाला लाजपत राय तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे अनेक नेता राजनीतिक क्षेत्र में प्रदान किये हैं।

'दी कलचरल हैरिटेज आफ इण्डिया' नामक पुस्तक में एक लेख में स्वामी विवेकानन्द ने आर्य-समाज की सफलताओं का इन शब्दों में वर्णन किया है—

'वेदों के प्रति एकाकी दृष्टिकोण के कारण आर्य-समाज में चाहे जो दोष उत्पन्न हो गये हों, फिर भी इस आन्दोलन ने लोगों में हिन्दुत्व का एक नया मंत्र फूंक दिया और इसी कारण हिन्दू जाति में यह इतना लोकप्रिय बना। इसके अतिरिक्त मूर्ति पूजा का खंडन करके इसने आधुनिक बुद्धिवादी लोगों के विचारों का भी स्पर्श किया। मूर्ति-पूजा के स्थान पर वैदिक यज्ञादि के विधान ने आर्य-समाज में कुछ मन लुभाने वाला आकर्षण उत्पन्न कर दिया। अन्त में, सामाजिक रीति-रिवाजों का शीघ्र परिवर्तन तो युग की मांग थी। इन सबने मिलकर आर्य-समाज के धर्म परिवर्तनों के यत्नों को भी सफलता प्रदान की। सारे उत्तरी भारत विशेषत: पंजाब में, यह नया विश्वास दावाग्नि के समान फैला और कुछ ही वर्षों में इसने कई लाख व्यक्तियों को अपने सिद्धान्त में दीक्षित कर लिया। इस प्रकार आर्य-समाज ने पर्याप्त वृहत् क्षेत्र से विदेशी सभ्यता के विनाशकारी प्रभावों को समाप्त किया और देश के सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण सफल अध्याय जोड़ा।'

थियोसोफिकल सोसाइटी

थिसोफिकल सोसाइटी की स्थापना ७ सितम्बर १८६५ ई० में अमेरिका के न्यूयार्क (New York) नगर में हुई। इसकी स्थापना का श्रेय रूसी महिला ब्लैवट्स्की तथा अमेरिकी सेना के हेनरी स्टील आलकट नाम के एक कर्नल को है। वास्तव में इस सोसाइटी का हिन्दू धर्म के सुधार आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। **इसका मुख्य उद्देश्य सृष्टि, मनुष्य तथा उसके अन्तिम लक्ष्य के विषय में** कुछ तथ्यों **तथा उन पर आधारित जीवन की एक विशिष्ट प्रणाली का** प्रचार ही करना था। इसके द्वारा शिक्षित हिन्दुओं का अपने साहित्य तथा धर्म में विश्वास पुनर्जीवित हुआ और इसने ईसाई मत तथा भौतिकता के प्रभाव तथा उसकी विचार धारा को दक्षिण में रोकने का वही कार्य किया जो आर्य समाज ने उत्तरी भारत में किया। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने इस सोसाइटी के दोनों संस्थापकों को भारत में आमंत्रित किया। भारत आगमन पर उन्होंने भारत के अनेक भागों का भ्रमण किया जहां उन्होंने भाषण दिये जिसमें उन्होंने हिन्दूओं का ध्यान उनकी तत्कालीन दीन दशा की ओर आकर्षित किया और उन्होंने गौरवपूर्ण प्राचीन हिन्दू धर्म को उन समस्त दोषों से अलग करने का आदेश दिया जो उनकी सजीवता को नष्ट किये डाल रहे हैं। हिन्दू धर्म के अध्ययन के लिये भी उन्होंने अनेक संस्थाओं की स्थापना की। भारत में काम करने के लिये उन्होंने सोसाइटी का मुख्य कार्यालय सन् १८८३ई० में न्यूयार्क से हटाकर अदयार(मद्रास) में कर दिया। इनके कार्य का प्रमुख ध्येय भारतीयों को अपने राष्ट्रीय धर्म का आदर करने की शिक्षा देना था। सरकारी शिक्षण संस्थाओं तथा ईसाई पादरियों द्वारा दी गई अधार्मिक तथा राष्ट्र विरुद्ध शिक्षा हिन्दुओं के राष्ट्रीय धर्म का नाश कर रही थी। सर हेनरी आलकट ने इसका बड़ा विरोध किया।

सोसाइटी के मुख्य सिद्धान्त— इस सोसाइटी के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

ये सब धर्मों के मौलिक सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं। इसके अनुसार समस्त धर्मों में हिन्दू तथा बौद्ध धर्म उच्च हैं। ये लोग धर्म परिवर्तन को अच्छा नहीं मानते। इस कारण प्रत्येक धर्म का अनुयायी इस सोसाइटी का सदस्य हो सकता है। इनका पुनर्जन्म और कर्मकांड में विश्वास है। इसमें जाति-पांति का भेद नहीं है। इसके अनुसार आत्मा परमात्मा का अंश है। समस्त आत्मायें समान हैं। इन्होंने मातृ-भाव का उपदेश दिया और बतलाया कि प्रत्येक मनुष्य को एक दूसरे से भाई के समान प्रेम करना चाहिये। इनका विश्वास है कि इस लोक के अतिरिक्त एक और लोक है जहाँ आत्मायें निवास करती हैं जो इस लोक की आत्माओं की सदा सहायता करने को तत्पर रहती हैं।

सोसाइटी के उद्देश्य—इस सोसाइटी के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) विश्व व्यापी मानव समाज में मातृभाव उत्पन्न करना।

(२) धर्म, वेदान्त एवं विज्ञान के अध्ययन के लिये मनुष्य मात्र को प्रोत्साहित करना।

(३) रहस्यमय स्वाभाविक नियमों की खोज करना एवं मनुष्य की गुप्त शक्तियों को प्रकाश में लाना।

श्रीमती ऐनी बेसेंट के कार्य—इस सोसाइटी ने आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेंट (Annie Basent) के नेतृत्व में विशेष उन्नति की। बचपन से ही इनको ईसाई धर्म से घृणा हो गई थी। थियोसोफिकल सोसाइटी के एक सदस्य के रूप में वे १८९३ ई० में भारत आईं और बाद में वे सोसाइटी की प्रमुख सदस्य बन गईं। वे प्रत्येक दृष्टि से हिन्दू हो गई और हिन्दू तथा गैर-हिन्दू, सभी प्रकार के आलोचकों द्वारा व्यर्थ बतलाये जाने वाले अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों के भी पक्ष में बड़े उत्साहपूर्ण तथा वैज्ञानिक तर्क रखने लगीं। उन्होंने वेदों तथा उपनिषदों में अपना विश्वास तथा हिन्दू संस्कृति की पाश्चात्य संस्कृति की अपेक्षा उच्चता की स्पष्ट घोषणा की। उन्होंने मूर्ति-पूजा का भी समर्थन किया जिसको ब्रह्म समाज तथा आर्य-समाज ने निकृष्ट घोषित किया था, उन्होंने जाति-व्यवस्था का, उसके मूल रूप में पक्ष लिया और सती प्रथा तक का भी समर्थन किया, किन्तु उस समय जब विधवा अपनी इच्छा से सती होना चाहती हो। यह कहा जा सकता है कि ऐनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में भारत में थियोसोफी-हिन्दू जागृति की प्रतीक बन गई। सर वैलेंटाइन शिरोल ने अपनी इण्डियन अनरेस्ट नामक पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"श्रीमती ब्लैवटस्की तथा कर्नल आरकट के नेतृत्व में थियोसोफिस्टों के आगमन ने हिन्दू जाति को एक नई शक्ति प्रदान की और किसी भी हिन्दू ने इस आन्दोलन को संगठित तथा व्यवस्थित करने के लिये उतना कार्य नहीं किया जितना ऐनी बेसेन्ट ने। उसने सेन्ट्रल हिन्दू कालिज बनाया तथा मद्रास के निकट अदयार वाली थियोसोफिकल संस्था द्वारा पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के समय हिन्दू धर्म की उच्चता की स्पष्ट रूप से घोषणा की। हिन्दुओं का हमारी सभ्यता की ओर से मुंह मोड़ लेना तक क्या आश्चर्यजनक है जब एक प्रखर बुद्धि तथा अद्वितीय वाक्शक्ति सम्पन्नता योरोपीय महिला आकर उन्हें यह बतलाती है कि सर्वोच्च ज्ञान की कुंजी उन्हीं के पास है और सदैव से रही है। उनके देवत्व, उनके दर्शन तथा उनकी नैतिकता विचार की उससे उच्च भूमि पर है जहाँ तक पश्चिम अभी तक नहीं पहुंच पाया है।"

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की सबसे बड़ी सफलता सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल तथा सेन्ट्रल हिन्दू कालिज, बनारस की स्थापना है। यह कालिज अब हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम से जगत-विख्यात है। **उन्होंने सामाजिक सुधारों की ओर भी ध्यान दिया।** उनके सेन्ट्रल हिन्दू कालिज में विवाहित बालकों को प्रवेश नहीं मिलता। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने अपने साथ कार्य करने वालों तथा सच्चे अनुयायियों से अपनी कन्याओं का छोटी अवस्था में विवाह न करने की प्रतिज्ञा करवाई थी। उन्होंने इंगलैंड तथा अन्य देशों तक सामुद्रिक यात्रा करने वाले **भारतीय हिन्दुओं को जाति में सम्मिलित कर लेने** की व्यवस्था भी की। अन्त में, उन्होंने **'इण्डिया होम-रूल लीग'** की स्थापना कर

आन्दोलन किया और इस सम्बन्ध में उनको कारागार की यातनायें भोगनी पड़ीं। १९१८ ई० में वेकांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता निर्वाचित हुईं। हिन्दू-शास्त्रों का अनुवाद सहित प्रकाशन करके थियोसोफिकल सोसाइटी ने हिन्दू धर्म की बड़ी सेवा की और इस प्रकार शिक्षित हिन्दुओं को अपने धर्म का ज्ञान हुआ। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज का कुछ कुरीतियों को दूर करने में इसको विशेष सफलता प्राप्त हुई।

राम कृष्ण मिशन

श्री राम कृष्ण परमहंस का स्थान भारत की महान् विभूतियों में किया जाता है। यह भी राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान ब्राह्मण थे, किन्तु इनमें उन लोगों के समान विद्वता तथा वाक्-शक्ति नहीं थी। यद्यपि श्री राम कृष्ण परमहंस ने किसी धर्म-विशेष की स्थापना नहीं की तो भी हिन्दू धर्म पर इनके विचारों की छाप स्पष्ट दिखलाई देती है। विचार-क्षेत्र में केशवचन्द सेन तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे नेताओं ने भी इनकी महानता स्वीकार की। सन् १८८६ ई० में इनकी मृत्यु के उपरान्त उनके योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नेतृत्व में उनके लगभग एक दर्जन शिष्यों ने एक संस्था की स्थापना की जो 'राम कृष्ण मिशन' के नाम से विख्यात है। उन्होंने जीवन भर ब्रह्मचर्य तथा सादगी का व्रत लिया और निर्बल तथा गरीबों की सेवा में अपना समस्त जीवन व्यतीत किया।

श्री रामकृष्ण ने हिन्दू धर्म में एक पूर्ण आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की, लेकिन उनका जीवन तथा उनकी अनुभूतियां इससे भी महान् सत्य की प्रत्यक्ष उदाहरण थीं। बालपन से ही इनकी धर्म की ओर प्रवृत्ति थी। इनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी। संसार में इनका मन नहीं लगा और ईश्वर का दर्शन करने के लिये ये लालायित हो गये। कुछ समय उपरान्त उन्होंने सन्यास धारण किया। काली पूजा में इनकी असीम भक्ति थी। इन्होंने सब धर्मों की खोज की और उनके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न भी किया। ये सब धर्मों को एक ही सनातन धर्म का अंग मानते थे। अन्त में, अचेतन अवस्था में इनको कृष्ण भगवान के दर्शन हुये। उन्होंने किसी धर्म का खंडन नहीं किया। कुछ समय तक अपनी आत्मा को उन्नत तथा पवित्र करने के उद्देश्य से इन्होंने चांडाल का कार्य भी किया। इन्होंने हिन्दू धर्म की व्यवस्था वेदांत-दर्शन के आधार पर की।

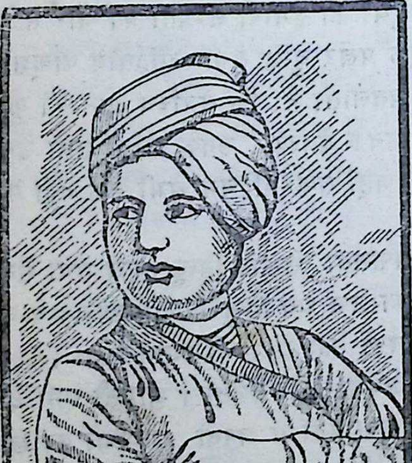

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द - इनके

एवं प्रतिभा का प्रभाव शिक्षित समाज पर विशेष रूप से पड़ा। इनके मुख्य शिष्यों में नरेन्द्रनाथ हुए हैं जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुये। उन्होंने अपने गुरु का संदेश यूरोप तथा अमेरिका तक पहुंचाया। उन्होंने वहां कई स्थानों पर मिशन की शाखाओं की स्थापना की। एक बार स्वामी विवेकानन्द १८९३ ई० शिकागो में होने वाले धर्म सम्मेलन में भी सम्मिलित हुये। इनके मत के अनुयायियों की संख्या अमेरिका में पर्याप्त है।

स्वामी विवेकानन्द को वेदान्त का प्रचार करने में स्वामी रामतीर्थ से भी बड़ी सहायता प्राप्त हुई। इन्होंने अपने पद का त्याग कर समस्त जीवन वेदांत के प्रचार में लगाया। इन्होंने जापान, अमेरिका तथा यूरोप के विभिन्न देशों का भ्रमण किया। इनके भाषणों का संग्रह 'In Woods of God Realization' नामक पुस्तक में है। युवावस्था में ही इनकी मृत्यु हो गई जब उनकी अवस्था केवल ३३ वर्ष की ही थी।

मिशन के सिद्धान्त – इनके मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार थे––

(१) सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में सत्यता का अंश है। इसलिये किसी व्यक्ति को अपने धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये।

(२) ईश्वर अजन्मा, अजेय तथा अमर है।

(३) आत्मा परमात्मा का अंश है।

(४) इनका मूर्ति-पूजा में विश्वास था। इनके अनुसार मूर्ति-पूजा द्वारा ईश्वर के दर्शन सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं।

(५) भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृति से श्रेष्ठ है।

(६) यूरोप के राष्ट्र एवं संस्कृति कलुषित हैं; क्योंकि इनमें स्वार्थ की मात्रा बहुत अधिक है।

इस मत के अनुयायियों की संख्या अधिक न हो पाई। इस संस्था ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। निर्धनादि की सहायता के लिये वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं। यूरोप तथा अमेरिका में अब भी इनका प्रचार बराबर जारी है। जब कभी देश पर कोई संकट आया तो उसके निवारण में इस संस्था ने बड़ा सहयोग दिया।

राधा स्वामी सत्संग

राधा स्वामी सत्संग की स्थापना श्री शिवदयालु जी ने आगरे में १८५१ ई० में की। आप आगरा-निवासी थे। आपका जन्म खत्री कुल में हुआ था। इनको राधा स्वामी से ईश्वर का ज्ञान हुआ और इसी कारण यह राधा स्वामी सत्संग के नाम से विख्यात हुआ।

सत्संग के अनुयायियों की ऐसी धारणा है कि राधा स्वामी संसार में मनुष्य का रूप धारण कर आये और उन्होंने सद्गुरु की पदवी धारण की। सन् १८७८ ई० में श्री शिवदयालु जी की मृत्यु हुई। प्रथम पाँच गुरुओं के समय में इनका विशेष

प्रभाव जनता पर नहीं पड़ा जिसके कारण इनके अनुयायियों की संख्या बहुत कम रही किन्तु छटे गुरु श्री आनन्द स्वरूप जी के समय में सत्संग ने विशेष रूप से उन्नति की। उन्हीं के समय में दयालबाग की स्थापना हुई।

इस सत्संग का उद्देश्य धार्मिक होने के साथ-साथ औद्योगिक भी है। इसमें भी जाति-पांति के लिये कोई विशेष स्थान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो सत्संग का सदस्य बन सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं कि मंत्र पाने के उपरान्त किसी व्यक्ति को अपने पूर्व के धार्मिक विश्वासों का त्याग करना होगा।

इस धर्म में गुरु की बड़ी महत्ता है। ये गुरु को ईश्वर का अवतार मानते हैं। **इस कारण इसका प्रमुख अंग गुरु:भक्ति** है। ये लोग गुरु की प्रत्येक वस्तु को बड़े आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इनका ऐसा विश्वास है कि उनका गुरु ही सब सत्य है और सत्य का ज्ञान करवाने वाला भी वही है। इसी कारण ये लोग अपने गुरु की आराधना करना आवश्यक समझते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य 'सूरत शब्द-योग' है। 'सूरत' को सत्संगी मानव आत्मा मानते हैं और 'शब्द' वह आध्यात्मिक धारा है जो ईश्वर के पास से आती है। 'सूरत-शब्द-योग' अभ्यास एवं आराधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

ये लोग ईश्वर, संसार और जीवात्मा को सत्य मानते हैं। इनका पुनर्जन्म में विश्वास है। इनके धार्मिक सिद्धान्तों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना कठिन है, क्योंकि गुरु द्वारा इनको गुप्त रखने की प्रतिज्ञा कराई जाती है। इनकी सामूहिक उपासना में गुरु नानक, कबीर तथा दादू आदि संतों की वाणियाँ बहुधा सुनाई देती हैं। ये लोग किसी भी पवित्र स्थान पर बैठकर सत्संग कर सकते हैं। इनमें प्रेम और भ्रातृ-भाव का स्थान बहुत ऊंचा है।

मुस्लिम धार्मिक आन्दोलन

समय का प्रभाव इस्लाम धर्म पर भी पड़े बिना न रह सका। इस धर्म में भी कुछ दोष तथा मुस्लिम समाज में भी कुछ कुरीतियां उत्पन्न होने लगी थीं। शासकों द्वारा दी गई शिक्षा का लाभ न उठाने के कारण मुसलमानों की दशा और भी गिर गई। उस पर हिन्दू धर्म का भी प्रभाव पड़ा जिसके कारण उनमें हिन्दुओं के कुछ रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं ने इनमें घर कर लिया। इन पर भी नवीन जागृति का प्रभाव पड़ा और कुछ विचारकों का ध्यान इस्लाम धर्म में सुधार की ओर आकर्षित हुआ। ये धार्मिक आन्दोलनों के साथ सामाजिक भी थे। प्रमुख आन्दोलन निम्नलिखित हैं:—

(१) **वहाबी आन्दोलन**—सैय्यद अहमद बरेलवी प्रथम मुस्लिम विचारक थे जिनका ध्यान इस्लाम धर्म तथा मुसलमान समाज की ओर आकर्षिक हुआ। वे राजा राममोहन राय के समकालीन थे। **इन पर अरब के वहाबी आन्दोलन** का बड़ा प्रभाव

पड़ा और इसी कारण यह आन्दोल नभी वहाबी आन्दोलन के नाम से ही विख्यात हुआ। उन्होंने जन-साधारण के प्रयोग के लिये कुरान का फारसी में अनुवाद किया। उन्होंने ईश्वर की एकता पर जोर दिया और कुरान की व्याख्या करने का अधिकार प्रत्येक मुसलमान को दिया। वे अपने अनुयायियों में सेइस्लाम विरोधी भावनाओं का पूर्णतया अन्त करना चाहते थे। इस प्रकार के मुसलमानों में अपने प्राचीन धर्म की बहुत कुछ बातें विद्यमान थीं जो इस्लाम धर्म का विरोध करती थीं। उन्होंने मुसलमानों की उन्नति के लिए जीवन भर भरसक प्रयत्न किया। वे भारत में मुसलमान राज्य की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं में विरोध की भावना पैदा करने का भी प्रयत्न किया। वे पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के विरोधी थे। वे काफिरों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध का उपदेश देते थे। उस समय इस आन्दोलन को विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई किन्तु इसने इस्लाम धर्म की कुछ कुरीतियों का अवश्य अन्त किया।

(२) **अलीगढ़ आन्दोलन**—उन्नीसवीं शताब्दी में मुसलमानों की सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों व अन्ध-विश्वास को दूर करने के लिए पुनः प्रयत्न किया गया। इस शताब्दी के आन्दोलन में अलीगढ़ आन्दोलन विशेष प्रसिद्ध हैं जिसके साथ सर सैयद अहमद खां का नाम भी संयुक्त है। इनका जन्म १८१६ ई० में हुआ और मृत्यु १८९८ ई० में हुई। जीवन भर उन्होंने मुसलमानों को जागृत तथा उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अंग्रेजों के हृदय से इस बात को निकालने की भरसक चेष्टा की कि १८५७ की क्रान्ति के लिये मुसलमान उत्तरदायी हैं। इनको इस दिशा में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। वे अपनी जाति में आत्म-विश्वास तथा सतत प्रयत्न की भावना भी भरना चाहते थे और उनको इस्लाम की प्रारम्भिक सादगी की ओर भी ले जाना चाहते थे। उन्होंने मुसलमानों का ध्यान पाश्चात् सभ्यता और शिक्षा की ओर आकर्षित किया। **उनके अनुसार मुसलमान जाति केवल उस समय उन्नति कर सकती है जब वह विज्ञान आदि की शिक्षा अंग्रेजी अध्ययन द्वारा प्राप्त करे।** इसके प्रति मुल्लाओं, मौलवियों तथा पुराने परम्परावाले व्यक्तियों का विरोध विशेष रूप से था। उन्होंने उनकी शिक्षाओं का विरोध किया और यह समझाया कि पश्चिमी शिक्षा से मुसलमानों को कोई हानि नहीं होगी। उन्होंने बतलाया कि स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहेब ने कहा था कि ज्ञान के लिये चीन की दीवार तक भी चले जाओ। **उन्होंने लोगों को यह भी समझाया कि ईसाइयों के साथ बैठकर खाने में कोई हानि नहीं है,** यदि भोजन त्याज्य न हो। उन्होंने स्वयं पश्चिमी रहन-सहन अपनाया, वह यूरोपियनों को अपने घर आमन्त्रित करते और स्वयं उनका आथित्य स्वीकार करते थे। इन विचारों के कारण उनकी

मुस्लिम धार्मिक आन्दोलन

(१) वहाबी आन्दोलन।
(२) अलीगढ़ आन्दोलन।
(३) अहमदिया आन्दोलन।

बड़ी निन्दा हुई, किन्तु अन्त में वे विजयी हुए और जीवन के अन्तिम वर्षों में वे मुस्लिम विचार-धारा को प्रभावित करने में सफल हुए। वे पर्दा प्रथा के विरोधी थे और स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कुरान की टीका भी की। शिक्षा का महत्व समझते हुये उन्होंने अलीगढ़ में १८७५ ई० में **मुहम्मडन ऐंग्लो ओरीयन्टल कालिज** की स्थापना की जो बाद में मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में परिणित हुआ। यह मुसलमानों की प्रथम शिक्षण-संस्था है, जिसका भारत के विभिन्न भागों से आने वाले मुस्लिम विद्यार्थियों की विचार-धारा तथा चरित्र को प्रभावित करने में बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने मुस्लिम-शिक्षा सम्मेलन की स्थापना की। इसका अधिवेशन प्रति वर्ष किसी बड़े नगर में होता रहा है। **वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे।** इसको प्राप्त करने के लिये उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया। इनके प्रयत्नों के कारण ही आज मुसलमान उन्नत अवस्था को प्राप्त करने में सफल हुए।

(३) **अहमदिया आन्दोलन**—इस आन्दोलन के चलाने का श्रेय मिर्जा गुलाम अहमद को प्राप्त है। मिर्जा जी का जन्म १८३९ ई० में गुरुदासपुर जिले में काठियान नामक गांव में हुआ था। वे अत्यन्त योग्य तथा विद्वान पुरुष थे। उनकी मृत्यु १९०८ ई० में हुई। **वे अपने को ईसामसीह, मुसलमानी मेहदी तथा विष्णु का अन्तिम अवतार मानते थे।** उनका कहना था कि उनका जन्म केवल इस्लाम धर्म में ही सुधार करने के लिये ही नहीं अपितु हिन्दू तथा ईसाई धर्मों को भी पुनर्जीवित करने के लिये हुआ है। पंजाब के मुसलमानों में उनके अनुयायी पाये जाते हैं। उनका हिन्दुओं तथा ईसाईयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनका ऐसा विश्वास था कि ईसामसीह की मृत्यु क्रास पर नहीं हुई। घावों के ठीक होने पर ने भारत आये और काश्मीर में उनकी मृत्यु कई वर्षों के उपरान्त हुई। उनका विश्वास था कि सब धर्म मनुष्य को सच्चे मार्ग पर पर ले जाते है, किन्तु इस्लाम धर्म सब धर्मों में श्रेष्ठ है। ये सनातनी विचारों के थे। इन्होने पर्दा प्रथा का समर्थन और तलाक तथा वहुविवाह प्रथा का अनुमोदन किया। कादयानी दल इनको नबी मानता है।

सामाजिक प्रगति

उक्त पक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि धर्म के साथ-साथ समाज में भी अनेक कुरीतियां उत्पन्न हो गई थीं जिनके कारण भारतीय सामाजिक जीवन निस्तेज तथा निस्पंद हो गया था। इसमें मुख्य कन्या-वध, बाल-वध, सती-प्रथा, बाल-विवाह, वहु-विवाह, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता मुख्य थीं। कम्पनी के प्रारम्भिक काल में शासकों ने इन दोषों को दूर करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया क्योंकि कम्पनी का ध्यान अपनी व्यापारिक उन्नति तथा

सामाजिक प्रगति

(१) बाल-ब्रध का अन्त।
(२) कन्या-वध का अन्त।
(३) सती-प्रथा का अन्त।
(४) विधवा-विवाह।
(५) बाल-विवाह तथा बेमेल विवाह।

राज्य-विस्तार की ओर विशेष रूप से आकर्षित था। समस्त धार्मिक आन्दोलनों ने इन कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करना आरम्भ किया, किंतु उन दोषों को पूर्णतया दूर उस समय तक किया जाना सम्भव नहीं था जब तक कि सरकार के पदाधिकारी उनको न्याय-संगत घोषित न करें। धार्मिक आन्दोलनों के कारण सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और उसने भी इनको दूर करने का प्रयत्न किया।

(१) बाल-वध का अन्त—पर्याप्त समय से हिन्दुओं में बाल-वध की दूषित प्रथा प्रचलित थी। देवी, चण्डिका, काली आदि की शक्तियों की उपासना के लिए तथा उनको प्रसन्न करने के लिए बहुत ते लोग बालकों की बलि दिया करते थे। कुछ लोग बच्चों को गंगा-सागर तथा गंगा माता की भेंट चढ़ाते थे। इस प्रथा के विरुद्ध १७९५ ई० में सरकार ने एक कानून बनाकर बाल-हत्या को नर-हत्या के नाम से पुकार उसका अन्त किया। अतः इस समय से यह प्रथा अवैध घोषित कर दी गई।

(२) कन्या-बध का अन्त—कन्या-बध की प्रथा मुख्यतः राजपूतों, जाटों और मेवारों में प्रचलित थी। वे कन्या को अशुभ समझते थे। विवाह में दहेज की प्रथा के प्रचलन के कारण वे कन्याओं को भार समझने लगे थे और कन्या के जन्म लेते ही उसका वध कर किया करते थे। १८०२ और १८०४ में इस प्रथा के विरूद्ध कानून बनाये गये और वह भी अवैध घोषित कर दी गई।

(३) सती-प्रथा का अन्त—भारतीयों में ऐसा रिवाज प्रचलित हो गया था कि पति की मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी को उसकी चिता में अपने आपको भस्मीभूत करना पड़ता था। कट्टरपंथियों की यह धारणा थी कि इस प्रथा के अनुसार पति कुल का उद्धार होता था। इतिहास में राजपूतों की जौहर की प्रथा का उल्लेख आता है। वे उस समय इस प्रथा का पालन स्वेच्छा से करती थीं जब उनको स्पष्ट हो जाता था कि शत्रुओं की विजय अवश्यम्भावी है और उनके सतीत्व की रक्षा इसी प्रकार होनी संभव है। यह प्रथा बाद में साधारण परिवारों में भी प्रचलित हो गई। धर्म-परायण स्त्रियाँ प्रारम्भ में सती अपनी स्वेच्छा से होती थी, किन्तु बाद में स्त्रियों को बलपूर्वक सती होने के लिए बाध्य किया जाता था। इस प्रथा को बन्द करने के लिए कुछ मध्यकालीन शासकों ने प्रयत्न भी किया, किन्तु उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक युग में राजा राममोहन राय ने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने सरकार के साथ पत्र व्यवहार करना आरम्भ किया। इस प्रथा के अन्त करने के लिए इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सरकार ने 'विजिलेन्स' समिति बनाई जिसकी सिफारिश पर लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। धर्म सभा तथा कट्टर हिन्दुओं की ओर से सरकार के इस कार्य का बड़ा विरोध किया गया, किन्तु राजा राममोहन राय के प्रयत्नों के कारण उनको सफलता प्राप्त न हुई। धीरे-धीरे इस प्रथा का अन्त होने लगा। बाद में लार्ड हार्डिञ्ज ने देशी राज्यों में भी इस प्रथा को बन्द करवाया।

(४) विधवा-विवाह—सती प्रथा के अवैध घोषित किये जाने पर तथा उसके अन्त होने के कारण भारतीय समाज में विधवाओं की एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। बाल-विवाह, बहु-विवाह तथा बेमेल विवाह के कारण विधवाओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि होने लगी। विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनके-साथ परिवार के लोगों का व्यवहार बड़ा कलुषित तथा दूषित था। शुभ अवसरों पर उनका देखा जाना भी बुरा माना जाता था। वास्तव में विधवाओं का जीवन अत्यन्त दुःखमय था। समस्त धार्मिक आन्दोलनों ने उनका उद्धार करने का प्रयत्न किया। बंगाल में **पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर** ने विधवा विवाह के लिए एक आन्दोलन किया। उन्होंने हिन्दू स्मृति तथा शास्त्रों के आधार पर विधवा-विवाह न्यायसंगत प्रमाणित किया। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूस १८५६ ई० में सरकार ने विधवा-विवाह का समर्थन किया। सन् १८८७ ई० **में श्री शारीपद बनर्जी** ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनकी सहायता के लिए एक संस्था की स्थापना की। इसके उपरांत अन्य प्रान्तों में भी इनकी सहायतार्थ कुछ केन्द्रों तथा आश्रमों की स्थाएना की गई अनेक सुधारकों ने जनता का ध्यान इच्छा-विरुद्ध वैधव्य की ओर आकर्षित किया। उनको इस दिशा में उतनी सफलता तो प्रप्त नहीं हो पाई कि इस समस्या का पूर्णतया समाधान हो जाये, किन्तु सफलता अवश्य प्राप्त हुई। **अखिल भारतीय महिला संघ** की ओर से विधवाओं की समस्या का निराकरण करने के लिए अकथनीय प्रयत्न किये गये, किन्तु अब भी उनकी अवस्था विशेष उन्नत नहीं है। इस ओर अभी और प्रयत्न किये जाने आवश्यक है। स्त्रियों के शिक्षित तथा स्वावलम्बी होने पर इस समस्या का समाधान पूर्णरूपेण हो जायेगा।

(५) बाल विवाह तथा बेमेल विवाह--भारतीयों में दोनों कुप्रथायें पर्याप्त समय से प्रचलित थीं। कुछ छोटी जातियों में ये प्रथायें आज भी प्रचलित है। सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों ने इनका भी अन्त करने का घोर प्रयत्न किया। सबने ही इनका विरोध किया। **श्री केशचन्द्रसेन** के प्रयत्नों के द्वारा सन् १८७२ ई० से सरकार ने 'नेटिव मैरिज एक्ट' (Native Marriage Act) पास किया जिसके द्वारा बाल विवाह तथा बेमेल विवाह अवैध घोषित कर दिये गये। विधवा विवाह तथा बेमेल विवाह को रोकने का कार्य ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज द्वारा भी किया गया, किन्तु इस कार्य में सबसे महत्वपूर्ण योग पारसी पत्रकार **श्री बहराम जी मालावारी** द्वारा किया गया। उन्होंने बाल विवाह के विरुद्ध अपनी पुस्तकों द्वारा आन्दोलन किए जिनसे प्रभावित होकर सन् १८९१ ई० में 'एज आफ कन्सेंट एक्ट' (Age of Consent Act) पास किया गया जिसके अनुसार सहवास की अवस्था १२ वर्ष कर दी गई। कट्टर पंथी हिन्दुओं ने इस एक्ट का बड़ा विरोध किया और उन्होंने महारानी विक्टोरिया की दुहाई दी जिसमें कहा गया है कि सरकार सामाजिक और धार्मिक बातों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करेगी। सन् १९३१ ई० में बड़ौदा सरकार ने वाल विवाह विधेयक कानून पास किया जिसके अनुसार लड़की और लड़के की आयु विवाह के

समय कम से कम क्रमशः १६ और १२ निश्चित की गई। १९३० ई० में **श्री हरविलास शारदा** के प्रयत्नों से उनके नाम पर ही **शारदा ऐक्ट** पास हुआ जिसके अनुसार लड़के व लड़की की आयु विवाह के समय कम से कम क्रमशः १८ और १४ निश्चित की गई। इन एक्टों द्वारा बाल विवाह का पूर्णतया अन्त हो गया। सरकार इस ओर से उदासीन रही। शिक्षा के प्रचार के कारण इस प्रथा का अन्त होना आरम्भ हो गया है किन्तु गांवों में आज भी बाल-विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

स्त्रियों की दशा

किसी समाज की सभ्यता, संस्कृति एवं उसके सामाजिक स्तर की जांच उस समाज में स्त्रियों के स्थान से की जाती है। इसका कारण यह है कि बालकों पर प्रारम्भिक प्रभाव उनकी माता का उन पर विशेष रूप से पड़ता है और यह प्रारम्भिक प्रभाव इतना दृढ़ होता है कि आगे की शिक्षा बालकों को इतना अधिक प्रभावित नहीं कर पाती। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वास्तव में नारी का स्थान समाज के उत्थान और पतन में बहुत अधिक है।

स्त्रियों की वर्तमान सामाजिक हीनता—स्त्रियों की वर्तमान हीन दशा के लिए शिक्षा का अभाव तथा आर्थिक पराधीनता के लिये पर्दा तथा कन्याओं की हत्या आदि विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। उनकी वर्तमान हीनता का परिचय कई बातों से मिलता है। अंग्रेजी शासन काल में भी पर्याप्त समय तक उनको उन्हीं असमर्थताओं का सामना करना पड़ा जो कि मुगल काल में थीं। यह तो मानना पड़ेगा कि पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव के कारण उनकी दशा कुछ उन्नत हुई, किन्तु यह केवल शिक्षित परिवारों के लिये सत्य है। अशिक्षित परिवारों तथा ग्रामों में उनकी दशा पूर्ववत् ही बनी रही। उनका स्थान प्रत्येक दशा में मनुष्य से नीचा था। वह केवल भोग-विलास की सामग्री के रूप में प्रयुक्त होने लगीं। उनको राजनीतिक क्षेत्र में भी अधिकार प्राप्त नहीं था। उसको सदा दूसरों के सहारे रहना पड़ता था। उनका कन्या के रूप में पिता पर, पत्नी के रूप में पति पर तथा वृद्धावस्था में पुत्रों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता था। स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत बहुत निम्न है जो ५ प्रतिशत से अधिक नहीं है। हर्ष का विषय है कि इस दिशा में बराबर उन्नति हो रही है। स्त्री-शिक्षा की ओर समाज की उदासीनता तथा शिक्षा में बाधक होने वाली प्रथाओं का अन्त हो रहा है, किन्तु अब भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं है।

स्त्री-सुधार आन्दोलन—सर्वप्रथम ब्रह्म समाज ने स्त्रियों की दशा को उन्नत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने पर्दा-प्रथा का विरोध किया तथा उनके प्रयत्नों से सती-प्रथा का अन्त हुआ। श्री केशवचन्द्र सेन ने विधवा विवाह के लिये आन्दोलन किया। १८५६ ई० में सरकार ने विधवा-विवाह को वैध घोषित किया। इनके कारण स्त्रियों में जागृति होने लगी। इसका प्रभाव

स्त्री सुधार आन्दोलन

(१) राजनीतिक जागृति।

(२) सामाजिक प्रगति।

(३) कानून-सम्बन्धी सुधार।

वास्तव में कुछ सीमित क्षेत्रों में हुआ; क्योंकि ब्रह्म-समाज भारतीय आन्दोलन का रूप धारण न कर सका। इसके बाद आर्य समाज ने इस आन्दोलन को उठाया। उसका कार्य इस दशा में बड़ा प्रशंसनीय रहा। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवा विवाह का समर्थन किया। लेकिन इस दिशा में विशेष आन्दोलन १९१४-१९१८ के प्रथम महायुद्ध के उपरान्त हुआ जब इसका रूप अखिल भारतीय तथा राजनीतिक हो गया। होम रूल लीग (Home Rule League) के आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर भारतीय महिलाओं ने अपने अधिकारों के विषय में सोचना आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में स्त्री-सुधार आन्दोलन उतना आवेशपूर्ण नहीं रहा जितना कि वह यूरोप में था। इसका विकास बहुत ही शान्तिमय रहा है। जिस सरलता से उनको अधिकार प्राप्त हुए उनसे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय लोग नारीत्व का कितना अधिक आदर करते हैं।

स्त्रियों की प्रगति को साधारणतया तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है जो राजनीतिक, सामाजिक तथा कानूनी हैं। निम्न पंक्तियों में इनके ऊपर अलग-अलग विचार किया जायेगा—

(१) राजनीतिक प्रगति—१९२१ के पूर्व भारतीय नारियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। १९१९ के भारत सरकार अधिनियम ने उनको वोट देने का अधिकार प्रदान नहीं किया, यद्यपि दिसम्बर १८, १९१७ को मद्रास में अखिल भारतीय महिलाओं का शिष्ट-मण्डल भारत-मन्त्री श्री माँटेग्यू से मिला था। इस अधिनियम के निर्वाचन नियमों ने धारा-सभा को यह अधिकार दिया था कि यदि वह चाहे तो पुरुषों के समान स्त्रियों को भी वोट का अधिकार दे सकती है। बम्बई तथा मद्रास की धारा सभाओं ने इस धारा का लाभ उठाकर १९२१ से पूर्व ही स्त्रियों को यह अधिकार प्रदान किया। सन् १९२३ ई० में उत्तर-प्रदेश ने, १९२६ में बंगाल-पंजाब तथा मध्य प्रदेश में भी उनको यह अधिकार दिया गया। इस सुधार के दस वर्ष के अन्दर ही सारे ब्रिटिश भारत में स्त्रियों को वोट का अधिकार प्राप्त हो गया। १९२६ ई० में उनको विधान सभा का सदस्य होने का अधिकार मिला। १९२७ ई० में डाक्टर मलूचस्मी रेडी मद्रास की प्रान्तीय धारा सभा की सदस्या निर्वाचित हुईं और सर्वसम्मति से वे उप-प्रधान बनीं।

१९३५ ई० के भारत-सरकार अधिनियम ने उनको और अधिकारों से सुशोभित किया। स्त्रियों का निर्वाचन-क्षेत्र विकसित हुआ और वयस्क स्त्रियों में भी लगभग १०$\frac{१}{२}$ प्रतिशत स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। उनके लिये पन्द्रह स्थान (६ कौंसिल में तथा ९ विधान-सभा में) और ४१ प्रान्तीय सभाओं में सुरक्षित कर दिये गये। **वे साधारण सीटों का निर्वाचन बड़ी सफलतापूर्वक लड़ीं और पुरुषों को उन निर्वाचन-क्षेत्रों में परास्त किया जहां पुरुषों की संख्या अधिक थी।** विभिन्न प्रान्तों में स्त्रियां मन्त्री, संसदीय-सचिव, उपाध्यक्ष तथा उपसभानेत्री बनीं। संविधान-सभा में भी जो राष्ट्रीय संसद के रूप में कार्य कर रही थी, दस स्त्रियाँ थीं। जब १९४७ के

उपरान्त भारत-स्वतन्त्र हुआ तब उसने नारीत्व तथा स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने वाली स्त्रियों के कार्यों तथा उनकी देन का बड़ा सम्मान किया। श्रीमती सरोजनी नायडू उत्तर प्रदेश की राज्यपाल, राजकुमारी अमृतकौर स्वास्थ्य मन्त्राणी तथा श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित रूस में भारतीय राजदूत बन गईं। हमारे नये संविधान ने तो प्रत्येक वयस्क स्त्री को वोट देने का अधिकार प्रदान कर स्त्री और पुरुष की समानता के सिद्धान्त को अपनाया।

विधान-सभाओं तथा स्थानीय संस्थाओं की स्त्री-सदस्याओं ने स्त्रियों की स्थिति तथा प्रभाव को उन्नत करने का विशेष प्रयत्न किया है। श्री सी. एफ. इङ्रूज (C. F. Andrews) के शब्दों में उनके इस कार्य का भली-भाँति परिचय मिलता है।

"आश्चर्यजनक परिवर्तनों के लाभकारी प्रभाव से सभी अवगत हैं। दीन, अनाथों, निर्बल तथा असहायों की सेवा के क्षेत्र से नगरपालिकाओं का स्तर उच्चतर हो गया है। घरों की गंदगी के विरुद्ध अद्वितीय तथा कठिन संग्राम आगे बढ़ता गया और एक के बाद दूसरी सफलता मिलती गई। घरेलू विशेषतः बच्चों की बीमारियों की रोक-थाम पहले से अधिक हो रही हैं। उपयुक्त पोषण, उपचार तथा चीर-फाड़ की सहायता के अभाव के कारण जहाँ अत्यधिक कष्ट, कभी-कभी मृत्यु भी हो जाया करती थी अब जनता के रुपयों की सहायता से जच्चा को अधिक से अधिक सुख देने का प्रयत्न हो रहा है।"

(२) **सामाजिक प्रगति**—सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों की उन्नति कम महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तव में इस प्रगति के अभाव में अन्य क्षेत्रों में उन्नति सम्भव नहीं है; क्योंकि सामाजिक प्रगति का राजनीतिक गति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसा कि उक्त पंक्तियों में प्रदर्शित किया जा चुका, स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेने के कारण स्त्रियों ने पर्दे की प्रथा का बिल्कुल अन्त कर दिया। अब वे हजारों की संख्या में राजनीतिक सभाओं और जलूसों में भाग लेती हैं। उनके प्रत्येक कार्य में उनकी मुक्ति की नई झलक दिखाई देती है जिनको देखकर कोई भी निरीक्षक बिना प्रभावित हुये नहीं रह सकता। अपने वार्षिक सम्मेलन में उन्होंने अपने विस्तृत सुधार की माँग की। **१९३१ से पूर्व सम्मेलनों में सभापतियों के भाषण में पर्दा-निवारण, बाल-विवाह उन्मूलन तथा वैधव्य समाप्ति की ओर विशेष महत्व दिया जाता था।** अब वे इनके लिये प्रस्ताव पास करने की चिंता नहीं करतीं, वरन् अब उनसे भी अधिक आवश्यक विषयों की ओर ध्यान देती हैं। अब वे सम्पत्ति की स्वामिनी बनने तथा तलाक की मांग उपस्थित करती हैं। वे कानून द्वारा बहु-विवाह अधिनियम को कठोरता से पालन करने की मांग करती हैं। वे सहशिक्षा तथा लड़कियों के लिये शिक्षा-सम्बन्धी विशेष सुविधाओं की मांग कर रही हैं, क्योंकि उनका विचार है कि शिक्षा के प्रसार से सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो जायगा और उन की सामाजिक प्रगति स्वयं हो जायगी।

(३) **कानून सम्बन्धी-सुधार**—स्त्रियों में उत्पन्न हुई महत्वपूर्ण चेतना तथा

अनेक दिशाओं में की गई उनकी प्रगति का आभास उन समस्त प्रयत्नों द्वारा प्राप्त हो जाता है जो आधुनिक काल में कुरीतियों तथा उनकी असमर्थताओं को दूर करने के लिये किये गये हैं। केन्द्रीय व्यवस्थापिता सभा में डाक्टर देशमुख तथा सेठ गोविन्द दास, मोती लाल द्वारा कुछ विधेयक उपस्थित किये गये। उससे कुछ पूर्व १९३७ ई० में हिन्दू स्त्री सम्पत्ति अधिनियम पारित हुआ। विवाह, तलाक जायदाद का **स्वामित्व इत्यादि के विषय में हिन्दू-परिवारों में प्रचलित अनिश्चित तथा विरोधात्मक विधियों पर पुर्नविचार तथा सुधार करने की दृस्टि से भारतीय सरकार ने एक समिति की स्थापना की।** इस समिति ने समस्त देश का भ्रमण कर प्रमाण संग्रहीत किये और हिन्दू कोडबिल (Hindu Code Bill) पर जनता की राय ली। डाक्टर अम्बेडकर (कानून सदस्य) ने कमेटी की सिफारिश पर यह विधेयक भारतीय संसद के सामने प्रस्तावित किया। इस सुधार का विरोध जनता द्वारा किया गया; क्योंकि इसके द्वारा हिन्दू समाज में उग्र सुधारों को लाने की ओर कदम उठाया गया था। सरकार ने जनता का विरोध देखते हुए कुछ समय के लिए इस विधेयक को स्थगित कर दिया। लेकिन स्त्रियों की दशा को उन्नत करने के लिए इस विधेयक के कई भाग भारतीय संसद द्वारा पारित हो चुके हैं और उन्होंने अधिनियमों का रूप धारण कर लिया है। **भारतीय संसद ने उत्तराधिकारी अधिनियम पारित कर स्त्रियों को सम्पति सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये।** पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार निश्चित कर दिया गया तथा एक पुरुष पहली पत्नी के जीवित होते हुए दूसरा विवाह बिना उसकी सम्मति प्राप्त किये नहीं कर सकता है।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक स्त्री समाज प्रगति की ओर निरन्तर बढ़ रहा है। १९४० ई० तक स्त्रियों की सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा इतनी अधिक हो गई कि प्रान्तों की विधान सभाओं में स्त्री सदस्यों की संख्या ८० के लगभग पहुंच गई है। इस प्रकार स्त्रियों के राजनीतिक प्रभाव तथा स्थिति की दृष्टि से भारत का तीसरा नम्बर हो जाता है।

उक्त वर्णन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भारत की समस्त स्त्रियों को पुरुषों के समान समाज में पद उसी प्रकार प्राप्त हो गया है जिस प्रकार अन्य विदेशी प्रगतिशील देशों में। विचार-वाणी तथा कार्य-क्षेत्र में उनको अभी तक उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई जितनी विदेशी स्त्रियों को। अभी भी कुछ विशेष प्रथाओं का जो भारतीय समाज में है, गांवों में, जहाँ शिक्षा तथा राष्ट्रीयता की भावना का अधिक विकास सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ स्त्रियों की दशा आज भी शोचनीय है और उनको विशेष असमर्थताओं का सामना करना पड़ता है। शिक्षा के विकास के साथ उनकी भी उन्नति होनी अनिवार्य है।

जाति–व्यवस्था

हमारे समाज में जाति-व्यवस्था बड़े प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रारम्भ में आर्यों ने वर्ण-व्यवस्था स्थापित की जिसका आधार कर्म था न कि जन्म। पुस्तक के

प्रथम भाग में इसका विशद् वर्णन किया जा चुका है। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसी वर्ण-व्यवस्था ने कालान्तर में जाति-व्यवस्था का रूप धारण किया जो दिन प्रति दिन दृढ़ होती चली गई। इस व्यवस्था में इतने ग्रधिक दोष विद्यमान हैं कि ग्राज यह एक तमाशा बन गई। इसलिये यदि इसके विरुद्ध विभिन्न समयों पर विद्रोह हुये तो उसमें कोई ग्राश्चर्य की बात नहीं है। इसके विरुद्ध विद्रोहों में शिक्षित वर्ग का विशिष्ट हाथ रहा। ब्रह्म समाज, ग्रार्य समाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी की ग्रोर से इसका खण्डन किया गया ग्रौर उन सबने इसको व्यर्थ बतलाया। बीसवीं सताब्दी में इसके विरुद्ध महात्मा गांधी ने ग्रान्दोलन किया, किन्तु इतने पर भी यह पूर्णतया ग्रर्थहीन नहीं बन सकी। बड़े नगरों तथा बड़ी जातियों में इसका प्राय: ग्रन्त सा हो गया, किन्तु गांवों ग्रौर निम्न जातियों में इसका ग्रब भी जोर है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नगरों में तथा उच्च जातियों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव ग्रधिक हो गया ग्रौर गांव में इसका ग्रभाव है।

ग्रस्पृश्यता—ग्रस्पृश्यता हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा कलंक तथा ग्रभिशाप है। यह व्यवस्था भी उतनी ही पुरानी है जितनी की वर्ण-व्यगस्था। इसके लिये हिन्दू धर्म की ठीक ही ग्रालोचना की जाती है। **वर्ण-व्यवस्था के प्रमुख चार वर्णों के ग्रतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में विभिन्न नामों सहित ग्रनेक छोटी-छोटी जातियां हैं जो सामूहिक रूप से 'ग्रछूत' या 'जाति बाहर' मानी जाती** है। ग्रछूतों को कभी-कभी गलती से दलित वर्ग के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि इस शब्द का ग्रर्थ विस्तृत है ग्रौर इसमें वे वर्ग भी ग्रा जाते हैं जो ग्रछूत नहीं हैं। महात्मा गांधी ने उनको 'हरिजन' कहना पसन्द किया जिसका शाब्दिक ग्रर्थ 'हरि के बन्दे' हैं।

ग्रछूतों की दशा—ग्रछूतों से स्पर्श किया हुग्रा व्यक्ति या कोई वस्तु गन्दी समझी जाती है, इसलिए उनको ग्रछूत कहा जाता है। एक स्वर्ण हिन्दू किसी ग्रछूत द्वारा छुग्रा हुग्रा भोजन या पानी का प्रयोग नहीं करता ग्रौर उससे स्पर्श हो जाने पर उनको स्वयं नहाना पड़ता है या पवित्र होने के लिये कुछ धार्मिक कृत्य करने पड़ते हैं। दक्षिण भारत में छुग्राछूत का ग्रर्थ 'निकट न ग्राना' तक है। वहाँ ऐसी जातियाँ हैं जो स्वर्ण हिन्दुग्रों की दृष्टि में वातावरण तक को गन्दा कर देती हैं। उनमें से कुछ तो इतने नीचे समझे जाते हैं कि उनका दिखलाई पड़ जाना भी ग्रच्छा नहीं समझा जाता है, किन्तु उत्तर भारत में ऐसी भीषणता नहीं है।

ग्रछूतों की ग्रसमर्थतायें—ग्रछूतों का जीवन बड़ा शोचनीय तथा कठिन है। उन्हें जीवन में हीनता, दासता, मानसिक तथा नैतिक ग्रसमर्थतायें भोगनी पड़ती हैं। उनके व्यवहार को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें मनुष्योचित गौरव तथा ग्रात्म-सम्मान की भावना नहीं है ग्रौर उन्होंने ग्रपने को मनुष्योतर प्राणियों की

ग्रछूतों की ग्रसमर्थतायें

(१) सामाजिक ग्रसमर्थतायें।
(२) धार्मिक ग्रसमर्थतायें।
(३) ग्रार्थिक ग्रसमर्थतायें।
(४) राजनीतिक ग्रसमर्थतायें।

श्रेणी में उतार दिया है। इनकी असमर्थतायें चार प्रकार की हैं—(१) सामाजिक, (२) धार्मिक, (३) आर्थिक और (४) राजनीतिक। निम्न पंक्तियों में इनका अलग-अलग विवेचन किया जायगा—

(१) **सामाजिक असमर्थतायें**—अछूतों की सामाजिक असमर्थतायें अनेक तथा कई प्रकार की हैं। उनके रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न है। उनके निवास-स्थान बहुत गन्दे होते हैं और वहाँ पानी तथा रोशनी का अभाव रहता है। उनके स्पर्श से मनुष्य तथा वस्तुएं अपवित्र हो जाती हैं जिनसे उनकी सामाजिक असमर्थताएं बहुत बढ़ गई हैं। वे स्वर्ण हिन्दुओं के कुओं से पानी नहीं ले सकते, तालाबों में स्नान नहीं कर सकते और उनके बच्चे अन्य बच्चों के साथ पाठशालाओं तथा स्कूलों में शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। वे अपनी वर-वधुओं को पालकी में नहीं बैठा सकते। उनकी स्त्रियों को सोने-चाँदी का प्रयोग करना वर्जित है। पुरुष कमर से ऊपर वस्त्र धारण नहीं कर सकते। वे बेगार करने के लिये बाध्य किये जाते हैं। दक्षिण भारत के कुछ भागों में तो उनको कुछ निश्चित सड़कों तक पर चलना वर्जित है।

(२) **धार्मिक असमर्थतायें**—इनके अनुसार अछूतों को धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन तथा मन्दिरों में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं है। वे जनेऊ पहनने के अधिकारी नहीं हैं। हिन्दू समाज ने उनकी धार्मिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की। उनके पतन में धार्मिक असमर्थताओं का कुछ कम हाथ नहीं है। किसी अन्य समाज में इनके समान कोई वर्ग नहीं है। उनके मनुष्यों के मूलभूत अधिकारों से भी हिन्दुओं ने वंचित कर दिया है।

(३) **आर्थिक असमर्थतायें**—आर्थिक दृष्टि से भी अछूत सबसे गन्दे तथा कम लाभ वाले पेशे करने के लिए बाध्य किये जाते हैं; जैसे झाड़ू देना, चमड़ा साफ करना आदि। गांवों में उनकी अपनी भूमि नहीं होती। वे भूमि के स्वामियों द्वारा बहुत कम मजदूरी पर खेत में काम करने के लिए नौकर रख लिए जाते हैं। इस प्रकार वे निम्नतर आर्थिक स्तर में हैं। उनको व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं है और इस प्रकार उनकी आर्थिक कठिनाइयां और भी भीषण बन गईं हैं।

(४) **राजनीतिक असमर्थतायें**—उक्त असमर्थताओं में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार देने को कौन तत्पर होगा? उनको किसी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अछूतों पर स्वर्ण हिन्दुओं ने बड़े अत्याचार किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ण हिन्दू मनुष्यों में सबसे क्रूर तथा हृदयहीन व्यक्ति है तथा अछूत मानव-जाति के सबसे अधिक सताए हुए व्यक्ति हैं। परन्तु कुछ ऐसी घटनायें भी हैं जिन्होंने अछूतों की परेशानियों को कुछ कम अवश्य कर दिया है। उनसे यह भी प्रदर्शित हो जाता है कि स्वर्ण हिन्दू उतना हृदयहीन नहीं है जितना वह समझा जाता है। अछूतों के लिए अलग कुओं तथा हौजों की व्यवस्था है जिनका वे प्रयोग कर सकते हैं। यदि परम्परा के कारण उनको गन्दे पेशे

करने के लिए बाध्य किया तो उनको कुछ ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जिनसे वे वंचित नहीं किये जा सकते। अनाज के कटने के समय उनको अनाज दिया जाता है और त्यौहारों के अवसर पर उनको भोजन आदि दिया जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धार्मिक कृत्य भी हैं जिनका किया जाना अछूतों की अनुपस्थिति में संभव नहीं हैं जैसे सवर्ण हिन्दुओं में शव को जलाना आदि।

अस्पृश्ता निवारण के आन्दोलन—हिन्दुत्व के उज्जवल नाम पर अस्पृश्यता सबसे बड़ा कलंक तथा अभिशाप है। यह ईश्वर तथा मानवता के विरुद्ध पाप है। समाज का एक क्षेत्र इतना अधिक दबा दिया गया है कि उसके शरीर का स्पर्श ही अपवित्र बना देता है। मानवता के विरुद्ध इससे बड़ा पाप क्या हो सकता है? धर्म के नाम पर इस व्यवस्था को अपनाते रहना ईश्वर के विरुद्ध पाप है। इस पाप के लिए हिन्दू पर्याप्त भोग भोग चुके हैं। महात्मा गांधी ने ठीक ही कहा था कि "अस्पृश्यता के पाप के लिये हम क्या भोग नहीं चुके हैं, क्या जैसा हम लोगों ने बोया था, वैसा काटा नहीं है? क्या हमने डायर तथा ओडायर की नृशंसता अपने ही भाइयों के साथ नहीं दिखलाई है? हम लोगों ने अछूतों को अलग रखा है और इसके बदले हम लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में अलग कर दिये गये हैं? हम उनको जनता के कुओं का उपभोग नहीं करने देते, हम उन्हें खाने के लिए अपना झूठन देते हैं। उनकी परछाई तक हमको अपवित्र कर देती है। यदि अछूत हमारे लिये ऐसी अपवित्र भाषा का प्रयोग करते हैं जैसी हम अंग्रेजों के प्रति करते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है?"

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन दलित वर्गों के उत्थान का सक्रिय प्रयत्न ईसाई पादरियों ने किया; जिन्होंने इनमें कार्य कर इनको हजारों की संख्या में अपने धर्म में दीक्षित किया। ईसाई धर्म में दीक्षित हो जाने पर इन्होंने अपनी गन्दी आदतों का परित्याग कर दिया। उनको एक नया सम्मान प्राप्त हुआ और वे ईसाई समाज के सम्माननीय सदस्य बन गये।

आर्य समाज—आर्य समाज ने इनके उत्थान का बीड़ा उठाया और शुद्ध करने के कुछ धार्मिक कृत्यों के पश्चात् उनको अपने समाज में लेना प्रारम्भ किया।

ब्रह्म समाज—बंगाल ने ब्रह्म समाज ने जाति-व्यवस्था का विरोध कर उनके जीवन-स्तर को उन्नत करने का भरसक प्रयत्न किया।

हिन्दू समाज-सुधारक—कई हिन्दू समाज-सुधारकों ने अछूतों की आर्थिक तथा शिक्षा संबंधी उन्नति के लिए 'दलित वर्ग मिशन' स्थापित किये। १९०३ ई० के एक वक्तव्य में जनता की इस परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय मिला। गोपाल कृष्ण गोखले ने अस्पृश्यता की तीव्र भर्त्सना की और कहा कि 'यह व्यवहार कितना मूर्खतापूर्ण है कि जब तक अछूत हमारे धर्म में रहते हैं, हम उनको घरों में प्रवेश करने नही देते और न उनको अपने में मिलने-जुलने ही देते हैं, किन्तु जब वह हमारे धर्म का परित्याग कर हैट-कोट-पेंट पहनकर ईसाई बन जाते हैं तो हम उनसे हाथ मिलाते हैं और उनका आदर करते हैं।'

लेकिन हिन्दू समाज पर्याप्त समय तक इस आन्दोलन को उपेक्षा की दृष्टि से

देखता रहा। कई स्थानों पर हिन्दुओं ने इसका सक्रिय विरोध किया। विरोध की गहराई इस बात से जांची जा सकती है कि १९२० की जनगणना के समय यह प्रस्ताव रक्खा गया कि अछूतों के हिन्दूओं के साथ गणना नहीं की जाये।

महात्मा गांधी का हरिजन आन्दोलन—महात्मा गांधी के नेतृत्व में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अस्पृश्यता के निवारण को अपने कार्य-क्रम का एक प्रमुख अंग बनाया। इससे वातावरण में बहुत अधिक परिवर्तन हुआ। कई बार भाषण करते समय गांधी जी ने यह घोषित किया कि भारतीयों की राजनीतिकहीनता उनके अस्पृश्यता रूपी पाप का ही परिणाम है और इसीलिये वे अंग्रेजी साम्राज्य से 'जाति बहिष्कृत' के समान हैं। बहुधा यह लोगों के सामने अपने इस विश्वास का प्रदर्शन किया करते थे कि जब तक अस्पृश्यता का अन्त नहीं हो जायगा उस समय तक स्वराज्य की प्राप्ति असम्भव होगी। उनके शब्द हैं कि 'जब हिन्दू जान-बूझकर सच्चे हृदय से नीति के रूप में नहीं, वरन् आत्म शुद्धि की भावना से अस्पृश्यता का अन्त करेंगे तो उनका यह कार्य राष्ट्र को उचित कार्य करने की एक नई शक्ति देगा और इसलिये स्वराज्य की प्राप्ति में सहायक होगा। हममें एकता का अभाव है इसलिये हम शक्तिहीन हैं। जब हम इन पाँच करोड़ अछूतों को अपना समझेंगे तो एकता का महत्व हमारी समझ में आयेगा। यह एक कार्य कदाचित हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का भी निवारण करेगा, क्योंकि इसमें भी अस्पृश्यता का विष प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्यमान है। हिन्दुत्व की रक्षा के लिये यदि इस प्रकार की कृत्रिम दीवार की आवश्यकता है तो वह अवश्य ही एक दुर्बल धर्म है।' अहमदाबाद में १३ अप्रैल १९२१ को एक भाषण में गांधी जी ने कहा था कि 'अछूतों का उद्धार तथा गौ-माता की रक्षा ही उनकी प्रबल रचनाओं में से दो ऐसी हैं जिन्होंने उन्हें जीवित रख छोड़ा है। इन दो इच्छाओं की पूर्ति में ही स्वराज्य निहित है और मेरा अपना मोक्ष है।'

इन दोनों के उन्मूलन में अनवरत प्रचार का गहरा प्रभाव पड़ा, किन्तु फिर भी जनता ने वास्तव में इसके विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाई। इसके लिये और शक्तिशाली कदम का उठाना आवश्यक था। १९३२ और १९३३ में महात्मा जी के दो बड़े उपवासों से इस अभाव की पूर्ति हुई। इसके प्रभाव से जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा और प्रश्न बौद्धिक धरातल से उठकर भावनात्मक धरातल पर जा पहुंचा। ब्रिटिश भारत में अनेक स्थानों पर अछूतों के लिए मन्दिर खोल दिये गये। इसके अतिरिक्त ट्रावनकोर तथा अन्य देशी राज्यों ने अछूतों सहित सभी जातियों के लिए मन्दिरों को खोलने का आदेश दिया। सुवर्ण हिन्दू इन लोगों की बस्तियों में जाकर गलियों में झाड़ू लगाते तथा उनकी सफाई करते थे, उनके बच्चो को स्नान कराते थे तथा अन्य प्रकार से वे उनको अपना ही अंग दिखलाने की चेष्टा करते थे। बाद में महात्मा गांधी जब कभी दिल्ली जाते तो भंगी बस्ती में ही ठहरते थे। इसका भी हिन्दू हृदय तथा मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन लोगों की उन्नति तथा अस्पृश्यता की समाप्ति के लिए आन्दोलन बराबर चलता रहा। इस महान् कार्य में अनेक समितियां कार्य कर रही है जिनमें 'हरिजन सेवक संघ' प्रमुख है। इससे अधिक

हत्वपूर्ण तो यह है कि अछूतों में स्वयं एक चेतना आ गई है और वे अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिये विशेष प्रयत्नशील हैं।

मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य के प्रधान मंत्रित्व काल में कांग्रेस मन्त्रिमंडल ने सिविल **'डिसेबिलिटिज रिमूवल एक्ट'** तथा **'मलावार टैम्पिल एन्ट्री एक्ट'** पारित किये थे। हाल में ही बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश की सरकार ने भी इस ओर पग उठाया। बम्बई सरकार ने अस्पृश्यता के विचार तक को दण्डित घोषित किया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि संविधान ने अस्पृश्यता को किसी भी रूप में नहीं माना है। अस्पृश्यता द्वारा उत्पन्न हुई किसी भी असमर्थता का प्रयोग दण्डनीय होगा। इस प्रकार इसमें सन्देह का लेशमात्र भी अंश नहीं कि जहां तक हिन्दू समाज की वैधानिक आत्मा का सम्बन्ध है, अस्पृश्यता अतीत की संस्था बन गई है। यह कहना अभी उपयुक्त न होगा कि यह अब सार-रूप में भी अवशेष नहीं है। उद्देश्य तक पहुंचने तथा अछूत वर्ग को अन्य वर्गों के साथ समानता का स्थान दिलाने और उनको विशाल हिन्दू-समाज के सदस्य बनाने में भी अटूट लगन और अनेक परिश्रम की आवश्यकता है।

भारतीय संविधान और हरिजन—भारतीय संविधान द्वारा उनकी उन्नति करने के लिए उनको विशेष सुविधायें प्रदान की गई हैं जिनका कार्य-काल १० वर्ष निश्चित किया गया है। राज्यों के विधान मण्डलों तथा लोक-सभा में उनके स्थान सुरक्षित हैं। जनसंख्या के अनुसार इनको इन सभाओं में प्रतिनिधित्व दिया गया है। इनके मंत्री राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार में भी हैं। सार्वजनिक सेवाओं में भी इनको विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। इनके लिये कुछ स्थान सुरक्षित रहते हैं जो १२½ से १७ प्रतिशत तक हैं। इनको शिक्षा-प्राप्ति के लिए राज्य तथा केन्द्रीय सरकार की ओर से वजीफे दिये जाते हैं।

प्रश्न

इलाहाबाद विश्वविद्यालय—

१. आधुनिक भारत के पुनर्जागरण में स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानंद के योगदान का मूल्यांकन कीजिये।

२. समाज के उत्थान के लिए महात्मा गाँधी ने क्या प्रयत्न किए?

राजस्थान विश्वविद्यालय—

1. 'The Indian Renaissance of the 19th century has been essentially a matter of spirit producing striking changes in religion and society.' Amplify the changes so brought forth.

सागर विश्वविद्यालय—

१. उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में समाज-सुधार आन्दोलनों के महत्व का वर्णन कीजिये।

२. राजा राममोहन राय के कार्यों का विवरण दीजिए तथा इतिहास में उनके स्थान का मूल्यांकन कीजिए।

१०

सांस्कृतिक—प्रगति

गत अध्यायों में भारत के धार्मिक तथा सामाजिक विकास तथा उनकी प्रगति में जो आन्दोलन हुये उनका वर्णन किया जा चुका है, इस अध्याय में भारत की सांस्कृतिक प्रगति पर प्रकाश डाला जायेगा। इसके अन्तर्गत (१) शिक्षा, (२) साहित्य और (३) कला का वर्णन किया जाएगा।

शिक्षा

शिक्षा के महत्व से सब लोग भली-भांति परिचित हैं। वास्तव में शिक्षा नागरिक जीवन का आधार है और उसके गुण तथा शिक्षित व्यक्तियों की संख्या पर ही समाज की उन्नति बहुत सीमा तक निर्भर है। भारत के सुधारकों आदि ने अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को प्रगट किया और भारत की सांस्कृति प्रगति में उनका हाथ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारत में शिक्षा—जिस समय अंग्रेजों का भारत में आगमन हुआ उस समय भारत में शिक्षा का अभाव न था। शिक्षा की दृष्टि से वह अपने समय के किसी भी यूरोपियन देश से आगे था। उस समय हमारे देश में संतोषजनक व्यवस्था थी। देश में प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा की पर्याप्त तथा विस्तृत व्यवस्था थी। मिस्टर केर हार्डी के अनुसार "सरकारी कागजों तथा मिशन सम्बन्धी रिपोर्ट के आधार पर अंग्रेजों के आगमन के पूर्व बंगाल की शिक्षा स्थिति के विषय में मैक्समूलर का कथन है कि बंगाल में ८०,००० स्कूल तथा कुल जन-संख्या के प्रत्येक ४०० व्यक्तितों के पीछे एक स्कूल था।" श्री एफ डब्लू टामस के अनुसार "अंग्रेजों को भारत में प्राथमिक तथा उच्चा शिक्षा की एक विस्तृत व्यवस्था मिली जिसमें प्राथमिक शिक्षा व्यवहारिक तथा उच्च शिक्षा, दर्शन साहित्य तथा धर्म से सम्बन्धित थी।"

कम्पनी के शासन-काल में शिक्षा—गत अध्याय में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि कम्पनी के शासन-काल में शिक्षा की क्या प्रगति हुई। सर चार्ल्स वुड की शिक्षा-सम्बन्धी योजना के अनुसार तीनों प्रेसीडेन्सियों तथा पश्चिमोत्तर प्रान्तों और पंजाब में सर्वजन, शिक्षा विभाग तथा समूचे भारत में क्रमबद्ध स्कूलों की स्थापना हुई और प्रत्येक प्रान्त में एक शिक्षा-संचालक की नियुक्ति हुई। उसने विश्वविद्यालयों की स्थापना का भी विचार प्रगट किया जो लन्दन विश्वविद्यालय के समान होंगे।

हंटर कमीशन—सन् १८८२ ई० में लार्ड रिपन के शासन-काल में शिक्षा ति में सुधार करने के अभिप्राय से सर डब्ल्यू हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्ति की गई जो उसके सभापति के नाम से हंटर कमीशन के नाम से विख्यात । इस कमीशन ने ये सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षा स्थानीय संस्थाओं को दी जाए तथा उच्च शिक्षा पर से सरकारी नियन्त्रण कम से कम कर दिया । स्त्रियों तथा दलित वर्ग के व्यक्तियों के लिए भी शिक्षा की उचित व्ययस्था जानी चाहिये ।

लार्ड कर्जन की नीति—लार्ड कर्जन शिक्षण-संस्थाओं पर सरकारी नियन्त्रण पक्षपाती था और उसने उसके पुनर्संगठन की ओर कदम उठाया । उसने १९०१ में शिमला में शिक्षा-अधिकारियों का एक सम्मेलन सितम्बर के माह में आमन्त्रित या । इसके पश्चात् १९०२ ई० में उसने सर रेले की अक्यक्षता में एक आयोग नियुक्ति की । इस आयोग में हैदराबाद राज्य के शिक्षा-संचालक तथा कलकत्ता ईकोर्ट के न्यायाधीश श्री गुरुदास बनर्जी भी सदस्य थे । इस कमीशन की रिपोर्ट १९०४ ई० में कर्जन की सरकार ने यूनिवर्सिटी एक्ट पास किया । यद्यपि तीयों ने इस बिल का डटकर विरोध किया और स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले तो इसकी धज्जियां ही उड़ दीं, किन्तु अन्त में बहुमत से यह पास हो गया ।

भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट—इस एक्ट के द्वारा विश्वविद्यालयों के ठन तथा शासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये जिनको निम्न सात भागों में विभक्त ा जा सकता है—

(१) विश्वविद्यालयों के कार्यों का विस्तार कर दिया गया और उनको प्रोफेसर लेक्चरर नियुक्त करने तथा रिसर्च के लिये सुविधायें प्रस्तुत करने का अधिकार हुआ ।

(२) इसके द्वारा सीनेट को उपयुक्त आकार बनाने का सुझाव देकर ित किया गया । इससे यह निश्चय हो गया कि फैलों की संख्या न पचास से होगी और न १०० से अधिक होगी तथा उनका कार्यकाल ५ वर्ष निश्चित ा गया ।

(३) इसके अनुसार बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ते के विश्वविद्यालयों में २० अन्य में १५ फैलो का निर्वाचन होगा ।

(४) सिंडीकेट को कानूनी स्थिति प्रदान की गई और यह भी निश्चिय किया कि विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का सिंडीकेट में प्रतिनिधित्व होगा ।

(५) इस एक्ट द्वारा यह निश्चिय किया गया कि विश्वविद्यालयों से कालिजों सम्बन्ध स्थापित करने के नियम कड़े कर दिये गए और नियमित रूप से सम्बन्धित लिजों के स्तर को उन्नत करने से लिये सिंडीकेट द्वारा उनके निरीक्षण की व्यवस्था ी ।

(६) इस एक्ट द्वारा यह नियम बना दिया गया कि सीनेट के बनाये हुये नियमों की स्वीकृति के अतिरिक्त सरकार यदि आवश्यक समझे तो वह उनमें कमी तथा बढ़ोत्तरी कर सकती है और यदि एक निश्चित समय तक सीनेट नियम बनाने में असफल रहती है तो सरकार को नियम बनाने का भी अधिकार होगा।

(७) वाइसराय की परिषद् को यह अधिकार भी प्रदान किया गया कि वह भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों की प्रादेशिक क्षेत्र-सीमा को भी निर्धारित कर दे।

गोखले का बिल—१९ मार्च सन् १९१० ई० को स्वर्गीय गोखले ने धारा-सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव प्राथमिक शिक्षा के निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने के लिये रखा—

"इस परिषद् की राय में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिये और निश्चित प्रस्ताव बनाने के लिये सरकारी तथा गैर-सरकारी अधिकारियों का एक संयुक्त कमीशन शीघ्र नियुक्त किया जाना चाहिये।"

अन्त में सरकार के आश्वासन देने पर प्रस्ताव वापिस ले लिया गया किन्तु सरकार ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। १९१० ई० में शिक्षा-विभाग की स्थापना हुई, किन्तु शिक्षा को प्रान्तीय सरकारों के आधीन ही रहने दिया गया। नये शिक्षा-विभाग में स्वास्थ्य तथा भूमि को भी स्थान दिया गया।

स्वर्गीय गोखले ने बाध्य होकर १७ मार्च १९११ ई० को अपना ऐतिहासिक बिल धारा-सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया, किन्तु १९ मार्च को यह बिल असफल हो गया यद्यपि गोखले ने अपने धारा-प्रवाह व्याख्यानों द्वारा अनेक अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये किन्तु उनको असफलता मिली।

१९१३ ई० का सरकार का प्रस्ताव—यद्यपि गोखले का प्रस्ताव धारा सभा द्वारा स्वीकृत न हो पाया किन्तु सरकार का ध्यान परिवर्तन की ओर अवश्य आकर्षित हुआ और उसने अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति को स्पष्ट करना आवश्यक समझा। इसी उद्देश्य से २१ फरवरी १९१३ ई० को सरकार का शिक्षा-संबन्धी प्रस्ताव पास हुआ। इसकी मुख्य धारायें इस प्रकार थीं—

(१) लोअर प्राइमरी स्कूलों का विस्तार किया जाय जहां लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त ड्राइंग, गांव का नक्शा, प्रकृति निरीक्षण तथा शारीरिक व्यायाम की शिक्षा प्रदान की जाय।

(२) उचित स्थानों पर अपर प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की जाय और आवश्यकता पड़ने पर लोअर प्राइमरी स्कूलों को अपर प्राइमरी स्कूलों में परिवर्तित कर दिया जाय।

(३) सहायता प्राप्त व्यक्तिगत स्कूलों के स्थान पर बोर्ड के स्कूल स्थापना किये जायें तथा मकतब एवं पाठशालाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान

की जाय । व्यक्तिगत स्कूलों का प्रबन्ध तथा निरीक्षण अधिक अच्छा करने की व्यवस्था हो ।

(४) शिक्षक मिडिल पास हों तथा एक वर्ष की ट्रेनिंग पास किये हुये हों ।

(५) दीक्षित अध्यापकों का वेतन कम से कम १२ रुपये प्रति मास हो । उनकी पेंशन, छुट्टियों तथा प्रोवोडेन्ट फण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

(६) कक्षा में ५० विद्यार्थियों से अधिक नहीं होने चाहियें । साधारणतः विद्यार्थियों की संख्या ३० और ४० के बीच में होनी चाहिये ।

(७) स्त्री शिक्षा पर भी प्रस्ताव में विशेष बल प्रदान किया गया ।

(८) विश्वविद्यालय शिक्षा में और अधिक विस्तार किया जाना चाहिये । उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में औद्योगिक महत्व के विषयों का समावेश और इच्छुक विद्यार्थियों के लिये अनुसंधान की अधिक सुविधायें प्रदान करने की सिफारिश की गई । विद्यार्थियों के चरित्र तथा छात्रावास जीवन पर प्रस्ताव के सुझाव रखे गये ।

इन सुझावों का माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय के क्षेत्र में विशेष महत्व है । १९२१ ई० तक जो सर्वांगीण उन्नति शिक्षा-विकास में की गई उसका समस्त श्रेय इन्हीं सुझावों को प्राप्त है ।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय कमीशन—१९१७ ई० में भारत सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा के विषय में जांच करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की । इसके अध्यक्ष डाक्टर माइकेल सैडलर थे । इसके अतिरिक्त अन्य सदस्य डाक्टर ग्रेगरी, प्रोफेसर रैम्जे म्योर, सर हार्टग, श्री हार्नल, डाक्टर जियाउद्दीन अहमद तथा सर आशुतोष मुकर्जी थे। इस कमीशन ने १६ मास के अकथनीय परिश्रम के उपरान्त अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट में निम्न प्रमुख प्रस्ताव रखे गये—

(१) इन्टरमीडियेट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से अलग कर दिया जाये और बी० ए० II की उपाधि पास करने के लिये ३ वर्ष के लिये पाठ्यक्रम निश्चित हो ।

(२) प्रत्येक प्रांत में हाईस्कूल तथा इन्टरमीडियेट बोर्ड की स्थापना की जाये जिसमें सरकार, विश्वविद्यालय, हाई स्कूल तथा इन्टरमीडियेट कालिजों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों ।

(३) इनके अतिरिक्त कमीशन ने विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जाए ।

(४) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक वैतनिक वाइस-चांसलरी की नियुक्ति हो ।

(५) विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सम्बन्धों में अधिक साम्य तथा सहयोग करने के लिए एक अन्तर्विश्वद्यालय बोर्ड की स्थापना की जाये ।

इस कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ तथा हैदराबाद में स्थानीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई तथ

उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा का पुर्नसंगठन हुआ। इसका प्रभाव कलकत्ता विश्वविद्यालय पर कुछ भी नहीं पड़ा।

हरटोग-समिति—१९१९ भारत-सरकार अधिनियम द्वारा शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रांतीय मंत्रियों के हाथ में आ गया। भारत-सरकार ने एक समिति सन् १९२८ ई० में नियुक्ति की जिसके सभापति हरटोग थे। १९३५ के अधिनियम के अनुसार शिक्षा प्रांतीय विषय घोषित कर दिया गया। इसके उपरांत शिक्षा का प्रसार दिन प्रतिदिन होने लगा।

वर्धा-योजना—आधुनिक शिक्षा के दोषों को देखते हुये महात्मा गांधी का ध्यान इनको दूर करने की ओर आकृषित हुआ। यह सत्य है, कि शिक्षा में पर्याप्त दोष विद्यमान हांते हुए भी पाश्चात्य शिक्षा ने आधुनिक भारत के निर्माण में बहुत बड़ा महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। महात्मा गांधी ने 'हरिजन' में २ अक्टूबर १९३७ ई० को एक लेख लिखा जिसमें २२, २३ अक्टूबर को अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन, वर्धा का उल्लेख किया। इस सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से शिक्षा-शास्त्रियों तथा प्रान्तीय शिक्षा-मन्त्रियों ने भाग लिया। महात्मा गांधी ने सम्मेलन का सभापतित्व पद धारण किया और स्कीम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किए। इस योजना की मुख्य विशेषता यह थी, कि शिक्षा का माध्यम बेसिक क्राफ्ट हो तथा बालक की मातृभाषा हो। महात्मा गांधी की मृत्यु के उपरांत इसकी विशेष प्रगति नहीं हो पाई।

सार्जेंट-योजना—भारत-सरकार के आदेश पर सर जान सार्जेण्ट ने जो भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सलाहकार थे शिक्षा के सम्बन्ध में एक योजना का निर्माण किया जो सार्जेण्ट योजना के नाम से विख्यात है। इस रिपोर्ट में नर्सरी शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का बहुत ही विशद-विवरण उसका संगठन, दोष, सुधारने के उपाय तथा भविष्य के लिए सुझाव आदि हैं। इस योजना में यह प्रस्तावित किया गया था, कि ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाये। यह योजना सीनियर और जूनियर दो भागों में विभक्त थी। इंटरमीडियेट समाप्त कर दी जायें और बी० ए० का कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाये, यद्यपि स्कीम में शिक्षा के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया गया था, किन्तु यह समस्त देश में लागू नहीं हो पाई।

राधाकृष्णन् योजना—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत शिक्षा व्यवस्था को उन्नत करने के उद्देश्य से नवम्बर १९४८ ई० में डा० शाधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की गई जिसके प्रमुख सदस्य डा० ताराचन्द, सर जेम्स डफ, डा० मुदालियर, डा० मेघनाथशाह थे। २५ अगस्त १९४९ को इन्होंने अपनी रिपोर्ट पेश की। इसकी प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थीं—

(१) इंटरमीडियेट कक्षाओं का अन्त कर हायर सेकेण्डरी तथा डिग्री कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाए।

(२) छात्रवृत्ति तथा अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए।

(३) विद्यार्थियों के लिये हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए।

(४) विशिष्ट विद्यार्थियों को ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(५) ग्राम विश्वविद्यालयों की स्थापना की व्यवस्था की जानी चाहिए।

साहित्य

१८५७ की क्रांति के उपरांत साहित्य के क्षेत्र में भी बड़ी प्रगति हुई, क्योंकि भारतीयों का ध्यान पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा तथा संस्कृति के सम्पर्क में आने के कारण साहित्य की प्रगति की ओर आकर्षित हुआ।

संस्कृत साहित्य—इस काल में संस्कृत-साहित्य ने बड़ी प्रगति की। यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया और विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में उसका अनुवाद किया। संसार को इस साहित्य का ज्ञान हुआ और उसकी दृष्टि में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का गौरव आया। भारतीयों को भी अपनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस कार्य में एशियाटिक सोसाइटी ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

हिन्दी साहित्य—हिन्दी साहित्य का इतिहास बड़ा प्राचीन है। मुसलमानों के काल में हिन्दी का विशेष उत्थान नहीं हो पाया, क्योंकि फारसी का उस समय अधिक बोलबाला था। आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों से होता है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में **मुन्शी सदा सुखलाल और इंशा अल्ला खां** दो प्रमुख लेखक थे। सदा सुखलाल ने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग कर सुखसागर की रचना गद्य में की और इंशा अल्लहा खां ने उदयभान चरित्र या रानी केतकी की कहानी लिखी है। हिन्दों गद्य का वास्तविक विकास का श्रेय **श्री लल्लू लाल तथा सदल मिश्र को** प्राप्त है। लल्लू लाल जी के ग्रन्थों में "प्रेमसागर", 'सिंहासन बत्तीसी' विशेष प्रसिद्ध हैं। सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान" की रचना की। इस क्षेत्र में **श्री रामपुर के धर्म प्रचारकों** तथा डाक्टर जान गिलक्राइस्ट ने भी विशेष कार्य किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा। हिन्दी साहित्य के विकास में **भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र** का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था जिन्होंने हिन्दी भाषा को सरल, सुन्दर तथा लोकप्रिय बनाने का अकथनीय प्रयत्न किया। उन्होंने 'कविवचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नामक दो समाचार पत्रों की स्थापना की तथा उनका सम्पादन किया। उन्होंने कई नाटकों की रचना की जिनमें चन्द्रावली विषस्य विषमौषधम्, 'भारत दुर्दशा' 'अन्धेर नगरी' विशेष प्रसिद्ध हैं। आपने कई संस्कृत भाषा के नाटकों का अनुवाद किया जिनमें 'विद्यासुन्दर', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्राराक्षस महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'काश्मीर कुसम' तथा 'वादशाह दर्पण' की रचना भी की। इस प्रकार आपके प्रयत्नों के द्वारा हिन्दी साहित्य की विशेष प्रगति हुई और आपसे नवयुवक लेखकों को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

इनके बाद हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य के बहुत से लेखक हुये हैं जिन्होंने साहित्य की बड़ी सेवा की। इनमें **प्रताप नारायण मिश्र, उपाध्याय बद्रीनाथ चौधरी,** ठाकुर जगमोहन, पं० बाल कृष्ण भट्ट, गजाधरसिंह प्रभाकर भट्ट, **चन्द्रशेखर वाजपेयी, राजा शिवप्रसाद, लाला श्री निवास दास** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य की प्रगति में **नागरी प्रचारिणी सभा** और **हिन्दी साहित्य सम्मेलन** ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। बाद के लेखकों में **महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, प्रेम चन्द्र, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा आदि महान** विभूतियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है।

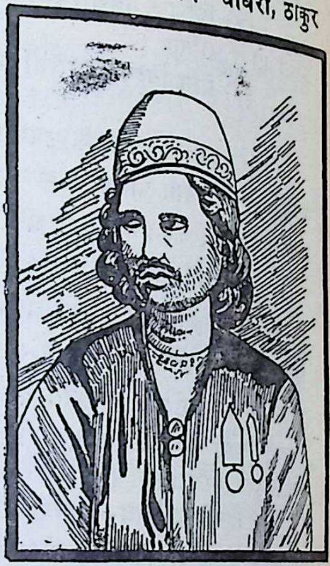

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

उर्दू साहित्य—यद्यपि उर्दू साहित्य का विकास तथा प्रगति मुसलमानों के शासन-काल में आरम्भ हो गई थी, किन्तु उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में इस क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इस साहित्य के क्षेत्र में **गालिब और सर सैय्यद अहमद खां** का विशेष हाथ था। गालिब उच्च कोटि का विद्वान तथा कवि था। यह दिल्ली का रहने वाला था। गालिब में विचार, भाव प्रकाशन, उपमा, रूपक, अलकार कल्पना, शब्द चयन और बनावट की मौलिकता थी। उसने उर्दू के साहित्यिक स्तर को बहुत उन्नत किया। सर सैय्यद की भाषा सरल तथा प्रभावोत्पादक थी। उनकी शैली का बाद के लेखकों ने अनुकरण किया। गालिब के अतिरिक्त उर्दू के कवियों में **जोक, मौलवी अलताफ हुसैन अली** तथा **मौलाना शिबली** का स्थान भी उच्च था। **सर मुहम्मद इकबाल** की गणना भी उच्च कवियों में की जाती है। लखनऊ के प्रहिद्ध लेखक **पंडित रतननाथ शरशार** और **मौलवी अब्दुल हलीम थे**। ये दोनों उपन्यासकार थे। मुस्लिम विश्वविद्यालय और इस्लामिया विश्वविद्यालय की स्थापना से उर्दू-साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उर्दू साहित्य की प्रगति में प्रेमचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र का विशेष हाथ था।

बंगला साहित्य—बंगला साहित्य भी बड़ा प्राचीन है, किन्तु इसका आधुनिक काल सन् १८०० ई० से आरम्भ होता है जब कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई जहां बंगला भाषा तया साहित्य का विधिवत् अध्ययन आरम्भ हुआ। यहां से एक साहित्य का आरम्भ होता है। **राजा राम मोहन** राय ने भी

इसकी प्रगति में बड़ा सहयोग प्रदान किया। छापेखाने के खुल जाने के कारण इसका विस्तार और भी अधिक तेजी के साथ होना आरम्भ हुआ। **ईश्वर चन्द्र विद्या सागर, अक्षय कुमार दत्त, महर्षि देवेन्द्र ठाकुर, केशव चन्द्र सेन, मदुसूदन** ने बंगला साहित्य के निर्माण में बड़ा सहयोग दिया। माइकेल मदुसूदन दत्त ने अंग्रेजी कवि मिल्टन के आधार पर सोनेट की रचना बगला में की। आधुनिक युग में रवीन्द्र नाथ ठाकुर, हेमचन्द्र बनर्जी आदि विशेष उल्लेखनीय हुये हैं। जितनी सेवा बगला साहित्य में **रवीन्द्रनाथ टाकुर** ने की है उतनी किसी अन्य व्यक्ति की नहीं है। उन्होंने कवितायें, उपन्यास, नाटक, कहानियां, समालोचनायें और निबन्ध द्वारा इस साहिन्य की बड़ी प्रगति की। सन् १९१२ ई० में उनको गीतांजली पर नोबिल पुरस्कार प्रदान किया गया। **शरत चन्द्र तथा बंकिम चन्द्र का भी** बंगला साहित्य के क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। उपन्यासों का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हो चुका है। यह साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं और साहित्य से बहुत उन्नत और सम्पन्न है।

मराठी साहित्य—मरहठा प्रदेश पर अग्रेजों का अधिकार स्थापित होने के साथ-साथ मराठी साहित्य की प्रगति का युग आरम्भ हो जाता है। बहुत सी अंग्रेजी पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद किया गया। मौलिक पुस्तकों की भी रचना आरम्भ हुई। इसके लेखकों में **विष्णु शास्त्री, अरणे साहेब, किर्लोस्कर, काशीनाथ, त्रेयम्वर तेलंग, वासुदेव शास्त्री, दरिद्रनारायण आप्टे, बाल गंगाधर तिलक प्रोफेसर वी० एम० जोशी** विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके प्रयत्नों के द्वारा मराठी साहित्य की विशेष प्रगति हुई।

गुजराती साहित्य—इस काल में गुजराती साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। दलपत राय और नर्मदा शंकर आधुनिक गुजराती साहित्य के प्रवर्त्तक के रूप माने जाते हैं। बहराम जी गुजराती भाषा के अच्छे लेखक थे। इस साहित्य की प्रगति तथा विकास में **नन्द शंकर, तुलाशकर, के० एम० मुन्शी** ने विशेष प्रयत्न किया।

अन्य भाषायें—दक्षिणी-भारत में तामिल, तलगू आदि भाषाओं का भी पर्याप्त विकास हुआ। तामिल साहित्य पर्याप्त प्राचीन है, किन्तु उसको आधुनिक रूप अंग्रेजी सम्पर्क से आरम्भ होता है। तामिल भाषा में प्रसिद्ध कवियों में ज्योति मुनि, शिवप्रसाद स्वामी विशेष महत्वपूर्ण हैं तथा तामिल ग्रन्थ साहित्य के निर्माताओं में विम मुनि तथा शुरुभूग नालवट विशेष प्रसिद्ध हैं। इस काल में उड़ीसा, मैथिली, आसामी साहित्य की भी विशेष प्रगति हुई।

कला

मुगल काल के पतन के उपरांत भारतीय कला का पतन होना आरम्भ हो गया, देश क्योंकि में अव्यवस्था की स्थापना हो गई। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली, मरहठे तथा अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होने से देशी नरेशों की आर्थिक

व्यवस्था शोचनीय हो गई और उनका ध्यान कला के प्रोत्साहन तथा उसके विकास की ओर आकर्षित नहीं हो पाया। इसका कारण यह था, कि देशी राज्य ही कलाकारों को संरक्षण प्रदान करते थे। जब उनकी अवस्था गिरने लगी तो कलाकारों की सृजनात्मक प्रतिभा तथा कलात्मक योग्यता का स्वतः अन्त हो गया। इसके अतिरिक्त जिन देशी राजाओं ने इस ओर कुछ प्रयत्न भी किया, वे उसको उच्च कोटि तक पहुँचने में सफल नहीं हो सके।

वास्तु कला—इस अव्यवस्थित दशा का प्रभाव वास्तु-कला पर विशेष रूप से पड़ा। इसका दिन प्रतिदिन पतन होने लगा। देशी कलाकारों ने पाश्चात्य शैलियों की नकल करना आरम्भ किया। लखनऊ में वाजिदअली शाह द्वारा निर्मित 'कैसर बाग' और नासिरउद्दीन हैदर द्वारा बनाये हुये 'छतर मंजिल' इनके उदाहरण हैं। सरकार द्वारा भी कुछ भव्य भवनों का निर्माण किया गया, किन्तु वे सब शैलीहीन थे। अंग्रेजों ने अपनी अलग वास्तु-कला के आधार पर भव्य भवनों का निर्माण किया। उसका उदाहरण कलकत्ते का 'विक्टोरिया मेमोरियल' है। २० वीं शताब्दी में एक नई शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसको प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य शैलियों का सम्मिश्रण कहा जा सकता है। इस कार्य में श्री हैवल का सहयोग बड़ा सराहनीय है, जो कलकत्ता कला-विद्यालय के प्रिंसिपल थे।

चित्रकला—चित्रकला को प्रोत्साहन देन में भी कलकत्ता कला-विद्यालय के प्रिंसिपल **श्री हैवल** को श्रेय प्राप्त है। बंगाल में श्री **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** के प्रयत्नों से भारत में चित्रकला के क्षेत्र में एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो भारतीय तथा पश्चिमी शैली का सुन्दर सम्मिश्रण कहा जा सकता है। इस क्षेत्र में नन्द लाल **बसु, असित कुमार हालदार, यामिनीराय, देवी प्रसाद राय, चौधरी रहमान** चुगताई विशेष महत्वपूर्ण हैं। इसमें तेल तथा जल चित्रों का भी विकास होना आरम्भ हुआ। लन्दन के म्यूजियम में प्राचीन चित्रकला के कुछ उत्कृष्ट नमूनो के सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया। मूर्तिकला की उन्नति के लिये भी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने घोर प्रयत्न किया।

संगीत कला—भारतीय संगीत कला का पुनरुर्द्धार करने की ओर भी प्रयास किया गया। सर्वप्रथम अंग्रेजों में **सर विनियम जान्स** का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १८१३ ई० के पटना निवासी **मुहम्मद रिजा** ने 'नगमगाते आसफी' की रचना की। जयपुर के राजा प्रतापसिह ने 'संगीत सार' की रचना करवाई। कृष्णानन्द **व्यास** ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' नामक हिन्दी गीतों का एक संग्रह प्रकाशित करवाया। आधुनिक संगीत को पुर्नजीवन प्रदान करने का श्रेय **श्री विष्णु दिगम्बर** तथा भात**खण्डे** को प्राप्त है। **ओंकारनाथ पटवर्धन रतनजाकर, उस्ताद** फैयाज खाँ आदि महापुरुषों के प्रयत्नों से संगीत कला की विशेष उन्नति हुई।

नृत्य कला—नृत्य कला को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिये शान्ति **निकेतन, केरल कला मन्दिर** आदि कुछ संस्थाओं ने बड़ा सहयोग प्रदान किया। उदय

शंकर, **रामगोपाल, रुक्मिणी देवी** तथा **मेनकामणि** ने नृत्य-कला को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। नाटक-कला का विकास करने के प्रयत्न में **पृथ्वीराज कपूर** संलग्न हैं।

विज्ञान

विज्ञान की ओर भारत विशेष प्रगति अभी तक नहीं कर पाया है। इस का प्रधान कारण यह है, कि अंग्रेजों ने इस ओर विशेष प्रयत्न किया तथा पर्याप्त समय तक भारतीय भी उदासीन रहे। पाश्चात्य देशों से सम्पर्क बढ़ने के कारण इस ओर ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ। **महेन्द्रपाल सरकार** ने सन् १८८३ ई० में कलकत्ते में 'वैज्ञानिक अध्ययन का भारतीय परिषद' का निर्माण किया। १८६७ ई० में **सर जगदीश चन्द्र बसु** ने भौतिक-विज्ञान सम्बन्धी कुछ अन्वेषण किया जिसके आधार पर उनकी विश्व में प्रतिष्ठा स्थापित हो गई। आपने १६०२ ई० में सिद्ध किया कि पेड़-पौधों में जीवन है जिसको पाश्चात्य जगत ने स्वीकार कर आप को सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त रमन, **श्री मेघनाथशाह, श्री बीरबल साहनी** तथा **श्री सत्येन्द्र बोस** ने विज्ञान के अपने-अपने क्षेत्रों में विशेष प्रगति की। सन् १६२१ ई० में **इण्डियन इन्सटीट्यूट आफ साइन्स** की स्थापना बंगलौर में की गई जिसने विज्ञान की प्रगति में बड़ा सहयोग प्रदान किया। सन् १६४८ ई० में **वैज्ञानिक अनुसंधान** के लिये एक अलग विभाग की स्थापना की गई। सरकार की ओर से अणुशक्ति को खोज के लिये एक समिति का निर्माण किया गया। भारत के वैज्ञानिक खोजों में निरन्तर प्रयत्नशील है और आशा है, कि उनको शीघ्र ही अपने प्रयत्नों में आशातीत सफलता प्राप्त होगी और भारत किसी विदेशी राज्य से पीछे न रहेगा।

प्रश्न

Agra University—

(१) ब्रिटिश शासन ने भारत की जनता के सांस्कृतिक जीवन में क्या परिवर्तन कर दिया ?

Allahabad University—

(१) सन् १८५७ से उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत सरकार की शिक्षा नीति की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

(२) इस सदी के प्रथम चतुर्थांश में जिस प्रकार शिक्षा-प्रणाली बनी उसका परीक्षण कीजिये।

Saugar University—

(१) सन् १८५४ से १६०४ ई० तक भारत में शिक्षा के विकास का वर्णन कीजिये।

———

११

भारत का नया संविधान

नवीन संविधान का निर्माण—मन्त्रि-मण्डल योजना के अनुसार भारत के लिये एक नया संविधान निर्माण करने के लिये संविधान-सभा निर्मित की गई जिसने ९ दिसम्बर १९४६ ई० से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। २६ नवम्बर १९४९ ई० को संविधान-सभा द्वारा बनाया हुआ संविधान डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के हस्ताक्षर करने पर स्वीकार हुआ। २६ जनवरी १९५० ई० से यह संविधान कार्य-रूप में लाया गया। इसके अनुसार भारत सम्पूर्ण **प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य** घोषित किया गया।

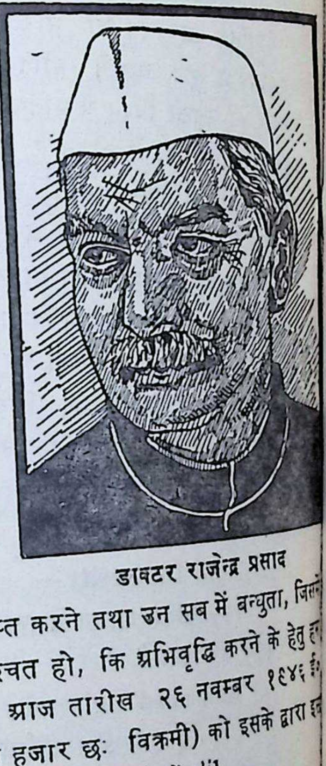

डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

संविधान की प्रस्तावना—संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है—"हम भारतीय जनता, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक, गणराज्य निर्माण करने तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वन्त्रता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म तथा उपासना के सम्बन्ध में समता, स्थिति तथा सुयोग को प्राप्त करने तथा उन सब में बन्धुता, जिस व्यक्ति का गौरव तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित हो, कि अभिवृद्धि करने के हेतु ह सकल्प होकर अपनी इस संविधान-सभा में आज तारीख २६ नवम्बर १९४६ ई (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी सम्वत् दो हजार छः विक्रमी) को इसके द्वारा इ संविधान को अंगीकृत, औद्योनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"[1]

भारत-संघ

संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार भारत राज्यों का एक संघ है। इस

---

[1] "We the people of India having solemnly resolved to liberty constitu India into a Sovereign Democratic Republic and to seucre to all its citize justice, social, economic and political, liberty of thought, expression, belie faith and worship Equality of status and of opportur.ity, and to promote amo them all Fraternity assuming the dignity of the individual and unity of th nation in our Constitutional Assembly this twenty-sixth day of November, 19 do hereby adopt enact and give to ourselves this constitution."

सम्मिलित राज्यों का संविधान की प्रथम अनुसूची क, ख, ग और घ में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया था। इन राज्यों को भारत संघ से निकालने या अपना सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार नहीं था।

'क' वर्ग के राज्य—'क' वर्ग के अन्तर्गत वे राज्य सम्मिलित थे, जो अंग्रेजी शासनकाल के प्रान्तों के नाम से विख्यात थे। और गवर्नर के अधीन थे। संविधान के निर्माण के समय इसकी संख्या ९ कर दी गई, किन्तु बाद में इनकी संख्या आन्ध्र राज्य के मद्रास से अलग होने पर १० हो गई। इन राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) आसाम (असम), (२) बिहार, (३) बम्बई, (४) मध्य प्रदेश, (५) मद्रास, (६) उड़ीसा, (७) पूर्वी पंजाब, (८) उत्तर प्रदेश, (९) पश्चिमी बंगाल और (१०) आंध्र राज्य।

'ख' वर्ग के राज्य—इस वर्ग के अन्तर्गत अंग्रेजी शासन-काल के देशी राज्य थे। प्राचीन तीन बड़े देशी राज्य पूर्ववत रहे और अन्य देशी राज्यों को सम्मिलित कर कुछ संघों का निर्माण किया गया। इन राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) हैदराबाद, (२) मैसूर, (३) मध्य प्रदेश, (४) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब संघ राज्य, (५) राजस्थान, (६) सौराष्ट्र, (७) तिरुवांकुर-कोचीन (८) जम्मू और काश्मीर और (९) विंध्य प्रदेश।[1]

'ग' वर्ग के राज्य—इस वर्ग के अन्तर्गत तीन ऐसे प्रदेश थे जो अंग्रेजी-काल में मुख्य आयुक्त के प्रान्त के याम से विख्यात थे। शेष देशी राज्य थे इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) अजमेर, (२) कुर्ग, (३) दिल्ली, (४) भोपाल, (५) विलासपुर, (६) कच्छ, (७) मणिपुर, (८) त्रिपुरा, (९) हिमाचल प्रदेश।

'घ' वर्ग के राज्य—इस वर्ग के अन्तर्गत अण्डमान और निकोबार द्वीप थे।

राज्य पुनर्संगठन-आयोग—भाषावार राज्यों के निर्माण की मांग बराबर तीव्र वेग पकड़ती जा रही थी। १ अक्टूबर ३९५३ को आन्ध्र राज्य का जन्म इसी आधार पर हुआ। विवश होकर भारत सरकार को अक्टूबर के महीने में श्री फजल अली की अध्यक्षता में **राज्य-पुनर्संगठन-आयोग** का निर्माण करना पड़ा जिनके सदस्य श्री के० ए० पणिक्कर तथा पण्डित हृदय नाथ कुंजरू थे। इस आयोग ने १६ राज्यों तथा ३ केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रों की स्थापना की सिफारिश की जो इस प्रकार है—

राज्यों के नाम—मद्रास, केरल, कर्नाटक, हैदराबाद, आन्ध्र, बम्बई, विदर्भ. मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम (असम) उड़ीसा तथा जम्मू और काश्मीर।

केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र—दिल्ली, मणिपुर तथा अण्डमान और निकोबार।

---

[1] विन्ध्य प्रदेश बाद में 'ग' वर्ग के राज्यों में सम्मिलित कर दिया गया।

राज्य पुनर्संगठन अधिनियम—राज्यों के पुनर्संगठन-आयोग की सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार ने कुछ संशोधन के साथ भारतीय संसद में राज्य पुनर्संगठन विधेयक प्रस्तावित किया जो १ नवम्बर १९५६ को लागू हुआ। इस समय भारत संघ में निम्न राज्यों तथा केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र हैं—

संविधान की विशेषतायें

(१) दोहरी नागरिकता का अभाव।

(२) न्यायालयों के संगठन में एकता।

(३) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था।

(४) राज्यों का सघ से संबन्ध-विच्छेद करने का अभाव।

(५) समस्त विषयों का तीन सूचियों में विभाजन।

(६) आवश्यकता पड़ने पर एकात्मक बनाने की व्यवस्था।

(७) परिवर्तन प्रणाली में सरलता।

(८) संसदीय सरकार।

(९) वयस्क मताधिकार।

(१०, निर्वाचन में संयुक्त प्रणाली।

(११) लौकिक राज्य।

(११) पिछड़ी हुई तथा अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा।

(१३) अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अन्त।

(१४) स्त्रियों का समानाधिकार।

राज्यों के नाम—१. आन्ध्र, २. असम, ३. बंगाल, ४. बिहार, ५. उड़ीसा, ६. उत्तर-प्रदेश, ७. मध्य प्रदेश, ८. मद्रास, ९. मैसूर, १०. केरल, ११. गुजरात, १२. पंजाब, १३. राजस्थान १४. जम्मू काश्मीर, १५. महाराष्ट्र।

केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र–१. दिल्ली, २. त्रिपुरा, ३. मणिपुर, ४. हिमाचल प्रदेश, ५. निकौबार और अडमन ६. लक्षद्वीप निमिकोव, और अमीदीव द्वीप, ७. दादरा और नागर हवेली, ८. गोवा, डामन, ड्यु।

983

संविधान की विशेषतायें

संविधान की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) दोहरी नागरिकता का अभाव–सिद्धांत की दृष्टि से संघ में एक नागरिक को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, एक संघ की और दूसरी उस राज्य की जिसमें नागरिक निवास करता है: भारत के संविधान में नागरिक को एक ही नागरिकता (भारतीय नागरिकता) प्रदान की है। इस प्रकार वह भारत का नागरिक होगा और भारत के प्रति ही उसकी राजभक्ति होगी।

(२) न्यायालयों के संगठन में एकता—संघ-शासन को दृढ़ बनाने के

न्यायालयों के संगठन में एकता रखी गई है भारत के सम्पूर्ण न्यायालय के अधीन और सम्पूर्ण देश में दीवानी और फौजदारी कानून समान होंगे ।

(३) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था—सघ तथा विभिन्न राज्यों के ये अखिल भारतीय सेवाओं की भी व्यवस्था की गई ।

(४) राज्यों का संघ से सम्बंध विच्छेद करने का अभाव—किसी भी राज्य संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार प्राप्त नहीं है ।

(५) समस्त विषयों का तीन सूचियों में विभाजन—विभिन्न राज्यों के धिकार निश्चित करने के उद्देश्य से तीन सूचियां बनाई गई हैं । प्रथम संघ सूची अन्तर्गत वे विषय हैं जिन पर अधिनियम बनाने का अधिकार भारतीय संसद प्राप्त है, द्वितीय राज्य सूची में उन विषयों का उल्लेख हैं जिन पर अधिनियम नाने का अधिकार राज्यों के विधान-मन्डलों को प्राप्त है, तृतीय-समवर्ती सूची दोनों के अधिकार समान हैं । साधारणत: इन अधिकारों का प्रयोग राज्य के विधान-मण्डल करेंगे, किन्तु आवश्यकता के समय संघीय सरकार उन पर अधिनियम बना सकती है । जिन विषयों का उल्लेख इन तीनों सूचियों के अन्तर्गत नहीं है, वे संघ शासन के अधीन होंगे ।

(६) आवश्यकता पड़ने पर एकात्मक बनने की सरलता—प्राय: सभी संघीय विधान अपरिवर्तनशील होते है और वे किसी भी दशा में एकात्मक नहीं बनाये जा सकते हैं, किन्तु हमारे संविधान की यह विशेषता है, कि इसमें परिवर्तन सरलता से किया जा सकता है और आवश्यकता के समय उसको एकात्मक बनाया जा सकता है। साधारणत: तो हमारा संविधान संघात्मक ही रहेगा, परन्तु युद्ध या किसी अन्य राष्ट्रीय संकट के समय सारे देश में एकात्मक व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है ।

(७) परिवर्तन प्रणाली में सरलता—संविधान में परिवर्तन करने का अधिकार भारतीय संसद को प्राप्त है न कि राज्यों के विधान-मडल को । हमारा संविधान न इतना कठोर है जितना अमेरिका का और न इतना परिवर्तनशील है जितना ग्रेट-ब्रिटेन का । संविधान में बीच का मार्ग अपनाया गया है । सविधान संशोधन का प्रस्ताव विधेयक के रूप में संसद के रूप में किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकता है यदि वह विधेयक प्रत्येक सदन में सदस्यों की संख्या के बहुमत से और उपस्थित तथा मत देने वालों की संख्या के मत से स्वीकार कर लिया जाता है तो संविधान में संशोधन किया जा सकता है; किन्तु कुछ विषयों पर जैसे शक्ति-वितरण के सिद्धांत, राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों के लिये नहीं भेजा जा सकता है, जब तक कि आधे राज्य के विधान-मण्डल उससे सहमत न हों ।

(८) संसदीय सरकार—प्राय: संघीय सरकार में कार्यकारिणी विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं होती । कार्यकारिणी का प्रधान भारत का राष्ट्रपति है, किन्तु वह केवल वैधानिक प्रधान है । वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रि परिषद है जो भारतीय संसद के समक्ष अपने समस्त कार्यों के लिये उत्तरदायी है । वह उसी समय तक शासन-भार का संचालन कर सकती है जब तक कि भारतीय संसद का उस पर विश्वास हो अन्यथा वह कार्य नहीं कर सकती ।

(९) व्यस्क मताधिकार—संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यस्क भारतीय को नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है। अब नागरिकता के अधिकार के लिये कोई शर्त नहीं है।

(१०) निर्वाचन में संयुक्त प्रणाली—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था थी, किन्तु अब संयुक्त प्रणाली को अपनाया गया है। दलित वर्ग के लिये कुछ स्थान अवश्य सुरक्षित कर दिये गये हैं, किन्तु उनकी अवधि केवल दस वर्ष है।

(११) लौकिक राज्य—संविधान ने भारत को लौकिक राज्य की संज्ञा प्रदान की है। भारत राज्य धर्म के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। उसके सामने सब धर्म एक समान हैं और संविधान ने देश के निवासियों को उस दिशा में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है। प्रत्येक भारतीय को, चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी है, भारतीय नागरिकता प्राप्त है।

(१२) पिछड़ी हुई तथा अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा—नवीन संविधान द्वारा पिछड़ी हुई तथा अनसूचित जातियों की भी उन्नति करने की ओर ध्यान दिया गया है। उनके लिये भारतीय संसद में कुछ स्थान सुरक्षित रखे गये हैं तथा उनकी शिक्षा आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। ये समस्त सुविधायें उनकी दस वर्ष तक प्राप्त होंगी।

(१३) अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अन्त—नवीन संविधान द्वारा अस्पृश्यता तथा उपाधियों का अन्त कर भारतीय समाज में उन दो दोषों का अन्त कर दिया गया है जिनके द्वारा हमारे समाज में ऊंच-नीच की भावना विद्यमान थी और इसको प्रोत्साहन मिलता था। इनके द्वारा समाज में समता की स्थापना की गई है।

(१४) स्त्रियों को समानाधिकार—नबीन संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के समान समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान किये हैं। अब तक असमानता के कारण भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी हीन थी। इसके द्वारा नवीन संविधान ने भारतीय समाज की बड़ी सेवा की।

नागरिक के मौलिक अधिकार

इससे पूर्व भारत के नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। सन् १९३५ एवं १९१९ के भारत-सरकार अधिनियमों में इनका समावेश नहीं था। नवीन संविधान में इनको स्थान देकर भारत में वास्तविक प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना हुई। इससे नागरिकों में आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है और उनको प्रोत्साहन भी प्राप्त होता है। संविधान ने नागरिक के मौलिक अधिकारों को निम्न भागों में विभक्त किया-

(१) समता का अधिकार—हमारे संविधान ने नागरिकों को समान माना है। प्रत्येक नागरिक को विधि के सामने समता तथा कानून के संरक्षण का समान अधिकार प्राप्त है। राज्य की ओर से धर्म, रक्त, जाति, लिंग आदि किसी बात के कारण किसी नागरिक के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायगा। राज्य के पदों को प्राप्त करने में सबको समानता रहेगी। संविधान ने दलित वर्ग

को कुछ सुविधायें अवश्य प्रदान की इनकी अवधि केवल १० वर्ष है। इसके पश्चात् नागरिकों में पूर्ण समानता की स्थापना हो जायेगी।

(२) **स्वतंत्रता का अधिकार**—समता के अधिकार के समान स्वतन्त्रता का अधिकार भी नागरिकों के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। जिन राज्यों ने अपने नागरिकों को इस अधिकार से वंचित किया है वहां के नागरिक अन्ध-विश्वासी होते हैं और वे किसी भी प्रकार अपनी उन्नति करने में सफल नहीं होते। कोई भी नागरिक अपने जीवन एवं अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति से कानूनी कार्यवाही के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है तथा कोई भी नागरिक बिना कारण बतलाये हुये कारावास में बन्द नहीं किया जा सकता। बन्दी किये जाने के २४ घन्टों के अन्दर वह मैजिस्ट्रेट के सामने अवश्य उपस्थित किया जायगा। कोई भी व्यक्ति तीन मास से अधिक नजरबन्द नहीं किया जा सकता है, किन्तु भारतीय संसद को यह अधिकार प्रदान कर दिया है कि वह तीन मास से अधिक के लिये भी नजरबन्दी कानून बना सकती है।

नागरिक के मौलिक अधिकार

(३) समता का अधिकार।
(४) स्वतन्त्रता का अधिकार।
(३) शोषण के विरुद्ध अधिकार।
(३) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।
(५) संस्कृति और शिक्षा का अधिकार।
(६) सम्पत्ति का अधिकार।
(६) संवैधानिक उपचारों के अधिकार।

(३) **शोषण के विरुद्ध अधिकार**—कोई भी मनुष्य किसी भी रूप में किसी अन्य व्यक्ति का शोषण नहीं कर सकता। वह न तो किसी मनुष्य का क्रय कर सकता है और न किसी का विक्रय कर सकता है। कोई मनुष्य किसी से बेगार अथवा जबरदस्ती काम नहीं करवा सकता है। इससे भारतीय समाज के दोषों का उन्मूलन किया गया। यदि कोई मनुष्य ऐसा करने का प्रयत्न करेगा तो उसका अपराध दंडनीय होगा, किन्तु इस सम्बन्ध में राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह सार्वजनिक कार्यों के लिये अनिवार्य सेवा का नियम बना सकता है। चौदह वर्ष की आयु से कम का बालक किसी कारखाने अथवा खान में काम नहीं कर सकता और न उसे ऐसे कार्य में लगाया जा सकता है जहां किसी प्रकार उसका जीवन संकट में पड़ने की सम्भावना हो।

(४) **धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार**—इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने धर्म के अनुसार किसी भी धर्म को अपनाये एवं उसके अनुसार आचरण करे। वह अपने धर्म के प्रचार के लिये भी प्रयत्न कर सकता है। किन्तु उसके ऐसा करने से सार्वजनिक हित में किसीं प्रकार की बाधा उपस्थित न होनी चाहिये। ऐसा होने पर राज्य उसके विरुद्ध नियम बना सकता है।

(५) संस्कृति और शिक्षा का अधिकार—इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपनी भाषा, संस्कृति, लिपि आदि की सुरक्षा कर सके। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी शिक्षा केन्द्र में शिक्षा प्राप्त कर सकला है, चाहे वह किसी भी धर्म अथवा जाति का क्यों न हो। अल्प-संख्यक वर्ग भी अपने विद्यालयों की स्थापना का अधिकार होगा और उनको भी सरकारी सहायता उसी समान प्रदान की जायेगी जिस प्रकार अन्य विद्यालयों को मिलती है।

(६) सम्पत्ति का अधिकार—भारतीय संविधान ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार स्वीकार किया है। किसी व्यक्ति की सम्पत्ति विधि के अधिकार के बिना नहीं छीनी जा सकती है। राज्य सार्वजनिक हित के लिये किसी भी मनुष्य की सम्पत्ति ले सकता है, किन्तु केवल उस समय जबकि उसकी क्षति-पूर्ति की व्यवस्था कर दी जाये। यदि किसी राज्य का विधान-मण्डल इस प्रकार सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये कोई विधि बनायेगा तो उनको उस समय तक लागू नहीं किया जा सकता है जब तक कि राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे।

(७) सांविधानिक उपचारों के अधिकार—यदि इन अधिकारों पर किसी प्रकार का कुठाराघात किया जाय तो प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह अपने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की मांग समुचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय से कर सकता है। इन अधिकारों में से किसी को लागू करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय किसी भी प्रकार का आदेश दे सकता है। संसद विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त अधिकार में बिना बाधा पहुँचाये किसी भी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आदेश जारी करने का अधिकार दे सकता है। सार्वजनिक शान्ति के लिए रक्षक सेनाओं में अनुशासन बनाये रखने के लिए संसद इन अधिकारों को कम अथवा समाप्त कर सकती है।

उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों को नागरिक के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये निम्नलिखित आदेश या लेख जारी करने का अधिकार है—

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण, (ii) परमादेश, (iii) प्रततिरोध, (iv) उत्प्रेक्षण. (v) अधिकार पृच्छा।

नागरिक के मौलिक अधिकारों की समाप्ति—साधारणः भारतीय संसद तथा राज्यों के विधान-मण्डलों को इनके अन्त तथा इनमें किसी प्रकार की कमी करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। संघ तथा राज्यों की कार्यपालिकाओं के लिये उनका पालन करना अनिवार्य है, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर राज्य उनको स्थगित कर सकता है जो इस प्रकार हैं—

(१) संविधान में संशोधन करने पर—संविधान में संशोधन करने के उपरान्त नागरिक के मौलिक अधिकारों का अन्त तथा उनमें कभी की जानी सम्भव है। सन् १९५१ ई० के प्रथम संशोधन अधिनियम द्वारा नागरिक के मौलिक अधिकारों में कुछ परिवर्त्तन कर दिया गया।

(२) रक्षा करने वाली सेवाओं के विषय में—भारतीय संसद को यह निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है कि सेना में या सार्वजनिक शान्ति की रक्षा करने वाली सेवाओं में नागरिक के मौलिक अधिकार किस अवस्था तक कम या पूर्णतया समाप्त किये जा सकते हैं जिससे उनमें अनुशासन बनाये रखने तथा उनके कर्त्तव्य पालन करवाने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव प्राप्त न हो।

(३) सेना विधि लगे हुये क्षेत्रों में—भारतीय संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह सेना-विधि में लगे हुए क्षेत्रों में किसी अधिकारी द्वारा व्यवस्था को बनाये रखने के उद्देश्य से किये हुये किसी काम को मान्यता प्रदान कर सकती है। इसका कार्य-रूप में यह अर्थ है कि सेना-विधि-क्षेत्र में नागरिक को मौलिक अधिकारों का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

नागरिकों के मौलिक अधिकारों की समाप्ति

(१) संविधान में संशोधन करने पर।
(२) रक्षा करने वाली सेवाओं के विषय में।
(३) सेना विधि लगे हुये क्षेत्रों में।
(४) संकट कालीन उद्घोषणा द्वारा।

(४) संकटकालीन उद्घोषणा द्वारा—भारत के राष्ट्रपति के संकटकालीन उद्घोषणा करने पर भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता, संघ और सभा करने की स्वतन्त्रता आदि उस काल तक समाप्त कर दी जायेगी जिस समय तक उस घोषणा की मान्यता है। इसके साथ-साथ अन्य मौलिक अधिकारों को भी स्थगित किया जा सकता है यदि भारत के राष्ट्रपति का इस प्रकार का कोई आदेश हो। इस घोषणा के अन्त होने पर नागरिकों को मौलिक अधिकार पूर्ववत् प्राप्त हो जायेंगे।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त

राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त भारतीय संविधान की एक विशेषता हैं। इन सिद्धान्तों से अभिप्राय उन आदेशों से है जो राज्यों को अपनी नीति का निर्धारण करने के लिये दिये जाते हैं। उनके अनुसार राज्य की नीति लगभग एक समान चल सकेगी चाहे किसी भी राजनैतिक दल से हाथ में शासन की सत्ता आये। **इन सिद्धान्तों के पीछे विधि की कोई सत्ता अथवा बल नहीं है।** परन्तु देश के शासन के लिये इनको मौलिक स्वीकार किया जाता है? यदि राज्य पूर्णतया इन सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करे तो उच्चतम न्यायालय किसी भी प्रकार उनके कार्यों को अवैध घोषित नही कर सकता है। वास्तव में ये केवल व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका शक्तियों को आदेश-मात्र है। संविधान में निम्नलिखित नीति निर्देशक सिद्धान्तों का समावेश है—

(१) लोक-कल्याण के हेतु सामाजिक व्यवस्था की स्थापना—राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं रक्षा करने का प्रयत्न करेगा जिससे सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि हो और समस्त नागरिकों तथा राष्ट्रीय संस्थाओं को सामाजिक,

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त

(१) लोक-कल्याण के हेतु सामाजिक व्यवस्था की स्थापना।
(२) राज्य द्वारा अनुसरणीय नीति तत्व।
(३) ग्राम पंचायतों का संगठन।
(४) नागरिकों को काम, शिक्षा और लोक-कल्याण।
(५) कार्य की मानवोचित दशाओं का निर्धारण एवं स्त्रियों को प्रसूति-सहायता।
(६) श्रमिकों के लिये उचित पारिश्रमिक।
(७) समस्त नागरिकों के लिये समान व्यवहार-संहिता कराने की ओर प्रयत्नशील।
(८) चौदह वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा।
(९) दलित वर्ग एवं आदि जातियों की अर्थ तथा शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति।
(१०) जनसाधारण के स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न।
(११) कृषि और पशुपालन का संगठन।
(१२ राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण।
(१३) कार्यपालिका और न्यायपालिका का भिन्न होना।
(१४) राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति।

आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त हो।

(२) राज्य द्वारा अनुसरणीय नीति तत्व—राज्य ऐसा प्रयत्न करेगा कि समान रूप से देश के सब नागरिकों को आजीविका प्राप्त करने के सब साधन उपलब्ध हों। समाज के मौलिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार विभाजित होना चाहिये जिससे जन-साधारण पूर्ण रूप से लाभ उठा सकें। आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार हो जिससे धन और उत्पादन के साधन कुछ व्यक्तियों के हाथ में एकत्रित न हो सकें। पुरुषों तथा स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिलना चाहिये। आर्थिक व्यवस्था में श्रमजीवों के स्वास्थ्य और शक्ति अथवा बालकों का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकताओं के कारण उनको ऐसे कार्यों तथा व्यवसायों से कार्य न करना पड़े जो उन की आयु तथा शक्ति के प्रतिकूल हों। बालकों तथा युवकों की शोषण तथा नैतिक और आर्थिक पतन से रक्षा की जानी चाहिये।

(३) ग्राम पंचायतों का संगठन—राज्य को इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि ग्राम पंचायतें अधिक से अधिक गांवों में बनाई जायें और इनको अधिक से अधिक अधिकार प्रदान किये जायें जिससे ये स्वायत्त शासन की इकाई का रूप धारण कर सकें।

(४) नागरिकों को काम, शिक्षा और लोक-कल्याण—राज्य को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि मनुष्य अपनी योग्यतानुसार काम कर सके और वृद्धावस्था तथा बीमारी के समय राज्य उसकी भरसक सहायता करने में सफल हो सके। इसका यह अर्थ है कि ऐसी दशा में उन्हें यह

धिकार प्राप्त होना चाहिये कि वे राज्य से सहायता प्राप्त कर सकें ।

(५) **कार्य की मानवोचित दशाओं का निर्धारण एवं स्त्रियों को प्रसूति हायता**—राज्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्यक्तियों को मानवोचित शाओं में ही कार्य करना पड़े । उनको ऐसे कार्य में नहीं लगाना चाहिये जो अपमानजनक हों । स्त्रियों को प्रसूती अवस्था में राज्य की ओर से सहायता अवश्य लनी चाहिये ।

(६) **श्रमिकों के लिये उचित पारिश्रमिक**—राज्य किसी भी प्रकार ऐसा यत्न करेगा कि प्रत्येक श्रमजीवी को चाहे वह कृषक हो अथवा किसी उद्योग-धन्धे काम करता हो इतना वेतन अवश्य मिले कि वह अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत र सके और अवकाश के समय का पूर्ण उपभोग कर सके । इसके साथ-साथ वह रेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति में पूर्ण सहायक होगा ।

(७) **समस्त नागरिकों के लिये समान व्यवहार-संहिता बनाने की ओर प्रयत्नशील होना**—राज्य भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में समान व्यवहार संहिता के निर्माण करने का प्रयत्न करेगा । इसका अर्थ यह है कि समस्त देश के अन्तर्गत समान विधियों का प्रचलन होगा और उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखा जायेगा ।

(८) **चौदह वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा**—राज्य इस संविधान के लागू होने से दस वर्ष के अन्दर ऐसी व्यवस्था करेगा कि चौदह वर्ष तक के बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करना सम्भव हो सके ।

(९) **दलित वर्ग एवं आदि जातियों की धर्म तथा शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति**—राज्य इन जातियों के अर्थ तथा शिक्षा-सम्बन्धी हितों की ओर पूर्ण ध्यान देगा तथा हर प्रकार से इनके शोषण की रक्षा करेगा । इनका अर्थ यह है कि राज्य किसी भी दशा में उनका शोषण होना स्वीकार नहीं करेगा ।

(१०) **जन-साधारण के स्वास्थ्य सुधारने का प्रयत्न**—राज्य जन-साधारण के स्वास्थ्य को उन्नत करने का भरसक प्रयत्न करेगा और हानिकारक मादक द्रव्यों का निषेध करेगा । केवल चिकित्सा के लिये हो इनका उपभोग किया जाना सम्भव होगा ।

(१०) **कृषि और पशु-पालन का संगठन**—राज्य कृषि और पशुपालन की आधुनिक वैज्ञानिक रीति से व्यवस्था करेगा । दूध देने वाले जानवरों की नस्लों को उन्नत करेगा और दूध देने वाले, बोझा ढ़ोने वाले पशुओं की हत्या को समाप्त करेगा

(१२) **राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण**—राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह रास्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करने का भरसक प्रयत्न करेगा । संसद इनकी रक्षा के सम्बन्ध में विधि बना सकती है और राज्य की सरकार इनका पालन करके उनकी रक्षा करेगी ।

(१३) **कार्यपालिका और न्यायपालिका का भिन्न होना**—कार्य राज्यपालिका को न्यायपालिका से पूर्णतया भिन्न करने का प्रयत्न करेगा ।

(१४) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति—राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा—

(क) विभिन्न राष्ट्रों के बीच महत्वपूर्ण और सम्मानीय सम्बन्ध स्थापित करने का,

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि में कर्त्तव्यों के लिए आदर-भाव उत्पन्न करने का तथा

(ग) राष्ट्रीय विवादों का पंच-निर्णय द्वारा निबटारा करने का।

राज्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का महत्व—इसके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि इनको मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत स्थान मिलना चाहिये और कुछ का कहना है कि इन को संविधान में स्थान देने की आवश्यकता ही नहीं थी। इसका लाभ केवल इतना है कि इनके द्वारा प्रत्येक राज्य तथा संघ की उन्नति के लिये एक कार्य-क्रम निर्धारित कर दिया गया है और उनसे उन पर कार्य करने की आशा की जाती है।

संघ का शासन

राष्ट्रपति—भारत संघ का मुख्य अधिकारी राष्ट्रपति होगा जिसमें सम्पूर्ण राज्य की कार्यपालिका शक्ति निहित होगी। वह उस शक्ति का उपभोग या तो स्वयं कर सकता है या अपने अधिनस्थ पदाधिकारियों द्वारा कर सकता है। उसको सहायता तथा परामर्श देने के लिये एक मन्त्रि-मण्डल होगा जो उसके प्रति उत्तरदायी होगा। इस समय भारत के राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि हैं।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—राष्ट्रपति का निर्वाचन परोक्ष रूप से होगा, किन्तु भारतीय निर्वाचन प्रणाली बड़ी रहस्यमयी है। यहां केवल इतना ही ज्ञान पर्याप्त होगा कि राष्ट्रपति का निर्वाचन भारतीय संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य तथा राज्यों के विधान-मण्डल (जिन राज्यों में दो सदन हैं वहां का प्रथम सदन) के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्मित निर्वाचन मण्डल अनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर एकल परिवर्तनीय मत द्वारा गुप्त रूप से होगा।

राष्ट्रपति का कार्य-काल—राष्ट्रपति का कार्य-काल पांच वर्ष होगा। पद ग्रहण करने की तिथि से ठीक पांच वर्ष तक वह अपने पद पर कार्य कर सकता है। इससे पूर्व वह अपनी इच्छा से त्याग-पत्र दे सकता है तथा संविधान के उल्लंघन करने पर संविधान में दी हुई पद्धति के अनुसार अभियोग लगाकर उसको पद से हटाया जा सकता है। वह अपने पद पर निश्चित कार्य-काल समाप्त होने के पश्चात् भी कार्य करता रहेगा जब तक कि उसका उत्तराधिकारी राष्ट्रपति-पद ग्रहण नहीं करता है।

राष्ट्रपति का वेतन तथा भत्ता—संविधान ने राष्ट्रपति को १०,००० रु० मासिक

ने को व्यवस्था की है। इसके भत्ते आदि के निर्णय का अधिकार संसद को सौंपा या है। ऐसा बतलाया जाता है कि समस्त टैक्स आदि कटने के उपरान्त इस मय राष्ट्रपति को २७,०० रुपये मासिक मिलते हैं।

राष्ट्रपति की योग्यतायें—राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, तथा

(३) उसमें लोक-सभा के सदस्य होने की योग्यतायें हों।

राष्ट्रपति के अधिकार—संविधान ने राष्ट्रपति को विशेष अधिकारों से सुशोभित किया है, किन्तु उसके समस्त अधिकारों का प्रयोग मन्त्रि-मण्डल करता है, क्योंकि भारत में संसदीय शासन-व्यवस्था है। राष्ट्रपति के अधिकारों को निम्न छः भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—

(१) **कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार**—संघ की सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। समस्त शासन उसके नाम से होता है। उसको युद्ध की घोषणा तथा सन्धि करने का अधिकार है। वह विदेशों में राजदूतों तथा अन्य राज्य-प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। संघ के समस्त प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति वह करता है। वह प्रधान मन्त्री एवं उसकी सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है जो राष्ट्रपति को शासन-सम्बन्धी कार्यों में परामर्श एवं सहायता प्रदान करते हैं।

(२) **विधायनी अधिकार**—राष्ट्रपति भारतीय संसद का एक अभिन्न अंग है। वह संसद के अधिवेशन को आमन्त्रित करने तथा लोक-सभा को भंग करने का अधिकार रखता है। संसद द्वारा पास किया हुआ विधेयक उस समय तक अधिनियम नहीं बन सकता जिस समय तक वह उस पर अपने हस्ताक्षर न कर दे। धन-विधेयक और वित्तीय विधेयक उस समय तक लोक-सभा में प्रस्तावित नहीं किये जा सकते जब तक राष्ट्रपति से पूर्व स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाये। उसको राज्यों के विधान मण्डलों के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं।

(३) **न्याय-सम्बन्धी अधिकार**—राष्ट्रपति को क्षमा करने का अधिकार प्राप्त है। वह प्राण दण्ड पाये हुए व्यक्तियों को मुक्त कर सकता है अथवा उनका दण्ड कम कर सकता है तथा दण्ड के प्रयोग को स्थगित कर सकता है। अपने कार्य के करने के लिए वह किसी न्यायालय के सामने उपस्थित नहीं किया जा सकता। उसको उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों तथा उच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति करने का अधिकार है।

(४) **वित्त-सम्बन्धी अधिकार**—राष्ट्रपति प्रति वर्ष संसद के सम्मुख बजट

प्रस्तुत करता है। उसकी पूर्व सम्मति प्राप्त किये बिना धन-विधेयक या वित्त-विधेयक लोक-सभा में प्रस्तावित नहीं किया जा सकता है। भारत की आकस्मिक निधि पर उसका अधिकार है।

(५) संकटकालीन अधिकार—राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकार बहुत विस्तृत हैं। वह संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। इस प्रकार की घोषणा का प्रभाव केवल दो मास तक है, किन्तु यदि भारतीय संसद उसकी घोषणा से सहमत हो तो उद्‌घोषणा की अवधि में वृद्धि की जा सकती है। इस काल में सम्पूर्ण शासन-सत्ता पर राष्ट्रपति का अधिकार हो जाता है। जनता से उसके अधिकार छीन लिये जाते हैं। उस समय उच्चतम न्यायालय भी नागरिक के अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता। वह किसी भी राज्य के विधान को स्थगित कर सकता है। यदि संसद का अधिवेशन न हो रहा हो तो वह किसी भी व्यय की स्वीकृति दे सकता है। संसद के अधिवेशन न होने के समय वह अध्यादेश भी बना सकता है।

राष्ट्रपति के अधिकार

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार।
(२) विधायनी अधिकार।
(३) न्याय-सम्बन्धी अधिकार।
(४) वित्त-सम्बन्धी अधिकार।
(५) संकटकालीन अधिकार।
(६) विशेष अधिकार।

(६) विशेष अधिकार—राष्ट्रपति अपने अधिकार सम्बन्धी कार्यों के करने में किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं है। उसके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। उसके विरुद्ध बन्दी किये जाने का कोई अधिपत्र जारी नहीं किया जा सकता है। दो मास की लिखित सूचना देने के पूर्व उसके विरुद्ध दीवानी कार्यवाही हो सकती हैं।

इस प्रकार संविधान ने राष्ट्रपति को बहुत अधिकार प्रदान किये हैं। इस सम्बन्ध में आलोचकों का कथन है कि किसी समय ऐसा सम्भव हो सकता है कि भारत में तानाशाही शासन की स्थापना हो जाये और नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई महत्व ही नहीं रहे। सम्भावना ऐसी अवश्य हो सकती है, किन्तु उसको इन अधिकारों का प्रयोग संसदीय व्यवस्था का प्रधान होने के नाते मन्त्रि-मण्डल की सलाह से करना होगा जो राष्ट्रपति के कार्यों तथा अधिकारों के प्रयोग में उसको सलाह तथा सहायता प्रदान करेंगी।

भारत का उप-राष्ट्रपति

भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा जो भारतीय संसद के द्वितीय भवन राज्य-सभा का सभापति होगा। जिस समय किसी भी कारणवश राष्ट्रपति

का पद रिक्त हो वह जब तक नये राष्ट्रपति का निर्वाचन न हो जाये राष्ट्रपति के पद पर कार्य करता रहेगा। उस समय इसको वे सब अधिकार प्राप्त होंगे जो राष्ट्रपति को प्राप्त होते हैं। इस समय वह राज्य-सभा का सभापति नहीं रहेगा। इस समय इस पद पर श्री जी० एस० पाठक हैं।

उपराष्ट्रपति की योग्यतायें—उपराष्ट्रपति बनने के लिए किसी भी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यतायें होनी चाहियें—

(१) भारत का नागरिक हो,
(२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और
(३) राज्य-सभा का सदस्य होने की योग्यता रखता हो।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन—उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित सम्मेलन में अनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के आधार पर एकल संक्रमणीय मत द्वारा गुप्त रीति से करेंगे।

उपराष्ट्रपति का कार्य-काल तथा पद-त्याग—उपराष्ट्रपति की अवधि उस तिथि से जब से उसने कार्य-भार संभाला, पांच वर्ष निश्चित है। वह स्वयं अपना त्याग-पत्र भारत के राष्ट्रपति को सम्वोधित करके दे सकता है। राज्य-परिषद् उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे पदच्युत कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव लोसभा से भी पास होना आवश्यक है। उपराष्ट्रपति अपने पद पर उस समय तक कार्य करता रहेगा जब तक कि उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त न हो चुका हो।

मन्त्रि-मण्डल

भारतीय संविधान ने मन्त्रि-परिषद्-पद्धति को अपनाया है। संविधान में उल्लिखित है कि एक मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका कार्य राष्ट्रपति को उसके कार्यों में सहायता तथा परामर्श देना होगा। यह मन्त्रि-परिषद् राष्ट्रपति तथा भारतीय संसद के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होगी। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति वह प्रधान मन्त्री की सलाह से करेगा। वास्तव में शासन का समस्त कार्य-भार मन्त्रि-परिषद् पर होगा और राष्ट्रपति केवल वैधानिक शासक के समान होगा। प्रत्येक मन्त्री को संसद का सदस्य होना आवश्यक है। संविधान ने ऐसी भी व्यवस्था की है कि ऐसा व्यक्ति भी मन्त्री पद पर आसीन किया जा सकता है जो संसद का सदस्य न हो, किन्तु उसको छः महीने के अन्दर ससद का सदस्य होना आवश्यक है अन्यथा उसको अपना पद त्यागना पड़ेगा। मन्त्रि परिषद् सामूहिक रूप से लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। वह उस समय तक अपने पद पर आसीन रह सकती है जब तक लोक-सभा का इस पर विश्वास हो।

भारतीय संसद

संघ के लिए एक संसद होगी जिसके अन्तर्गत भारत के राष्ट्रपति के अतिरिक्त दो सदन होंगे जिनमें से एक का नाम राज्य-सभा और दूसरे का नाम लोक-सभा होगा।

राज्य-सभा की बनावट—राज्य-सभा के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक २५० होगी जिनमें से १२ राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। ये ऐसे व्यक्ति होंगे जो कला, साहित्य, विज्ञान तथा समाज-सेवा के विषय में विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिकअनुभव रखते हों। शेष २३८ सदस्यों का निर्वाचन संघ में सम्मिलित राज्यों द्वारा होगा। इन सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष रीति से होगा। राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन राज्यों के विधान-मण्डल (जहां दो सदन हैं वहां का प्रथम सदन) अनुपातिक निर्वाचन पद्धति के अनुसार एकल परिवर्तनीय वोट द्वारा गुप्त रीति से करेगा। यह एक अस्थायी संस्था होगी। यह कभी भंग नहीं की जा सकती है, किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अपने पद से हट जायेंगे और उनके स्थान पर नया निर्वाचन होगा। इस सभा का सभापति भारत का उपराष्ट्रपति होगा।

सदस्यों की योग्यतायें—राज्य-सभा के सदस्य होने वाले व्यक्ति के लिये निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो।

(२) उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक हो, तथा

(३) उनमें वे सब योग्यतायें भी हों जो भारतीय संसद समय-समय पर निश्चित करे।

अधिकार—धन-विधेयक तथा वित्त-विधेयक को छोड़कर अन्य कोई भी विधेयक इस सभा में भी प्रस्तावित किया जा सकता है। धन विधेयक तथा वित्त विधेयक को छोड़कर दोनों सदनों के अधिकार समान हैं, किन्तु इस सभा को अधिनियम सम्बन्धी अधिकार कम हैं। मतभेद के अवसर पर लोक-सभा के विचारों की मान्यता है।

लोक-सभा का निर्माण—लोक-सभा के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक ५०० होगी। लोक-सभा के सदस्यों का निर्वाचन राज्यों की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होगा। निर्वाचन के लिए समस्त राज्य प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित कर दिये जायेंगे। संविधान ने ऐसी व्यवस्था की है कि ७५०,००० व्यक्तियों के लिये कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य हो और ५,०००,०० के लिये एक से अधिक सदस्य न हों। अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एंग्लो-इंडियनों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित हैं। यह केवल १० वर्ष तक के लिये है। यदि राष्ट्रपति अनुभव करते हैं कि लोक-सभा में एंग्लो-इंडियनों को पर्याप्त मात्रा में निर्वाचन प्राप्त नहीं हुआ है तो उनको अधिकार है कि वे दो एंग्लो-इंडियनों को

मनोनीत कर सकते हैं ।

सदस्यों की योग्यतायें—लोक-सभा के सदस्य होने वाले उम्मीदवार में निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु कम से कम २५ वर्ष हो, और

(३) उसमें वे सब योग्यतायें हों जो भारत की संसद समय-समय पर निर्धारित करती है ।

लोक-सभा का राज्य-काल—साधारणत: लोक-सभा का कार्य-काल पांच वर्ष है, किन्तु भारत के राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह इस अवधि के पूर्व इस सभा को भंग कर दे और इस सभा का नया निर्वाचन कराये । साधारण परिस्थितियों में इस अवधि की समाप्ति पर लोक-सभा भंग हो जायेगी । केवल संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह केवल एक वर्ष के लिए इसका कार्यकाल बढ़ा दे, किन्तु किसी भी दशा में यह एक वर्ष से अधिक नहीं किया जा सकता है ।

राज्यों का शासन

राज्यपाल—राज्य के शासन की समस्त कार्यपालिका-शक्ति राज्यपाल में निहित है । शासन का समस्त कार्य उनके नाम से होता है । वह अपने अधिकारों का प्रयोग या तो स्वयं कर सकता है अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करा सकता है । उसको उसके कार्यों में सहायता तथा परामर्श देने के लिये एक मन्त्रि-परिषद् होगी जो उसके प्रति उत्तरदायी होगी ।

राज्यपाल की नियुक्ति—राज्यपाल की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है । साधारणत: उनका कार्य-काल पांच-वर्ष है, किन्तु वह अपने पद पर उस समय तक आसीन रहेगा जब तक राष्ट्रपति का उस पर विश्वास हो । पांच वर्ष की समाप्ति पर भी वह उस समय तक अपने पद पर कार्य करता रहेगा जब तक कि उसके पद पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो जाती है । वह अपने कार्य काल की समाप्ति के पूर्व भी राष्ट्रपति को अपना त्याग-पत्र दे सकता है और अपने कार्य से मुक्त हो सकता है ।

योग्यतायें—राज्यपाल होने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहियें—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो, और

(३) देश का कोई सम्मानित एवं गन्य-मान्य व्यक्ति हो ।

वेतन एवं भत्ता—राज्यपाल के वेतन, भत्ते आदि का निर्णय भारतीय संसद करेगी किन्तु जब तक ऐसा निश्चय नहीं किया जाता उस समय तक उसको ५,५०० रुपये मासिक वेतन मिलेगा और वे सब भत्ते तथा उपलब्धियां प्राप्त होंगी

जो संविधान लागू होने से पूर्व प्रान्तों के गर्वनरों को मिलती थीं।

राज्यपाल के अधिकार—राष्ट्रपति के अधिकारों के समान राज्यपाल के अधिकार भी बहुत विस्तृत हैं, किन्तु उन सब अधिकारों का प्रयोग राज्यपाल स्वयं न करके मन्त्रि-परिषद् करेगी; क्योंकि राज्यों में भी संसदनीय शासन-प्रणाली को संविधान में अपनाया गया है। राज्यपाल केवल एक वैधानिक शासन होगा। असाधारण अवस्था में वह अपनी व्यक्तिगत इच्छा से भी कार्य कर सकता है। राज्यपाल के अधिकारों को साधारणत: निम्न चार भागों में विभाजित किया जाता है—

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार—वह राज्य की कार्यपालिका का प्रधान है। समस्त कार्यपालिका शक्ति उसमें निहित है। वह शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये नियम बना सकता है। वह राज्य के प्रमुख अधिकारियों तथा मुख्य मन्त्री की सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।

राज्यपाल के अधिकार

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार।
(२) विधायनी अधिकार।
(३) न्याय सम्बन्धी अधिकार।
(४) वित्त सम्बन्धी अधिकार।

(२) विधायनी अधिकार—राज्यपाल विधान-मण्डल का अभिन्न अंग है। विधान-मण्डल का अधिवेशन उपके निमन्त्रण पर होता है। वह विधास-सभा को भंग कर सकता है और उसका कार्यकाल बढ़ा सकता है। वह विधान-मण्डल में अपना सन्देश भेज सकता है अथवा उसमें भाषण दे सकता है। उस समय तक कोई विधेयक अधिनियम का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक कि उस पर राज्यपाल की अनुमति प्राप्त न हो जाए। वह किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये रोक सकता है। वह विधेयक को पुनर्विचार के लिये विधान-मन्डल में भेज सकता है। दूसरी बार स्वीकृत किये हुए विधेयक पर उसको अपनी अनुमति देनी होगी। जब विधान-मण्डल का अधिवेशन नहीं हो रहा हो उस समय राज्यपाल उन समस्त विषयों पर अध्यादेश जारी कर सकता है जिस पर विधि निर्मित करने का अधिकार राज्य के विधान-मण्डल को प्राप्त है। ये अध्यादेश विधान-मण्डल के अधिवेशन के प्रारम्भ से ६ सप्ताह के बाद और यदि उसकी अवधि की समाप्ति के पूर्व विधान-मन्डल उनको अस्वीकार कर दे तो उस तिथि से वे रद्द माने जायेंगे, किन्तु जिन विषयों पर अधिनियम बनाते समय राज्य की सरकार को राष्ट्रपति की सलाह लेनी पड़ती है, इनके विषय में अध्यादेश घोषित करते समय राज्यपाल को राष्ट्रपति की पूर्व सम्पत्ति लेनी होगी।

(३) न्याय-सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को उन समस्त विषयों से सम्बन्धित अपराधों के लिये जो राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत आते हैं दिए गये दण्ड को कम करने, रद्द करने, स्थगित करने और बदल देने का अधिकार प्राप्त है,

किन्तु जिन अपराधों का सम्बन्ध संघ—सरकार से है उनके सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

वित्त-सम्बन्धी अधिकार—प्रत्येक वित्तीय वर्ष के आरम्भ के पूर्व राज्यपाल को विधान-मन्डल के सम्मुख आय-व्यय का लेखा रखना होगा। विधान-मन्डल से किसी भी समय धन की मांग राज्यपाल की सिफारिश पर ही की जा सकती है। वह विधान-मन्डल के सामने पूरक मांग बढ़े हुए व्यय के लिये उपस्थित कर सकता है। समस्त धन-सम्बन्धी विधेयक विधान सभा में उसी समय उपस्थित किये जा सकते हैं जब राज्यपाल की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर ली गई हो।

इस प्रकार राज्यपाल के अधिकार भी बहुत विस्तृत हैं। मन्त्रि-मन्डल प्रणाली के अनुसार उसके सब अधिकारों का उपभोग मन्त्रि-मन्डल ही करेगा। किसी किसी स्थान पर जनहित का ध्यान रखते हुए वह मन्त्रि-मण्डल को सलाह की अवहेलना भी कर सकता है, किन्तु ऐसा अवसर शायद ही कभी उपस्थित हो सकेगा।

मन्त्रि मण्डल

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट किया जा चुका है कि शासन की वास्तविक सत्ता मन्त्रि-मण्डल के हाथ में होगी और राज्यपाल वैधानिक शासक के रूप में कार्य करेगा। संविधान के अनुसार मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल को उसके कार्यों में सहायता तथा परामर्श देगी, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। जिन विषयों पर राज्यपाल को अपने विवेक से शासन करने का अधिकार है उन पर मन्त्रि-मन्डल की सलाह की कोई आवश्यकता नहीं।

मन्त्रि मण्डल की बनावट—राज्यपाल मुख्य मन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से अन्य मन्त्रियों की नियुक्तियां करता है। प्रत्येक मन्त्री को विधान मण्डल का सदस्य होना आवश्यक है। ऐसे भी व्यक्ति मन्त्रि-मण्डल में सम्मिलित किये जा सकते हैं जो विधान-मण्डल का सदस्य न हों, किन्तु इनको छः महीने के अन्दर विधान-मन्डल का सदस्य होना आवश्यक है अन्यथा उनको अपना पद रिक्त करना होगा। मन्त्रि-परिषद् राज्यपाल तथा विधान-सभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी है। अतः केवल वे ही मन्त्रि नियुक्त किये जा सकते हैं जिन पर विधान सभा का विश्वास हो। उड़ीसा, बिहार और मध्य प्रदेश में आदिम जातियों, दलित वर्गों एवं पिछड़ी हुई जातियों के हितों की रक्षा के लिये भी एक मन्त्री की व्यवस्था संविधान द्वारा की गई है।

विधान-मण्डल

संविधान ने कुछ राज्यों में दो भवन और कुछ राज्यों में एक भवन की व्यवस्था की है। बिहार, बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा मैसूर में दो सदनों की व्यवस्था है। अन्य राज्यों में एक भवन की व्यवस्था है। जहां केवल एक ही सदन है वहां उसका नाम विधान-सभा होगा और जहां दो

सदन हैं वहां प्रथम सदन का नाम विधान सभा और द्वितीय सदन का नाम विधान परिषद् होगा।

विधान-सभा का निर्माण—राज्यों की विधान-सभा के सदस्यों के निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त कर दिये जायेंगे। इस सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होगा अर्थात् जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन स्वयं करेगी। संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रति ७५,००० जनसंख्या पर एक सदस्य होगा उससे अधिक नहीं। लेकिन यह असम के जिलों और शिलांग के नगर क्षेत्र और कटक के लिये नहीं होगा। विधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या ५२० से अधिक और ६० से कम नहीं होगी। संविधान ने आदिम जातियों तथा अल्प मतों के लिये सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था की है। ये स्थान उन जातियों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर निश्चित होंगे। यदि राज्य का राज्यपाल ऐसा अनुभव करता है कि एंग्लो-इन्डियन समुदाय के प्रतिनिधि अत्यधिक संख्या में निर्वाचित नहीं हुए तो वह उस समुदाय के जितने सदस्य उचित समझे मतोनीत कर सकता है। यह व्यवस्था दस वर्ष के उपरान्त समाप्त कर दी जायेगी।

विधान-सभा का कार्यकाल—विधान-सभा का कार्यकाल साधारणतः पांच वर्ष है, किन्तु राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त है कि वह इससे पूर्व भी उसको भंग कर सकता है। यदि यह सभा नियत समय के भीतर भंग नहीं हो जाती है, तो वह अपने प्रथम अधिवेशन की तिथि से पांच वर्ष तक कार्य करती रहेगी और इसके उपरान्त स्वयं भंग हो जायेगी। संकटकालीन अवस्था में भारतीय संसद उसका कार्यकाल एक वर्ष से अधिक समय के लिए नहीं बढ़ाई जा सकती। इस अवस्था की समाप्ति पर यह अतिरिक्त अवधि छः मास से अधिक नहीं हो सकती।

विधान सभा के सदस्यों की योग्यतायें—विधान-सभा के सदस्य होने के लिए निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु २५ वर्ष से अधिक हो और

(३) उसमें वे सब योग्यताएं होनी आवश्यक हैं जो विधान मन्डल विधि द्वारा निश्चित करे।

विधान परिषद् का निर्माण—विधान-परिषद् एक स्थायी संस्था है जो कभी भंग नहीं होगी, किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अपना स्थान रिक्त कर देंगे और उनके स्थान पर नया निर्वाचन होगा। इसके सदस्यों की संख्या विधान-सभा के सदस्यों की संख्या से एक चौथाई से अधिक न होगी, किन्तु किसी भी दशा में इसके सदस्यों की संख्या ४० से कम नहीं होगी। इसका निर्माण इस प्रकार होगा—

(१) इस परिषद् की कुल संख्या के एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन स्थानीय संस्थाओं द्वारा होगा।

(२) कुल संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन ऐसे व्यक्तियों द्वारा होगा जो कम से कम तीन वर्ष से किसी भारतीय विश्वविद्यालय के अथवा उसके समान किसी अन्य विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त किये हुए हों।

(३) कुल संख्या का बारहवां भाग ऐसे व्यक्तियों द्वारा निर्वाचित होगा जो कम से कम तीन वर्ष से किसी हायर सेकेण्डरी विद्यालयों तथा उनसे उच्च विद्यालयों में शिक्षण का कार्य कर रहें हो।

(४) एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान-सभा के सदस्य करेंगे। ये बाहरी मनुष्यों में से होंगे न कि विधान-सभा के सदस्यों में से।

(५) शेष सदस्य अर्थात् कुल संख्या का छटा भाग राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जायेगा। ये ऐसे व्यक्ति होने चाहियें जिनको साहित्य, कला, विज्ञान तथा सहकारी आन्दोलनों के सम्बन्ध में विशेष अथवा व्यवहारिक अनुभव हो।

विधान परिषद् के सदस्यों की योग्यतायें—विधान परिषद् के सदस्यों के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो,

(२) उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक हो, और

(३) उसमें वे सब योग्यतायें हों जिनको विधान-मण्डल विधि द्वारा निश्चित करे।

विधान-सभा और विधान-परिषद् का सम्बन्ध—विधान-परिषद् से विधान सभा अधिक शक्तिशाली है। धन-विधेयक तथा वित्त-विधेयक केवल विधान सभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं। दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक राज्यपाल के हस्ताक्षरों के लिये भेज दिया जाता है। जब किसी विधेयक पर दोनों भवनों में मतभेद उत्पन्न हो जाता है और यदि विधेयक विधान सभा द्वारा पुनः स्वीकृत कर दिया जाये और फिर भी विधान परिषद् उसे पास नहीं करती तो यह समझा जायेगा कि उसको दोनों सदनों ने स्वीकार कर लिया है।

प्रश्न

१. भारत के संविधान की विशेषताओं का वर्णन करो।

२. भारत के नागरिक को कौन से मौलिक अधिकार प्राप्त हैं? किन परिस्थितियों में उनका अन्त किया जा सकता है?

३. राष्ट्रपति के अधिकारों का वर्णन करो।

४. राज्यपाल के अधिकारों का वर्णन करो।

———

१२ स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत

देशी राज्यों का एकीकरण

अंग्रेजों के शासन-काल में भारत ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों में विभक्त था। ब्रिटिश भारत पर अंग्रेजों का प्रत्यक्ष शासन था और देशी राज्यों पर उनका अधिकार परोक्ष था। ये राज्य न तो ब्रिटिश भारत के राज्य थे और न इन पर ब्रिटिश संसद का ही नियन्त्रण था। इस कारण शक्ति हस्तान्तरण का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १६ मई १९४६ की कैबीनट मिशन योजना ने स्पष्ट कर दिया था कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर ब्रिटिश ताज और देशी राज्यों के सम्बंध समाप्त हो जायेंगे। सार्वभौम सत्ता न बिटिश राज्य के अधिकार में होगी और न उसका हस्तांतरण नई सरकार को किया जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जो सम्बन्ध ब्रिटिश ताज और देशी राज्यों का था वह समाप्त हो जायेगा और राज्यों को वे समस्त अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जो राज्यों की ओर से ब्रिटिश ताज को प्राप्त थे। देशी राज्यों ने कैबिनट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया था। ३ जून १९४७ के वक्तव्य में इसको पुनः दोहराया गया और यह कहा गया कि सार्वभौम सत्ता का सदा के लिये अन्त कर दिया जायेगा। १९४७ के स्वतन्त्रता अधिनियम द्वारा स्पष्ट कर दिया गया कि निश्चित तिथि पर देशी राज्यों पर से ब्रिटिश ताज का अधिकार समाप्त हो जायेगा तथा उन समस्त सन्धियों का भी अन्त हो जायेगा जो ब्रिटिश राज्य और देशी राज्यों के शासकों के बीच हुई थीं। **उनको अपना निश्चय करने का अधिकार प्रदान किया गया और १५ अगस्त १९४७ के उपरान्त वे भारत अथवा पाकिस्तान में सम्मिलित हो सकते हैं।** कुछ अंग्रेज प्रशासकों की इस सम्बन्ध में यह धारणा थी कि देशी राज्य भारतीय नेताओं के अधिकार को स्वीकार नहीं करेंगे और यह सम्भव है कि भारत में गृह-युद्ध आरम्भ हो जायेगा। हैदराबाद, त्रावनकोर और भूपाल के नरेशों का भी यह विचार था। महाराजा ग्वालियर की भी यह धारणा थी। जब भारत-सरकार को इसका आभास हुआ तो उसने देशी राज्यों को विलीन करने का निश्चय किया और देशी राज्यों के नव निर्मित विभाग के मन्त्री सरदार पटेल ने बड़ी तत्परता, साहस तथा बुद्धिमत्ता से इस समस्या का समाधान कर इस संकट से देश की रक्षा की। त्रावनकोर की जनता ने वहां के राजा के विरुद्ध विद्रोह किया। दीवान को वहां से भागना पड़ा। हैदराबाद में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। इसका अन्त करने के अभिप्राय के भारत-सरकार को पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी।

भारत में ऐसी छोटी तथा बड़ी ५०० रियासतें थीं जिनको बहुत अल्प समय में केवल १५ इकाइयों में पुनसंगठित कर दिया गया। इस महत्वपूर्ण कार्य का श्रेय उपप्रधान मन्त्रि सरदार पटेल को था। राजाओं ने भी समझ लिया था कि अब

सामान्तशाही और निरंकुशता का समय जाता रहा और अब उनका भारत राज्य के साथ सम्मिलित होने में ही हित है। फिर भी जूनागढ़ त्रावनकोर, भोपाल, हैदराबाद तथा काश्मीर आदि कुछ रियासतों ने आपत्ति की। उनके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियों में प्रकाश सक्षेप में डाला जायेगा—

(१) जूनागढ़ - जूनागढ़ काठियावाड़ में एक छोटी सी मुसलमान रियासत थी जिसकी अधिकांश जनता हिन्दू थी। नवाब पाकिस्तान के साथ मिलना चाहता था और जनता भारत के साथ। जब जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान से जूनागढ़ को सम्बद्ध करने की घोषणा की तो जनता ने आन्दोलन किया। अक्टूबर १९४७ को नवाब ने भागकर पाकिस्तान में शरण ली और नवम्बर १९४७ को जनता की इच्छा एवं सम्मत्ति के अनुसार रियासत को भारत का एक अंग बनाकर उसमें सम्मिलित कर लिया गया। सन् १९४८ के आरम्भ में इस विषय पर जनमत लिया गया कि क्या जूनागढ़ की जनता भारत-संघ में सम्मिलित होना चाहती है, जिसने यह निर्णय किया कि वह भारत-संघ में सम्मिलित किया जाये। आज जूनागढ़ भारत-संघ में सम्मिलित है और सौराष्ट्र का एक भाग बना। अब वह गुजरात राज्य का एक भाग है।

(२) हैदराबाद—हैदराबाद के साथ भी यही हुआ। हैदराबाद का निजाम पाकिस्तान में मिलना चाहता था, जबकि वहां की अधिकांश जनता हिन्दू थी। मुस्लिम रजाकर आन्दोलन कासिम रिजवी के नेतृत्व में राज्य में आरम्भ हुआ और जनता पर आतंक छा गया। हिन्दुओं के साथ अत्याचार होने लगे। मुस्लिम नेता विजयी लाल किले पर निजामशाही झण्डा फहराने का स्वप्न देखने लगा। लाचार होकर १३ सितम्बर १९४८ ई० को भारत सरकार को पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी। चार दिन में ही हैदराबाद ने हथियार डाल दिये। निजाम ने भारत-राज्य में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

(३) काश्मीर—काश्मीर भी भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित न होकर पृथक एक स्वतन्त्र राज्य रहना चाहता था, परन्तु पाकिस्तान ने काश्मीर को भयभीत करके अपने साथ मिलाने के लिये कबाईलियों को भड़काकर उस पर आक्रमण करा दिया। लूट, मार-काट, बलात अपहरण के काण्ड होने लगे। तब काश्मीर नरेश ने शेरे काश्मीर अब्दुल्ला को प्रधान मन्त्रि बनाकर उसकी सलाह से भारत में सम्मिलित होने की प्रार्थना की; जिसको स्वीकार कर लिया गया। जब काश्मीर अपनी स्वेच्छा से भारत का एक अंग बन गया, तो वहां की जनता की जान-माल की रक्षा करना भारत सरकार का कर्त्तव्य हो गया। निदान भारतीय सेना कश्मीर पहुँची। पाकिस्तान ने पहले ही कबालियों को सैनिक सहायता देना आरम्भ कर दिया था। यह बात अन्तर्राष्ट्रीय नियम के विरुद्ध थी। इसलिये भारत ने काश्मीर की समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने रख दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ के कहने से पाकिस्तान और भारत का युद्ध तो बन्द हो गया; परन्तु अभी तक इस समस्या का निर्वारण नहीं हुआ है। कई बार

इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र संघ में वादविवाद हो चुका है। अभी कुछ समय पूर्व पाकिस्तान और चीन में एक सन्धि हुई। पाकिस्तान ने हमारे काश्मीर का ३,६०० वर्ग मील क्षेत्र चीन को दे दिया। हमारी सरकार ने इसकी बड़े कटु शब्दों में आलोचना की।

भारत की योजनायें

योजनाओं की आवश्यकता—कोई भी देश उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता जब तक वह आयोजनाओं की आवश्यकता का अनुभव न करे। राज्य अपने अनुभव के आधार पर ही आर्थिक विकास के लिये आयोजनायें बनाता है और उसी के अनुसार कार्य करता है। सर्वप्रथम इस ओर रूस का ध्यान आकर्षित हुआ। भारत में भी इसकी आवश्यकताओं को समझा गया। सन् १९५१ में प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गई और १९५६ ई० में द्वितीय पंचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ, १९६१ में तृतीय और १९६८ में चौथी पंचवर्षीय योजना का निर्माण हुआ।

(१) प्रथम पंचवर्षीय योजना—भारत के राष्ट्रपति ने एक योजना आयोग का निर्माण किया और उसने शीघ्र ही प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार की।

योजना का उद्देश्य :—(१) भारत की जनता के जीवन-स्तर को उन्नत करना और लोगों को अधिक सुखमय तथा सम्पन्न जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त कराना।

(२) भारत के आर्थिक उत्पादन के साधनों का विकास तथा उपयोग किया जाना चाहिये। प्रकृति के साधनों को मानव-साधन के द्वारा उपयोग कर देश की सुख-समृद्धि तथा सम्पत्ति का विकास किया जाये।

(३) देश की आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास करना जिससे कि जनता की आय और धन में समानता की स्थापना हो। इसके साथ-साथ यह भी प्रयत्न करना चाहिये कि धन का वितरण इस प्रकार से हो जिससे विषमता का अन्त हो।

प्रथम योजना पर व्यय तथा उसकी सफलता—प्रथम पंचवर्षीय योजना पर २०६९ रु० व्यय करने की व्यवस्था की गई थी। यह धन इस प्रकार प्राप्त किया जायगा—

(१) केन्द्रीय सरकार द्वारा बचत—१६० करोड़ रुपये।
(२) रेलों की बचत—१७० करोड़ रुपये।
(३) राज्य सरकारों द्वारा बचत—४०८ करोड़ रुपये।
(४) सार्वजनिक ऋण—११५ करोड़ रुपये।
(५) छोटी बचतें—१७० करोड़ रुपये।
(६) डिपाजिट तथा प्रावीडेन्ट फण्ड—२२५ करोड़ रुपये।
(७) विदेशी सहायता—५३१ करोड़ रुपये।

(८) घाटे का बजट २९० करोड़ रुपये

योग २०६९ करोड़ रुपये

इस योजना को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई, क्योंकि खेती की पैदावार में वृद्धि हुई और सिंचाई के साधनों का पर्याप्त विकास हुआ। अनाज, तिलहन और कपास की पैदावार में बहुत वृद्धि हुई तथा जूट और गन्ने की पैदावार अधिक नहीं बढ़ सकी। सिंचाई तथा बिजली के उत्पादन में भी बड़ी वृद्धि हुई। अब एक करोड़ एकड़ भूमि की अधिक सिंचाई होने लगी है। नदी घाटी की योजनाओं के सफल होने पर इस दिशा का लक्ष्य भी पूर्ण हो गया। बिजली के उत्पादन में लक्ष्य से भी अधिक सफलता प्राप्त हो चुकी है। अन्य क्षेत्रों में भी इस योजना को बहुत सफलता प्राप्त हुई है। इसके अन्तर्गत १५ रेलवे लाइनों का निर्माण किया जा चुका है और ११ पुरानी रेलवे लाइनों को फिर से बनाया गया जो महायुद्ध के समय उखाड़ ली गई थीं। लगभग १००० रेलवे इन्जिनों का निर्माण हुआ और बहुत से सवारी तथा सामान के डिब्बों का निर्माण हुआ। प्रसूति गृह तथा तपैदिक के अस्पताल खोले गये। सरकारी क्षेत्रों में बड़े व्यवसाय के लिये भी महत्वपूर्ण कार्य हुए। सिन्दरी रासायनिक खाद का कारखाना, चितरंजन में रेलवे इन्जिन बनाने का कारखाना, पेंसलीन तथा डी० डी० टी० बनाने के कारखाने और जहाजों के निर्माण के लिये शिपयार्ड विशेष उल्लेखनीय है।

(२) **द्वितीय पंचवर्षीय योजना**—प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्त भी नहीं होने पाई थी कि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा तैयार कर ली गई। इसका निर्माण १९५६ ई० में हुआ।

इसके उद्देश्य—इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(१) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि**—राष्ट्रीय आय की वृद्धि की जाये जिससे साधारण जनता का जीवन-स्तर उन्नत हो सके।

(२) **आधारभूत उद्योगों का विकास**—देश का औद्योगिकरण किया जाये तथा आधारभूत उद्योगों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाये।

(३) **बेकारी की समस्या का समाधान**—बेकारी की समस्या का समाधान किया जाये।

(४) **सामाजिक अर्थ व्यवस्था**—सम्पत्ति का वितरण सामाजिक न्याय के आधार पर किया जाये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लिये पूंजी की व्यवस्था—द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम बहुत ही विस्तृत है और इसकी पूर्ति के लिये बहुत अधिक धन की आवश्यकता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसके लिये ६५०० करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। इसमें सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजि क्षेत्र को भी स्थान दिया गया है यद्यपि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना भारत का आदर्श है। ४३०० करोड़ रुपया सरकार द्वारा तथा १ करोड़ रुपया पूंजीपतियों तथा जनता द्वारा इस योजना को सफल बनानें के हेतु व्यय किया जायेगा।

भारत सरकार ने इस प्रकार भारतीय आर्थिक व्यवस्था को संभालने और देश की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के लिये द्वितीय पंचवर्षीय योजना के रूप में एक ठोस कदम उठाया है। एक निश्चित अवधि में इस देश की राष्ट्रीय आमदनी को दुगना करना इन योजनाओं का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकारी तथा निजी क्षेत्रों में लगभग ६५०० करोड़ रुपया व्यय करने का अनुमान है। इसमें से लगभग ४३०० करोड़ रुपया सरकारी क्षेत्र में व्यय होगा और २२०० करोड़ रुपया निजी क्षेत्र में। नेहरू जी ने अपने एक भाषण में कहा कि "आज देश के सामने अपने जीवन-यापन का स्तर बढ़ाने तथा देश में फैलती हुई बेकारी को दूर करने की कठिन समस्या है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये हमें साधारण या अवसर आने पर असाधारण उपायों से काम लेना होगा। किसी भी कीमत पर हमें अपने विकास-कार्य को आगे बढ़ाना है। इस योजना के लिये हमें सरकार के कोष में करों, बचत, ऋण तथा श्रमदान द्वारा अधिक से अधिक रकम प्रदान करनी चाहिये तभी हम अपनी तथा देश की ठोस सेवा कर सकते हैं।"

सरकारी क्षेत्र में निम्नलिखित विषयों पर व्यय करना होगा—

(१) खेती में (२) बिजली आदि में (३) कारखाने तथा खानों में (४) निर्माण व सामाजिक सुविधाओं में (५) यातायात व संचार में और (६) विविध।

निजी क्षेत्र के विषय—

(१) मकानों के निर्माण में।

(२) व्यवसायों, खानों और यातायात में।

(३) खेती व उससे सम्बद्ध व्यापार में।

(४) व्यापार व विविध।

तृतीय योजना—यह योजना १९६१ से आरम्भ होगी। इसके लिये १०२०० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी है, जिसमें ६२०० करोड़ रुपया सार्वजनिक क्षेत्र में, ४००० करोड़ रुपया निजी क्षेत्र में व्यय किया जायेगा। तृतीय पचवर्षीय योजना की रूप-रेखा भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा जून १९६० में प्रकाशित की गई थी और इसमें यह बतलाने का प्रयत्न किया गया था कि भारत के सामाजिक तथा आर्थिक विकास का रूप तथा उसकी सम्भावना किस आधार पर निर्धारित की जानी चाहिये। (i) तृतीय योजना में योजना का आकार, उसके लिये आवश्यक साधन की उपलब्धि तथा अन्य सम्बन्धित समस्याओं पर योजना के विचार व्यक्त किये गये हैं। तृतीय योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय का ४७ प्रतिशत वृद्धि करना है ताकि इस योजना की विकसित राष्ट्रीय आय में कुल ८० प्रतिशत वृद्धि हो जाये। (ii) इस योजना का दूसरा उद्देश्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना है तथा कृषि एवं उत्पादन को इस सीमा तक बढ़ाना है ताकि उद्योग तथा निर्यात की आवश्यायें पूरी हो सकें। (iii) तीसरे स्पात, ईंधन तथा शक्ति सम्बन्धी उद्योगों का इस सीमा तक विस्तार करना जिससे भावी औद्योगिकरण की आवश्यकतायें को दस वर्ष के भीतर देश स्वयं अपने साधनों द्वारा पूरा कर सके।

(iv) चौथे, देश की जन शक्ति का पूर्णरूप से प्रयोग किया जाये तथा रोजगार की स्थिति में सुधार किया जाए। (v) पांचवें, धन तथा आय के वितरण की असमानताओं को दूर किया जाए। (vi) छठे, राष्ट्रीय औद्योगिकरण किया जाये क्योंकि व्यक्तिगत उद्योगों से राज्य को तथा जनता को लाभ नहीं होगा (vii) प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की जाये। (viii) आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में अपेक्षाकृत स्थिरता रक्खी जाये। (ix) समाज-सेवा तथा समाज-सम्बन्धी विकास कार्यों के लिये भी व्यवस्था की गई थी।

तृतीय योजना के लक्ष्य तथा निशाने—योजना के पूर्ण व्यय पर से राष्ट्र की आय में ३०% वृद्धि की आशा की जाती है तथा प्रति व्यक्ति आय १७% बढ़ जायगी। तीसरी योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य ७५०० करोड़ रुपये हैं जब कि प्रथम योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य १९०० करोड़ करोड़ रुपये तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना का पूर्ण व्यय लक्ष्य ४८०० करोड़ रुपये था। इसके अतिरिक्त तृतीय पंचवर्षीय योजना में निजी क्षेत्र में ४१०० करोड़ रुपये का व्यय किया जायगा।

मदें	प्रथम योजना में पूर्ण व्यय	प्रतिशत	द्वितीय योजना में व्यय लक्ष्य	प्रतिशत	तृतीय योजना में व्यय लक्ष्य	प्रतिशत
१. कृषि तथा सामुदायिक विकास	२९१	१५	५३०	११	१०६८	१४
२. सिंचाई	३१०	१६	४२०	९	६५०	९
३. कुटीर तथा लघु उद्योग-धन्धे	४३	२	१७५	४	२६४	५
४. बड़े उद्योग तथा खनिज पदार्थ	७४	४	९००	२०	१५२०	२०
५. परिवहन, गमनागमन	५२३	२७	१३००	२८	१४८६	२०
६. सामाजिक सेवायें	४५९	२३	८३०	१८	१३००	१७
७. शक्ति	२६०	१३	४४५	१०	१०१२	१३
८. इनवन्टरीज					२००	२
कुल	१९६०	१००	४६००	१००	७५००	१००

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में अनुमानित व्यय २१,५०० करोड़ रुपयों से २२,५०० करोड़ रुपये निश्चित किये गये हैं। २२,५०० करोड़ रुपये का व्यय उसी समय सम्भव होगा, जिस समय धन की उपलब्धता में सरलता हो, अर्थात् यह धन सरलता द्वारा प्राप्त हो सके। योजना के अनुसार यह आशा की जाती है कि इसके द्वारा आर्थिक प्रगति की गति का विस्तार ६·५%

होगा। कुल व्यय लक्ष्यों में से १५,५०० करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र में तथा ७००० करोड़ रुपये निजी क्षेत्र में व्यय किये जायेंगे। इस योजना में कृषि, शिक्षा तथा स्वास्थ्य के कार्यक्रमों पर अधिक धन व्यय किया जायेगा और उद्योग शक्ति, यातायात पर कम व्यय किया जायेगा। लघु तथा कुटीर उद्योग-धन्धों के विकास पर पहले से अधिक व्यय किया जायगा। इसके लिये लगभग ३००० करोड़ रुपये का व्यय किया जायगा।

योजना के मुख्य उद्देश्य—चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—

(१) कृषि उत्पादन में प्रति वर्ष ५% की कम से कम वृद्धि करना; ग्रामीण जनता की आय में वृद्धि करना, खाद्य पदार्थों की कमी को दूर करना।

(२) कृषि के उत्पादन की वृद्धि करने के लिये समस्त अनावश्यक साधनों तथा शक्तियों का प्रबन्ध करना।

(३) उपभोग की आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करना।

विवरण	चौथी पंचवर्षीय योजना में व्यय लक्ष्य (करोड़ रुपयों में)
१. कृषि	२४००
२. सिंचाई	१०००
३. सगठित उद्योग	३२००
४. लघु उद्योग	४५०
५. शक्ति	१९५०
६. यातायात तथा परिवहन	३०००
७. शिक्षा	४००
८. वैज्ञानिक अनुसंधान	१७५
९. स्वास्थ्य	१०९०
१०. आवास	४००
११. अविकसित जाति के लोगों के विकास के लिये	२०५
१२. समाज कल्याण	६५
१३. श्रम तथा प्रतिक्षण	१४५
१४. जन सहयोग	१५
१५. ग्रामीण कार्य	२५
१६. पुर्नवास	५०
१७. श्रम	५०
	१५६२०

(४) मकानों के लिये आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना।

(५) धातुओं, दवाओं तथा रसायनों, मशीनों का उत्पादन, खनिजों, विद्युत शक्ति तथा यातायात के साधनों का विकास चालू करना।

(६) उत्पादन की वृद्धि करने के लिये मानव-शक्ति का अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाना।

(७) बेकारी को दूर करना तथा सामाजिक न्याय स्थापित करना।

विभिन्न मदों पर व्यय— सार्वजनिक क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं पर १५६२० करोड़ रुपया व्यय किया जारगा, जिसमें से ७५२५ करोड़ रुपया केन्द्रीय सरकार व्यय करेती, ७६६० करोड़ रुपया राज्य की सरकारें तथा ४३५ करोड़ रुपये केन्द्रीय अधीन क्षेत्रों पर व्यय किया जायगा। विभिन्न क्षेत्रों में चौथी योजना के लक्ष्य पिछली तालिका के अनुसार हैं।

भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्ध— भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह इसकी साधारण सभा का सदस्य है तथा संघ से सम्बन्धित अन्य विशिष्ट संस्थाओं की सदस्यता इसको प्राप्त है। **सन् १९५० ई० में वह उसकी सुरक्षा परिषद का भी सदस्य निर्वाचित किया गया था।** भारत को साधारण सभा के सभापति का आसन ग्रहण करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत विश्व शान्ति में पूर्ण विश्वास रखता है। **उसका संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में पूर्ण विश्वास है और उसकी धारणा है कि इस प्रकार के उद्देश्यों को कार्य रूप में परिणत करने से विश्व शान्ति की स्थापना सम्भव है।** भारत संयुक्त राज्य संघ की दल-बन्दियों तथा गुट बन्दियों में कोई भाग नहीं लेता। यह सदा न्याय का पक्ष लेता है और अपनी शक्ति पर विश्वास करता है। उसके ऐसा करने से कभी-कभी विश्व के प्रमुख तथा शक्तिशाली राष्ट्र अप्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में उसका मान बहुत ऊंचा होता चला जा रहा है। छोटे-छोटे तथा शोषित राज्यों की आंखें भारत की ओर लगी रहती हैं, और वे उससे उसकी सहायता तथा समर्थन प्राप्त करते की आशा करते रहते है और भारत भी कभी उनकी ओर से उदासीन नहीं रहता। वह सदा उनका पक्ष लेता है।

भारत ने काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में रखा। काश्मीर पर दबाव डालने के लिये पाकिस्तान तथा कबाइलियों ने सेना द्वारा आक्रमण किया। काश्मीर के राजा ने काश्मीर को भारत संघ में सम्मिलित करने का निश्चय किया और २७ अक्टूबर, १९४७ को वह भारत में विलय हो गया। भारतीय सेना ने काश्मीर की रक्षा पाकिस्तान से करने के लिये भारतीय सेनायें भेजीं। कबाइली तथा पाकिस्तानी सेना को पीछे हटना पड़ा। ३१ दिसम्बर को भारत ने काश्मीर का मामला सुरक्षा-परिषद में उपस्थित किया। उसके हस्तक्षेप से युद्ध का अन्त हुआ और दोनों देशों ने जनमत कराने के लिये अपनी अनुमति दी। २४ जुलाई .९५२ को भारत और

काश्मीर में एक समझौता हुआ, किन्तु शेख अब्दुल्ला ने इस समझौते की पुष्टि करने में आनाकानी की। अगस्त १९५३ में वह नजरबन्द कर दिया गया और उसके स्थान पर बख्शी गुलाम मुहम्मद वहां के प्रधान मन्त्री बने। फरवरी १९५४ में काश्मीर की संविधान-सभा ने दिल्ली समझोते को सर्व सम्मति से स्वीकार किया और इस प्रकार काश्मीर का भारत में विलय हो गया। काश्मीर संविधान-सभा ने काश्मीर के लिये एक संविधान का निर्माण किया जो २६ जनवरी १९५७ से लागू हुआ। इसके पूर्व ही पाकिस्तान ने काश्मीर का प्रश्न सुरक्षा-परिषद में रखा। इसके आरोपों का करारा उत्तर श्री कृष्णामेनन ने दिया। पश्चिमि राष्ट्रों का रुख भारत के लिये अच्छा नहीं था, और उन्होंने पाकिस्तान का समर्थन किया, किन्तु भारत के प्रधान मन्त्री जवाहर लाल नेहरू ने यह कह दिया कि उस समय तक वह संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को मानने के लिये तैयार नहीं जब तक यह घोषित न कर दिया जाये कि पाकिस्तान आक्रांता के रूप में काश्मीर आया। इस समय सुरक्षा परिषद् में इस विषय पर वाद-विवाद हो रहा है। अभी तक सुरक्षा परिषद् इस प्रश्न का हल नहीं कर सका और वह पाकिस्तान को अक्रांता घोषित करने के लिये तैयार नहीं है। इस प्रश्न का निर्णय भविष्य के गर्भ में है। काश्मीर भारत का है और वह भारत का होकर रहेगा यह नारा समस्त भारतीयों का है। १९६२ के प्रारम्भिक काल में पाकिस्तान ने सुरक्षा-परिषद् में ऐसा कहा कि उसको भारत के आक्रमण का भय है, किन्तु भारत की सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसका ऐसा कोई विचार नहीं है। अंग्रेजों और अमेरिकनों के प्रयत्नों में अन्तिम स्तर पर दोनों देशों में बातचीत भी हुई थी। पाकिस्तान की ओर से उसका वाह्य मंत्री श्री भुट्टो और भारत की ओर से सरदार स्वर्णसिंह ने वार्तालाप की। बातचीत का पांचवा दौर करांची में हुआ : किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई।

भारत ने दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के साथ किये जाने वाले अन्यायपूर्ण व्यवहार का प्रश्न साधारण सभा में उठाया। उसमें दक्षिणी अफ्रीका की सरकार के विरोध पर भी विचार किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से एक आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट में दक्षिणी अफ्रीका सरकार की जाति-भेद नीति की कटु आलोचना की, किन्तु अभी तक इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो पाया।

भारत के प्रयत्नों से इन्डोनेशिया को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और वहां की सरकार भारत के प्रति बड़ी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त अभी हाल में भारत सरकार द्वारा अंग्रेज और फ्रांस की मिश्र सम्बन्धी नीति तथा रूस की हंगरी-सम्बन्धी नीति और अमेरिका की वियतनाम सम्बन्धी नीति के विरुद्ध आवाज उठाई। वास्तव में भारत ने सदैव न्याय का पक्ष लिया इसी कारण उसका मान दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है।

भारत और राष्ट्रमंडल—ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त को शासन सत्ता का पूर्ण परित्याग कर भारत को स्वतन्त्र कर दिया। इससे पूर्व भारत ब्रिटिश कोमनवेल्थ का सदस्य था। इसमें ग्रेट ब्रिटेन के अन्तर्गत समस्त उपनिवेश सम्मिलित थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को अधिकार था कि वह इसका सदस्य रहे अथवा सदस्यता का परित्याग कर दे। भारत ने अपना हित कोमनवेल्थ की सदस्यता में ही समझा और वह अभी तक उसका सदस्य है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रमंडल के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन में कई बार भाग लिया। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत स्वतन्त्र भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ही रहे।

जिस समय नव संविधान संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया और उसके द्वारा गणतन्त्र शासन की घोषणा कर दी गई उस समय यह प्रश्न उठा कि अब भारत किस प्रकार कोमनवेल्थ का सदस्य रह सकता है। इस प्रश्न के समाधान के लिए लन्दन में ग्रेट ब्रिटेन के उपनिवेशों के प्रधान मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि भारत इसका सदस्य रह सकता है। वास्तव में इसका सदस्य रहने से भारत की स्थिति में तथा उसकी स्वतन्त्रता में न कोई अन्तर पड़ता है न कोई बाधा ही उत्पन्न होती है। भारत के कुछ विद्वानों ने भारत के राष्ट्रमंडल के सदस्य होने पर बड़ी आपत्ति की। उनका कहना था कि भारत अपनी स्वतन्त्र विदेशी नीति का निर्माण नहीं कर सकेगा और वह अंग्रेजों के हाथ में कठपुतली के समान होगा, किन्तु उनकी इस आलोचना में कोई तथ्य नहीं। भारत की अपनी अलग एक विदेशी नीति है जो ग्रेट ब्रिटेन की नीति से पूर्णतया भिन्न है और पूर्णतया स्वतन्त्र है। आलोचनाओं का उत्तर देते समय भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू और स्वर्गीय सरदार पटेल ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था कि राष्ट्रमंडल की सदस्यता का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि हम उनके समस्त आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य हैं बल्कि हम स्वतन्त्र हैं। समस्त विषयों पर हमारी स्वतन्त्र राय है। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि राष्ट्रमंडल में सम्मिलित रहने पर हमको इगलैंड के नेताओं के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सकेगा और समय-समय पर हम उनकी आर्थिक सहायता भी प्राप्त कर सकेंगे। वास्तव में भारत को राष्ट्रमंडल का सदस्य होने से कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ। उसका सदस्य होने से अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों की समस्या का भी कोई उचित समाधान नहीं हो पाया। बाध्य होकर उनका मामला भारत की ओर से संयुक्त राष्ट्र संघ में लाया गया, किन्तु उसका भी विशेष परिणाम नहीं हुआ। इस प्रकार राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत राज्यों की नीति एक समान नहीं हैं। जहां तक आर्थिक सहायता का प्रश्न है, ग्रेट ब्रिटेन उन देशों की भी यथा-सम्भव सहायता कर रहा है जो राष्ट्रमंडल के सदस्य नहीं हैं। वह बर्मा को पर्याप्त सहायता पहुँचा रहा है, किन्तु फिर भी भारत उसका सदस्य है।

भारत का एशिया के राज्यों से सम्बन्ध—भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व यूरोपीय राज्यों ने एशिया के विभिन्न देशों को अपने चंगुल में फंसा रक्खा था और किसी भी देश में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह विदेशियों की शक्ति का अन्त कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर सकता था, किन्तु जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो उसने पददलित जातियों का समर्थन किया। उसने एशिया के समस्त देशों के साथ मैत्रिक सम्बन्ध की स्थापना का भरसक प्रयत्न किया। पंडित जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में समस्त एशियाई राष्ट्रों का सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। इसमें एशियाई राज्यों की एकता का स्वागत किया गया। भारत ने समस्त एशियाई सम्मेलनों में भाग लिया और सदा इस ओर प्रयत्नशील रहा कि युद्ध का आरम्भ न हो और समस्त विषय आपसी सम्मेलनों द्वारा निश्चित कर दिये जायें, यद्यपि पाकिस्तान का व्यवहार भारत से अथवा उस राज्य में स्थित भारतीयों से अच्छा नहीं रहा। किसी भी समय युद्ध किया जा सकता था, किन्तु भारत सदा युद्ध से दूर रहा। उसका संयुक्त राष्ट्र-संघ में विश्वास है और वह शान्तिमय उपायों को ही प्रयोग में लाता रहा। अन्त में दोनों देशों में समझौता हुआ। काश्मीर का प्रश्न अभी तक उसी तरह पड़ा हुआ है। भारत ने चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मिलित कराने का बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु अभी तक उसको इस दिशा में सफलता प्राप्त नहीं हुई है। पर्याप्त समय तक भारत और साम्यवादी चीन की सन्धि रही है। दोनों देशों में तिब्बत के प्रश्न पर भी एक समझौता किया गया है, किन्तु चीन की साम्राज्यवादी भावना के कारण दोनों देशों के सम्बन्ध खराब होने लगे। चीन ने भारत की सीमा पर आक्रमण कर उत्तर तथा पूर्व की ओर के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। सन् १९६२ ई० के मध्य में चीन ने फिर भारत के प्रदेशों पर उत्तर की ओर से आक्रमण किया। प्रारम्भ में कुछ छोटी-छोटी मुठभेड़ें हुईं, किन्तु १९ अक्टूबर को चीन ने भारत पर एक विशाल आक्रमण किया। भारतीय सैनिकों ने अदम्य उत्साह और साहस से चीनियों का सामना किया। किन्तु उनकी सख्या के कारण भारतीय सेना कुछ न कर सकी। चोनी विजयी होते गये। इस पर भारत सरकार ने समस्त देश में आपत्कालीन उद्घोषणा की। नागरिकों के मौलिक अधिकार समाप्त हो गये और विदेशियों के ऊपर नियन्त्रण रखा जाने लगा। मन्त्रि-परिषद् की एक आपतकालीन समिति का निर्माण किया गया। प्रधान मन्त्री ने घोषणा की कि हम हर सम्भव रूप से शत्रु का सामना करेंगे। इस संकट के समय विदेशों ने मुख्यत: अमेरिका और इङ्गलैंड ने हमारी अस्त्र-शस्त्र आदि से सहायता की। रूस ने भारत को कोई मुख्य सहायता प्रदान नहीं की। भारतीयों को उस समय विशेष आश्चर्य हुआ जब रूस ने चीन का समर्थन किया कि दोनों देश अपनी-अपनी सेनाओं को २० किलोमीटर पीछे हटा लें। जनता ने श्री कृष्णामेनन के हटाने का आग्रह किया। प्रधान मन्त्री ने जनता के आग्रह को स्वीकार

कर रक्षा-मन्त्री का भार स्वयं संभाला और शीघ्र ही महाराष्ट्र के मुख्य मन्त्री श्री यशवत सिंह चह्वाण को यह कार्य भार सौंपा। सैनिक कमांड में भी परिवर्तन किया गया। चीन ने घोषणा की कि वह शीघ्र ही वापिस चला जायेगा। उसने अपनी सेना पीछे हटाना आरम्भ किया। उसने भारत को भी इसके मानने को लिखा, किन्तु इसमें उसकी वहुत बड़ी चाल थी। भारत-सरकार ने उससे यह अनुरोध किया, कि चीन को अपनी सेनायें भारत-प्रदेश पर से हटा लेनी चाहिए और वह वहां तक रहे जहां तक वह आक्रमण करने के पूर्व था, किन्तु चीन ने यह स्वीकार नहीं किया। अतः ८ सितम्बर १९६२ को प्रधान मन्त्री की आवाज पर जनता ने सरकार को तन, मन और धन से पूर्ण सहायता प्रदान की और स्पष्ट किया कि वह चीन के आक्रमण का सामना करने के लिये पूर्णतया तैयार है। दोनों देशों में समझौता कराने के लिए कोलम्बो समझौते द्वारा प्रयत्न किया गया। भारत-सरकार ने उसको स्वीकार कर लिया, किन्तु चीन ने उसको स्वीकार नहीं किया। दोनों देशों के बीच कुछ पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु चीन के जो पत्र आये वे उचित नहीं थे और न उनकी भाषा ही ठीक थी। अल्बानिया के अतिरिक्त समस्त पूर्वी योरोपीय देशों ने चीन की भर्त्सना की। पाकिस्तान ने चीन का समर्थन किया। इन दो देशों के अतिरिक्त अन्य देशों ने चीन की नीति तथा उसके द्वारा किए गए आक्रमण की आलोचना की। चीन अब फिर तिब्बत की सीमा पर अपनी सेना को एकत्रित कर रहा है। भारत को हर समय उसके आक्रमण का भय है। भारत-सरकार इस ओर से पूर्णतया सजग है और वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण किसी भी रूप में सहन करने को तैयार नहीं है। भारत ने जो कार्य कोरिया व कांगो में किया वह भी बड़ा ही प्रशसनीय है। भारत द्वारा ही कोरिया का प्रश्न हल हो सका। उसकी बर्मा से भी मित्रता है और दोनों देशों में सन्धि है।

भारत की विदेशी नीति—भारत की विदेशी नीति तटस्थता की है। वास्तव में वह किसी भी दल में सम्मिलित नहीं है। उसकी नीति बिल्कुल स्वतन्त्र है। भारत शान्ति की स्थापना के लिये जैसा उचित समझता है वैसा करता है। आज विश्व दो भागों में विभाजित है—(१) ऐंग्लो-अमेरिकन दल और (२) रूस, चीन आदि साम्यवादी दल। भारत के दोनों दलों के देशों से मैत्रिक सम्बन्ध हैं। भारत का हित इसी में है कि वह दोनों दलों से प्रथक् रह कर दोनों से आवश्यक सहायता प्राप्त कर सके, किन्तु भारत अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से उदासीन नहीं है। इस नीति के द्वारा ही आज भारत एशियाई देशों का नेतृत्व कर रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उसका बड़ा मान है। विश्व में जितना मान हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू का रहा उतना मान किसी भी अन्य राज्य के व्यक्ति का नहीं रहा। सब लोग उनको आदर की दृष्टि से देखते थे और उनको शांतिदूत समझते थे।

पंचशील—पंचशील का प्रयोग सर्वप्रथम इंडोनेशिया के प्रधान मंत्री ने किया

था। यह पांच सिद्धान्तों से मिल कर बना है जो इस प्रकार हैं:—

१. सब राज्य अन्य राज्यों की प्रभुता और भौगोलिक सीमाओं को स्वीकार करें।

२. कोई राज्य किसी दूसरे राज्यों की सीमा पर आक्रमण न करें।

३. कोई राज्य किसी दूसरे राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करे।

४. सब राज्य एक दूसरे को समान समझें व पारस्परिक हितों में सहयोग प्रदान करें।

५. सब राज्य शान्तिपूर्वक एक दूसरे के साथ रहें और अपनी प्रथक सत्ता व स्वतन्त्रता स्थायी रखें।

इस सिद्धांत का प्रतिपादन भारत ने सर्वप्रथम उस समय किया जब भारत और चीन में तिब्बत के प्रश्न पर सधि हुई। सन् १९५४ में चीन के प्रधान मन्त्री चाऊ-एन लाई ने भारत आगमन पर इसका समर्थन किया। बांडुंग सम्मेलन में कुछ थोड़े से परिवर्तनों के साथ पंचशील के सिद्धांत को स्वीकार किया गया। यह सम्मेलन १९५५ ई० में हुआ था, और इसमें एशिया तथा अफ्रीका के २२ राष्ट्रों ने भाग लिया था। यूरोप के कुछ देशों ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। इससे स्पष्ट है कि भारत की विदेशी नीति पर्याप्त लोकप्रिय बन गई। इसी आधार पर अधिकांश देश चीन के आक्रमण के विरुद्ध भारत की सहायता करने को तैयार हैं।

भारत और पाकिस्तान

१५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। भारतीय नेताओं को यह आशा थी कि विभाजन के उपरान्त भारत और पाकिस्तान के बीच शान्ति और आपसी मेल-जोल को बढ़ावा मिलेगा, परन्तु पाकिस्तान भारत के विरुद्ध शत्रुता का प्रदर्शन करता रहा और विभाजन के दो माह उपरान्त ही कबाइलियों ने पाकिस्तान की नियमित सेना की सहायता तथा समर्थन से काश्मीर पर आक्रमण किया। बाध्य होकर भारत को काश्मीर की रक्षा के लिये अपनी सेनायें भेजनी पड़ीं। काश्मीर राज्य इस समय तक भारत में विलीन हो गया था और उसकी रक्षा का भार भारत की सरकार पर आ गया था। भारत के प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान से अनुरोध किया कि वह आक्रमणकारियों को सहायना प्रदान न करे और संघर्षों को दीर्घ न करे, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। कई महीनों की भयंकर लड़ाई के बाद भारत की सशस्त्र सेनायें काश्मीर में आक्रमणकारियों को आगे बढ़ने से रोकने में और जिस मार्ग से वे आये थे उसी रास्ते उन्हें पीछे खदेड़ने में समर्थ हुई। जब युद्ध चल ही रहा था तो भारत ने ३० दिसम्बर १९४७ को पाकिस्तान से आने वाले आक्रमणकारियों द्वारा काश्मीर पर किये गये आक्रमण के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद् से शिकायत की।। १३ अगस्त १९४८ ई० को संयुक्त राष्ट्र कमीशन ने एक युद्ध-विराम सन्धि का प्रस्ताव किया, जिसको भारत ने स्वीकार किया और काश्मीर का पर्याप्त भाग

किस्तान के अधिकार में रह गया, जिसका प्रयोग वह भारत के विरुद्ध किये ने वाले अपने लगातार आक्रमण के लिये एक अड्डे के रूप में करता आ रहा है।

सन् १९६५ में भारत के कच्छ प्रदेश पर पाकिस्तान ने आक्रमण किया। समय भारत के प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने घोषित किया कि जिस मय तक भारतीय प्रदेश में विद्यमान कंजरकोट आदि भारतीय चौकियों से किस्तान अपनी सेनायें हटाकर यथापूर्व स्थिति की स्थापना नहीं करता है उस मय तक भारत की ओर से इस प्रदेश पर अधिकार करने के लिये संघर्ष जारी हेगा और युद्ध-विराम का कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जायेगा। ब्रिटिश प्रधान न्त्री विलसन के प्रयत्न से दोनों देशों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार किस्तान को अपनी सेनायें पीछे हटानी पड़ीं, यद्यपि उसका यह अधिकार स्वीकार कर लिया गया कि उसको सुराई-डिंग की सड़क की रक्षा करने के लिये अपने सैनिकों को गश्त लगाने का अधिकार दिया जाये। अन्त में यह प्रश्न एक न्यायाधिकरण को सौंप दिया गया जिसने अपने निर्णय में कहा कि कच्छ प्रदेश का ३५० वर्ग मील भाग पाकिस्तान को दिया जाना चाहिये। कांग्रेस सरकार ने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में इसकी पर्याप्त आलोचना की जा रही थी।

५ अगस्त १९६५ से पाकिस्तानी सशस्त्र घुसपैंठिये बहुत अधिक मात्रा में युद्ध-विराम रेखा का उल्लंघन कर काश्मीर व भारत के अन्य प्रदेशों में आने आरम्भ हो गये। जनरल निम्मो ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया कि ७–८ अगस्त की रात्रि को बारामूला क्षेत्र में ३०० तथा पूंछ क्षेत्र में १००० से भी अधिक आक्रान्ता युद्ध-विराम रेखा का उल्लंघन करके काश्मीर में घुस गये।

भारतीय सेना के नौजवानों ने बड़े साहस तथा उत्साह का परिचय देते हुये पाकिस्तानी घुसपैंठियों की योजना असफल कर डाली। १० अगस्त को पाकिस्तान की सशस्त्र सेना ने कार्गिल क्षेत्र के एक पुल पर आक्रमण । किया भारतीय सेना ने कार्गिल के सामने वाली वीनों पहाड़ियों पर अधिकार किया। १५–१६ अगस्त को पाकिस्तानी सेना ने छम्ब क्षेत्र में १ मील घुसकर आक्रमण किया और अगले दिन उन्होंने भारतीय सैनिकों पर भीषण आक्रमण किया और उन पर पाकिस्तानी सेना का अधिकार हो गया। १६ अगस्त के बाद से पाकिस्तानी सेना ने व्यापक आक्रमण करने आरम्भ किये। अब भारतीयों ने यह आवश्यक समझा कि उन मार्गों पर अधिकार किया जाये, जिनके द्वारा घुसपैंठिये भारत में आते जाते हैं। भारतीय सेना ने हाजीपीर के दर्रे पर अधिकार किया।

१ सितम्बर १९६५ को पाकिस्तान ने छम्ब के क्षेत्र में ७० टैंकों के साथ आक्रमण किया। भारतीय सेना ने उनके तीन आक्रमणों को विफल कर दिया, परन्तु वे उनके चौथे आक्रमण को नहीं रोक सके और उनको पीछे हटना पड़ा। भारतीयों ने

बाध्य होकर वायु सेना की शरण ली और पहले दिन ही पाकिस्तान के १२ टैं समाप्त कर दिये । अब पाकिस्तान ने छम्ब क्षेत्र में अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी भारतीयों ने अन्य मोर्चों का खोलना आरम्भ किया । उन्होंने लाहौर का, सियालको का और गदरा रोड़ के तीन मोर्चे खोले । भारतीयों को इन क्षेत्रों में आशाती सफलता प्राप्त हुई और पाकिस्तान घबरा गया ।

इसी समय चीन ने भारत सरकार को अल्टीमेटम दिया । भारत ने उसक करारा जवाब दिया । सुरक्षा-परिषद् की ओर से युद्ध-विराम का घोर प्रयत्न किय गया । अन्त में संयुक्त राष्ट्र संघ के महामन्त्री ऊ-थान्ट के अकथनीय प्रयत्नों द्वारा सुरक्षा-परिषद् ने २० सितम्बर को युद्ध-विराम प्रस्ताव पास किया । इस अनुसार २२ सितम्बर को ग्रीनविच टाइम के अनुसार प्रातः काल ७ बजे युद्ध ब हो गया तथा बाद में सभी सशस्त्र व्यक्ति ५ अगस्त १९६४ से पूर्व की स्थिति वापस चले आए ।

ताशकन्द समझौता

सोवियत रूस के प्रधान मन्त्री कोसीगिन के प्रयत्न से दोनों देशों के बी ताशकन्द समझौता हुआ, जिसके द्वारा दोनों देशों के बीच तनाव का अन्त हुआ ।

भारत के लोकप्रिय नेता तथा प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु २७ मई १९६४ को हुई । यह प्रश्न उनके जीवन-काल में ही बड़ा महत्वपूर था कि उनकी मृत्यु के उपरान्त उनका उत्तराधिकारी कौन होगा ? न केवल भार के राजनीतिक क्षेत्रों में वरन् समस्त विश्व के राजनीतिक क्षेत्रों में इस प्रश्न प बड़ी अटकलें लगाई जा रही थीं । अन्त में इस पद पर श्री लालबहादुर शास्त्री आसीन हुए । वह एक सच्चे देशभक्त, नेक व ईमानदार व्यक्ति थे । जून १९६४ में वे प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन हुए । लोगों को यह शंका थी कि यह छोटा-स आदमी किस प्रकार उन समस्त समस्याओं का सामना कर सकेगा जो उस सम भारत के सामने थीं और कितने ही क्षेत्रों में उनके छोटे शरीर और धोत कुरते पर व्यंग किया गया । लेकिन श्री शास्त्री जी ने आरम्भ के कुछ दि के अनिश्चय के उपरान्त समस्याओं का समाधान जिस ढंग से करना आरम्भ किय और विशेषतया उस समय जब पाकिस्तानी आक्रमण भारत पर हुआ था तो व ए लोकप्रिय नेता बन गये और भारतीय जनता हृदय-सम्राट नेहरू को भूल गई वे केवल भारत का नेतृत्व १८ महीने तक ही कर सके । यह शान्ति का पुजा शान्ति की खोज में ताशकन्द गया, लेकिन फिर भारत वापस न आ सका औ समझौते के अगले दिन ही उनकी मृत्यु हो गई । देश में हाहाकार मच गया ।

उनकी मृत्यु के उपरान्त प्रधान मन्त्री पद के लिए संघर्ष हुआ । अन्त श्री मुरारजी देसाई को हराकर श्रीमति इन्दिरा गांधी इस पद पर आसीन हु और आजकल वे ही इस पद को सुशोभित कर रही हैं । इनके सामने पर्याप्

समस्यायें हैं—देश के विभिन्न भागों में अकाल, मंहगाई, पाकिस्तान और चीन की समस्या, ताशकन्द समझौते का पालन आदि। आर्थिक स्थिति को उन्नत करने के उद्देश्य से उनकी सरकार ने रुपये का अवमूल्यन कर दिया है, जिससे भारतीय रुपये का मूल्य कम हो गया है। इससे यह आशा की जाती है कि आयात और निर्यात में वृद्धि होगी और देश की आर्थिक स्थिति उन्नत होगी। इसके परिणामस्वरूप देश में मँहगाई बढ़ रही है और सरकार को इसे रोकने के लिए घोर प्रयत्न करना आवश्यक है। इसके बाद चौथी योजना के व्यय और काम के लक्ष्य पूरे होते दिखलाई नहीं देते; क्योंकि अनुमानित व्यय २१५०० करोड़ रुपये से बढ़कर २८००० करोड़ रुपये हो गया है।

चौथा आम निर्वाचन

प्रथम तीन निर्वाचनों में कांग्रेस को बहुत अधिक सफलता केन्द्र और राज्यों दोनों में प्राप्त हुई। केरल, पेप्सू में कांग्रेस को अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु फिर भी भारत पर कांग्रेस का ही अधिकार था। १९६६ में भारत में चौथा आम निर्वाचन हुआ जिसके फलस्वरूप कांग्रेस दल को बिहार, केरल, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में बहुमत प्रात्त नहीं हुआ। इनमें से ६ में अकांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ, मद्रास में D. M. K. का मन्त्रिमण्डल बना, राजस्थान में राष्ट्रपति शासन हुआ, (अब वहां कांग्रेस की सत्ता है)। प्रारम्भ में हरियाणा व उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ, परन्तु बाद में वहां अकांग्रेजी मन्त्रिमन्डल बने किंतु बाद में वहां राष्ट्रपति शासन हुआ। हरियाणा में मध्यावधि निर्वाचन मई में हुए और उत्तर प्रदेश में फरवरी में हुए। बंगाल में राष्ट्रपति शासन है। इस प्रकार भारत के $\frac{२}{३}$ भाग पर कांग्रेस का शासन नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि जनता कांग्रेस के शासन से ऊब गई। परन्तु भारत में कई राजनीतिक दल होने के कारण किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत होना असम्भव सा प्रतीत होता है, लोक सभा में कांग्रेस के २८१ सदस्य हैं जबकि सदस्यों का कुल योग ५२१ है। इस परिस्थिति में शासन का उचित रूप से संचालन नहीं हो सकेगा। अतः स्पष्ट है कि देश में अत्यधिक दलों का होना हारिकारक है।

अकांग्रेसियों शासनों के प्रति मतदाताओं की श्रद्धा कम हुई जिसके कारण मध्यावधि निर्वाचनों में कुछ राज्यों में कांग्रेस को सफलता प्राप्त हुई। कांग्रेस के कर्णाधारों में बैंकों के राष्ट्रीयकरण व राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में बहुत अधिक मतभेद उत्पन्न हुआ। **श्री मति इन्दिरा गांधी** ने १४ बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर साधारण जनता का समर्थन प्राप्त किया तथा वरिष्ठ नेता मुरारजी देसाई से वित्त मंत्रालय लेकर अपने अधिकार में किया। राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी कांग्रेस में मतभेद उत्पन्न हुआ। कांग्रेस दल के उम्मीदवार श्री संजीव रेड्डी थे

और स्वतन्त्र उम्मीदवार श्री गिरी थे। कांग्रेस में विभाजन हो गया। प्रधान मन्त्री के समर्थकों ने श्री गिरि को और कांग्रेस के सिडींकेट के समर्थकों ने श्री संजीव रेड्डी को अपने मत दिये। श्री गिरि इस पद पर निर्वाचन में सफल होकर आसीन हुए। कांग्रेस में समझौता नहीं हो पाया और काँग्रेस का विभाजन हो गया। इस प्रकार कांग्रेस नई और पुरानी कांग्रेस में विभक्त हो गई। आज नई कांग्रेस केन्द्र में सत्तारूढ़ है, उसको वामपंक्षी दलों का समर्थन प्राप्त है और पुरानी कांग्रेस विरोधी पक्ष का रूप धारण किए हुए हैं।

———

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

Indu

(I)Gupta

Indu

(I)Gupta Indu

Indu

Indu [redacted] [redacted]

Indu Indu [redacted] [redacted]

[illegible] ANJU

INDU Indu